उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र

[भारतीय विश्वविद्यालय की स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए

सी० एस० बरला

एम० ए० (अर्थशास्त्र) एम० एस-सी० (कृषि अर्थ०)
पी-एच० डी० (मिशिगन स्टेट)

रीडर
अर्थशास्त्र विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

1980

प्रस्तावना

गत कुछ वर्षों से व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के अध्ययन का महत्व स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में काफी बढ़ गया है। वस्तुतः अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए माइक्रो इकॉनोमिक्स, अथवा व्यष्टिगत अर्थशास्त्र का अध्ययन, सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक, दोनों ही प्रकार के ज्ञानोपार्जन हेतु आवश्यक है। यही कारण है कि विश्व के लगभग सभी महत्वपूर्ण विश्वविद्यालयों में स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए इसे प्राथमिक विषय मान लिया गया है।

कोलोरेडो विश्वविद्यालय में मुझे प्रोफेसर केनेथ बोल्डिंग एवं सी० ई० फर्ग्यूसन के द्वारा माइक्रो इकॉनोमिक्स का एक नए रूप में अध्ययन करने का अवसर मिला। फिर मिशिगन स्टेट विश्वविद्यालय में लगभग ढाई वर्ष अध्ययन करने के उपरांत ऐसा अनुभव हुआ कि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र विषय की नवीनतम विचारधाराओं को हिंदी-भाषी जगत् में पहुंचाना न केवल हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों की, अपितु इस विषय की भी एक सेवा होगी। इसी उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई तथा पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की गई है।

उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र वस्तुतः ऑनर्स तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है। परंतु भाषा की सरलता, रेखाचित्रों एवं अनेकों उदाहरणों के साथ प्रत्येक आर्थिक सिद्धांत को जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है उसके द्वारा स्नातक स्तर के मेधावी छात्र भी इससे लाभ उठा सकेंगे, ऐसी आशा है।

पुस्तक में उपभोग उत्पादन व कीमत निर्धारण से सबद्ध सिद्धांतों को गणितीय रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। रेखिक प्रोग्रामिंग तथा क्रीड़ा सिद्धांतों के अतिरिक्त अल्पाधिकार एवं वितरण से सबद्ध वह विवरण भी प्रस्तुत किया गया है जो सामान्य रूप से हिंदी की पाठ्य पुस्तकों में उपलब्ध नहीं होता।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय विश्वविद्यालय के सभी हिंदी-भाषी अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा है। तथापि मैं पाठकों से यह अनुरोध करूंगा कि वे इस पुस्तक की कमियों के विषय में मुझे बतलाकर कृतार्थ करें। अध्यापक बंधुओं से निवेदन है कि वे इस विषय में अपनी सम्मति प्रेषित करें ताकि इस पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

C-10 विश्वविद्यालय प्रांगण
जयपुर

सी० एस० बरला

अनुक्रमणिका

उच्चतर
व्यष्टिगत
अर्थशास्त्र

1

विषय-परिचय
(INTRODUCTION)

1.1 अर्थशास्त्र की परिभाषा
(Definition of Economics)

ज्ञान के एक स्वतंत्र क्षेत्र के रूप में अर्थशास्त्र का आविर्भाव 1776 में एडम स्मिथ की 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' के प्रकाशन के साथ हुआ। स्मिथ ने बताया कि अर्थशास्त्र राष्ट्रों के धन की प्रकृति एवं कारणों की खोज से संबंधित है। स्मिथ की भांति अठारहवीं शताब्दी के अन्य विद्वानों ने भी अर्थशास्त्र का प्रमुख आधार धन की उत्पत्ति के विश्लेषण को बतलाया। यह प्रवृत्ति उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक चलती रही। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि एडम स्मिथ की परंपरा के अर्थशास्त्री—जिन्हें सस्थापनवादी अर्थशास्त्री कहा जाता है—अर्थशास्त्र का केंद्रबिंदु धन की उत्पत्ति को मानते थे। इन अर्थशास्त्रियों में रिकार्डो, जे० बी० से०, वाकर आदि को शामिल किया जाता था।

परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही सस्थापनवादी अर्थशास्त्रियों में से कुछ ने ऐसा कहना प्रारंभ कर दिया था कि धन मानव जीवन के लिए एक साधन मात्र है और इसलिए इसकी उत्पत्ति के विश्लेषण मात्र से ही अर्थशास्त्र का संबंध जोड़े रखना अनुचित है। इन अर्थशास्त्रियों में प्रमुख स्थान जॉन स्टुअर्ट मिल का था। अततः 1890 में एल्फ्रेड मार्शल ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनोमिक्स' में यह स्पष्ट कर दिया कि अर्थशास्त्र का प्रयोजन केवल धन की प्रकृति एवं उत्पत्ति का विश्लेषण करना ही नहीं है। धन की उत्पत्ति से अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि धन के उपयोग द्वारा अपनी आवश्यकताओं की सतुष्टि की जाए। उन्होंने इस प्रकार अर्थशास्त्र को मानव के भौतिक कल्याण के शास्त्र की संज्ञा दी परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार किया कि मानव के कल्याण में अभिवृद्धि धन के माध्यम से ही संभव है। मार्शल के मतानुसार—

> "अर्थशास्त्र मानव जीवन के सामान्य व्यवसाय का अध्ययन है। इसमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्रियाओं के उस भाग का विश्लेषण किया जाता है जो भौतिक सुख के साधनों की प्राप्ति एवं उपयोग से घनिष्ठ रूप से सबद्ध है।"

मार्शल ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि अर्थशास्त्र में मानव को एक सामाजिक व्यक्ति माना जाता है, तथा उसकी केवल उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है

जिनका प्रत्यक्ष संबंध धन की प्राप्ति, एवं इसके उपयोग द्वारा (भौतिक) कल्याण की अभिवृद्धि से है। मार्शल के विचारों का अनुमोदन पीगू, केनन एवं तत्कालीन अन्य अर्थशास्त्रियों ने किया।

एडम स्मिथ ने जिस रूप में अर्थशास्त्र की परिभाषा देकर इसे कटु आलोचना का विषय बना दिया था, मार्शल ने काफी सीमा तक अर्थशास्त्र को उससे मुक्ति प्रदान की। तथापि मार्शल भी धन को मानव के (भौतिक) कल्याण का एकमात्र आधार मानते हैं। वर्तमान शताब्दी के अर्थशास्त्रियों का ऐसा मत है कि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान ही नहीं, अपितु एक मानव विज्ञान भी है तथा इसमें समाज से बाहर रहने वाले व्यक्तियों का भी अध्ययन होना चाहिए क्योंकि ये व्यक्ति भी सीमित साधनों के उपयोग द्वारा अपनी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने का प्रयास करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह समाज में रहता हो, अथवा रॉबिंसन क्रूसो की भांति किसी निर्जन टापू पर, यह अनुभव करता है कि उसकी आवश्यकताएं अनंत हैं जबकि उन्हें संतुष्ट करने हेतु सीमित साधन (एवं सीमित समय) उपलब्ध हैं। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति को विवेकपूर्ण ढंग से व्यवहार करना होता है।

यही विचारधारा 1932 में प्रोफेसर लियोनेल रॉबिंस द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'एन एस्से ऑन दी नेचर एंड सिग्निफिकेंस ऑफ इकोनॉमिक साइंस' में अभिव्यक्त की गई। रॉबिंस के मतानुसार—

> "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें साध्यों (ends) तथा सीमित परंतु अनेक उपयोग वाले साधनों से संबद्ध मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है।"

इस प्रकार रॉबिंस ने अर्थशास्त्र की परिभाषा को एक नया रूप प्रदान किया जिसके अनुसार, (अ) मानव की आवश्यकताएं अपरिमित हैं, (ब) इनकी पूर्ति हेतु उपलब्ध साधन (समय भी) सीमित हैं, तथा (स) इन साधनों के वैकल्पिक प्रयोग हो सकते हैं। इन सबके फलस्वरूप मानव को विभिन्न आवश्यकताओं के मध्य चुनाव करना पड़ता है, तथा यह चुनाव करने में पूर्व एक विवेकशील व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को प्राथमिकता के एक क्रम में रखता है।

प्रोफेसर सैम्युअलसन ने रॉबिंस की भांति ही अर्थशास्त्र के अध्ययन का केंद्रबिंदु इसी चुनाव संबंधी समस्या को माना। परंतु जहां रॉबिंस एक स्थैतिक दृष्टिकोण लेकर साधनों एवं आवश्यकताओं के स्तरों को दिया हुआ मानते हैं तथा अध्ययन का केंद्रबिंदु मानव को लेते हैं, प्रोफेसर सैम्युअलसन की ऐसी मान्यता है कि समय के क्रम में आवश्यकताओं में भी परिवर्तन होता है और साधनों की उपलब्धि में भी। परंतु निर्दिष्ट स्तर पर उपलब्ध साधनों से दी हुई प्रविधि के अनुसार व्यक्ति अथवा समाज वस्तुओं तथा सेवाओं का एक इष्टतम संयोग प्राप्त कर सकता है। यदि साधनों की मात्रा बढ़ जाए अथवा प्राविधिक प्रगति के फलस्वरूप साधनों की पूर्व मात्रा के द्वारा ही अधिक मात्रा में वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करना संभव हो जाए तो इष्टतम संयोग के द्वारा अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना संभव हो जाएगा। इस प्रकार सैम्युअलसन ने अर्थशास्त्र को एक गत्यात्मक स्वरूप प्रदान करके इसकी व्यापक रूप में

स्वीकार्य परिभाषा प्रदान की है।[1]

कुल मिलाकर यह कहना उपयुक्त होगा कि अर्थशास्त्र की परिभाषा, उसके क्षेत्र एवं इसकी विषयवस्तु में विगत दो शताब्दियों में काफी परिवर्तन हुए हैं। वस्तुतः इस विषय की परिभाषा इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी यह बात कि अर्थशास्त्र का अध्ययन क्यों एवं किसके लिए किया जाता है? यह तो अब एक निर्विवाद सत्य बन गया है कि अर्थशास्त्र में व्यक्ति अथवा समाज द्वारा साधनों के अनुकूलतम आवंटन के आधार पर प्राप्त की गई वस्तुओं एवं सेवाओं की इष्टतम वितरण प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

आधुनिक संदर्भ में इस प्रकार अर्थशास्त्र को सीमित साधनों के इष्टतम उपयोग के विश्लेषण की संज्ञा दी जा सकती है। इस दृष्टि से निम्न बातें महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती हैं—

1. आवश्यकताओं की तुलना मे उपलब्ध साधन सीमित हैं—वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन हेतु जो साधन प्रयुक्त किए जाते हैं, मानवीय आवश्यकताओं की तुलना में वे सीमित हैं। परन्तु सीमितता की यह समस्या सापेक्षिक है। एक अत्यधिक धनी व्यक्ति के पास किसी गरीब व्यक्ति की तुलना में अधिक साधन हैं तथापि वह यह दावा नहीं कर सकता कि उसके साधन अपरिमित हैं। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका के पास भारत की तुलना में बहुत अधिक साधन उपलब्ध हैं तथापि उसे साधनों के उपयोग में विवेक से काम लेना पड़ता है। अस्तु दो व्यक्तियों या देशों में एक के पास दूसरे की अपेक्षा अधिक साधन होने पर भी साधन अपरिमित हो गए हैं ऐसा कहना उचित नहीं होगा। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि अधिक साधन सम्पन्न व्यक्ति या देश की उत्पादन क्षमता अथवा आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की सामर्थ्य दूसरे की अपेक्षा अधिक होती है।

2. साधनों की सीमितता के कारण उनका उपयोग विवेकपूर्वक करना आवश्यक होता है—जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रत्येक व्यक्ति अथवा समाज के पास उपलब्ध साधनों की मात्रा सीमित होती है जबकि उसके समक्ष विद्यमान आवश्यकताएं अपरिमित परिमाण में होती हैं। इसी कारण साधनों के विवेकपूर्ण आवंटन की समस्या भी अर्थशास्त्र के विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानी जा सकती है।

3. सीमित साधनों का आवंटन अपरिमित आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु तभी हो सकता है जब व्यक्ति (अथवा समाज या देश) इन आवश्यकताओं को अधिमानों के एक क्रम में नियोजित कर ले तथा प्रत्येक आवश्यकता को उसकी तीव्रता के

1. Economics is the study of how people and society end up choosing, with or without the use of money, to employ scarce productive resources that could have alternative uses, to produce various commodities and distribute them for consumption, now or in future, among various persons or groups in society. It analyses the costs and benefits of improving patterns of resource allocation.' —P. A. Samuelson, *Economics*, Tenth Edition p. 3

क्रम में सतुष्ट करने का प्रयास करे। यही अर्थशास्त्र की आधारभूत समस्या यानी चुनाव की समस्या कहलाती है।

4 चुनाव की समस्या वस्तुत स्थानापन्नता (substitution) की समस्या है—विभिन्न आवश्यकताओ के मध्य चुनाव की समस्या वस्तुत स्थानापन्नता की समस्या है। किसी भी व्यक्ति को एक वस्तु की निर्दिष्ट (अथवा अतिरिक्त) इकाइयो की प्राप्ति केवल उसी दशा मे हो सकती है जब वह किसी अन्य वस्तु या वस्तुओं का परित्याग करे। अन्य शब्दों में, एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाने हेतु साधनो का पुनः आवंटन करते हुए दूसरी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन मे इनका प्रयोग कम करना होता है। यह उस वस्तु की अवसर लागत (opportunity cost) भी कहलाती है।

5 साधनों द्वारा उत्पादन सभाव्यता एवं तकनीकी स्तर मे प्रत्यक्ष संबंध है—साधनो की दी हुई मात्रा से निर्दिष्ट तकनीक या प्रौद्योगिकी (technology) के आधार पर व्यक्ति अथवा समाज वस्तुओ व सेवाओं की निर्दिष्ट इष्टतम मात्रा प्राप्त कर सकता है। यदि साधनो की उपलब्ध मात्रा बढ़ जाए, तथा/अथवा प्रौद्योगिक प्रगति के कारण साधनो की अल्प मात्रा में भी वस्तु की एक इकाई का उत्पादन सभव हो जाए, तो उत्पादन सभाव्यता भी विवर्तित हो जाती है। यही कारण है कि आर्थिक विश्लेषण मे आज हम प्रौद्योगिक प्रगति को भी पर्याप्त महत्व देते हैं।

अर्थशास्त्र के विभाग

प्रोफेसर स्टोनियर एव हेग ने अर्थशास्त्र को तीन भागो मे विभाजित किया है[2]—(i) वर्णनमूलक (descriptive) अर्थशास्त्र, (ii) आर्थिक सिद्धात, एव (iii) अनुप्रयुक्त (applied) अर्थशास्त्र।

वर्णनमूलक या वर्णनात्मक अर्थशास्त्र मे हम निर्दिष्ट विषयों पर तथ्यो को एकत्रित करके उनका विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, हम भारत के सूती वस्त्र उद्योग, कृषि-ऋणग्रस्तता अथवा बागला देश की कृषि उत्पादिता का तथ्यो व आकडों के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं।

आर्थिक सिद्धात (Economic Theory) अथवा आर्थिक विश्लेषण (Economic Analysis) किसी अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षणों का वर्णन करने के साथ-साथ यह भी बताता है कि अर्थव्यवस्था किस प्रकार कार्य करती है। इसी के अतर्गत साधनो के आवटन एवं उपयोग से सबद्ध कुछ नियमो या सिद्धातो की भी व्याख्या की जाती है। जिन दशाओं मे कोई व्यक्ति उपभोग या उत्पादन के क्षेत्रो मे सीमित साधनो का आवटन करके अधिकतम उपयोगिता या लाभ प्राप्त कर सकता है उनका विवरण भी आर्थिक सिद्धातो के अतर्गत प्रस्तुत किया जाता है। प्रोफेसर बोल्डिंग के मतानुसार आर्थिक विश्लेषण अथवा आर्थिक सिद्धात किसी भी अर्थव्यवस्था में की जाने वाली

2 A. W. Stonier and D. C. Hague, *A Textbook of Economic Theory*, Fourth Edition (1973), pp 1 3

आर्थिक क्रियाओं का वर्णन करने के साथ-साथ यह भी बताना है कि ये आर्थिक क्रियाएं किस प्रकार परस्पर सबद्ध हैं।

बोल्डिंग आगे यह बताते हैं कि आर्थिक क्रियाएं चार प्रकार की होती हैं उत्पादन, उपभोग, उपयोग तथा विनिमय। कच्चे माल तथा श्रम का वस्तुओं के रूप मे रूपान्तरण अथवा आवश्यकता के स्थान तक इन वस्तुओं का परिवहन उत्पादन की श्रेणी में आता है। वस्तुओं तथा सेवाओं के उपयोग द्वारा आवश्यकताओं की सतुष्टि को उपभोग की सज्ञा दी जाती है। वस्तुओं का उपभोग भी होता है तथा उपयोग भी, परतु अनेक ऐसी वस्तुएँ होती हैं जिनका अनेक वर्षों तक आवश्यकताओं की सतुष्टि हेतु उपयोग किया जा सकता है। अत मे विनिमय के अतर्गत वस्तुओं, सेवाओं, श्रम, पूजी व उत्पादन के अन्य साधनों की खरीद शामिल की जाती है। इसी प्रकार जब श्रम का मजदूरी के बदले विनिमय किया जाता है अथवा कोई भवन किराए पर लिया या दिया जाता है तो इस आर्थिक क्रिया को भी विनिमय की सज्ञा दी जाती है।[3]

इसके साथ ही प्रोफेसर बोल्डिंग यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि उपभोग, उत्पादन, उपयोग एव विनिमय की ये क्रियाएं व्यक्तियों, फर्मों तथा सरकार द्वारा सपादित की जा सकती हैं, परतु इन सभी मे सामान्य तौर पर मुद्रा का लेखा—इकाई तथा विनिमय के माध्यम के रूप मे अवश्य प्रयोग किया जाता है। आर्थिक विश्लेषण इन सभी क्रियाओं का विवरण देने के साथ साथ उन नियमों की भी व्याख्या करता है जिनका समाज के अधिकांश उपभोक्ता एव उत्पादक प्रहुधा पालन करते हैं।

1 2 आर्थिक सिद्धांत या विश्लेषण के प्रयोजन
(Purposes or General Objectives of Economic Theory)

प्रोफेसर बोल्डिंग की ऐसी मान्यता है कि साधारण तौर पर आर्थिक विश्लेषण या सिद्धात के चार प्रयोजन होते हैं। पहला, आर्थिक विश्लेषण हम आर्थिक घटनाओं का अध्ययन करने की योग्यता प्रदान करता है। इसमे उन स्थितियों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है जिनमे साधनों का उपभोग व उत्पादन हेतु इष्टतम आवटन किया जाता है, और साथ ही जिनके अतर्गत उत्पादन के विभिन्न साधनों के मध्य साधनों का इष्टतम वितरण किया जाता है। इस प्रकार, आर्थिक सिद्धात के अतर्गत साधनों के इष्टतम उपयोग की दशाओं का अध्ययन किया जाता है।

आर्थिक विश्लेषण अथवा सिद्धात का दूसरा प्रयोजन किसी व्यक्ति, फर्म अथवा समाज को उपलब्ध वस्तुओं, सेवाओं तथा साधनों के उपभोग, उपयोग, विनिमय एव वितरण से सबद्ध आकडों व सूचनाओं का विश्लेषण करना है। इसका तीसरा प्रयोजन उन सभी सस्थाओं के विषय मे जानकारी प्रस्तुत करना है जो प्रत्यक्षत. किसी न किसी आर्थिक क्रिया का सपादन करती हैं। बहुधा प्रत्येक व्यक्ति किसी इकाई के लिए

3 K E. Boulding, Economic Analysis Vol. I, Micro-economics, Fourth Edition, p 3

विनिमय अथवा उत्पादन की प्रक्रिया मे भाग लेता है। एक गृहिणी परिवार के उपभोग हेतु खाद्य सामग्री खरीदती है, एक मैनेजर अपने बैंक के लिए निक्षेप स्वीकार करता है अथवा ऋण प्रदान करता है, एक उत्पादक अपनी फर्म के लिए कच्चा माल, श्रम या यत्रो की खरीद करता है अथवा तैयार माल को बेचता है अथवा एक सरकारी अधिकारी सरकार की ओर से किसी आर्थिक क्रिया का सम्पादन करता है।

आर्थिक विश्लेषण का अन्तिम प्रयोजन अर्थशास्त्री को इस योग्य बनाना है कि वह आर्थिक क्रियाओ से सबद्ध महत्त्वपूर्ण तथ्यो को चुनकर अनावश्यक तथ्यो को छोड दे। ऐसा न करने पर वह अनेक निरर्थक तथ्यो के जाल मे फस जाएगा। वस्तुत आर्थिक विश्लेषण हमे अनेक सिद्धान्त प्रदान करता है जिनकी पुष्टि तथ्यो के द्वारा ही की जा सकती है, और यही आवश्यक एव उपयोगी तथ्यो के चुनाव की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, विनिमय के क्षेत्र मे हम गेहू की माग, पूर्ति एव कीमत से सबद्ध तथ्यो की जानकारी चाहते हैं। ऐसी स्थिति मे हमें केवल उन्ही तथ्यो को महत्त्व देना होगा जो माग, पूर्ति व कीमत से प्रत्यक्षत सबद्ध हो अथवा इन्हे प्रत्यक्षत प्रभावित करते हो।[4]

रिचर्ड एच० लेफ्टविच के मतानुसार आर्थिक सिद्धातो यानी आर्थिक विश्लेषण के बहुधा तीन प्रयोजन होते है :[5]

(i) आर्थिक सिद्धात हमे इस बात की जानकारी देते हैं कि किसी देश की अर्थव्यवस्था किस प्रकार कार्य कर रही है तथा यह अधिकतम दक्षता के साथ कार्य कर रही है या नही। इसी प्रकार व्यष्टिमूलक (micro-level) स्तर पर एक उपभोक्ता, फर्म अथवा साधन के स्वामी के व्यवहार का विश्लेषण करने मे आर्थिक सिद्धात हमारा मार्ग-दर्शन करते हैं।

(ii) आर्थिक सिद्धातो के आधार पर हम पूर्वानुमान लगा सकते हैं। इनके द्वारा हम अनुमान कर सकते हैं कि किसी निर्दिष्ट आर्थिक चर मे परिवर्तन होने पर किसी उपभोक्ता की माग, फर्म अथवा समूची अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव होगा। उदाहरण के तौर पर यदि चाय की माग-आय लोच 1.25 हो तो अन्य बातो के यथावत् रहने पर यह कहा जा सकता है कि आय मे शत-प्रतिशत परिवर्तन होने पर चाय की माग 1.25 प्रतिशत बढ जाएगी। इसी प्रकार अन्य दिए हुए मूल्यो के आधार पर किसी एक आर्थिक चर मे निर्दिष्ट परिवर्तन से अन्य क्या परिवर्तन होगे, इसका पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

(iii) आर्थिक सिद्धातो के द्वारा हम आर्थिक नीतियो का निरूपण कर सकते हैं। वस्तुत लेफ्टविच का यह कथन प्रोफेसर रॉबिंस की विचारधारा से सर्वथा प्रतिकूल है क्योंकि रॉबिंस आर्थिक विश्लेषण का एकमात्र प्रयोजन आर्थिक चरो के परस्पर

4 K E Boulding, Economic Analysis Vol I Micro-economics, Fourth Edition, p 5

5 R. H D Leftwich, The Price System and Resources Allocation, Fifth Revised Edition, Ch. 1.

सबधो के विश्लेषण मे निहित मानते हैं। वे अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान मानते हुए यह तर्क देते है कि इसका किसी आदर्श अथवा नीति निर्धारण से कोई सबध नही है। यह कहना अनुचित न होगा कि आज के युग मे अर्थशास्त्री आर्थिक नीति के निर्धारण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

1 3 आर्थिक विश्लेषण की मूलभूत मान्यताए (Basic Assumptions of Economic Theory)

प्रोफेसर बोल्डिंग का ऐसा मत है कि सिद्धातो तथा तथ्यो के बीच एक प्रत्यक्ष सबध है। वे कहते है, "बिना तथ्यो के सिद्धातो की कोई उपयोगिता नहीं है, परन्तु बिना सिद्धातो के किसी भी तथ्य का कोई अर्थ नहीं होता।"[6] अर्थशास्त्रियो पर बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि वे केवल सिद्धातो की बातें करते हैं, तथा वास्तविक जगत के तथ्यो के बारे मे उन्हे कुछ भी पता नही होता। वस्तुत यह सही नहीं है। कोई भी दार्शनिक अथवा सिद्धातवेत्ता अधिकारपूर्वक किसी बात को तभी कह पाता है जबकि उसे तथ्यो का पूर्ण ज्ञान हो। परतु तथ्यो के ज्ञान का महत्त्व भी तभी है जब उनमे से उपयोगी तथ्यो का किसी सिद्धात के अनुरूप विश्लेषण किया जाए। अन्यथा सिद्धातो के बिना हमारे पास अर्थहीन तथ्यो का ढेर मात्र ही होगा। अस्तु, सिद्धातो तथा तथ्यो के मध्य एक उपयुक्त सबध बनाए रखना आवश्यक है। यह भी जरूरी है कि सिद्धान्त की पुष्टि तथ्यो के आधार पर की जाए।

रिचर्ड जी० लिप्से के मतानुसार प्रत्येक सिद्धान्त परिभाषाओ का एक समूह है (जिसमे प्रयुक्त किए जाने वाली सकल्पनाओ का अर्थ निहित रहता है) और साथ ही उसमे वे सभी मान्यताए भी निहित रहती हैं जो आर्थिक इकाइयो के व्यवहार के सबध मे बहुधा ली जाती हैं। अन्य शब्दो मे प्रत्येक आर्थिक सिद्धात किसी उपभोक्ता, फर्म, साधन के स्वामी के अथवा समूची अर्थव्यवस्था के व्यवहार के सबध मे कतिपय मान्यताओ पर आधारित होता है। हमारी आर्थिक भविष्यवाणिया भी इन्ही मान्यताओ पर ही निर्भर करती है।[7]

आर्थिक सिद्धात जिन मान्यताओ पर आधारित हैं उन्हे मोटे तौर पर तीन श्रेणियो मे बाटा जा सकता है[8]—

(1) **व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार से संबद्ध मान्यताए**—अर्थशास्त्री सामान्य तौर पर उपभोक्ताओ तथा उत्पादनकर्त्ता इकाइयो के व्यवहार का विश्लेषण करते हैं। यह मानते हुए कि उपभोक्ताओ की रुचि आदि मे कोई परिवर्तन नही होता, अर्थशास्त्री यह मान्यता लेता है कि प्रत्येक उपभोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण होता है,

6 'Theories without facts are barren, but facts without theories may be meaningless"
7. R G Lipsey, *An Introduction to Positive Economics*, Fourth Edition (ELBS 1975), pp 12-13
8 Stonier and Hague, *op. cit*, pp. 2-5

यानी प्रत्येक उपभोक्ता दी हुई आय को विभिन्न वस्तुओं के मध्य इस प्रकार व्यय करता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि या उपयोगिता मिल जाए। इसी प्रकार व्यावसायिक फर्म के लिए अर्थशास्त्री द्वारा विवेकपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा की जाती है जिसके अनुसार प्रत्येक फर्म अधिकतम लाभ के उद्देश्य से कार्य करता है। अर्थशास्त्र में उपभोक्ता तथा फर्म व उद्योग की क्रियाओं से संबद्ध सारे सिद्धान्त इसी विवेकपूर्ण व्यवहार से संबद्ध मान्यता पर आधारित हैं।

2 विश्व के भौगोलिक एवं भौतिक वातावरण से संबद्ध मान्यताएं—अर्थशास्त्री यह मान्यता भी लेता है कि व्यक्ति अथवा समाज की आर्थिक क्रियाएं भौतिक वातावरण पर निर्भर करती हैं। यह मान लिया जाता है कि प्रकृति स्वयं व्यक्तिगत अथवा समष्टिगत स्तर पर मानव व्यवहार पर अंकुश लगाती है। प्राकृतिक साधन—भूमि, श्रम, खनिज संपदा, जलवायु आदि—सीमित हैं तथा उनमें वृद्धि करना सामान्य तौर पर संभव नहीं होता। इसी सीमितता के कारण साधनों के उपयोग में चुनाव की आवश्यकता होती है तथा उपलब्ध वस्तुओं को प्राथमिकता (बहुधा आय-निर्धारित) के क्रम में आवंटित करना पड़ता है। सीमितता की इस मान्यता पर ही आर्थिक विश्लेषण का कीमत सिद्धान्त (Price Theory) निर्भर करता है। यह मान लिया जाता है कि जहां वस्तु की मांग व पूर्ति में समानता होती है, उसी स्तर पर साम्य कीमत का निर्धारण होता है। ये कीमतें मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त की जाती हैं तथा बहुधा सीमित वस्तुओं की आवंटन प्रक्रिया में इन्हीं की प्रधान भूमिका रहती है।

3 सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं से संबद्ध मान्यताएं—एक व्यष्टिगत इकाई अथवा समूची अर्थव्यवस्था के आर्थिक व्यवहार का विश्लेषण करते समय यह मान्यता भी ली जाती है कि देश में राजनीतिक स्थिरता है, तथा आय अर्जित करते समय अथवा उत्पादन, उपभोग या विनिमय करते समय प्रत्येक व्यक्ति कानून का पालन करता है। यह मान्यता भी ली जाती है कि साधारणतया वस्तुओं व साधनों की कीमतें उनके बाजार में विद्यमान मांग तथा पूर्ति के आधार पर निर्धारित होती हैं, तथा मांग व पूर्ति के समान होने पर संपूर्ण बाजार में एक ही कीमत प्रचलित रहती है।

परन्तु इन सबके बावजूद आर्थिक सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित नियम उतने सही नहीं हो सकते तथा इन पर आधारित पूर्वानुमान उतने अवश्यंभावी नहीं हो सकते जितने कि भौतिकशास्त्र के नियमों पर आधारित पूर्वानुमान हुआ करते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि अर्थशास्त्र की विषयवस्तु मनुष्य है तथा मानव व्यवहार के विषय में इन-परिमित आत्मविश्वास एवं पूर्णता के आधार पर कोई भी पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। यह भी संभव है कि हमारे सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में निहित मान्यताएं भी तथ्यों से परे हों अथवा अस्पष्ट हों।

यही कारण है कि अर्थशास्त्री किसी भी आर्थिक सिद्धान्त या नियम की व्याख्या करते समय "अन्य बातें यथावत् रहेंगी" (other things remaining constant) की मान्यता लेता है। इसी मान्यता को लेकर वह आर्थिक पूर्वानुमान की घोषणा करता है। ये पूर्वानुमान बहुधा यदि एवं तो के मध्य की सशर्त घोषणाओं से अधिक कुछ नहीं

होते। उदाहरण के तौर पर अर्थशास्त्री यह कह सकता है कि जनसंख्या तथा औद्योगिक स्तर (अन्य बातें) यथावत् रहने पर यदि सरकार व्यापक स्तर घाटे की वित्त-व्यवस्था लागू करे तो बेरोजगारी के स्तर में कमी आ जाएगी। यह उल्लेखनीय है कि यह पूर्वानुमान एक ज्योतिषी की भविष्यवाणी अथवा किसी भौतिक विज्ञानवेत्ता के निष्कर्ष से भिन्न है। यदि अन्य बातें यथावत् न रहें (यानी हमारी मान्यता सत्य प्रमाणित न हो) तथा घाटे की वित्त-व्यवस्था के उपरांत भी बेरोजगारी का स्तर बना रहे तो अर्थशास्त्री का पूर्वानुमान वैज्ञानिक नहीं माना जाएगा। यही कारण है कि आर्थिक सिद्धांत के आधार पर प्रस्तुत पूर्वानुमानों को सशर्त घोषणाओं से अधिक नहीं माना जा सकता।

इसीलिए आर्थिक सिद्धांतों के निष्कर्षों को अन्तिम न मानते हुए इनके आधार पर अनुभवमूलक (empirical) शोध करने की सम्मति दी जाती है। यदि अनुभवमूलक तथ्य हमारे निष्कर्षों की पुष्टि करते है तो हम उस निष्कर्ष को आर्थिक नियम
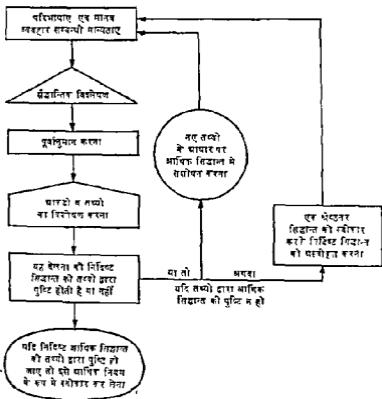
चित्र 1.1 : आर्थिक सिद्धांत का विश्लेषण एवं पुष्टि
(रिचर्ड जी० लिप्से द्वारा प्रस्तुत चित्र पर आधारित)

की संज्ञा दे देते है (तथापि इसकी सत्यता की सतत जाच होती रहनी चाहिए)। यदि तथ्यो से निष्कर्षो की पुष्टि नही होती तो प्राप्त तथ्यो के प्रकाश मे हमारे आर्थिक सिद्धात मे संशोधन किया जाता है, अथवा एक बेहतर सिद्धात की तुलना मे इस आर्थिक सिद्धात को अस्वीकृत घोषित कर दिया जाता है।

चित्र 1 1 यह स्पष्ट करता है कि आर्थिक सिद्धात क्या है तथा किस प्रकार उसे परीक्षण के दौर से गुजरना पडता है।

चित्र 1 1 से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी आर्थिक सिद्धात अपने आप मे शाश्वत एव पूर्ण नही है तथा तथ्यो के आधार पर इसकी पुष्टि हो जाने के बाद भी सतत रूप मे इसकी जाच का क्रम जारी रहना चाहिए। यदि अनुभवमूलक तथ्यो से इसकी पुष्टि नही होती तो या तो हमे किसी बेहतर आर्थिक सिद्धात की खोज करनी होगी अथवा प्राप्त तथ्यों के आधार पर विद्यमान सिद्धात म सशोधन करना होगा।

1 4 आर्थिक विश्लेषण की शाखाएं
(Branches of Economic Theory)

ऊपर यह बताया जा चुका है कि आर्थिक सिद्धात का सबध आर्थिक क्रियाओ से होता है। इसी बात को इस रूप म भी कहा जा सकता है कि आर्थिक सिद्धात उन सभी आर्थिक समस्याओ के समाधान का विश्लेषण करता है जो अपरिमित आवश्यकताओ की सीमित साधनो द्वारा सतुष्टि से सबद्ध हैं। ये आर्थिक समस्याए एक इकाई (उपभोक्ता, फर्म अथवा साधन का स्वामी) की हो सकती हैं अथवा उनका सबध समूची अर्थव्यवस्था से हो सकता है। प्रथम स्थिति को जहा एक इकाई की आर्थिक क्रियाओ एव निर्णय-प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाता है, व्यष्टिमूलक या व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (Micro-economic Theory) कहा जाता है, जबकि द्वितीय श्रेणी के विश्लेषण को समष्टिमूलक या समष्टिगत अर्थशास्त्र (Macro economic Theory) की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार आर्थिक सिद्धात को स्थैतिक (static) एव गत्यात्मक (dynamic) विश्लेषण तथा यथार्थमूलक (positive) एव आदर्शमूलक (normative) विश्लेषण के रूप म भी वर्गीकृत किया जाता है। हम सक्षेप मे इन सभी की यहा चर्चा करेंगे।

व्यष्टिमूलक तथा समष्टिमूलक आर्थिक विश्लेषण

व्यष्टिमूलक अथवा व्यष्टिगत आर्थिक विश्लेषण का सबध किसी एक उपभोक्ता, एक फर्म अथवा उत्पादन के साधन के किसी एक स्वामी के आर्थिक व्यवहार से होता है। अग्रेजी मे इसे 'Micro-economic Theory' कहते हैं। वस्तुत 'माइक्रो' शब्द यूनानी भाषा के 'माइक्रोस' से बना है जिसका अर्थ है, सूक्ष्म। इस अर्थ म व्यष्टिगत अर्थशास्त्र समूची अर्थव्यवस्था का अध्ययन न करके किसी एक इकाई के व्यवहार का ही विश्लेषण करता है चाहे वह इकाई एक उपभोक्ता हो, एक फर्म हो अथवा साधनों का एक स्वामी। यह इकाई एक व्यक्ति के रूप मे हो सकती है अथवा एक परिवार,

साझेदार फर्म या कम्पनी के रूप में।

व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में एक इकाई के व्यवहार का विश्लेषण करते समय यह मान्यता ली जाती है कि अन्य सभी इकाइयों का व्यवहार भी इसी इकाई के व्यवहार के ही अनुरूप होगा। अस्तु यदि एक उपभोक्ता वस्तु के मूल्य में कमी होने पर अधिक इकाइयाँ खरीदता है अथवा यदि एक फर्म को श्रम की अतिरिक्त इकाइयाँ प्रयुक्त करने पर ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं तो हम यह भी मान लेते हैं कि साधारणतया कीमत तथा माँग की मात्रा में विपरीत सम्बन्ध होता है अथवा फर्म के सन्दर्भ में, अन्य साधनों के यथावत रहते हुए श्रम की मात्रा बढ़ाने पर उत्पादन को ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं। अन्य शब्दों में व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में हम एक प्रतिनिधि (representative) उपभोक्ता प्रतिनिधि फर्म अथवा प्रतिनिधि भूमि धन स्वामी के व्यवहार का विश्लेषण करते हैं।

व्यष्टिगत अर्थशास्त्र को मूल्य सिद्धान्त (Price Theory) के नाम से भी जाना जाता है। इसका कारण यह है कि इसमें प्रधानतः इस बात का अध्ययन किया जाता है कि व्यावसायिक फर्मों एवं उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं व सेवाओं का तथा परिवारों और व्यावसायिक फर्मों के बीच उत्पादन के साधनों का प्रवाह किस प्रकार होता है। इस प्रवाह की प्रवृत्ति किस प्रकार की होती है एवं वस्तुओं की माँग व पूर्ति के आधार पर उनकी साम्य कीमतों का तथा साधनों की माँग व पूर्ति के आधार पर उनकी कीमतों का निर्धारण किस प्रकार होता है। इस सन्दर्भ में यह मान्यता ली जाती है कि उपभोक्ताओं की रुचि विभिन्न वस्तुओं के प्रति उनकी प्राथमिकताओं के रूप में अभिव्यक्त होती है जो अन्ततः वस्तुओं की माँग का निरूपण करती हैं। परन्तु इसके साथ ही वस्तुओं की कीमतें उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं के मध्य अपनी निर्दिष्ट आय का आवंटन करने में सहायक होती हैं। इसी प्रकार साधनों की कीमतें उनके मध्य उत्पादक के बजट का आवंटन करने में सहायता करती हैं। प्रत्येक साधन या साधनों के उपयोग का स्तर किसी वस्तु के उत्पादन (पूर्ति) का स्तर निर्धारित करता है जबकि उपभोक्ताओं द्वारा अपनी आय के आवंटन के आधार पर प्रत्येक वस्तु की कुल माँग का स्तर निर्धारित किया जाता है। मूल्य सिद्धान्त के रूप में व्यष्टिगत अर्थशास्त्र यह भी बताता है कि प्रत्येक मूल्य पर माँग व पूर्ति के स्तर भिन्न होंगे तथा साम्य मूल्य वही होगा जिस पर वस्तु या साधन की माँग व पूर्ति में समानता हो। परन्तु *यहाँ निम्न बातें स्पष्ट कर देना आवश्यक है—*

(i) व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में कुल उत्पादन को स्थिर मान कर यह देखा जाता है कि मूल्यों में परिवर्तन के साथ-साथ उत्पादन में विभिन्न वस्तुओं का अनुपात या इनकी संरचना (composition) में क्या परिवर्तन होते हैं। इसी प्रकार इसमें सभी साधनों की मात्रा को यथावत मानते हुए विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में इनके आवंटन का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार कुल आय को स्थिर मान कर आय के वितरण का अध्ययन व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में किया जाता है।

(ii) व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में अनेक आर्थिक घरों को बाह्य रूप में निर्धारित

(exogenously determined) मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए, एक उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण करते समय यह मान लिया जाता है कि वस्तु की कीमत का निर्धारण बाजार माग व पूर्ति के द्वारा हो चुका है। इसी प्रकार यह भी मान लेते हैं कि फर्म के व्यवहार के अध्ययन मे भी साधनों एव निर्दिष्ट वस्तु की कीमतो का बाह्य रूप मे निर्धारण हो चुका है। अन्य शब्दो मे, एक इकाई द्वारा निरूपित माग या पूर्ति साधारणतया वस्तु की कीमत का निर्धारण नही कर पाती।

(iii) व्यष्टिगत अर्थशास्त्र मे सामान्य मूल्य स्तर (general price level) को स्थिर मानते हुए कीमतो के सापेक्ष ढाचे (relative price structure) का अध्ययन किया जाता है।

(iv) व्यष्टिगत अर्थशास्त्र इस प्रमुख मान्यता के आधार पर किसी उपभोक्ता या फर्म के व्यवहार का विश्लेषण करता है कि उसका व्यवहार विवेकपूर्ण है। अन्य शब्दों में यह मान्यता ली जाती है कि प्रत्येक उपभोक्ता का लक्ष्य निर्दिष्ट आय मे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना है, तथा प्रत्येक फर्म निर्दिष्ट लागत के आवटन द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहती है।

चूंकि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र किसी एक वस्तु की माग, इसके उत्पादन एव कीमत निर्धारण का ही विश्लेषण करता है, यह किसी भी देश या राज्य की सरकार की समष्टिगत आर्थिक नीति के निर्धारण मे सहयोग नही दे पाती। तथापि निर्दिष्ट वस्तु के उत्पादन, माग या कीमत को प्रभावित करने हेतु सरकार व्यष्टिगत आर्थिक विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों की सहायता लेकर कोई भी नीति बना सकती है। उदाहरण के लिए, सूती वस्त्र उद्योग के उत्पादन, माग या कीमत को प्रभावित करने हेतु सरकार कोई नीति बना सकती है। इसी प्रकार किसी वर्ग विशेष की आय या रोजगार मे वृद्धि हेतु सरकार कोई कदम उठा सकती है परन्तु कुल रोजगार या आय के सबध मे नीति निर्धारण हेतु व्यष्टिगत अर्थशास्त्र सहायता नही दे सकता।

परतु व्यष्टिगत अर्थशास्त्र अपने आप मे पूर्ण नहीं है। प्रोफेसर सैम्युअल्सन की मान्यता है कि अनेक बार एक व्यक्ति या इकाई के आर्थिक विश्लेषण मे प्राप्त निष्कर्ष समूची अर्थव्यवस्था के लिए वैध नहीं हो पाते। वे इसे सरचना के भ्रम की सज्ञा देते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र मे अनेक चरों को बाह्य निर्धारित मान कर विश्लेषण को सरल एव सहज बनाने का प्रयास किया जाता है, परतु इससे हम अनेक महत्त्वपूर्ण अतर्जात (endogenous) चरो की उपेक्षा कर सकते हैं। वृहत् मॉडल मे कुछ भी बहिर्जात या बाह्य निर्धारित नही होता, और इसीलिए हम समूची अर्थव्यवस्था का अध्ययन करना पडता है। राष्ट्रीय आय, कुल बचत, निवेश, रोजगार, मूल्य स्तर एव सरकार की मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों के विश्लेषण हेतु हम एक इकाई के व्यवहार पर आश्रित नही रह सकते। इसके लिए हमे समष्टिगत अर्थशास्त्र की आवश्यकता होती है।

समष्टिगत अर्थशास्त्र (Macro-economic Theory)—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, समष्टिगत आर्थिक विश्लेषण मे एक व्यक्ति की माग, बचत,

उत्पादन या किसी एक वस्तु की कीमत का अध्ययन करने की अपेक्षा कुल उपभोग, बचत राष्ट्रीय आय सामान्य मूल्य स्तर एवं रोजगार के विषय में अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार जहाँ व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में एक वस्तु या साधन की कीमत के निर्धारण का विश्लेषण किया जाता है वहीं समष्टिगत अर्थशास्त्र में समूह मूल्य स्तर की निर्धारण प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार समष्टिगत अर्थशास्त्र में एक वस्तु या साधन के प्रवाह को न लेकर इन प्रवाहों के योग को लिया जाता है जिसमें सकल उत्पाद बचत, निवेश व रोजगार शामिल हैं।

व्यष्टिगत एवं समष्टिगत साम्य (Micro and Macro-economic Equilibria)—साम्य स्थिति हम उस स्थिति को कहते हैं जब विभिन्न प्रभावी शक्तियाँ सतुलन की स्थिति में आ जाती हैं तथा उस स्थिति से विचलन की कोई भी सभावना नहीं दिखाई देती। किसी गेंद को हम उस समय साम्य स्थिति में मानेंगे जब यह भूमि पर निश्चल रखी हुई हो। इसके विपरीत धरती पर लुढ़कती हुई या हवा में उछलती हुई गेंद को साम्य स्थिति में नहीं माना जा सकता क्योंकि इसे प्रभावित करने वाली शक्तियाँ सतुलन की स्थिति में नहीं हैं और इसलिए गेंद की स्थिति भी बदल जाती है। इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि कोई भी कीमत उस दशा में साम्य कीमत मानी जाती है जब इसे प्रभावित करने वाली शक्तियाँ—यानी माँग व पूर्ति की शक्तियाँ में सतुलन हो।

व्यष्टिगत अर्थशास्त्र हमें उन दशाओं का बोध कराता है जिनमें एक उपभोक्ता या फर्म साम्य स्थिति में होती है। यह मानते हुए कि प्रत्येक उपभोक्ता का उद्देश्य निर्दिष्ट आय के आवंटन द्वारा अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना है व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के अनुसार उपभोक्ता की साम्य स्थिति वह होगी जब वस्तु की कीमत तथा इसकी सीमांत उपयोगिता समान हो ($MU_x = P_x$), अथवा अनेक वस्तुओं का उपभोग करने की स्थिति में सभी वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं व मूल्यों के अनुपात समान हों। इसी प्रकार कोई भी फर्म उस समय साम्य स्थिति में मानी जाती है जब इसकी सीमांत लागत एवं सीमांत आगम में सतुलन हो यानी इसी स्थिति में फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। साधन के किसी स्वामी की साम्य स्थिति वह होगी, जहाँ साधन के स्वामी के अतिरिक्त आय (जो कार्य करने से प्राप्त होगी) तथा आराम का परित्याग करने से हुई सीमांत अनुपयोगिता (marginal disutility) में सतुलन हो। संक्षेप में, व्यष्टिगत साम्य स्थिति तब मानी जाती है जब (i) प्रत्येक उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता मिल रही हो (ii) प्रत्येक फर्म को अधिकतम लाभ मिल रहा हो तथा (iii) साधनों के प्रत्येक स्वामी को अधिकतम आय प्राप्त हो रही हो।

व्यष्टिगत साम्य में यह मान्यता भी निहित रहती है कि निर्दिष्ट वस्तु या साधन की बाजार माँग व पूर्ति में सतुलन है तथा एक उपभोक्ता या फर्म के व्यवहार का इनकी साम्य कीमतों पर कोई भी प्रभाव नहीं होता। हाँ यह ठीक है कि एक एकाधिकारी क्रेता (monopsonist) या विक्रेता (monopolist) कीमत को प्रभावित कर सकता है। फिर भी पूर्ति या माँग की मात्रा का निर्धारण उसकी सामर्थ्य से बाहर

की बात है।

इन सबम विपरीत समष्टिगत आर्थिक साम्य वह स्थिति है जिसम (i) कुल व्यय (उपभोग+निवेश+सरकारी व्यय) एव कुल आय म सतुलन हो (ii) श्रम की कुल पूर्ति इसकी कुल माग क समान हो (iii) कुल बचत एव कुल निवेश म सतुलन हो तथा (iv) विदेशो को किए गए भुगतान उनसे प्राप्त भुगतानो क समान हो यानी भुगतान बाकी सतुलित हो।

यदि किसी भी आर्थिक चर (जैसे कि कीमत) पर एक या अधिक शक्तियो की क्रिया प्रारम्भ हो जाए तो साम्य स्थिति म परिवतन होगा और ऐसा तब तक होता रहेगा जब तक कि नई साम्य स्थिति प्राप्त नहीं हो जाता। उदाहरण क लिए आय अथवा फैशन म परिवतन होते ही उपभोक्ता वस्तु की माग म परिवतन करके नई साम्य स्थिति म पहुचने का प्रयास करेगा। इसी प्रकार कीमत क परिवतन क साथ ही फम भी उत्पादन की मात्रा म समायोजन करके नई साम्य स्थिति म पहुच जाएगी। समष्टिगत दृष्टिकोण से यदि मुद्रा की मात्रा म परिवतन हो जाए तो ब्याज की दर, कीमत स्तर या मजदूरी की दर म परिवतन होगा तथा कुल आय या कुल रोजगार की साम्य स्थिति म भी विचलन हो जाएगा।

६ व्यष्टिगत एव समष्टिगत अर्थशास्त्र की पारस्परिक निभरता—अब तक यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में एक इकाई के आर्थिक व्यवहार का विश्लेषण किया जाता है जब कि समष्टिगत अर्थशास्त्र म समग्र मूल्यो का अध्ययन करके समष्टिगत साम्य स्थिति का बोध कराया जाता है। ऊपरी तौर पर य दोनो अर्थशास्त्र की अलग अथवा स्वतन्त्र शाखाए दिखाई देती हैं। जैसा कि ऊपर बताया भी गया है व्यष्टिगत विश्लेषण के अन्तगत एक इकाई को समग्र की तुलना म इतना सूक्ष्म मान लिया जाता है कि इसके निणयो का कुल माग, कुल पूर्ति या साम्य कीमत पर कोई भी प्रभाव नहीं होता। एक व्यक्ति की आय बचत का समाज की कुल आय के वितरण पर कोई भी प्रभाव नहीं होता हालाकि इसस उसके व्यय के क्रयशक्ति स्तर म अभिवृद्धि अवश्य होती है। दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि कुल रोजगार या बचत के स्तर म वृद्धि होने का कोई भी व्यष्टिगत प्रभाव नहीं होता।

ऊपरी तौर से स्वतन्त्र एवं असबद्ध दिखाई देने पर भी व्यष्टिगत एव समष्टिगत आर्थिक विश्लेषण वस्तुत परस्पर निर्भर हैं तथा इनम परस्पर सहारे की आवश्यकता होती है। व्यष्टिगत आर्थिक निणय समष्टिगत मूल्यों पर कितने निर्भर हैं यह इसी बात म स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी वस्तु या साधन की कीमत का निर्धारण समूची अर्थव्यवस्था म इसकी माग व पूर्ति के सतुलन पर निर्भर है। राष्ट्र की कुल आय बचत पर दी हुई कीमत पर भी एक फर्म अधिक उत्पादन बेच सकती है क्योकि राष्ट्रीय आय बचत पर यदि आय-वितरण को यथावत मान ले तो इसस प्रत्येक उपभोक्ता की आय एवं क्रय शक्ति म वृद्धि होगी। अत समष्टिगत चरो म परिवतन का प्रत्यक्ष प्रभाव व्यष्टिगत आर्थिक निणयो पर भी होता है।

परन्तु इसका यह अथ कदापि नहीं है कि केवल समष्टिगत परिवतन ही व्यष्टिगत

निर्णयों को प्रभावित करते हैं। सभी समष्टिगत परिवर्तन व्यष्टिगत स्तर तक नहीं पहुंच पाते। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर भी यदि कुछ पूंजीपति ही इस वृद्धि को हड़प लें तो व्यष्टिगत स्तर पर आय यथावत रहेगी। इसी प्रकार कुल उपभोग या मांग में वृद्धि होने पर भी यह आवश्यक नहीं है कि सभी फर्में सभी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि कर सकें क्योंकि किसी फर्म की उत्पादन लागत की गति काफी अधिक हो सकती है। इसी प्रकार एक व्यक्ति की आय या बचत या कम निवेश में वृद्धि होने का यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि समूची अर्थव्यवस्था में आय या बचत का परिमाण बढ़ गया है।

अस्तु ज्ञान की परिपूर्णता के लिए यह आवश्यक है कि हम व्यष्टिगत तथा समष्टिगत दोनों ही प्रकार के आर्थिक विश्लेषण करें। परन्तु वर्तमान संदर्भ में जहां हम केवल व्यष्टिगत अर्थशास्त्र का अध्ययन कर रहे हैं सुविधा के लिए यह मान लेना उचित होगा कि समष्टिगत आर्थिक चर (राष्ट्रीय आय, कुल बचत, रोजगार, निवेश आदि) अपरिवर्तित रहते हैं।

स्थैतिक, तुलनात्मक स्थैतिक एवं प्रावैगिक अर्थशास्त्र
(Static Comparative Static and Dynamic Economics)

भौतिकशास्त्र में स्थैतिक शब्द का अभिप्राय गतिहीनता की स्थिति से लिया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र में स्थैतिक का अर्थ है विभिन्न चरों में स्थिर गति से परिवर्तन होना। अन्य शब्दों में किसी देश में जनसंख्या, बचत, निवेश तथा राष्ट्रीय अथवा प्रति व्यक्ति आय में स्थिर गति से वृद्धि होती रहे तो इसे स्थैतिक अर्थव्यवस्था की संज्ञा दी जाएगी। प्रोफेसर हैरड के शब्दों में—

> एक स्थैतिक साम्य का अर्थ निष्क्रिय स्थिति से कदापि नहीं है परन्तु यह वह स्थिति है जिसमें प्रतिदिन तथा प्रतिवर्ष बिना किसी कमी या वृद्धि के कार्य चलता रहता है।[9]

इस प्रकार हैरड ने स्थैतिक स्थिति में सक्रियता को स्वीकार किया है तथापि इसमें संबद्ध सारे चर निर्दिष्ट दर पर ही बदलते रहते हैं। इसी के परिणामस्वरूप इसमें हमें ऊपरी तौर से गतिहीनता दिखाई देती है।

परन्तु प्रोफेसर हवाब का मत है कि एक स्थिर (stationary) अर्थव्यवस्था में ये पांच तथ्य अपरिवर्तित रहने चाहिए (i) जनसंख्या, (ii) पूंजी का स्टॉक, (iii) उत्पादन की विधियां या टेक्नोलाजी, (iv) व्यावसायिक इकाइयों के स्वरूप, तथा (v) मानवीय आवश्यकताएं। प्रोफेसर स्टिगलर ने स्थिर अर्थव्यवस्था के लिए केवल तीन ही तथ्यों—रुचि, उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन विधियों—को अपरिवर्तनीय माना है।

कुल मिलाकर यह कहना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि स्थैतिक स्थिति वह

9 R F Harrod Towards a Dynamic Economics pp 3-4

है जिसमें (i) प्रत्येक वस्तु की मांग इसकी पूर्ति के समान रहे, (ii) पूंजी का स्टॉक अपरिवर्तित रहे यानी पूंजी का मूल्य ह्रास नए निवेश के समान बना रहे, (iii) जन्म तथा मृत्यु की दर समान रहे जिसमें जनसंख्या स्थिर रहे, (iv) पूंजी, श्रम व उत्पादन के साधनों का उत्पादन-प्रक्रिया में अनुपात स्थिर रहे, (v) साधनों की मांग व पूर्ति में कोई परिवर्तन न हो जिसके कारण उत्पादन की मात्रा भी यथावत् रहती हो। (vi) राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में परिवर्तन न हो।

इस प्रकार स्थैतिक विश्लेषण के अंतर्गत वस्तुओं की मांग, पूर्ति, उत्पादन लागत एवं वस्तुओं व साधनों की कीमतों में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। प्रोफेसर जे० आर० हिक्स ने स्थैतिक विश्लेषण की व्याख्या एक नये रूप में प्रस्तुत की है। वे बताते हैं कि स्थैतिक अर्थशास्त्र वह है जिसमें तिथिकरण की आवश्यकता नहीं होती, जबकि आर्थिक सिद्धांत का वह भाग गत्यात्मक माना जाता है जिसमें प्रत्येक मात्रा के तिथिकरण की आवश्यकता होती है।

इस अर्थ में स्थैतिक विश्लेषण अर्थशास्त्र की वह शाखा है जिसमें आर्थिक क्रियाओं या घटनाओं से सबद्ध सभी मात्राएं एक ही समय-बिंदु (point of time) से सबद्ध हों अथवा सभी की अवधि वही हो। अन्य शब्दों में, स्थैतिक अर्थशास्त्र में आश्रित (dependent) एवं स्वतंत्र (independent) चर उसी अवधि से सबद्ध हैं और इस कारण उनके तिथिकरण की आवश्यकता नहीं है। निम्न उदाहरण के द्वारा स्थैतिक मॉडल की कार्यप्रणाली एवं स्थैतिक साम्य का परिचय मिलता है।

यह मानते हुए कि किसी वस्तु की मांग (D_t) व पूर्ति (S_t) के फलन रेखीय (linear) हैं, हम स्थैतिक साम्य मूल्य (P_t) को इस प्रकार ज्ञात करेंगे.

$$\left.\begin{aligned} D_t &= a - bP_t, \quad \text{तथा} \\ S_t &= \alpha + \beta P_t \end{aligned}\right\} \qquad \ldots(1\text{-}1)$$

(उक्त उदाहरण में a, b, α एवं β स्थिर मूल्य हैं।)

चूंकि साम्य-स्थिति में मांग (D_t) व पूर्ति (S_t) समान होने चाहिए ($D_t = S_t$), हम उपरोक्त समीकरणों को निम्न रूप में भी लिख सकते हैं

$$D_t = S_t \text{ या } a - bP_t = \alpha + \beta P_t \qquad \ldots(1\text{-}2)$$

$$\text{या } a - \alpha = \beta P_t + bP_t \qquad \ldots(1\text{-}3)$$

$$\left.\frac{a-\alpha}{(\beta+b)} = P_t\right\} \qquad \ldots(1\text{-}4)$$

समीकरण (1-4) यह स्पष्ट करता है कि यदि मांग व पूर्तिफलन एक ही समयावधि (t) से सबद्ध हों तो साम्य मूल्य (जहां मांग व पूर्ति समान हो) ज्ञात करने हेतु हमें केवल उक्त फलनों की स्थिर मात्राओं (a b, α एवं β) का ही ज्ञान होना पर्याप्त है। समष्टिगत मॉडल (Macro-economic Model) में स्थैतिक साम्य के

लिए निवेश तथा बचत मे संतुलन होना जरूरी है।[10] संक्षेप मे स्थैतिक साम्य व्यष्टिगत या समष्टिगत आर्थिक चरों की परस्पर क्रियाओ से उत्पन्न एक स्थिति है और यह स्थिति अपरिवर्तित बनी रहती है क्योकि इसे निर्धारित करने वाले चर भी अपरिवर्तित रहते हैं।

तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण (Comparative Static Analysis)—अब मान लीजिए स्थैतिक साम्य को निर्धारित करने वाले किसी एक चर मे एक झटके के साथ परिवर्तन कर दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर उपरोक्त माग फलन मे हम a का मूल्य बढा देते हैं। इसके फलस्वरूप माग फलन का ऊपर की ओर विवर्तन हो जाएगा और फलत साम्य मूल्य में भी वृद्धि हो जाएगी। यह तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण है जिसमे हम माग या पूर्ति फलन के विवर्तन के फलस्वरूप प्राप्त नये साम्य की पूर्व मे विद्यमान साम्य के साथ तुलना करते हैं। इसी प्रकार यदि समष्टिगत मॉडल मे निवेश का मूल्य या निवेश को निर्धारित करने वाले किसी चर का मूल्य बढ जाए तो राष्ट्रीय आय एक नयी साम्य स्थिति मे आ जाएगी।

चित्र 1.2 मे स्थैतिक एव तुलनात्मक स्थैतिक साम्य स्थितिया प्रस्तुत की गई है जिनके अनुसार हम माग व पूर्ति फलनो की यथावत् स्थिति की तुलना इनमे से किसी फलन मे हुए परिवर्तन (विवर्तन) से प्राप्त स्थिति से कर सकते हैं।
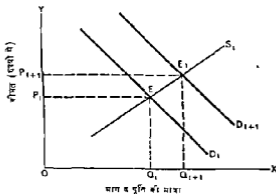
चित्र 1.2 : स्थैतिक एवं तुलनात्मक स्थैतिक साम्य स्थितियां

जैसा कि चित्र 1.2 मे बताया गया है, अवधि t में माग व पूर्ति फलन

चूकि राष्ट्रीय आय (Y) उपभोग तथा बचत (अथवा निवेश) मे ही प्रयुक्त की जाती है, हम उपरोक्त बात को निम्न रूप मे सिद्ध कर सकते हैं —

$$Y_t = C_t + S_t$$
$$Y_t = C_t + I_t$$
$$\therefore S_t = I_t$$

क्रमश. D_t व S_t थे तथा साम्य मूल्य P_t था। परतु यदि अवधि $t+1$ में a के परिवर्तन के कारण माग फलन का विवर्तन हो जाए तो साम्य मूल्य बढकर P_{t+1} हो जाएगा। इस प्रकार जहा स्थैतिक विश्लेषण मे हम P_t के निर्धारण की व्याख्या करते हैं, तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण मे यह बताने का प्रयास करते हैं कि माग या पूर्ति फलन म विवर्तन होने पर किस नयी साम्य स्थिति मे पहुंच जाते हैं।

गत्यात्मक अथवा प्रावैगिक आर्थिक विश्लेषण
(Dynamic Economic Analysis)

जैसा कि ऊपर बताया गया है, गत्यात्मक विश्लेषण मे हम तिथिकरण को प्राथमिकता देते हैं तथा यह बताने का प्रयत्न करते हैं कि विभिन्न आर्थिक चर भिन्न-भिन्न अवधियो से सबद्ध होने पर भी परस्पर प्रभावित करते हैं।

प्रोफ़ेसर रेग्नर फ्रिश की मान्यता है कि गत्यात्मक विश्लेषण के अतर्गत यह बताने का प्रयास किया जाता है कि विभिन्न अवधियो के चर एक महत्त्वपूर्ण तरीके से परस्पर सबद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए, माग फलन मे विवर्तन होने पर (चित्र 1.2) साम्य स्थिति E स बदल कर E_1 हो जाती है। यदि E की E_1 से तुलना ही आर्थिक विश्लेषण का प्रयोजन हो तो यह तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण होगा। परन्तु फ्रिश की ऐसी मान्यता है कि साम्य स्थिति तत्काल E से E_1 मे नहीं जाती। वे इस परिवर्तन की प्रक्रिया, अथवा अवधि-मार्ग (time-path) के विश्लेषण पर जोर देते हैं, और इसी को गत्यात्मक विश्लेषण की सज्ञा दी जाती है।

वस्तुत प्रत्येक अवधि मे किसी चर मे होने वाला परिवर्तन आगे की अवधि मे किसी अन्य चर को प्रभावित करता है। यही गत्यात्मक विश्लेषण मे निहित परिवर्तन की प्रक्रिया मे निहित समय की स्पष्ट मान्यता है। अस्तु, गत्यात्मक विश्लेषण मे हम E से E_1 तक के अवधि-मार्ग का विश्लेषण करते हैं। यह भी सभव है, जैसा कि हिक्स मानते हैं, कि गत्यात्मकता एव चरो के परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी तीव्र हो कि हम कभी भी साम्य स्थिति को प्राप्त न कर पाए।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि जहा स्थैतिक विश्लेषण मे सभी चर एक ही समयावधि मे सबद्ध रहते हैं, गत्यात्मक आर्थिक विश्लेषण मे विभिन्न चरो के मध्य अतरालयुक्त (legged) सबध होता है। उदाहरण के तौर पर हम यह मान सकते हैं कि उपभोक्ताओ का वर्तमान व्यय उन्ह इससे पूर्व की अवधि म प्राप्त आय पर निर्भर करता है यानी $[C_t = f(Y_{t-1})]$। इसी बात को इस रूप म भी व्यक्त किया जा सकता है कि उपभोक्ताओं को वर्तमान म प्राप्त आय उनकी अगली अवधि के उपभोग व्यय का निर्धारण करेगी $[C_{t+1} = f(Y_t)]$। अस्तु आय एव उपभोग मे अतरालयुक्त सबध माना जा सकता है।

यही बात पूर्ति के लिए कही जा सकती है। बहुधा कृषि मे उत्पादक वर्तमान मूल्यो को देखकर भूमि को किसी निर्दिष्ट फसल मे प्रयुक्त करते हैं। इससे वर्तमान मूल्य तथा आगामी अवधि मे प्राप्त होने वाली पूर्ति का (अतरालयुक्त) सबध ज्ञात

होता है। इसे निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है :

$$S_t = f(P_{t-1})$$
$$S_{t+1} = f(P_t)$$
$$S_{t+2} = f(P_{t+1})$$
$$S_{t+3} = f(P_{t+2})$$

यही बात समष्टिगत अर्थशास्त्र में सरकारी व्यय अथवा निवेश में वृद्धि के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में अगली अवधियों में होने वाले परिवर्तनों के रूप में भी व्यक्त की जा सकती है। संभव है कि अंतत: राष्ट्रीय आय का एक नया स्तर प्राप्त हो जाए। इसके विपरीत यह भी संभव है कि एक बार निवेश में परिवर्तन होने पर राष्ट्रीय आय की परिवर्तन प्रक्रिया अविरल रूप से चलती रहे तथा स्वयं भविष्य में साम्य स्थिति की प्राप्ति ही न हो सके। जैसा कि ऊपर बताया गया है, यदि हम एक साम्य स्थिति से दूसरी साम्य स्थिति के अवधि-मार्ग (time-path) एवं परिवर्तन-प्रक्रिया का विश्लेषण करें तो यह गत्यात्मक विश्लेषण कहलाएगा।

परंतु यदि विभिन्न चरों में अंतरालयुक्त संबंध हो तथा एक चर में परिवर्तन होने पर नई साम्य स्थिति की कभी प्राप्ति ही न हो तो इसे गत्यात्मक मकड़जाल (Dynamic cob-web) की संज्ञा दी जाती है।
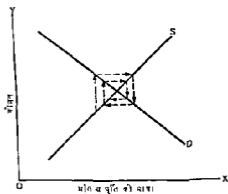
चित्र 1.3 गत्यात्मक मकड़जाल

चित्र 1.3 में यह माना गया है कि पूर्ति व कीमत में अंतरालयुक्त संबंध है। किसी कारण से (जैसे फसलों की बीमारी) पूर्ति एक अवधि में कम हो जाती है। इससे अगली अवधि में कीमत बढ़ेगी परंतु कृषक इस नयी कीमत के अनुरूप पूर्ति को उससे अगली अवधि में ही बढ़ा पाएंगे, परंतु उस अवधि में ऊंची कीमत के कारण मांग कम होने से पूर्ति का आधिक्य होगा, फलत: कीमत कम हो जाएगी। परंतु घटी हुई कीमत के अनुरूप पूर्ति का समायोजन उससे अगली अवधि में ही संभव होगा। परंतु घटी हुई कीमत के कारण उस अवधि तक मांग का प्रसार हो जाने से मांग का

पूर्ति में आधिक्य हो जाएगा। इस प्रकार अंतरालयुक्त संबंधों के कारण पूर्ति व मांग में संतुलन नहीं हो पाता एवं साम्य स्थिति प्राप्त नहीं हो पाती।[11]

दोनों में कौन-सा विश्लेषण उपयुक्त है ? : हमने ऊपर स्थैतिक एवं गत्यात्मक आर्थिक विश्लेषण का विस्तृत परिचय प्राप्त किया। वस्तुतः यह कहना अत्यंत कठिन है कि दोनों में से कौन-सा विश्लेषण अधिक उपयुक्त है। आर्थिक जगत अनेक जटिलताओं में उलझा हुआ है तथा तिथिकरण के बाद ये जटिलताएं और भी बढ़ जाती हैं। इसीलिए जहां संभव हो वहां एक निर्दिष्ट अवधि में साम्य स्थिति का विश्लेषण करना उपयुक्त होगा। स्थैतिक विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तुएं व उत्पादन के साधन पूर्ण रूप से गतिशील हैं तथा दोनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता होने के कारण पूर्ति एवं मांग सदैव ही एक उसी अवधि में समान होती हैं। एक आदर्श स्थिति के रूप में इसीलिए स्थैतिक विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

परंतु वास्तविक जगत का विश्लेषण करने हेतु स्थैतिक विश्लेषण की मान्यताओं का परित्याग करना होगा। वस्तुतः विभिन्न आर्थिक चरों के मध्य अंतरालयुक्त संबंध होने के कारण व्यावहारिक जगत में मांग व पूर्ति के मध्य साम्य बहुधा स्थापित हो ही नहीं पाता। अन्य शब्दों में, विभिन्न आर्थिक चरों पर समय के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु गत्यात्मक विश्लेषण का ही आश्रय लेना चाहिए। हां, यह ठीक है कि यदि आर्थिक चरों में परिवर्तन की गति काफी तीव्र हो तो गत्यात्मक विश्लेषण अत्यंत कठिन हो जाता है। वैसे भी, सामान्य परिस्थितियों में भी गत्यात्मक विश्लेषण के लिए विशिष्ट प्रकार की (उच्चतर) विधियों का ज्ञान होना चाहिए। इसीलिए गत्यात्मक विश्लेषण अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया है।

यथार्थमूलक एवं आदर्शमूलक अर्थशास्त्र
(Positive and Normative Economics)

एडम स्मिथ से लेकर जे० बी० से एवं जॉन स्टुअर्ट मिल तक सभी अर्थशास्त्रियों का ऐसा मत था कि अर्थशास्त्र न केवल किसी देश के धन की प्रकृति एवं उत्पत्ति की जांच करता है अपितु उन विधियों पर भी प्रकाश डालता है जिनके द्वारा धन के परिमाण में वृद्धि की जा सकती है। परंतु जैसा कि अध्याय के प्रारंभ में बताया गया था, संस्थापनावादी अर्थशास्त्र ने धन के उपयोग की उपेक्षा कर दी थी। मार्शल ने धन के उपयोग द्वारा भौतिक कल्याण की प्राप्ति को धन के सृजन से भी अधिक महत्वपूर्ण माना। परंतु आधुनिक युग में पीगू, परेटो, हिक्स, केल्डोर आदि ने उन विधियों की विस्तार से चर्चा की है जिनके द्वारा कल्याण में वृद्धि करना संभव है।

इस दृष्टि से अर्थशास्त्र को यथार्थमूलक विश्लेषण (positive economics) एवं आदर्शमूलक विश्लेषण (normative economics) के रूप में विभक्त करना संभव है। यथार्थमूलक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र यथास्थिति का वर्णन करता है तथा

11. P. A. Samuelson, op. cit., pp. 406-7.

इससे सबद्ध चरों के संबंधों का विश्लेषण करता है। उदाहरण के लिए, साम्य कीमत अथवा राष्ट्रीय आय का निर्धारण, अथवा किसी भी विद्यमान स्थिति या वर्णन इस बात का द्योतक है कि आर्थिक विश्लेषण यथार्थमूलक है। इस दृष्टि से अर्थशास्त्री का दायित्व केवल वर्तमान स्थिति का विश्लेषण एव आर्थिक चरों के पारस्परिक सबधों की व्याख्या करने तक सीमित है। उसे यह नहीं बताना है कि वर्तमान स्थिति में क्या दोष हैं और इसके स्थान पर कौन-सी व्यवस्था लाई जानी चाहिए। इसीलिए उसे यह बताने की भी आवश्यकता नहीं है कि वैकल्पिक व्यवस्था को किस प्रकार स्थापित किया जाना चाहिए। जैसा कि प्रोफेसर रॉबिंस ने बताया है, अर्थशास्त्र का भौतिक कल्याण से कोई सबध नहीं है।

परतु मार्शल, पीगू तथा आधुनिक विद्वानों में कल्डोर हिक्स आदि ने मानव कल्याण को अधिक महत्त्व दिया है तथा वस्तुस्थिति का चित्रण एव आर्थिक चरों के पारस्परिक संबंधों की व्याख्या करने के साथ-साथ यह भी बताने का प्रयास किया है कि वैकल्पिक व्यवस्था क्या होनी चाहिए एव उसे किन विधियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार से अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र को मूलत. एक आदर्शमूलक विज्ञान (normative science) की सज्ञा देते हैं। मार्शल जब मशीनों के लाभ व हानियों की चर्चा करते हैं, तथा पीगू जब रोजगार में वृद्धि हेतु मजदूरी की दर में कटौती का सुझाव देते हैं, अथवा जब हिक्स व कैल्डोर क्षतिपूर्ति के सिद्धात की व्याख्या करते हैं तो पृष्ठभूमि में उनकी यही मान्यता निहित है कि अर्थशास्त्र एक आदर्शमूलक विज्ञान है। फैलनर के शब्दों में, "आदर्शमूलक अर्थशास्त्र की मुख्य विशेषता यह है कि यह ऐसे सिद्धातों का निर्माण करता है जिनका आधार नैतिकता है; साथ ही यह उन सिद्धातों की व्याख्या भी करता है।"[12]

परतु वस्तुत. आर्थिक विश्लेषण को आदर्शमूलक बनाते समय अर्थशास्त्री के मूल्य निर्णय (value judgments) अथवा व्यक्तिपरक दृष्टिकोण (subjectivity) भी उभरकर सामने आते हैं। एक साम्यवादी या वामपंथी विचार वाला अर्थशास्त्री आर्थिक विश्लेषण के बाद वैकल्पिक व्यवस्था का सुझाव देते समय सोवियत रूस, चीन या पोलैंड का मॉडल सामने रखेगा। आदर्शमूलक अर्थशास्त्र का सबसे बड़ा दोष यही है कि इसमें बहुधा अर्थशास्त्री का व्यक्तिपरक दृष्टिकोण प्रतिबिंबित होता है।

यही कारण है कि मिल्टन फ्रीडमैन जैसे अर्थशास्त्री ऐसा मानते हैं कि यथार्थमूलक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र का अंतिम लक्ष्य ऐसे 'सिद्धात' या 'परिकल्पना' का प्रतिपादन करना है जिसके आधार पर अब तक अनुभव नहीं किए गए घटना-चक्रों के विषय में महत्त्वपूर्ण एवं अर्थपूर्ण भविष्यवाणियां की जा सकें। वे यह भी कहते हैं कि किसी भी सिद्धात की उपादेयता का मापदड इसकी पूर्वानुमान करने की क्षमता ही है।[13]

12. William Fellner, Modern Economic Analysis (1960) p. 26.
13. M. Friedman, *The Methodology of Positive Economics*, in Essays in Positive Economics.

वस्तुतः अर्थशास्त्र को केवल यथार्थमूलक अथवा केवल आदर्शमूलक विज्ञान मान लेना उचित नहीं है। अर्थशास्त्र की प्रकृति के बारे मे मतभेद का कारण यह है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के विचारों में जीवन की सार्थकता के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। बहुधा यथार्थमूलक वक्तव्यो के विषय मे कोई मतभेद नहीं होता। उदाहरण के तौर पर यह कथन कि "अणुओं का विघटन करना असभव है", एक निर्विवाद यथार्थ-मूलक कथन है। दूसरी ओर इस यथार्थमूलक कथन को कि "सरकारी घाटे के वित्त-प्रबंध के परिणामस्वरूप मूल्यो मे वृद्धि होगी परतु साथ ही बेरोजगारी मे कमी होगी", तथ्यों की कसौटी पर देखा जा सकता है। परतु आदर्शमूलक वक्तव्य बहुधा विवादास्पद होते हैं। इस प्रकार के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं (i) चूंकि अणुओ का विघटन नही हो सकता, अत वैज्ञानिको को इन्हे तोड़ना नहीं चाहिए, (ii) आर्थिक विकास की नीति बनाते समय स्फीति की ओर ध्यान न देकर बेरोजगारी की समस्या को प्राथमिकता देनी चाहिए, अथवा (iii) चूकि निजी क्षेत्र उद्योगो का प्रबध दक्षतापूर्वक नहीं कर पा रहा है, सभी निजी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर लिया जाना चाहिए। ये सभी वक्तव्य मूल्य निर्णय पर आधारित हैं अत इनमे वस्तुपरकता (objectivity) का अभाव है, और इसी मे ये आदर्शमूलक वक्तव्य विवादास्पद बन जाते हैं।

इस विवाद से बचने के लिए तथा किसी आदर्शमूलक विचार को वस्तुपरक बनाने हेतु निम्न बातो का ध्यान रखना उचित होगा—

(i) आदर्शमूलक विचार से सबद्ध विचार तर्क की कसौटी पर खरे उतरते हो तथा अन्य स्वीकृत विचारो के प्रतिकूल न हो,
(ii) नया ज्ञान नये अनुभव एव तथ्यों पर आधारित हो,
(iii) ये तर्क समस्याओ के समाधान मे सक्षम हो,
(iv) ये तर्क सुस्पष्ट एव यथासभव सरल हो ताकि अन्य व्यक्ति इन्हें स्वीकार कर सकें।

यह ठीक है कि यथार्थमूलक वक्तव्यों का परीक्षण भी वास्तविक जगत के अनुभवो के आधार पर करना होता है। ये तथ्य ही यथार्थमूलक वक्तव्यो की अवास्तविकता को प्रमाणित कर सकते हैं। परतु आदर्शमूलक प्रश्नो का समाधान केवल अनुभवमूलक तथ्यो के आधार पर ही नही देखना चाहिए। इसके लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है तथा समस्या के सदर्भ एव समाधान के औचित्य पर गभीरतापूर्वक विचार की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि जो अर्थशास्त्री देश के आर्थिक नियोजन एव नीतिनिर्धारण मे सहयोग देते हैं (आदर्शमूलक दृष्टिकोण रखते हैं) उन्हें सभी तथ्यो का निरपक्ष भाव मे एव वस्तुपरक रूप म पहले विश्लेपण करना होता है।

2
आर्थिक प्रणाली के कार्य
(FUNCTIONS OF AN ECONOMIC SYSTEM)

पिछले अध्याय में हम आर्थिक विश्लेषण की प्रकृति एवं प्रयोजनों का अध्ययन कर चुके हैं। जैसा कि उस संदर्भ में बताया गया था, आर्थिक सिद्धांत अथवा विश्लेषण किसी अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली की व्याख्या करता है। प्रस्तुत अध्याय में हम इसीलिए सर्वप्रथम यह देखेंगे कि आर्थिक प्रणाली का स्वरूप किस प्रकार का है। इस स्वरूप से संबद्ध दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं प्रथम, यह अर्थव्यवस्था की प्रकृति से हमें अवगत कराता है और द्वितीय, इससे हमें अर्थव्यवस्था या आर्थिक प्रणाली के कार्यों की जानकारी प्राप्त होती है। प्रथम के अंतर्गत हम आर्थिक प्रणाली की क्रियाओं की सूची प्राप्त होती है, जबकि द्वितीय के अंतर्गत हम यह देखते हैं कि इन क्रियाओं में किस प्रकार का संबंध है।

आर्थिक क्रियाओं का संपादन आर्थिक अभिकर्ताओं द्वारा किया जाता है। ये आर्थिक क्रियाएं मोटे तौर पर तीन परस्पर संबद्ध श्रेणियों में विभाजित की जाती हैं: (अ) भूमि, श्रम, पूंजी संगठन तथा साहस जैसे उत्पादक आदाओं (inputs) की पूर्ति करना। विभिन्न आर्थिक अभिकर्ता (एजेन्ट) इन आदाओं की पूर्ति करके आय अर्जित करते हैं जिसे वे उपभोग वस्तुओं की खरीद हेतु प्रयुक्त करते हैं। (ब) उत्पादक आदाओं (*जैसे भूमि, श्रम, पूंजी, कच्चा माल, मशीनें*) के उपयोग द्वारा वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करके इन्हें उपभोक्ताओं के लिए प्रस्तुत करना, तथा (स) अ-गोचर तथा विशिष्ट सेवाएं अर्पित करके लोगों की (अथवा सरकार की) आवश्यकताओं को पूरा करना। इनमें डॉक्टरों, शिक्षकों, पुलिस, न्यायाधीशों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा अर्पित सेवाएं सम्मिलित हैं।

सामान्य तौर पर आर्थिक क्रियाओं की प्रकृति एवं क्षेत्र का निर्धारण आर्थिक विकास के स्तर द्वारा होता है। संयुक्त राज्य अमरीका या जर्मनी जैसे विकसित देश में भारत या पूर्वी अफ्रीका की तुलना में अधिक विशिष्टीकृत आर्थिक क्रियाएं संपादित की जाएंगी तथा अधिक श्रम विभाजन होगा। एक परंपरागत आर्थिक प्रणाली में आर्थिक अभिकर्ताओं के पारस्परिक संबंध अत्यंत सीमित होंगे, अलबत्ता किन्हीं-किन्हीं परिस्थितियों में वहां श्रम-विभाजन भी दिखाई दे सकता है।

आर्थिक क्रियाओं की प्रकृति एवं क्षेत्र पर विदेशी व्यापार एवं मुद्रीकरण (monetization) की सीमा का भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार सरकारी हस्तक्षेप

की प्रकृति एव सीमाए भी आर्थिक क्रियाओ को प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि विभिन्न आर्थिक अभिकर्ताओं के मध्य आय के प्रवाह का विश्लेषण करते समय हम सुविधा के लिए विदेशी व्यापार एव सरकारी हस्तक्षेप की उपेक्षा कर देते हैं। नीचे एक सरलीकृत अर्थव्यवस्था मे आय के प्रवाह का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे सरकारी हस्तक्षेप एव विदेशी व्यापार का समावेश होने पर क्या परिवर्तन होंगे, इसका विवरण आगे दिया जाएगा।

2.1 एक सरलीकृत अर्थव्यवस्था मे आय का वर्तुल प्रवाह
(Circular Flow of Income in a Simplified Economy)

विभिन्न आर्थिक अभिकर्ताओ के मध्य आय प्रवाह की प्रक्रिया को समझने हेतु हम समूचे समाज को दो बड़े समूहों के रूप मे विभक्त करते हैं प्रथम, व्यावसायिक फर्में एव द्वितीय, परिवार। हम यह मान्यता लेते हैं कि परिवारों द्वारा दो महत्त्वपूर्ण कार्य सपादित किए जाते हैं। प्रथम तो यह कि वे व्यावसायिक फर्मों को उत्पादन के साधन जैसे श्रम, पूजी, भूमि, सगठन या कच्चा माल प्रदान करते हैं। इसके साथ ही उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि वे व्यावसायिक फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुए खरीद कर इन वस्तुओ का उपभोग करते हैं। इसके विपरीत व्यावसायिक फर्में परिवारो से उत्पादन के साधन प्राप्त करके उन्हे उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त करती हैं तथा फिर उत्पादित वस्तुओ को परिवारो को बेचती है ताकि वे अपनी आवश्यकताओ को पूरा कर सकें।

चित्र 2.1 परिवारो तथा व्यावसायिक फर्मों के मध्य इन्हीं सबधों को प्रस्तुत
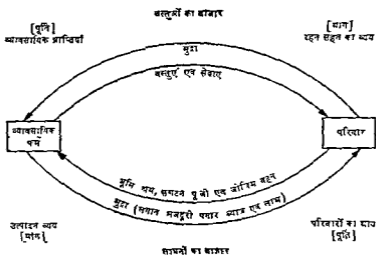
चित्र 2.1 एक सरलीकृत अर्थव्यवस्था मे आय का वर्तुल प्रवाह

करता है। सुविधा के लिए हम अर्थव्यवस्था को दो बाजारों—यानी वस्तुओ व साधनो के बाजारो के रूप मे विभाजित कर लेते हैं। परिवार उत्पादन के साधनो की पूर्ति करते है जबकि उनकी माग व्यावसायिक फर्मों द्वारा की जाती है। दूसरी ओर व्यावसायिक फर्में वस्तुओ की पूर्ति करती हैं जबकि इनकी माग उपभोग हेतु परिवारो द्वारा की जाती हैं।

अब आय के वर्तुल प्रवाह (circular flow) के चित्र को पुन देखिए। विभिन्न परिवारो द्वारा व्यावसायिक फर्मों को उत्पादन के साधनो (भूमि, श्रम, पूजी, सगठन आदि) की पूर्ति की जाती है जिसके बदले उन्हे लगान, मजदूरी, ब्याज व मुनाफे के रूप मे मुद्रा प्राप्त होती है। यह वस्तुत साधनो के बाजारो मे सपादित विनिमय प्रक्रिया है। जैसा कि चित्र 2 1 मे स्पष्ट है परिवारो की साधनो की पूर्ति के बदले मे प्राप्त आय वस्तुत व्यावसायिक फर्मों की उत्पादन लागतो का योग है। अब चित्र के ऊपरी अर्द्धवृत्त को देखिए। परिवारो की उपभोग के लिए जिन वस्तुओ तथा सेवाओ की आवश्यकता (माग) है, उनकी पूर्ति व्यावसायिक फर्मों द्वारा की जाती है। परिवार जो कुछ मुद्रा साधनो की पूर्ति करके फर्मों से प्राप्त करते हैं उसे वे वस्तुओ की खरीद के बदले फर्मों को लौटा देते हैं। अस्तु, एक सरलीकृत अर्थव्यवस्था में एक ओर साधनो की माग उनकी कुल पूर्ति के समान होती है, वहाँ दूसरी ओर वस्तुओ की माग इनकी कुल पूर्ति के समान होती है। दोनो बाजारो मे माग व पूर्ति के समान होने के कारण न तो कोई साधन बेकार रहते हैं और न ही वस्तुए बिना बिकी हुई रह पाती हैं। सक्षेप मे, इस सरलीकृत अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार की स्थिति तो रहती ही है, वस्तुओ की पूर्ति सदैव माग के समान रहने के कारण मूल्य-स्तर भी स्थिर रहता है।

अब मौद्रिक प्रवाह की ओर दृष्टि डालिए। साधनो का पूर्ण रोजगार होने के कारण उनकी कीमतें भी स्थिर रहती हैं। वस्तुओ व साधनो की ये (स्थिर) कीमतें ही वस्तुओ व साधनो के प्रवाह एव मौद्रिक भुगतानो के बीच एक सबध बनाए रखती हैं। पहले वस्तुओ के बाजारो को लीजिए। यदि कुल मौद्रिक भुगतान (M), प्रत्येक वस्तु की कीमत (P_i) तथा इसकी सतुलन मात्रा (Q_i) ज्ञात हो तो वस्तु के बाजार की साम्य स्थिति इस प्रकार व्यक्त की जा सकेगी—

$$R \equiv M \equiv \sum_{i=1}^{n} P_i Q_i \quad (i=1,2,3, \quad ,n)$$

उपरोक्त समीकरण मे R व्यावसायिक फर्मों की कुल प्राप्ति है जिसे M यानी मौद्रिक प्राप्तियो के रूप मे व्यक्त किया जाता है। P_iQ_i प्रत्येक वस्तु पर व्यय की गई राशि है जो वस्तुत फर्मों के लिए व्यावसायिक प्राप्ति ही है।

चित्र 2 1 के निचले अर्द्धवृत्त मे परिवारो को साधनो की पूर्ति द्वारा प्राप्त पुरस्कार (Y) अथवा फर्मों द्वारा व्यय की गई उत्पादन लागतो (C) का विवरण है। यदि प्रत्येक साधन की मात्रा (X_j) एव इसकी कीमत (W_j) ज्ञात हो तो हम साधनो के बाजारो मे मौद्रिक प्रवाह को अग्रलिखित रूप मे व्यक्त करेंगे।

$$Y \equiv M \equiv C \equiv \sum_{j=1}^{k} W_j X_j \quad (j=1, 2, 3, \ldots k)$$

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि व्यावसायिक फर्मों की कुल उत्पादन लागत (C) परिवारों की कुल आय (Y) के समान है। यहा W_j X_j प्रत्येक साधन को प्राप्त पुरस्कार है। परिवारों की समस्त आय वस्तुओं की खरीद पर व्यय की जाती है और वह व्यावसायिक प्राप्तियों (R) का रूप ले लेती है।

इस सरलीकृत मॉडल में जहां साधनों तथा वस्तुओं की भौतिक मात्राओं के मध्य सतुलन रहता है वहीं मौद्रिक प्रवाह मे भी संतुलन बना रहता है। सरल शब्दों मे प्राप्त आय म से कोई रिसाव (leakage) नहीं होता अर्थात्, व्यावसायिक फर्मे अथवा परिवारों द्वारा प्राप्त सभी मुद्रा व्यय कर दी जाती है और वे कोई बचत नहीं करते। यदि कोई बचत करते है भी तो ऐसा मान लिया जाता है कि वह समूची बचत निवेश मे प्रयुक्त कर दी जाती है।

वर्तुल प्रवाह मे विदेशी व्यापार, बचत, निवेश एव सरकारी क्षेत्र का समावेश
(Inclusion of Foreign Trade, Savings, Investment and Government Sector in the Circular Flow of Income)

यदि सरलीकृत वर्तुल प्रवाह के उपरोक्त मॉडल मे विदेशी व्यापार (आयात व निर्यात), बचत तथा निवेश एवं सरकारी व्यय एव कराधान को सम्मिलित कर लिया जाए तो सामान्य तौर पर साधनो, वस्तुओ व आय के प्रवाह मे व्यवधान उत्पन्न होते हैं तथा समूचे वृत्त के आकार में परिवर्तन हो सकता है। यहा निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं (1) बचत, आयात एव सरकार द्वारा करारोपण से आय के प्रवाह मे रिसाव (leakage) होता है, तथा (2) निवेश, निर्यात एव सरकार द्वारा किए जाने वाले व्यय से आय का प्रवाह बढता है। व्यवहार में बचत में निवेश अधिक हो सकता है क्योंकि विदेशी पूजी का देश मे आगमन सभव है। इसी प्रकार आयात (I_m) व निर्यात (E_x) मे तथा सरकारी व्यय (G) एव करो से प्राप्त राशि (T) म भी अतर हो सकता है। इनस उत्पन्न जटिलताओ स बचने के लिए हम यह मान लेते हैं कि (i) परिवारो व फर्मों की बचत उनके द्वारा किए गए निवेश के समान होती है (S=I), (ii) देश की व्यापार बाकी सतुलित रहती है ($I_m = E_x$) तथा (iii) सरकार का बजट सतुलित रहता है (G=T)।

उपरोक्त विवरण के प्रकाश म अब हम आय के वर्तुल प्रवाह को एक नये संदर्भ मे देखना चाहेंगे। चित्र 2 2 इसको प्रदर्शित करता है।
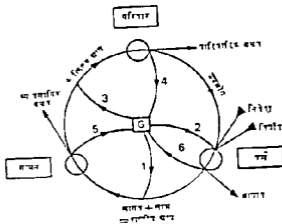
कुंजी : 1 सरकार द्वारा परिवारों से खरीदे गए साधन
2 सरकार द्वारा व्यावसायिक फर्मों से खरीदी गई वस्तुएं
3 सरकारी अंतरण भुगतान
4 वैयक्तिक कर
5 लाभ पर शोधित कर
6 व्यय पर शोधित कर

चित्र 2.2 राजकीय खरीद, करों, अंतरण भुगतानों, बचत, निवेश एवं विदेशी व्यापार का समावेश करने पर चतुर्मुख प्रवाह

चित्र 2.2 में कुल वृत्त में प्रवाह की मदें 1, 2 तथा 3 के द्वारा सरकार कुल व्यय में वृद्धि करती है परन्तु प्रवाह की मद संख्या 4, 5 एवं 6 के माध्यम से सरकार पारिवारिक आय एवं व्यावसायिक लाभों का एक अंश करों के रूप में वसूल कर लेती है। कुल मिलाकर सरकार की नीतियां वस्तुओं एवं उत्पादन के साधनों के बाजारों को प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार पारिवारिक बचतों से कुल प्रवाह में कमी होती है जबकि निवेश के कारण इसमें वृद्धि होती है। अन्त में, निर्यात के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है जबकि आयात इसमें कमी लाते हैं।[1] परन्तु जैसाकि ऊपर बताया गया है, आय के कुल वृत्त में से होने वाला रिसाव (Im+S+T) इसमें होने वाली वृद्धि (E_x +I+G) के समान होने के कारण वृत्त का कुल आकार चित्र 2.1 के अनुरूप ही रहता है।

परन्तु जैसा कि ऊपर बताया गया था, यह एक अनहोनी स्थिति है एवं व्यवहार में कुल रिसाव बहुधा कुल वृद्धियों के समान नहीं होते। इसके बावजूद सरलीकृत मॉडल

1. Miles Flemming, Introduction to Economic Analysis, London, George Allen & Unwin Ltd (1969) p 49

के उपरोक्त उदाहरण से हमें यह पता चलता है कि सरकारी नीतियों, बचत, निवेश तथा विदेशी व्यापार का आय के वर्तुल प्रवाह पर किस प्रकार का प्रभाव हो सकता है।

आय के वर्तुल प्रवाह का अध्ययन करने के पश्चात् हम आर्थिक प्रणाली के द्वितीय महत्त्वपूर्ण पक्ष—यानी आर्थिक प्रणाली के प्रमुख कार्यों की व्याख्या—की ओर ध्यान देंगे। यहां यह बताना उपयुक्त होगा कि ये आर्थिक कार्य प्रत्येक आर्थिक प्रणाली में सम्पादित किए जाते हैं, चाहे उसकी राजनीतिक व्यवस्था कैसी भी क्यों न हो। इसी प्रकार चाहे अर्थव्यवस्था विकसित हो या विकासशील, किसी न किसी रूप में ये कार्य वहां अवश्य सम्पादित किए जाते हैं।

2.2 आर्थिक प्रणाली के कार्य
(Functions of an Economic System)

किसी समाज की आर्थिक क्रिया को सामान्य तौर पर अनेक आधारभूत कार्यों में विभक्त किया जा सकता है। वस्तुतः ये कार्य परस्पर सम्बद्ध हैं, फिर भी किसी अर्थव्यवस्था के वर्णनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण में इनका अध्ययन काफी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। साथ ही इन कार्यों के अध्ययन से हम अर्थव्यवस्था की संरचना एवं कार्य-प्रणाली का ज्ञान होता है। फ्रैंक नाइट अर्थव्यवस्था के कार्यों को पांच श्रेणियों में विभाजित करते हैं (i) यह निर्णय करना कि किन वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन किया जाए, (ii) यह निर्णय करना कि उत्पादन किस प्रकार किया जाए, (iii) समाज के सदस्यों के मध्य कुल उत्पाद का वितरण किस प्रकार किया जाए, (iv) अल्पकाल में उपभोग व उत्पादन के मध्य समायोजन किस प्रकार किया जाए, तथा (v) सामाजिक ढांचे में किस प्रकार सुधार किया जाए या इन्हें किस प्रकार बनाए रखा जाए, अथवा समाज की आर्थिक प्रगति किस प्रकार की जाए, हम अब इन कार्यों का क्रमानुसार अध्ययन करेंगे।[2]

1 यह निर्धारित करना कि क्या उत्पादन किया जाए (What to Produce)

यह मानते हुए कि देश को उपलब्ध साधनों की मात्रा निर्दिष्ट एवं ज्ञात है, अर्थव्यवस्था का प्रथम कार्य यह निर्धारित करना है कि किन-किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए। वस्तुतः प्रत्येक वस्तु के आगत-निर्गत अनुपात (input-out coefficient) दिए होने पर अर्थव्यवस्था को यह निर्धारित करना होता है कि साधनों का आवंटन किस प्रकार किया जाए। चूंकि आर्थिक क्रियाएं समाजोन्मुख होती हैं, साधनों का आवंटन एवं वस्तुओं का चुनाव भी वस्तुतः एक सामाजिक निर्णय ही है।

चूंकि अर्थव्यवस्था को उपलब्ध साधन सीमित होते हैं, अतः एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाने का निर्णय लेने पर, हमें दूसरी वस्तु या वस्तुओं के लिए प्रयुक्त साधनों

2. Frank H. Knight : "Social Economic Organization" in Brett W and Hochman H. (ed.) Readings in Micro-economics, New York, Holt Rinehart and Winston (1968).

में कमी करनी पड़ेगी। उदाहरण के लिए, यदि भारत अणुबम बनाना चाहे या टैंकों का उत्पादन बढ़ाना चाहे तो यह तभी संभव होगा जब औद्योगिक या कृषि क्षेत्र के लिए इस्पात की उपलब्धि में कमी की जाए, या फिर सिंचाई परियोजनाओं के बजट में कटौती की जाए। अन्य शब्दों में, साधन सीमित होने पर प्रतिरक्षा की सामग्री का अधिक उत्पादन तभी संभव है जब अन्य प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में कमी हो।

एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए यह दो बातों पर निर्भर करेगा—

(i) उत्पादन साधनों के लिए आगत निर्गत अनुपात, जो प्रत्येक वस्तु की उत्पादन-संभाव्यता को व्यक्त करेंगे, तथा

(ii) विभिन्न वस्तुओं के लिए उपभोक्ताओं की रुचि एवं पसंद। यह कहना भी उपयुक्त होगा कि आगत निर्गत अनुपातों के आधार पर प्रत्येक वस्तु की सापेक्ष लागत (यानी अन्य सभी वस्तुओं के रूप में X की एक इकाई की लागत) ज्ञात की जा सकती है, जबकि उपभोक्ताओं की रुचियों एवं अधिमानों द्वारा विभिन्न वस्तुओं के प्रति उनकी माँग की व्यग्रता एवं उन वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण होगा।

सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि अर्थव्यवस्था को दो वस्तुओं के मध्य ही चुनाव करना है। या तो अर्थव्यवस्था को समस्त उपलब्ध साधनों को X के उत्पादन में प्रयुक्त करना है, अथवा Y के उत्पादन में, अथवा इन दोनों का मिला-जुला उत्पादन करना है। इन दोनों वस्तुओं की उत्पादन संभावना सीमा चित्र 2.3 में PP' वक्र के रूप में प्रस्तुत की गई है। X तथा Y के मध्य रूपान्तरण की दर PP' वक्र के ढलाव के रूप में व्यक्त की जा सकती है, तथा यह बताती है कि X के उत्पादन में निर्दिष्ट वृद्धि हेतु Y की कितनी इकाइयों का परित्याग करना होगा। अध्याय 11 में हम उत्पादन संभावना वक्र के विषय में और विस्तार से बताएंगे। यहाँ इतना बता देना पर्याप्त होगा कि उत्पादन संभावना वक्र का ढलाव X की एक अतिरिक्त इकाई के बदले Y की परित्यक्त इकाइयों की मात्रा अथवा X एवं Y की सीमांत उत्पादन लागतों के अनुपात के समान है। इस दर को उत्पाद रूपान्तरण की सीमांत दर (Marginal Rate of Product Transformation) कहा जाता है। चूंकि अर्थव्यवस्था के साधन सीमित हैं तथा X व Y का उत्पादन वर्द्धमान सीमांत लागतों के अंतर्गत किया जा रहा है, इस दर में वृद्धि होने के कारण उत्पादन संभावना वक्र का ढलाव बढ़ता जाता है। अस्तु, उत्पाद रूपान्तरण की सीमांत दर को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{\partial C}{\partial X} \Big/ \frac{\partial C}{\partial Y} = \frac{-dY}{dX}$$
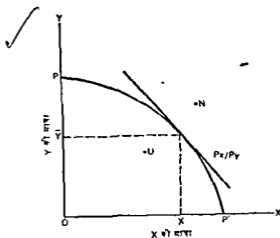
चित्र 2.3 अर्थव्यवस्था मे उत्पादन सरचना का निर्धारण

चढती हुई रूपातरण की सीमात दर का यह भी अर्थ है कि X की अतिरिक्त इकाई के लिए उत्तरोत्तर अधिक Y का परित्याग करना होगा।

चित्र 2 3 मे बताया गया है कि उपलब्ध साधनो से अर्थव्यवस्था X की अधिकतम OP' इकाइयो या Y की OP इकाइयो का उत्पाद कर सकती है। यदि अर्थव्यवस्था PP' वक्र पर रहे तो वह उपलब्ध साधनो का पूर्ण उपयोग कर सकेगी। इस दृष्टि से PP' से नीचे स्थित प्रत्येक बिदु (जैसे U) साधनो की बेरोजगारी का द्योतक होगा जबकि इससे बाहर के किसी भी बिंदु (जैसे N) पर जाने हेतु अर्थव्यवस्था के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध नही होगे। अस्तु, साधनो को पूर्णत प्रयुक्त करने हेतु अर्थव्यवस्था को PP' वक्र पर ही रहना होगा।

यह मानते हुए कि अर्थव्यवस्था मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति है यह सुविधा पूर्वक कहा जा सकता है कि X तथा Y का इष्टतम सयोग वह होगा जहा X की कीमत इसकी सीमात लागत के समान हो ($P_x = MC_x$)। इसी प्रकार Y की कीमत इसकी सीमात लागत के समान होनी चाहिए ($Py = MCy$)। दो वस्तुओ के सदर्भ मे अर्थ-व्यवस्था का आदर्श साधन आवटन वह होगा जहा

$$\frac{MC_x}{MC_y} = \frac{P_x}{P_y}$$

जैसा कि ऊपर बताया गया है $\frac{MC_x}{MC_y}$ वस्तुतः PP' वक्र का ढलाव है जबकि P_x / P_y सम-आगम रेखा का ढलाव है। अस्तु, दो वस्तुओ के सदर्भ मे प्रत्येक वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाए यह उस स्तर पर निर्धारित होगा जहा सम आगम रेखा

(iso-revenue line) PP रेखा को स्पर्श करती है। यदि अनेक वस्तुएं उत्पादित करनी हों तो उनमें से प्रत्येक की कितनी मात्रा उत्पादित की जाएगी यह निम्न शर्त पूरी होने पर तय हो सकेगा—

$$\frac{MC_x}{P_x} = \frac{MC_y}{P_y} = \frac{MC_z}{P_z} = \quad \frac{MC_n}{P_n}$$

यदि देश को विदेशी सहायता मिल जाए या नये साधनों का पता चल जाए तो PP वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाएगा तथा X व Y के मूल्यों के यथावत रहते हुए अर्थव्यवस्था दोनों ही वस्तुओं की अधिक मात्रा का उत्पादन कर सकेगी। इसी प्रकार यदि मूल्यों में परिवर्तन हो जाए तब भी X व Y के उत्पादन संयोग में परिवर्तन हो जाएगा।

2. उत्पादन किस प्रकार किया जाए (How to Produce)

किन वस्तुओं की कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए यह निर्धारित हो जाने के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह तय करने की है कि इन मात्राओं का उत्पादन न्यूनतम लागत पर करने हेतु कौन-सी उत्पादन विधियां प्रयुक्त की जाएं। वस्तुतः उत्पादन विधि के चुनाव में अर्थव्यवस्था को यह तय करना होता है कि उत्पादन के साधनों को प्रत्येक वस्तु के उत्पादन हेतु किस अनुपात में प्रयुक्त किया जाए।

उदाहरण के लिए, मोटर कारों का उत्पादन काफी अधिक मशीनों तथा अपेक्षाकृत थोड़े से श्रमिकों की सहायता से किया जा सकता है। अथवा श्रमिकों की संख्या को काफी अधिक बढ़ाकर यंत्रों की संख्या में कमी की जा सकती है। श्रम व यंत्रों का कौन संयोग निर्दिष्ट संख्या में कारों के उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जाएगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि किस संयोग से उत्पादन लागत न्यूनतम होती है। कारों की भांति अर्थव्यवस्था अन्य सभी वस्तुओं के उत्पादन हेतु साधनों को इस प्रकार प्रयुक्त करेगी कि प्रत्येक वस्तु की उत्पादन लागत न्यूनतम हो। साधनों के न्यूनतम लागत संयोग (least-cost combination) के विषय में विस्तृत चर्चा आठवें अध्याय में की जाएगी। यहां इतना बताना पर्याप्त होगा कि यदि अर्थव्यवस्था को एक वस्तु की निर्दिष्ट मात्रा में उत्पादन करना है तो श्रम (L) व पूंजी (K) का न्यूनतम लागत वाला संयोग वह होगा जहां दोनों साधनों की सीमांत उत्पादिता का अनुपात इनकी साधन-कीमतों के अनुपात (wage rate/rate of interest) के समान हो। अर्थात्

$$\frac{MP_L}{MP_K} = \frac{W}{r}$$

एक वस्तु के उत्पादन में यदि दो या अधिक वस्तुएं हों तो न्यूनतम लागत वाला संयोग प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त करना

हो। उस दशा मे निम्न समीकरण उपयुक्त रहेगा[3]—

$$\frac{MP_L}{MP_k}(X) = \frac{MP_L}{MP_k}(Y) = \frac{MP_L}{MP_k}(Z) = \frac{W}{r}$$

इस प्रकार एक स्वतत्र अर्थव्यवस्था का दूसरा प्रमुख कार्य विभिन्न साधनो को उत्पादन हेतु इस प्रकार प्रयुक्त करना है कि उत्पादन लागतें (सभी वस्तुओ की) न्यूनतम बनी रहे। यदि किसी साधन की कीमत अथवा इसकी सीमात उत्पादिता मे परिवर्तन हो जाए तो न्यूनतम लागत वाला साधन-सयोग भी बदल जायेगा।

3 राष्ट्रीय उत्पाद का वितरण किस प्रकार किया जाए (How to Distribute the National Product)

अर्थव्यवस्था का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय उत्पादन का वितरण करना है। एक प्रतियोगी या स्वतत्र अर्थव्यवस्था म साधनो का प्रत्येक स्वामी उत्पादन कार्य मे उसके योगदान के मूल्य के (Value of Marginal Product) अथवा सीमात उत्पादिता मूल्य के समान पारिश्रमिक प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रतियोगी अर्थव्यवस्था म आय के कार्यमूलक वितरण (functional distribution) एव व्यक्तिगत वितरण (personal distribution) मे कोई अतर नहीं होता।

समाज मे क्रियाशील साधनो के स्वामियो के मध्य राष्ट्रीय उत्पाद के वितरण के दो महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। प्रथम अर्थव्यवस्था को यह तय करना होता है कि उत्पाद का कितना अंश किस व्यक्ति को प्राप्त हो। द्वितीय अर्थव्यवस्था को यह भी तय करना होता है कि इस आय से प्रत्येक व्यक्ति को कितनी मात्रा में तथा किस प्रकार की वस्तुए प्राप्त हो। यह द्वितीय पहलू इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि साधनो के स्वामी (परिवार) स्वय ही उपभोक्ता भी हैं। इसीलिए उत्पादन तथा वितरण सबधी निर्णयो म कोई भी विरोधाभास नही होना चाहिए।

किसी भी समाज म आय या उत्पाद का व्यक्तिगत वितरण दो बातो पर निर्भर करता है। प्रथम यह साधनों के वितरण पर निर्भर करता है और साधनो का जितना अधिक केंद्रीकरण होगा व्यक्ति आय के वितरण मे उतनी ही अधिक असमानता होने की सभावना रहेगी। व्यक्तिगत आय को प्रभावित करने वाली दूसरी बात है प्रत्येक साधन की कीमत, जो साधनो के बाजार मे इस साधन की सापेक्ष दुर्लभता पर निर्भर

3 यदि साधन दो से काफी अधिक हो तो प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में इनका न्यूनतम लागत वाला सयोग वह होगा जहा

$$\frac{\frac{\partial Q}{\partial X_1}}{PX_1} = \frac{\frac{\partial Q}{\partial X_2}}{PX_2} = \frac{\frac{\partial Q}{\partial X_3}}{PX_3} = \frac{\frac{\partial Q}{\partial X_n}}{PX_n}$$

इस सूत्र में $\frac{\partial Q}{\partial X_1}$ प्रत्येक साधन की सीमात उत्पादिता तथा P_{X1} उसकी कीमत है।

करती है। यही कारण है कि अधिक जनसंख्या वाले भारत जैसे देशों में श्रम की कीमत यानी मजदूरी की दर बहुत कम रहती है तथा पूंजी की दुर्लभता के कारण ब्याज की दर काफी ऊंची रहती है। ऐसी दशा में दी हुई साधन-कीमत पर प्रत्येक साधन स्वामी की आय उसके द्वारा उत्पादन हेतु समर्पित साधन की मात्रा पर निर्भर करेगी। अस्तु, किस साधन के लिए राष्ट्रीय उत्पाद का कितना अंश वितरित किया जाएगा इसका निर्धारण प्रत्येक साधन-स्वामी के पास विद्यमान साधन की मात्रा एवं साधन की कीमत द्वारा किया जाएगा।

यह मानते हुए कि साधनों व वस्तुओं के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, राष्ट्रीय उत्पाद (Q) का परिमाण निम्न रूप में ज्ञात किया जाएगा—

$$Q = \frac{\partial Q}{\partial L} L + \frac{\partial Q}{\partial K} K + \frac{\partial Q}{\partial Q} D$$

उपरोक्त समीकरण में L, K व D क्रमशः श्रम, पूंजी व भूमि की मात्राएं हैं जबकि $\frac{\partial Q}{\partial L}, \frac{\partial Q}{\partial K}, \frac{\partial K}{\partial D}$ क्रमशः इनकी सीमांत उत्पादिताएं हैं। यदि उत्पादन करने वाली फर्में पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक साधन को इसकी सीमांत उत्पादिता के समान पुरस्कार देती हैं, वितरण की जानेवाली राशि का निर्धारण इस प्रकार होगा—

$$Q = w L + r.K + e D$$

यहां w, r, व e क्रमशः मजदूरी, ब्याज व लगान की दरें हैं। दीर्घकाल में प्रतियोगिता के अंतर्गत प्रत्येक साधन की सीमांत उत्पादिता, औसत उत्पादिता एवं साधन कीमत बराबर होने के कारण प्रत्येक साधन को मिलने वाला पारिश्रमिक उस साधन के उत्पादन में योगदान के ठीक समान हो जाता है, और इस प्रकार दीर्घकाल में किसी भी साधन का (पूर्ण प्रतियोगी दशाओं में) कोई शोषण नहीं हो सकता। अस्तु शोषण रहित वितरण व्यवस्था की स्थापना भी प्रत्येक अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

4. अति-अल्पकाल में पूर्ति का राशनिंग करना
(Rationing of Supplies in the Very short Run)

किसी भी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में बाजार अथवा मूल्य यंत्र (price mechanism) स्वयं ही उपभोग को उपलब्ध पूर्ति या उत्पादन की मात्रा के अनुरूप सीमित कर देता है। जिस वस्तु की पूर्ति बढ़ जाती है उसकी कीमत कम होने के कारण उपभोक्ता उसकी अधिक मात्रा खरीदते हैं। इसके विपरीत यदि मांग की तुलना में पूर्ति कम हो जाए तो कीमत बढ़ जाएगी और फलतः उपभोक्ता भी वस्तु की कम इकाइयां खरीदेंगे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कीमत यंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जो पूर्ति के अनुरूप मांग को समायोजित कर देता है।

इसका एक उदाहरण कृषि-उपज है। गेहूं की फसल भारत में मई व जून में काटी जाती है। पूर्ति अत्यधिक होने के कारण उस समय गेहूं की कीमतें भी काफी

कम रहती है और इसलिए अधिकांश उपभोक्ता उन्हीं दिनों गेहूं खरीदना चाहेंगे। इसके बाद पूर्ति में कमी आने के साथ-साथ कीमत भी बढ़ती है तथा फलत उपभोक्ताओं की खरीद भी कम होती जाती है। इस प्रकार एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में कीमत सयत्र पूर्ति का राशनिंग करता है।

5. आर्थिक विकास की दर बनाए रखना अथवा इसमें वृद्धि करना (Maintaining or Accelerating the Rate of Growth)

अर्थव्यवस्था के इस कार्य के तीन पहलू हैं। (i) बढ़ती हुई जनसंख्या के सदर्भ में अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को बनाए रखना, (ii) पूजी-स्टॉक के मूल्य ह्रास (depreciation) के संदर्भ में उत्पादन क्षमता को बनाए रखना, (iii) यदि आर्थिक विकास की गति बहुत धीमी हो तो तकनीकी प्रक्रियाओं में इस प्रकार संशोधन करना ताकि देश की उत्पादन क्षमता में वृद्धि की जा सके। जो देश पहले से पर्याप्त आर्थिक विकास कर चुके हैं उनका मुख्य दायित्व उत्पादन क्षमता को यथावत् बनाए रखना है जबकि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य अपनी उत्पादन क्षमता में पर्याप्त वृद्धि करना है ताकि वे अपने आर्थिक पिछड़ेपन को दूर कर सकें।

फ्रैंक नाइट के मतानुसार यह अर्थव्यवस्था का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है। इसका अभिप्राय न केवल यह है कि प्रति व्यक्ति वस्तुओं एव सेवाओं की उपलब्धि को बनाए रखने के लिए प्रतिवर्ष एक निश्चित दर से पूजी का निवेश बढ़ाया जाए, अपितु इसका यह भी अर्थ है कि उत्पादन प्रक्रिया में घिसी हुई पूजी के बदले मूल्य ह्रास का प्रावधान करके पूजी के स्टॉक को बनाए रखा जाए। सक्षेप में, यदि कोई देश अपनी उत्पादन क्षमता को बनाए रखना चाहता है तो उसे प्रतिवर्ष पूजी के मूल्य ह्रास के समान शुद्ध निवेश करना होगा। पूजी के स्टॉक को यथावत् रखते हुए अर्थव्यवस्था अपनी विकास की दर को बनाए रख सकती है।

इसके विपरीत यदि अर्थव्यवस्था को आर्थिक गतिहीनता या पिछड़ापन दूर करके आर्थिक विकास की गति बढ़ानी हो तो उसे अपने पूजी-स्टॉक में निरतर वृद्धि करनी होगी। अन्य शब्दों में, ऐसी स्थिति में पूजी के मूल्य ह्रास की तुलना में अर्थव्यवस्था को अधिक निवेश करना होगा। यह भी सभव है कि पूजी-स्टॉक में वृद्धि के साथ-साथ शोध, अनुसधान या आविष्कारों द्वारा प्रौद्योगिक सुधारों के माध्यम से देश की उत्पादन क्षमता में वृद्धि की जाए। पूजी-स्टॉक में वृद्धि आतरिक या बाहरी साधनों (विदेशी पूजी) के द्वारा भी की जा सकती है। एक स्वतन्त्र पूजीवादी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुरूप प्रत्येक उत्पादक इकाई को अपनी निवेश नीति का निर्धारण करना होता है।

2.3 आर्थिक निर्णय कौन लेता है ? (Who takes the economic decisions ?)

जैसा कि अध्याय के प्रारभ में बताया गया था, अर्थव्यवस्था को प्रत्येक स्थिति

में उपरोक्त पांचों कार्यों का संपादन करना होता है, भले ही उसकी राजनीतिक प्रकृति विशुद्ध पूंजीवादी हो, समाजवादी हो अथवा अधिनायकवादी। जैसा कि हम जानते हैं, विशुद्ध पूंजीवादी समाज में निर्णय लेने का दायित्व व्यक्ति या एक इकाई का होता है यही कारण है कि प्रत्येक उपभोक्ता, प्रत्येक फर्म तथा साधनों का प्रत्येक स्वामी वस्तुओं तथा साधनों के बाजारों में प्रचलित मूल्यों के अनुरूप निर्णय लेता है। जैसा कि ऊपर बताया भी गया है, वस्तुओं के मूल्य अर्थव्यवस्था में क्या उत्पादन किया जाए, इस बात का निर्णय लेने में सहायक होते हैं जबकि साधनों के मूल्य उत्पादन किस प्रकार किया जाए इसके लिए मार्गदर्शन देते हैं। इसी प्रकार अर्थव्यवस्था के तीसरे एवं चौथे कार्य के संपादन में भी मूल्य प्रणाली निर्णय लेने में सहायक होती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एक स्वतन्त्र एवं प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में मूल्य संयत्र के माध्यम से ही समस्त निर्णय लिए जाते हैं तथा आर्थिक क्रियाओं का संपादन किया जाता है।

परंतु यदि देश में समाजवादी व्यवस्था हो तो राजकीय उपक्रमों द्वारा क्या उत्पादन किया जाए तथा कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए इसका निर्णय देश की केंद्रीय या क्षेत्रीय नियोजन संस्था द्वारा किया जाएगा। इसी प्रकार समाजवाद में साधनों के मूल्यों को भी राज्य की नीतियां प्रभावित करती हैं तथा बहुधा सीमांत उत्पादिता के आधार पर उत्पादन के साधनों को प्रयुक्त नहीं किया जाता। समाजवादी देशों में अल्पकालीन पूर्ति को मांग के अनुरूप समायोजित करने हेतु भी मूल्य संयत्र का आश्रय न लेकर वस्तु के वितरण हेतु राशनिंग प्रणाली लागू की जाती है। इस प्रकार पूंजी-निर्माण या निवेश के लक्ष्य भी नियोजन एजेंसी ही निर्धारित करती है। समाजवाद में आयोजना विभाग ही यह तय करता है कि देश के आर्थिक विकास की गति क्या होनी चाहिए।

परंतु यदि देश पर अधिनायक या तानाशाह का शासन हो, तो न तो मूल्य संयत्र ही और न ही आयोजना एजेंसी उत्पादन की प्रकृति, मात्रा, पूंजी निर्माण के लक्ष्य एवं उत्पादन की तकनीक का निर्धारण करेगी। वहां क्या व कितना उत्पादन किया जाए (उदाहरण के लिए अधिक ट्रैक्टर बनाए जाएं या अधिक टैंक), पूंजी प्रधान तकनीक प्रयुक्त की जाए या श्रम-प्रधान, अल्प पूर्ति वाली वस्तु का राशनिंग या वितरण कैसे हो, राष्ट्रीय आय में विभिन्न साधनों को कितना हिस्सा मिले तथा राष्ट्र का आर्थिक विकास किस गति से हो—ये सारे निर्णय अधिनायक द्वारा ही लिए जाते हैं। बहुधा अधिनायक की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा या सनक के आधार पर ही ये निर्णय लिए जाते हैं।

3

उपभोक्ता व्यवहार का सिद्धांत
(THEORY OF CONSUMER BEHAVIOUR)

प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय मे यह बताया गया था कि अर्थव्यवस्था मे उपभाग की क्रिया का एक विशिष्ट स्थान है। बहुधा उपभोक्ताओ की रुचियो एव प्राथमिकताओ के द्वारा ही वस्तुओ की माग एव उनके मूल्यो का निर्धारण होता है। जैसा कि पिछले अध्याय मे बताया गया था, ये मूल्य ही इस बात का निर्धारण करते हैं कि अर्थव्यवस्था मे किन वस्तुओ का कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाए। एक प्रतियोगी एव स्वतत्र अर्थव्यवस्था मे उपभोक्ता सर्वशक्तिमान (sovereign) व्यक्ति की सज्ञा दी जाती है क्योकि उसी की रुचि एव प्राथमिकता की साधनों के आवंटन मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

वर्तमान अध्याय मे हम उपभोक्ता व्यवहार से सबद्ध सस्थापनावादी (classical) एव नव सस्थापनावादी (विशेष तौर पर मार्शलीय) विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। इसके अगले अध्याय मे अनधिमान वक्रो (तटस्थता वक्रो) की सहायता से उपभोक्ता की साम्य स्थिति को समझाया जाएगा। उसके बाद अध्याय 5 एव 6 मे उपभोक्ता व्यवहार से सबद्ध आधुनिक विचार एव अन्य महत्वपूर्ण धारणाओ (जैसे माग की लोच आदि) का वर्णन किया जाएगा।

3.1 उपभोक्ता व्यवहार के विषय मे सस्थापनावादी एव मार्शल से पूर्व का विश्लेषण
(The Classical and Pre-Marshallian Analysis of Consumer Behaviour)

उपभोक्ता व्यवहार से सबद्ध विस्तृत विश्लेषण सर्वप्रथम प्रोफेसर मार्शल ने 1890 मे प्रस्तुत किया था, परतु मार्शल से पूर्व 18वी एव 19वी शताब्दियो मे अनेक व्यक्तियो ने उपभोक्ता व्यवहार के विषय मे छुट-पुट विचार प्रस्तुत किए थे। एडम स्मिथ की 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' के प्रकाशन वर्ष (1776) मे ही एक फ्रासीसी लेखक काडिलाक ने बताया था कि प्रत्येक वस्तु का मूल्य उसकी उपयोगिता अथवा उसकी उपादेयता की अनुभूति पर निर्भर करता है। काडिलाक ने यह भी बताया कि वस्तु की उपयोगिता

एक सापेक्ष शब्द है तथा आवश्यकता के अनुसार बढ़ती या घटती रहती है।[1] एडम स्मिथ के विचार इस सदर्भ मे अस्पष्ट थे। हालांकि उनके मूल्य सिद्धात में उन्होंने दो प्रकार के मूल्य बताए थे उपयोग मूल्य (value in use) जिसे हम वस्तु की उपयोगिता की सज्ञा दे सकते हैं, तथा विनिमय मूल्य, जो ऐसी कीमत को व्यक्त करता है जिसे उपभोक्ता वस्तु की खरीद करने पर चुकाता है। परतु स्मिथ ने उपयोग मूल्य को गौण मानकर यह स्पष्ट किया कि किसी भी वस्तु की कीमत वस्तुत उसकी दुर्लभपूर्ति पर ही निर्भर करती है।

उपभोक्ता व्यवहार के विषय मे 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचार आस्ट्रियन अर्थशास्त्रियों ने प्रस्तुत किए। आस्ट्रिया के जेवन्स व मेन्जर, तथा फ्रांसीसी विद्वान वालरस व ड्यूपुट ने वस्तु के उपभोग से प्राप्त सतुष्टि को न केवल 'उपयोगिता' शब्द के रूप मे परिभाषित ही किया, अपितु 'सीमात उपयोगिता' (Marginal utility) की अवधारणा का सृजन करके मार्शल तथा बाद के अन्य अर्थशास्त्रियों के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु मार्ग भी प्रशस्त कर दिया।

जेवन्स ने उपयोगिता की अतिम डिग्री को du/dx के रूप मे परिभाषित किया। मेन्जर ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा कि सीमात उपयोगिता किसी वस्तु की मात्रा मे वृद्धि होने पर कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि है। वालरस ने कहा कि किसी वस्तु की निर्दिष्ट मात्रा के उपभोग से सतुष्ट होने वाली अतिम आवश्यकता की तीव्रता सीमात उपयोगिता है। आस्ट्रियन लेखकों ने आगे चलकर ग्रेन्जुजेन (Grenznutzen) शब्द का प्रयोग किया जिसे आधुनिक सदर्भ मे सीमात उपयोगिता माना जा सकता है। परतु अपने समूचे विश्लेषण मे उन्होंने सीमात उपयोगिता को किसी वस्तु की अतिम उपयोगिता से प्राप्त सतुष्टि के रूप मे ही परिभाषित किया, हालांकि वे इसे उपयोगिता फलन के प्रथम अवकलन (*first derivative of utility function*) के रूप मे सिद्ध नही कर पाए।

जेवन्स ने स्पष्ट किया कि जैसे-जैसे किसी वस्तु की मात्रा मे वृद्धि होती है, उपभोक्ता को इससे प्राप्य सतुष्टि मे उत्तरोत्तर कमी होती जाती है। उपभोक्ता एक वस्तु की अधिक इकाइया प्राप्त करने हेतु किसी अन्य वस्तु का परित्याग करता है। जेवन्स ने बताया कि सीमात उपयोगिता का वस्तु की मात्रा और इसलिए इसके बदले त्यागी जाने वाली वस्तु से विपरीत सबध (inverse relation) होता है।[2] आस्ट्रियन अर्थशास्त्रियों ने आय से प्राप्त होने वाली मुद्रा पर भी सीमात उपयोगिता की अवधारणा को लागू किया।

1844 में ड्यूपुट ने सडकों, नहरों तथा पुलों जैसी सामूहिक उपभोग की वस्तुओं से प्राप्त सामाजिक लाभ को मापने के प्रयत्न मे कुल तथा सीमात उपयोगिता के मध्य

1 See Charles Gide & Charles Rist, *A History of Economic Doctrines*, London, George G Harrap & Co Ltd (1961), pp 65 67

2. See Mark Blaug, *Economic Theory in Retrospect* (Second Edition, 1968) Heinemann, London, pp 309-310

प्रयत्न करने का असफल प्रयास किया। उन्होंने बताया कि इन वस्तुओं से प्राप्त लाभ का परिमाण इनके लिए चुकाई गई कीमत से अधिक था और इस प्रकार इनसे समाज को एक अतिरेक (surplus) प्राप्त होता था। ड्यूपुट ने वस्तु की उपयोगिता को ह्रासमान मानते हुए सीमान्त उपयोगिता वक्र को ही वस्तु के माग वक्र के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि राज्य जैसे जैसे अधिक सुविधाएं अर्पित करता है, वैसे-वैसे इसके द्वारा वसूल की गई चुंगी (toll) में कमी की जाती है क्योंकि प्रत्येक अतिरिक्त सेवा से प्राप्त लाभ (उपयोगिता) में कमी भी होती जाती है। उन्होंने बताया कि सीमान्त उपयोगिता वक्र का क्षेत्र सरकार द्वारा प्रस्तुत सुविधा से प्राप्त कुल उपयोगिता या लाभ है जबकि *सीमान्त उपयोगिता व मूल्य समान होने पर दिए गए कुल भुगतान* को कुल उपयोगिता में से घटाने पर हमें सापेक्ष उपयोगिता (relative) प्राप्त होती है। मार्शल ने इसी को आगे चल कर 'उपभोक्ता की बचत' (consumer's surplus) की संज्ञा दी।[4] परन्तु आस्ट्रियन विद्वानों के ये विचार क्रमबद्ध नहीं थे और इसीलिए उपभोक्ता व्यवहार का विस्तृत एवं क्रमबद्ध विश्लेषण करने का श्रेय एल्फ्रेड मार्शल को ही दिया जाता है।

3.2 उपभोक्ता व्यवहार का मार्शल द्वारा विश्लेषण[3]
(Marshallian Analysis of Consumer Behaviour)

सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा के संस्थापकों ने उपयोगिता को मापने के आधार पर एक स्वयं-सिद्ध तथ्य के रूप में स्वीकार किया था। वस्तुतः मेन्जर तथा वाल्रस ने कभी भी उपयोगिता की मापनीयता के बारे में गंभीरतापूर्वक नहीं सोचा। जेवन्स ने स्पष्टतः इस बात से इनकार किया कि किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता का माप लिया भी जा सकता है। अपितु उन्होंने यह सुझाव दिया कि उपयोगिता का माप मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को लगभग स्थिर मानकर ही लिया जा सकता है।

जेवन्स ने भी इस बात से इनकार किया कि विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त उपयोगिताओं के मध्य तुलना करना संभव है क्योंकि उनके मतानुसार मूल्य सिद्धान्त में इस प्रकार की तुलनाएं अनावश्यक हैं।[5] केवल मेन्जर तथा वाल्रस ने विभिन्न व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली उपयोगिता में तुलना करने को आपत्तिजनक नहीं माना। जेवन्स, वाल्रस तथा मेन्जर तीनों ने 'योगशील उपयोगिता' (additive utility) के आधार पर उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण किया तथा किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु की मात्रा पर निर्भर करती है तथा इसका उपभोग में प्रयुक्त अन्य वस्तुओं से कोई सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु उन्होंने उपयोगिता फलन के स्वरूप पर कोई ध्यान नहीं दिया

4 Op cit, pp 322 23

3 विस्तृत विवेचन के लिए देखें Alfred Marshall, *Principles of Economics*, London, MacMillan & Co Ltd. (Eighth Edition 1959), Chapters 3 & 6.

5 हालांकि कल्याण की चर्चा करते समय वे उपयोगिता के संख्यावाचक (cardinal) माप तथा अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओं (inter personal comparison) का भी उल्लेख करते हैं।

और सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम को सामान्य अनुभव की बात मानकर छोड़ दिया। इनमें से केवल वालरस ने उपयोगिता को सफलतापूर्वक वस्तु की मांग से संबद्ध किया, हालांकि उन्होंने भी मांग व्यवहार के विश्लेषण हेतु सीमांत उपयोगिता के ह्रास से होने वाले प्रभावों को विस्तार में नहीं बताया।[6] प्रोफेसर मार्शल आस्ट्रिया तथा इंग्लैंड के विद्वानों द्वारा विकसित इन सब अवधारणाओं की सीमाओं से पूर्णतः परिचित थे, और इसीलिए उनके उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण में अस्पष्टता एवं विसंगतियों को न्यूनतम करने का प्रयास किया गया।

मार्शल ने आस्ट्रियन विद्वानों के इस तर्क से पूर्ण सहमति व्यक्त की कि उपयोगिता का वस्तु के प्रति इच्छा या आवश्यकता से सम्बन्ध है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उपयोगिता का प्रत्यक्ष माप तुला द्वारा नहीं है, परन्तु तथापि अप्रत्यक्ष माप लेकर उपयोगिता को मापा जा सकता है। मार्शल का उपयोगिता-विश्लेषण निम्न मान्यताओं पर आधारित है

(i) उपयोगिता को मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है—मार्शल ने कहा कि मनुष्य अपनी "इच्छा की पूर्ति या संतुष्टि के लिए किसी वस्तु के लिए जो कीमत देने को तत्पर है, वही उस वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता का माप है।" मार्शल ने इसकी व्याख्या करते हुए आगे बताया कि किसी व्यक्ति द्वारा वस्तु को खरीदी जाने वाली अंतिम इकाई उसकी 'सीमांत क्रय' (marginal purchase) है, तथा इससे प्राप्त उपयोगिता ही वस्तु की सीमांत उपयोगिता है। उन्होंने कहा कि व्यक्ति अपने 'सीमांत क्रय' के लिए जो मूल्य देने को तत्पर है वही सीमांत उपयोगिता का माप होगा।

(ii) उपभोक्ता जैसे-जैसे वस्तु की अधिक इकाइयां क्रय करता है, इसकी सीमांत उपयोगिता में उत्तरोत्तर कमी होती जाती है। मार्शल ने इसे सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility) की संज्ञा दी। उनके मतानुसार चूंकि उपयोगिता का प्रत्यक्ष संबंध इच्छा की तीव्रता से होता है, वस्तु का स्टॉक बढ़ने के साथ-साथ इच्छा की तीव्रता में भी कमी होती है, और यही सीमांत उपयोगिता में उत्तरोत्तर कमी का कारण होता है।

(iii) विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त उपयोगिताएं तथा एक ही वस्तु की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमांत उपयोगिताएं योगशील (additive) हैं। चूंकि मार्शल के विश्लेषण में वस्तु की उपयोगिता का संख्यासूचक (cardinal) यानी मुद्रा के रूप में माप लिया जाता है, वस्तु की विभिन्न इकाइयों, तथा विभिन्न वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं को जोड़कर कुल उपयोगिता प्राप्त की जा सकती है। वस्तुतः सीमांत उपयोगिता की मापनीयता पर ही उपयोगिताओं की योगशीलता पर निर्भर करती

6 See Mark Blaug p 327

हैं।[7] मार्शल ने यह भी मान्यता ली कि प्रत्येक (विवेकशील) उपभोक्ता उपयोगिताओं के इसी योग अथवा कुल उपयोगिता को अधिकतम करने का प्रयास करता है।

(iv) एक वस्तु की उपयोगिता दूसरी वस्तु की उपयोगिता को प्रभावित नहीं करती—मार्शल की ऐसी मान्यता है कि विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएं परस्पर असम्बद्ध है तथा एक वस्तु की अतिरिक्त इकाई का उपभोग करने पर केवल इसी की सीमान्त उपयोगिता प्रभावित होगी।

(v) जब वस्तु के उपभोग का क्रम जारी है तो मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय, उसकी रुचि एवं मानसिक दशा में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। इन "अन्य बातों के यथावत्" रहते हुए ही सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम एवं अन्य नियमों के अनुरूप उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण किया जा सकता है। हां, मार्शल ने यह अवश्य स्वीकार किया कि मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता बहुधा गरीब व्यक्ति की अपेक्षा धनी व्यक्ति के लिए कम होती है।

(vi) मार्शल ने यह भी स्वीकार किया कि समाज के विभिन्न व्यक्तियों के आय-स्तर, रुचियों एवं प्राथमिकताओं में पर्याप्त अंतर होने के कारण अंतर्व्यक्ति-उपयोगिताओं की तुलना संभव नहीं है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति वस्तु के लिए जो कीमत देने को तत्पर है वह उसकी उपयोगिता का माप है, तथापि 'भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की आवश्यकताएं एवं परिस्थितियां भिन्न होने के कारण हम सामान्य तौर पर मूल्य के आधार पर सीमान्त उपयोगिता को नहीं माप सकते।"[8]

(vii) भविष्य में किसी वस्तु के उपभोग से प्राप्त होने वाले लाभ या उपयोगिता का वर्तमान मूल्य ज्ञात करने हेतु हमें भविष्य की उपयोगिता का बट्टा मूल्य (discounted value) ज्ञात करना चाहिए। इसके लिए मार्शल ने दोहरी छूट का प्रावधान रखने का सुझाव दिया, एक तो इसलिए कि भावी उपयोगिता की राशि अनिश्चित होती है, तथा दूसरी छूट इसलिए कि वर्तमान संतुष्टि की अपेक्षा भविष्य में प्राप्य उपयोगिता का मूल्यांकन प्रत्येक व्यक्ति अपने (व्यक्तिपरक) दृष्टिकोण के आधार पर करता है। इसीलिए भिन्न भिन्न व्यक्तियों के लिए भावी उपयोगिताओं की बट्टा दरें भी भिन्न होंगी।

7 यदि सीमान्त इकाई से प्राप्त उपयोगिता को सीमान्त उपयोगिता की संज्ञा दी जाए तो सीमान्त उपयोगिताओं के योग द्वारा कुल उपयोगिता ज्ञात की जा सकती है। समाकल (integral) के रूप में इसे निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$\text{Total Utility or } U=\int_0^x \frac{du}{dx} \triangle x$$

मार्शल ने सीमान्त उपयोगिता को $\frac{du}{dx} \triangle x$ के रूप में ही व्यक्त किया था।

8 Marshall, op cit, p 84

उपभोक्ता द्वारा अधिकतम कुल उपयोगिता प्राप्त करना
(Maximization of Utility by a Consumer)

जैसा कि ऊपर बताया गया था, मार्शल ने उपयोगिता को मुद्रा में मापनीय एवं योगशील मानते हुए यह तर्क दिया था कि प्रत्येक उपभोक्ता का अन्तिम लक्ष्य कुल उपयोगिता को अधिकतम करना है। मार्शल ने यह भी स्वीकार किया कि अधिकतम कुल उपयोगिता प्राप्त करने के इस लक्ष्य की पूर्ति सीमित साधनों या उपभोक्ता की सीमित आय के संदर्भ में ही होनी चाहिए।

अस्तु, प्रत्येक उपभोक्ता का लक्ष्य दी हुई आय के माध्यम से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना ही है। मार्शल ने इसके लिए सम सीमांत उपयोगिता के सिद्धांत (Principle of Equi-Marginal Utility) का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा "यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसी वस्तु है जिसे वह अनेक उपयोगों में प्रयुक्त कर सकता हो, तो वह उस उन उपयोगों के मध्य इस प्रकार आवंटित करेगा कि सभी में प्राप्त सीमांत उपयोगिता समान हो जाए। क्योंकि यदि उस एक उपयोग से दूसरे की अपेक्षा अधिक सीमांत उपयोगिता मिलती हो तो वह दूसरे में इसकी कुछ मात्रा घटा कर पहले उपयोग में प्रयुक्त करेगा और इस प्रकार कुल उपयोगिता में वृद्धि कर सकेगा।"[9]

इस प्रकार मार्शल ने यह मान्यता ली कि सभी वस्तुओं के मूल्य समान हों तो उपभोक्ता को उनसे अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त होगी जबकि इनसे प्राप्त सीमांत उपयोगिताएं या सभी वस्तुओं की अंतिम इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता समान हो। चूंकि उपभोक्ता की आय सीमित है तथा इसके वैकल्पिक उपयोग संभव हैं, इसलिए यदि एक वस्तु (X) की सीमांत उपयोगिता दूसरी वस्तु (Y) की सीमांत उपयोगिता से अधिक है, तो वह Y की इकाइयां में कमी करके X की इकाइयों को तब तक बढ़ाता जाएगा जब तक कि दोनों की सीमांत उपयोगिता समान नहीं हो जाती। स्पष्ट है, अधिक सीमांत उपयोगिता वाली वस्तु का उपयोग बढ़ाने तथा कम सीमांत वाली वस्तु का उपयोग कम करने से उपभोक्ता को प्राप्त कुल उपयोगिता में वृद्धि ही होगी। इसे वर्तमान अर्थशास्त्री 'प्रतिस्थापन का सिद्धांत' (Principle of Substitution) भी कहते हैं क्योंकि इस सिद्धांत के अनुसार अधिकतम कुल उपयोगिता की प्राप्ति हेतु कम उपयोगिता वाली वस्तु के स्थान पर अधिक सीमांत उपयोगिता वाली वस्तु को प्रतिस्थापित किया जाता है।

यदि सभी वस्तुओं के मूल्य समान न हों तो प्रत्येक वस्तु की सीमांत उपयोगिता एवं कीमत का अनुपात दूसरी सभी वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता एवं कीमत

9 Ibid, p 98 (नोट विद्यार्थियों से यह अपेक्षा की गई है कि वे पूर्व की कक्षाओं में इस सिद्धांत का विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं।)

के अनुपातो के बराबर होना चाहिए।[10] परन्तु इस सदर्भ मे भी यह मान्यता बराबर लेनी होगी कि मुद्रा की सीमात उपयोगिता इकाई के बराबर एव स्थिर है। प्रतिस्थापन की प्रक्रिया इस सदर्भ मे भी तब तक चलती रहेगी जब तक कि सीमात उपयोगिता एव मूल्य का अनुपात सभी वस्तुओ के सदर्भ मे समान नहीं हो जाता। उसी स्थिति मे निर्दिष्ट आय से उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता प्राप्त होगी।

3 3 मार्शल द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण की आधुनिक व्याख्या
(Modern Interpretation of Marshallian Analysis)

मार्शल का ऐसा विश्वास था कि प्रत्येक उपभोक्ता विवेकपूर्वक व्यवहार करता है, तथा निर्दिष्ट आय के उपयोग के द्वारा वह अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। जैसा कि ऊपर बताया गया था, मार्शल ने उपयोगिता का सख्यावाचक (cardinal) माप लेते हुए यह मान्यता ली थी कि उपयोगिता मे योगशीलता एव परस्पर असबद्धता (independence) के लक्षण होते हैं। इसका यह अर्थ है कि उपभोक्ता को निम्न बातो का पूर्व ज्ञान रहता है

(i) बाजार मे उपलब्ध वस्तुओ की सूची, (ii) उपलब्ध वस्तुओ मे से प्रत्येक की सीमात उपयोगिता, (iii) उसकी मौद्रिक आय, तथा (iv) विभिन्न वस्तुओ की कीमतें। आधुनिक लेखको का तर्क है कि यदि मौद्रिक आय एव मूल्य बाह्य रूप मे निर्धारित (exogenously determined) मान लिए जाए तो मार्शल द्वारा प्रस्तुत उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण को सरलतापूर्वक एव गणितीय रूप दिया जा सकता है। यह मानते हुए कि निर्दिष्ट आय के भीतर ही उपभोक्ता अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना चाहता है, हम उपभोक्ता के उद्देश्य फलन (objective function) एव सीमा (constraint) को निम्न रूप मे प्रस्तुत करते हैं—

$$\text{Maximize } U = f(x_1, x_2, x_3, \ldots, x_n) \qquad (3\ 1)$$

$$\text{Subject to } M \geqslant P_1x_1 + P_2x_2 + P_3x_3 + \cdots + P_nx_n \quad \ldots (3\ 2)$$

उपरोक्त समीकरणो मे U उपभोक्ता का उपयोगिता फलन है जिसे उपभोक्ता अधिकतम करना चाहता है। M उपभोक्ता की मौद्रिक आय है जबकि x_1, $P_1 x_2$ आदि x_1, x_2, x_3 आदि वस्तुओ की मात्राओं पर व्यय की जाने वाली राशिया हैं। उपभोक्ता की मौद्रिक आय सभी वस्तुओ पर किए जाने वाले व्यय के

10 मार्शल के अनुसार सभी वस्तुओं की कीमतें समान रहने पर उन वस्तुओ की सीमात उपयोगिताए समान होने पर ही अधिकतम कुल उपयोगिता मिलती है यानी $P_{x_1} - P_{x_2} = P_{x_3} = \ldots = P_{xn}$ तो $MU_{x_1} = MU_{x_2} = MU_3 = \ldots MU_{xn}$ परन्तु हिक्स ने इसमे सशोधन करते हुए सम सीमांत उपयोगिता के सिद्धान्त को निम्न रूप में प्रस्तुत किया—
यदि $P_{x_1} \neq P_{x_2} \neq P_{x_3} \neq \ldots \neq P_{xn}$ तो अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त होगी जब
$$\frac{MU_{x_1}}{P_{x_1}} = \frac{MU_{x_2}}{P_{x_2}} = \frac{MU_{x_3}}{P_{x_3}} = \cdots = \frac{MU_{xn}}{P_{xn}}$$
(J R Hicks Revision of Demand Theory, p 10)

बराबर या उससे अधिक होगी। किसी भी स्थिति में उपभोक्ता का कुल व्यय उसकी मौद्रिक आय से अधिक नहीं होना चाहिए। परन्तु सुविधा के लिए हम उपभोक्ता की मौद्रिक आय को उसके कुल व्यय के समान मानते हैं।

सामान्य तौर पर बाजार में उपभोक्ता के समक्ष बहुत सी वस्तुएं हो सकती हैं, और इस कारण उपयोगिता फलन तथा उपभोक्ता के बजट-प्रतिबंध में रहकर हमें बहुत बड़ी संख्या में वस्तुओं को शामिल करना पड़ सकता है। इसीलिए अपने विश्लेषण को सरल बनाने हेतु हम उपभोक्ता के बजट में दो वस्तुओं का ही समावेश करते हैं। इस स्थिति में उसके उपयोगिता फलन एवं बजट-सीमा का स्वरूप निम्न प्रकार का हो जाएगा—

$$\text{Max} \quad U = f\ (x_1\ x_2) \qquad (3\ 3)$$

$$\text{Subject to} \quad M = P_1x_1 + P_2x_2 \qquad (3\ 4)$$

पूर्व की भांति U उपभोक्ता का उपयोगिता फलन है, x_1 x_2 दो वस्तुएं हैं जिनका वह उपभोग करना चाहता है, M उसकी मौद्रिक आय है तथा P_1 व P_2 दोनों वस्तुओं की कीमतें हैं। हम पूर्व की भांति यही मान्यता दुहराते हैं कि निर्दिष्ट आय (M) का उपयोग उपभोक्ता इस प्रकार करना चाहता है कि प्राप्त कुल उपयोगिता (U) अधिकतम हो जाए।

इसे गणितीय आधार पर हल करने हेतु आधुनिक अर्थशास्त्री दो विधियां बतलाते हैं। यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण की दोनों ही विधियों से हमें एक ही निष्कर्ष प्राप्त होता है।

प्रथम विधि

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, उपभोक्ता अपनी आय (M) को x_1 एवं x_2 पर इस प्रकार आवंटित करना चाहेगा ताकि दिए हुए मूल्यों पर उसे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो। हम उपरोक्त समीकरण 3 4 में P_1x_1 को बाईं ओर ले जाएं तथा दोनों पक्षों को P_2 से भाग दें तो निम्न समीकरण प्राप्त होगा—

$$\frac{M - P_1\,x_1}{P_2} = x_2$$

अब समीकरण 3.3 में x_2 के स्थान पर इसे रख दीजिए।

अब उपयोगिता फलन का निम्न परिवर्तित स्वरूप देखा जा सकता है—

$$U = f\ \left(x_1, \frac{M - P_1\,x_1}{P_2}\right) \qquad (3\ 5)$$

इस फलन में यह मान्यता ली गई है कि x_1 एवं x_2 में स्थिर संबंध है जिसे बजट सीमा यानी समीकरण (3 4) के माध्यम से दिखाया जा सकता है। समीकरण (3 5) को इस प्रकार संशोधित रूप में प्रस्तुत किया गया है कि x_1 के संदर्भ में भी उपयोगिता फलन का अधिकतम मूल्य ज्ञात करना संभव होता है। x_1 के संदर्भ में प्रथम चलन-अवकलज (first derivative) को शून्य के बराबर रखकर

$\left(\frac{dU}{dx_1}=o\right)$ हम कुल उपयोगिता को अधिकतम कर सकते हैं। अस्तु,

$$\frac{Ud}{dx_1}=f_1+f_2\left(\frac{-P_1}{P_2}\right)=o \qquad .(3\,6)$$

उपरोक्त समीकरण में f_1 एवं f_2 क्रमश x_1 एवं x_2 की सीमांत उपयोगिताओं के प्रतीक हैं। यह भी स्पष्ट है कि कुल उपयोगिता तभी अधिकतम होती है जब सीमांत उपयोगिता शून्य हो।

अब समीकरण (3 6) मे द्वितीय मूल्य को दाईं ओर रखकर दोनों पक्षों में f_2 का भाग देने पर निम्न स्थिति प्राप्त होगी—

$$\frac{f_1}{f_2}=\frac{P_1}{P_2} \qquad ...(3\,7)$$

अथवा

$$\frac{MU_{x_1}}{MU_{x_2}}=\frac{P_1}{P_2}$$

यदि तिरछा-गुणा (cross-multiplication) किया जाए तो समीकरण (3 7) को निम्न रूप में भी लिखा जा सकता है—

$$\frac{MUx_1}{Px_1}=\frac{MUx_2}{Px_2} \qquad ...(3\,8)$$

पाठकों को यह स्मरण होगा कि मार्शल ने सम-सीमांत उपयोगिता के सिद्धांत (principle of equi-marginal utility) के लिए भी यही शर्त रखी थी कि उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त होगी जब विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत उपयोगिता में समानता हो, अथवा वस्तुओं के मूल्य भिन्न होने पर सभी वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता व मूल्यों का अनुपात समान हो।

आधुनिक अर्थशास्त्री यह भी बताते हैं कि अधिकतम उपयोगिता प्राप्ति के लिए प्रथम चलन-अवकलज की शर्त (यानी सीमांत उपयोगिताओं व मूल्यों के अनुपात में समानता) पूरी होनी ही जरूरी नहीं है। इसके लिए गणितीय दृष्टि से पर्याप्त अथवा द्वितीय क्रम की शर्त (Second order condition) पूरी होना भी जरूरी है।[11]

11 उपयोगिता फलन में पर्याप्त (Sufficient condition) या द्वितीय क्रम की शर्त (Second order condition) इस प्रकार होगी—

$$\frac{d^2U}{dx_1^2}=f_{11}+2f_{12}\left(\frac{-P_1}{P_2}\right)+f_{22}\left(\frac{-P_1}{P_2}\right)<o$$

अथवा

$$\frac{d^2U}{dx_1^2}=\frac{\partial^2U}{\partial x_1^2}+2\frac{\partial^2U}{\partial x_1\,\partial x_2}\left(\frac{-P_1}{P_2}\right)+\frac{\partial^2U}{\partial x_2^2}\left(\frac{-P_1}{P_2}\right)^2<o$$

उपरोक्त समीकरण में दोनों पक्षों को P_2^2 से गुणा करने पर

$$\frac{\partial^2U}{\partial x_1^2}.P_2^2=\frac{\partial^2U}{\partial x_1^2}.P_2^2-2\frac{\partial^2U}{\partial x_1\partial x_2}P_1P_2+\frac{\partial^2U}{\partial x_2^2}P_1^2<o$$

द्वितीय विधि

मार्शल द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण की आधुनिक व्याख्या की द्वितीय विधि लेंग्रान्जीयन फलन (Lagrangean Extreenun Function) पर आधारित है। इसके अंतर्गत उद्देश्य फलन (समीकरण 3 3) तथा बजट सीमा (समीकरण 3 4) को मिलाकर लैंग्रान्जीयन फलन का निर्माण किया जाता है। अस्तु,

$$L = f(x_1, x_2) - \lambda \ (P_1 x_1 + P_2 x_2 - M) \quad \ldots (3.9)$$

समीकरण (3 9) में $f(x_1, x_2)$ उपयोगिता फलन है, $(P_1 x_1 + P_2 x_2 - M)$ आय-व्यय की समानता का द्योतक है, तथा λ लैंग्रान्जी गुणक (जो शून्य नहीं होता) का प्रतीक है। यदि हम अवकल गणित के आधार पर L का अधिकतम मूल्य ज्ञात करना चाहें तो प्रथम अवकलज (first derivative) इस प्रकार होंगे—

$$\left.\begin{aligned} \frac{\partial L}{\partial x_1} &= f_1 - \lambda P_1 = o \ (a) \\ \frac{\partial L}{\partial x_2} &= f_2 \lambda - P_2 = o \ (b) \\ \frac{\partial L}{\partial \lambda} &= P_1 x_1 - P_2 x_2 - M = o \ (c) \end{aligned}\right\} \quad \ldots (3\ 10)$$

समीकरण (3.10) में f_1 एवं f_2 क्रमशः x_1 एवं x_2 की सीमांत उपयोगिता को व्यक्त करते हैं जिन्हें आंशिक अवकलन (partial differentiation) के द्वारा ज्ञात किया जाता है। समीकरण [3 10 (c)] में यह बताया गया कि x_1 एवं x_2 से प्राप्त कुल उपयोगिता को बजट सीमा के अंतर्गत ही अधिकतम किया जाता है।

अब समीकरण (3 10) में (a) व (b) की द्वितीय सख्याओं को दाईं ओर लीजिए एवं (a) में (b) का भाग दीजिए। इससे हमें निम्न समीकरण प्राप्त होगा—

$$\left.\begin{aligned} \frac{f_1}{f_2} = \frac{P_1}{P_2} \text{ अथवा } \frac{f_1}{P_1} = \frac{f_2}{P_2} \\ \text{अथवा } \frac{MU_{x_1}}{P_{x_1}} = \frac{MU_{x_2}}{P_{x_2}} \end{aligned}\right\} \quad \ldots (3\ 11)$$

इस प्रकार इस विधि से भी हमें वही मार्शलीय निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं (वर्तमान संदर्भ में x_1 एवं x_2) से अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त करता है जब सीमांत उपयोगिता एवं मूल्यों का अनुपात समान हो।[12]

12. इस संदर्भ में पर्याप्त या द्वितीय क्रम की शर्त के लिए हमें सीमायुक्त हेसियन निर्धारक (Bordered Hessian Determinant) का धनात्मक मूल्य प्राप्त होना चाहिए—

$$\begin{vmatrix} f_{11} & f_{12} & -P_1 \\ f_{21} & f_{22} & -P_2 \\ -P_1 & -P_2 & O \end{vmatrix} > O$$

यदि उपभोक्ता का उपयोगिता फलन, उसकी मौद्रिक आय एव x_1 एव x_2 आदि की कीमतें दी हुई हो तो दोनो मे से किसी भी विधि को प्रयुक्त करके हम x_1 व x_2 की वे मात्राए प्राप्त कर सकते हैं जिनसे उपभोग द्वारा उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता की प्राप्ति हो सकती है। x_1 एव x_2 के इसी सयोग को इष्टतम सयोग की सज्ञा दी जा सकती है। परतु पाठको को यह बतला देना भी आवश्यक है कि व्यवहार मे उपभोक्ता कितनी ही वस्तुओ को अपने बजट मे शामिल कर सकता है, और फिर भी लैग्रान्जीयन फलन विधि से प्राप्त निष्कर्षों मे कोई विशेष अतर नही आएगा। अत मे यही कहा जा सकता है कि मार्शल द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण को चाहे परपरागत रूप मे देखा जाए अथवा आधुनिक (गणितीय) रूप मे, हमारा निष्कर्ष यही होगा। दिए हुए उपयोगिता फलन एव आय सीमा के अतर्गत उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त होगी जब सभी वस्तुओ की सीमात उपयोगिता एव मूल्यो के अनुपात समान हो। अन्य शब्दो मे उससे भिन्न स्थिति उपभोक्ता के लिए इष्टतम से नीचे की स्थिति होगी तथा वह वस्तुओ के परस्पर प्रतिस्थापन द्वारा उनके सयोग मे तब तक परिवर्तन करेगा जब तक कि इष्टतम की शर्त $\left(\frac{MU_{x_1}}{P_{x_1}} = \frac{MU_{x_2}}{P_{x_2}} = \cdots\cdots\right)$ पूरी न हो जाए।

3 4 मार्शल द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण की आलोचना
(Criticism of Marshallian Approach)

ऊपर प्रस्तुत उपभोक्ता व्यवहार का मार्शलीय विश्लेषण इन मान्यताओं पर आधारित है कि उपयोगिता का सख्यासूचक (cardinal) माप लिया जा सकता है (अर्थात् उपभोक्ता किसी वस्तु की एक इकाई के लिए जो मूल्य देने को तत्पर है वही उस वस्तु की उपयोगिता का माप है), उपयोगिता योगशील है तथा विभिन्न वस्तुओ की उपयोगिताए परस्पर असबद्ध हैं। यह विश्लेषण इस मान्यता पर भी आधारित है कि उपभोक्ता को बाजार मे उपलब्ध वस्तुओ की प्रकृति, मात्रा एव उन की कीमतो का पूर्व-ज्ञान है तथा वह उनसे प्राप्य सीमात उपयोगिताओ के क्रम मे उनका उपभोग करता है। मार्शल ने यह मान्यता भी ली थी कि मुद्रा की सीमात उपयोगिता मे कोई परिवर्तन नही होता।

मार्शल द्वारा उपभोक्ता व्यवहार का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया वह वस्तुत अनेक अवास्तविक मान्यताओ पर आधारित है। अधिकाश आधुनिक अर्थशास्त्री इन मान्यताओ की अवास्तविकताओ के कारण ही मार्शल के विश्लेषण की आलोचना करते हैं।

1 उपयोगिता का सख्यासूचक माप नही लिया जा सकता

विल्फ्रेडो परेटो ने मार्शल की इस बात की सर्वाधिक आलोचना की कि मार्शल उपयोगिता को मुद्रा मे मापनीय मानते थे। आगे चलकर हिक्स ने भी इसी बात का

दोहराया। परेटो व हिक्स का तर्क था कि किसी वस्तु की उपयोगिता अथवा 'उप-देयता' एक व्यक्तिपरक दृष्टिकोण की बात है। जैसा कि ऊपर बताया गया था, मार्शल के मतानुसार किसी वस्तु की सीमांत इकाई के लिए उपभोक्ता जो मूल्य देने को तत्पर है वही उसकी उपयोगिता का माप है। यह कथन वस्तुतः हमें मनोविज्ञान की जटिलता में उलझा देता है। वस्तुतः उपयोगिता अथवा संतुष्टि तो वस्तु की निर्दिष्ट इकाई का उपभोग करने के बाद ही ज्ञात होती है (ex post) जबकि मार्शल के विश्लेषण में वस्तु की उपयोगिता एक प्रत्याशित (ex-ante) अवधारणा है। कोई भी उपभोक्ता वस्तु का उपभोग करने से पूर्व उसकी उपयोगिता का अनुमान कर ले तथा इसके लिए अमुक मूल्य देने को तत्पर हो जाए, यह एक काल्पनिक बात ही है।

उपयोगिता का मौद्रिक माप इस कारण भी भ्रामक प्रतीत होता है कि विभिन्न वस्तुओं के मूल्य बाह्य रूप से निर्धारित (exogenously determined) होते हैं, जब कि उपयोगिता को उस मूल्य के रूप में मापा जाता है जो उपभोक्ता वस्तु से वंचित रहने पर चुकाने को तत्पर हो जाएगा। यदि उपभोक्ता को वस्तु की कीमत ज्ञात है (जैसा कि मार्शल ने भी स्वीकार किया था) तो उपयोगिता का मौद्रिक माप कोई अर्थ नहीं रखेगा। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वस्तु की उपयोगिता का संख्यात्मक माप एक व्यक्तिपरक दृष्टिकोण है तथा उसके आधार पर किसी भी सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता।

2 उपयोगिता योगशील नहीं है

मार्शल ने उपयोगिता को मापनीय मानते हुए यह तर्क दिया था कि प्रत्येक उपभोक्ता का उद्देश्य सभी वस्तुओं से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता को अधिकतम करना है। एजवर्थ, अतोनेली तथा फिशर ने 19वीं शताब्दी में यह तर्क दिया कि कुल उपयोगिता को जानने हेतु केवल यही पर्याप्त नहीं है कि विभिन्न वस्तुओं में से प्रत्येक से प्राप्त होने वाली उपयोगिता का योग ले लिया जाए। इन लेखकों का तर्क यह था कि प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता का अन्य वस्तुओं की उपयोगिताओं से कोई संबंध नहीं है और इसलिए इन सभी का योग लेना वास्तविकता की उपेक्षा करना ही होगा।

3 उपयोगिताएं परस्पर असंबद्ध नहीं हैं

मार्शल ने एक प्रमुख ~~मान्यता यह ली थी कि~~ विभिन्न वस्तुओं के मध्य पूरकता या स्थानापन्नता जैसा कोई संबंध नहीं है और इसलिए एक वस्तु की सीमांत उपयोगिता बढ़ने या घटने पर अन्य वस्तु या वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं होता। रेखाचित्रीय दृष्टि से इसका यह अर्थ है कि किसी भी वस्तु का सीमांत उपयोगिता वक्र इस मान्यता के आधार पर खींचा जाता है कि सभी वस्तुओं की मात्राएं स्थिर रहती हैं।

वस्तुत अधिकांश वस्तुएं या तो परस्पर पूरक होती हैं अथवा स्थानापन्न; और इस कारण उनकी सीमान्त उपयोगिताएं असबद्ध रह भी नही सकती। मान लीजिए, x_1 एव x_2 दो स्थानापन्न वस्तुएं (substitutes) हैं। ऐसी स्थिति मे यदि x_2 की अधिक इकाइयों का उपभोग किया जाए तो यह सर्वथा सभव है कि x_1 का सीमान्त उपयोगिता वक्र बाईं ओर विवर्तित हो जाए। अन्य शब्दों म, किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता न केवल उसी वस्तु की खरीदी जाने वाली इकाइयों पर निर्भर करती है, अपितु इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी पूरक अथवा स्थानापन्न वस्तुओं के उपभोग मे कितना परिवर्तन होता है। मार्शल द्वारा प्रस्तुत उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण मे इस तथ्य की पूर्णत उपेक्षा की गई है।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि किसी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने पर न केवल उसकी मात्रा एव तदनुरूपी सीमात उपयोगिता म परिवर्तन होगा अपितु इसकी पूरक या स्थानापन्न वस्तु की मात्रा एव उसकी सीमात उपयोगिता मे भी परिवर्तन हो जाएगा। मार्शल ने इस तथ्य की भी उपेक्षा की थी।

4 मार्शल द्वारा ली गई अन्य मान्यताएं भी अव्यावहारिक हैं

मार्शल की अन्य मान्यताएं भी अवास्तविक एव अव्यावहारिक प्रतीत होती है। जैसे (i) मुद्रा की सीमात उपयोगिता स्थिर रहती है, (ii) वस्तु कीमत तथा अन्य वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहती हैं, (iii) उपभोक्ता की आय मे कोई परिवर्तन नही होता, (iv) उनकी रुचि *मानसिक दशा एव प्राथमिकताएं यथावत् रहती हैं;* (v) उपभोक्ता को बाजार की दशाओ का पूर्व एव पूर्ण ज्ञान है, तथा (vi) उपभोक्ता विवेकपूर्ण व्यवहार करता है, यानी निर्दिष्ट आय स अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

वस्तुत इनमें से कोई भी मान्यता वास्तविक एव व्यावहारिक जगत मे सही सिद्ध नहीं होती। पहले मुद्रा की सीमात उपयोगिता को लीजिए। यह केवल उसी दशा म स्थिर रह सकती है जब किसी वस्तु पर इतनी थोड़ी राशि व्यय की जाए कि इसका उपभोक्ता के कुल बजट पर कोई प्रभाव न हो।[13] व्यवहार म जैसे-जैसे उप-

13 स्मरण कीजिए कि उपभोक्ता को अधिकतम सतुष्टि तभी प्राप्त होती है जब $\frac{MU_{x_1}}{P_{x_1}} = \frac{MU_{x_2}}{P_{x_2}}$। मान लीजिए x_2 मुद्रा है। अब इष्टतम स्थिति की शर्त इस प्रकार होगी—

$\frac{MU_{x_1}}{MU_{x_2}} = \frac{P_{x_1}}{P_{x_2}}$ परन्तु x_2=मुद्रा है अत $P_{x_1} = MU_{x_1} \frac{P\ money}{MU\ money}$। परन्तु $P\ money = 1$ है तो ऐसी स्थिति में P_{x_1} इसकी सीमान्त उपयोगिता के समान तभी हो सकती है जब MU money भी इकाई के बराबर हो। फैलनर का ऐसा तर्क है कि $P\ money = MU\ money = 1$ केवल उस दशा में होगा जब प्रत्येक वस्तु की प्रत्येक इकाई पर अत्यन्त छोटी राशि व्यय की जाए। (W Fellner, op cit, pp, 194-95.)

भोक्ता की आय का उपयोग होता जाता है, उसके पास शेष मुद्रा की सीमांत उपयोगिता बढ़ती जाती है।

यदि उपभोग की अवधि लंबी हो तो इस अवधि में उपभोक्ता की आय, रुचियां एवं प्राथमिकताएं भी बदल जाती हैं, तथा उसकी आय में भी परिवर्तन होता है। यदि इन सभी परिवर्तनों को उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण में सम्मिलित कर लिया जाए तो मार्शल द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण खंडित होकर चूर-चूर हो जाएगा। इसी प्रकार वस्तुओं की कीमतों में बार-बार होने वाले परिवर्तनों से अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं, और इससे हमारा विश्लेषण काफी जटिल हो जाता है। हिक्स का तर्क है कि मार्शल द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण से वास्तविक जगत के घटनाचक्र की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। मार्शल की यह मान्यता कि कीमत व सीमांत उपयोगिता समान रहने पर ही वस्तु से प्राप्त उपयोगिता अधिकतम होगी इस धारणा पर आधारित है कि वस्तु पर किया जाने वाला व्यय स्थिर रहेगा। उदाहरण के लिए, जब X की कीमत में कमी होती है तो इसकी मात्रा में वृद्धि तब तक होती है जब तक इसकी सीमांत उपयोगिता नयी कीमत के बराबर नहीं हो जाती। परंतु व्यावहारिक जीवन में उपभोक्ता इस नियम का पालन करे यह अनिवार्य नहीं है।

अस्तु, मार्शल द्वारा प्रस्तुत उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण अव्यावहारिक एवं अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। हिक्स, एलन एवं अनेक अन्य अर्थशास्त्रियों ने मार्शल की इस मान्यता की कटु आलोचना की है कि वस्तुओं से प्राप्त होने वाली उपयोगिता का मुद्रा के रूप में यानी संख्यासूचक माप लिया जा सकता है। ये अर्थशास्त्री यह अवश्य स्वीकार करते हैं कि उपभोक्ता विवेकपूर्ण व्यवहार करता है तथा निर्दिष्ट आय से अधिकतम संतुष्टि के स्तर पर पहुंचना चाहता है। परंतु उनका उपभोक्ता व्यवहार से संबद्ध विश्लेषण उपयोगिता के क्रमसूचक (ordinal) माप पर आधारित है। अगले अध्याय में हम यही अध्ययन करेंगे कि मार्शल द्वारा लिए गए उपयोगिता के मौद्रिक माप से संबंधित मान्यता का परित्याग करने पर उपभोक्ता क्योंकर निर्दिष्ट आय से संतुष्टि के उच्चतर स्तर को प्राप्त करता है।

क्रमसूचक उपयोगिता एव तटस्थता(अनधिमान) वक्रो द्वारा उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण
(ORDINAL UTILITY AND ANALYSIS OF CONSUMER BEHAVIOUR THROUGH INDIFFERENCE CURVES)

पिछले अध्याय म उपभोक्ता व्यवहार के सम्बन्ध मे प्रोफेसर मार्शल द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण एव उसके दोषो का विवरण दिया गया था। जैसाकि अध्याय के अत मे बतलाया गया था, हिक्स, एलन और अन्य अर्थशास्त्रियो का मार्शल के विरुद्ध सबसे बड़ा तर्क यही था कि वस्तु से प्राप्त उपयोगिता का मुद्रा मे (यानी सख्यासूचक) माप नही लिया जा सकता, हालाकि उन्होंने यह अवश्य स्वीकार किया कि किसी वस्तु या वस्तुओ के सयोग से प्राप्त सतुष्टि की अनुभूति उपभोक्ता को होती अवश्य है।

पिछले अध्याय मे यह भी बतलाया गया था कि मार्शल ने इस तथ्य की उपेक्षा की थी कि किसी भी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने पर न केवल उस वस्तु की मात्रा एव सीमात उपयोगिता पर प्रभाव होगा, अपितु अन्य वस्तुओं की मात्राए एव तदनुरूपी सीमात उपयोगिताए भी इससे प्रभावित होगी। इन्हीं कारणो मे मार्शल के उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण के स्थान पर क्रमसूचक उपयोगिता (ordinal utility) पर आधारित विश्लेषण को महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है।

4 1 क्रमसूचक उपयोगिता सिद्धांत के प्रमुख लक्षण
(Characteristics of Ordinal Utility Theory)

क्रमसूचक उपयोगिता का सिद्धात इस मान्यता पर आधारित है कि किसी भी वस्तु मे प्राप्त होने वाली उपयोगिता को मुद्रा के रूप मे प्रत्यक्षत नही मापा जा सकता। यह तो आधुनिक अर्थशास्त्री भी स्वीकार करते हैं कि उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओ के सापेक्ष महत्त्व (उपयोगिता) मे परिचित हैं, तथापि इसे मापने हेतु कोई आधार न होने के कारण उपभोक्ता यह बतलाने मे असमर्थ रहता है कि दो वस्तुओं अथवा वस्तुओं के दो समूहो से प्राप्त सतुष्टि मे कितना अतर है। अ, ब, स आदि वस्तुओ अथवा वस्तु-समूहो की सीमात उपयोगिताओं का माप लेने, तथा इनमे से सर्वाधिक सीमात उपयोगिता वाली वस्तु को खरीदने की अपेक्षा क्रमसूचक उपयोगिता के अतर्गत उपभोक्ता अपनी वैकल्पिक स्थितियो की तुलना करता है। इनमे स प्रत्येक स्थिति पर उसे वस्तुओ व सेवाओ की भिन्न-भिन्न मात्राए उपलब्ध होती हैं। सक्षेप

में, क्रमसूचक उपयोगिता विश्लेषण के अंतर्गत उपभोक्ता प्रत्येक वस्तु की सीमांत उपयोगिता का माप लेने की अपेक्षा एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने पर प्राप्त कुल संतुष्टि (कल्याण) में होने वाले परिवर्तन की दिशा (direction of change) के बारे में ही बतला सकता है, परन्तु वह इस परिवर्तन का परिमाण बताने में सर्वथा असमर्थ रहता है।

द्वितीय, क्रमसूचक उपयोगिता की अवधारणा के अंतर्गत विभिन्न वस्तुओं को एक सम्मिश्र रूप (composite form) में लिया जाकर इनके विभिन्न संयोगों की क्रम व्यवस्था (rank-ordering) की तुलना की जाती है। यह विधि गणनासूचक उपयोगिता के विश्लेषण से भिन्न है जिसमें उपभोक्ता एक वस्तु का एक बार में उपभोग करता है जिसकी सीमांत उपयोगिता अन्य वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं से असंबद्ध है। चूंकि क्रमसूचक उपयोगिता विश्लेषण में वस्तुओं के विभिन्न संयोगों की उपयोगिता परस्पर संबद्ध रहती है, इस कारण उपभोक्ता अपनी किसी भी स्थिति (अ अथवा ब) से प्राप्त कल्याण का स्वतंत्र मूल्यांकन नहीं कर सकता।

क्रमसूचक उपयोगिता सिद्धांत की तीसरी एवं अंतिम विशेषता यह है कि कीमत में परिवर्तन होने पर यह इसके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही प्रकार के प्रभावों की विवेचना करता है। इसके फलस्वरूप विश्लेषणकर्ता को विभिन्न वस्तुओं के मध्य पूरकता (complementarity) तथा स्थानापन्नता (substitution) का बोध होता है। इसके साथ ही कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय (क्रय शक्ति या real income) में परिवर्तन होता है। इस आय प्रभाव (income effect) के फलस्वरूप भी वस्तु की मांग में परिवर्तन होता है। मार्शल ने अपने विश्लेषण में आय प्रभाव की पूर्ण उपेक्षा कर दी थी।

तथापि, उत्तर-मार्शलीय (Post-Marshallian) विश्लेषण में भी यह मान्यता बनी रहती है कि उपभोक्ता विवेकपूर्ण व्यवहार करता है तथा विभिन्न वस्तुओं में अपनी दी हुई आय को इस प्रकार आवंटित करता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि की प्राप्ति हो जाए। नीचे हम पहले उत्तर-मार्शलीय उपभोक्ता-व्यवहार के विश्लेषण की प्रमुख मान्यताओं का वर्णन करेंगे तथा तत्पश्चात् यह देखेंगे कि क्रमसूचक (ordinal) उपयोगिता विश्लेषण के अनुसार उपभोक्ता का व्यवहार किस प्रकार का रहता है।

4.2 उपभोक्ता व्यवहार के आधुनिक विश्लेषण की आधारभूत मान्यताएं

(Basic Assumptions of the Modern Theory of Consumer Behaviour)

जैसाकि ऊपर बताया गया है, मार्शल तथा उसके आलोचकों के मध्य सर्वप्रमुख मतभेद केवल इसी बात को लेकर है कि वस्तु से प्राप्त उपयोगिता को प्रत्यक्ष अथवा मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है अथवा नहीं। ये अर्थशास्त्री जिन मान्यताओं के आधार पर उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण करते हैं वे इस प्रकार हैं—

1 उपभोक्ता को पूर्ण ज्ञान है—ऐसा माना गया है कि उपभोक्ता को अपने उपभोग निर्णयों से सम्बन्धित सभी मामलों की पूरी जानकारी है। उदाहरण के लिए उपभोक्ता जानता है कि उसकी आवश्यकताएं किस प्रकार की हैं तथा उनके लिए कितनी तथा किस प्रकार की वस्तुएं उपलब्ध हैं। वह यह भी जानता है कि उपलब्ध वस्तुओं में से प्रत्येक में उसकी जरूरत को पूरा करने की कितनी क्षमता है। यह भी माना जाता है कि उपभोक्ता को उपलब्ध वस्तुओं में से प्रत्येक की कीमत तथा उसके प्राप्ति स्थान के बारे में जानकारी है।

2 बजट प्रतिबंध या सीमा (The Budget Constraint)—यह माना जाता है कि उपभोक्ता के पास आय की एक निर्दिष्ट राशि है जिसे वह निर्दिष्ट मूल्यों के अनुसार विभिन्न वस्तुएं खरीदने हेतु प्रयुक्त करना चाहता है। यह आय एक ऐसा प्रतिबंध है जिसके भीतर ही उपभोक्ता को अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करना है। यदि उपभोक्ता की मौद्रिक आय M हो तो इस प्रतिबंध को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

$$M \geqslant \sum_{i=1}^{n} P_i X_i \tag{4.1}$$

इस सूत्र में M उपभोक्ता की मौद्रिक आय है तथा P_i एवं X_i क्रमश i^{th} वस्तु की कीमत एवं मात्रा को व्यक्त करते हैं। समीकरण (4.1) का अर्थ यह है कि उपभोक्ता की आय उसके कुल व्यय से अधिक या समान हो सकती है परंतु अधिक कदापि नहीं हो सकती।

3 अधिमान फलन (The Preference Function)—ऐसी मान्यता ली जाती है कि प्रत्येक उपभोक्ता के समक्ष एक अधिमान फलन है जो निम्न विशेषताओं से युक्त होता है—

(i) अधिमान फलन के अंतर्गत विभिन्न वस्तुओं के प्रत्येक संयोग को एक क्रम व्यवस्था (rank order) के अनुसार संजोया जाता है एवं यह माना जाता है कि प्रत्येक संयोग अन्य किसी भी संयोग का विकल्प हो सकता है।

तालिका 4.1 में पांच स्थितियां उनकी क्रम व्यवस्था के सहित प्रस्तुत की गई हैं। उपभोक्ता के समक्ष ऐसी कितनी ही स्थितियां हो सकती हैं तथा इनमें से प्रत्येक स्थिति एक भिन्न वस्तु संयोग को प्रदर्शित करती है। जैसाकि तालिका से स्पष्ट है क्रम में सर्वोच्च क्रम वाली स्थिति को प्रथम क्रम दिया गया है तथा इसे 10 अंक दिए गए हैं जबकि क्रम में दूसरी स्थिति को 8 अंक दिए गए हैं। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि दूसरी स्थिति को प्रत्येक स्थिति में 10 से कम अंक दिए जायेंगे चाहे यह 9.99 हो 8 हो अथवा इससे कम। क्रम में तीसरी स्थिति को इसी प्रकार दूसरी स्थिति से कम अंक प्राप्त होंगे। अस्तु क्रमसूचक उपयोगिता विश्लेषण में किसी भी स्थिति को दिए जाने वाले अंक का महत्त्व न होकर इस बात का महत्त्व है कि क्रम व्यवस्था में उसका स्थान कौन सा है। अस्तु इस विश्लेषण में स्थिति को दिए जाने वाला क्रम अधिक महत्त्वपूर्ण है न कि उससे सबद्ध अंक।

तालिका 4.1
उपभोक्ता की वैकल्पिक स्थितियों की क्रम-व्यवस्था

स्थिति	क्रम	दिए गए अंक
D	1	10
A	2	8
B	3	5
C	4	2
E	5	0

तालिका 4.1 इसी बात की द्योतक है कि यदि उपभोक्ता के समक्ष पांच स्थितियां प्रस्तुत की जाएं तो वह सर्वप्रथम D स्थिति में जाना चाहेगा जिसका क्रम-स्थान (rank) प्रथम है, फिर द्वितीय क्रम स्थान में और सबसे अंत में E क्रम स्थान में जाना चाहेगा।

यह उल्लेखनीय बात है कि ये क्रम स्थान केवल एक लयबुक्त रूपान्तर (monotonic transformations) को प्रदर्शित करते हैं, अर्थात् इन सभी में अधिक प्राथमिकतायुक्त स्थिति को ऊंचे एवं कम प्राथमिकतायुक्त स्थिति को नीचे अंक प्रदान किए जाते हैं।[1] इसका यह भी अर्थ है कि स्थिति D को स्थिति C की अपेक्षा चार गुना अधिक पसंद नहीं किया जाता। अपितु हमें केवल यह कहना होगा कि स्थिति D को C, B या A की तुलना में अधिक पसंद किया जाता है।

(ii) वस्तुओं के दो समूहों (जिन्हें बजट भी कहा जाता है) के लिए उपभोक्ता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निम्न में से कोई सा एक वक्तव्य देगा :

(a) "मैं X की अपेक्षा X' को पसंद करता हूं।"

(b) "मैं X' की अपेक्षा X को पसंद करता हूं।"

(c) "मैं दोनों वस्तु समूहों के मध्य तटस्थ हूं।"

यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि तटस्थता (निर्णय C जहां $X \sim X'$ की स्थिति है) का अर्थ यह नहीं है कि उपभोक्ता कोई निर्णय नहीं ले पा रहा है। इसका तो यही अभिप्राय है कि उपभोक्ता X तथा X' दोनों ही वस्तु-समूहों को समान क्रम में रख रहा है तथा दोनों से ही उसे समान संतुष्टि प्राप्त होती है।

1 यदि X तथा X' दो वेक्टर हैं तथा क्रमशः X_i एवं X'_i के संघटकों का प्रतिनिधित्व करते हैं तो दोनों वेक्टरों की गणितीय तुलना निम्न प्रकार से की जा सकती है—

Vectors		Numbers
$X = X'$	means	$X_i = X'_i$ for all i
$X \geqslant X'$	means	$X_i \geqslant X'_i$ for all i
$X \leqslant X'$	means	$X_i \leqslant X'_i$ for all i
$X > X'$	means	$X_i > X'_i$ for all i
$X < X'$	means	$X_i < X'_i$ for all i

(iii) सक्रमकता (Transitivity)—अधिमान फलन मे सक्रमकता का अर्थ यह है कि विभिन्न वैकल्पिक स्थितियो मे उपभोक्ता की क्रम-व्यवस्था मे कोई भी विसगति (isconsistency) नही है। उदाहरण के लिए यदि तालिका 4 1 के अनुसार उपभोक्ता के लिए स्थिति A' की अपेक्षा स्थिति D अधिक प्राथमिकतायुक्त है तथा वह B की तुलना मे A को अधिक प्राथमिकता देता है, तो सक्रमकता के नियम के अनुसार तीनो मे से उपभोक्ता D को सर्वाधिक प्राथमिकता देगा। इस प्रकार

यदि $D > A$, तथा

$A > B$

तो $D > B$

यदि A की अपेक्षा D को अधिक प्राथमिकता दी जाती है, जबकि उपभोक्ता A एव B के मध्य तटस्थ है, तो सक्रमकता के नियम के अनुसार उपभोक्ता B की तुलना मे फिर भी D को पसद करेगा। इस प्रकार

यदि $D > A$

परतु $A \sim B$

तो $D > B$

नोट—यहा $\sim$ का सकेत तटस्थता का प्रतीक है।

(iv) उपभोक्ता एक छोटे बजट अथवा छोटे वस्तु-समूह की तुलना मे सदैव बडे बजट अथवा बडे वस्तु-समूह को प्राथमिकता देता है। इसका कारण यह है कि एक बडे बजट मे उपभोक्ता को सभी या कम से कम एक वस्तु की अधिक इकाइया प्राप्त होती हैं। जोसेफ हैडर इसे उपभोक्ता के अधिमान फलन मे 'लालचीपन' के तत्त्व की सज्ञा देते हैं। अस्तु उपभोक्ता को विवेकशील व्यक्ति तभी माना जा सकता है जब वह अधिक वस्तुओ के समूह को कम वस्तुओ वाले समूह की अपेक्षा प्राथमिकता दे।[2]

वस्तुत क्रमसूचक उपयोगिता (ordinal utility) की अवधारणा को गत चार-पाच दशको मे ही लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इस विश्लेषण को उपयोगी मानने वाले अर्थशास्त्रियों का ऐसा मत है कि उपयोगिता का सख्यासूचक माप लिए बिना भी हम इस विश्लेषण के माध्यम से एक उपभोक्ता के व्यवहार की विवेकशीलता का परीक्षण कर सकते हैं। इस विश्लेषण के अतर्गत सर्वाधिक लोकप्रियता अनधिमान वक्रो या तटस्थता वक्रो (indifference curves) को प्राप्त हुई है जिनकी व्याख्या हम अध्याय के शेष भाग में प्रस्तुत करेंगे।

अनधिमान वक्रो को सर्वप्रथम 19वी शताब्दी के अत मे एजवर्थ ने रेखागणितीय रूप में प्रस्तुत किया था। बाद मे 1909 में परेटो ने उन्हें अपनी पुस्तक 'Manuel d' Economie Politique' मे प्रयुक्त किया। परतु अनधिमान या तटस्थता वक्रो को आग्लभाषी जगत में लोकप्रियता प्रदान करने का श्रेय जे० आर० हिक्स को

2 Josef Hadar Mathematical Theory of Economic Behaviour (1971) pp 175-76

दिया जाना चाहिए। हम नीचे अनधिमान वक्र की परिभाषा, विशेषताओं आदि का वर्णन करने के पश्चात् यह देखेंगे कि इनके सदर्भ में कोई भी उपभोक्ता किस प्रकार अपनी साम्य अथवा इष्टतम स्थिति में पहुंचता है। इसी अध्याय में यह भी बताया जाएगा कि उपभोक्ता की मौद्रिक आय अथवा किसी एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता की साम्य स्थिति में क्या परिवर्तन हो सकते हैं।

4 3 अनधिमान वक्रों की परिभाषा एवं इनके लक्षण
(Meaning and Characteristics of Indifference Curves)

अनधिमान वक्र का अर्थ

प्रारंभ में परेटो ने भी मार्शलीय उपयोगिता सिद्धान्त के अनुरूप ही अपने विचार व्यक्त किए थे। परंतु बाद चलकर परेटो ने एक वस्तु के उपभोग के विश्लेषण तक सीमित न रहकर पूरक एवं स्थानापन्न वस्तुओं की चर्चा करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने एक अक्ष पर कुल उपयोगिता को तथा दूसरे अक्ष पर वस्तु की इकाइयों का माप लेने की अपेक्षा दो वस्तुओं का उदाहरण लिया तथा इनसे प्राप्त उपयोगिता को उपयोगिता तल (utility surface) पर मापा। उन्होंने यह मान्यता ली कि दो वस्तुओं के मध्य स्थानापन्नता (substitution) होती है। अन्य शब्दों में, जब उपभोक्ता किसी एक वस्तु (मान लीजिए X) की अधिक मात्रा का उपभोग करना चाहता है तो उसे दूसरी अन्य वस्तु या वस्तुओं (Y या Z अथवा दोनों) की थोड़ी बहुत इकाइयों का परित्याग करना ही होता है। यह स्थानापन्नता ही अनधिमान वक्र का आधार है। ऐसी स्थिति, जिसमें दो वस्तुओं, X तथा Y, को एक उपयोगिता तल पर प्रस्तुत किया जाता है, चित्र 4 1 में दर्शायी गई है।

चित्र 4 1 में कुल उपयोगिता-तल (total utility surface) OXZY है। जब X की OX_1 इकाइयां तथा Y की OY_3 इकाइयां खरीदी जाती हैं तो उपभोक्ता को प्राप्त कुल उपयोगिता JJ के अनुरूप होती है। अब मान लीजिए उपभोक्ता X की मात्रा OX_2 तक बढ़ाना चाहता है। इसके लिए उसे Y की मात्रा को घटाकर OY_2 तक लाना होगा। परंतु इस परिवर्तन के उपरांत उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर उतना ही रह सकता है। चित्र 4 1 में X की मात्रा OX_2 व Y की मात्रा OY_2 होने पर संतुष्टि का स्तर KK' होगा। इसी प्रकार X की मात्रा OX_3 तथा Y की मात्रा OY_1 होने पर भी संतुष्टि का स्तर वही रहता है (JJ'=KK'=SS') हालांकि अब X की मात्रा और अधिक तथा Y की मात्रा और भी कम हो गई है। यदि इन तीन स्थितियों को क्रमशः A, B व C के रूप में व्यक्त किया जाए, तो चूंकि इनमें से प्रत्येक उपभोक्ता को उतनी ही उपयोगिता प्रदान करती है, हम उपभोक्ता के अधिमान फलन (preference function) को निम्न रूप में व्यक्त कर सकते हैं।

$$A \sim B \sim C$$

सका यह अर्थ है कि A, B व C के मध्य उपभोक्ता पूर्णत तटस्थ है। यदि हम K व S को मिलाकर एक खण्डित रेखा (dashed line) खींच दें तो उस पर पन X तथा Y के सभी संयोगों से उपभोक्ता को समान उपयोगिता प्राप्त होगी।
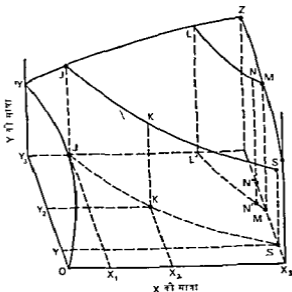
चित्र 4.1 स्थिर उपयोगिता वाली समुच्चय रेखाओं वाला उपयोगिता तल

उपरोक्त चित्र में J K'S' वक्र के सभी विंदुओं पर उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होने के कारण वह इन पर तटस्थ रहना चाहेगा (JJ' = KK' = SS')। परन्तु L'N M' वक्र पर उसे कम से कम एक वस्तु की अधिक इकाइयां प्राप्त होती हैं जबकि दूसरी वस्तु की उतनी ही इकाइयां मिलती हैं। इसके फलस्वरूप उपभोक्ता को L'N'M' वक्र पर J'K'S' की अपेक्षा अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। फलत वह J K S' की अपेक्षा L'N'M' पर जाना चाहेगा। ये वक्र—J'K'S' या L'N'M' अनधिमान या तटस्थता वक्र कहलाते हैं क्योंकि एक निर्दिष्ट वक्र के प्रत्येक विंदु पर उपभोक्ता तटस्थ रहता है जबकि दो वक्रों के बीच वह ऊंचे वक्र पर जाना चाहता है क्योंकि ऊंचे वक्र पर उसे कम से कम एक (या दोनों ही) वस्तु की अधिक मात्रा प्राप्त होती है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर एक अनधिमान वक्र की निम्नांकित परिभाषा दे सकते हैं—

"एक अनधिमान या तटस्थता वक्र ऐसे विंदुओं—अथवा वस्तुओं के विभिन्न संयोगों—का विंदु-पथ है जिनमें से प्रत्येक से उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है, अथवा जिनके मध्य उपभोक्ता तटस्थ रहता है।"

अनधिमान वक्र के प्रत्येक बिंदु पर तटस्थ रहने का कारण यही है कि वक्र पर एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर जाने पर उपभोक्ता को जहां एक वस्तु की अधिक मात्रा प्राप्त होती है वहीं उसे दूसरी वस्तु की कुछ इकाइयों का परित्याग करना होता है।

सुविधा के लिए हिक्स एक अनधिमान मानचित्र (indifference map) को प्रस्तुत करते हैं जिसमें अनधिमान वक्रों के एक आंशिक समूह को शामिल किया जाता है। चित्र 4.2 में इस प्रकार का आंशिक समूह प्रस्तुत किया गया है जिसमें दोनों अक्षों पर X एवं Y की मात्राएं दर्शायी गई हैं। चित्र 4 2 में I, II, III तथा IV ऐसे अनधिमान वक्र हैं जिन पर उपभोक्ता को बढ़ते हुए क्रम में उपयोगिता प्राप्त होती है। अन्य शब्दों में, इस आंशिक समूह वाले अनधिमान मानचित्र में सबसे अधिक संतुष्टि अनधिमान वक्र IV से तथा सबसे कम उपयोगिता I से प्राप्त होती है। चित्र 4 2 में प्रत्येक उदासीनता अथवा अनधिमान वक्र X तथा Y के समस्त संभावित संयोगों को दर्शाता है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।[3]
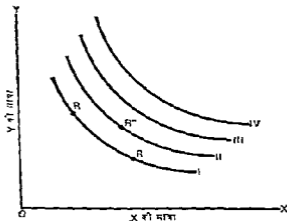
चित्र 4 2 अनधिमान वक्रों का आंशिक समूह

यहां यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि अनधिमान वक्र I की अपेक्षा अनधिमान वक्र II से उपभोक्ता को अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है, तथापि I से ऊपर तथा II से नीचे असंख्य अनधिमान वक्र हो सकते हैं, परन्तु इन सबसे प्राप्त संतुष्टि या उपयोगिता अनधिमान वक्र I से अधिक, तथा अनधिमान वक्र II से कम प्राप्त होगी। अतः 'लालचीपन' की शर्त यहां पूरी होगी तथा प्रत्येक स्थिति में उपभोक्ता I से ऊपर जाना चाहेगा। वह किस उदासीनता वक्र पर तथा किस बिंदु पर साम्य स्थिति

3. क्रमसूचक (ordinal) उपयोगिता के आधार पर सामान्यतः एक अनधिमान वक्र को उपयोगिता फलन के रूप में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

$$C=U\ (X_1, X_2, X_3, \ldots, X_n)$$

उक्त फलन में C एक स्थिर तथा धनात्मक मूल्य है।

प्राप्त करता है यह वस्तुतः उसकी मौद्रिक आय एवं वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करेगा।

अनधिमान या तटस्थता वक्रों के लक्षण
(Characteristics of Indifference Curves)

साधारण तौर पर अनधिमान वक्रों के निम्न चार लक्षण महत्वपूर्ण माने जाते हैं (1) एक अनधिमान वक्र नीचे दाईं ओर झुकता है, यानी उसका ढलाव ऋणात्मक होता है। (2) साधारणतया अनधिमान वक्र मूल बिंदु की ओर उन्नतोदर (convex) होते हैं। (3) दो अनधिमान वक्र परस्पर काट नहीं सकते। (4) ऊंचे अनधिमान वक्र पर सदैव नीचे वाले वक्र की अपेक्षा अधिक संतुष्टि मिलती है।

1 अनधिमान वक्र का ढलाव ऋणात्मक (negative) होता है इसका यह भी अर्थ है कि अनधिमान वक्र नीचे दाईं ओर झुकते हैं। इसका कारण यह है कि उपभोक्ता X की अधिक इकाइया प्राप्त करके तभी तटस्थ रह सकता है जब वह Y की कुछ इकाइयों का परित्याग करे। केवल उसी स्थिति में वह अनधिमान वक्र के सभी बिंदुओं पर (समान संतुष्टि मिलने के कारण) तटस्थ रह सकता है जब एक वस्तु की अधिक इकाइया लेने हेतु उसे दूसरी वस्तु का परित्याग करना पड़े। यही कारण है कि अनधिमान या तटस्थता वक्र नीचे दाईं ओर झुकता है।[4]

2 एक तटस्थता या अनधिमान वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर (convex) होता है न केवल अनधिमान वक्रों का ढलान ऋणात्मक होता है, अपितु साधारण तौर पर अनधिमान वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर भी होते हैं। अन्य शब्दों में, जैसे-जैसे

4 निम्न तीन वैकल्पिक स्थितियों में उपभोक्ता को तटस्थता वक्र पर उत्तरोत्तर अधिक उपयोगिता मिलती है।
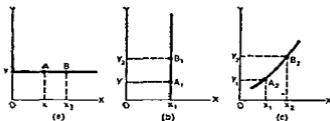
चित्र (a) में A तथा B बिंदुओं की तुलना करने पर उपभोक्ता B पर जाना चाहेगा क्योंकि Y की मात्रा स्थिर रहने पर भी B पर A की तुलना में अधिक X प्राप्त होता है। इसी प्रकार चित्र (b) में A_1 तथा B_1 के बीच X की मात्रा वही रहने पर भी Y की मात्रा अधिक हो जाने के कारण उपभोक्ता तटस्थ नहीं रह सकता। चित्र (c) में B_2 पर A_2 की अपेक्षा X तथा दोनों ही की अधिक इकाइयां प्राप्त होती हैं। अस्तु तीनों ही चित्रों में प्रस्तुत रेखाएं अनधिमान वक्र नहीं हैं।

हम अनधिमान वक्र पर ऊपर से नीचे की ओर जाते हैं इसका ढलान कम होता जाता है।[5] इसका कारण यह है कि जैसे जैसे उपभोक्ता X का उपयोग बढ़ाता जाता है तथा Y के उपभोग में कमी करता है यह X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए उत्तरोत्तर कम इकाइयों का परित्याग करना चाहेगा। इसके लिए हिक्स ने स्थानापत्ति की सीमांत दर की अवधारणा का प्रतिपादन किया है जिसका अर्थ X की अतिरिक्त इकाई के लिए Y की त्यागी जाने वाली इकाइयों के अनुपात $\left(\frac{dY}{dX} \text{ या } \frac{\Delta Y}{\Delta X} \right)$ से है। चूंकि X की मात्रा बढ़ाने हेतु Y की मात्रा में कमी करनी पड़ती है, स्थानापत्ति की सीमांत दर सदैव ऋणात्मक रहती है $(\Delta Y < 0)$। अनधिमान वक्र की उन्नतोदरता का अर्थ यह है कि X की निर्दिष्ट अतिरिक्त इकाई के लिए Y की उत्तरोत्तर कम इकाइयों का परित्याग किया जाएगा। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो भी यह कहा जा सकता है कि जैसे जैसे X का उपभोग अधिक तथा Y का उपभोग कम होता है वैसे-वैसे Y की तुलना में X की (सापेक्ष) उपयोगिता घटती जाती है।

एम० ब्लॉग का कथन है कि चूंकि बहुधा अनधिमान मानचित्रों को हम प्रत्यक्षतः नहीं देख सकते अनधिमान वक्र की उन्नतोदरता का अनुमान केवल लोगों की सामान्य प्रवृत्ति एवं उनके व्यवहार के आधार पर ही लगाया जा सकता है।[6]

3 दो अनधिमान परस्पर काट नहीं सकते दो अनधिमान वक्रों का परस्पर प्रतिच्छेदन संभव नहीं है क्योंकि इस प्रतिच्छेदन के फलस्वरूप किसी अनधिमान वक्र पर उपयोगिता की स्थिर रहने वाली मान्यता का उल्लंघन हो जाता है। चित्र 4 3 के माध्यम से इसे और अधिक स्पष्ट किया गया है। इसमें दो अनधिमान वक्र I_1 व I_2 प्रस्तुत किए गए हैं जो दोनों ही ऋणात्मक ढलानयुक्त तथा मूल बिंदु से उन्नतोदर हैं।
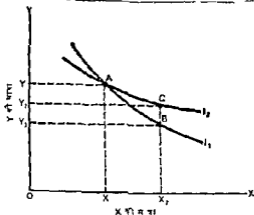
चित्र 4 3 वक्रों का प्रतिच्छेदन संभव नहीं है

5 इसकी विस्तृत विवेचना हेतु आगे स्थानापत्ति की सीमांत दर (marg nal rate of substi tution) का विवरण देखें।

6 Mark Blaug Economic Theory in Retrospect, (Second Edition, 1968) p 350

चित्र 4 3 मे तीन स्थितिया, A B तथा C प्रस्तुत की गई हैं। पहले अनधिमान वक्र I_1 को लीजिए। इसके दो बिंदुओ A तथा B पर उपभोक्ता को समान सतुष्टि प्राप्त होने के कारण वह दोनों के मध्य तटस्थ है (A ~ B)। इसी प्रकार अनधिमान वक्र I_2 के दो बिंदुओ A तथा C के मध्य उपभोक्ता तटस्थ है (A ~ C)। सक्रमकता (transitivity) के नियम के अनुसार इस उपभोक्ता को B तथा C के मध्य भी तटस्थ रहना चाहिए। परतु क्या यह सभव है ? कदापि नहीं। क्योंकि B की अपेक्षा उसे C पर अधिक सतुष्टि मिलती है। (B पर उपभोक्ता को OX_2 इकाई X को तथा OY_2 इकाई Y की मिलती है। C पर X की मात्रा वही रहने पर भी Y की मात्रा बढ जाने से वह C पर जाना चाहेगा।)

4 नीचे वाले अनधिमान वक्र की तुलना मे ऊचे अनधिमान वक्र को प्राय मिक्ता दी जाती है यह ऊपर बताया जा चुका है कि किसी भी अनधिमान वक्र के सभी बिंदुओं पर उपभोक्ता को समान सतुष्टि प्राप्त होने के कारण वह इनके मध्य तटस्थ रहता है। इसका कारण यह बतलाया गया है कि अनधिमान वक्र के एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर जाने पर जहा उस एक वस्तु का परित्याग करने पर ही दूसरी वस्तु की अधिक इकाइया प्राप्त हो सकती हैं। परतु यदि वह एक अनधिमान वक्र से दूसरे पर जाना चाहे तो उसकी तटस्थता का लोप हो जाएगा।

चित्र 4.2 को पुन देखिए। अनधिमान वक्र I के दो बिंदुओं R तथा R से उपभोक्ता को समान सतुष्टि प्राप्त होती है। परतु क्या उपभोक्ता R तथा R (जो II या ऊचे अनधिमान वक्र पर स्थित है) पर भी समान सतुष्टि मिलती है ? स्पष्ट है नहीं। क्योंकि R की अपेक्षा R पर X की मात्रा वही रहने पर भी Y की मात्रा अधिक मिलती है। इस प्रकार ऊचे अनधिमान वक्र पर दोनों ही वस्तुओ या कम से कम एक वस्तु की अधिक मात्रा मिलने के कारण उपभोक्ता ऊचे वक्र पर जाना चाहेगा। यहा यह उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा कि अनधिमान वक्रों का समानातर होना आवश्यक नहीं है। दो अनधिमान वक्रो का ढलान भिन्न होने पर भी ऊचे वक्र पर उसे अधिक सतुष्टि प्राप्त होगी।

4 4 क्या अनधिमान वक्र गोलाकार हो सकते हैं ?
(Can Indifference Curves be Circular ?)

कुछ पाठयपुस्तकों मे गोलाकार अनधिमान वक्र देखकर बहुधा विवाद उत्पन्न हो जाता है। यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि अनधिमान वक्र का ढलान ऋणात्मक होने के कारण उपभोक्ता एक वस्तु की अतिरिक्त इकाइया तभी प्राप्त कर सकता है जबकि वह किसी अन्य वस्तु की कुछ इकाइयों का परित्याग करे। केवल उसी दशा मे उपभोक्ता इस वक्र के विभिन्न बिंदुओं पर उदासीनता प्रदर्शित कर सकता है। चित्र 4 4 मे एक गोलाकार वक्र को प्रस्तुत किया गया है। इसके पीछे मुख्य मान्यता यह ली गई है कि सैद्धांतिक दृष्टि से तो किन्हीं परिस्थितियों में अनधिमान वक्र गोलाकार हो सकता है परतु व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा हो नहीं पाता।

करते हुए अधिकतम (सख्यासूचक) उपयोगिता प्राप्त करे। उन्होने यह बताया था कि उपभोक्ता की इष्टतम अथवा साम्य स्थिति वह मानी जाती है जिसमे सभी वस्तुओ की सीमात उपयोगिताओ तथा कीमतो का अनुपात समान हो।

जब उपयोगिता के सख्यासूचक (card nal) माप की मान्यता को छोडकर हम क्रमसूचक (ordinal) उपयोगिता के आधार पर उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण करते है तो उपभोक्ता की साम्य स्थिति कहा होगी ? इसी प्रश्न का उत्तर हम वर्तमान अनुभाग मे प्राप्त करेंगे।

सर्वप्रथम तो यह स्पष्ट कर देना होगा कि क्रमसूचक उपयोगिता के सदर्भ म भी उपभोक्ता को निर्दिष्ट बजट सीमा या प्रतिबध मे रहकर ही वस्तुओ का उपभोग करना होता है। हमने अध्याय 3 के समीकरणो (3 1) व (3 2) मे बतलाया था कि प्रत्येक उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओ (X_1, X_2 ,X_n) का चुनाव इस प्रकार करना होता है कि सीमित बजट (आय) यानी $M \geqslant P_1X_1+P_2X_2+ \quad +P_nX_n$ के अतर्गत ही उसे अधिकतम सतुष्टि या उपयोगिता प्राप्त हो जाये। वर्तमान सदर्भ मे उसे केवल दो वस्तुओ (X तथा Y) के उपयोगिता फलन पर विचार करते हुए निर्दिष्ट आय या बजट प्रतिबध के अतर्गत अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करनी है। यानी उसका उद्देश्य फलन एव सीमा इस प्रकार है—

$$\left.\begin{array}{l}\text{Maximize } U=f\ (X,Y) \\ \text{Subject to} \quad M \geqslant P_x X+P_y Y\end{array}\right\} \qquad (4\ 5)$$

उपभोक्ता के समक्ष एक समूचा अधिमान फलन (preference function) हो सकता है परतु उसकी मौद्रिक आय उसे एक सीमा से आगे जाने नही देती।

सर्वप्रथम हम उपभोक्ता की बजट सीमा या Budget Constraint को लेंगे। समीकरण (4 5) मे प्रस्तुत बजट सीमा को पुन लिखा जा सकता है। अस्तु

$$M-P_x X=P_y Y$$

अथवा
$$\frac{M}{P_y}-\frac{P_x}{P_y}X=Y \qquad (4\ 6)$$

समीकरण (4 6) बजट सीमा को प्रस्तुत करती है जिस पर रहकर ही उपभोक्ता X एव Y की मात्राए खरीद सकता है। इसे चित्र रूप मे चित्र 4 6 (a) मे प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त समीकरण एक सरल रेखा का समीकरण है जिसमे $\frac{M}{P_y}$ को Y अक्ष का अन्त खड (intercept) माना जाएगा तथा $\frac{-P_x}{P_y}$ सरल रेखा का ढलान होगा। इसका अर्थ यो भी लगाया जा सकता है कि यदि X की मात्रा शून्य हो तो उपभोक्ता $\frac{M}{P_y}$ के समान Y की मात्रा खरीद कर समूची आय (M) को Y पर खर्च

करेगा। परन्तु जैसे-जैसे X की मात्रा धनात्मक होती जाती है, Y की मात्रा घटती जाती है।

(a) बजट रेखा (b) अधिमान फलन
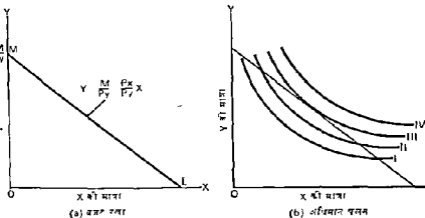
चित्र 4.6 उपभोक्ता की बजट रेखा एवं अधिमान फलन

अस्तु, बजट रेखा ML वह परिधि है जिसके बाहर जाने की उपभोक्ता की सामर्थ्य नहीं है। चित्र 4.6 (b) में उपभोक्ता का चार अधिमान वक्र वाला अधिमान फलन (preference function) प्रस्तुत किया गया है। उपभोक्ता सदैव सर्वोच्च अधिमान वक्र (IV) पर जाना चाहता है परंतु यह तभी संभव है जबकि उसकी आय पर्याप्त हो। इसीलिए हमने चित्र 4.7 में दोनों को एक साथ प्रस्तुत किया है।
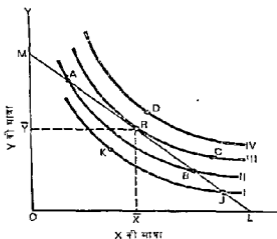
चित्र 4.7 : उपभोक्ता की साम्य (इष्टतम) स्थिति

चित्र 4.7 में उपभोक्ता के अधिमान फलन के अंतर्गत चार अधिमान वक्र प्रस्तुत किए गए हैं। यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता अधिमान वक्र IV पर नहीं जा सकता

क्योंकि उस पर स्थित कोई भी संयोग खरीदने हेतु उसके पास पर्याप्त आय नहीं है। इससे नीचे वाले वक्र पर भी केवल R बिंदु ही उपभोक्ता की पहुंच के भीतर है क्योंकि अन्य बिंदुओं (जैसे C) पर विद्यमान वस्तु संयोग खरीदने हेतु उसके पास पर्याप्त आय नहीं है। संक्षेप में, यद्यपि उपभोक्ता उच्चतर अनधिमान वक्र पर जाना चाहता है, फिर भी वह वक्र III से आगे नहीं जा सकता। अनधिमान वक्र III पर भी वह केवल एक बिंदु (R) ही उसकी पहुंच के भीतर है। वस्तुतः, R ही उपभोक्ता की इष्टतम (साम्य) स्थिति को व्यक्त करता है।

अनधिमान वक्र I पर उपभोक्ता J बिंदु पर रहकर अपनी समूची आय को व्यय कर देता है फिर भी वह अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाता। वक्र II पर (जो I से ऊंचा होने के कारण अधिक संतुष्टि प्रदान करता है) बिंदु A व B पर उपभोक्ता की समूची आय खर्च हो जाती है परंतु इनकी तुलना में बजट रेखा पर स्थित एक अन्य बिंदु R उसे अधिक संतुष्टि मिलती है क्योंकि यह अनधिमान वक्र III पर स्थित है। इस प्रकार, विवेकपूर्ण व्यवहार के लिए यह पर्याप्त नहीं है कि उपभोक्ता अपनी संपूर्ण आय को X तथा Y पर व्यय कर दे। यह भी जरूरी है कि वह इस आय का उपभोग इस प्रकार करे कि उच्चतम संतुष्टि स्तर पर प्राप्त हो जाए। यह स्थिति केवल R पर ही प्राप्त हो सकती है।

चित्र 4.7 में R बिंदु उस स्थिति को व्यक्त करता है जहां अनधिमान वक्र III को बजट रेखा स्पर्श करती है। अन्य शब्दों में, उपभोक्ता की इष्टतम स्थिति वहां है जहां बजट रेखा तथा अनधिमान वक्र के ढलान समान हैं। अर्थात्

$$\frac{P_x}{P_y} = \frac{\partial U}{\partial x} \Big/ \frac{\partial U}{\partial y} = \frac{-dY}{dx} \qquad \ldots(4.7)$$

पाठकों को स्मरण होगा कि उपभोक्ता की इष्टतम स्थिति की यही आवश्यक शर्त हमें मार्शलीय विश्लेषण में भी प्राप्त हुई थी (देखिए समीकरण 3.7)। इस प्रकार मार्शल तथा हिक्स के विश्लेषण हमें दो वस्तुओं के संदर्भ में समान निष्कर्ष प्रदान करते हैं। परंतु वस्तुतः इनमें दृष्टिकोण के अंतर की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। समीकरण (3.7) का निष्कर्ष इस मान्यता पर आधारित था कि वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता को मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है जबकि समीकरण (4.7) के अंतर्गत हम क्रमसूचक उपयोगिता का दृष्टिकोण लेते हुए यह तर्क देते हैं कि इष्टतम स्थिति के लिए दोनों वस्तुओं के मूल्य अनुपात (बजट रेखा का ढलाव) एवं सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy}) में समानता होनी चाहिए। यही नहीं, इसके निर्धारित पर्याप्त शर्त भी पूरी होनी चाहिए।[7]

7 द्वितीय क्रम की (Second order) शर्त के लिए यह आवश्यक है—

$$\frac{d^2U}{dx^2} = \frac{\partial^2U}{\partial x^2} + \frac{2\partial^2U}{\partial x \partial y}\left(-\frac{P_x}{P_y}\right) + \frac{\partial^2U}{\partial y^2}\left(-\frac{P_x}{P_y}\right)^2 < 0$$

जिसका अर्थ यह है कि बजट रेखा व अनधिमान वक्र के स्पर्श बिंदु R से आगे बजट रेखा का ढलान अनधिमान वक्र का ढलान से अधिक होना चाहिए।

एक अन्य उदाहरण द्वारा यह बतलाया जा सकता है कि चित्र 4 7 मे A, B या J बिंदु क्योंकर इष्टतम स्थिति को व्यक्त नही करते । बिंदु A पर बजट रेखा अनधिमान वक्र II को ऊपर से काटती है यानी वहा बजट रेखा का ढलान अनधिमान वक्र के ढलान से अधिक है,

$$\text{At} \quad A \quad \frac{\partial U}{\partial X} \Big/ \frac{\partial U}{\partial Y} = \frac{-dY}{dX} > \frac{P_x}{P_y}$$

और इसलिए उपभोक्ता की कुल उपयोगिता मे X की मात्रा बढाने (तथा Y की मात्रा कम करने पर वृद्धि हो जाएगी । फलत बजट रेखा ML के सहारे-सहारे चलकर वह R तक पहुचता है । इसके विपरीत J या B बिंदु पर बजट रेखा का ढलान अनधिमान वक्र के ढलान स कम है $\left[\frac{\partial U}{\partial x} \Big/ \frac{\partial U}{\partial y} - \frac{d}{d_x} < \frac{P_x}{P_y}\right]$ और इसलिए वह X की मात्रा मे कमी Y की मात्रा मे वृद्धि करके प्राप्त कुल उपयोगिता म वृद्धि कर सकता है । इसके लिए उस बजट रेखा के सहारे-सहारे ऊपर बाईं ओर तब तक जाना होगा जब तक कि अनधिमान वक्र व बजट रेखा के ढलान समान नही हो जाते ।

4 7 मौद्रिक आय के अभाव मे साम्य स्थिति

(Equilibrium in the Absence of Money Income)

उपरोक्त विश्लेषण मे यह मान्यता ली गई थी कि उपभोक्ता निर्दिष्ट मौद्रिक आय के अतर्गत वस्तुओ के निर्दिष्ट मूल्यो के अनुसार X तथा Y का उपभोग इस प्रकार करता है कि उसे प्राप्त उपयोगिता अधिकतम हो जाए । परतु यदि उपभोक्ताओ को ऐसी स्थिति मे रख दिया जाये जहा उनके पास मुद्रा न हो तथा वस्तु विनिमय (barter) के आधार पर उन्हे वस्तुओ का इष्टतम सयोग चुनना हो तो क्या होगा ? अर्थशास्त्रियो की ऐसी धारणा है कि मौद्रिक आय तथा मुद्रा के रूप मे व्यक्त मूल्यो के अभाव मे सीमातता से सबद्ध शर्तों के माध्यम स उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण किया जा सकता है ।

चित्र 4 8 दो ऐसे उपभोक्ताओ की इष्टतम स्थिति को दर्शाता है जिनके समक्ष अधिमान फलन तो हैं लेकिन जो वस्तुओ के विनिमय मूल्यो से अनभिज्ञ हैं । ये उपभोक्ता X तथा Y के इष्टतम सयोग प्राप्त करना चाहते हैं । दोनो ही उपभोक्ताओ के अधिमान फलन एक बॉक्स मे प्रस्तुत किये गये हैं जिसे एजवर्थ बॉक्स कहते हैं । इसमे OX तथा OY अक्षो पर A के अधिमान फलन तथा O L एव O N अक्षो पर B के अधिमान फलन चित्रित किये गए हैं । दोनो उपभोक्ताओ को परस्पर विनिमय के द्वारा (सयुक्त रूप मे) अधिकतम सतुष्टि तब प्राप्त होती है जब X व Y की सीमात प्रतिस्थापन दरें दोनो उपभोक्ताओ के लिए समान हो, अर्थात

$$\frac{-dY}{dx} = \frac{\partial U}{\partial x} \Big/ \frac{\partial U}{\partial Y} \text{for } A = \frac{\partial U}{\partial x} \Big/ \frac{\partial U}{\partial Y} \text{ for } B \qquad (4\,8)$$
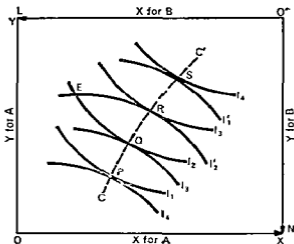
चित्र 4 8 वस्तु विनिमय के अतर्गत उपभोक्ताओं का साम्य

समीकरण (4 8) का यह भी अर्थ है कि जिस स्तर पर दोनो उपभोक्ताओं के अनधिमान वक्रों के ढलान समान हो, यानी दोनो उपभोक्ताओं के लिए सीमात प्रतिस्थापन दरें समान हों वही दोनो इष्टतम स्थिति प्राप्त करेंगे ।

चित्र 4 8 मे A के अनधिमान वक्र I_1 से I_4 तक हैं जबकि B के अनधिमान वक्र I_1 से लेकर I'_4 तक हैं । क्रमश P, Q, R तथा S पर इन वक्रो के ढलान समान हैं । अन्य शब्दो में, ये चारो ही उपभोक्ताओ के लिए साम्य अथवा इष्टतम स्थितिया हैं । इन्हें मिलाने पर हमे CC' वक्र प्राप्त होता है जो प्रसंविदा वक्र (contract curve) कहलाता है । यह उल्लेखनीय है कि CC' के प्रत्येक बिंदु पर दोनों ही उपभोक्ता इष्टतम स्थिति में हैं अर्थात दोनो को प्राप्त कुल उपयोगिता अधिकतम होती है । यह बतला देना भी आवश्यक है कि X व Y की कुल मात्राए स्थिर हैं, और इसलिए यदि हम C से C' की ओर ले जाए तो A को प्राप्त कुल उपयोगिता में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी, परतु B को प्राप्त उपयोगिता घटती जाएगी । इसके विपरीत C' से C की ओर आने पर A को प्राप्त सतुष्टि मे उत्तरोत्तर कमी होगी जबकि B को प्राप्त उपयोगिता बढती जायेगी ।

परन्तु यदि A तथा B प्रसंविदा वक्र पर स्थित न हो तो यह सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि वहा दोनो को प्राप्त सयुक्त उपयोगिता CC' की तुलना मे कम होगी । उदाहरण के लिए, बिंदु E पर दोनों के अनधिमान वक्र परस्पर स्पर्श न करके प्रतिच्छेद करते हैं । E बिंदु पर सीमात प्रतिस्थापन दरें समान नहीं हैं । इस स्थिति मे A अपने I_2 पर तथा B भी I'_2 पर स्थित है । यदि इनकी स्थिति E से बदल कर R पर लाई जाय तो B को प्राप्त कुल उपयोगिता वही रहेगी (वह I'_2 पर ही स्थित रहता) जबकि A ऊचे यानी I_3 अनधिमान वक्र पर पहुच जायेगा । इसी

प्रकार यदि साम्य स्थिति E न होकर Q हो तो A उसी (I_2) वक्र पर रहेगा जबकि B ऊँचे यानी I_3 पर आ जाएगा। इस प्रकार प्रसंविदा वक्र पर R या Q बिंदु पर लाकर दोनों में से किसी एक की प्राप्त कुल उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है जबकि दूसरे की स्थिति यथावत् रहती है। यह भी संभव है कि E से हटाकर उपभोक्ताओं को I_2 व I'_2 के बीच में प्रसंविदा वक्र पर कहीं लाया जाकर दोनों ही की प्राप्त उपयोगिता के स्तर में वृद्धि कर दी जाये।

4.8 कोणीय समाधान
(The Corner Solution)

अब तक हमने उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण में यह मान्यता ली थी कि उपभोक्ता की इष्टतम स्थिति X तथा Y के उस संयोग पर होगी जहां प्रथम क्रम व द्वितीय क्रम की दोनों ही शर्तें पूरी होती हों। यह स्मरण कीजिए कि चित्र 4.7 में ये दोनों शर्तें R बिंदु पर पूरी हुई थी।

परन्तु दो स्थितियां ऐसी हो सकती हैं जहां दोनों में से एक ही शर्त पूरी होने के कारण उपभोक्ता X तथा Y दोनों वस्तुओं का संयोग लेने की अपेक्षा दोनों में से एक वस्तु लेने पर ही अधिकतम उपयोगिता प्राप्त कर सकता है। प्रथम स्थिति (चित्र 4.9 (a)) में उपभोक्ता के अनधिमान वक्र मूल बिंदु से नतोदर (concave) हैं। जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, ऐसी स्थिति में सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy}) बढ़ती
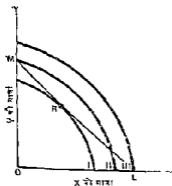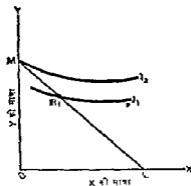
चित्र 4.9 कोणीय समाधान

जाती है। इस चित्र में R_1 बिंदु पर बजट रेखा (ML) अनधिमान वक्र I को स्पर्श करती है (यानी $MRS_{xy} = P_x/P_y$)। परन्तु R_1 पर उपभोक्ता की साम्य स्थिति स्थिर नहीं रह सकती। R_1 पर साम्य स्थिति की द्वितीय क्रम की शर्त (second order condition) पूरी नहीं होती। इसलिए उपभोक्ता अनधिमान वक्र II पर जा सकता है जहां M बिंदु पर उसे I की तुलना में अधिक संतुष्टि प्राप्त हो सकेगी।

परतु यदि वह L_2 पर जाए तो निर्दिष्ट आय में वह सर्वोच्च (प्राप्य) अनधिमान वक्र पर पहुच जाएगा। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता केवल X का उपभोग करके भी अधिकतम उपयोगिता प्राप्त कर सकेगा।

चित्र 4 9 (b) को देखिए। इसमे R_1 बिंदु पर उपभोक्ता सारी आय को खर्च करके भी नीचे वाले अनधिमान वक्र पर ही रहता है। यद्यपि चित्र 4.9 (b) मे ये वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर हैं तथापि कही भी प्रथम क्रम की अथवा आवश्यकता शर्त पूरी नहीं होती। अन्य शब्दो में चित्र मे किसी भी स्थिति में अनधिमान वक्र को बजट रेखा स्पर्श नही करती। परतु R_1 अथवा M पर द्वितीय क्रम की या पर्याप्त शर्त पूरी हो सकती है। फिर भी M अपेक्षाकृत ऊचे अनधिमान वक्र पर स्थित होने के कारण उपभोक्ता वही रहना चाहेगा।

अस्तु, **कोणीय समाधान (corner solution) उस स्थिति का द्योतक है जिसमें उपभोक्ता बजट रेखा के किसी एक छोर पर रहकर केवल X या केवल Y का उपभोग करके भी उच्चतम (सम्भाव्य) अनधिमान वक्र पर पहुच जाता है।** कोणीय समाधान के अतर्गत या तो प्रथम अथवा द्वितीय क्रम की शर्त पूरी नही होती। परतु यहा इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि चित्र 4.9 (a) के अनुरूप अनधिमान वक्र साधारण तौर पर उपभोक्ता की सही मनोदशा को व्यक्त नही करते। व्यावहारिक जीवन मे MRS_{xy} या सीमात प्रतिस्थापन दर घटती है और इसलिए अनधिमान वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर ही होंगे।

4 9 मौद्रिक आय मे परिवर्तन
(Changes in Money Income)

अब तक प्रस्तुत विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता दी हुई मौद्रिक आय व वस्तुओ की कीमतो के सदर्भ मे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। मार्शल की ऐसी मान्यता थी कि किसी वस्तु की माग पर उपभोक्ता की आय का कोई प्रभाव नही होता क्योंकि मुद्रा की सीमात उपयोगिता स्थिर है। इसके विपरीत हिक्स का तर्क यह है कि वस्तु की माग न केवल उसकी कीमत तथा सबधित वस्तुओ की कीमतो पर निर्भर करती है, अपितु इस पर उपभोक्ता की आय का भी प्रभाव होता है, हालाकि आय का कितना प्रभाव होगा यह वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करेगा।

इस अनुभाग मे हम यह बताने का प्रयास करेंगे कि क्रमसूचक (ordinal) उपयोगिता विश्लेषण के सदर्भ मे उपभोक्ता की आय बढाने का उसके व्यवहार पर क्या प्रभाव होगा। ऊपर हमने बजट रेखा के समीकरण (4 6) को निम्न रूप मे व्यक्त किया था—

$$Y=\frac{M}{P_y}-\frac{P_x}{P_y}X \qquad \ldots(4\ 8)$$

इस समीकरण मे $\frac{M}{P_y}$ बजट रेखा का अत खड (intercept) बतलाया गया था जबकि $\frac{P_x}{P_y}$ दोनो वस्तुओ की कीमतो का अनुपात तथा बजट रेखा का (ऋणात्मक) ढलान था। यदि मौद्रिक आय M मे वृद्धि हो जाये, जबकि X एव Y के मूल्य यथावत् रहे तो बजट रेखा का ऊपर की ओर (समानातर रूप मे) विवर्तन हो जाएगा। समानातर रूप मे इसलिए कि P_x तथा P_y के यथावत रखने के कारण बजट रेखा का ढलान तो वही रहता है परतु समीकरण (4 8) मे M के बढ जाने के कारण अत खंड (intercept) ऊपर की ओर विवर्तित होगा। इसी प्रकार M मे कमी हो जाने पर बजट रेखा नीचे की ओर विवर्तित होगी। चित्र 4 10 मे यह सब प्रस्तुत किया गया है।
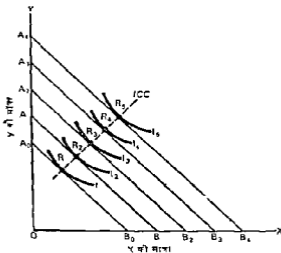
चित्र 4 10 आय मे परिवर्तन तथा आय उपभोग वक्र (ICC)

चित्र 4 10 मे हमने यह मान्यता ली है कि उपभोक्ता के अधिमान फलन मे पाँच अनधिमान वक्र हैं। प्रारंभ मे उसकी बजट रेखा A_0B_0 थी तथा R_1 पर वह साम्य स्थिति मे था जहा प्रथम व द्वितीय क्रम की दोनो ही शर्तें पूरी होती थी। आय बढने पर उपभोक्ता को ऊचे वक्र पर जाने की सामर्थ्य हो जाती है तथा वह R_2 पर चला जाता है। इस प्रकार जैसे जैसे बजट रेखा A_1B_1 से A_2B_2, A B_3, A_4B_4 आदि का रूप लेती है उपभोक्ता उत्तरोत्तर ऊचे अनधिमान वक्र पर पहुचता जाता है। उपर्युक्त विभिन्न आय स्तरो की अनुरूपी साम्य स्थितियों को मिलाने पर हमें आय उपभोग वक्र (Income Consumption Curve) प्राप्त होता है।

आय उपभोग वक्र इस बात को स्पष्ट करता है कि उपभोक्ता की आय मे

परिवर्तन होने पर उपभोक्ता X तथा Y के उपभोग मे किस प्रकार का परिवर्तन होगा। साधारण तौर पर आय (M) मे वृद्धि के (कमी) के कारण X तथा Y दोनो ही के उपभोग मे समानुपाती वृद्धि (कमी) की अपेक्षा की जाती है। परन्तु व्यवहार मे दोनों वस्तुओं के प्रति उपभोक्ता की रुचि इस बात का निर्धारण करेगी कि किस वस्तु की माग मे कितनी वृद्धि होगी। चित्र 4 11 मे तीन प्रकार के आय उपभोग वक्र प्रस्तुत किए गए हैं। चित्र 4 11 (a) मे आय उपभोग वक्र मूल बिंदु से प्रारभ होकर एक सरल रेखा का रूप लेता है जिसका यह अर्थ है कि आय की वृद्धि के साथ X तथा Y की मात्रा मे भी समान अनुपात मे वृद्धि होगी। चित्र 4 11 (b) मे आय उपभोग वक्र घटते हुए ढालयुक्त (आशिक) परवलय (Parabola with a decreasing scope) है जबकि चित्र 4 11 (c) मे यह बढते हुए ढालयुक्त (आशिक) परवलय के रूप मे है। 4 11 (b) मे यह बताया गया है कि आय मे वृद्धि के साथ-साथ उत्तरोत्तर Y की मात्रा मे कम तथा X की मात्रा मे अपेक्षाकृत काफी वृद्धि होती है। 4 11 (c) मे X की मात्रा मे उत्तरोत्तर कम तथा Y की मात्रा मे अधिक वृद्धि होती है। चित्र 4 11 (b) मे X को तथा 4 11 (c) मे Y को श्रेष्ठतर वस्तु माना जा सकता है।
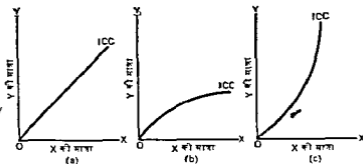
चित्र 4 11 आय उपभोग वक्र के विविध स्वरूप

यदि चित्र 4 11 (a) की सरल रेखा 45° की हो तो इसका यह अर्थ होगा कि जिस अनुपात मे आय बढती है, प्रारभ से लेकर अत तक X तथा Y की समान इकाइयो का उपयोग किया जाएगा। यदि सरल रेखा का कोण 45° से कम (अधिक) हो तो उपभोग मे X का (Y का) अनुपात ऊचा रहेगा। परन्तु यदि आय उपभोग वक्र का ढलान ऋणात्मक हो जाए तो इसका यह अर्थ होगा कि X श्रेष्ठतर वस्तु है लेकिन आय बढने पर भी Y के उपभोग मे कमी करके X की मात्रा बढाई जाएगी। यहा Y एक निकृष्ट (inferior) वस्तु बन जाती है। अस्तु, एक निकृष्ट वस्तु वह वस्तु है जिसकी मात्रा मे आय बढने पर भी कमी हो जाती है। इसकी विस्तृत चर्चा अगले अध्याय मे की जाएगी।

4.10 मूल्य में परिवर्तन
(Changes in Price)

मार्शल ने यह मान्यता ली थी कि किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर साधारणतया उसकी मांगी गयी मात्रा में परिवर्तन हो जाता है। प्रोफेसर हिक्स एवं स्लुट्स्की ने भी मार्शल की इस बात का अनुमोदन किया, परन्तु यह स्पष्ट कर दिया कि कीमत में कमी से (वृद्धि) होने के साथ ही उपभोक्ता की आय में कमी (वृद्धि) नहीं होनी चाहिए। हिक्स तथा स्लुट्स्की ने यह भी बतलाया कि कीमत में परिवर्तन से वस्तु की मात्रा में परिवर्तन की पृष्ठभूमि में दो कारण निहित होते हैं: स्थानापत्ति प्रभाव (substitution effect) तथा आय प्रभाव (income effect)। कीमत कम होने के कारण उपभोक्ता इन दोनों प्रभावों के कारण (सामान्य तौर पर) वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है। इस विषय पर विस्तृत चर्चा अध्याय 5 में की जायेगी।

वर्तमान संदर्भ में हम केवल यही बताने का प्रयत्न करेंगे कि कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता की साम्य स्थिति में परिवर्तन होता है। हिक्स ने कीमत के परिवर्तन से उत्पन्न प्रभावों का विश्लेषण करते हुए दो मान्यताएं ली थीं (i) जब किसी वस्तु (मान लीजिए X) की कीमत में परिवर्तन होता है तो अन्य वस्तुओं की कीमतें यथावत् रहती हैं, तथा (ii) उपभोक्ता की मौद्रिक आय में कोई परिवर्तन नहीं होता। अन्य शब्दों में, हम केवल एक वस्तु की कीमत को परिवर्तनशील मानते हैं तथा उसी में वृद्धि या कमी के प्रभावों का विश्लेषण करते हैं।

समीकरण (4.8) को पुनः देखिए। इसमें बजट रेखा को $Y=\frac{M}{P_y}-\frac{P_x}{P_y}X$ के रूप में परिभाषित किया गया है। यदि इसमें M तथा P_y यथावत् रहें तथा P_x में कमी हो जाये तो इसका यह अर्थ होगा कि बजट रेखा का ढलान कम हो जाएगा।
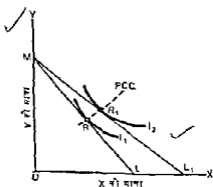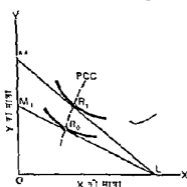
(a) X के मूल्य में कमी (b) Y के मूल्य में वृद्धि

चित्र 4.12 X या Y की कीमत में परिवर्तन के प्रभाव

इसी प्रकार M तथा P_X वही रहे परतु P_Y बढ जाये तो दो प्रभाव होगे : (1) बजट रेखा का अत खड $\left(\frac{M}{P_Y}\right)$ कम होगा, तथा (2) बजट रेखा का ढलान कम होगा। इन दोनो स्थितियो को चित्र 4 12 मे बतलाया गया है।

रेखाचित्र 4 12 (a) X की कीमत मे कमी के प्रभाव को बतलाया गया है। जैसाकि चित्र से स्पष्ट है, X की कीमत मे कमी होने के कारण बजट रेखा घडी की सुइयो की विपरीत दिशा में आवर्तित (rotate) होगी। जैसाकि स्पष्ट है, कीमत में कमी तथा बजट रेखा के आवर्तन के कारण उपभोक्ता ऊचे अनधिमान वक्र पर पहुचने की स्थिति मे होता है तथा उसकी साम्य स्थिति R से बदल कर R_1 हो जाती है। इस प्रकार X की कीमत मे कमी के फ़लस्वरूप उपभोक्ता ऊचे वक्र पर पहुच जाता है तथा X एव Y दोनों की अधिक मात्रा खरीदता है।

अब चित्र 4 12 (b) को देखिए। Y की कीमत मे वृद्धि के फलस्वरूप बजट रेखा का अत खड (intercept) OM से घटकर OM_1 हो जाता है परतु X की कीमत वही रहने के कारण बजट रेखा M_1L हो जाती है जिसका ढलान पूर्व की बजट रेखा से कम है। चित्र 4 12 (b) यह भी बताता है कि Y की कीमत मे वृद्धि तथा बजट रेखा के आवर्तन के कारण उपभोक्ता नीचे वाले अनधिमान वक्र पर आ जाता है तथा उसकी साम्य स्थिति R_1 से बदल कर R_0 हो जाती है। चित्र 4 12 (c) तथा 4 12 (d) मे क्रमश X की कीमत मे वृद्धि तथा Y की कीमत मे कमी के प्रभाव दिखाए गए हैं।
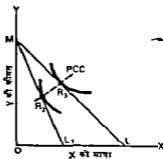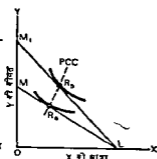
चित्र 4 12 X तथा Y की कीमत में परिवर्तन के प्रभाव

चित्र 4 12 (c) मे X की कीमत मे वृद्धि के फलस्वरूप बजट रेखा का घडी की सुइयों की दिशा मे (clockwise) आवर्तन होता है तथा उपभोक्ता की साम्य स्थिति R_3 से बदलकर नीचे वाले अनधिमान वक्र पर आ जाती है। चित्र 4 12 (d) मे Y की कीमत कम होने पर बजट रेखा का अत खड OM से बढकर OM_1 हो

जाता है परंतु P_x वही रहने के कारण बजट रेखा का आवर्तन होता है, तथा उपभोक्ता की साम्य स्थिति R_4 से हटकर ऊंचे वक्र पर R_5 पर हो जाएगी।

चित्र 4.12 में चारों भाग X अथवा Y की कीमत के परिवर्तन के प्रभावों को दर्शाते हैं। यह स्पष्ट है कि कीमत के परिवर्तन के फलस्वरूप बजट रेखा का आवर्तन होता है तथा उपभोक्ता की साम्य (इष्टतम) स्थिति बदल जाती है। इन साम्य स्थितियों को मिलाने पर जो वक्र प्राप्त होता है उसे कीमत उपभोग वक्र (Price Consumption Curve) कहा जाता है। वस्तुतः कीमत उपभोग वक्र की आकृति एवं ढलान के विषय में कुछ भी निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता। यह वस्तु की प्रकृति एवं दोनों वस्तुओं के परस्पर संबंधों (स्थानापन्न अथवा पूरकता) पर निर्भर करेगा। जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी मांग में परिवर्तन के पीछे आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव निहित होते हैं। इनमें कौन-सा प्रभाव अधिक प्रबल है उसी के आधार पर कीमत उपभोग वक्र (PCC) की आकृति निर्भर करेगी। इस विषय पर विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में की गई है।

समीकरण (5 1) से स्पष्ट है कि वस्तु की कीमत मे होने वाले परिवर्तन का कुल प्रभाव वस्तुत प्रतिस्थापन प्रभाव एव आय प्रभाव का योग है। समीकरण का प्रथम भाग $\left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)$ प्रतिस्थापन प्रभाव है जबकि द्वितीय भाग आय प्रभाव है।

मान लीजिए कि X की कीमत मे कमी होती है। मार्शल के मतानुसार कीमत मे कमी या वृद्धि होते ही उपभोक्ता तत्काल वस्तु की अधिक या कम मात्रा खरीदता है। परतु जैसा कि उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है, स्लुटस्की तथा हिक्स के मतानुसार X की कीमत (P_x) मे होने वाले परिवर्तन का प्रभाव Y की मात्रा पर भी पडता है क्योकि X एव Y दोनो परस्पर स्थानापन्न वस्तुए हैं। इसी प्रकार क्रय शक्ति मे परिवर्तन के कारण भी X की माग प्रभावित होगी। ऐसी स्थिति मे आय प्रभाव वस्तुत प्रतिस्थापन प्रभाव को समर्थन प्रदान करता है तथा $\left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)$ एव $X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)$ दोनो के धनात्मक होने के कारण कीमत कम होने पर वस्तु की माग मे वृद्धि हो जाती है। ऐसी स्थिति मे स्लुट्स्की समीकरण को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकेगा—

$$O< \frac{\partial X}{\partial P_x}=\left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U^\circ-\text{Constant}} + X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)_{\frac{P_x}{P_y}=\text{Const.}}$$

क्योकि $\frac{\partial X}{\partial P_x}=>O, X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right) > O$

इसके विपरीत यदि X की कीमत बढ जाए तो दोनों ही प्रभावो के कारण उपभोक्ता वस्तु की कम मात्रा खरीदेगा तथा स्लुट्स्की समीकरण का स्वरूप इस प्रकार हो जाएगा—

$$O > \frac{\partial X}{\partial P_x} =-\left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U^\circ=\text{Constant}}- X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)_{\frac{P_x}{P_y}=\text{Const.}}$$

क्योकि $\frac{\partial X}{\partial P_x}< O, X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right) <O$

प्रतिस्थापन एव आय प्रभावो का रेखाचित्रीय विश्लेषण

जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया गया था, वस्तु की कीमत मे हुए परिवर्तन से उत्पन्न कुल प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव एव आय प्रभाव का सयुक्त परिणाम होता है। स्लुट्स्की एव हिक्स ने उदासीनता वक्रो की सहायता से इन प्रभावो का पृथक्करण किया। स्लुट्स्की समीकरण का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अब हम रेखाचित्रो की सहायता से कुल प्रभाव से प्रतिस्थापन एव आय प्रभावों को पृथक् करेंगे।

पहले चित्र 5.1 (a) को लीजिए। इसमें यह मान्यता ली गई है कि X की कीमत में कमी होने के कारण उपभोक्ता की बजट रेखा LM से आवर्तित होकर ML_1 की स्थिति में आ जाती है तथा उपभोक्ता की साम्य स्थिति I_1 के P बिंदु से हटकर I_2 के R बिंदु पर स्थापित हो जाती है। साम्य स्थिति के इस परिवर्तन के कारण उपभोक्ता ने X की मात्रा को OX_1 से बढाकर OX_3 कर लिया। अस्तु, P_x में कमी के फलस्वरूप X की मात्रा में $X_1 X_3$ की वृद्धि हुई। यह कीमत में कमी का कुल
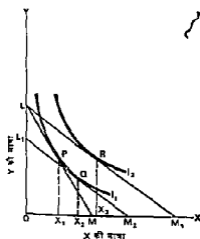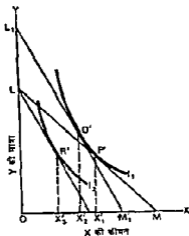
चित्र 5.1 कीमत परिवर्तन से उत्पन्न प्रतिस्थापन एवं आय प्रभाव

प्रभाव है। अब कुल प्रभाव को प्रतिस्थापन एवं आय प्रभाव के रूप में विभाजित कीजिए। स्लुट्स्की समीकरण को विश्लेषण का आधार मानते हुए हम यह कह सकते हैं कि प्रतिस्थापन प्रभाव को देखते हेतु आय प्रभाव को शून्य मानना होगा तथा हमें केवल सापेक्ष मूल्यों $\left(\frac{P_x}{P_y}\right)$ के परिवर्तन का प्रभाव प्रभाव होगा। इसके लिए हम नयी बजट रेखा LM_1 के समानांतर एक सरल रेखा इस प्रकार खींचते हैं कि वह पूर्व के उदासीनता वक्र (I_1) को कहीं पर स्पर्श करे। चित्र 5.1 (a) में $L_1 M_2$ ऐसी ही रेखा है। यह नयी बजट रेखा LM_1 के समानांतर इसलिए है कि हम सापेक्ष मूल्य के परिवर्तनों को देखना चाहते हैं और इसलिए LM_1 एवं L_1M_2 पर मूल्यों का अनुपात (P_x/P_{x2}) वही होना चाहिए हालांकि यह अनुपात पूर्वापेक्षा भिन्न है। जैसाकि चित्र 5.1 (a) में बतलाया गया है, L_1M_2 रेखा I_1 को Q पर स्पर्श करती है। इस साम्य स्थिति में उपभोक्ता को उतनी ही कुल सतुष्टि (वास्तविक आय) प्राप्त होती है जितनी कि P_x में परिवर्तन से पूर्व थी, तथापि Q बिंदु पर उपभोक्ता X की पूर्वापेक्षा अधिक

मात्रा (OX_2) खरीदता है जबकि Y की मात्रा मे कमी कर देता है। अस्तु, सापेक्ष मूल्यो मे परिवर्तन के बावजूद यदि उपभोक्ता को पहले जितनी ही कुल सतुष्टि या उपयोगिता प्रदान की जाए तो वह I_1 पर रहते हुए भी X की अधिक एवं Y की कम इकाइया खरीदेगा। इसी बात को स्पष्ट करने हेतु यह भी कहा जा सकता है कि P_x मे कमी होने पर यदि उपभोक्ता को सतुष्टि के पूर्व स्तर पर ही रखना हो तो उससे LL_1 मात्रा मे ऋणात्मक क्षतिपूर्ति (negative compensation) या कर की वसूली की जानी चाहिए। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता की वास्तविक आय अथवा उसकी सतुष्टि स्तर यथावत रहने पर भी P_x व P_y के अनुपात यानी बजट रेखा के ढाल मे परिवर्तन (Y के अपेक्षाकृत महगी व X के अपेक्षाकृत सस्ती होने) के कारण उपभोक्ता Y की मात्रा मे कमी करके X की मात्रा को OX स बढाकर OX_2 कर देता है। इस प्रकार $X_1 X_2$ प्रतिस्थापन प्रभाव होगा। परतु जब उपभोक्ता को ऊचे उदासीनता पर जाने की छूट मिल जाती है, अर्थात् जब उसकी वास्तविक आय मे भी वृद्धि कर दी जाती है तो उसकी साम्य स्थिति R पर होती है। जैसाकि चित्र 5 1(a) से स्पष्ट है, Q एव R की स्थितियो मे वस्तुओ के सापेक्ष मूल्य (LM_1 एव L_1M_2 रेखाओ के ढाल) समान हैं परतु उपभोक्ता को I_1 से I_2 पर जाने की छूट दी जाती है। यह मूल्य मे कमी मे उत्पन्न आय अभाव है। जैसाकि चित्र मे स्पष्ट है, केवल आय प्रभाव के कारण उपभोक्ता X की मात्रा OX_2 से बढाकर OX_3 करता है। इस प्रकार $X_2 X_3$ को आय प्रभाव की सज्ञा दी जा सकती है।

अब चित्र 5 1 (b) को देखिए। इसमे X की कीमत मे वृद्धि स उत्पन्न प्रतिस्थापन एव आय प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है। कीमत मे वृद्धि के कारण बजट रेखा $L'M'$ से आवर्तित होकर $L'M'_2$ हो जाती है तथा उपभोक्ता की साम्य स्थिति P से बदलकर R' होती है। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता X की मात्रा को OX'_1 से घटाकर OX'_3 कर देता है। इस सदर्भ मे कीमत प्रभाव या कुल प्रभाव $X'_1X'_3$ होगा। यदि उपभोक्ता को पूर्व के सतुष्टि स्तर पर ही रखना हो तो उसे $L'_1M'_1$ के अनुरूप धनात्मक क्षतिपूर्ति या अनुदान देना होगा। स्मरण रहे, यह धनात्मक क्षतिपूर्ति चित्र 5 1 (a) की ऋणात्मक क्षतिपूर्ति LL_1 मे सर्वथा प्रतिकूल है तथापि दोनो का प्रयोजन उपभोक्ता की वास्तविक आय यानी उसका सतुष्टि-स्तर यथावत् रखना है। चित्र 5 1 (b) मे प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उपभोक्ता X की मात्रा मे $X'_1X'_2$ की कमी करता है तथा Y की मात्रा मे वृद्धि करता है क्योकि X की कीमत मे वृद्धि के साथ ही Y की सापेक्ष कीमत कम हो जाती है। परतु जब आय प्रभाव को शामिल करते हैं तो उपभोक्ता की साम्य स्थिति Q' मे बदलकर R' हो जाती है तथा X की मात्रा में $X'_2X'_3$ की कमी और हो जाती है। अस्तु X की कीमत मे वृद्धि से उत्पन्न कुल प्रभाव $X'_1X'_3$ है जिसमे से प्रतिस्थापन प्रभाव $X'_1X'_2$ एव आय प्रभाव $X'_2X'_3$ है

$$\left(0 > \frac{\partial X}{\partial P} = \left(\frac{\partial X}{\partial Px}\right)_{U^\circ = \text{Constant}} \quad X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)_{\frac{Px}{Py} = \text{Constant}}\right)$$

चित्र 5.1 के दोनों पैनल इसी बात की पुष्टि करते हैं कि कीमत (P_X) तथा X की माग में विपरीत संबध है तथा प्रतिस्थापन एवं आय प्रभाव परस्पर समर्थन देते हैं। यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि प्रतिस्थापन प्रभाव हमेशा P_X एवं X की माग के प्रतिकूल संबंध को व्यक्त करता है। परंतु घटिया या निकृष्ट वस्तुओं के संदर्भ में आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव से विपरीत होता है। हम अब निकृष्ट वस्तुओं (inferior goods) के संदर्भ में प्रतिस्थापन तथा आय प्रभावों की व्याख्या करेंगे।

निकृष्ट वस्तुएं (Inferior Goods) तथा कीमत-प्रभाव

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी सामान्य वस्तु की कीमत में कमी होने पर प्रतिस्थापन तथा आय दोनों ही प्रभावों के कारण उपभोक्ता वस्तु की अधिक इकाइयां खरीदता है जबकि कीमत में वृद्धि होने पर दोनों प्रभावों के कारण वस्तु की मात्रा में कमी की जाती है। अन्य शब्दों में, आय प्रभाव सामान्य तौर पर प्रतिस्थापन प्रभाव को समर्थन प्रदान करता है।

परंतु हमारे दैनिक जीवन में अनेक ऐसी वस्तुएं प्रविष्ट होती हैं जिन पर उपभोक्ता की आय बढ़ने पर भी प्रतिकूल प्रभाव होता है। यह आय चाहे मौद्रिक आय के रूप में ली जाए, अथवा वास्तविक आय के रूप में, निकृष्ट अथवा हीन वस्तुओं की माग आय बढ़ने पर कम होगी तथा आय कम होने पर इन वस्तुओं की माग बढ़ेगी। उदाहरण के लिए, यदि उपभोक्ता 300 रुपए प्रति माह की आय होने पर माह में 5 किलोग्राम गुड़ खरीदता है तथा आय बढ़कर 500 रुपए हो जाने पर गुड़ की मात्रा को घटा कर 4 किलोग्राम कर देता है तो उस व्यक्ति के लिए गुड़ एक हीन अथवा निकृष्ट वस्तु के रूप में है। इसी प्रकार यदि उस व्यक्ति की मौद्रिक आय वही रहे, परंतु गुड़ का प्रति किलोग्राम मूल्य 2 रुपए से घटकर $1\frac{1}{2}$ रुपया रह जाने पर भी वह 4 किलोग्राम गुड़ ही खरीदे, तब भी गुड़ को निकृष्ट वस्तु माना जाएगा क्योंकि इस स्थिति में वास्तविक आय बढ़ जाने पर भी माग की मात्रा में कमी हो रही है। इसी प्रकार मौद्रिक या वास्तविक आय में कमी (वस्तु की कीमत में वृद्धि के कारण) होने पर हीन अथवा निकृष्ट वस्तु की माग बढ़ जाती है।

स्लुट्स्की समीकरण के संदर्भ में देखने पर हीन या निकृष्ट वस्तु उसे कहा जाएगा जिसकी माग पर मूल्य-परिवर्तन से उत्पन्न आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावों में परस्पर विरोधी प्रवृत्ति दिखाई देती हो। जैसा कि ऊपर बताया गया है, सामान्यतया किसी वस्तु की कीमत में कमी (वृद्धि) होने पर वस्तु की तुलना में सस्ती (महगी) हो जाने के कारण उपभोक्ता उस अन्य वस्तु की मात्रा में कमी (वृद्धि) करके इस वस्तु की अधिक (कम) मात्रा खरीदेगा। इसके साथ ही वास्तविक आय में वृद्धि (कमी) होने के कारण (आय प्रभाव के कारण) भी वस्तु की मात्रा में वृद्धि (कमी) करेगा। परंतु हीन वस्तुओं के संदर्भ में मूल्य परिवर्तन से उत्पन्न इस प्रभाव की प्रवृत्ति विपरीत दिशा भी दिखाई देगी।

चित्र 5.2 में हमने X की कीमत में कमी के प्रभावों की व्याख्या की है। मूलतः उपभोक्ता की आय या बजट रेखा LM थी। X की कीमत में कमी होने पर यह आवर्तित होकर LM_1 हो जाती है। सामान्य परिस्थिति में उपभोक्ता प्रतिस्थापन तथा आय प्रभावों के संयुक्त प्रभाव के कारण मूल सन्तुलन बिंदु P से हट कर नये साम्य बिंदु S पर चला जाता है। ऐसी स्थिति में, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, X की मात्रा में X_1X_2 की वृद्धि प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण तथा X_2X_3 की वृद्धि आय प्रभाव के कारण होती है। परन्तु यदि X एक हीन वस्तु है तो इसकी मात्रा में प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण X_1X_2 की वृद्धि होगी परन्तु आय प्रभाव के प्रतिगामी होने के कारण X_2X_4 की कमी होगी। इस प्रकार कीमत में कमी होने पर X की मात्रा में कुल वृद्धि X_1X_4 की ही रही। संक्षेप में, हीन या निकृष्ट वस्तु की माग में कीमत कम होने पर अपेक्षाकृत थोड़ी वृद्धि होती है क्योंकि ऐसी वस्तु पर होने वाला आय प्रभाव
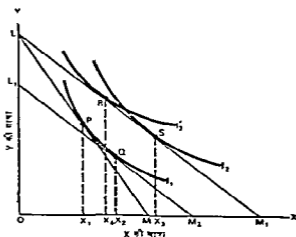
चित्र 5.2 सामान्य तथा हीन वस्तुएं

ऋणात्मक होता है। परन्तु आय प्रभाव ऋणात्मक होने पर भी हीन वस्तु माग के नियम की अपवाद नहीं है, तथा कीमत कम होने पर इसकी माग में वृद्धि, अथवा कीमत में वृद्धि होने पर मात्रा में कमी अवश्य होती है। स्लुट्स्की समीकरण के रूप में सामान्य वस्तु व हीन वस्तुओं की कीमत में कमी होने पर इनके उत्पन्न प्रभाव को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

(1) सामान्य वस्तु की कीमत में कमी होने पर

$$0< \frac{\partial X}{\partial Px}=\left(\frac{\partial X}{\partial Px}\right)_{U=U^{\circ}} + X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)\frac{P_x}{P_y}=\text{Constant}$$

(ii) हीन वस्तु की कीमत में कमी होने पर

$$0 < \frac{\partial X}{\partial P_x} = \left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U=U^\circ} - X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)\frac{P_x}{P_y} = \text{Constant}$$

अस्तु, आय प्रभाव ऋणात्मक $\left[= X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right) < 0 \right]$ होने के कारण कीमत परिवर्तन का कुल प्रभाव सामान्य वस्तु के सदर्भ में कम व्यापक होता है।

हीन वस्तुएं तथा गिफिन का विरोधाभास
(Inferior Goods and Giffin's Paradox)

सर रॉबर्ट गिफिन एक विक्टोरिया-कालीन अर्थशास्त्री था। 1845 में आयरलैंड में अकाल पडने पर किसानों ने आलू की कीमत में बहुत अधिक वृद्धि कर दी। अनेक परिवार, जो काफी अधिक निर्धन होने के कारण मास की मात्रा में वृद्धि नहीं कर सकते थे (क्योंकि आलू की तुलना में मास काफी महगा था), पूर्वापेक्षा आलू की कीमत बढ जाने पर भी आलू की मात्रा में कमी के बदले वृद्धि करने को मजबूर हो गए। इसका कारण क्या था? ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि आलू उनका एकमात्र अनिवार्य आहार था तथा उनकी आय का अब अधिक भाग इस पर व्यय करना जरूरी हो गया था। सर गिफिन ने उस समय इन निर्धनतम परिवारों के उपभोग पैटर्न का अध्ययन करने के बाद कहा कि कुछ ऐसी वस्तुएं भी हैं जिनकी कीमत में वृद्धि होने पर उपभोक्ता उनकी अधिक मात्रा खरीदता है। इन वस्तुओं की प्रमुख विशेषता यह है कि ये सबसे सस्ती वस्तुएं होती हैं। दूसरी बात यह है कि इन वस्तुओं पर निर्धनतम व्यक्ति अपनी आय का पर्याप्त भाग व्यय करते हैं। अस्तु, जिन वस्तुओं की कीमत बढने पर जिनकी मात्रा में वृद्धि हो जाए, अथवा कीमत में कमी होने पर जिनकी मात्रा में भी वृद्धि हो उन्हें गिफिन वस्तु की सज्ञा दी जा सकती है। सक्षेप में, गिफिन वस्तुओं पर माग का नियम लागू नहीं होता। स्लुट्स्की सभी समीकरणों के रूप में सामान्य वस्तु, हीन वस्तु तथा गिफिन वस्तुओं की माग पर कीमत में कमी से उत्पन्न प्रभावों को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

A X की कीमत कम होने पर

(i) सामान्य वस्तु के सदर्भ में—

$$0 < \frac{\partial X}{\partial P_x} = \left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U=U^\circ} + X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)\frac{P_x}{P_y} = \text{Constant}$$

(ii) हीन वस्तु के सदर्भ में—

$$0 < \frac{\partial X}{\partial P_x} = \left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U=U^\circ} - X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)\frac{P_x}{P_y} = \text{Constant}$$

(iii) गिफिन वस्तु के संदर्भ में—

$$0 > \frac{\partial X}{\partial P_x} = \left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U=U^\circ} - X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)\frac{P_x}{P_y} - \text{Constant}$$

B X की कीमत में वृद्धि होने पर

(i) सामान्य वस्तु के संदर्भ में—

$$0 > \frac{\partial X}{\partial P_x} = -\left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U=U^\circ} - X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)\frac{P_x}{P_y} = \text{Constant}$$

(ii) हीन वस्तु के संदर्भ में—

$$0 > \frac{\partial X}{\partial P_x} = -\left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U=U^\circ} + X\left(\frac{\partial X}{\partial M}\right)\frac{P_x}{P_y} = \text{Constant}$$

(iii) गिफिन वस्तु के संदर्भ में—

$$0 < \frac{\partial X}{\partial P_x} = -\left(\frac{\partial X}{\partial P_x}\right)_{U-U^\circ} + X\left(\frac{\partial x}{\partial M}\right)\frac{\partial X}{P_y} = \text{Constant}$$

ऊपर प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य वस्तु की कीमत में वृद्धि (कमी) होने पर उपभोक्ता उसकी अधिक (कम) मात्रा खरीदता है। हीन वस्तु के संदर्भ में भी ऐसा ही होता है, परंतु इस वस्तु की माग का विस्तार अथवा संकुचन सामान्य वस्तु की तुलना में कम होता है। इसके विपरीत गिफिन वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी अधिक इकाइयां खरीदी जाती हैं जबकि इसकी कीमत कम होने पर इसकी मात्रा भी कम हो जाती है। तथापि, हीन एवं गिफिन वस्तुओं में एक समानता है। वस्तु की कीमत कम होने पर यद्यपि उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ती है, तथापि इन दोनों प्रकार की वस्तुओं की माग पर प्रतिकूल यानी ऋणात्मक आय प्रभाव होता है। इसी प्रकार, कीमत में वृद्धि होने पर धनात्मक आय प्रभाव के कारण उपभोक्ता दोनों ही वस्तुओं के संदर्भ में अधिक इकाइयां खरीदना चाहता है। परंतु, गिफिन वस्तु की माग पर होने वाला आय प्रभाव इसके प्रतिस्थापन प्रभाव की अपेक्षा अधिक प्रबल होता है, और इसी कारण कीमत बढ़ने (कम होने) पर भी उपभोक्ता वस्तु की अधिक (कम) मात्रा खरीदता है। वस्तुतः हीन एवं गिफिन दोनों ही प्रकार की वस्तुओं पर मूल्य परिवर्तन से उत्पन्न प्रतिस्थापन एवं आय प्रभाव प्रतिकूल दिशाओं में चलते हैं और इसीलिए सभी गिफिन वस्तुएं हीन वस्तुओं की श्रेणी में रखी जाती हैं। परंतु चूंकि विपरीत आय प्रभाव गिफिन वस्तुओं के संदर्भ में अधिक प्रबल होता है, और इस कारण वस्तु की माग कीमत के साथ ही घटती व बढ़ती है, हम सभी हीन वस्तुओं को गिफिन वस्तुओं की संज्ञा नहीं दे सकते। चित्र 5 3 में इन्हीं सब को स्पष्ट किया गया है।

चित्र 5 3 में सामान्य, हीन व गिफिन वस्तुओं की तुलना की गई है। मूलतः उपभोक्ता की साम्य स्थिति P बिंदु पर थी जहां I_1 उदासीनता वक्र को बजट रेखा

LM स्पर्श करती थी। कीमत कम हो जाने पर बजट रेखा आवर्तित होकर LM_1 का रूप ले लेती है। यदि वस्तु सामान्य है तो उपभोक्ता की नयी साम्य स्थिति R बिंदु पर होगी तथा माग की मात्रा OX_1 से बढकर OX_2 हो जाती है। यदि वस्तु हीन है तो ऋणात्मक आय प्रभाव (X_3X_4) के कारण माग OX_1 से बढकर केवल OX_4 हो पाती है। परतु यदि यह गिफिन वस्तु है तो अत्यत प्रबल ऋणात्मक आय प्रभाव (X_2X_5) के कारण अनुकूल प्रतिस्थापन प्रभाव (X_1X_2) के बावजूद माग की मात्रा OX_1 से घटकर OX_5 रह जाती है।
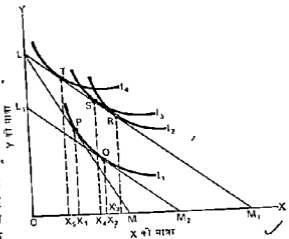
चित्र 5 3 सामान्य, हीन एवं गिफिन वस्तुओं की तुलना

भारत मे कलकत्ता या बबई की गदी बस्तियो मे रहने वाले या गावो मे यदा-कदा मजदूरी करके पेट भरने वाले व्यक्तियो के जीवन मे ऐसी कुछ वस्तुए हो सकती हैं जिन्हे गिफिन वस्तुओ की सज्ञा देना गलत नही होगा, तथा जिन वस्तुओ की कीमत बढने पर ये निर्धन व्यक्ति इनकी अधिक मात्रा, अथवा कीमत मे कमी होने पर कम मात्रा खरीदने को बाध्य हो सकते हैं। घटिया किस्म की ज्वार या बाजरा या बासी सब्जियो को इस श्रेणी मे लिया जा सकता है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, गिफिन वस्तुए माग के नियम की अपवाद हैं।

5 2 माग का नियम
(The Law of Demand)

एल्फ्रड मार्शल ने बताया कि "सामान्यतया अन्य बातें यथावत् रहने पर वस्तु की माग तथा कीमत मे विपरीत सबध होता है।"[2] यह ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी भी वस्तु (मान लीजिए X) की कीमत मे कमी या वृद्धि होने पर सामान्यतया उसकी मागी गई मात्रा मे वृद्धि या कमी हो जाती है। माग के इस नियम की विस्तृत व्याख्या करने से पूर्व हमे माग फलन (Demand Function) की प्रकृति एवं विशेषताओ का अध्ययन करना चाहिए।

2. देखिए, Marshall, Alfred , Principles of Economics, Eighth Edition (1959), p 84

माग फलन (The Demand Function)

साधारण तौर पर किसी भी वस्तु की माग उस वस्तु की कीमत, अन्य वस्तुओं की कीमतों, उपभोक्ता की आय, उसकी रुचि व आदतों तथा उसके पास विद्यमान सपत्ति, यानी उसके सामाजिक स्तर, द्वारा प्रभावित होती है। इस दृष्टि से हम वस्तु के माग फलन को निम्न रूप म व्यक्त कर सकते हैं :

$$D_x = f\ (P_x\ \ P_y,\ M,\ \overline{T},\ \overline{W})$$

उपरोक्त फलन मे D_x वस्तु (X) की मागी गई मात्रा है जो उस वस्तु की कीमत (P_x), अन्य कीमतों (P_y), उपभोक्ता की आय (M), आदतों व रुचि ($\overline{T}$) तथा सपत्ति ($\overline{W}$) के द्वारा निर्धारित होती है। चूंकि सामान्यत रुचि एव सपत्ति का सही माप लेना सभव नही होता, और इस कारण ये चर माग की मात्रा (D_x) को प्रत्यक्षत प्रभावित नहीं करते, इस कारण माग फलन मे तीन महत्त्वपूर्ण चरो (P_x, P_y एव M) को ही शामिल किया जाता है।

माग फलन को सामान्य तौर पर एक शून्य डिग्री का समरूपी फलन (Homogenous function of degree zero) माना जाता है। इसका यह अभिप्राय है कि यदि माग फलन के समस्त स्वतन्त्र चरो (P_x, P_y एव M) को एक ही अनुपात म परिवर्तित किया जाए तो माग की मात्रा (D_x) मे कोई परिवर्तन नहीं होगा।[3] इसका कारण यह है कि जहा उपभोक्ता की आय बढने पर वह X की अधिक

3 इसे सिद्ध करने हेतु मान लीजिए कि उपभोक्ता की आय $M = P_x\ X + P_y\ \ Y$ है। अब मान लीजिए M, P_x एव P_y में एक ही अनुपात k से वृद्धि हो जाती है। अन्य शब्दों में उपभोक्ता की बजट सीमा का रूप इस प्रकार हो जाता है—

$$kM = X\ kP_x + Y\ \ kP_y$$

उपरोक्त समीकरण में k मांग फलन के स्वतंत्र चरों में होने वाले समानुपाती परिवर्तन को व्यक्त करता है। समीकरण 3 9 में प्रस्तुत लैग्रान्जीयन फलन का रूप अब इस प्रकार हो जाता है—

$$L = f\ (X, Y) - \lambda\ (X.kP_x + Y\,kP_y - kM)$$

अधिकतम सतुष्टि को प्राप्त करने हेतु प्रथम चलन अवकलन की शर्तें इस प्रकार होंगी

$$\frac{\partial L}{\partial x} = f_1 - \lambda kP_x = 0$$

$$\frac{\partial L}{\partial y} = f_2 - \lambda kP_y = 0$$

$$\frac{\partial L}{\partial \lambda} = kP_x - kP_y + kM = 0$$

अथवा $\dfrac{f_1}{f_2} = \dfrac{P_x}{P_y}$

अन्य शब्दों में, उपभोक्ता की आय को बढ़ाने के साथ यदि इसी अनुपात में कीमतें भी बढ़ा दी जाए तो वस्तुओं के इष्टतम (अधिकतम उपयोगिता देने वाले) सयोग पर कोई प्रभाव नहीं होगा। द्वितीय क्रम की शर्तों पर भी ऐसी स्थिति में कोई प्रभाव नहीं होगा।

मात्रा खरीदने को प्रेरित होगा, वहीं P_x व P_y में समानुपाती वृद्धि के कारण उसकी वास्तविक आय में उतनी ही कमी हो जाती है, और फलत. वह पूर्व में खरीदी गई मात्रा का ही उपभोग करता रहता है। परंतु व्यवहार में हम अन्य वस्तुओं की कीमतों (P_y) तथा उपभोक्ता की आय (M) को यथावत् मान लेते हैं और इस आधार पर यह कहने लगते हैं कि X की माग पर केवल इसकी कीमत (P_x) का ही प्रभाव पड़ता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, गिफिन वस्तुओं को छोड़कर सामान्यतया वस्तु की कीमत तथा इसकी मागी गई मात्रा में प्रतिकूल फलनात्मक संबंध रहता है। अर्थात्, P_x में कमी (वृद्धि) होने पर वस्तु की माग (D_x) में विस्तार (संकुचन) होता है। इसी कारण यदि P_x तथा D_x के संबंध को चित्र के रूप में व्यक्त किया जाए तो हमें एक ऋणात्मक ढलानयुक्त (negatively sloped) वक्र प्राप्त होगा। यही ऋणात्मक ढलानयुक्त वक्र माग वक्र (Demand curve) कहलाता है।

माग वक्र का निरूपण (Derivation of Demand Curve)

यह ऊपर बताया जा चुका है कि अन्य बातें (जैसे उपभोक्ता की रुचि, आदत, आय एवं अन्य वस्तुओं की कीमतें) यथावत् रहने पर वस्तु की कीमत तथा इसकी मागी गई मात्रा में प्रतिकूल संबंध होता है। अन्य शब्दों में, माग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है। इसी मान्यता के आधार पर अब हम माग वक्र का निरूपण करेंगे।

मान लीजिए उपभोक्ता मूलत: साम्य स्थिति में है जहा दो वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं का अनुपात उनकी कीमतों के अनुपात के समान है, यानी

$$\frac{MU_x}{MU_y} = \frac{P_x}{P_y}\ ;\ \text{अथवा}\ \frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y} \qquad (I)$$

ऐसी स्थिति में उपभोक्ता X तथा Y की निर्दिष्ट मात्राओं का उपभोग करके निर्दिष्ट आय के अंतर्गत अधिकतम उपयोगिता प्राप्त कर रहा है। अब मान लीजिए, P_x बढ़ जाती है। यदि उपभोक्ता अब भी X व Y की पहले जितनी मात्राओं का उपभोग करता रहे, यानी कि वह X तथा Y की सीमांत उपयोगिताओं का स्तर पहले जितना ही रखे, तो वह इष्टतम स्थिति में नहीं रह पाएगा, अर्थात् वह निर्दिष्ट आय के अंतर्गत वह पूर्वापेक्षा कम उपयोगिता प्राप्त कर सकेगा। गणितीय रूप में इसकी नयी स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{MU_x}{P_x} < \frac{MU_y}{P_y} \qquad (II)$$

स्पष्ट है कि स्थिति (II) में उपभोक्ता को स्थिति (I) की अपेक्षा कम उपयोगिता प्राप्त हो रही है। यदि उपभोक्ता को X के मूल्य में वृद्धि के पश्चात् नयी साम्य अथवा इष्टतम स्थिति में पहुचकर अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करनी है तो उसे

X की मात्रा में कमी करनी होगी ताकि X की सीमान्त उपयोगिता बढ़े, अथवा उसे Y की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिए ताकि इसकी सीमांत उपयोगिता में (उपयोगिता क्रमागत ह्रास नियम के कारण) कमी हो, तथा साम्य स्थिति को पुन प्राप्त किया जा सके इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि P_x में कमी होने पर साम्य स्थिति को पुन प्राप्त करने हेतु उपभोक्ता X की मात्रा में वृद्धि करनी होगी। अस्तु, X की कीमत कम होने पर इसकी अधिक इकाइयों का उपभोग करके, अथवा कीमत में वृद्धि होने पर इसकी मात्रा में कमी करके ही उपभोक्ता एक नयी इष्टतम अथवा साम्य स्थिति में पहुँच सकता है।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि उपभोक्ता केवल X का उपभोग करता है। ऐसी दशा में साम्य स्थिति X की उतनी मात्रा का उपभोग करने पर ही प्राप्त होगी जब $P_X = MU_X$ हो। यदि P_X में कमी (वृद्धि) हो तो X की मात्रा को बढ़ाने (कम करने) पर ही नयी साम्य स्थिति प्राप्त होगी।

यह मानते हुए कि हम एक विवेकशील उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन कर रहे हैं (जो $MU_x = P_x$ के अनुरूप ही X का उपभोग करता है) अब हम X की कीमत एव माग का सबध निरूपित करते हुए इसका माग वक्र प्राप्त कर सकते हैं।

चित्र 5 4 म जब X की कीमत OP_{x_1} थी तो उपभोक्ता की साम्य स्थिति E_1 पर थी क्योंकि यहा OX_1 मात्रा खरीदने पर ही X की सीमांत उपयोगिता एव कीमत समान होगी। जब कीमत घट कर OP_{x_2} रह जाती है तो वह X की OX_2 मात्रा खरीद कर ही अधिकतम उपयोगिता प्राप्त कर सकता है क्योंकि केवल उसी स्थिति में MU_X व P_X समान होंगे। यदि उपभोक्ता नयी कीमत पर भी OX_1 इकाई ही खरीदता रहे तो सीमांत उपयोगिता वस्तु की कीमत से अधिक हो जाएगी ($MU_x > P_x$)। अस्तु, साम्य स्थिति बनाए रखने हेतु कीमत कम होने पर X की अधिक इकाइयां खरीदना आवश्यक हो जाता है। इसके विपरीत कीमत बढ़ने पर X की मात्रा में कमी करके ही कीमत व सीमांत उपयोगिता की समानता को बनाए रखा जा सकता है। यही कारण था कि मार्शलीय विश्लेषण में सीमांत उपयोगिता को ही वस्तु का माग वक्र माना जाता है।
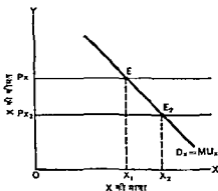
चित्र 5 4 माग वक्र का निरूपण

अस्तु, माग के नियम के अनुसार, वस्तु की कीमत तथा इसकी माग म प्रतिकूल सबध पाया जाता है। अर्थशास्त्रियो के अनुसार इसकी पृष्ठभूमि म चार कारण निहित है। प्रथम, जैसा कि चित्र 5 4 म बताया गया है, वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने पर उपभोक्ता की अधिकतम उपयोगिता प्रदान करने वाली स्थिति विचलित हो जाती है तथा यह पुन तभी प्राप्त हो सकती है जबकि वह मागी गई मात्रा मे भी कमी या वृद्धि करे। माग व कीमत म विपरीत सबध का द्वितीय कारण प्रतिस्थापन एव आय प्रभाव मे निहित है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, स्लट्स्की के मतानुसार सामान्य तौर पर कीमत म कमी (वृद्धि) होने पर उपभोक्ता X की अधिक(कम) मात्रा इसीलिए खरीदता है क्योंकि प्रतिस्थापन एव आय दोनो ही परस्पर समर्थन देते है। उदाहरण के लिए, P_x मे कमी होने पर वस्तु अन्य वस्तुओ की तुलना म सस्ती हो जाती है और इस कारण वह इसकी मात्रा मे कमी करने की इस मात्रा म वृद्धि करना चाहेगा। साथ ही P_x म कमी के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ जाती है और इस कारण भी वह वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेगा।

कीमत तथा माग की मात्रा के मध्य प्रतिकूल सबध होने के पीछे तीसरा कारण यह है कि कीमत मे वृद्धि होने पर उपभोक्ता की मौद्रिक आय वही रहने पर भी X पर किए जाने वाले व्यय का सीमान्त उपयोगिता वक्र (MUE_x) नीचे की ओर विवर्तित हो जाता है और इसके फलस्वरूप, उपभोक्ता को X की मात्रा म कमी करनी पडती है।
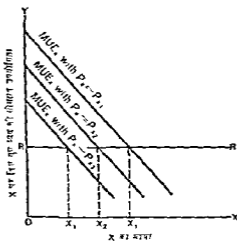
चित्र 5 5 व्यय की सीमात उपयोगिता के संदर्भ मे कीमत तथा मात्रा का परिवर्तन

चित्र 5 5 मे X पर किए जाने वाले व्यय के सीमान्त उपयोगिता वक्र (MUE_x) के विवर्तन को प्रस्तुत किया गया है। यह वक्र इस बात को बताता है

कि X पर व्यय की गई मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता में (अन्य बातों के यथावत् रहते हुए) X की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कमी होती जाती है। जब X की कीमत में परिवर्तन होता है तो कुल व्यय की सीमान्त उपयोगिता RR' के अनुरूप, यानी स्थिर रहने पर भी MUE_x में विवर्तन हो जाएगा। जब X कीमत OP_{x_1} से बढ़ कर OP_{x_2} और फिर OP_{x_3} होती है तो MUE_x प्रत्येक स्थिति में नीचे की ओर विवर्तित हो जाता है। फलतः X की साम्य मात्रा पहले OX_1 से घटकर OX_2 और फिर OX_3 हो जाती है। परन्तु यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यदि कीमत में परिवर्तन का कुल व्यय पर काफी अधिक प्रभाव हो तो कुल व्यय का सीमान्त उपयोगिता वक्र (RR) भी ऊपर की ओर विवर्तित हो जाएगा और इसके फलस्वरूप X की मात्रा में कीमत बढ़ने पर और अधिक कटौती हो जाएगी।

कीमत तथा माग की मात्रा में प्रतिकूल संबंध होने, अर्थात् वक्र के ऋणात्मक ढलानयुक्त होने का एक चौथा कारण यह भी है कि कीमत में कमी होने पर वस्तु के लिए नये उपभोक्ता बाजार में प्रवेश करते हैं, अथवा कीमत में वृद्धि होने पर विद्यमान उपभोक्ताओं में से कुछ बाजार से बाहर चले जाते हैं। बोल्डिंग ने इसे कीमत-परिवर्तन से उत्पन्न 'उद्योग प्रभाव' (industry effect) की संज्ञा दी है।[4]

संक्षेप में, X की कीमत में वृद्धि होने पर उपभोक्ता इसकी कम मात्रा खरीदता है, जबकि इसकी कीमत में कमी होने पर अधिक इकाइयां खरीदी जाती हैं। इस प्रकार, गिफिन वस्तुओं को छोड़कर सभी वस्तुओं की कीमत एवं माग में विपरीत संबंध होता है। जैसाकि हम ऊपर देख चुके हैं, गिफिन वस्तुओं के संदर्भ में आय प्रभाव वस्तुतः प्रतिस्थापन प्रभाव को समर्थन देने की अपेक्षा अधिक प्रबल रूप से विपरीत दिशा में माग को प्रभावित करता है और इस कारण कीमत के साथ ही माग भी घटती या बढ़ती है। इसी कारण, जहां सामान्य वस्तु का माग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है, वहीं गिफिन वस्तु की कीमत व माग में धनात्मक सह-संबंध होने के कारण उसका माग वक्र भी धनात्मक ढलानयुक्त (positively sloped) होता है।

उपयोगिताओं की परस्पर निर्भरता एवं माग वक्र
(Interdependence of Utilities and the Demand Curves)

सामान्य तौर पर हम माग वक्र का निरूपण इस मान्यता के आधार पर करते हैं कि उपभोक्ता की आय, रुचि, आदतें एवं सम्पत्ति का स्तर यथावत् रहते हैं। इस मान्यता के पीछे वस्तुतः यह धारणा निहित रहती है कि विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताएं परस्पर स्वतंत्र हैं, और इस कारण अन्य वस्तुओं के माग वक्रों की उपेक्षा करके भी निर्दिष्ट वस्तु का माग वक्र निरूपित किया जा सकता है।

4. इसका अर्थ यह है कि साम्य स्थिति के लिए निम्न शर्त का पूरा होना जरूरी है—
$MU_X = P_X = MUE_X = $ MU of Total Expenditure. Kenneth E. Boulding: Economic Analysis, Vol. I. Micro-economics, New York, Harper & Row (Fourth Edition), p. 621

यदि इस मान्यता को छोडते हुए यह मान लें कि दो वस्तुओ (X तथा Y) की सीमात उपयोगिताओ मे परस्पर निर्भरता विद्यमान है, तो Y की कीमत (P_y) मे परिवर्तन होने पर X की माग भी प्रत्यक्षत प्रभावित होगी, भले ही P_x अपरिवर्तित रहती हो। उदाहरण के लिए, जब P_y मे कमी होती है तो अन्य बातो (P_x, आय, रुचि आदि) के यथावत् रहने पर भी Y की अधिक मात्रा खरीदने एव तदनुसार इसकी सीमात उपयोगिता मे कमी होने पर यह भी सभव है कि X की दी हुई मात्रा की सीमात उपयोगिता मे कमी हो जाए और इसके फलस्वरूप X का माग वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाए।

माग-सूची एव सीमात प्रतिस्थापन दर
(Demand Schedule and the Marginal Rate of Substitution)

एक माग-सूची वस्तुत किसी वस्तु की विभिन्न कीमतो एव तत्सबधी मात्राओ की तालिका को ही कहा जाता है। यहा यह ध्यान देने की बात है कि इस तालिका को तैयार करते समय हम केवल कीमत को ही परिवर्तनशील स्वतत्र चर के रूप मे स्वीकार करते हैं, और फिर यह देखने का प्रयास करते हैं कि कीमत के प्रत्येक परिवर्तन के साथ ही आश्रित चर (dependent variable) यानी माग की मात्रा, में क्या परिवर्तन हो रहा है। बहुधा माग सूची के निर्माण के समय यह मान्यता ली जाती है कि मुद्रा की सीमात उपयोगिता यथावत रहती है।

प्रोफेसर बोल्डिग माग-सूची तथा सीमात प्रतिस्थापन दर के मध्य तुलना करते हुए यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि इन दोनो मे कोई अतर नही है। उनके मतानुसार यदि किसी वस्तु X तथा मुद्रा को परस्पर प्रतिस्थापनीय मान लें तो X की सीमात उपयोगिता को मुद्रा की (स्थिर) सीमात उपयोगिता से भाग देकर X की सीमात प्रतिस्थापन दर प्राप्त की जा सकती है। इसे निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है

$$\frac{MU_x}{MU_{money}} = \text{MRS of X for money}$$

जैसे जैसे P_x यानी X की कीमत मे कमी होने पर उपभोक्ता द्वारा वस्तु की अधिक इकाइया खरीदता है, इसकी सीमात उपयोगिता (MU_x) का ह्रास होता है। चूकि मुद्रा की सीमात उपयोगिता स्थिर है, उपभोक्ता की साम्य स्थिति के लिए आवश्यक है कि इसकी सीमात प्रतिस्थापन दर मे भी कमी हो। अन्य शब्दो मे MU_x तथा MRS_x में समानुपाती ह्रास होना चाहिए।

अनधिमान वक्रो की सहायता से माग वक्र का निरूपण
(Derivation of Demand Curve with the help of Indifference Curves)

ऊपर हमने यह बताने का प्रयास किया था कि मार्शलीय दृष्टिकोण के अनुसार (जिसमे साम्य स्थिति के लिए $P_x = MU_x$ होना जरूरी है) किसी वस्तु का सीमात उपयोगिता वक्र ही वस्तुत इसका माग वक्र है। यदि सीमात उपयोगिता को

मापनीय नही माना जाये तथा हम उपयोगिता के क्रमसूचक माप (ordinal measurement) के औचित्य को स्वीकार करें तो उस स्थिति मे अनधिमान वक्रो की सहायता से वस्तु की कीमत एव मागी गई मात्रा का सबध दर्शाया जा सकता है।

यह ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि अन्य बातें (उपभोक्ता की आय, रुचि तथा अन्य वस्तुओ की कीमतें) यथावत रहते हुए किसी वस्तु की माग उसकी कीमत मे होने वाले परिवर्तन स विपरीत दिशा मे बढती या कम होती है। अध्याय 4 में बताया गया था कि अनधिमान वक्रों के सदर्भ में किसी वस्तु की कीमत मे कमी या वृद्धि होने पर X एव Y की मात्राओ पर इसके क्या प्रभाव होंगे, इस कीमत-उपभोग-वक्र (Price consumption curve) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए यह कहना अनुचित न होगा कि किसी एक वस्तु (X या Y) का माग वक्र किसी न किसी रूप में कीमत-उपभोग-वक्र स अवश्य सबद्ध होता है। वस्तुत कीमत-उपभोग-वक्र एवं माग वक्र दोनों ही माग व कीमत के सबध को प्रदर्शित करते हैं, अलबत्ता माग वक्र इस सबध को अपेक्षाकृत अधिक सुस्पष्ट एव प्रत्यक्ष रूप म व्यक्त करता है।

अनधिमान वक्रो की सहायता से माग वक्र का निरूपण करने हेतु हम शीर्ष अक्ष पर Y की अपेक्षा उपभोक्ता के पास विद्यमान कुल मुद्रा तथा क्षैतिज अक्ष पर पूर्व की भाति X की इकाइयों का माप लेंगे।

रेखाचित्र 5 6(a) मे उपभोक्ता की मूल साम्य स्थिति P बिंदु पर थी जहा उदासीनता वक्र मे I_1 को मूल बजट रेखा BC_1 स्पर्श करती है। X की कीमत म कमी होने पर उपभोक्ता नयी साम्य स्थिति Q पर और फिर क्रमश R व S पर पहुचता है। इन चारों साम्य बिंदुओं को मिलाने पर हमे उपभोक्ता का कीमत उपभोग वक्र PT प्राप्त होता है। यह उल्लेखनीय है कि इस समूची प्रक्रिया मे उपभोक्ता के पास विद्यमान कुल मुद्रा की मात्रा OB रहती है, तथापि X की विभिन्न मात्राओं पर व्यय की गई मुद्रा तथा बचाई गई मुद्रा के सयोग मे परिवर्तन होता रहता है।

पहले उपभोक्ता की मूल साम्य स्थिति P को लीजिए। इस स्तर पर उपभोक्ता X की OX_1 इकाइया खरीदता है तथा इन पर BM_4 रुपये व्यय करता है। अन्य शब्दों मे P बिंदु पर वह OX_1 इकाइया X की खरीदता है तथा OM_4 रुपये बचाता है। इस प्रकार उपभोक्ता BM_4/OX_1 रुपये व्यय करके OX_1 इकाइया लेता है। जैसाकि चित्र से स्पष्ट है, $OX_1=M_4P$; और इसलिए BP कीमत पर वस्तु की माग OX_1 इकाइया होगी। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि X की कीमत कम होने तथा बजट रेखा के आवर्तित होने पर जो नई साम्य स्थितिया, Q, R एव S प्राप्त होती हैं, उनके अनुरूप उपभोक्ता BM_3 रुपये व्यय करके OX_2 इकाइयां, BM_2 रुपए व्यय करके OX_3 इकाइया तथा BM_1 रुपए व्यय करके OX_4 इकाइयां खरीदता है, जिनकी अनुरूपी कीमतें क्रमश BQ, BR एव BS हैं। चित्र 5 6 (a) से यह स्पष्ट होता जाता है कि कीमतें कम होने के साथ-साथ ही उपभोग की इकाइया बढती जाती हैं। इस चित्र की उल्लेखनीय बात यह है कि इसके अनुसार X की उत्तरोत्तर अधिक इकाइया खरीदने के बावजूद उस पर किया गया व्यय घटता जाता है,

यानी उपभोक्ता के पास बचत की गई मुद्रा का परिमाण बढ़ता जाता है जैसा कि PCC के ऊर्ध्वमुखी स्वरूप से स्पष्ट है। परन्तु जैसा कि नीचे बताया गया है, वास्तविक जीवन में PCC ऋणात्मक ढलानयुक्त हो, अर्थात् X की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयों पर उपभोक्ता को अधिक मुद्रा व्यय करनी पड़े तब भी माग के नियम की वैधता बनी रहेगी।
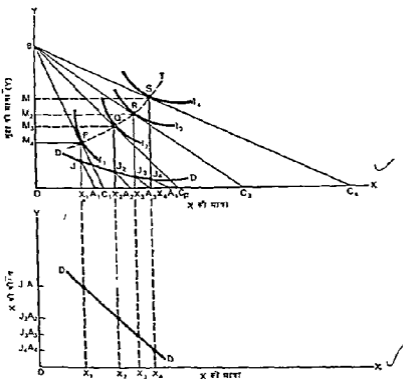
चित्र 5 6 (a) माग वक्र का निरूपण चित्र 5 6 (b) माग वक्र

इसका यह अर्थ निकालना कदापि उचित नहीं होगा कि PCC ही X का माग वक्र है। चित्र 5 6 (b) वस्तुत X के माग वक्र को प्रस्तुत करता है। इसमें यह बताया गया है कि अलग-अलग कीमतो (जैसे कि चित्र 5 6 (a) मे BP, BQ, BR आदि थी) पर उपभोक्ता X की कितनी-कितनी इकाइया खरीदता है। चित्र 5 6 (b) में ऊर्ध्व अक्ष पर X की कीमतो एव क्षैतिज अक्ष पर इसकी मात्रा का माप लिया गया है। X की कीमतें वस्तुत चित्र 5 6 (a) से ही निरूपित की गई हैं। इसके

लिए माग सूची प्राप्त करने हेतु X पर हुए कुल व्यय एव माग की मात्राओ को निम्न रूप मे प्रयुक्त किया गया है—

	कीमत	X की मात्रा
(i)	$BM_4 / PM_4 = J_1X_1 / X_1A_1 = J_1A_1$	$PM_4 = OX_1$
(ii)	$BM_3 / QM_3 = J_2X_2 / X_2A_2 = J_2A_2$	$QM_3 = OX_2$
(iii)	$BM_2 / RM_2 = J_3X_3 / X_3A_3 - J_3A_3$	$RM_2 = OX_3$
(iv)	$BM_1 / SM_1 - J_4X_4 / X_4A_4 = J_4A_4$	$SM_1 = OX_4$

चित्र 5 6 (b) मे इसी माग सूची के आधार पर माग वक्र DD प्राप्त किया गया है। चित्र मे शीर्ष अश पर प्रस्तुत कीमतें, क्रमश J_1A_1 J_2A_2 J_3A_3 एव J_4A_4 वस्तुत चित्र 5 6 (a) से प्राप्त की गई हैं। चित्र 5 6 (a) से यह स्पष्ट है कि त्रिभुज BM_4P तथा $J_1X_1A_1$ एक जैसे त्रिभुज हैं। चूकि BP वस्तु की कीमत है, इसी लिए एक इकाई X की कीमत J_1A_1 होगी (J_1A_1 एव BP समानातर हैं)। J_1A_1 की भांति J_1X_1 भी X की कीमत को प्रदर्शित करता है क्योकि उपभोक्ता BP मूल्य पर BM_4 रुपए व्यय करके M_4P इकाइया ($M_4P = OX_1$) खरीदता है और इसलिए एक इकाई (X_1A_1) के लिए J_1X_1 रुपए चुकाता है। इसी आधार पर OX_2 मात्रा खरीदने हेतु J_2A_2 ($= J_2X_2$), OX_3 के लिए J_3A_3 ($= J_3X_3$) एव OX_4 के लिए J_4A_4 ($= J_4X_4$) रुपए प्रति इकाई कीमत के रूप मे चुकाए जाते हैं। अस्तु, चित्र 5 6 (a) एव 5 6 (b) म प्रस्तुत माग वक्र (DD) पूर्णतया एक जैसे वक्र ही हैं।

5 3 तुलनात्मक माग वक्र
(Comparative Demand Curves)

अध्याय के भाग 5 2 मे यह बताया गया है कि वस्तु की कीमत एव माग की मात्रा के मध्य विपरीत सबध है। परन्तु माग के नियम के इस माशलीय विश्लेषण मे कीमत एव माग के मध्य सीधा सबध बतलाया जाता है। अन्य शब्दो मे, इस विश्लेषण से यह स्पष्ट नही होता कि कीमत मे परिवर्तन के कारण प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण माग की मात्रा मे कितना परिवर्तन हुआ तथा आय प्रभाव के कारण कितना। मार्शल ने कीमत के परिवर्तन से उत्पन्न कुल प्रभाव का ही विश्लेषण किया था। अनधिमान वक्रो के सदर्भ मे भी इसके अनुसार हम केवल यही कह सकते हैं कि कीमत मे कमी होने पर उपभोक्ता की बजट रेखा का दाईं ओर आवर्तन होगा (कीमत मे वृद्धि होने पर बाईं ओर) तथा उपभोक्ता ऊचे अनधिमान वक्र पर पहुच जाएगा।

प्रोफेसर जे० आर० हिक्स एव स्लुट्स्की ने इस विश्लेषण को अनुचित मानते हुए तर्क दिया कि X की कीमत मे परिवर्तन होने पर हमें यह देखना चाहिए कि केवल सापेक्ष मूल्यों मे परिवर्तन का ही प्रभाव X की माग पर क्या प्रभाव होगा। अन्य शब्दो मे, प्रोफेसर हिक्स एव स्लुट्स्की के मतानुसार आय प्रभाव को गौण मानते हुए

हुये केवल प्रतिस्थापन प्रभाव के आधार पर कीमत एवं माग का सबध देखना चाहिए। अन्य शब्दों मे, जहा मार्शल X की निरपेक्ष कीमत मे परिवर्तन के माग पर प्रभाव की व्याख्या करते हैं (जिसमें उपभोक्ता की वास्तविक आय मे भी परिवर्तन हो जाता है) वही हिक्स एवं स्लुट्स्की वास्तविक आय को स्थिर मानते हुए सापेक्ष कीमतों (P_x/P_y) के परिवर्तन का माग पर प्रभाव देखना चाहते हैं।

तथापि, हिक्स एवं स्लुट्स्की की व्याख्याएं भी एक जैसी नही हैं। जैसा कि आगे बताया गया है, उपभोक्ता की वास्तविक आय को स्थिर रखते हुए हिक्स ने यह मान्यता ली है कि उपभोक्ता को कीमत-परिवर्तन से पूर्व की ही सतुष्टि प्राप्त होती रहे (यानी कि उपभोक्ता मूल अनधिमान वक्र पर ही नयी साम्य स्थिति प्राप्त करे)। दूसरी ओर, स्लुट्स्की का तर्क यह है कि कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय मे होने वाले परिवर्तन को गौण बनाने हेतु ऐसे कदम उठाए जाने चाहिए जिनका उद्देश्य उसे X एवं Y की पूर्व जितनी ही मात्राए प्रदान करना हो।

इस प्रकार कीमत परिवर्तन से माग मे उत्पन्न परिवर्तनों की व्याख्या तीन प्रकार से की जा सकती है। प्रथम मार्शलीय विधि है जिसके अनुसार कीमत मे कमी या वृद्धि होने पर माग की मात्रा पर पडने वाले कुल प्रभावों को देखा जाता है। दूसरी विधि हिक्स ने प्रस्तुत की है जिसके अनुसार कीमत मे परिवर्तन होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय मे उतनी कमी या वृद्धि की जानी चाहिए ताकि उपभोक्ता मूल अनधिमान वक्र पर ही नयी साम्य स्थिति प्राप्त करे। इसके विपरीत तीसरी विधि विधि स्लुट्स्की ने दी है जिसके अनुसार वास्तविक आय को कीमत परिवर्तन के बावजूद
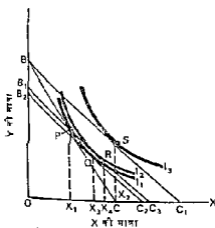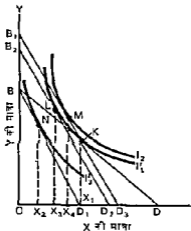
चित्र 5.7 X की कीमत मे परिवर्तन एवं मांग की मात्रा मे परिवर्तन का तुलनात्मक विश्लेषण

इस प्रकार स्थिर बनाए रखा जाए जिसका उद्देश्य उपभोक्ता को X व Y का मूल सयोग ही प्रदान करना हो। ये तीनो विश्लेषण चित्र 5 7 मे प्रस्तुत किए गए हैं।

पहले चित्र 5 7 का पैनल (a) लीजिए। उपभोक्ता का मूल साम्य बिंदु P था जहा वह OX_1 इकाइया X की लेता था। X की कीमत मे कमी होने पर बजट रेखा आवर्तित होकर BC से BC_1 हो जाती है तथा उपभोक्ता की साम्य स्थिति P से बदल कर नये अनधिमान वक्र I_3 पर S बिंदु पर आ जाती है तथा X की मात्रा OX_1 स बढकर OX_2 हो जाती है। अस्तु, कीमत म कमी के कारण X की माग में X_1X_2 इकाइयों की वृद्धि हो गइ। यह मार्शलीय विश्लेषण है जो कीमत मे परिवर्तन का कुल प्रभाव व्यक्त करता है।

हिक्स ने केवल प्रतिस्थापन प्रभाव के आधार पर कीमत परिवर्तन के माग पर होने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया। कुल प्रभाव मे से आय प्रभाव को पृथक करने के लिए नयी कीमतों के अनुरूप नयी बजट रेखा B_2C_2 इस प्रकार खीचिए कि यह मूल अनधिमान वक्र I_1 को Q पर स्पर्श करे। अन्य शब्दो मे यदि उपभोक्ता से BB_2 की क्षतिपूर्ति वसूल कर ली जाए तो कीमत म कमी होने पर भी उसका सतुष्टि स्तर I_1 पर ही Q पर रह सकेगा। अन्य शब्दो में, कुल प्रभाव मे स आय प्रभाव को हटाने के लिए उपभोक्ता को BB_2 के समान ऋणात्मक क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिए। इस प्रकार केवल प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण उपभोक्ता कीमतो के सापेक्ष परिवर्तन के कारण P से Q बिंदु पर आ जाता है तथा X की माग OX_1 स बढकर OX_3 हो जाती है। अस्तु, जब X सापेक्ष दृष्टि से अधिक सस्ती हो जाती है तो उसकी माग मे X_1X_3 के समान वृद्धि होती है।

परतु यदि स्लुट्स्की के दृष्टिकोण को स्वीकार करते हुए उपभोक्ता को मिलने वाली ऋणात्मक क्षतिपूर्ति (कर या पैनल्टी) का निर्धारण इस उद्देश्य मे किया जाए कि सापेक्ष कीमतो के परिवर्तन के बाद उपभोक्ता X व Y की पूर्व जितनी मात्राए ही लेता रहे (यानी P बिंदु पर ही बना रहे) तो क्षतिपूर्ति (कर या पैनल्टी) की राशि BB_1 ही होगी। यह नयी बजट रेखा वस्तुत: मूल्य साम्य बिंदु P से होकर गुजरती है तथा इसका ढलान X व Y की नयी कीमतो के अनुपात के समान होगा। परन्तु वास्तव मे P पर उपभोक्ता की नयी साम्य स्थिति कायम नहीं हो सकती क्योंकि P पर अनधिमान वक्र का ढलान नयी बजट रेखा B_1C_3 के ढलान स अधिक है $\left(\text{at } P \frac{MU_x}{MU_y} > \frac{P_x}{P_y} \right)$ अतएव उपभोक्ता की वास्तविक साम्य स्थिति R पर होगी जहा वह पूर्वापेक्षा ऊचे अनधिमान वक्र (I_2) पर OX_4 इकाइया X को ले रहा है। आप स्पष्ट देखेंगे कि R पर उपभोक्ता Q की अपेक्षा X की अधिक इकाइयो का उपभोग करता है। यही नही, पूर्वापेक्षा उसका सतुष्टि स्तर भी बढ जाता है। सक्षेप मे, X की कीमत म निर्दिष्ट कमी होने पर X की मात्रा OX_1 म बढकर मार्शलीय दृष्टिकोण के अनुसार OX_2 होती है, हिक्सीय दृष्टिकोण के अनुसार OX_3 होती है तथा स्लुट्स्की के अनुसार OX_4 होती है $(OX_2 > OX_4 > OX_3)$।

अब चित्र 5.7 के पैनल (b) के आधार पर X की कीमत में वृद्धि का X की माग पर प्रभाव देखा जाए। कीमत में वृद्धि होने पर बजट रेखा का बाईं ओर विवर्तन होता है तथा नई बजट रेखा $B'D_1$ हो जाती है। मार्शलीय दृष्टिकोण के आधार पर इस कीमत-वृद्धि के परिणामस्वरूप उपभोक्ता I'_1 से हटकर I'_4 पर नए साम्य बिंदु N पर आ जाता है। इस विचलन के कारण X की मात्रा OX'_1 से घटकर OX'_2 रह जाती है।

हिक्सीय दृष्टिकोण के अनुरूप देखने पर हमें कीमत में वृद्धि के फलस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय में जो कमी होती है उसकी क्षतिपूर्ति हेतु उपभोक्ता को $B'B'_2$ के समान (धनात्मक) क्षतिपूर्ति (अनुदान सहायता) इस प्रकार देनी चाहिए कि नयी कीमतों के संदर्भ में भी उपभोक्ता उसी संतुष्टि-स्तर पर यानी कि उसी अनधिमान वक्र पर बना रहे। फलस्वरूप B'_2D_2 बजट रेखा इस प्रकार खींची जाती है कि वह अनधिमान वक्र I'_1 को L बिंदु पर स्पर्श करे। यहां उपभोक्ता X की OX'_3 इकाइयां खरीदता है।

परंतु जैसा कि स्लुट्स्की का विचार है, *यदि क्षतिपूर्ति का प्रयोजन यह हो कि कीमत बढ़ने के बावजूद उपभोक्ता की वास्तविक आय उतनी कर दी जाए ताकि वह मूल साम्य बिंदु K पर ही रहे, तथा X व Y का वही संयोग लेता रहे,* तो हमें हिक्स द्वारा सुझाई गई क्षतिपूर्ति से कहीं अधिक क्षतिपूर्ति उपभोक्ता को देनी होगी। यह क्षतिपूर्ति या अनुदान सहायता की राशि $B_1B'_1$ के समान है तथा इसकी अनुरूपी बजट रेखा को इस प्रकार खींचा गया है ताकि यह मूल्य साम्य बिंदु K से होकर गुज़र सके। परंतु *अब वस्तुतः K उपभोक्ता की साम्य स्थिति नहीं है क्योंकि नयी सापेक्ष कीमतों के संदर्भ में* K पर बजट रेखा का ढलान अनधिमान वक्र के ढलान से अधिक है $\left(\text{at K}, \frac{MU_x}{MU_y} < \frac{P_x}{P_y}\right)$। *फलतः उपभोक्ता अपेक्षाकृत ऊंचे अनधिमान वक्र* I'_3 के M बिंदु पर साम्य प्राप्त करता है जहां X की मात्रा OX'_4 होगी। संक्षेप में, X की कीमत में निर्दिष्ट वृद्धि होने पर X की मात्रा OX'_1 से घटकर मार्शलीय दृष्टिकोण के अनुसार OX'_2 रह जाती है, हिक्सीय दृष्टिकोण में यह OX'_3 रहती है, परंतु स्लुट्स्की के दृष्टिकोण में यह OX'_4 रह जाती है $(OX'_2 < OX'_3 < OX'_4)$।

तुलनात्मक माग-विश्लेषण हेतु प्रस्तुत उपरोक्त विवरण को एक रेखाचित्र के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। चित्र 5.8 में एक ऐसी वस्तु के माग वक्रों को तीन रूप में प्रस्तुत किया गया है जो सामान्य है तथा जिसकी कीमत में कमी होने पर माग की मात्रा में कमी, अथवा कीमत में वृद्धि होने पर माग की मात्रा में वृद्धि होती है। परंतु कीमत के निर्दिष्ट परिवर्तन का माग पर प्रभाव मार्शल, हिक्स या स्लुट्स्की द्वारा अलग-अलग रूप में दर्शाया गया है।

जब कीमत OP_1 थी तो उपभोक्ता X की GX_1 इकाइयां खरीदता था। जब कीमत घट कर OP_2 रह जाती है तो आय तथा प्रतिस्थापन दोनों ही प्रभावों के कारण, मार्शलीय विधि के अनुसार, माग की मात्रा बढ़कर OX_2 हो जाती है। परंतु

यदि केवल सापेक्ष मूल्यो के परिवर्तन के प्रभाव (प्रतिस्थापन प्रभाव) को देखा जाए तथा हिक्सीय दृष्टिकोण लिया जाए तो वस्तु की माग OX_3 होगी। परतु यदि
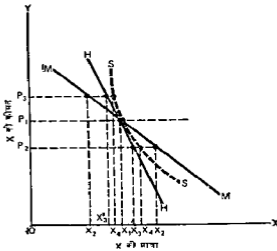
चित्र 5 8 तुलनात्मक माग वक्र

ऋणात्मक क्षतिपूर्ति अधिक है (स्लुटस्की का दृष्टिकोण), तो उपभोक्ता OP_2 कीमत पर OX_4 इकाइया खरीदेगा। अस्तु कीमत घटने का सर्वाधिक प्रभाव मार्शलीय दृष्टिकोण मे तथा सबसे कम हिक्सीय दृष्टिकोण मे प्रगट होता है।

यदि इसके विपरीत कीमत को बढाकर OP_1 कर दिया जाय तो आय तथा प्रतिस्थापन प्रभावो के कारण (मार्शलीय विधि) उपभोक्ता माग की मात्रा को OX_1 से घटाकर OX'_2 कर देता है जबकि हिक्सीय एव स्लुट्स्की की विधियो के अनुसार माग की मात्रा घटकर क्रमश OX'_3 एव OX_4 ही रहेगी। अस्तु कीमत बढने पर माग का सर्वाधिक सकुचन मार्शलीय विधि मे एव सबसे कम स्लुट्स्कीय विधि मे दृष्टिगोचर होता है। अस्तु स्लुट्स्की द्वारा प्रस्तुत विधि मे कीमत कम होने पर (हिक्सीय विधि की तुलना मे) माग मे अपेक्षाकृत अधिक विस्तार होता है, जबकि कीमत बढने पर माग में अपेक्षाकृत कम सकुचन होता है। मार्शल, हिक्स एव स्लुट्स्की की विधियो म प्राप्त माग वक्र चित्र 5 8 मे क्रमश MM, HN एव SS के रूप मे हैं।

5 4 अनधिमान वक्रो के प्रयोग

(Applications of Indifferent Curves)

अब तक हमने केवल यही बताने का प्रयत्न किया था कि कीमत मे परिवर्तन के प्रभावो की हम अनधिमान वक्रो की सहायता से क्योकर व्याख्या कर सकते हैं। व्यावहारिक जीवन मे इन वक्रो का अनेक क्षेत्रो मे प्रयोग किया जा सकता है। हम इन

अनुभाग मे यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि आर्थिक विश्लेषण के किन महत्वपूर्ण क्षेत्रो मे इन वक्रो का प्रयोग सभव है ।

1 **उपभोक्ता की रुचि एव प्राथमिकताओ मे परिवर्तन का विश्लेषण** (Explaining changes in tastes and preferences of a consumer)—जैसाकि ऊपर बताया गया था, अनधिमान वक्र के ढलान अथवा सीमात प्रतिस्थापन दर स हम X तथा Y की सीमात उपयोगिताओ की सापेक्षता या इनके अनुपात $\frac{\partial U}{\partial X} \Big/ \frac{\partial U}{\partial Y}$ का बोध होता है । जब तक उपभोक्ता की रुचियो एव प्राथमिकताओ मे कोई परिवर्तन नही होता, तब तक उसका अधिमान फलन यथावत् रहता है एव अनधिमान वक्रो की स्थिति भी यथावत बनी रहती है । यदि उपभोक्ता की आय मे वृद्धि हो जाए तब वह एक उच्चतर समानातर चलने वाले अनधिमान वक्र पर एक नयी साम्य स्थिति प्राप्त कर लेता है । ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता का आय उपभोग वक्र एक सीधी रेखा के रूप मे होगा । [चित्र 4 11 (a)] । परतु यदि उपभोक्ता की रुचि मे परिवर्तन हो जाए तो आय मे वृद्धि होने पर X तथा Y की कीमतें वही रहने पर भी वह किसी एक वस्तु की अधिक एव दूसरी की कम मात्रा ले सकता है । आप इससे यह समझ गए होगे कि अनधिमान वक्रो की सहायता से यह बतलाया जा सकता है कि X या Y मे से कौन-सी हीन वस्तु है ।
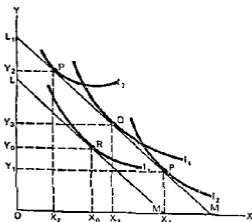
चित्र 5 9 उपभोक्ता की रुचि मे परिवर्तन की व्याख्या

चित्र 5 9 मे उपभोक्ता की बजट रेखा मूलत LM थी । आय बढ जाने पर बजट रेखा विवर्तित होकर L_1M_1 का रूप ले लेती है । यदि उपभोक्ता की रुचि अपरिवर्तित है तो वह R से हटकर एक नयी साम्य स्थिति Q पर पहुच जाएगा जहा वह X व Y दोनो की समान अनुपात मे अधिक मात्रा (OX_3 OY_3) खरीदेगा । परतु यदि

उच्च आय वर्ग मे प्रवेश करने पर उसे X से अरुचि उत्पन्न हो जाए तो वह P पर आना चाहेगा जहा X की OX_2 एव Y की OY_2 इकाइया ली जाएगी। इसी प्रकार Y के प्रति अरुचि होने पर वह P' पर जाएगा जहा Y की मात्रा घटकर OY_1 तथा X की मात्रा बढकर OX_1 हो जाएगी।

आप यह देख सकते हैं कि अनधिमान वक्रो के ढलान उपभोक्ता की रुचि को किस प्रकार व्यक्त करते हैं। मूल साम्य स्थिति R तथा Q के मध्य अनधिमान वक्रो के ढलान (X एव Y की सापेक्ष उपयोगिताए) समान हैं। इसके विपरीत R तथा P की साम्य स्थितियो की तुलना करने पर ज्ञात होगा कि P पर अनधिमान वक्र I_3 का ढलान $\left(\frac{\partial U}{\partial X}\Big/\frac{\partial U}{\partial Y}\right)$ R की तुलना मे कम है यानी X की उपयोगिता काफी कम है। इसके विपरीत P' पर अनधिमान वक्र I_2 का ढलान R की अपेक्षा काफी अधिक है जो X के प्रति उपभोक्ता की बढी हुई रुचि का प्रतीक है। इस प्रकार साम्य स्थिति पर अनधिमान वक्रो के ढलान को देखकर हम यह जान सकते हैं कि उपभोक्ता की रुचि यथावत् है अथवा इसमे परिवर्तन हुआ है।

2 **करारोपण, अन्तरण भुगतान एव अनुदान के प्रभावों का विश्लेषण** (*Explaining the effects of taxes, transfer payments and subsidies*)—किसी उपभोक्ता की आय पर कर रोपित कर देने पर उसकी बजट-रेखा का नीचे की ओर विवर्तन हो जाता है जबकि अतरण भुगतान (transfer payment) के फलस्वरूप उपभोक्ता की प्रायोज्य आय मे वृद्धि हो जाती है और इस कारण उसकी बजट-रेखा का ऊपर दाई ओर विवर्तन हो जाता है। जहा प्रत्यक्ष कर के फलस्वरूप उपभोक्ता को नीचे के अनधिमान वक्र पर आना पडता है, वहीं अतरण-भुगतान से उपभोक्ता को अपना सतुष्टि स्तर बढाने, यानी ऊचे अनधिमान वक्र पर जाने का अवसर मिल जाता है।

इन दोनो स भिन्न दो स्थितिया और भी हैं जिनमे उपभोक्ता के सतुष्टि स्तर को प्रत्यक्षत बजट रेखा के विवर्तन के माध्यम से प्रभावित न करके, वस्तु विशेष की कीमत मे परिवर्तन के माध्यम से प्रभावित किया जाता है। एक स्थिति परोक्ष कर (उत्पादन शुल्क या बिक्री कर) की है जिसके कारण वस्तु की कीमत बढ जाती है। इसके विपरीत स्थिति अनुदान की है जिसका प्रयोजन वस्तु को अपेक्षाकृत कम कीमत पर उपलब्ध कराना होता है।

चित्र 5 10 मे अतरण भुगतान एव अनुदान के प्रभावो की तुलना की गई है। इन दोनो का ही उद्देश्य वस्तु की माग मे वृद्धि करना है, परतु जहा अनुदान के माध्यम से वस्तु की कीमत कम की जाती है वही अतरण भुगतान के द्वारा उपभोक्ता की मौद्रिक आय मे वृद्धि की जाती है।

उपभोक्ता की मूल साम्य स्थिति I_1 पर P बिंदु पर थी। यदि उसकी आय में अतरण भुगतान के माध्यम से वृद्धि कर दी जाए तो उपभोक्ता की बजट रेखा विवर्तित होकर L_1M_1 हो जाती है, तथा उपभोक्ता उच्चतर अनधिमान वक्र I_2 के

बिंदु R पर नयी साम्य स्थिति प्राप्त करता है। इसके फलस्वरूप X की माग OX_1 से बढकर OX_2 हो जाती है। परन्तु यदि सरकार द्वारा या किसी अन्य एजेंसी द्वारा X की कीमत मे अनुदान या छूट का प्रावधान कर दिया जाए तो उपभोक्ता की बजट रेखा दाईं ओर प्रावर्तित होगी (LM_2), एव I_2 पर ही उपभोक्ता को नयी साम्य स्थिति Q पर प्राप्त होगी—जहा वह X की OX_3 इकाइया लेता है। अस्तु अंतरण भुगतान तथा अनुदान दोनो ही उपभोक्ता के सतुष्टि स्तर मे वृद्धि करते हैं, परन्तु वस्तु की माग पर अनुदान का प्रभाव अपेक्षा कृत अधिक व्यापक होता है।
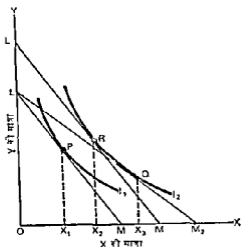
चित्र 5 10 अनुदान एव अंतरण भुगतान के प्रभावों की तुलना

ठीक इससे विपरीत नीतिया करारोपण से सबद्ध होती हैं जिनका उद्देश्य उपभोक्ता से आयकर अथवा वस्तु पर रोपित कर (उत्पादन शुल्क या बिक्री कर) के माध्यम से सरकारी कोष हेतु राजस्व प्राप्त करना होता है। कभी कभी किसी वस्तु की माग को सीमित करने हेतु भी इस पर कर लगाया जाता है। चित्र 5 11 मे बताया गया है कि आय-कर की अपेक्षा वस्तु पर रोपित (परोक्ष) कर वस्तु की माग पर अधिक व्यापक प्रभाव डालता है।
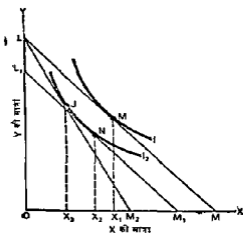
चित्र 5 11 परोक्ष तथा प्रत्यक्ष करों के मांग पर प्रभाव

चित्र 5 11 मे उपभोक्ता की मूल साम्य स्थिति I_1 पर M बिंदु पर थी जहा वह X

की X_1 इकाइया लेता था। आयकर रोपित किए जाने पर उसकी बजट रेखा का नीचे की ओर विवर्तन होता है तथा उसकी नयी साम्य स्थिति निम्न अनधिमान वक्र I_2 पर N बिंदु पर प्राप्त होती है। इस नवीन स्थिति मे वह OX_2 इकाइया वस्तु की लेता है। परतु यदि इतना ही कर वस्तु पर रोपित किया जाए तो X की कीमत बढ जाएगी तथा उसकी बजट रेखा LM से आवर्तित होकर LM_2 होगी। इस बजट रेखा पर उपभोक्ता की नयी साम्य स्थिति J बिंदु पर होगी जहा वह X की OX_3 इकाइया लेगा। अस्तु करारोपण के कारण उपभोक्ता का सतुष्टि स्तर कम होता है परतु वस्तु की माग पर परोक्ष कर का प्रभाव प्रत्यक्ष कर के प्रभाव की अपेक्षा अधिक प्रतिकूल होता है।

3 सूचकाकों का निरूपण (Preparation of index numbers)—सूचकाको के आधार पर बहुधा निर्दिष्ट आधार वर्ष एव वर्तमान वर्ष के मध्य कीमत-स्तर म हुए परिवर्तन, एव इस परिवर्तन के उपभोग-सरचना पर होने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है। अन्य शब्दो मे, कीमत स्तर के परिवर्तन का उपभोक्ता के निर्वाह-व्यय (cost of living) पर क्या प्रभाव होता है इसका अनुपात सूचकाक के आधार पर सरलता से किया जा सकता है। चित्र 5 12 मे हमने तीन अनधिमान वक्र—I_0, I_1 एव I_2 प्रस्तुत किए हैं। मूलतः अथवा आधार वर्ष मे उपभोक्ता की
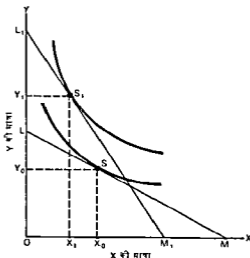
चित्र 5 12 सूचकाकों का निरूपण

बजट रेखा LM थी तथा वह X एव Y की क्रमश OX_0 एव OY_0 इकाइयों का (S पर) उपभोग करता था। यदि वर्तमान वर्ष तक X की कीमत बढ जाए जबकि Y की कीमत मे कमी हो जाए तो नयी बजट रेखा L_1M_1 के अनुरूप हो सकती है।

इस नयी स्थिति में (S_1) में उपभोक्ता X की मात्रा को घटाकर OX_1 कर देती है जबकि Y की मात्रा को बढ़ाकर OY_1 कर दिया जाता है।

इस विश्लेषण को सूचकांकों के रूप में प्रस्तुत करने हेतु यह मान्यता ली जाती है कि अनधिमान मानचित्र (indifference map) में प्रत्येक मान्य स्थिति किसी वास्तविक आय का बोध कराती है। इन वास्तविक आय स्तरों को निम्न रूप में परिमापित किया जा सकता है—

$$I_B = \frac{P_x X + P_y Y}{P_x X + P_y Y} \times 100 = 100 \text{ आधार वर्ष हेतु}$$

$$I_C = \frac{P_x X' \times P_y Y'}{P_x X + P_y Y} \times 100 \text{ वर्तमान वर्ष हेतु}$$

टिप्पणी : P_x एवं P_y क्रमशः X एवं Y की वर्तमान कीमतें हैं, जबकि P_x एवं P_y आधार वर्ष की कीमतें थीं। X एवं Y क्रमशः X एवं Y की वर्तमान वर्ष में खरीदी जाने वाली मात्राएं हैं।

यदि $I_c > I_B$ हो यानी वर्तमान वर्ष का सूचकांक 100 से ज्यादा हो तो इसका यह अर्थ होगा कि वर्तमान वर्ष में उपभोक्ता का निर्वाह व्यय पूर्वापेक्षा अधिक है, यानी कि उसके कल्याण या वास्तविक आय में कमी हो गई है।[5] यदि $I_c < I_B$ हो तो यह वास्तविक आय में वृद्धि का सूचक होगा।

5. सामान्य परिस्थितियों में निम्न विधि के द्वारा सूचकांक का निरूपण किया जा सकता है—

$$I_B = \frac{\sum_{i=1}^{n} P'_i X'_i}{\sum_{i=1}^{n} P^o_i X^o_i}$$

यहां X_i उपभोक्ता के उपभोग क्रम में निहित विभिन्न वस्तुओं की इकाइयों के प्रतीक हैं। 1 तथा 0 क्रमशः आधार वर्ष एवं वर्तमान वर्ष के मूल्यों का बोध कराते हैं। लेस्पायर द्वारा हाल्डेक न ज्यां स्लुट्स्की की भांति आधार वर्ष की मात्राओं पर जोर दिया था, वहीं पास्चे ने वर्तमान मात्राओं पर जोर दिया। इन दोनों ने सूचकांक बनाने हेतु जो सूत्र दिए वे इस प्रकार हैं—

लेस्पायर सूचकांक (वर्तमान वर्ष हेतु) पास्चे सूचकांक (वर्तमान वर्ष हेतु)

$$I_{BL} = \frac{\sum_{i=1}^{n} P'_i X^o_i}{\sum_{i=1}^{n} P^o_i X^o_i}; \quad I_{BP} = \frac{\sum_{i=1}^{n} P'_i X'_i}{\sum_{i=1}^{n} P^o_i X'_i}$$

अनधिमान वक्रों की सहायता से X एवं Y के आधार तथा वर्तमान वर्षों में उपयोगों को देखते हुए उपर्युक्त दोनों प्रकार के सूचकांक तैयार किए जा सकते हैं।

4 राशनिंग का प्रभाव स्पष्ट करना (Explaining the effect of rationing)—अनधिमान वक्रों की सहायता से यह भी बतलाया जा सकता है कि किसी भी उपभोक्ता के कल्याण पर राशनिंग की नीति का क्या प्रभाव हो सकता है। मान लीजिए समाज मे समान आय वाले दो व्यक्ति हैं, तथा दोनो को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार X एव Y की इकाइया खरीदने की छूट थी। फलत, A, X की X_A इकाइया तथा B इसकी X_B इकाइया खरीदता था। इसी कारण A के बजट मे Y की अधिक मात्राए शामिल होती थी जबकि B को अधिक मात्रा मे X मिलता था ($X_B > X_A$, $Y_B < Y_A$)। परतु यदि राशनिंग लागू कर दिया जाए तो दोनो उपभोक्ताओ को X एव Y की समान इकाइयां दी जाएगी चाहे उनकी रुचि किसी भी प्रकार की क्यो न हो। चित्र 5 13 मे स्पष्ट किया गया है कि राशनिंग के बाद दोनो ही व्यक्तियो को X_R मात्रा X की तथा Y_R मात्रा Y की दी जाती हैं। जैसाकि चित्र 5 13 स स्पष्ट है, राशनिंग के पश्चात् चूकि दोनों ही उपभोक्ताओ को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उपभोग करने की छूट नही दी जाती, इसलिए दोनो ही का सतुष्टि स्तर घटकर निचले अनधिमान वक्र पर R बिंदु पर आ जाता है।
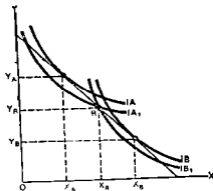
चित्र 5 13 राशनिंग का उपभोक्ता के कल्याण पर प्रभाव

यहा A के लिए X की उपयोगिता कम होने $\left(\frac{\partial U}{\partial X}\Big|\frac{\partial U}{\partial Y} < \frac{P_x}{P_y}\right)$ पर भी उस OX_R मात्रा X की खरीदनी पडती है। इसके विपरीत B के लिए Y की उपयोगिता कम होने पर $\left(\frac{\partial U}{\partial X}\Big|\frac{\partial U}{\partial Y} > \frac{P_x}{P_y}\right)$ पर भी उसे OY_R मात्रा Y की लेनी पडती है। प्रोफेसर स्टिग्लर की ऐसी मान्यता है कि उपभोक्ताओं के कल्याण पर राशनिंग का यह प्रभाव कितना प्रतिकूल होगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि विभिन्न व्यक्तियो की रुचियो मे कितनी भिन्नता है। "ये रुचिया जितनी अधिक भिन्न होगी, राशनिंग के कारण उतने ही अधिक व्यक्तियों के आर्थिक कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव होगा।"[6]

5 श्रम के पूर्ति वक्र का निरूपण (Derivation of the supply curve of labour)—अनधिमान वक्र की सहायता से हम किसी व्यक्ति द्वारा

6 George J Stigler, "The Theory of Price", New York, The Mac Millan Company, 1957, p 84

आय (काम के घंटों) तथा आराम के मध्य दी गई प्राथमिकता का भी विश्लेषण कर सकते हैं। इस स्थिति में X एवं Y दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के मध्य चुनाव करने की अपेक्षा अब व्यक्ति को आय (काम के घंटों) एवं विश्राम के मध्य चुनाव करना होता है। चूंकि कुल अवधि 24 घंटे हैं तथा काम के घंटों एवं कुल आय में सहसंबंध है इसलिए आय एवं विश्राम के मध्य स्थानापन्नता रहती है—एक की वृद्धि हेतु दूसरे में कमी करनी ही होती है। इस दशा में व्यक्ति का कुल उपयोगिता फलन निम्न रूप लेगा—

$$U = f(L, M) \quad (5\ 1)$$

इस समीकरण में L विश्राम का तथा M आय का प्रतीक है। वस्तुतः आय एवं काम के घंटों में आनुपातिक संबंध माना जाता है। हम यह भी मान लेते हैं कि बजट सीमा की परिधि में रह कर उपभोक्ता आय एवं विश्राम का कोई इष्टतम संयोग प्राप्त करना चाहेगा। यह बजट सीमा निम्न रूप से व्यक्त की जा सकती है—

$$M = r\,W \quad (5\ 2)$$

यहां M व्यक्ति की कुल आय है, r मजदूरी की दर है जबकि W काम के कुल घंटे हैं। अंत में हम कुल घंटों (T) को लेते हैं जिसे L तथा W के रूप में ही विभक्त किया जा सकता है, (T=L, M)। अब व्यक्ति के उपयोगिता फलन को पुनः लिखा जा सकता है

$$U = f(T - W - r\,W) \quad (5\ 3)$$

यदि समीकरण (5 1) के आधार पर एक अनधिमान वक्र का निरूपण किया जाए तो यह मान्यता ली जा सकती है कि एक अनधिमान वक्र पर आय (M) एवं विश्राम (L) के विभिन्न संयोगों से प्राप्त कुल उपयोगिता समान रहती है, परंतु उच्चतर अनधिमान वक्र पर उसे अधिक उपयोगिता प्राप्त होती जाती है। ऐसे अनधिमान वक्र का ढलान निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकेगा—

$$\frac{-dM}{dL} = \frac{\partial U}{\partial L} \Big/ \frac{\partial U}{\partial M} \quad (5\ 4)$$

यदि समीकरण (5 3) में प्रस्तुत उपयोगिता फलन को काम के घंटों (W) के संदर्भ में अवकलित किया जाए तो निम्न स्थिति बनेगी—
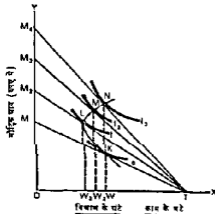
चित्र 5 14 अनधिमान वक्र एवं श्रम की पूर्ति

$$\frac{dU}{dW} = -\frac{\partial U}{\partial L} \Big/ \frac{\partial U}{\partial M} - r = 0 \quad (5\ 5)$$

समीकरण (5 4) एव (5 5) को एक साथ रखने पर हमे व्यक्ति की इष्टतम स्थिति का पता चलता है जहा निम्न शर्त पूरी होती है—

$$\frac{-dM}{dL} = \frac{\partial U}{\partial L} \Big/ \frac{\partial U}{\partial M} = r \qquad \ldots(5\ 6)$$

अन्य शब्दो मे, जहा मजदूरी की दर अनधिमान फलन के ढलान के समान हो वहाँ उपभोक्ता की आय (काम के घटे) तथा विश्राम का इष्टतम सयोग प्राप्त होगा।

चित्र 5 14 मे अनधिमान वक्र I_0 I_1, I_2 एव I_3 व्यक्ति की उत्तरोत्तर श्रेष्ठ स्थितियो के द्योतक हैं जो उसे बढी हुई मजदूरी के कारण प्राप्त होती हैं। आय रेखाए M_oT, M_1T, M_2T एव M_3T हैं जिनके ढलान मजदूरी की दर (r) के समान (जैसे $\frac{M_1}{T}$, $\frac{M_2}{T}$ आदि) हैं। जब मजदूरी की दर पहली बार बढती है तो उपभोक्ता की साम्य स्थिति K से बदल कर L पर होती है तथा वह काम के घटो को OW_1 से बढाकर OW_3 कर देता है। परतु मजदूरी की दर फिर बढने पर वह *काम के घटो मे कमी करके पहले OW_2 और फिर अतत OW_1 पर ही आ जाता* है। इस प्रकार अनधिमान वक्रो की सहायता से यह बताया जा सकता है कि मजदूरी की दर बढते जाने पर भी एक सीमा के बाद श्रमिक काम के घटो मे कमी कर देता है। *इसे श्रम का पीछे की ओर मुडता हुआ पूर्ति वक्र* (backward sloping demand curve of labour) कहा जाता है।

अनधिमान वक्रो की सहायता से यह भी बतलाया जा सकता है कि मजदूरी *बढाने के साथ-साथ यदि श्रमिक को काम के घटे बढाने से निषेध कर दिया जाए तो वह अपेक्षाकृत निचले अनधिमान वक्र पर रह जाता है।*

चित्र 5 15 मजदूरी के घटो पर पाबदी एव श्रमिक कल्याण
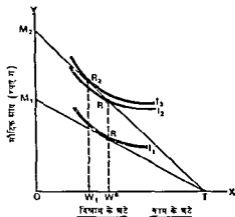
चित्र 5 15 मे यह बताया गया है कि यदि श्रमिक पर कोई प्रतिबध न हो तो मजदूरी की दर $\frac{M_1}{T}$ से बढकर $\frac{M_2}{T}$ हो जाने पर वह अनधिमान वक्र I_1 से I_3 पर चला जाएगा। परतु ऐसा करने हेतु यह श्रम यानी काम के घटो को OW^* से बढाकर OW_1 करेगा। परतु यदि मजदूरी बढने के साथ ही श्रमिक पर OW^* घटे काम करने की पाबदी लगा दी जाए तो वह I_3 तक नही

प्रोफेसर हिक्स ने प्रारम्भ में उपभोक्ता की बचत का यही माप लिया था। परन्तु आगे चलकर उन्होंने एक लेख में[8] इसमें संशोधन करते हुए चार प्रकार की उपभोक्ताओं की बचतों का विवरण दिया जो सभी अनधिमान वक्र पर आधारित हैं। हम अब इन्हीं के विषय में अध्ययन करेंगे।

चार उपभोक्ता की बचत (The four Consumer's Surpluses)

उपभोक्ता की बचत के विषय में प्रोफेसर हिक्स का यह संशोधित विवरण उनकी आय तथा प्रतिस्थापन प्रभाव संबंधी धारणाओं पर आधारित है। उनके अनुसार—

"उपभोक्ता की बचत मुद्रा की वह मात्रा है जो उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के बाद उपभोक्ता को इस प्रकार दी जाती है, अथवा उससे इस प्रकार ले ली जाती है ताकि उपभोक्ता पूर्वापेक्षा न तो अच्छी स्थिति में रहता है और न ही बदतर स्थिति में। इसका यह अर्थ हुआ कि उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के बाद भी वह उसी अनधिमान वक्र पर बना रहता है।

जैसा कि अध्याय 4 में बताया गया है, किसी भी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय में भी परिवर्तन होता है (जिसे हमने आय प्रभाव की संज्ञा दी थी)। प्रोफेसर हिक्स इस संदर्भ में दो प्रकार के परिवर्तनों—समतुल्य परिवर्तन (Equivalent Variation) एवं क्षतिपूरक परिवर्तन (Compensating Variation)—का उल्लेख करते हैं। समतुल्य परिवर्तन वह मौद्रिक आय है जो उपभोक्ता से इस प्रकार वसूल की जाती है (प्रत्यक्ष कर के रूप में) या उसे इस प्रकार प्रदान की जाती है (अनुदान के रूप में) कि उपभोक्ता वास्तविक आय के उस स्तर को प्राप्त कर सके जो कीमत में परिवर्तन होने पर उसे मिलता, परन्तु कीमत में परिवर्तन नहीं होता।

प्रोफेसर हिक्स ने क्षतिपूरक परिवर्तन की परिभाषा उस मौद्रिक आय के रूप में दी जो उपभोक्ता के लिए कीमत में परिवर्तन की क्षतिपूर्ति करती है। इस दशा में कीमत में वस्तुतः परिवर्तन होता है। यह मौद्रिक आय किसी कर (कीमत कम होने पर) या अनुदान (कीमत बढ़ने पर) के रूप में होती है जो कीमत में होने वाले परिवर्तन को ठीक नष्ट कर देती है, और इस प्रकार यह उपभोक्ता को उसके उस वास्तविक आय के स्तर तक पहुंचा देती है जो कि कीमत में परिवर्तन से पूर्व रहता है।

इस प्रकार समतुल्य परिवर्तन एवं क्षतिपूरक परिवर्तन दोनों ही के अंतर्गत उपभोक्ता की वास्तविक आय के स्तर को यथावत् रखने हेतु उसे अनुदान के रूप में कुछ मुद्रा दी जाती है अथवा कर के रूप में उससे कुछ मुद्रा ले ली जाती है। इन परिभाषाओं को देने के बाद प्रोफेसर हिक्स ने उपभोक्ता की जो चार बचतें बताईं,

8 J.R. Hicks, "The Four Consumer Surpluses", Review of Economic Studies, 1943

वे निम्नलिखित हैं—

(1) आय में मात्रा-क्षतिपूरक परिवर्तन (The quantity-compensating variation in income),

(2) आय में कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन (The price-compenasting variation in income),

(3) आय में कीमत समतुल्य परिवर्तन (The price-equivalent variation in income), तथा

(4) आय में मात्रा समतुल्य परिवर्तन (The quantity-equivalent variation in income)।

अब हम इन चारों की विस्तृत व्याख्या करेंगे।

1 आय में मात्रा क्षतिपूरक परिवर्तन—जैसा कि इसके शीर्षक से स्पष्ट होता है इसका प्रयोजन उपभोक्ता की कीमत परिवर्तन के पश्चात् वस्तु की नयी मात्रा को यथावत रखते हुए उसकी वास्तविक आय के प्रारंभिक स्तर को बनाए रखना है। चित्र 5 17 में उपभोक्ता की मूल बजट रेखा LM थी तथा अनधिमान वक्र I_1 पर उसकी साम्य स्थिति P पर थी। कीमत में कमी होने पर बजट रेखा दाईं ओर आवर्तन होकर यह ML_1 का रूप ले लेती है जहां उसकी नयी साम्य स्थिति I_2 पर R बिंदु पर होगी जहां वह X की OX_1 इकाइयां लेगा। इतनी मात्रा को प्राप्त करने हेतु उपभोक्ता FR इकाई मुद्रा चुकाएगा। चित्र 5 16 में प्रस्तुत विवरण के अनुसार
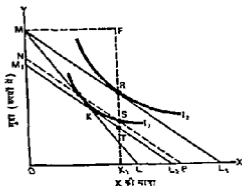
चित्र 5 17 उपभोक्ता की बचत-I (क्षतिपूरक परिवर्तन)

यहां उपभोक्ता की बचत SR होगी। यदि उपभोक्ता से SR द्रव्य की मात्रा आयकर के रूप में ले ली जाए तो उपभोक्ता मूल सतुष्टि स्तर यानी I_1 पर ही लौट आएगा। इस प्रकार SR मौद्रिक आय में होने वाली वह क्षतिपूर्ति है, जो कीमत में कमी होने पर सतुष्टि-स्तर में होने वाली वृद्धि को नष्ट करके उपभोक्ता को प्रारंभिक अनधिमान वक्र I_1 पर ही ला देती है। परंतु इस क्षतिपूर्ति के उपरांत भी वह I_1 पर X की

OX_1 इकाइया ही खरीदता रहता है।

2 आय मे कीमत सबधी क्षतिपूरक परिवर्तन—चित्र 5 17 को पुन देखिए। यदि उपभोक्ता से SR द्रव्य की मात्रा (SR=MN) ही (ऋणात्मक) क्षतिपूर्ति के रूप मे ली जाती है तो वस्तुत उसकी वास्तविक आय अब पूर्वापेक्षा अधिक होगी और फलस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक साम्य स्थिति I_1 से ऊचे (परतु I_2 से निचले) अनधिमान वक्र पर होगी। वास्तव मे S किसी भी प्रकार से उपभोक्ता की इष्टतम स्थिति का द्योतक नही है। यदि हम यह चाहते हैं कि उपभोक्ता अपने पूव-सतुष्टि स्तर पर यानी I_1 पर ही रहे तो कीमत मे परिवतन के बाद हमे उपभोक्ता से MM_1 द्रव्य की मात्रा (MM_1=TR) कर या ऋणात्मक क्षतिपूर्ति के रूप मे लेनी होगी। उस स्थिति मे उपभोक्ता की साम्य स्थिति K पर होगी जहा नयी बजट रेखा M_1L_2 उसके प्रारंभिक अनधिमान वक्र को स्पश करती है। वस्तुत TR (>SR) कीमत मे कमी होने पर उपभोक्ता की सतुष्टि मे हुई वृद्धि का पूर्ण एव सही माप है तथा इसे आय मे कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन की सज्ञा दी जा सकती है। आप यह समझ गए होगे कि वस्तुत यह स्लुटस्की एव हिक्स के प्रतिस्थापन प्रभाव का अतर ही है जो आय मे मात्रा-क्षतिपूरक एव कीमत क्षतिपूरक परिवर्तन के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

3 आय मे कीमत-सबधी समतुल्य परिवर्तन—यदि कीमत मे निर्दिष्ट कमी का प्रस्ताव हो तो आय मे कितनी वृद्धि इसके समतुल्य या बराबर होगी ? चित्र 5 18 मे उपभोक्ता की मूल बजट रेखा ML थी। कीमत मे प्रस्तावित कमी के फल-

चित्र 5 18 उपभोक्ता की बचत II (समतुल्य परिवर्तन)
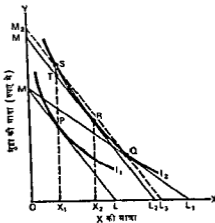
स्वरूप बजट रेखा आवर्तित होकर ML_1 हो जाएगी हालांकि कीमत मे यह कमी काल्पनिक ही है और इसी प्रकार ML_1 बजट रेखा भी काल्पनिक ही कही जा सकती है। वस्तुत हमारा प्रयोजन यह देखना है कि कीमत मे परिवर्तन (कमी) होने पर उप-

भोक्ता के सतुष्टि स्तर मे जो वृद्धि होती है, कीमत मे कमी न होने पर भी मौद्रिक आय मे कितनी वृद्धि की जाए ताकि उतनी ही वृद्धि सतुष्टि स्तर मे लाई जा सके।

चूकि चित्र 5 18 मे शीर्ष स्तर पर मुद्रा की मात्रा को तथा क्षैतिज अक्ष पर X की मात्रा को लिया गया है, हम ML रेखा के ढाल को वस्तु की कीमत भी मान सकते है। अस्तु, प्रस्तावित नयी कीमत ML_1 बजट रेखा के ढाल के रूप मे भी व्यक्त किया जा सकता है। इस प्रस्तावित नयी कीमत पर उपभोक्ता उच्चतर अनधिमान वक्र I_2 के Q बिंदु पर नयी साम्य स्थिति प्राप्त कर सकता है। परतु यदि हम कीमत मे कमी करने की अपेक्षा उपभोक्ता को अनुदान के रूप मे PT ($=MM_1$) रकम दे दें तब उपभोक्ता की नयी बजट रेखा M_1L_2 होगी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ML एव M_1L_2 दोनों बजट रेखाओ के ढलान समान हैं यानी दोनो स्थितियों मे X की कीमत वही है। परतु M_1L_2 बजट रेखा उपभोक्ता को अनधिमान वक्र I_2 के बिंदु R पर साम्य स्थिति प्रदान करता है। इस प्रकार कीमत मे कमी न होने पर भी PT के समान अनुदान देकर उपभोक्ता को ऊचे अनधिमान वक्र I_2 पर पहुचाया जा सकता है। इसीलिए इसे कीमत-समतुल्य परिवर्तन की सज्ञा दी जाती है।

4. आय मे मात्रा समतुल्य परिवर्तन—यदि उपभोक्ता की मौद्रिक आय मे वृद्धि ($MM_1=PT$) के बावजूद उपभोक्ता वस्तु की प्रारभिक मात्रा यानी OX_1 इकाइयां ही लेना चाहे तो उसे I_2 की अपेक्षा एक नीचे अनधिमान वक्र पर रहना पडेगा, क्योंकि T बिंदु जो M_1L_2 पर स्थित है, उसे कदापि I_2 पर नयी सतुष्टि स्थिति मे रखते हुए OX_1 इकाई प्रदान नही कर सकता। ऐसी स्थिति मे X की OX_1 इकाई लेते हुए अनधिमान वक्र I_2 पर उपभोक्ता को तभी पहुचाया जा सकता है जबकि उपभोक्ता को PS के समतुल्य ($PS=MM_2$) अतिरिक्त मुद्रा देनी होगी। यह अतिरिक्त आय PT की अपेक्षा अधिक है जहा हमने उपभोक्ता को X की OX_2 इकाइया खरीदने की छूट दी थी। अस्तु, यदि ऊचे अनधिमान वक्र पर जाने के बावजूद उपभोक्ता X को पूर्व जितनी मात्रा ही लेना चाहे तो उसे अपेक्षाकृत अधिक अतिरिक्त मुद्रा देनी होगी। इसे आय मे मात्रा-समतुल्य परिवर्तन कहा जा सकता है।

6

मांग संबधी अन्य अवधारणाएं
(ADDITIONAL TOPICS IN DEMAND THEORY)

पिछले तीन अध्यायो मे उपभोक्ता व्यवहार से सबद्ध नव-सस्थापनावादी तथा आधुनिक सिद्धातो की विवेचना की गई थी। प्रस्तुत अध्याय मे माग सबधी उन शेष अवधारणाओ तथा सिद्धातो का वर्णन किया जाएगा जो प्रत्यक्षत उपभोक्ता के व्यवहार को प्रभावित करते हैं तथा जो माग की मात्रा को प्रभावित करते हुए मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया मे योगदान करते हैं।

6.1 माग की लोच
(Elasticity of Demand)

अर्थशास्त्र मे लोच का अभिप्राय किसी भी स्वतत्र चर (independent variable) मे परिवर्तन होने पर आश्रित चर (dependent variable) पर होने वाली प्रतिक्रिया (responsiveness) से लिया जाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि, अन्य बातो के समान रहते हुए, किसी वस्तु की कीमत, अन्य वस्तुओ की कीमतो अथवा उपभोक्ता की आय (जो वस्तुत किसी माग को प्रभावित करने वाले तीन प्रत्यक्ष घटक हैं) मे परिवर्तन होने पर जो प्रतिक्रिया वस्तु की माग पर होती है, वही वस्तु की माग की लोच कहलाती है। पिछले अध्याय मे माग फलन की निम्न रूप मे परिभाषा दी गई थी—

$$D_x = f(P_x, P_y, M) \qquad \ldots(6\,1)$$

यानी वस्तु की माग की मात्रा (D_x) इसकी कीमत (P_x), अन्य वस्तुओ की कीमतो (P_y) तथा उपभोक्ता की आय (M) पर निर्भर करती है। यदि उपरोक्त तीनो स्वतत्र चरो मे से दो को स्थिर रखते हुए किसी एक मे परिवर्तन करके माग पर होने वाली प्रतिक्रिया को देखा जाए तो वही उस वस्तु की माग की लोच कहलाएगी। उदाहरणत यदि अन्य कीमतो (P_y) एव आय (M) को स्थिर रखकर कीमत (P_x) मे परिवर्तन से उत्पन्न प्रतिक्रिया को देखा जाए तो यह माग की कीमत लोच (Price elasicity of demand) होगी। इसी प्रकार वस्तु की कीमत तथा अन्य वस्तुओ की कीमतो को यथावत् रखकर उपभोक्ता की आय मे होने वाले परिवर्तन की माग पर प्रतिक्रिया देखी जाए तो यह माग की आय लोच होगी। अत मे, यदि वस्तु की कीमत तथा आय स्थिर हैं परतु अन्य वस्तुओ की कीमतो मे परिवर्तन होता है, तो इससे माग पर जो प्रतिक्रिया होती है उसे माग की तिरछी लोच

(cross elasticity of demand) कहा जाएगा। इसीलिए माग की लोच का विवरण देते समय यह बतलाना आवश्यक है कि हम माग फलन के स्वतत्र चरो मे से किस एक चर को परिवर्तनशील मान रहे हैं।

प्रोफेसर मार्शल ने माग का विश्लेषण करते हुए यह माना था कि वस्तु की माग केवल मूल्य पर निर्भर करती है।[1] इसीलिए उनके विश्लेषण मे हमे केवल वस्तु की कीमत लोच का विवरण प्राप्त होता है। परतु आधुनिक विश्लेषण मे माग को प्रभावित करने वाले तीनो घटको को आधार मानकर वस्तु की कीमत-माग लोच, आय-माग लोच तथा तिरछी लोच का अध्ययन करना महत्त्वपूर्ण है, हालाकि इनमे से कौन सी लोच अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह विशिष्ट परिस्थिति पर ही निर्भर करता है।

माग की विभिन्न लोचो के मध्य परस्पर सबध
(Inter-relationship Among the Elasticities)

यह पिछले अध्याय मे स्पष्ट किया जा चुका है, कि माग फलन साधारणतया शून्य डिग्री का समरूपी फलन (homogenous function of degree zero) होता है, अर्थात् यदि निर्दिष्ट वस्तु सहित सभी वस्तुओ की कीमतो (P_x, P_y) तथा उपभोक्ता की आय मे समानुपाती परिवर्तन हो जाए तो वस्तु की माग की मात्रा यथावत् रहेगी। गणितीय रूप मे इसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{\partial X}{\partial P_x} \cdot P_x + \frac{\partial X}{\partial P_y} \cdot P_y + \frac{\partial X}{\partial M} M = 0 \qquad \ldots(6.2)$$

यदि हम समीकरण (6 2) को X से भाग दें तब भी इसमे कोई अतर नही आएगा—

$$\frac{\partial X}{\partial P_x} \cdot \frac{P_x}{X} + \frac{\partial X}{\partial P_y} \cdot \frac{P_y}{X} + \frac{\partial X}{\partial M} \cdot \frac{M}{X} = 0 \qquad \ldots(6\ 3)$$

समीकरण (6 3) मे विद्यमान तीनो तत्व माग फलन के तीनो स्वतत्र चरो (P_x, P_y एव M) मे होने वाले (समानुपाती) परिवर्तन के फलस्वरूप माग पर होने वाली प्रतिक्रियाओ, यानी कीमत लोच $\left(\frac{\partial X}{\partial P_x} \cdot \frac{P_x}{X}\right)$, तिरछी लोच $\left(\frac{\partial X}{\partial P_y} \cdot \frac{P_y}{X}\right)$ एव आय लोच $\left(\frac{\partial X}{\partial M} \cdot \frac{M}{X}\right)$ को व्यक्त करते हैं। जैसा कि समीकरण (6 3) से स्पष्ट होता है, यदि कीमत, अन्य कीमतो तथा उपभोक्ता की आय मे समानुपाती परिवर्तन हो तो वस्तु की माग मे कोई परिवर्तन नही होगा। इसी समीकरण को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{\partial X}{\partial P_y} \cdot \frac{P_y}{X} + \frac{\partial X}{\partial M} \cdot \frac{M}{X} = -\frac{\partial X}{\partial P_x} \cdot \frac{P_x}{X} \qquad \ldots(6\ 4)$$

1. Alfred Marshall : 'Principles of Economics', London, Mac Millan & Co (Eigth Edition 1959), Chapter IV

समीकरण (6.4) से स्पष्ट है कि एक शून्य डिग्री के समरूपी माग फलन में तिरछी लोच तथा आय लोच का योग वस्तु की कीमत लोच के समान होता है ($\eta_{xy} + \eta_m = \eta_{xx}$)। कीमत लोच के साथ ऋणात्मक चिह्न केवल यह बताता है कि कीमत तथा माग मे विपरीत संबंध होता है।

परन्तु यदि माग फलन समरूपी न हो, यानी वस्तु की कीमत, अन्य कीमतों तथा उपभोक्ता की आय में एक ही अनुपात मे परिवर्तन न हो तो (6.4) मे प्रस्तुत निष्कर्ष सही नही होगा। अन्य शब्दों मे, यदि माग फलन के सभी स्वतन्त्र चरों मे होने वाले परिवर्तन असमान हों तो माग यथावत् नहीं रह सकेगी और ऐसी दशा मे समीकरण (6.3) की भांति तीनों प्रकार की लोच का योग शून्य नही हो सकेगा, अथवा तिरछी लोच एवं अन्य लोच का योग लेकर वस्तु की कीमत लोच ज्ञात नहीं की जा सकेगी। ऐसी स्थिति में तीनों प्रकार की लोच का संबंध निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है—

$$\eta_{xx} = (kX)\,\eta_m + (1-kX)\,\eta_s \qquad \ldots(6.5)$$

समीकरण 6.5 मे η_{xx} वस्तु की कीमत लोच तथा η_m इसकी आय लोच को व्यक्त करती हैं। η_s वस्तुत वस्तु की प्रतिस्थापन लोच है जो यह बताती है कि X तथा Y की कीमतो के अनुपात (P_x/P_y) में परिवर्तन होने पर X एवं Y की मात्राओं के अनुपात म (X/y) म किस प्रकार परिवर्तन होता है। स्पष्ट है, सापेक्ष रूप से X के सस्ती हो जाने पर उपभोक्ता Y की मात्रा मे कमी करके X की मात्रा बढ़ाएगा (प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण)। अस्तु प्रतिस्थापन लोच तिरछी लोच का परिष्कृत रूप ही है। समीकरण (6.5) मे kX उपभोक्ता की आय का वह अनुपात है जो X पर व्यय किया जाता है।

इस प्रकार समीकरण (6.5) मे प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव के माध्यम म वस्तु की कीमत लोच को ज्ञात किया जाता है, परन्तु साथ ही प्रतिस्थापन लोच तथा आय लोच को X तथा Y पर व्यय किए जाने वाले अनुपातों (क्रमश kX एव 1—kX) म भारित भी किया जाता है। एक उदाहरण मे इस संबंध को समझना आसान होगा—

मान लीजिए वस्तु की माग आय लोच (η_m) 4 है, प्रतिस्थापन लोच (η_s) 2 है, एव X पर उपभोक्ता अपनी आय का 25 प्रतिशत भाग व्यय करता है। समीकरण (6.5) के अनुसार वस्तु की कीमत लोच इस प्रकार ज्ञात की जा सकेगी—

$$\eta_{xx} = (kX)\,\eta_m + (1-kX)\,\eta_s$$
$$= (\cdot 25)\,4 + (\cdot 75)\,2$$
$$= 2.5$$

(विद्यार्थियों को चाहिए कि इसी प्रकार कीमत लोच एवं आय लोच तथा X पर व्यय के अनुपात के आधार पर प्रतिस्थापन लोच ज्ञात करें।)

6.2 माग की कीमत लोच
(Price Elasticity of Demand)

अध्याय के पिछले अनुभाग म यह स्पष्ट कर दिया गया था कि किसी वस्तु की कीमत माग लोच इस वस्तु की कीमत म परिवर्तन होने पर (अन्य बातें यथावत् रहते हुए) इसकी माग पर होने वाली प्रतिक्रिया को ही कहा जाता है। प्रोफेसर बोल्डिग ने कीमत लोच के दो रूप बतलाए हैं[2] प्रथम, माग की निरपेक्ष लोच, तथा द्वितीय, माग की सापेक्ष लोच। माग की निरपेक्ष लोच मे वस्तु की कीमत म होने वाले परिवर्तन तथा इसके फलस्वरूप माग की मात्रा म हुए परिवर्तन का अनुपात लिया जाता है। इसके विपरीत कीमत की सापेक्ष लोच के अतर्गत कीमत मे हुए आनुपातिक परिवर्तन एव माग क आनुपातिक परिवर्तन का अनुपात लिया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि वस्तु की कीमत 4 रुपए स बढकर 5 रुपए हो जाने पर इसकी माग 20 इकाई स घटकर 15 इकाई रह जाए तो माग की निरपेक्ष लोच इस प्रकार होगी—

$$\frac{20-15}{4-5}=-5$$

बहुधा अर्थशास्त्री निरपेक्ष लोच की अपेक्षा सापेक्ष लोच को माग की लोच का श्रेष्ठतर माप मानते हैं क्योंकि यह गणितीय दृष्टि स अधिक सुस्पष्ट एव तार्किक दृष्टि से अधिक अच्छा माप है।[3]

माग की (सापेक्ष) लोच की श्रेणिया
(Categories of Relative Price Elasticity)

मार्शल ने अपनी पुस्तक मे यह बताने का प्रयास किया था कि किसी भी वस्तु की माग की लोच उस वस्तु की प्रवृति (यानी यह कि वस्तु कितनी आवश्यक या महत्वपूर्ण है), उपभोक्ता की आय के स्तर एव उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा, उपभोक्ता की रुचि एव आदतों, वस्तु के प्रयोग की विविधता, इसके उपभोग को स्थगित करने की सभावना आदि के अनुरूप कम या अधिक हो सकती है। अन्य शब्दो मे, सभी वस्तुओ की माग की कीमत लोच किसी उपभोक्ता के लिए एक जैसी नही होती, अथवा एक ही वस्तु की माग की लोच भिन्न-भिन्न उपभोक्ताओं के लिए एक समय मे भिन्न हो सकती है,

2 K E Boulding Economic Analysis, Vol, I—Microeconomics (1966), pp 181-82

3 सूत्रों के रूप म इसे निम्न प्रकार स व्यक्त किया जाता है—

$$\text{माग की निरपेक्ष लोच} = \frac{dX}{dP_x}, \quad \text{माग की सापेक्ष लोच} = \frac{dD_x}{dP_x} \cdot \frac{P_x}{D_x}$$

इस दृष्टि से माग की निरपेक्ष लोच वस्तुत माग वक्र के (ऋणात्मक) ढलान को व्यक्त करती है। यदि माग वक्र रेखीय (linear) हो तो माग की निरपेक्ष लोच सतत एक जैसी होगी। परन्तु जैसा कि आग बताया गया है माग की सापेक्ष लोच माग वक्र के प्रत्येक बिंदु पर भिन्न होती है, भले ही माग वक्र रेखीय क्यो न हो, यानी इसका ढलान $\frac{dD_x}{dP_x}$ एक समान क्यो न हो।

अथवा एक ही उपभोक्ता के लिए अलग-अलग समय पर वस्तु अधिक या कम लोच-दार हो सकती है। इसीलिए अर्थशास्त्री बहुधा माग की लोच की निम्नांकित श्रेणियों का उल्लेख करते हैं—

(1) पूर्णतया लोचदार मांग (Perfectly elastic demand) वस्तु की माग पूर्णतया लोचदार तब होती है जब कि कीमत म कोई परिवर्तन न होने पर भी माग मे परिवर्तन हो जाए। अन्य शब्दो मे, निर्दिष्ट कीमत पर ही उपभोक्ता समस्त उपलब्ध मात्रा खरीदने को तत्पर हो जाए, अथवा कीमत में तनिक-सी वृद्धि होने पर भी वस्तु को खरीदना बद कर दें। हमारे सापेक्ष लोच के सूत्र $\left(\eta_{xx}=\frac{dD_x}{dP_x} \quad \frac{P_x}{D_x}\right)$ में यदि $dP_x=0$ हो तो माग की लोच अनत हो जाएगी ($\eta_{xx}=\infty$) ऐसी दशा मे माग वस्तु कीमत मे सर्वथा असबद्ध होती है।

(ii) अधिक लोचदार माग (Highly elastic demand) : किसी भी वस्तु की माग को अधिक लोचदार उस समय माना जाता है जब कि कीमत म हुए आनुपातिक परिवर्तन की तुलना मे माग मे होने वाला आनुपातिक परिवर्तन बहुत अधिक हो। ऐसी स्थिति मे माग की लोच इकाई से अधिक परतु अनंत से कम होनी है ($1<\eta_{xx}<\infty$)।

(iii) लोचदार माग (Unitary elastic demand) . यदि माग मे हुआ आनुपातिक परिवर्तन वस्तु की कीमत में हुए आनुपातिक परिवर्तन के समान हो तो ऐसी माग को लोचदार कहा जाता है ($\eta_{xx}=1$)।

(iv) बेलोच मांग (Inelastic demand) यदि वस्तु की कीमत मे हुए आनुपातिक परिवर्तन की तुलना मे मांग मे होने वाला आनुपातिक परिवर्तन कम हो, तो यह बेलोच माग का एक उदाहरण होगा ($\eta_{xx}<1$)। उदाहरण के लिए, यदि कीमत 20 प्रतिशत बढने पर भी माग में 10 प्रतिशत की कमी होती है, तो यह बेलोच माग होगी।

(v) पूर्णतया बेलोच माग (Perfectly inelastic demand) यदि कीमत में होने वाला कोई भी परिवर्तन माग की मात्रा को प्रभावित करने मे सफल न हो, तो ऐसी माग को पूर्णतया बेलोच माग ($\eta_{xx}=0$) कहा जाता है। ऐसी स्थिति मे भी वस्तु की माग इसकी कीमत से असबद्ध रहती है।

वस्तुत माग की लोच की प्रथम एव अतिम श्रेणिया (जहा माग व कीमत पूर्णतया असबद्ध हैं यानी $\eta_{xx}=\infty$ या $\eta_{xx}=0$ है) पूर्णतया अव्यावहारिक प्रतीत होती हैं। हमारे व्यावहारिक जीवन मे कीमत म परिवर्तन होने पर माग पर प्रतिक्रिया अवश्य होती है, परतु इतनी अधिक प्रतिक्रिया कभी नहीं होती (जैसा कि पूर्णतया लोचदार माग के अतर्गत हो सकता है) कि माग शून्य हो जाए। इसी कारण से व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से माग की लोच की तीन श्रेणियों को ही स्वीकार किया जाता है। ये श्रेणिया इस प्रकार हैं—

अधिक लोचदार माग : $\eta_{xx}>1$

लोचदार माग $\eta_{xx}=1$

बेलोच माग $\eta_{xz}<1$

ऊपर हमने माग की लोच की श्रेणियों का विवरण पढा तथा यह बताने का प्रयास किया कि इकाई के समान-इकाई से अधिक या इकाई से कम लोच व्यावहारिक दृष्टि से उपयुक्त है। प्रश्न है, हम यह किस प्रकार जान सकते हैं कि माग अधिक लोचदार है, लोचदार या बेलोच ? इसके लिए माग की लोच को मापने की विधियो का ज्ञान होना चाहिए जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

माग की लोच को मापने की विधिया
(Measurement of the Elasticity of Demand)

माग की लोच को मापने हेतु अनेक विधिया प्रयुक्त की जाती हैं। इन विधियो का उल्लेख करने से पूर्व यह बताना आवश्यक होगा कि कीमत व माग में निर्दिष्ट परिवर्तन होने पर विभिन्न विधियों से प्राप्त माग की लोच का गुणाक (coefficient) भिन्न होने पर भी माग की लोच की प्रकृति के विषय में उनसे प्राप्त निष्कर्ष एक जैसे ही होगे। अब हम माग की लोच के माप की विभिन्न विधियो का विवरण देखेंगे।

1 माग की बिंदु लोच तथा चाप लोच
(Point *versus* Arc Elasticity of Demand)

माग की लोच को मापने की सर्वाधिक प्रचलित विधि चलन-अवकलन (differential calculus) पर आधारित है। समीकरण (6 1) में यदि अन्य कीमतो (P_y) तथा उपभोक्ता की आय (M) को यथावत रखकर X की कीमत में अत्यत सूक्ष्म (infinitesimal) परिवर्तन किया जाए तो इसकी जो प्रतिक्रिया माग पर होगी उसे माग की बिंदु लोच कहा जाता है। इसे बिंदु लोच इसलिए कहते हैं कि यदि कीमत मे परिवर्तन अत्यत सूक्ष्म हो ($dP_x \rightarrow 0$) तो माग की लोच मागवक्र के निर्दिष्ट बिंदु पर ही मापी जा सकेगी।

चित्र 6,1 मांग की बिंदु एव चाप लोच

माग की बिंदु लोच का एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए, केल्वीनेटर फ्रिज की कीमत 4200 रुपए से घटकर 4198 रुपए रह जाती है। कीमत का यह परिवर्तन अत्यत सूक्ष्म परिवर्तन है। ऐसी स्थिति में हम चित्र 6 1 के माग वक्र के बिंदु A
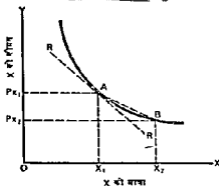
पर ही फ्रिज की माग लोच मापना चाहेगे । इसके लिए अवकलन निम्न सूत्र अवकलन विधि के आधार पर लिया जाता है ।

बिंदु A पर माग की लोच

$$\eta_{xx}=\frac{dD_x}{dP_x}\cdot\frac{P_x}{D_x}\left\{\eta_{xx}=\frac{dD_x}{dP_x}\div\frac{D_x}{P_x}\right\} \qquad (6\ 6)$$

इस सूत्र मे $\frac{dD_x}{dP_x}$ तो A पर माग वक्र का ढलान या प्रथम अवकलन है जबकि P_x एव D_x इससे सबद्ध कीमत (OP_{x_1}) एव माग (OX_1) को व्यक्त करते हैं ।

इससे विपरीत माग की चाप लोच (arc elasticity) के अतर्गत कीमत मे पर्याप्त परिवतन होने पर माग पर जो प्रतिक्रिया होती है उसे मापा जाता है । यहा पर्याप्त परिवर्तन (finite change) उस परिवर्तन को कहा जाता है जिसमे क्रेता को प्रत्यक्षत प्रभावित करने की क्षमता हो । उदाहरण के लिए, यदि फ्रिज की कीमत मे 5 या 10 प्रतिशत (या इससे भी अधिक) परिवर्तन हो, तो यह कीमत मे होने वाला पर्याप्त परिवर्तन कहलाएगा । चित्र 6 1 मे यदि कीमत OP_{x_2} से घटकर OP_{x_3} हो जाए, तो हम *माग वक्र के A बिंदु पर नही अपितु A तथा B बिंदुओ के बीच माग की लोच* को मापेंगे । वस्तुत चाप लोच के अतर्गत हम कीमत व माग के परिवर्तनो का औसत लेना चाहते हैं और इसीलिए इसे माग की लोच को मापने की औसत विधि भी कहा जाता है । इसके लिए निम्न सूत्र प्रस्तुत किया जाता है—

$$\eta_{xx}=\frac{D_{x_2}-D_{x_1}}{P_{x_2}-P_{x_1}}\div\frac{D_{x_2}+D_{x_1}}{P_{x_2}+P_{x_1}}$$

$$=\frac{D_{x_2}-D_{x_1}}{P_{x_2}-P_{x_1}}\cdot\frac{P_{x_2}+P_{x_1}}{D_{x_2}+D_{x_1}} \qquad (6\ 7)$$

उपरोक्त सूत्र मे D_{x_1}, D_{x_2} क्रमश आरभिक एव वर्तमान माग की मात्राए हैं तथा P_{x_1} एव P_{x_2} क्रमश प्रारभिक एव वर्तमान कीमतो को व्यक्त करती हैं । जैसा कि समीकरण (6 7) से स्पष्ट है, चाप लोच विधि मे हम कीमतो एव माग के परिवतनो का औसत लेते हैं ।

2 व्यय का परिमाण एव माग की लोच का माप
(Level of Expenditure and Measurement of Elasticity)

प्रोफेसर मार्शल ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनॉमिक्स' के गणितीय परिशिष्ट मे *बताया था कि कीमत मे परिवर्तन होने पर किसी वस्तु की माग की लोच* को मापने हेतु हम किसी वस्तु पर किए गए व्यय मे होने वाले परिवर्तन को भी प्रयुक्त कर सकते हैं । उन्होंने कहा 'यदि वस्तु की सभी कीमतो पर माग की लोच इकाई के समान है $(\eta_{xx}=1)$, तो कीमत मे जिस अनुपात से कमी या वृद्धि होगी, माग मे उतने ही अनुपात से वृद्धि या कमी होगी, और इसलिए उपभोक्ताओ द्वारा वस्तु पर

किए गए कुल व्यय में कोई परिवर्तन नहीं होगा।" अन्य शब्दों में, यदि कीमत में परिवर्तन के पश्चात् मांग में इस प्रकार परिवर्तन हो कि वस्तु पर किया गया व्यय पहले जितना ही रहे, तो यह लोचदार मांग ($e_{xx}=1$) का उदाहरण होगा।

स्थिर व्यय वाली ऐसी वस्तु का मांग वक्र आयताकार अतिपरवलय (rectangular hyperbola) के रूप में होगा। चित्र 6.2 में ऐसे ही मांग वक्र को प्रस्तुत किया गया है जिसके प्रत्येक बिंदु पर वक्र के भीतर का क्षेत्रफल समान है।[4]
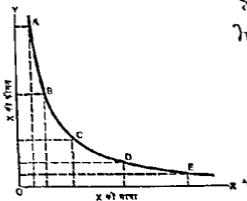
चित्र 6.2 ऐसा मांग वक्र जिससे संबद्ध सभी कीमतों पर मांग की लोच इकाई के बराबर है

जैसा कि चित्र 6.2 में स्पष्ट है, मांग वक्र के पांचों बिंदुओं—A, B, C, D तथा E के अंतर्गत विद्यमान क्षेत्रफल समान है। अन्य शब्दों में, कीमत एवं मात्रा का गुणनफल ($X\,P_x$) स्थिर है। इस प्रकार, कीमत चाहे कैसी भी क्यों न हो, उपभोक्ता इस वस्तु पर उतनी ही राशि व्यय करता रहेगा। ऐसी दशा में मांग की लोच इकाई के समान होगी।

4 यदि वस्तु पर किया गया व्यय स्थिर रहे तो अवकलन विधि द्वारा भी लोच का माप ज्ञात किया जा सकता है। चूंकि कुल व्यय स्थिर है अतः हम कह सकते हैं $P_x D_x = K$ (यहां K मानो कुल व्यय स्थिर है जबकि P_x व D_x वस्तु की कीमत एवं मांग को व्यक्त करते हैं। इसे इस रूप में भी लिखा जा सकता है: $D_x = \frac{K}{P_x}$ तथा $\frac{dD_x}{dP_x} = -K/P_x^2$ यदि इसे बिंदु लोच वाले सूत्र में प्रतिस्थापित करें तथा D_x के स्थान पर $\frac{K}{P_x}$ रखें, तो $e_{xx} = \frac{dD_x}{dP_x} \cdot \frac{P_x}{D_x}$ or $e_{xx} = \frac{-K}{P_x^2} \cdot \frac{P_x}{K/P_x} = -1$ (ऋणात्मक चिह्न कीमत व मांग के विपरीत संबंध का प्रतीक है)

परन्तु यदि कुल व्यय स्थिर न रहे, तो भी निम्न सूत्र की सहायता से माग की कीमत लोच का माप लिया जा सकता है—

$$\eta_{xx}=1-\frac{\Delta \text{Expenditure}}{D_x \quad \Delta P_x} \qquad \cdots\cdots (6\ 8)$$

समीकरण (6 8) मे Δ Expenditure वस्तुत X पर किए जाने वाले व्यय मे परिवर्तन का द्योतक है जबकि D_x एव ΔP_x क्रमश X की प्रारंभिक मात्रा एव इसकी कीमत मे हुए (निरपेक्ष) परिवर्तन को व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि X की कीमत 10 रुपए से घटकर 6 रुपए रहने पर उसकी माग 20 इकाई से बढ़कर 35 इकाई हो जाए तो कुल व्यय विधि के आधार पर वस्तु की कीमत माग लोच इस प्रकार ज्ञात की जा सकेगी—

$$\eta_{xx}=1-\frac{(10)}{20\times(-4)}=1+\frac{10}{80}=1\ 125$$

अन्य शब्दो मे, माग अधिक लोचदार है क्योंकि कीमत घटने पर कुल व्यय 200 रुपए से बढ़कर 210 रुपए हो जाता है।[5] इसी प्रकार, अनधिमान वक्रो के सदर्भ मे कीमत उपभोग वक्र (PCC) की दिशा को देखते हुए माग की लोच का ज्ञान हो सकता है।

चित्र 6.3 मे तीन अनधिमान वक्र प्रस्तुत किए गए हैं। जैसा कि पिछले अध्याय में स्पष्ट किया गया था, अनधिमान वक्रो के इस विश्लेषण मे क्षैतिज अक्ष पर X की मात्रा तथा शीर्ष अक्ष पर उपभोक्ता के पास विद्यमान मुद्रा को मापा जा सकता है।
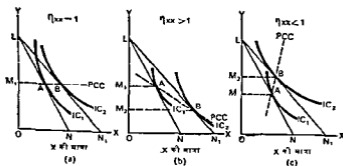
चित्र 6 3 कीमत उपभोग वक्र एवं माग की लोच

5 यदि हम समीकरण (6 7) में व्यक्त चाप लोच के सूत्र को आधार बना कर माग की लोच का माप लें, तो लोच का गुणांक भिन्न होने पर भी हमारा निष्कर्ष (यह कि $\eta_{xx}>1$ यानी कि माग अधिक लोचदार है) यथावत् रहेगा। अस्तु

$$\eta_{xx}=\frac{D_{x_2}-D_{x_1}}{P_{x_2}-P_{x_1}}\times\frac{P_{x_2}+P_{x_1}}{D_{x_2}+D_{x_1}}=\frac{15}{4}\times\frac{16}{55}=1\ 09.$$

चित्र 6 3 मे X की कीमत मे कमी होने पर आम तौर पर बजट रेखा LN से आवर्तित होकर LN_1 की स्थिति मे आ जाती है तथा उपभोक्ता की साम्य स्थिति A से बदलकर ऊंचे अनधिमान वक्र I_2 पर B बिंदु पर आ जाती है। इस प्रकार तीनो ही प्रकार की दशाओ मे कीमत घटने पर X की माग मे वृद्धि दर्शाई गई है।

परतु कीमत की कमी से माग मे होने वाली वृद्धि तीनो ही दशाओ मे भिन्न है—जो वस्तुत कीमत उपभोग वक्र की दिशा से भी स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए, पैनल A मे कीमत घटने पर X की मात्रा मे वृद्धि इस प्रकार हो रही है कि इस पर किया गया व्यय LM_1 पर स्थिर है। इसी कारण प्रथम दशा मे माग की लोच इकाई के समान ($\eta_{XX}=1$) है। द्वितीय स्थिति (पैनल b) मे कीमत मे कमी के कारण X की मात्रा मे बहुत अधिक वृद्धि होने के कारण इस पर किया गया व्यय Lm_1 से बढकर LM_2 हो गया और इस प्रकार समीकरण (6 8) के अनुसार माग अधिक लोचदार ($\eta_{XX}>1$) है। पैनल (c) मे इसके विपरीत कीमत की उतनी ही वृद्धि माग मे अत्यत साधारण सी वृद्धि ला पाती है और फलत X पर किया गया व्यय OM_1 से घटकर OM_2 रह जाता है। कीमत उपभोग वक्र (PCC) इस दशा मे ऊर्ध्वमुखी है। इस प्रकार समीकरण (6 8) के अनुसार तृतीय A स्थिति मे माग बेलोच ($\eta_{XX}<1$) कहलाएगी।

इस विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि पैनल (a) मे उपभोक्ता की X के प्रति रुचि यथावत् रहने के कारण माग एव कीमत मे समानुपाती परिवर्तन होते हैं। इसके विपरीत पैनल (b) मे X की कीमत घटने पर उपभोक्ता की रुचि इसमे बढ जाने के कारण माग की वृद्धि अनुपात से अधिक होती है, जो अनधिमान वक्र IC_2 के B बिंदु पर बढे हुए ढलान से भी स्पष्ट है। पैनल (C) मे इसके विपरीत नयी साम्य स्थिति (B) मे *अनधिमान वक्र का ढलान कम हो जाता है क्योंकि समवत उपभोक्ता की* X मे रुचि कम हो जाती है। इसी कारण पैनल (C) बेलोच माग को व्यक्त करता है।

अब तक हमने कीमत मे कमी के सदर्भ मे कीमत उपभोग वक्र (PCC) एव माग की लोच के मध्य सबध का विश्लेषण किया है। यही विश्लेषण कीमत मे वृद्धि के संदर्भ मे भी दोहराया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर यदि कीमत मे वृद्धि हो तथा कीमत उपभोग वक्र नीचे दाईं ओर आता हो, तो इसका अभिप्राय यह होगा कि कीमत मे वृद्धि के बाद X पर किए गए व्यय मे वृद्धि हो रही है और ऐसी स्थिति मे वस्तु की माग अत्यधिक लोचदार होगी। इसके विपरीत यदि कीमत मे वृद्धि होने पर कीमत उपभोग वक्र ऊपर बाईं ओर जाता हो, तो इसका अभिप्राय यह होगा कि कुल व्यय मे वृद्धि हो रही है एव माग बेलोच है। तालिका 6 1 मे ये सारे निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

तालिका 6 1
कीमत में परिवर्तन, कुल व्यय एव माग की लोच

कीमत मे परिवर्तन की प्रकृति	कीमत उपभोग वक्र की दिशा	कुल व्यय में परिवर्तन	माग की प्रकृति
I कीमत में कमी	(a) ऊपर दाईं ओर जाता हुआ	कमी	वेलोच ($\eta_{xx}<1$)
	(b) नीचे दाईं ओर आता हुआ	वृद्धि	अत्यधिक लोचदार ($\eta_{xx}>1$)
	(c) क्षैतिज	स्थिर	लोचदार ($\eta_{xx}=1$)
II कीमत में वृद्धि	(a) ऊपर बाईं ओर जाता हुआ	कमी	वेलोच ($\eta_{xx}<1$)
	(b) नीचे बाईं ओर आता हुआ	वृद्धि	अत्यधिक लोचदार ($\eta_{xx}>1$)
	(c) क्षैतिज	स्थिर	लोचदार ($\eta_{xx}=1$)

इस प्रकार कीमत के परिवर्तन के प्रभाव को कीमत उपभोग वक्र (PCC) की दिशा के रूप में व्यक्त करते हुए माग की लोच ज्ञात की जा सकती है।

6 3 माग की कीमत लोच का रेखागणितीय माप
(Geometric Measure of the Price Elasticity)

ऊपर वर्णित विधियो के अतिरिक्त माग की कीमत लोच को मापने की एक रेखागणितीय विधि भी है जो अपेक्षाकृत अधिक सरल प्रतीत होती है। चित्र 6 4 मे माग वक्र CF के रूप मे है। रेखागणित के आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि *माग वक्र CF के भिन्न भिन्न बिंदुओ पर माग की लोच भी भिन्न है।*[6]

समीकरण (6 6) के अनुसार माग वक्र के किसी बिंदु पर कीमत लोच को जानने की बिंदु लोच का सूत्र इस प्रकार है—

6 यदि माग वक्र अरेखीय (non-linear) हो, तब भी हमारे विश्लेषण में कोई परिवर्तन नहीं होगा। परन्तु उस स्थिति में हम चित्र 6.4 मे प्रस्तुत वक्र DD' के किसी भी बिंदु (जैसे कि E बिंदु) पर एक स्पर्श रेखा खींचकर रेखागणितीय विधि से माग की लोच ज्ञात करेंगे। स्पष्ट है, इस दशा में अरेखीय माग वक्र पर अनेक सख्या में स्पर्श रेखाए होगी एव तदनुरूपी माग की लोच भी भिन्न होगी।

$$\eta_{xx} = \frac{dD_x}{dP_x} \cdot \frac{P_x}{D_x} \text{ अथवा } \frac{dD_x}{dP_x} - \frac{D_x}{P_x}$$

हम पूर्व मे यह देख चुके हैं कि उक्त सूत्र मे $\frac{dD_x}{dP_x}$ वस्तुत माग वक्र के निर्दिष्ट बिंदु पर ढलान का प्रतीक है जबकि $\frac{P_x}{D_x}$ माग वक्र के उस बिंदु पर कीमत एव माग की मात्रा का सयोग है। यह हम जानते हैं कि रेखीय माग वक्र का ढलान सभी बिंदुओ
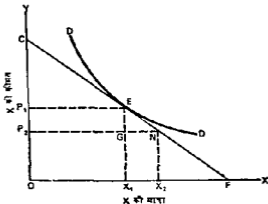
चित्र 6 4 मांग की लोच का रेखागणितीय माप

पर समान रहता है, परतु कीमत व माग की मात्राओ के अनुपात (P_x/D_x) मे अतर आता जाता है। यही कारण है कि माग वक्र के विभिन्न बिंदुओ पर लोच का गुणाक (coefficient) भी भिन्न होगा।[7]

अब मान लीजिए कि हम चित्र (6 4) मे माग वक्र CF के बिंदु E (जो DD पर CF का स्पर्श बिंदु भी हो सकता है) पर माग की कीमत लोच ज्ञात करना चाहते हैं। E बिंदु पर माग की लोच के सूत्र को खडश देखने पर निम्न विश्लेषण प्राप्त होगा—

$$dD_x = X_1X_2 \ , \ dP_x = P_1P_2$$
$$D_x = OX_1 \ , \ P_x = OP_1$$

इन्हे माग की कीमत लोच के सूत्र मे प्रतिस्थापित कीजिए।

$$\eta_{xx} = \frac{X_1X_2}{P_1P_2} \cdot \frac{OP_1}{OX_1} \qquad (6\,9)$$

7 यदि हम E बिंदु से ऊपर बाईं ओर चलें, तो $\frac{P_x}{D_x}$ बढ़ेगा क्योकि कीमत बढ़ती है जबकि D_x यानी माग मे कमी होती है। फलत E से C की दिशा मे मांग अधिक लोचदार होगी। इसके विपरीत E से F की दिशा में चलने पर कीमत घटती है जबकि माग मे वृद्धि होती है और इसके फलस्वरूप मांग की लोच मे कमी होती जाती है।

परन्तु $X_1X_2 = GN$ है, जबकि $P_1P_2 = EG$ है। इसके साथ ही EGN एव EX_1F एक जैसे त्रिभुज हैं। और इसलिए इनके तदनुरूपी कोण भी समान हैं। अस्तु, हम उपरोक्त मदो को निम्न रूप मे लिख सकते हैं—

$$\frac{X_1X_2}{P_1P_2} = \frac{GN}{EG} = \frac{X_1F}{EX_1} = \frac{X_1F}{OP_1}$$

अब समीकरण (6 9) को पुन लिखने पर निम्न समीकरण (6 10) प्राप्त होगा

$$\eta_{xx} = \frac{X_1F}{OP_1} \quad \frac{OP_1}{OX_1} = \frac{X_1F}{OX_1} \qquad (6\ 10)$$

परन्तु $\frac{X_1F}{OX_1} = \frac{EF}{EC}$ है, अत E बिंदु पर माग की कीमत लोच का गुणाक निम्न रूप मे ज्ञात होगा

$$\eta_{xx} = \frac{X_1F}{OX_1} = \frac{EF}{EC} \qquad (6\ 11)$$

वास्तव मे समीकरण (6 11) एव ऊपर प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट होता है कि एक रेखीय माग वक्र के मध्य बिंदु (जैसाकि चित्र 6 4 मे E बिंदु है) से ऊपर बाईं ओर चलने पर माग की लोच का गुणाक बढता जाता है जबकि E से नीचे दाईं ओर चलने पर लोच के गुणाक मे कमी होती जाती है। अन्य शब्दो मे, यदि E बिंदु खिसकता हुआ C की ओर चलता है तो समीकरण (6 11) का अश शून्य की ओर प्रवृत्त होता है और इस प्रकार C पर पहुचने तक माग की लोच अनत होती है। इसके विपरीत E बिंदु जब नीचे दाईं ओर खिसकता हुआ F तक पहुचता है तो माग की लोच शून्य हो जाती है। अस्तु, एक रेखीय माग वक्र पर माग की लोच शून्य से लेकर अनत होती है।
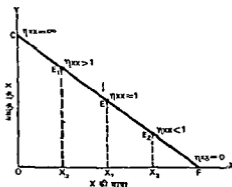
चित्र 6 5 रेखीय माग वक्र पर माग की लोच

चित्र 6 5 मे E बिंदु पर माग की लोच इकाई के समान है क्योकि E की दूरी F एव C के मध्य एक जैसी है। इसके विपरीत E_1 पर माग अत्यधिक लोचदार एव

E_2 पर बेलोच है। C तथा F पर मांग की लोच क्रमश अनंत एवं शून्य है। परंतु, जैसाकि अनुभाग 6.2 मे बताया जा चुका है, ये दो अंतिम प्रकार की लोच श्रेणियां व्यावहारिक दृष्टि से अनुपयुक्त हैं। कुछ भी हो, चित्र 6.5 से यह स्पष्ट है कि रेखीय मांग वक्र पर ऊंची कीमतो पर मांग अधिक लोचदार तथा नीची कीमत पर बेलोच होती है।

6 4 मांग की तिरछी लोच

(Cross Elasticity of Demand)

पूर्व मे यह बताया जा चुका है कि किसी अन्य वस्तु की कीमत (Py) मे हुए परिवर्तन से X की माग (Dx) पर होने वाली प्रतिक्रिया को माग की तिरछी लोच कहा जाता है। अन्य शब्दो मे, तिरछी लोच का माप लेते समय यह मान्यता ली जाती है कि X तथा Y परस्पर सबद्ध वस्तुए हैं, और इसलिए एक की कीमत मे परिवर्तन होने पर दूसरे की मांग अवश्य ही प्रभावित होगी। अस्तु, X की मांग की तिरछी लोच का सूत्र इस प्रकार होगा—

$$\eta_{xy}=\frac{dD_x}{dP_y} \div \frac{D_x}{P_y}$$

$$=\frac{dD_x}{dP_y}\cdot\frac{P_y}{D_x} \qquad \ldots (6.12)^{8}$$

इसी प्रकार Y की मांग की तिरछी लोच का सूत्र निम्नांकित होगा :

$$\eta_{yx}=\frac{dD_y}{dP_x}\cdot\frac{P_x}{D_y} \qquad \ldots (6.13)$$

परन्तु जैसा अनुभाग (6 2) मे बताया गया था, तिरछी लोच का माप लेने हेतु हम केवल संबद्ध वस्तु की कीमत को परिवर्तनशील मानते हैं। उदाहरण के तौर पर, X की माग की तिरछी लोच का माप लेते समय हम केवल Y की कीमत (Py) को परिवर्तनशील मानते हैं तथा साथ ही यह भी मान्यता लेते हैं कि X की कीमत (Px) तथा उपभोक्ता की आय (M) मे कोई परिवर्तन नही होता।

माग की तिरछी लोच ऋणात्मक अथवा धनात्मक हो सकती है। वस्तुतः इसकी प्रकृति क्या होगी यह इस बात पर निर्भर करता है कि दोनों वस्तुओं के मध्य किस प्रकार का संबंध है। यदि माग की तिरछी लोच धनात्मक है तो इसका यह अभिप्राय होगा कि P_y मे कमी (वृद्धि) होने पर X की माग मे भी कमी (वृद्धि) होगी। ऐसा तभी हो सकता है जब X तथा Y परस्पर स्थानापन्न वस्तुएं (substi-

8. माग फलन का समीकरणों (6.1) से लेकर (6.3) में प्रस्तुत फलनिय रूप लेते हुए हम कह सकते हैं कि Y की कीमत (Py) मे हुए आनुपातिक परिवर्तन से X की मांग मे उत्पन्न आनुपातिक परिवर्तन को तिरछी लोच कहा जा सकता है।

$$\eta_{xy}=\frac{\partial(\log D_x)}{\partial(\log P_y)}=\frac{P_y}{D_x}\cdot\frac{\partial D_x}{\partial P_y}$$

tutes) हैं। उदाहरण के तौर पर यदि गोल्ड स्पॉट की कीमत मे कमी होती है (जबकि फैंटा की कीमत वही रहती है) और फैंटा की माग मे कमी हो जाती है, तो उपरोक्त सूत्र के अनुसार $\frac{dD_x}{dP_y}$ दोनो ही ऋणात्मक होने के कारण माग की तिरछी लोच धनात्मक होगी।

अध्याय 5 मे यह बतलाया जा चुका है कि कीमत मे परिवर्तन मे उत्पन्न प्रतिस्थापन या स्थानापन्न प्रभाव के कारण उपभोक्ता उस वस्तु का अधिक उपयोग करेगा जो सापेक्ष दृष्टि से अब सस्ती हो गई है। चूकि X की कीमत मे कमी होने पर Y की कीमत सापेक्ष दृष्टि मे अधिक हो गई है और इस कारण X की माग बढ जाती है, बहुधा प्रतिस्थापन लोच (Elasticity of substitution) धनात्मक होती है।[9]

इसके विपरीत X तथा Y परस्पर पूरक वस्तुए (complementary goods) हो सकती हैं। उदाहरण के तौर पर, दूध एव शकर मे स्थापन्नता न होकर पूरकता है तथा दूध की माग बढने (कम होने) पर शक्कर की माग मे भी वृद्धि (कमी) होगी। इसी प्रकार डबल रोटी व मक्खन, मिर्च व नमक, पैन व स्याही, स्कूटर एव पैट्रोल आदि पूरक वस्तुओ के उदाहरण हैं जिनकी माग मे वृद्धि या कमी साथ-साथ होती है, हालाकि यह वृद्धि या कमी एक ही अनुपात में होना आवश्यक नहीं है। यदि दो वस्तुओ की माग मे समानुपाती वृद्धि हो तो, वे पूर्णत पूरक वस्तुए कही जाती हैं।

अस्तु पूरक वस्तुओ के सदर्भ मे एक वस्तु (Y) की कीमत मे कमी (वृद्धि) होने पर जब उस वस्तु की माग मे तो वृद्धि (कमी) होगी ही, उससे सम्बद्ध अन्य वस्तु (X) की माग मे भी वृद्धि (कमी) होगी। इस प्रकार, Y की कीमत एव X की माग मे प्रतिकूल सबध होने के कारण इनकी तिरछी लोच ऋणात्मक होगी ($\eta_{xy} < 0$)।

चित्र 6 6 मे X तथा Y के मध्य सबधो की व्याख्या की गई है। पैनल (a) मे बताया गया है कि Y की कीमत (P_y) तथा X की माग (D_x) एक ही दिशा मे चलती हैं। अन्य शब्दो मे, जब Y की कीमत घटती है तो इसके फलस्वरूप X की माग कम हो जाती है। जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, यह उस स्थिति मे होता है जब X तथा Y प्रतिस्थापन की वस्तुए हो। ऐसी स्थिति मे माग की तिरछी लोच धनात्मक होगी।

चित्र 6 6 के पैनल (b) में पूरक वस्तुओ की स्थिति दर्शाई गई है। तदनुसार जब Y की कीमत घटती (बढती) है तो इसकी माग मे वृद्धि (कमी) के साथ-साथ X की माग मे भी वृद्धि (कमी) होगी। ऐसी स्थिति मे X की माग की तिरछी लोच ऋणात्मक होगी।

इन दोनो से पृथक स्थिति तब होती है जबकि X तथा Y पूर्णत असबद्ध

9 पिछले अध्याय में प्रस्तुत चित्र 5 1 देखिए।

वस्तुए हो। अन्य शब्दो मे, Y की कीमत (P_y) मे कितना ही परिवर्तन क्यो न हो,
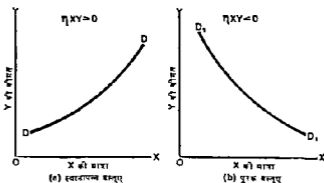
चित्र 6 6 स्थानापन्न एव पूरक वस्तुओ की तिरछी माग लोच

X की माग यथावत् रहेगी। ऐसी स्थिति मे माग की तिरछी लोच शून्य होगी ($\eta xy=\frac{dDx}{dPy} \cdot \frac{P_x}{Dy}=0$), तथा Y की कीमत के सदर्भ मे X का माग वक्र शीर्ष (vertical) होगा। तालिका 6 2 मे हमने X तथा Y के मध्य सबधो तथा तिरछी लोच को सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया है।

तालिका 6 2

स्थिति	स्थानापन्न वस्तुए	पूरक वस्तुए	पूर्णत असबद्ध वस्तुए
(1) माग की तिरछी लोच	$\eta xy > 0$,	$\eta xy < 0$,	$\eta xy = 0$
(2) X के माग वक्र का ढलान	धनात्मक	ऋणात्मक	अनत (शीर्ष माग वक्र)

इस प्रकार माग की तिरछी लोच के आधार पर यह जानना सभव है कि X तथा Y के मध्य किस प्रकार का सबध है।

पूर्णत पूरक एव पूर्णत स्थानापन्न वस्तुए (Perfect Complements and Perfect Substitutes)

ऊपर यह बताया जा चुका है कि पूर्णत पूरक वस्तुए वे हैं जिनमे दो वस्तुओ की मात्रा मे समानुपाती परिवर्तन होता है। यदि X की मात्रा 20 प्रतिशत बढने पर Y की मात्रा मे भी 20 प्रतिशत वृद्धि हो, तो यह पूर्ण पूरकता की स्थिति होगी। इसके विपरीत पूर्ण स्थानापन्नता की स्थिति वह है जिसमे X अथवा Y किसी भी एक वस्तु का उपयोग करके उपभोक्ता निर्दिष्ट सतुष्टि स्तर प्राप्त कर सकता है।

चित्र 6 7 मे अनधिमान वक्रो के आधार पर X तथा Y की पूर्णपूरकता तथा पूर्ण स्थानापन्नता को दर्शाया गया है।
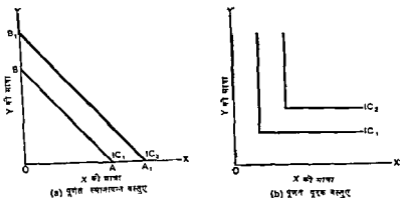
चित्र 6 7 पूर्णत स्थानापन्न एव पूरक वस्तुए

चित्र 6 7 के पैनल (a) में X एव Y पूर्णत स्थानापन्न वस्तुओ के रूप मे हैं। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता A या B अथवा A_1 व B_1 मे किसी भी एक बिंदु पर रह सकता है। यह एक कोणीय समाधान (corner solution) का उदाहरण है। यदि Y की कीमत में थोडी-सी वृद्धि हो जाए तो इसकी माग शून्य हो जाएगी तथा उपभोक्ता केवल X का ही उपभोग करेगा। इसी प्रकार यदि X की कीमत मे वृद्धि हो जाए तो इसकी माग शून्य हो जाएगी एव उपभोक्ता केवल Y का उपभोग करेगा।

इसके विपरीत पैनल (b) में यह मान्यता ली गई कि X एव Y दोनो पूर्णत वस्तुए हैं। ऐसी दशा मे अनधिमान वक्र अग्रेजी वर्णमाला के 'एल' (L) आकार का होगा। यह उस स्थिति का द्योतक है जिसमे समूचे उपभोग क्रम मे X तथा Y का अनुपात वही रहता है, अर्थात् X एव Y की माग मे एक ही अनुपात मे परिवर्तन होगा। निम्न उदाहरण देखिए।

P_y	D_y	D_x	D_y/D_x
10	5	10	1/2
5	10	20	1/2

उपरोक्त तालिका मे P_y, D_y एव D_x क्रमश. Y की कीमत, Y की मात्रा एव X की मात्रा के प्रतीक हैं। जैसा कि इसमे स्पष्ट है, Y की कीमत मे कमी के फलस्वरूप इसकी माग मे जितनी वृद्धि होती है ठीक उतनी ही आनुपातिक वृद्धि X की माग मे भी होती है। माग लोच के सूत्र से इसकी पुष्टि की जा सकती है।

$$\eta_{xx} = \frac{dD_x}{dP_y} \cdot \frac{P_{y_1} + P_{y_2}}{D_{x_1} + D_{x_2}} \qquad \ldots(6\ 15)$$

$$= \frac{10}{-5} \cdot \frac{10+5}{10+20} = -\frac{10}{5} \cdot \frac{15}{30} = -1$$

परतु यदि उपरोक्त तालिका मे Y की मात्रा (D_y) 5 से बढकर 8 हो तथा दोनो वस्तुओ के मध्य पूर्ण पूरकता विद्यमान हो तो X की मात्रा (D_x) 10 से बढकर 16 होगी। उस दशा मे X की माग की तिरछी लोच इस प्रकार होगी—

$$\eta_{xy} = \frac{6}{-5} \quad \frac{10+5}{10+16} = -\frac{9}{13}$$

इस प्रकार पूर्ण पूरक वस्तुओ की तिरछी माग लोच भिन्न भिन्न हो सकती है। निष्कर्ष के रूप मे हम यही कह सकते हैं कि स्थानापन्न (आवश्यक रूप से पूर्णत स्थानापन्न नही) वस्तुओं की माग की तिरछी लोच का गुणाक धनात्मक परतु अनत से कम कुछ भी हो सकता है ($0 < \eta_{xy} < \infty$)। इसके विपरीत पूरक वस्तुओं की तिरछी माग लोच का गुणाक ऋणात्मक अनत तक कुछ भी हो सकता है ($\eta_{xy} < 0 < -\infty$)।

6 5 माग की आय लोच
(Income Elasticity of Demand)

अध्याय के अनुभाग 6 1 मे बतलाया गया था कि सभी कीमतो के यथावत् रहते हुए उपभोक्ता की आय मे परिवर्तन होने पर किसी वस्तु की माग पर जो प्रतिक्रिया होती है उसे माग की आय लोच (η_m) कहा जाता है। अन्य शब्दो मे, आय मे हुए आनुपातिक परिवर्तन एव किसी वस्तु की माग मे होने वाले आनुपातिक परिवर्तन के अनुपात को आय-लोच कहा जा सकता है—

$$\eta_m = \frac{\partial\,(\log D_x)}{\partial\,(\log M)} = \frac{M}{D_x} \cdot \frac{dX_x}{dM} \qquad \ldots(6\,16)$$

जैसा कि अध्याय 4 मे स्पष्ट किया गया था, सामान्य वस्तुओ के सदर्भ मे आय बढने (कम होने) पर वस्तु की माग भी बढती (कम होती) है, परन्तु घटिया या हीन वस्तुओ पर आय प्रभाव ऋणात्मक होता है, यानी आय बढने पर उनकी माग मे कमी होती है, अथवा आय कम होने पर उनकी माग बढ जाती है। इसीलिए हीन वस्तुओं को छोडकर वस्तुओं की माग की आय लोच धनात्मक होती है।

उपभोक्ता की आय सीमा ($M = X.P_x + Y\,P_y$) को परिलक्षित करके अब इसका कुल अवकलन ज्ञात करें तो निम्न समीकरण प्राप्त होगा—

$$dM = P_x \,.\, dD_x + P_y \; dD_y \qquad \ldots(6\,17)$$

यदि दोनो मदो को $\frac{M}{M}$ से, सिर्फ पहली मद को D_x / D_x से एव दूसरी मद को D_y / D_y से गुणा किया जाये तब भी उपरोक्त समीकरण मे कोई अतर नही

आएगा। अस्तु—

$$\frac{P_x \; D_x}{M} \quad \frac{dD_x}{D_x} \quad \frac{M}{D_M} + \frac{P_y \; D_y}{M} \quad \frac{dD_y}{D_y} \quad \frac{M}{dM} = 1 .. \quad (6.18)$$

समीकरण (6.18) में वस्तुत $\frac{P_x \; D_x}{M}$ तथा $\frac{P_y \; D_y}{M}$ यह बताते हैं कि अपनी आय में से उपभोक्ता कितना कितना अनुपात X तथा Y पर व्यय कर रहा है। इन अनुपातों को β_1 एवं β_2 की संज्ञा दी जा सकती है। समीकरण (6.18) की प्रथम मद में $\left(\frac{dD_x}{D_x} \quad \frac{M}{dM}\right)$ वस्तुत X की माग की आय लोच है जबकि द्वितीय मद में $\left(\frac{dD_y}{D_y} \quad \frac{M}{dM}\right)$ वस्तुत Y की माग लोच है। अस्तु इस समीकरण को निम्न-रूप में भी लिखा जा सकता है—

$$\beta_1 \eta_{mx} + \beta_2 \eta_{my} = 1 \quad (6.19)$$

इस प्रकार यदि दो (या अधिक) वस्तुओं में प्रत्येक की माग की आय लोच को उस पर किए गए व्यय के अनुपात से भारित करके इनका योग लिया जाए तो वह इकाई के समान होना चाहिए। यदि व्यय-अनुपात (β_1 एवं β_2) तथा एक वस्तु की माग-आय लोच ज्ञात हो, तो हम दूसरी वस्तु की आय लोच सहज ही ज्ञात कर सकते हैं।

आय लोच तथा एन्जेल वक्र
(Income Elasticity and Engel Curves)

गत शताब्दी में क्रिश्चियन लॉरिन्ज अर्न्स्ट एन्जेल नामक अर्थशास्त्री ने यह बताया कि किसी वस्तु की माग एवं उपभोक्ता की मौद्रिक आय में प्रत्यक्ष संबंध है। एन्जेल ने बड़ी संख्या में पारिवारिक बजटों का विश्लेषण करके बतलाया कि आय में निर्दिष्ट परिवर्तन होने पर विभिन्न वस्तुओं की माग पर होने वाले प्रभाव भी भिन्न होते हैं। मौद्रिक आय तथा माग के मध्य विद्यमान इन संबंधों की हम एन्जेल वक्रों के माध्यम से व्याख्या कर सकते हैं। फार्ग्युसन के मतानुसार, "एन्जेल वक्र मौद्रिक आय के स्तर एवं उपभोक्ता द्वारा साम्य स्थिति में खरीदी गई मात्रा का संबंध बतलाता है।"[9]

परन्तु जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, आय में निर्दिष्ट परिवर्तन होने पर किसी वस्तु की माग में कितना परिवर्तन होगा यह उस वस्तु की प्रकृति पर ही निर्भर करेगा। चित्र 6.8 में हमने केवल तीन प्रकार के एन्जेल वक्र प्रस्तुत किए हैं हालांकि वस्तुओं की प्रकृति के अनुरूप अनेक वक्रों का निरूपण किया जा सकता है।

9 C E Ferguson, 'Micro-economic Theory', Homewood Illinois, Richard D Irwin (1969), p 38

चित्र 6 8 यह स्पष्ट करता है कि उपभोक्ता की आय मे समान परिवर्तन (Y_1Y_2) होने पर भी X की माग पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव तब होगा जबकि X श्रेष्ठ वस्तु हो (पैनल a)। यदि वस्तु की माग मे आय के साथ-साथ परिवर्तन हो, तो
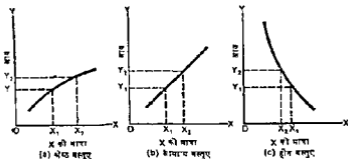
चित्र 6 8 एन्जेल वक्र

इसे सामान्य वस्तु की सज्ञा दी जाएगी (पैनल b)। परतु यदि आय बढने पर भी वस्तु की माग मे कमी हो, तो माग वक्र का ढलान ऋणात्मक होगा एवं ऐसी वस्तु को हीन वस्तु कहा जाएगा। वस्तु की माँग की आय-लोच के सदर्भ मे हम निम्न निष्कर्ष दे सकते हैं—

श्रेष्ठ वस्तुओ की माग आय लोच $\eta_M > 1$
सामान्य वस्तुओ की माग आय लोच : $\eta_M > 0$
हीन वस्तुओ की माग आय लोच · $\eta_M < 0$

हम यदि चाहे तो उपभोक्ता के अनधिमान मानचित्र (indifferent map) एव आय के विभिन्न स्तरो को देखते हुए आय उपभोग वक्र के ढलान को देखकर एन्जेल वक्र का निरूपण कर सकते हैं।

एन्जेल वक्र तथा आय लोच के मध्य गणितीय सबध भी ज्ञात किया जा सकता है। समीकरण (6 16) मे माग की आय लोच का निम्न सूत्र प्रस्तुत किया गया था—

$$\eta_M = \frac{M}{D_x}\frac{dD_x}{dM} = \frac{M}{dM}\frac{dD_x}{D_x}$$

मान लीजिए $\eta M = \propto$ है। हम अब उपरोक्त समीकरण को निम्न रूप मे भी लिख सकते हैं—

$$\propto \frac{dM}{M} = \frac{dD_x}{D_x} \quad \cdot (6.20)$$

प्रथम क्रम के अवकलन का समेकित रूप लेने पर

$$\propto \log M + \log C = \log D_x \quad -- (6.21)$$

[समीकरण (6 21) मे C को एक स्थिर मूल्य के रूप मे लिया गया है] अब समीकरण (6 21) को निम्नलिखित रूप मे भी लिख सकते हैं—

$$cM^{\alpha}=D_x \quad (6\ 22)$$

वस्तुत समीकरण (6 22) एन्जेल वक्र का ही समीकरण है। इस आधार पर एन्जेल वक्र का ढलान जानने हेतु इसका प्रथम अवकलन लीजिए—

$$\frac{dDx}{dM}=C\alpha M^{\alpha-1} \quad (6\ 23)$$

$$\text{तथा } \frac{d^2Dx}{dM^2}=C\alpha\ (\alpha-1)M^{\alpha-2} \quad (6\ 24)$$

यदि ∝ या माग की आय लोच इकाई के समान हो ($\alpha=1$) तो X का एन्जेल वक्र रेखीय (linear) होगा तथा यह मूल बिंदु (origin) से प्रारभ होगा। (उस स्थिति मे D_X=CM) होगा। इसके विपरीत यदि माग की आय लोच काफी अधिक या कम हो ($\alpha\neq1$), तो माग वक्र या एन्जेल वक्र मूल बिंदु से नतोदर या उन्नतोदर होगा।

माग की आय लोच एव माग का पूर्वानुमान
(Income Elasticity of Demand and Demand Projection)

आर्थिक नियोजन के लिए महत्त्वपूर्ण वस्तुओ की माग का पूर्वानुमान अत्यत उपयोगी है। नियोजक यदि नियोजन की समूची अवधि मे कीमतों मे स्थिरता बनाए रखना चाहते हैं तो उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे सभी महत्त्वपूर्ण वस्तुओ की भावी माग का पूर्वानुमान करते हुए भी इनके उत्पादन सबधी लक्ष्य निर्धारित करें। केवल ऐसा करने पर ही माग व पूर्ति मे सतुलन बनाए रखा जा सकता है तथा कीमतो मे स्थिरता रखी जा सकती है। वस्तुओ की माग के पूर्वानुमान के पश्चात नियोजक आदा प्रदा विश्लेषण (input-output analysis) के आधार पर यह ज्ञात करते हैं कि निर्दिष्ट मात्रा में माग के अनुरूप उत्पादन,बढाने हेतु प्रत्येक साधन की कितनी अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता होगी।

देश के उपभोक्ताओ द्वारा प्रत्यक्षत उपभोग की जाने वाली वस्तुओ की माग का पूर्वानुमान बहुधा जनसख्या मे होने वाली अपेक्षित वृद्धि एव माग की लोच के आधार पर किया जाता है। सुविधा के लिए यह माना जा सकता है कि अन्य बातों के यथावत् रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति का उपभोग स्तर वही रहेगा और साथ ही विभिन्न आय समूहों के मध्य वस्तु की आय माग लोच वही होगी। यथावत रहने वाली 'अन्य बातों' मे हम निम्न बातों को शामिल करते हैं (i) देश मे आय का वितरण (ii) उपभोक्ताओ में वस्तु के प्रति रुचि, तथा (iii) माग की आय लोच का गुणाक।

अब हम किसी वस्तु (X) की माग में निर्दिष्ट अवधि में होने वाले परिवर्तन का पूर्वानुमान करने हेतु प्रयुक्त सूत्र प्रस्तुत करते हैं—

$$dX_t=dP_p+\eta_{xt}\quad(dMd) \quad \ldots(6\ 25)$$

समीकरण (6 25) मे dX_i वस्तुत निर्दिष्ट अवधि म ith वस्तु की माग मे होने वाली वृद्धि (या कमी) का पूर्वानुपात है, dP_p उस अवधि मे प्रत्येक्षित जनसख्या के परिवर्तन का द्योतक है, जबकि dMd उपभोक्ता की प्रयोज्य आय होने वाले परिवर्तन का पूर्वानुमान है। यहा यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि η_{xi} निर्दिष्ट वस्तु की माग की आय लोच है तथा समूची नियोजन-अवधि मे इसका गुणाक स्थिर रहता है। dMd या प्रत्येक उपभोक्ता की प्रयोज्य आय मे परिवर्तन वह राशि है जो योजना की क्रियान्विति के कारण अपेक्षित है। यदि समीकरण (6 25) मे वस्तु के औद्योगिक प्रयोगो मे होने वाले अपेक्षित परिवर्तनो तथा निर्यात मे होने वाली अपेक्षित वृद्धि को भी शामिल कर लिया जाए तो नियोजक सहज ही यह ज्ञात कर सकते हैं कि निर्दिष्ट अवधि मे वस्तु की कितनी अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता होगी। यदि इस अतिरिक्त मात्रा को वर्तमान उपभोग स्तर मे जोड दिया जाए तो निर्दिष्ट अवधि के अत मे वस्तु की माग का स्तर क्या होगा यह ज्ञात किया जा सकता है।

एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए भारत मे गेहू का वर्तमान उपभोग स्तर 2 5 करोड टन है। जिसमे से 50 लाख टन का उपभोग उद्योगो मे या निर्यात हेतु किया जाता है। नियोजक अगले पाच वर्षों मे देश की जनसख्या मे 10 प्रतिशत वृद्धि की तथा प्रति व्यक्ति प्रयोज्य आय म अगले पाच वर्षों म 8 प्रतिशत वृद्धि की अपेक्षा करते हैं। अब यह भी मान लीजिए कि गेहू की माग की आय लोच 0 5 है जो अगले पाच वर्षों मे स्थिर रहेगी। अस्तु अगले पाच वर्षों मे गेहू की माग मे अपेक्षित वृद्धि इस प्रकार ज्ञात की जाएगी—

$$dX = dP_p + \eta_x\ (dMd)$$
$$= 10 + 5(8) = 14 \text{ प्रतिशत}$$

यदि इसमे पाच वर्ष के अत मे गेहू के औद्योगिक उपयोग तथा निर्यात के स्तर मे होने वाली वृद्धि 20 लाख टन मान ली जाए तो उस समय देश मे गेहू की कुल माग 2 98 करोड टन (2 5+2 0 (14)+0 2 = 2 98 करोड टन) होने की अपेक्षा है।

6 6 औसत आगम, सीमात आगम एव माग की लोच

(Average Revenue, Marginal Revenue and Price Elasticity of Demand)

ऊपर अनुभाग 6 3 मे यह बतलाया जा चुका है कि जब माग की लोच इकाई के समान ($\eta_{xx} = 1$) होती है तो कीमत मे परिवर्तन के कारण माग मे परिवर्तन होने के बावजूद वस्तु पर किया गया कुल व्यय स्थिर रहता है। इसके विपरीत, वस्तु की माग अत्यधिक लोचदार होने पर कीमत एव कुल व्यय मे हुए परिवर्तन विपरीत दिशा वाले होते हैं जबकि माग बेलोच होने पर जिस दिशा मे कीमत मे परिवर्तन होता है, कुल व्यय भी उसी दिशा मे बढता या कम हो जाता है। वर्तमान अनुभाग मे हम यह बतलाने का प्रयास करेंगे कि किसी वस्तु के औसत आगम (यानी

कीमत) सीमांत आगम एवं उसकी मांग लोच के मध्य क्या संबंध है। यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि कुल आगम (total revenue) वस्तुतः किसी वस्तु की बिक्री से प्राप्त राशि है परन्तु यह उपभोक्ता द्वारा उस पर किए गए व्यय का ही दूसरा नाम है।

औसत आगम (average revenue) वस्तुतः कीमत है जो वस्तु के विनिमय हेतु चुकाई या प्राप्त की जाती है। परन्तु सीमान्त आगम (Marginal Revenue) वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की खरीद या बिक्री से प्राप्त अतिरिक्त आगम या व्यय की गई अतिरिक्त राशि है। अस्तु

$$\text{Total Revenue or } TR_x = P_x\, D_x$$

इस समीकरण में कुल आगम या TR वस्तु की कीमत (P_x) एवं इसकी मात्रा (D_x) का गुणनफल है।

सीमांत आगम (Marginal Revenue) या MR

$$=\frac{d(TR_x)}{dD_x}=P_x+D_x\frac{dP_x}{dD_x} \quad (6\ 26)$$

अथवा
$$MR_x=P_x\left(1+\frac{D_x}{P_x}\quad\frac{dP_x}{dD_x}\right) \quad (6\ 27)$$

परन्तु समीकरण (6 6) के अनुसार मांग वक्र के किसी बिंदु पर मांग की कीमत लोच $\eta_{xx}=\frac{P_x}{D_x}\quad\frac{dD_x}{dP_x}$ है जो समीकरण (6 27) के कोष्ठक में प्रस्तुत द्वितीय मद का उल्टा है। इस दृष्टि से समीकरण (6 27) को निम्न रूप में पुनः लिखा जा सकता है—

$$MR_x=P_x\left(1+\frac{1}{\eta_{xx}}\right) \quad (6\ 28)$$

परन्तु चूंकि वस्तु की कीमत लोच का चिह्न ऋणात्मक होता है अतएव हम इसे निम्न रूप में लिखेंगे—

$$MR_x=P_x\left(1-\frac{1}{\eta_{xx}}\right) \quad (6\ 29)$$

समीकरण (6 29) को निम्न रूप में भी लिखा जा सकता है—

$$MR_x=P_x-\frac{P_x}{\eta_{xx}} \text{ अथवा } MR_x-P_x=\frac{-P_x}{\eta_{xx}}$$

अथवा
$$\frac{MR_x-P_x}{P_x}=\frac{-1}{\eta_{xx}}\quad\frac{P_x}{P_x-MR_x}=\eta_{xx} \quad (6\ 30)$$

यदि मांग की कीमत लोच इकाई के समान है ($\eta_{xx}=1$) तो उपरोक्त समीकरण के अनुसार सीमांत आगम शून्य होगा ($MR=0$)। यदि मांग की लोच काफी अधिक है ($\eta_{xx}>1$) तो सीमांत आगम धनात्मक ($MR>0$) होगा। इसके विपरीत मांग बेलोच होने पर ($\eta_{xx}<1$) सीमांत आगम ऋणात्मक होगा ($MR<0$)।

चित्र द्वारा व्याख्या

यदि माग वक्र रेखीय (linear) है तो हम यह सुविधापूर्वक बतला सकते हैं कि सीमांत आगम वक्र भी रेखीय होगा परतु माग वक्र की अपेक्षा इसका ढलान दुगुना होगा।[10]

चित्र 6 9 मे रेखीय माग वक्र एव सीमात आगम वक्र निरूपित किए गए हैं। हमने इन वक्रो का निरूपण तालिका 6 3 के आधार पर किया है अत कीमत, सीमात आगम एव माग की लोच के पारस्परिक सबधो का विश्लेषण तालिका 6 3 मे प्रस्तुत रचनाओ के आधार पर करना ही उपयुक्त होगा।

तालिका 6 3

मांग, कुल आगम, सीमात आगम एव कीमत लोच

कीमत	माग की मात्रा	कुल आगम	सीमात आगम	माग की लोच $\eta_{xx} = \frac{P_x}{P_x - MR_x}$
1	2	3	4	5
11	0	0	—	—
10	1	10	10	∞
9	2	18	8	9 0
8	3	24	6	4 0
7	4	28	4	2.3
6	5	30	2	1 5
5	6	30	0	1 0
4	7	28	—2	0 67
3	8	24	—4	0 43

तालिका 6 3 मे कालम (1) व (2) मे कीमत व माग की मात्रा से सबद्ध विवरण है जिनके आधार पर हमने चित्र 6 9 मे माग वक्र का निरूपण किया है। कालम (3) मे कुल आगम दर्शाया गया है जिसके आधार पर कालम (4) मे सीमात

10 मन लीजिए मांग फलन $P_x = a - bD$ है (इसमे a एव b स्थिर मूल्य हैं। ऐसी स्थिति में कुल आगम $P_x D_x$ निम्न होगा—

$$TR_x = P_x D_x = a D_x - bD_x^2 \quad (6\ 31)$$

$$MR = \frac{d(P_x D_x)}{D_x} = a - 2\ bD_x \quad (6\ 32)$$

समीकरण (6 32) भी माग फलन की भांति रेखीय है तथा इसमें a का मूल्य भी इसी के अनुरूप है। परतु जहा माग वक्र का ढलान —b है सीमात आगम वक्र का ढलान —2b है।

आगम प्राप्त किया गया है। चित्र 6 9 मे प्रस्तुत सीमात आगम वक्र इसी पर आधारित है। कालम (5) मे वस्तुत समीकरण (6 30) मे प्रस्तुत सूत्र के आधार पर माग की लोच प्राप्त की गई।
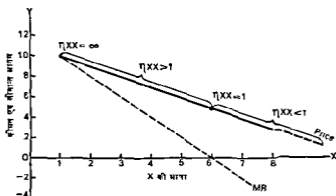
चित्र 6 9, कीमत, सीमात आगम एवं लोच

चित्र 6 9 मे तालिका 6 3 के आधार पर औसत आगम (कीमत) एव सीमात आगम वक्र प्रस्तुत किए गए हैं। जैसा कि चित्र एव तालिका दोनो ही से स्पष्ट है, जब सीमात आगम शून्य होता है तो माग की लोच इकाई के समान हो जाती है। यह भी स्पष्ट है कि जब तक सीमात आगम धनात्मक रहता है तब तक माग की लोच इकाई से अधिक रहती है और जब सीमात आगम ऋणात्मक होता है तो माग की लोच इकाई से कम हो जाती है। यह एक उल्लेखनीय है कि रेखीय माग की लोच का ढलान चाहे कैसा भी क्यो न हो, इसके विभिन्न बिंदुओ पर लोच का गुणाक शून्य से लेकर अनत तक होगा ($\infty > \eta_{xx} > 0$)।

चित्र 6 10 मे कीमत, सीमात आगम एव माग की लोच का एक और भी अधिक सामान्य पक्ष प्रस्तुत किया गया है। इस चित्र मे माग वक्र DD' के बिंदु R को लीजिए जिस पर कीमत OP (=QR) एव मात्रा OQ (=PR) है। माग के इस स्तर पर चित्र 6 10 के अनुसार सीमात आगम NQ है। यह भी स्पष्ट है कि माग वक्र (DD') एव सीमात आगम वक्र (MR) इस प्रकार खीचे गए हैं कि RN=DP हैं। अब इसकी व्याख्या करें।

$$MR = NQ = RQ - RN \quad \ldots (6\,34)$$

चूकि $\frac{DP}{PR} = \frac{RQ}{RD'}$ तथा RN=DP हैं।

अत. $\frac{RN}{PR} = \frac{RQ}{QD'}$ या $RN = PR.\left(\frac{RQ}{QD'}\right) \quad \cdots (6\,35)$

अब समीकरण (6 35) को (6 34) म प्रतिस्थापित कीजिए—

$$MR = NQ = RQ - RQ \left(\frac{PR}{QD} \right) \quad .(6\ 36)$$
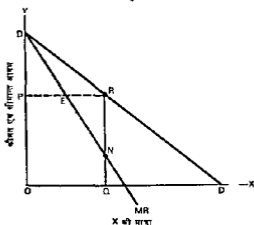
चित्र 6 10 कीमत, सीमात आगम एव लोच मे सबध

अथवा $MR = NQ = RQ\left[1 - \frac{PR}{QD'}\right]$

परतु $PR = OQ$ है

अत $MR = RQ\left[1 - \frac{OQ}{QD'}\right]$

हम समीकरण (6 11) के आधार पर यह कह सकते है कि $\frac{QD'}{OQ}$ वस्तुत. माग की लोच का प्रतीक है और इसलिए $\frac{OQ}{QD'} = \frac{1}{\eta_{xx}}$ होगा। चूकि $RQ = OP$ (कीमत) है, अत

$$MR \text{ या } NQ = P\left[1 - \frac{1}{\eta_{xx}}\right] \quad ...(6\ 37)$$

चूकि $MR = P\left[1 - \frac{1}{\eta_{xx}}\right]$ है, हम समीकरण 6 37 को निम्न रूप मे भी लिख सकते हैं—

$$MR = P - \frac{P}{\eta_{xx}}, \quad MR - P = -\frac{P}{\eta_{xx}}$$

$$\text{या } \frac{P - MR}{P} = \frac{1}{\eta_{xx}} \text{ या } \eta_{xx} = \frac{P}{P - MR} \quad .. (6\ 38)$$

जो पूर्व मे वर्णित समीकरणो की ही पुनरावृत्ति है।

67 माग की लोच को प्रभावित करने वाले घटक
(Factors Affecting the Elasticity of Demand)

सवप्रथम प्रोफेसर मार्शल ने इस बात की चर्चा की थी कि किसी वस्तु की माग की लोच के अनेक घटको से प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, उन्होने यह कहा कि अनिवाय वस्तुओ की माग की लोच बहुत कम होती है तथा इनम से किसी की माग काफी कम हो जाने पर भी इमके उपभोग मे कोई विशेष वृद्धि नही होती।[11] इसी प्रकार कुछ वस्तुओ की कीमतें बहुत ही कम होने पर भी उपभोक्ता इन पर होने वाले कुल व्यय की उपेक्षा कर देता है एव फलत इनकी माग बेलोच हो जाती है। परतु ऊची कीमतो वाली वस्तुओ की माग अधिक लोचदार होती है। इसी प्रकार किसी वस्तु की माग की लोच इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके प्रयोग कितने अधिक हैं। अनेक उपयोगो मे प्रयुक्त होने वाली वस्तुओ की माग अधिक लोचदार होती है।

मार्शल ने यह भी बतलाया कि अत्यत महगी एव विलासितापूर्ण वस्तुओ का उपभोग समाज के इने गिने धनी व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, और ऐसी वस्तुओ की माग भी बहुधा बेलोच होती है। परतु उन्होंने यह स्वीकार किया कि माग की लोच समाज मे उपभोक्ता की आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करती है। अत मे, किसी वस्तु के उपभोग को स्थगित करने की सभावना जितनी अधिक होती है उसकी माग की लोच भी बढती जाती है।

परतु मार्शल ने माग की लोच पर स्थानापन्नता के प्रभाव की उपेक्षा की थी, क्योंकि वे यह मानते थे कि प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तु या वस्तुओ से असबद्ध हैं। आज के व्यष्टिगत आर्थिक सिद्धात के अनुसार किसी वस्तु की माग की लोच निम्न महत्वपूर्ण घटको पर निर्भर करती है—

(i) **स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि** यदि किसी वस्तु के बदले स्थानापन्न वस्तुए उपलब्ध हैं तो उसकी माग काफी अधिक लोचदार होगी।

(ii) **वस्तु की प्रकृति** जैसाकि मार्शल ने कहा था अनिवार्य एव काफी महगी वस्तुओ की माग बेलोच होती है। इसके विपरीत विलासिता की वस्तुओ की माग काफी लोचदार एव आरामदायक वस्तुओं की माग लोचदार होती है। अस्तु, माग की लोच वस्तु की प्रकृति पर निर्भर होती है।

(iii) **निर्णय लेने की प्रक्रिया मे पारस्परिक निर्भरता एव दर्प प्रभाव** हार्वे लैबन्स्टीन[12] ने एक लख मे बतलाया कि यदि उपभोग के सबध मे उपभोक्ता का निर्णय

11 Alfred Marshall 'Principles of Economics (Eighth Edition) London, Mac Millan & Co, Book III, Ch IV

12 Harvey Leibenstein 'Bandwagon, Snob and Veblen Effects in the Theory of Consumer Demand", The Quarterly, Journal of Economics, May 1950, pp 183-207

अन्य उपभोक्ताओ के निर्णय से प्रभावित होता है तो व्यष्टिगत स्तर पर वस्तु की माग कीमत के सदर्भ मे बेलोच होती है। इसी प्रकार दर्प-प्रभाव (snob effect) उस उपभोक्ता के व्यवहार की ओर इगित करता है जो अन्य नागरिको से प्रतिकूल आचरण करता हो। ऐसे उपभोक्ता द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओ की माग की लोच का पूर्वानुमान करना बहुधा सभव नही हो पाता।

(iv) वस्तु के प्रयोग किसी वस्तु के जितने अधिक प्रयोग होते हैं उसकी माग उतनी ही अधिक लोचदार होगी। दूध, पानी, विद्युत आदि ऐसी वस्तुए या सेवाए हैं जिनके विविध उपयोग हो सकते हैं, और इसलिए इनकी माग काफी लोचदार होती है।

(v) वस्तु की कीमत एव कुल व्यय मे इसका अनुपात यदि किसी वस्तु की कीमत बहुत कम है तथा कुल व्यय मे इस पर होने वाले व्यय का अनुपात बहुत कम है तो इसकी माग बेलोच होती है। नमक दियासलाई आदि ऐसी वस्तुए हैं। इसके विपरीत कुल व्यय मे जिन वस्तुओ पर होने वाले व्यय का अनुपात अधिक है उनकी माग अधिक लोचदार होती है।

(vi) उपभोग को स्थगित करने की सभावना यदि उपभोक्ता किसी वस्तु के उपभोग को स्थगित कर सकता हो, तो ऐसी वस्तु की माग कीमत के सदर्भ मे अधिक लोचदार होती है। जिन वस्तुओ का हमे तत्काल उपभोग करना हो उनकी माग बेलोच होगी।

(viii) अवधि की लबाई चूकि अल्पकाल मे उपभोक्ता अपनी आदतो, रुचियो एव प्राथमिकताओ मे परिवर्तन नही कर सकता, इसलिए अनेक नयी वस्तुओ का अल्पकाल मे विश्लेषण करने पर इनकी माग बेलोच प्रतीत होती है। इसके विपरीत दीर्घकाल मे न केवल उपभोक्ता अपनी आदतो व रुचियो मे परिवर्तन कर लेता है, अपितु अनेक नयी वस्तुओ का भी उस आवश्यकता की पूर्ति हेतु आविर्भाव हो जाता है। फलत दीर्घकाल मे अधिकाश वस्तुओ की माग अधिक लोचदार होती है।

6 8 माग व पूर्ति में साम्य
(Equilibrium Between Demand and Supply)

अब तक हमने माग के निर्धारण पर जोर दिया था। इस अध्याय के अनुभाग 6 1 से लेकर 6 7 तक उन शक्तियो का विवरण प्रस्तुत किया गया था जो माग वक्र की आकृति को प्रभावित करती हैं। हमने यह भी देखा है कि माग की सूची केवल वस्तु की विभिन्न कीमतो एव उनसे सबद्ध मात्राओ को प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत अनुभाग मे हम यह देखेंगे कि माग तथा पूर्ति के मध्य सतुलन क्योकर स्थापित होता है। इसके अतिरिक्त हम माग को प्रभावित करने वाले अन्य घटको, जैसे आय, अन्य वस्तुओ की कीमतो तथा रुचि मे होने वाले परिवर्तनो का साम्य कीमत पर क्या प्रभाव होगा यह भी देखने का प्रयास करेंगे।

माग व पूर्ति के मध्य स्थिर साम्य

(Stable Equilibrium Between Demand and Supply)

पूर्ति एव माग के मध्य सतुलन की समीक्षा करने से पूर्व यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि हम पूर्ति का अर्थ जान लें। पूर्ति का अर्थ किसी वस्तु की उन मात्राओ से है जो विक्रेता विभिन्न कीमतो पर बेचने हेतु तत्पर हैं। जैसा कि आगे के एक अध्याय मे बतलाया गया है, साधारण तौर पर पूर्ति वक्र धनात्मक ढलानयुक्त (upward sloping) होता है, अर्थात् माग के विपरीत, किसी वस्तु की पूर्ति का कीमत के साथ धनात्मक सबध होता है।

चित्र 6 11 मे माग तथा पूर्ति के मध्य सतुलन को दर्शाता है। अन्य सभी वस्तुओ की कीमतो, उपभोक्ता की आय एव रुचि आदि को यथावत् रखते हुए इस चित्र मे बताया गया है कि $O\bar{P}$ कीमत पर उपभोक्ताओ एव विक्रेताओं के मध्य $O\bar{Q}$ मात्रा का विनिमय होगा। $O\bar{P}$ वस्तु की साम्य कीमत है (तथा $O\bar{Q}$ साम्य मात्रा) क्योकि किसी भी अन्य कीमत पर या तो विक्रेता क्रेताओ की माग से अधिक मात्रा मे वस्तु बेचना चाहेंगे अथवा क्रेता विक्रेताओं द्वारा की जाने वाली पूर्ति से अधिक मात्रा मे वस्तु खरीदना चाहेंगे। उदाहरण के लिए, OP_1 कीमत पर पूर्ति की मात्रा माग से अधिक है (पूर्ति का आधिक्य), जबकि OP_2 पर माग का पूर्ति से आधिक्य (माग का आधिक्य) है। दोनो ही स्थितियो को स्थिर साम्य नही माना जा सकता क्योकि क्रेता अथवा विक्रेता अथवा दोनो ही तब तक इस प्रकार की क्रियाए करेंगे जब तक कि माग तथा पूर्ति के मध्य सतुलन होकर कीमत $O\bar{P}$ पर स्थापित नही हो
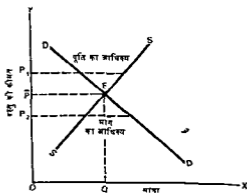
चित्र 6.11 माग एवं पूर्ति के मध्य साम्य

जाती। यहा स्थिर साम्य इसलिए माना जाता है क्योकि अन्य बातो के यथावत् रहते हुए कीमत $O\bar{P}$ एव साम्य मात्रा $O\bar{Q}$ ही बनी रहेगी।

मार्शल ने बताया कि बाजार मे हमेशा साम्य मात्रा (तथा इसके साथ ही

साम्य कीमत) प्राप्त करने की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है तथा इससे तनिक भी विचलन होने पर बाजार में ऐसी शक्तियों का आविर्भाव होगा जो कीमत मे परिवर्तन करके पुन वस्तु की माग व पूर्ति मे सतुलन ला देंगी। आर० ए० बिलास ने इसे मार्शल का स्थिर साम्य (stable equilibrium) की सज्ञा दी है।[13] इसके विपरीत यदि बाजार साम्य कीमत से विचलित हो जाए तब भी माग तथा/अथवा पूर्ति मे इस प्रकार परिवर्तन होंगे कि अतत साम्य कीमत की पुन स्थापना हो जाएगी। इसे वाल्रस का स्थिर साम्य (Walrasian Stable Equilibrium) कहा जाता है। अन्य शब्दो मे, जहा मार्शल कीमत को आश्रित चर (dependent variable) मानते हैं, वही वाल्रस ने इसे स्वतत्र चर के रूप मे माना है। यदि हम पहले कीमत को लें तथा तदनुरूपी पूर्ति एव माग का विश्लेषण करें तो यह वाल्रस से सबद्ध विश्लेषण होगा। इसके विपरीत यदि हम निर्दिष्ट मात्रा को लेकर शीर्ष दिशा मे चलकर यह देखें कि पूर्ति-कीमत एव माग-कीमत के मध्य क्या अतर है तो यह मार्शलीय विश्लेषण होगा। अब पुन चित्र 6 11 के साम्य बिंदु E पर दृष्टि डालिए। हम यह कह सकते हैं कि भले ही हम इससे सबद्ध मात्रा $O\bar{Q}$ से विचलित हो (मार्शलीय दृष्टिकोण) अथवा इस साम्य स्थिति से सबद्ध कीमत $O\bar{P}$ से विचलित हो (वाल्रस का दृष्टिकोण), अत मे ऐसी शक्तियो का आविर्भाव अवश्य होगा जो माग, पूर्ति व कीमत को E पर ले आएगी। चित्र 6 11 मे सामान्य माग व पूर्ति फलन प्रस्तुत किए गए हैं। परतु ऐसी कुछ स्थितिया भी हो सकती हैं जिनमे वाल्रस अथवा मार्शल की दृष्टि से भी अस्थिरता का अनवरत रूप से अनुभव किया जाता हो।[14]

बिलास ने इन चार स्थितियो को इस प्रकार प्रस्तुत किया है. (अ) यदि माग तथा पूर्ति दोनो ही वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त हो, परतु पूर्ति वक्र का (ऋणात्मक) ढलान अपेक्षाकृत अधिक हो। यह वाल्रस को दृष्टि से स्थिर परतु मार्शलीय दृष्टि से अस्थिर साम्य की स्थिति है। [पाद-टिप्पणी का चित्र (a) देखिए], (ब) यदि माग व पूर्ति दोनो वक्रो का ढलान ऋणात्मक हो, परतु माग वक्र का (ऋणात्मक) ढलान अपेक्षाकृत अधिक हो। यह मार्शल की दृष्टि से स्थिर परतु वाल्रस की दृष्टि
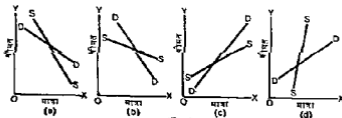
13 R A Bilas, 'Micro-economic Theory—A Graphical Analysis' (Second Edition) Ch 2

14 पाछे दिए गए रेखाचित्र देखिए।

से अस्थिर साम्य की स्थिति मानी जाती है। [पाद-टिप्पणी का चित्र (b) देखिए]; (स) यदि माग तथा पूर्ति दोनो ही वक्रो का ढलान धनात्मक हो, परतु पूर्ति वक्र की अपेक्षा माग वक्र का ढलान अधिक हो। यह वालरस की दृष्टि से स्थिर परतु मार्शलीय दृष्टि से अस्थिर साम्य है। [पाद-टिप्पणी का चित्र (c) देखिए]; तथा (द) यदि माग व पूर्ति दोनो वक्र धनात्मक ढलानयुक्त हो परतु माग वक्र की अपेक्षा पूर्ति वक्र का ढलान अधिक हो। यह मार्शलीय स्थिर साम्य है परतु वालरस की दृष्टि से अस्थिर साम्य की दशा है। [पाद-टिप्पणी का चित्र (d) देखिए]।

1 माग फलन में विवर्तन (Shifts in demand function)—जैसाकि हम पूर्व मे देख चुके हैं, *सामान्य तौर पर माग वक्र का निरूपण इस मान्यता के आधार पर किया जाता है कि अन्य बातें (उपभोक्ता की आय, रुचि, आदतें एव अन्य कीमतें) यथावत रहेगी।* माग फलन की परिभाषा देते समय अध्याय 5 मे हमने देखा था कि किसी वस्तु की माग की मात्रा बहुधा उसकी कीमत (P_x) अन्य कीमतो (P_y), आय (M), रुचि आदि से प्रभावित होती है। अब तक हमने अधिकाश माग वक्रो का निरूपण इसी मान्यता के आधार पर किया था कि कीमत को छोडकर अन्य सारे घटक स्थिर रहते हैं तथा माग की मात्रा कीमत से विपरीत दिशा मे बढती या घटती है। अस्तु, एक माग वक्र के सहारे-सहारे चलते हुए हम वस्तु की कीमत एव माग के मध्य *विद्यमान सबध की समीक्षा करते हैं।*

परतु इससे सर्वथा भिन्न परिस्थिति तब उत्पन्न होती है जब माग वक्र मे ऊपर या नीचे की ओर विवर्तन हो जाए। सामान्य तौर पर निम्न चरो मे से किसी एक मे परिवर्तन होने पर माग वक्र ऊपर या नीचे की ओर विवर्तित होगा—

(i) संबद्ध वस्तु या वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन होने पर—यदि दो वस्तुए परस्पर सबद्ध हैं तो एक वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने पर दूसरी वस्तु
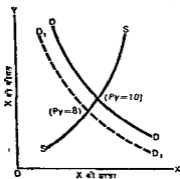
(a) Y की कीमत मे कमी से X के माग वक्र मे विवर्तन
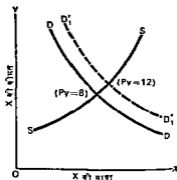
(b) Y की कीमत मे वृद्धि से X के माग वक्र मे विवर्तन

चित्र 6 12 सबद्ध वस्तु की कीमत में परिवर्तन से माग वक्र का विवर्तन

का माग वक्र विवर्तित हो जाएगा। मान लीजिए X तथा Y दो स्थानापन्न वस्तुएं हैं। यदि Y की कीमत 10 रुपये से घटकर 8 रुपये रह जाए तो X की कीमत वही रहने पर भी इसकी माग में कमी होगी तथा इसका माग वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाएगा। [चित्र 6 12 (a)]।

चित्र 6 12 के पैनल (a) में Y की कीमत घटने पर X के माग वक्र में हुए विवर्तन को बतलाया गया है। इस चित्र से स्पष्ट है कि X की कीमत तथा उपभोक्ता की आय व रुचि यथावत् रहने पर भी संबद्ध वस्तु की कीमत कम होने पर इसकी कम मात्रा खरीदी जाएगी। इसके विपरीत पैनल (b) में बतलाया गया है कि अन्य बातों के यथावत् रहते हुए यदि Y की कीमत बढ़ जाए तो X की उसी कीमत पर भी उपभोक्ता Y की मात्रा में कमी करके X की अधिक मात्रा खरीदेगा।

(ii) **रुचि में परिवर्तन** यह कहना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि स्थानापन्न अथवा पूरक वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन होने अथवा उपभोक्ता की आय में कमी या वृद्धि होने पर माग वक्र में विवर्तन होगा। परंतु उपभोक्ता की रुचि में परिवर्तन होने पर माग वक्र के ढलान में भी परिवर्तन हो जाता है। चित्र 6 13 बतलाता है कि वस्तु की कीमत (P_x), अन्य वस्तुओं की कीमतों (P_y) तथा उपभोक्ता की आय (M) के यथावत् रहने पर भी उसकी रुचि में परिवर्तन हो जाने पर माग वक्र का ढलान बदल जाता है।
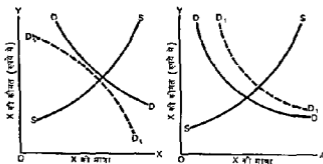
(a) X के प्रति अरुचि उत्पन्न होने पर (b) X के प्रति रुचि बढ़ जाने पर
चित्र 6 13 रुचि में परिवर्तन के कारण माग वक्र में परिवर्तन

चित्र 6 13 का पैनल (a) बतलाता है कि X के प्रति उपभोक्ता की अरुचि उत्पन्न हो जाने पर नया माग वक्र D_1D_1 पूर्व के माग वक्र के बाईं ओर स्थित होगा। यही नहीं, ऊपरी रेंज में इसका ढलान कम होगा जबकि निचली रेंज में इसका ढलान अधिक हो जाएगा। इसका अभिप्राय यह है कि अरुचि उत्पन्न होने पर कीमत में थोड़ी सी वृद्धि से वस्तु की माग में काफी गिरावट आ जाएगी जबकि कीमत में काफी कमी कर देने पर भी माग में बहुत थोड़ी वृद्धि हो सकेगी। इसके विपरीत पैनल (b) में यह बताया गया है कि X के प्रति रुचि बढ़ जाने पर नया माग वक्र

दाईं ग्रोर विवर्तित होगा तथा यह ऊपरी रेन्ज मे बेलोच एव निचली रेन्ज में अधिक लोचदार माग का प्रतीक हो जाएगा।

(iii) उपभोक्ता की आय (M) में परिवर्तन : उपभोक्ता की रुचि एव कीमतों के यथावत रहने पर भी उसकी मौद्रिक आय मे परिवर्तन होने पर वस्तु का माग वक्र विवर्तित हो जाता है। आय में वृद्धि होने पर माग वक्र ऊपर यानी दाईं ओर विवर्तित होगा जबकि आय मे कमी होने पर इसका विवर्तन बाईं ग्रोर होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि आय मे वृद्धि (कमी) होने पर उपभोक्ता कीमतो (व रुचि) के यथावत् रहते हुए भी X की अधिक (कम) मात्रा खरीदेगा।

69 प्रकट-अधिमान का सिद्धात
(Theory of Revealed Preference)

सख्यासूचक एव क्रमसूचक उपयोगिता की विचारधाराए इस मान्यता पर आधारित हैं कि हमे उपभोक्ता के अनधिमान-फलन के विषय मे पर्याप्त सूचनाए उपलब्ध हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, इनमे से प्रत्येक दृष्टिकोण के अतर्गत यह आवश्यक है कि उपभोक्ता उपयोगिता चार्ट अथवा वस्तुओ की विभिन्न मात्राओ पर आधारित एक अनधिमान मानचित्र बनाने मे समर्थ हो। वस्तुत ये दोनो ही सिद्धात उपभोक्ता की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए अतर्निरीक्षणात्मक विधि (introspective method) के आधार पर यह बताते हैं कि कीमतो व आय के काल्पनिक परिवर्तन की उपभोक्ता पर क्या प्रतिक्रिया होगी।

नोबुल पुरस्कार विजेता प्रो॰ सैम्युअल्सन ने अपने एक लेख मे (1948 मे प्रकाशित) बतलाया कि उपयोगिता की सख्यासूचक या क्रमसूचक व्याख्या किए बिना भी हम उपभोक्ता-व्यवहार से सबद्ध महत्त्वपूर्ण प्रमेयो का प्रतिपादन कर सकते हैं। उनके मतानुसार वस्तुत उपभोक्ता का चुनाव ही उसके अधिमान या उसकी पसद को व्यक्त कर देता है। इस अभिव्यक्ति हेतु उपभोक्ता को किसी भी अतर्निरीक्षणात्मक या मनोवैज्ञानिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती। प्रोफेसर सैम्युअल्सन आय व कीमत के काल्पनिक परिवर्तनों का माग पर प्रभाव देखने की अपेक्षा उसके व्यवहार की आचरणात्मक व्याख्या करने पर बल देते हैं।

सैम्युअल्सन उपभोक्ता-व्यवहार के 'आधारभूत प्रमेय' (fundamental theory) का उद्धरण देते हुए बताते हैं कि आय में वृद्धि के कारण वस्तु की माग में सामान्यतया वृद्धि होती है, परतु कीमत में वृद्धि के होने पर माग की मात्रा निर्विवाद रूप से कम हो जाती है। हम पिछले अध्यायो मे यह देख चुके हैं कि यदि हम आय प्रभाव की उपेक्षा कर दें तो वस्तु की कीमत कम हो जाने पर, स्लुट्स्की-समीकरण के अनुसार, उसकी माग मे वृद्धि हो जाती है। इस 'आधारभूत प्रमेय' का अर्थ यह है कि धनात्मक आय लोच के साथ सदा ऋणात्मक कीमत लोच विद्यमान रहती है। प्रोफेसर सैम्युअल्सन ने प्रकट-अधिमान के सिद्धात में अग्रलिखित चार मान्यताएं ली—

(1) उपभोक्ता की रुचिया दी हुई हैं तथा उनमे विश्लेषण की अवधि में कोई परिवर्तन नही होता ।

(2) उपभोक्ता की पसद 'सामजस्य' की धारणा (consistency) पर आधारित है। उदाहरण के लिए यदि दो वस्तु समूह X_1 एव X_2 हैं, जिनके लिए कीमतों का समूह P^0 दिया हुआ है, तथा इन दोनो उपभोग स्थितियों के बजट समान हैं ता उपभोक्ता के अधिमान फलन को निम्न रूप म व्यक्त किया जा सकता है

$$P^0X_1 \leqslant P^0X_2 \quad (6\ 39)$$

X_1 एव X_2 पर किया जाने वाला कुल व्यय समान है, परतु यदि उपभोक्ता X_1 को खरीदने से इनकार कर देता है तो X_2 को X_1 की तुलना मे 'प्रकट-अधिमान' वाली उपभोग स्थिति माना जाएगा। 'सामजस्य' अथवा 'सक्रमकता' (consistency or transitivity) का अभिप्राय यह है कि एक बार उपभोक्ता यदि X_2 का X_1 की अपेक्षा अधिक पसद कर लेता है तो फिर वह X_1 को X_2 की अपेक्षा कदापि पसद नहीं करेगा, तथा

(iii) प्रकट अधिमान मे केवल तभी परिवर्तन सभव है जब कीमत म पर्याप्त परिवर्तन कर दिया जाए। अन्य शब्दो म, X_2 की तुलना मे उपभोक्ता X_1 को केवल उस स्थिति म अधिक पसद करेगा जब X_1 की कीमता में पर्याप्त कमी कर दी जाए।

सक्षेप मे, X_1 अथवा X_2 दोनो मे स उपभोक्ता किसी एक उपभोग-स्थिति को ही पसद कर सकता है, परतु कीमत मे पर्याप्त परिवर्तन होने पर उसके प्रकट-अधिमान में भी परिवर्तन सभव है। साथ ही, यदि X_1 की अपेक्षा X_2 को पसद किया जाता हो तथा X_3 की अपेक्षा X_1 को पसद किया जाता हो तो कभी भी X_3 को X_2 की तुलना मे पसद नही किया जा सकता। यह प्रमेय प्रकट-अधिमानों की सक्रमकता (transitivity) को व्यक्त करता है।

प्रकट-अधिमान सिद्धात की रेखाचित्रीय व्याख्या

जैसा कि ऊपर बताया गया था, प्रकट अधिमान का सिद्धान्त इस सरल धारणा पर आधारित है कि उपभोक्ता किसी वस्तु या वस्तुओं के समूह को या तो इसलिए खरीदता है कि इसकी कीमत अन्य वस्तुओं या समूहों की अपेक्षा कम है, अथवा इसलिए इसे खरीदता है कि वह इसे पसद करता है। इस सिद्धान्त को अब हम एक रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत करेंगे।

चित्र 6 14 बतलाता है कि बजट रेखा P^0P^0 पर उपभोक्ता X_2 खरीदता है, हालांकि वह इस बजट रेखा के होते हुए X_1 की खरीद करने में भी समर्थ है। इसीलिए X_2 को X_1 की तुलना मे प्रकट-अधिमान वाली स्थिति माना जाएगा। वस्तुत P^0P^0 बजट रेखा पर, अथवा त्रिभुज OP^0P^0 के भीतर विद्यमान किसी भी स्थिति की अपेक्षा X_2 को ही प्रकट-अधिमान वाली स्थिति माना जाएगा। अन्य शब्दो मे, दी हुई बजट सीमा P^0P^0 के अतर्गत विद्यमान सभी उपभोग-स्थितिया X_2 की तुलना मे हीन मानी जाएगी। परतु X_2 से बाईं ओर स्थित सभी श्रेष्ठतर समूह X_2 से दाईं ओर स्थित

होंगे, भले ही उपभोक्ता उन्हें X_2 की अपेक्षा श्रेष्ठतर स्वीकार नहीं करे।

यदि X की कीमत कम हो जाए तथा बजट रेखा P^0P^0 से बदल कर P^1P^1 हो जाए तो अब उपभोक्ता P P पर स्थित वस्तु-समूह को खरीदेगा। मान लीजिए, वह अब X_1 को पसद करता है तो X_1 अब प्रकट-अधिमान वाली स्थिति बन जाएगी।
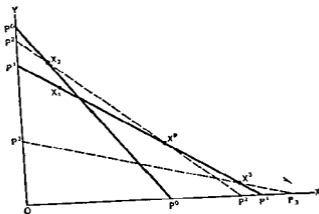
चित्र 6 14 प्रकट-अधिमान

X_1 को अब X_2 से भी अधिक पसद किया जाएगा क्योंकि X की कीमत घट गई है। यदि कीमत का परिवर्तन बजट रेखा को P^pP^p की स्थिति मे ला देता है तो सभव है उपभोक्ता X^p को प्रकट-अधिमान मानकर इसके अतिरिक्त शेष सभी उपभोग स्थितियों को हीन मानना प्रारम्भ कर दे। यह भी सभव है कि उपभोक्ता X_2 व X^p के मध्य अपनी उदासीनता व्यक्त करे ($X_2 \sim X^p$)। ऐसी स्थिति मे X_2 व X^p के मध्य एक सरल रेखा प्राप्त होती है जो वस्तुत किसी अनधिमान वक्र का ही एक भाग प्रतीत होती है।

इस प्रकार केवल प्रतिस्थापन प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए हम यह तर्क दे सकते हैं कि X की कीमत मे कमी होने पर उपभोक्ता की पसद X के पक्ष मे हो जाती है, तथा इसके फलस्वरूप वह इसकी अधिक मात्रा खरीदता है। तथापि यह आवश्यक नहीं है कि P^0P^0 या P^1P^1 पर स्थित सभी वस्तु समूहो को समान रूप से पसद करे, हालांकि प्रत्येक पर कुल व्यय समान होता है। इसी प्रकार, X की कीमत मे कमी होने पर उपभोक्ता अलग-अलग बजट रेखाओं पर तटस्थ रह सकता है। उदाहरण के लिए, वह P^0P^0 पर X_2, P^pP^p पर X^p तथा P^3P^3 पर X^3 पर वह समान रूप से सतुष्ट होने के कारण तटस्थ भाव व्यक्त कर सकता है ($X_2 \sim X^p \sim X^3$)। इन बिंदुओं को मिलाने पर हमे एक अनधिमान वक्र प्राप्त होता है। चित्र 6 14 मे यह अनधिमान वक्र $X^2X^pX^3$ होगा। परतु व्यवहार मे, जब तक उपभोक्ता के मन

में अरुचि उत्पन्न न हो, वह वस्तु की कीमत में कमी होने पर तटस्थ भाव न रखकर इस वस्तु के प्रति अधिक रुचि का ही प्रदर्शन करेगा।

6.10 अनिश्चितता के मध्य उपयोगिता सिद्धांत (Utility Theory Under Uncertainty)

अब तक हमने अपने उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण में यह मान्यता ली थी कि उपभोक्ता उपभोग की नियति या परिमाणों के बारे में आश्वस्त है। वास्तव में उपभोक्ता को अनिश्चितता के दौर में ही निर्णय लेने होते हैं। यह मान लेना एक संकीर्णता का ही परिचायक होगा कि हमारे जीवन में कोई जोखिम नहीं है। अपने पेशे का चुनाव करते समय, निवेश पर प्रतिफल के विषय में निर्णय लेते समय, किसी भी वस्तु की भावी मांग या मांग की लोच का अनुमान करते समय, अथवा किसी टिकाऊ वस्तु से दीर्घकाल तक प्राप्त होने वाली संतुष्टि के प्रवाह का अनुमान करते समय हम कभी भी पूर्णरूपेण निश्चितता के साथ निष्कर्ष नहीं दे सकते। हर स्थिति में हमें अनिश्चितता को देखते हुए समायोजन करना होता है। बहुधा अनिश्चित लाभों व हानियों की तुलनात्मक स्थिति के आधार पर यह समायोजन किया जाता है।

वॉन न्यूमैन तथा मार्गेस्टर्न ने बताया कि नव संस्थापनावादी तथा हिक्सीय दोनों ही विधियों में उपभोक्ता के समक्ष विद्यमान इन अनिश्चितताओं एवं उनके प्रभावों की उपेक्षा की गई है। ये लेखक-द्वय मानते हैं कि हमारे व्यावहारिक जीवन में सार्वभौमिक रूप से विद्यमान इन अनिश्चितताओं की उपेक्षा के कारण ही ये दोनों ही दृष्टिकोण अवास्तविक हो गए हैं। न्यूमैन मार्गेस्टर्न ने इनके स्थान पर आधुनिक उपयोगिता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। हम अध्याय के इस अनुभाग में यही देखना चाहेंगे कि अनिश्चितता के संदर्भ में उपभोक्ता का व्यवहार किस प्रकार का हो सकता है। अध्याय के शेष भाग में हम इसे एन-एम सिद्धांत के रूप में व्यक्त करेंगे।

एन-एम सिद्धांत की मान्यताएं : न्यूमैन एवं मार्गेस्टर्न का सिद्धांत इस मूलभूत मान्यता पर आधारित है कि यद्यपि उपभोक्ता अपने द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों से प्राप्त प्रतिफलों का निश्चित माप नहीं दे सकता, तथापि वह विभिन्न विकल्पों को संभाव्यताएं (probabilities) प्रदान कर सकता है। चूंकि विभिन्न विकल्पों से प्राप्त प्रतिफल भी भिन्न होंगे, हम उनमें से प्रत्येक को एक संभाव्यता प्रदान करके एक उपयोगिता अनुक्रमणिका (utility index) का निर्माण कर सकते हैं। यदि उपभोक्ता निम्न पांच शर्तों की अनुपालना करता हो तो इस उपयोगिता अनुक्रमणिका के आधार पर उपभोक्ता की पसंद का पूर्वानुमान करना संभव है.

(i) **संक्रमकता** (*Transitivity*) : संक्रमकता का अर्थ यह है कि A तथा B इन दो विकल्पों में से या तो वह A की तुलना में B को, अथवा B की तुलना में A को पसंद करेगा अथवा वह दोनों के मध्य तटस्थ रहेगा। परंतु यदि वह B की तुलना में A को पसंद करता है, और साथ ही C की तुलना में B को पसंद करता है

तो वह C की तुलना मे A को पसद करेगा ($A>B, B>C$, अत $A>C$) ।

(ii) अनधिमानों की अनवरतता मान लीजिए $A>B>C$ की स्थिति है है तो अधिमानो की अनवरतता का अर्थ यह है कि कोई सभाव्यता P ($1>P>0$ यानी P धनात्मक, परतु 1 मे कम है) इस प्रकार विद्यमान है कि उपभोक्ता B तथा एक लॉटरी टिकिट के A व C प्रतिफलो के मध्य उदासीन या तटस्थ है। इन प्रतिफलो—A व C—की सभाव्यता $(1-P)$ होगी। स्पष्ट है कि $(1-P)$ के विभिन्न मूल्यो मे स किसी एक पर उपभोक्ता तटस्थ रह सकता है।

(iii) असबद्धता मान लीजिए, उपभोक्ता A तथा B के मध्य उदासीन है तथा एक अन्य प्रतिफल C है जिसका मूल्य कुछ भी हो सकता है। मान लीजिए, एक लॉटरी टिकिट के प्रतिफल A तथा C हैं जिनकी सभाव्यताए P एव $(1-P)$ हैं ज्वकि दूसरे लॉटरी टिकिट के प्रतिफलो B एव C की भी सभाव्यताए ये ही हैं। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता दोनो लॉटरी टिकिटो के मध्य तटस्थ रहेगा।

(iv) सफलता की अधिक सभाव्यता को प्राथमिकता यदि दो लॉटरी टिकिटो पर समान पुरस्कार दिया जाना है तो व्यक्ति उस टिकिट को प्राथमिकता देगा जिस पर पुरस्कार प्राप्त करने की सभाव्यता अधिक है।

(v) मिश्रित सभाव्यताए (Compound probabilities) यदि किसी व्यक्ति को ऐसा लॉटरी टिकिट दिया जाए जिसकी पुरस्कार राशि अन्य लॉटरी टिकिटो के रूप मे ही हो, तो वह मूल लॉटरी टिकिट के प्रतिफल का अनुमान इस प्रकार करेगा मानो उसे बाद मे प्राप्त होने वाले लॉटरी टिकिटो के प्रतिफलो की सभाव्यताओ के आधार पर निर्णय लेना हो।

उपयोगिता अनुक्रमणिका तैयार करना

एक उपयोगिता अनुक्रमणिका मे हम किसी व्यक्ति के अधिमानो को सख्यात्मक रूप मे प्रस्तुत करते हैं। इसमे विविध प्रतिफलो की प्रत्याशित उपयोगिता दर्शायी जाती है। मान लीजिए एक लॉटरी टिकिट पर दो पुरस्कार हैं—प्रथम पुरस्कार एक फिएट कार है जबकि दूसरा अन्य इनाम एक खिलौना है। मान लीजिए जीतने की सभाव्यता हजार मे एक ($P=.001$) है। इसका यह अर्थ हुआ कि हारने की सभाव्यता $(1-P)$ .999 होगी। यह भी मान लीजिए कि उपभोक्ता फिएट कार को 2000 का अक प्रदान करता है जबकि उसकी दृष्टि मे खिलौने की उपयोगिता 2 के समान है। एन एम उपयोगिता विश्लेषण के अनुसार लॉटरी टिकिट की कुल उपयोगिता इस प्रकार होगी—

$$.001\times2000+.999\times2=3.998$$

मान लीजिए लॉटरी टिकिट से प्राप्य प्रतिफलो की सख्या j है तथा जीतने की सभाव्यताए $P_1, P_2, P_3, \ldots, P_j$ हैं (जबकि $P_1+P_2+P_3+\ldots\ldots+P_j=1$ है) तो कुल लाभ का अपेक्षित मूल्य (E) इस प्रकार होगा

$$E=a_1P_1+a_2P_2+a_3P_3+\ldots\ldots+a_jP_j) \quad \ldots(6.41)$$

यदि उपभोक्ता के अधिमान ऊपर वर्णित मान्यताओं के अनुरूप हैं तो हम उसके अधिमानों को व्यक्त करने वाले प्रत्येक वस्तु-समूह या प्रतिफल को एक वास्तविक संख्या (real number) प्रदान कर सकते हैं। यदि एक सामान्य वस्तु-समूह A है, जिसके प्रतिफल $X_1, X_2, X_3, X_4, \ldots\ldots, X_n$ हैं तथा इनकी संभाव्यताएं क्रमशः $a_1, a_2, a_3, a_4, \ldots, a_n$ हैं तो A का कुल अपेक्षित लाभ [जहां $A = f(X_i)$ है] $\sum_{i=1}^{n} a_i\, f(X_i)$ होगा। चूंकि हमें a_i के मूल्य ज्ञात हैं, X_i की कीमतों के आधार पर हम A का कुल मूल्य ज्ञात कर सकते हैं। अस्तु,

$$\sum_{i=1}^{n} a_i\, f(X_i) = f(X_1, X_2, X_3, X_4, \ldots\ldots, X_n)$$

अथवा

$$\sum_{i=1}^{n} a_i\, f(X_i) = f(A) \qquad \ldots\ldots(6.42)$$

एक अन्य उदाहरण लीजिए। मान लीजिए, उपभोक्ता को A से U_A के समान तथा C से U_C के समान उपयोगिता प्राप्त होती है। यह भी मान लीजिए कि A, B व C ये तीन संभावित प्रतिफल हैं : A के अंतर्गत हमें फिएट कार प्राप्त होने की आशा है, B के अंतर्गत हमें कोई कार नहीं मिलेगी जबकि C के अंतर्गत एक घटिया किस्म की कार मिल सकती है। स्वाभाविक है, उपभोक्ता A को B की तुलना में तथा B को C की तुलना में पसंद कर सकता है।

A तथा C के प्रतिफलों को हम P तथा (1—P) की संभाव्यताएं दे सकते हैं। ऐसी स्थिति में कुल अपेक्षित उपयोगिता→$P.U_A + (1-P)\,U_C$ होगी। अनवरतता की मान्यता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोई ऐसी संभाव्यता भी हो सकती है जिस पर उपभोक्ता B एवं A व C के बीच तटस्थ रह सके। ऊपर हम यह बता चुके हैं कि उपभोक्ता अपेक्षित उपयोगिता को अधिकतम करने का प्रयास करता है। यदि वह अनिश्चितताओं से घिरा हुआ हो तो ऐसी दशा में वह केवल उसी स्थिति को चुनेगा जिससे प्राप्त अपेक्षित उपयोगिता अधिकतम हो। हम इन उपेक्षित उपयोगिताओं को क्रमानुसार सजो सकते हैं। B की उपयोगिता में निश्चितता है क्योंकि इसमें उपभोक्ता को कार प्राप्त ही नहीं होगी। निश्चितता के साथ निरूपित B की यह उपयोगिता किसी संभाव्यता (P) पर A व C से प्राप्य उपयोगिता के समान होगी—

$$U_B = PU_A + (1-P)U_C$$

यदि उपभोक्ता A को 200 का व C को 10 का अंक प्रदान करे तथा जीतने की संभाव्यता 10 प्रतिशत $(P=0.10)$ एवं हारने की संभाव्यता 90 प्रतिशत हो [$(1-P)=0.90$] तो B की अपेक्षित उपयोगिता 29 होगी—

$$U_B = (.10)200 + (0.90)\ 10 = 29$$

सभी वस्तु-समूहों या उपभोग स्थितियों के लिए हम इसी प्रकार U_A, U_B U_C, U_D, आदि की अपेक्षित उपयोगिताएं ज्ञात करके एक उपयोगिता-अनुक्रमणिका (utility index) का निर्माण कर सकते हैं। इस प्रकार दो काल्पनिक आरंभिक बिंदुओं को लेकर सम्भाव्यताओं के आधार पर उपभोग की विभिन्न चुनाव-स्थितियों की उपयोगिता अनुक्रमणिका का निर्माण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि उपभोक्ता एक अच्छी हालत की फिएट कार एवं 0 8 सम्भाव्यता वाली न्यूयार्क की वापसी यात्रा, अथवा 0 2 सम्भाव्यता वाली घटिया कार के मध्य तटस्थ है तो न्यूयार्क की वापसी यात्रा की अपेक्षित उपयोगिता 222 5 इकाई होगी। उच्चतर गणित के आधार पर जटिल सम्भाव्यताओं से युक्त उपयोगिता अनुक्रमणिका का निर्माण भी संभव है। परन्तु एक विवेकशील उपभोक्ता A व C की 50 50 (आधी-आधी) सम्भाव्यताओं की तुलना में D व B की 40 60 सम्भाव्यताओं को प्राथमिकता देगा, क्योंकि

$$(0\,5)\ 200+(0.5)\ 10<(0\,4)\ 222\,5+(0.6)\ 29$$

अथवा

$$P\,U_A+(1-P)U_C<PU_D+(1-P)\,U_B$$

इस प्रकार अनिश्चितता के दौर में भी उपभोक्ता अपेक्षित उपयोगिता को अधिकतम करने का प्रयास करता है।

7

उत्पादन फलन
(THE PRODUCTION FUNCTIONS)

प्रस्तावना अध्याय 3 से लेकर अध्याय 6 तक हमने उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण किया था। अब हम एक उत्पादक के व्यवहार का विश्लेषण प्रारम्भ करेंगे। व्यष्टिगत अर्थशास्त्र मे उत्पादक उस आर्थिक इकाई को कहा जाता है जो उत्पादन के साधनो को मिलाकर उन्हे किसी वस्तु के रूप मे परिवर्तित करता है। चूकि हमारे विश्लेषण मे यह मान्यता ली गई है कि उत्पादक स्वय ही उपभोक्ताओ को वस्तु उपलब्ध कराता है, हम उत्पादक को एक फर्म की भी सज्ञा दे सकते हैं। सक्षेप मे, एक फर्म ही उत्पादन हेतु विभिन्न साधनो का प्रयोग करती है और फिर वही इस वस्तु (या वस्तुओ) को उपभोक्ताओ को उपलब्ध कराती है।

उत्पादन के साधनो एव उत्पादन के सबध को हम दो प्रकार से व्यक्त कर सकते है प्रथम को उत्पादन का सिद्धात कहा जाता है, जबकि द्वितीय को लागत के सिद्धात की सज्ञा दी जाती है। उत्पादन के सिद्धात मे हम उत्पादन के साधनो या आदाओ (inputs) तथा उत्पादन की मात्रा (प्रदा या output) के बीच विद्यमान भौतिक सबध की व्याख्या करते हैं। इसके विपरीत लागत सिद्धात के अतर्गत किसी वस्तु के उत्पादन स्तर एव उस पर किए जाने वाले व्यय का सबध देखा जाता है। वर्तमान अध्याय एव अगले दो अध्यायो मे हम उत्पादन-सिद्धातो, यानी आदाओ एव प्रदा (*inputs and output*) के *सबधो की व्याख्या करेंगे। अध्याय 10 एव 11 मे* अल्पकालीन एव दीर्घकालीन लागतो का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।

7 1 उत्पादन फलनों की प्रकृति एवं इनके प्रकार
(Nature and Types of Production Functions)

<u>उत्पादन के साधनो</u> अथवा आदाओ एव उत्पादन की मात्रा के मध्य विद्यमान फलनिक सबध को उत्पादन फलन (*production function*) कहा जाता है। वस्तुत उत्पादन फलन एक अभियात्रिक अवधारणा है, और चूकि इसमे आदाओ अथवा उत्पादित वस्तु की मौद्रिक कीमतो का प्रयोग नही किया जाता, इसमे आदाओ व प्रदा, यानी उत्पादन के साधनो एव उत्पादन के भौतिक सबधो की ही व्याख्या की जाती है। इस भौतिक सबध को निम्न फलनिक रूप दिया जा सकता है—

$$Q = f(X_1, X_2, X_3, X_4, \ldots \ldots, X_n) \qquad \ldots(7\,1)$$

समीकरण (7 1) मे Q किसी भी वस्तु के उत्पादन-स्तर को व्यक्त करता है जबकि $X_1, X_2, \ldots, X_n$ आदि उत्पादन के साधन हैं। वस्तुत उत्पादन का स्तर दो बातो पर निर्भर करता है (a) उत्पादन के साधनो की मात्रा, एव इनका सयोग, अर्थात् आदा प्रदा गुणाक, तथा (b) इन साधनों की वह मात्रा जो फर्म को उपलब्ध है। सामान्यत उत्पादन फलन को एकदिष्ट फलन (monotonic function) कहा जाता है, जिसका अर्थ यह है कि उत्पादन के साधनों में वृद्धि होने पर उत्पादन के स्तर में भी वृद्धि होगी। यदि n साधनो की मात्राए उपलब्ध हो तो Q उत्पादन का वह अधिकतम स्तर होगा जिसे निर्दिष्ट आदा-प्रदा गुणाको व उपलब्ध साधनों की सहायता से प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि एक साधन X_k को छोडकर शेष सभी साधन उपलब्ध हो तथा Q का स्तर भी दिया गया हो, तो हम X_k की वह न्यूनतम मात्रा ज्ञात कर सकते हैं जिसके सहयोग से उत्पादन की निर्दिष्ट मात्रा का उत्पादन सभव है। सामान्य तौर पर उत्पादन फलन की व्याख्या करते समय उत्पादन की तकनीक, अथवा आदा प्रदा गुणाकों (input-output coefficients) को यथावत् रखा जाता है। इस दृष्टि से उत्पादन फलन को मात्र उत्पादन-सभावनाओ की एक सूची ही माना जा सकता है। यहा यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि Q या उत्पादन-स्तर एक प्रवाह है, तथा अन्य बातों के यथावत रहते हुए, प्रति समय इकाई उत्पादन की दर बही रहती है। यदि हम यह कहते हैं कि Q का स्तर बढ गया है तो उसका यह अर्थ होगा कि प्रति समय-इकाई उत्पादन की दर बढ गई है।

मान लीजिए, उत्पादन के दो ही साधन (X_1 एव X_2) हैं [$Q=f(X_1, X_2)$] तो X_1 एव X_2 की विभिन्न मात्राओ के द्वारा उत्पादक अधिकतम कितना उत्पादन प्राप्त कर सकता है, इसे तालिका 7 1 द्वारा समझाया जा सकता है[1]—

तालिका मे प्रस्तुत अनुसूची या सारणी न केवल X_1 तथा X_2 के विभिन्न सयोगो से प्राप्त उत्पादन के स्तर को व्यक्त करती है, अपितु इससे हमें उत्पादन के स्तर एव साधनो के सापेक्ष परिवर्तनो का भी ज्ञान होता है। यदि हम क्षैतिज रूप मे देखें तो हम X_2 को स्थिर रखते हुए X_1 साधन की मात्रा म वृद्धि का प्रभाव देख सकते हैं। इसी प्रकार यदि X_1 को स्थिर मानकर X_2 की मात्रा मे होने वाली वृद्धि का उत्पादन पर प्रभाव देखना हो तो हम शीर्ष रूप मे बढते जाएगे। यदि दोनो ही साधन परिवर्तनशील हो तो हम तिरछी दिशा में बढेंगे।

यदि X_1 एव X_2 दोनो को समान अनुपात मे बढाया जाए तो हम A, B व C किरणो मे से किसी एक के सहारे चलेंगे। तालिका 7 1 से यह देखा जा सकता है कि X_1 एव X_2 दोनो को निर्दिष्ट अनुपात मे बढने पर उत्पादन मे भी उतनी ही आनुपातिक वृद्धि होगी। इसे पैमाने का वर्द्धमान प्रतिफल कहा जाता है। पैमाने के प्रतिफलो का विस्तृत विवरण आगे किया जाएगा।

1. Kenneth E Boulding Economic Analysis, Volume I—Micro-economics (Fourth edition), p 545

यहा यह भी स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि उत्पादन फलन में उत्पादन-स्तर तथा साधनो की मात्रा कदापि ऋणात्मक नहीं होती, अर्थात्

$$Q \geqslant O, X_i \geqslant O \qquad \ldots(72)$$

क्योंकि ऋणात्मक उत्पादन अथवा ऋणात्मक साधनों का प्रयोग अर्थहीन प्रक्रिया मात्र है।

तालिका 7.1
भौतिक उत्पादन-सारणी

Units of X_2										
9	0	7	23	36	41	45	48	50	52	54
8	0	8	24	34	40	42	44	46	48	49
7	0	9	24	32	36	39	41	42	43	44
6	0	10	24	30	32	35	36	37	38	39
5	0	11	22	26	28	30	31	32	33	34
4	0	12	20	22	24	25	26	27	28	29
3	0	12	16	18	19	20	21	22	23	24
2	0	10	12	13	14	15	16	$16\frac{1}{2}$	16	$15\frac{1}{2}$
1	0	6	7	8	8	7	$6\frac{1}{2}$	6	$5\frac{1}{2}$	5
0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9
	Units of X_1									

किसी फर्म के उत्पादन फलन का विश्लेषण करते समय निम्न अतिरिक्त बातों का भी ध्यान रखना चाहिए : (1) उत्पादन एवं साधनों का माप प्रति समय इकाई प्रवाह के रूप में लिया जाता है। यहा तक कि उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त स्टॉक चरो (जैसे कि भूमि या मशीन) के लिए भी यह मान्यता ली जाती है कि प्रति समय इकाई एक निर्दिष्ट दर से इनकी क्षमता का उपयोग किया जाएगा। (ii) उत्पादन फलन में प्रविष्ट कुछ साधन अल्पकाल में स्थिर रखे जा सकते हैं, जबकि अन्य साधन

परिवर्तनशील होते हैं। (iii) दीर्घकाल मे फर्म सभी साधनो की वृद्धि कर सकती है। इन मान्यताओ मे से (i) के कारण उत्पादन फलन सामान्य तौर पर अनवरत (continuous) होता है जबकि (ii) के कारण हम परिवर्तनशील साधन की मात्रा मे परिवर्तन करने पर उत्पादन-स्तर (Q) मे होने वाले परिवर्तन की व्याख्या करते हैं। यदि (iii) के अनुरूप सभी साधनो की मात्रा मे परिवर्तन किया जाए तो उत्पादन फलन मे विवर्तन हो जाता है। उत्पादन फलन मे विवर्तन उस दशा मे भी होगा जब फर्म द्वारा एक या अधिक साधनो की बचत करने वाली उत्पादन विधि का (दीर्घकाल मे) प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जाए। (iv) एक मान्यता यह भी ली जाती है कि उत्पादन के साधन अनवरत रूप से विभाजनशील हैं तथा उत्पादन प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती है। इस प्रकार **उत्पादन फलन अनवरत साधनों का अनवरत फलन है।**

उत्पादन फलन के प्रकार (Types of the Production Functions)—अर्थमितज्ञो ने उद्योग व कृषि का आनुभविक (empirical) विश्लेषण करते समय अनेक प्रकार के उत्पादन फलनो का प्रयोग किया है। परन्तु हम यहा केवल कुछ महत्वपूर्ण उत्पादन फलनों का ही विवरण प्रस्तुत करेंगे।[2]

(i) **बहुगुणी रैखिक उत्पादन फलन** (Multiple Linear Production Function)—एक बहुगुणी रैखिक उत्पादन फलन मे एक से अधिक उत्पादन के साधनों एव उत्पादन-स्तर के मध्य एक रेखीय संबंध होता है। यदि n उत्पादन के साधन हो तो रैखिक उत्पादन फलन का रूप निम्न प्रकार का होगा—

$$Q = a + b_1 X_1 + b_2 X_2 + \quad + b_n X_n \qquad (7.3)$$

इस उत्पादन फलन मे Q उत्पादन का स्तर है जबकि X_1, X_2 से लेकर X_n तक सभी उत्पादन के साधन हैं। b_1, b_2, b_3, b_4 से b_n तक प्रतीपगमन गुणांक (regression coefficients) हैं जो वस्तुत विविध साधनो से संबद्ध आंशिक अवकलन (partial derivatives) हैं। इस दृष्टि से b_1 b_2, b_3 आदि X_1, X_2 X_3 आदि साधनो के सीमांत उत्पादन के प्रतीक हैं। समीकरण (7.3) मे a एक प्राचल (parametre) है तथा इसका मूल्य बाह्य रूप से (exogenously) निर्धारित होता है।

(ii) **कॉब डग्लस उत्पादन फलन** (Cobb-Douglas Production Function)—यह उत्पादन फलन सी० डब्ल्यू० कॉब तथा पी० एच० डग्लस द्वारा किए गए अध्ययनो की एक उत्पत्ति है। वैसे तो आज कॉब डग्लस उत्पादन फलन के अनेक रूप हैं, परन्तु इस फलन का सामान्य स्वरूप निम्न रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$Q = A_n{}^{\alpha} K^{\beta} u$$

इस फलन मे Q किसी वस्तु का उत्पादन स्तर है n एव k क्रमश श्रम व पूंजी की मात्राए हैं, जबकि u को प्रमाप त्रुटि माना जा सकता है। किसी भी उत्पादन स्तर (Q) के लिए यह आवश्यक है कि श्रम व पूंजी की मात्राए धनात्मक

2 जिज्ञासु पाठक निम्न पुस्तक पढ़ सकते हैं—
E. O. Heady and Dillon 'Agricultural Production Functions'

हो। उपरोक्त कॉब-डगलस उत्पादन फलन में α तथा β क्रमशः श्रम व पूंजी की उत्पादन-लोच के प्रतीक हैं। अंत में, A एक धनात्मक स्थिर मूल्य है और वस्तुतः फर्म की दक्षता का दक्षता प्राचल (efficiency parametre) है। उदाहरण के लिए, यदि दो फर्मों द्वारा समान मात्रा में श्रम व पूंजी का प्रयोग किया जाए तथा इनसे सबद्ध लोच-गुणांक (क्रमशः α व β) भी समान हों परंतु पहली फर्म के उत्पादन फलन में A का मूल्य 20 व दूसरी फर्म में इसका मूल्य 15 हो, तो पहली फर्म का उत्पादन-स्तर ऊंचा होगा। अस्तु A को दक्षता प्राचल माना जाता है।

यदि ऊपर प्रस्तुत कॉब-डगलस उत्पादन फलन में साधनों की लोच गुणांकों का योग इकाई के समान है ($\alpha+\beta=1$), तो इसका यह अर्थ होगा कि श्रम (n) व पूंजी (k) की मात्राएं जिस अनुपात में बढ़ाई जाती हैं, उत्पादन (Q) भी उसी अनुपात में बढ़ेगा। यह पैमाने के स्थिर प्रतिफल का एक उदाहरण है। परंतु यदि $\alpha+\beta>1$ हो अथवा $\alpha+\beta<1$ हो तो ये स्थितियां क्रमशः पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल (increasing returns to scale) एवं पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (diminishing returns to scale) की मानी जाएंगी।

यद्यपि कॉब डगलस उत्पादन-फलन अरैखिक (non-linear) है, तथापि इसे लॉग-रूप में प्रस्तुत करके रैखिक फलन का रूप दिया जा सकता है—

$$\text{Log } Q=\log A+\alpha \log n+\beta \log k+\log u$$

इस कारण कॉब डगलस उत्पादन फलन को लॉग-रैखिक फलन (log-linear function) के नाम से भी जाना जाता है। यहां इस फलन में केवल श्रम व पूंजी दो ही उत्पादन के साधन लिए गए हैं परंतु यदि अन्य साधनों एवं उनकी उत्पादन लोच को शामिल कर लिया जाए तब भी उत्पादन फलन के स्वरूप में कोई अंतर नहीं आएगा।

(iii) सी० ई० एस० उत्पादन फलन (The C E S Production Function)—इसे स्थिर प्रतिस्थापन-लोच (constant elasticity of substitution) वाला उत्पादन फलन कहा जाता है। इस फलन को प्रस्तुत करने का श्रेय चार अर्थशास्त्रियों—सर्वश्री एरो, चैनरी, मिन्हास एवं सोलो—को है जिनमें मिन्हास भारतीय अर्थशास्त्री हैं तथा यहां के योजना आयोग के सदस्य रह चुके हैं। इस फलन का समीकरण इस प्रकार है—

$$Q=A[\delta k^{-\rho}+(1-\delta)L^{-\rho}]^{-1/\rho}$$

(इसमें A धनात्मक प्राचल (parametre) है जबकि δ धनात्मक परंतु 1 से कम है $\cdot$ $0<\delta<1$ जबकि $\rho>-1$ है)

उपरोक्त उत्पादन फलन में k व L उत्पादन के दो साधन-क्रमशः पूंजी व श्रम हैं। δ एक प्राचल है तथा साधनों के उत्पादन में योगदान का सूचक होने के नाते कॉब-डगलस फलन के β की भांति ही है। इसी कारण इसे वितरण-प्राचल (distribution parametre) भी कहा जाता है। इस फलन में A व Q क्रमशः दक्षता प्राचल व उत्पादन-स्तर को व्यक्त करते हैं तथा कॉब-डगलस उत्पादन फलन के अनुरूप ही हैं।

अत मे ρ भी एक प्राचल है तथा श्रम व पूजी के मध्य प्रतिस्थापन लोच को व्यक्त करता है।

हम यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि सी० ई० एस० उत्पादन फलन भी कॉब-डग्लस उत्पादन फलन की भाति पैमाने के स्थिर प्रतिफल को व्यक्त करत हैं तथा इसमे भी श्रम व पूजी के औसत व सीमान्त उत्पादन स्थिर रहत हैं। एक विशिष्ट स्थिति मे जब $\rho=0$ होता है तो सी० ई० एस० फलन पूर्णतया कॉब-डग्लस फलन के अनुरूप हो जाता है।

(iv) स्पिलमैन उत्पादन फलन (Spillman Production Function)—यह मानत हुए कि किसी वस्तु के उत्पादन का स्तर Y है जो उत्पादन के दो साधनो, क्रमश X व Z पर निर्भर करता है स्पिलमैन ने बताया कि X व Z मे समान अनुपात से वृद्धि नही होती। वस्तुत यह मान्यता कॉब डग्लस तथा सी० ई० एस० उत्पादन फलनो की इस मान्यता से सर्वथा भिन्न है कि उत्पादन के साधनो मे समान अनुपात से वृद्धि होती है। स्पिलमैन उत्पादन फलन का रूप कुछ इस प्रकार है—

$$Y=A\left(1-R_x^X\right)\left(1-R_z^Z\right)$$

इस फलन मे Y उत्पादन का स्तर है जबकि X व Z उत्पादन के दोनो साधन हैं। पूर्व मे प्रस्तुत उत्पादन फलनो की भाति इस फलन मे भी A एक स्थिर मूल्य वाला प्राचल है परतु इस बार यह सामान्य टैक्नोलॉजी का द्योतक है। R_x एव R_z क्रमश वे अनुपात हैं जिनके अनुसार X व Z की मात्रा बढाने के साथ इनकी सीमान्त उत्पादकता मे कमी होती है। स्पिलमैन ने यह भी मान्यता ली है कि X व Z हमेशा धनात्मक होत हैं। चूकि X व Z मे समान अनुपात मे वृद्धि नही होती, इसलिए इनके अलग-अलग स्तरो पर प्रतिस्थापन लोच भी बदलती जाती है।

7 2 साधनो के प्रकार एव एक परिवर्तनशील साधन के साथ उत्पादन (Types of Inputs and Production with one Variable Input)

ऊपर प्रस्तुत उत्पादन फलनो मे Q अथवा Y प्रति समय-इकाई उत्पादन का स्तर है तथा साधनो की मात्रा पर निर्भर करता है। किसी भी फर्म या उत्पादक द्वारा साधनो की कितनी मात्रा का प्रयोग किया जाएगा, इसका समय के आधार पर तीन रूप मे विश्लेषण किया जाता है—

(i) अल्प काल (Short-run)—यह अवधि है जिसमे प्लाट का आकार वही रहता है, तथा उत्पादन के साधनो मे से कम से कम एक साधन स्थिर रहता है।

(ii) दीर्घ काल (Long run)—वह यह अवधि है जिसमे फर्म उत्पादन के सभी साधनो मे वृद्धि कर सकती है, तथा प्लाट का आकार भी योजनानुसार बढा सकती है। प्रथम अवधि मे फर्म को यह निर्णय लेना होता है कि वह परिवर्तनशील साधन या साधनो की कितनी मात्रा का उपयोग करे ताकि उसे अधिकतम लाभ हो, जबकि दीर्घकाल मे उसे यह निर्णय लेना होता है कि वह किस सीमा तक प्लाट का

विस्तार करे ताकि न्यूनतम लागत पर उत्पादन किया जा सके। परतु इन दोनो ही अवधियो मे फर्म की उत्पादन-तकनीक यथावत् रहती है।

(iii) अत्यधिक दीर्घकाल (Very long run)—इस अवधि मे फर्म की उत्पादन तकनीक मे भी परिवर्तन हो सकता है। प्रस्तुत अनुभाग मे हम अल्पकाल मे फर्म द्वारा लिए गए निर्णयो की समीक्षा करेंगे।

अल्पकाल मे फर्म के उत्पादन फलन पर तीन सामान्य सीमाए लागू की जाती है (i) अल्पकाल की अवधि इतनी छोटी होती है कि फर्म उत्पादन के सभी साधनो को बढाने मे समर्थ नही होती, (ii) इस अवधि मे फर्म की उत्पादन-तकनीक यथावत् रहती है, तथा (iii) इस अवधि मे स्थिर तथा परिवर्तनशील साधनो का सयोग इस प्रकार जुटाया जाता है कि उत्पादन प्रक्रिया पूरी हो जाए। विश्लेषण की सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि उत्पादन के साधनो मे से केवल एक ही साधन परिवर्तनशील है जबकि शेष साधन स्थिर हैं।

स्थिर साधन वे साधन है जिनकी मात्रा मे उत्पादन की मात्रा के साथ तत्काल ही वृद्धि नही की जा सकती। वस्तुत कोई भी साधन पूर्णत स्थिर नही होता परतु विश्लेषण की सुविधा के लिए हम यह मान लेते है कि अल्पकाल मे कुछ साधनो की मात्रा मे वृद्धि करना सभव नही है, क्योकि इनकी मात्रा मे तत्काल वृद्धि करने की लागत बहुत ऊची हो सकती है। कारखाने या खेत पर बने हुए भवन, बडी मशीनें, तथा प्रबन्धक सामान्य तौर पर स्थिर साधन माने जाते हैं। इसके विपरीत परिवर्तनशील साधन वह साधन है जिसकी मात्रा मे तत्काल वृद्धि की जा सकती है तथा जिसका उत्पादन की मात्रा से प्रत्यक्ष सबध होता है। यही नही, हमारी यह भी मान्यता रहती है कि अल्पकाल मे परिवर्तनशील साधन की मात्रा मे पर्याप्त वृद्धि करने पर भी इनकी कीमत (factor price) मे कोई परिवर्तन नही होता। अन्य शब्दो मे, अल्पकाल मे भी परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाइया दी हुई कीमत पर प्राप्त की जा सकती हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, अल्पकाल वह अवधि है जिसमे उत्पादन का कम से कम एक साधन स्थिर रहता है। बहुधा हम यह मान लेते हैं कि एक को छोडकर उत्पादन के सभी साधन अल्पकाल मे स्थिर रहेगे। इसका यह अर्थ हुआ कि अल्पकाल मे केवल परिवर्तनशील साधन की मात्रा मे परिवर्तन करके ही उत्पादन मे वृद्धि करना सभव है। उदाहरण के लिए, अल्पकाल मे प्लाट के आकार, कार्यशील पूजी एव प्रबधको की सख्या वही रखते हुए हम श्रम की इकाइयो को बढाकर ही अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते है।

परतु, जैसा कि आगे बतलाया जाएगा, दीर्घकाल मे सभी साधन परिवर्तनशील हैं और इसलिए हम पैमाने का विस्तार करके उत्पादन मे वृद्धि करते है।

अल्पकालीन उत्पादन फलन
(Short-run Production Function)

अल्पकाल मे जब हम केवल एक साधन को परिवर्तनशील तथा अन्य साधनो

को स्थिर मानते हैं तो समीकरण (71) में प्रस्तुत उत्पादन फलन को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$Q = f\ (X_1 / X_2,\ X_3,\ X_4,\ \quad ,X_n) \quad ...(74)$$

उपरोक्त फलन में $\underline{X}_1$ ही परिवर्तनशील साधन हैं जबकि शेष साधन स्थिर हैं। यद्यपि उत्पादन की प्रक्रिया में स्थिर साधनों का भी योगदान रहता है, फिर भी हम यह मान्यता लेते हैं कि उत्पादन यानी Q में X_1 की मात्रा के साथ प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तन होता है। अन्य शब्दों में फर्म के लिए X_1 एक निर्णयात्मक चर (decision variable) है तथा फर्म उसी सीमा तक X_1 का प्रयोग करेगी जहां X_1 के प्रयोग से इसे अधिकतम लाभ हो।

तालिका 72 में X_1 के विभिन्न स्तरों पर उत्पादन की मात्रा, यानी Q के स्तर को प्रदर्शित किया गया है जबकि X_2 से X_n तक सारे साधनों की मात्रा यथावत् रहती है। इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि X_1 का उत्तरोत्तर अधिक उपयोग करने पर पहले तो उत्पादन यानी Q बढती हुई दर पर बढ़ता है, फिर घटती हुई दर पर बढता है, और एक सीमा के बाद X_1 की मात्रा बढ़ाने पर भी कुल उत्पादन की मात्रा (Q) घटने लगती है।

तालिका 72

एक परिवर्तनशील साधन वाला उत्पादन फलन

X_1 की इकाइयां	अन्य साधनों की इकाइयां (X_2)	परिवर्तनशील व स्थिर साधनों का अनुपात X_1 / X_2	कुल उत्पादन $TP = Q$	औसत उत्पादन $AP = Q/X_1$	सीमांत उत्पादन $MP = \frac{dQ}{dX_1}$
1	2	3	4	5	6
0	10	0/10	0	0	0
1	10	1/10	5	50	5
2	10	2/10	12	60	7
3	10	3/10	20	67	8
4	10	4/10	31	78	11
5	10	5/10	40	80	9
6	10	6/10	48	80	8
7	10	7/10	54	77	6
8	10	8/10	58	72	4
9	10	9/10	60	67	2
10	10	10/10	60	60	0
11	10	11/10	56	51	—4

तालिका 7.2 में X_1 की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ कुल उत्पादन में वृद्धि की जो प्रवृत्ति दर्शित की गई है उसे परिवर्तनीय अनुपातों का नियम (Law of Variable Proportions) कहा जाता है हम अब इसी नियम की विस्तृत व्याख्या करेंगे।

परिवर्तनीय अनुपातों का नियम
(The Law of Variable Proportions)

19वीं शताब्दी के आरभ मे डेविड रिकार्डो तथा माल्थस ने बताया कि कृषि मे बहुधा ह्रासमान प्रतिफल की प्रवृत्ति पाई जाती है। फिर 19वीं शताब्दी के अत मे एल्फ्रेड मार्शल ने कहा, "(स्थिर) भूमि पर पूजी व श्रम की मात्रा मे वृद्धि करने पर सामान्यतया उत्पादन की मात्रा मे अनुपात से कम वृद्धि होती है, बशर्ते कृषि कला मे साथ-साथ सुधार न हो।"[3] मार्शल ने कहा कि उत्पादन में ह्रास की यह प्रवृत्ति निम्न शर्तों की अनुपालना पर निर्भर करती है—

(i) श्रम व पूजी को एक निश्चित अनुपात में प्रयुक्त किया जाता है, तथा उत्पादन में वृद्धि हेतु दोनों की मात्रा में वृद्धि की जाती है।

(ii) भूमि की उर्वराशक्ति का पूर्ण विकास हो चुका हो। अन्य शब्दो मे ह्रासमान प्रतिफल की प्रवृत्ति उस समय प्रारभ होगी जब स्थिर साधनो (भूमि) की अपेक्षा परिवर्तनशील साधन (पूजी व श्रम का सयोग) की मात्रा अधिक हो जाए।

(iii) कृषि-प्रविधि में कोई परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि "सुधरी हुई कृषि-प्रविधि से पूजी व श्रम के प्रयोग से प्राप्त प्रतिफल बढ जाते हैं।"[4]

अब तालिका 7.2 को पुन देखिए। हम देखते हैं कि जिस प्रवृत्ति का प्रोफेसर मार्शल ने जिक्र किया था, X_1 का प्रयोग बढाने पर कुल उत्पादन की वही प्रवृत्ति इस तालिका मे दिखाई देती है प्रारभ मे कुल उत्पादन (TP या Q) बढती हुई दर पर बढता है, फिर X_1 की पाचवी इकाई का प्रयोग करने पर उत्पादन घटती हुई दर पर बढता है, तथा X_1 की दस इकाई प्रयोग करने पर कुल उत्पादन अधिकतम हो जाता है। इससे आगे भी यदि X_1 का प्रयोग जारी रखा जाता है तो कुल उत्पादन मे कमी प्रारम्भ हो जाती है। उदाहरण के लिए ग्यारहवीं इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन 56 इकाई रह जाता है जबकि दस इकाई X_1 का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन 60 था।

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम अथवा परिवर्तनशील साधन X_1 का उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग करने पर देखी जाने वाली कुल उत्पादन की प्रवृत्ति को चित्र 7.1 मे दिखाया गया है।

चित्र 7.1 मे शीर्ष अक्ष पर उत्पादन (Q) की मात्रा मापी गई है, जबकि क्षैतिज अक्ष पर परिवर्तनशील साधन (X_1) की इकाइयों का माप लिया गया है।

3 Alfred Marshall, 'Principles of Economics' (Eighth Edition), Book IV, Chapters I & III.

4 Ibid, pp 126-127.

कुल उत्पादन वक्र TP को हमने तालिका 7.2 के कॉलम 1 एवं 4 से प्राप्त किया है। यह बताया है कि प्रारंभ में कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ता है, और फिर X_1 की चौथी इकाई का प्रयोग कर चुकने के बाद कुल उत्पादन की वृद्धि घटती हुई दर पर होने लगती है। X_1 की दस इकाइयों का प्रयोग करने पर फर्म को अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है परंतु यदि इसके आगे भी X_1 का प्रयोग जारी रखा जाए तो *कुल उत्पादन में कमी प्रारंभ हो जाती है।* इस प्रकार, अन्य बातें यथावत् रहने पर, कुल उत्पादन वक्र का ढलान (slope) कुछ समय तक बढ़ता जाता है (क्योंकि उत्पादन बढ़ती हुई दर पर बढ़ता है), फिर ह्रासमान प्रतिफल के कारण कुल उत्पादन वक्र का ढलान धनात्मक रहते हुए भी कम होता जाता है, परंतु एक सीमा (B) के पश्चात् कुल उत्पादन में कमी होने के कारण इसका ढलान ऋणात्मक हो जाता है। परिवर्तन-

चित्र 7.1 तालिका 7.2 के कॉलम 1 व 4 से प्राप्त कुल उत्पादन वक्र
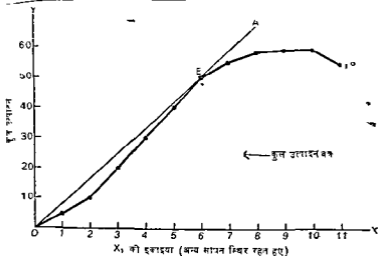
शील अनुपातों के नियम का यही सार है। तालिका 7.2 एवं चित्र 7.1 वस्तुतः एक 'सामान्य उत्पादन फलन' का चित्रण प्रस्तुत करते हैं, जिसके अनुसार परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि के फलस्वरूप पहले उत्पादन बढ़ती हुई दर पर बढ़ता है फिर घटती हुई दर पर बढ़ता है और फिर अंततः कुल उत्पादन में कमी होने लगती है।

अब तालिका 7.2 के कॉलम 3 को देखिए। जैसे-जैसे फर्म X_1 की मात्रा में वृद्धि करती जाती है, जबकि अन्य साधनों (X_2) के स्तर को 10 इकाई पर स्थिर रखा जाता है, वैसे-वैसे X_1 व X_2 का अनुपात (X_1/X_2) बढ़ता जाता है। इस दशा में फर्म को न केवल उत्पादन के स्तर के बारे में निर्णय लेना है, अपितु उसे स्थिर एवं परिवर्तनशील साधनों के इष्टतम संयोग के विषय में भी निर्णय लेना होता है। परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अनुसार तर्क दिया जा सकता है कि कुल उत्पादन में

परिवर्तन की दर में मुख्य रूप से इसीलिए परिवर्तन होता है कि स्थिर एवं परिवर्तनशील साधनों के मध्य अनुपात परिवर्तनशील है। वास्तविक बात तो यह है कि जब स्थिर साधन बहुत अधिक होते हैं तो जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढ़ाई जाती है, वैसे वैसे स्थिर साधनों की दक्षता में एक सीमा तक वृद्धि होती जाती है। परतु एक सीमा के पश्चात् स्थिर साधनों की दक्षता कम होने लगती है और इसी के साथ-साथ कुल उत्पादन की वृद्धि दर में भी कमी होती है। इसका कारण यही है कि एक इष्टतम स्तर ऐसा है जिससे आगे स्थिर साधन परिवर्तनशील साधन को ग्रहण नहीं कर सकते, और यदि परिवर्तनशील साधन की मात्रा इसके आगे भी बढाई जाए तो उत्पादन में ह्रासमान प्रवृत्ति प्रारंभ हो जाएगी।

यदि X_1 के साथ अन्य साधनों की मात्रा को भी बढाना प्रारम्भ कर दें तो परिवर्तनशील अनुपातों का नियम लागू नहीं होता। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, यदि उत्पादन के सभी साधनों मे परिवर्तन करना सभव हो—जो केवल दीर्घकाल में ही हो सकता है—तो यह फर्म के पैमाने में परिवर्तन की प्रक्रिया होगी, तथा ऐसी स्थिति में भी परिवर्तनशील अनुपातों का नियम लागू नहीं होगा। आगे चलकर हम पैमाने के प्रतिफलों (returns to scale) की विस्तार से चर्चा करेंगे। वर्तमान सदर्भ मे इतना बतला देना पर्याप्त होगा कि परिवर्तनीय अनुपातों के नियम के अतर्गत हम परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि से कुल उत्पादन में होने वाले परिवर्तन की विवेचना करते हैं।

औसत तथा सीमात उत्पादन

(Average and Marginal Products)

प्रोफेसर लेफ्टविच ने परिवर्तनीय अनुपातों के नियम का विवरण देते हुए बतलाया है कि जैसे-जैसे X_1 की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है (जबकि अन्य साधनों की मात्रा वही रहती है), तो एक सीमा के पश्चात् पहले अतिरिक्त यानी सीमात उत्पादन में कमी होती है, और फिर आगे चलकर औसत उत्पादन भी घटने लगता है। जार्ज स्टिग्लर (थ्योरी ऑफ प्राइस, अध्याय 7) ने भी बतलाया है कि उत्पत्ति ह्रास नियम अथवा परिवर्तनीय अनुपातों के नियम के अतर्गत जैसे-जैसे एक साधन की समान रूप मे वृद्धि की जाती है, वैसे-वैसे एक सीमा के पश्चात् सीमात उत्पत्ति में कमी होती है। इस अनुभाग में हम पहले औसत व सीमात उत्पादन की प्रवृत्ति का विश्लेषण करेंगे और फिर इन दोनों के सबधों की व्याख्या करेंगे।

किसी भी साधन का औसत उत्पादन वस्तुतः कुल उत्पादन तथा इस स्तर पर प्रयुक्त साधन की मात्रा का अनुपात है। उदाहरण के लिए, हमारे उपरोक्त उत्पादन फलन में X_1 के औसत उत्पादन को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

कुल उत्पादन फलन $Q = f(X_1 / X_2, X_3, \ldots X_n)\ldots$

औसत उत्पादन फलन $\dfrac{Q}{X_1} = \dfrac{f(X_1 / X_2, X_3, \cdots X_n)}{X_1}$ ...(7.5)

X_1 के सीमात उत्पादन से हमारा आशय X_1 की अतिरिक्त मात्रा के प्रयोग से कुल उत्पादन में हुई वृद्धि से है। चूंकि उत्पादन फलन में X_2 से लेकर X_n तक सारे साधन स्थिर हैं, हम सीमांत उत्पादन या सीमात उत्पत्ति को निम्न रूप में व्यक्त कर सकते हैं—

$$\frac{dQ}{dX_1} = \frac{df\ (X_1\ /\ X_2\ X_3\ \quad X_n}{dX_1} \quad .(7\,6)$$

तालिका 7 2 के कॉलम 5 व 6 में हमने औसत व सीमात उत्पादन दर्शाया है जो परिवर्तनशील साधन (X_1) के विभिन्न स्तरों पर हमें प्राप्त होते हैं। इन्ही सख्याओ को हमने चित्र 7 2 में प्रस्तुत किया है। चित्र 7 2 से स्पष्ट होता है कि किसी परिवर्तनशील साधन के औसत एवं सीमात उत्पादन के मध्य एक निश्चित एव असदिग्ध सबध होता है। जैसे जैसे X_1 की मात्रा बढाई जाती है, औसत तथा सीमात उत्पादन में वृद्धि होती है परतु एक सीमा के पश्चात् पहले सीमात उत्पादन में, और
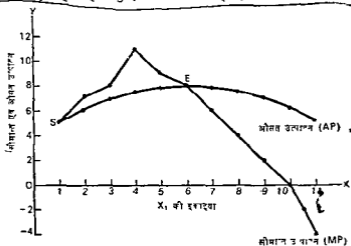
चित्र 7 2 औसत एव सीमान्त उत्पादन वक्र

फिर औसत उत्पादन में भी कमी होती है। वस्तुत सीमान्त उत्पादन कुल उत्पादन फलन (Q) का प्रथम अवकलन है। रेखाचित्रीय दृष्टि से सीमात उत्पादन वक्र चित्र 7 1 में प्रस्तुत कुल उत्पादन वक्र के ढलान का प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरण के लिए चित्र 7 1 में X_1 की चौथी इकाई का प्रयोग होने तक कुल उत्पादन बढती हुई दर से बढता है और इससे कुल उत्पादन वक्र का ढलान बढता है, तो चित्र 7 2 में परिवर्तनशील साधन के इस स्तर तक सीमान्त उत्पादन में वृद्धि होती है तथा $X_1 = 4$ होने पर सीमात उत्पादन अधिकतम होता है। चित्र 7 1 में ठीक इसी स्तर पर कुल उत्पादन (TP) वक्र का ढलान अधिकतम है। इस स्तर के बाद TP वक्र का ढलान कम होता है तथा सीमात उत्पादन भी कम होने लगता है। जब X_1 की दस इकाइया

प्रयुक्त की जाती हैं तो सीमांत उत्पादन शून्य हो जाता है और इसी स्तर पर कुल उत्पादन अधिकतम होता है। इसके आगे परिवर्तनीय साधन का उपयोग करने पर सीमांत उत्पादन ऋणात्मक होता है तथा कुल उत्पादन का ढलान (चित्र 7.1) ऋणात्मक हो जाता है।

अब औसत उत्पादन वक्र की ओर दृष्टिपात कीजिए। जहां सीमांत उत्पादन X_1 की अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में हुई वृद्धि का प्रतीक है $\left(MPx = \frac{dQ}{dX_1}\right)$ औसत उत्पादन कुल उत्पादन एवं X_1 के स्तर का अनुपात $\left(\frac{Q}{X_1}\right)$ है। चित्र 7.2 को ध्यान से देखने पर हमें यह ज्ञात होता है कि सामान्य उत्पादन फलन (Normal well-behaved production function) के अंतर्गत सीमांत तथा औसत उत्पादन के मध्य चार प्रकार के संबंध पाए जाते हैं—

(i) जब औसत उत्पादन बढ़ता है तो सीमांत उत्पादन इसकी अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ता है;

(ii) X_1 के किसी स्तर पर सीमांत उत्पादन अधिकतम हो जाता है। चित्र 7.2 में $X_1 = 4$ होने पर), परंतु औसत उत्पादन में वृद्धि का क्रम जारी रहता है;

(iii) एक स्तर के बाद X_1 का प्रयोग करने पर औसत उत्पादन भी घटने लगता है (चित्र 7.2 में $X_1 = 6$ इकाई के बाद) परंतु सीमांत उत्पादन इसकी अपेक्षा अधिक तीव्र गति से घटता है; तथा

(iv) जहां औसत उत्पादन अधिकतम होता है ($X_1 = 6$ पर) वहां सीमांत उत्पादन इसके समान होता है।[5]

5. हमारा उत्पादन फलन $Q = f(X_1/X_2, X_3, X_4 \ldots Xn)$ है, परंतु वस्तुतः X_1 ही Q को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है। इस कारण X_1 के औसत उत्पादन को $\frac{Q}{X_1}$ एवं सीमांत उत्पादन को $\frac{dQ}{dX_1}$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। अब औसत उत्पादन फलन $\frac{Q}{X_1} = \frac{f(X_1)}{Q_1}$ का प्रथम अवकलन लीजिए—

$$\frac{d\left(\frac{Q}{X_1}\right)}{dX_1} = \frac{1}{X_1}\left[\frac{dQ}{dX_1} - \frac{Q}{X_1}\right]$$

वस्तुतः औसत उत्पादन फलन का प्रथम अवकलन चित्र 7.2 में औसत उत्पादन वक्र के ढलान का ही प्रतिरूप है। X_1 की प्रथम इकाई से लेकर 6 इकाई लेने तक यानी चित्र 7.2 में SE के मध्य औसत उत्पादन वक्र का ढलान धनात्मक है। अर्थात्

$$\frac{1}{X_1} = \left[\frac{dQ}{dX_1} - \frac{Q}{X_1}\right] > 0$$

[शेष पृष्ठ 164 पर]

यही बात चित्र 7.1 के द्वारा भी स्पष्ट की जा सकती है। रेखागणितीय रूप मे TP वक्र के निर्दिष्ट बिंदु पर एक स्पर्श रेखा (tangent) खींचकर इस स्पर्श रेखा के ढलान से MP ज्ञात किया जा सकता है, वही उस बिंदु पर मूल बिंदु (O) से एक किरण (ray) खींच कर इस किरण के ढलान (slope of the ray) के आधार पर औसत उत्पादन (AP) ज्ञात किया जा सकता है। चित्र 7.1 मे स्पर्श रेखा तथा मूल बिंदु से खींची गई किरण (OA) दोनों ही E बिंदु पर एक हो जाती हैं, अत X_1 के इस स्तर पर (जहा $X_1=6$ है) औसत व सीमात उत्पादन समान हैं। (slope of the ray=slope of the tangent at E, अत $AP_{X1}=MP_{X1}$) इस विवरण के बाद हम ऐसी स्थिति मे पहुच चुके है जहा कुल उत्पादन वक्र तथा AP व MP वक्रो को एक साथ प्रस्तुत करके इनके मध्य विद्यमान सबधो को समझ सकें। चित्र 7.3 मे पैनल (a) चित्र 7.1 मे प्रस्तुत कुल उत्पादन वक्र को प्रस्तुत करता है जबकि पैनल (b) मे चित्र 7.2 मे दिए गए औसत व सीमात उत्पादन वक्र दर्शाए गए हैं।

चित्र 7.3 मे पैनल (a) के बिंदु T तक कुल उत्पादन बढती हुई दर से बढता है और इस कारण सीमात उत्पादन (MP) को बढता हुआ दिखाया गया है। यहा TP वक्र पर इन्फ्लेशन बिंदु (point of inflection) है, यानी द्वितीय अवकलन अथवा सीमात उत्पाद वक्र का ढलान $\dfrac{d\left(\frac{dQ}{dX_1}\right)}{dX_1}$ शून्य होगा। इस स्तर तक X_1 के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के फलस्वरूप स्थिर साधनो की दक्षता मे वृद्धि होगी। बिंदु E पर औसत उत्पादन अधिकतम है तथा इस स्तर पर औसत व सीमात उत्पादन समान ($AP_{X1}=MP_{X1}$) होगे। बिंदु R पर कुल उत्पादन अधिकतम है तथा इस स्तर पर

यह तभी सभव है जब $\frac{dQ}{dX1}>\frac{X}{X1}$, यानी जब AP बढ़ता है तो MP इससे अधिक होता है। बिन्दु E से आगे AP वक्र का ढलान ऋणात्मक है अर्थात्

$$\frac{1}{X1}\left[\frac{dQ}{dX_1}-\frac{Q}{X_1}\right]>O$$

और यह तभी हो सकता है जब $\frac{Q}{X}$ यानी औसत उत्पादन से $\frac{dQ}{dX1}$ यानी सीमांत उत्पादन कम हो।

अत मे, E बिन्दु पर AP अधिकतम है अर्थात AP वक्र का ढलान शून्य है,

$$\frac{1}{X1}\left[\frac{dQ}{dX_1}-\frac{Q}{X^1}\right]=O$$

और इसके लिए आवश्यक है कि $\frac{dQ}{dX1}=\frac{Q}{X1}$ यानी AP व MP समान हो।

सीमांत उत्पादन शून्य होगा। इसके आगे भी X_1 का प्रयोग जारी रखने पर सीमांत उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है $\left(\frac{dQ}{dX_1} < 0\right)$ अर्थात् कुल उत्पादन घटने लगता है।
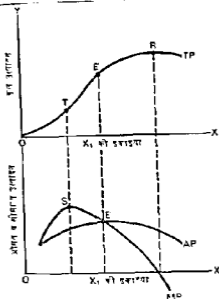
चित्र 7.3 कुल, औसत व सीमान्त उत्पादन वक्र

कुल उत्पादन (TP), सीमांत उत्पादन (MP_{x1}) व औसत उत्पादन (AP_{x1}) के मध्य एक सामान्य उत्पादन फलन के अन्तर्गत क्या सबंध है, यह और स्पष्टत: जानने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए हमारा फलन एक द्विघाती उत्पादन फलन (Quadratic Production Function) है।

$$Q = aX_1^2 + bX_1 + C \qquad \ldots(7.7)$$

इस उत्पादन फलन में Q व X_1 क्रमशः उत्पादन की मात्रा तथा परिवर्तनशील साधन के स्तर को व्यक्त करते हैं। a, b व c स्थिर मूल्य वाले प्राचल (parametres) हैं तथा इनका मूल्य धनात्मक है। ऐसी स्थिति में औसत उत्पादन या AP का समीकरण निम्न होगा—

$$\frac{Q}{X_1} = aX_1 + b + \frac{C}{X_1} \qquad \ldots(7.8)$$

तथा सीमांत उत्पादन या MP का समीकरण निम्नांकित होगा :

$$\frac{dQ}{dX_1} = 2aX_1 + b \qquad \ldots(7.9)$$

जहां AP अधिकतम है वहां इसका प्रथम अवकलज (first derivative) शून्य

होना चाहिए—

$$\frac{d\left(\frac{Q}{X_1}\right)}{dX_1} = a - \frac{C}{X_1^2} = o \quad \ldots(7.10)$$

तथा AP के इसी स्तर पर MP व AP समान होंगे। समीकरण 7 10 को X_1 के लिए हल करने पर हमें वह स्तर ज्ञात हो सकता है। अस्तु,

$$X_1 = \sqrt{c/a}$$

उत्पादन फलन में विवर्तन
(Shifts in the Production Function)

यदि स्थिर साधन या साधनों के स्तर में आकस्मिक रूप से वृद्धि कर दी जाए तो इसके फलस्वरूप उत्पादन फलन या कुल उत्पादन वक्र में विवर्तन हो जाएगा। यहा यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि स्थिर साधनों के स्तर में वृद्धि से हमारा
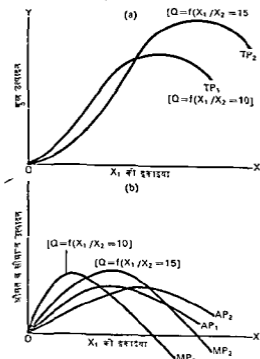
चित्र 7 4 स्थिर साधनों के भिन्न स्तरों पर कुल उत्पादन, औसत उत्पादन एवं सीमांत उत्पादन

आशय पैमाने मे वृद्धि से न होकर स्थिर साधनों के स्तर को एकमुश्त बढाने से है। उदाहरण के लिए तालिका 7 1 मे यदि स्थिर साधनो (X_2) के स्तर को 10 से बढाकर 15 या 20 कर दिया जाए तो X_1 की अतिरिक्त इकाइयों के प्रयोग स हम जो नया कुल उत्पादन वक्र प्राप्त होगा वह पूर्वापेक्षा विवर्तित रूप मे होगा। कुल उत्पादन वक्र के साथ ही औसत व सीमात वक्रो (AP व MP) मे भी विवर्तन हो जाएगा। चित्र 7 4 के पैनल (a) व पैनल (b) मे इसे स्पष्ट किया गया है।

चित्र 7 4 से यह स्पष्ट है कि यदि अधिक मात्रा में स्थिर साधनो को लेकर X_1 की सहायता स उत्पादन प्रारभ किया जाए तो प्रारम से स्थिर साधनो की अविकसित उत्पादन क्षमता के कारण उत्पादन का स्तर कम होगा, परतु एक सीमा के पश्चात् इसमें अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से वृद्धि होती जाएगी। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, स्थिर साधनों का स्तर बढ जाने पर कुल उत्पादन वक्र के साथ ही औसत व सीमात उत्पादन वक्रो मे भी विवर्तन होगा।

बहुधा उत्पादन फलन में ऐसे प्रौद्योगिक सुधारो (technological improvements) के कारण भी विवर्तन होता है जिनके कारण उत्पादन मे साधनो का पूर्वापेक्षा किफायत के साथ उपयोग सभव हो जाता है।

7 3 उत्पादन की तीन अवस्थाएं
(The Three Stages of Production)

हम अभी तक एक सामान्य उत्पादन-फलन (normal well-behaved production function) का ही अध्ययन कर रहे है जिसके अतर्गत उत्पादन के अन्य साधनो को स्थिर रखते हुए यदि केवल एक साधन, (X_1) की मात्रा मे वृद्धि की जाए तो कुल उत्पादन मे प्रथम तो बढती हुई दर से वृद्धि होगी, फिर यह घटती हुई दर से बढेगा, फिर एक स्तर तक पहुचने के पश्चात् इसमे कमी प्रारभ हो जाएगी। इसी प्रकार, औसत उत्पादन व सीमात उत्पादन भी प्रारभ मे बढने के पश्चात् फिर कम होने लगते हैं। हमने यह भी देखा कि एक सीमा के पश्चात् X_1 की मात्रा का प्रयोग करने पर हमें ऋणात्मक सीमात उत्पादन प्राप्त होगा, अर्थात् कुल उत्पादन मे कमी होने लगेगी। चित्र 7 3 मे इसका स्पष्टीकरण भी दिया जा चुका है।

अर्थशास्त्री औसत व सीमात उत्पादन की इन प्रवृत्तियो के आधार पर परिवर्तनशील साधन के प्रयोग को तीन अवस्थाओ मे विभाजित करते है, जिन्हे उत्पादन की तीन अवस्थाओ की सज्ञा दी जाती है। उत्पादन की ये तीन अवस्थाए निम्नांकित हैं—

(1) प्रथम अवस्था (Stage I)—उत्पादन की प्रथम अवस्था वह है जिसमें X_1 का उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग करने पर औसत उत्पादन मे वृद्धि होती है। जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, जब औसत उत्पादन बढता है तो सीमात उत्पादन इससे अधिक होता है। अस्तु, उत्पादन की प्रथम अवस्था मे $MP_{x1} > AP_{x1}$ की स्थिति रहती है।

(ii) **द्वितीय अवस्था** (Stage II)—यह अवस्था वहा से प्रारभ होती है जहा औसत उत्पादन अधिकतम होकर गिरने लगता है। जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, जब औसत उत्पादन मे कमी होती है तो सीमात उत्पादन इससे कम होता है। यह अवस्था उस सीमा तक चलती है जहा सीमान्त उत्पादन शून्य होता है। X_1 के जिस स्तर पर औसत उत्पादन अधिकतम होता है (यानी जहा $AP_{x1} = MP_{x1}$) उसे विस्तृत मार्जिन (extensive margin) कहा जाता है जबकि X_1 के उस स्तर को जहा $MP_{x1} = 0$ है, गहन मार्जिन (intensive margin) की सज्ञा दी जा सकती है। उत्पादन की द्वितीय अवस्था विस्तृत एव गहन मार्जिनो के मध्य की अवस्था है। [$O \leq MP_{x1} \geq AP_{x1}$]

(iii) **तृतीय अवस्था** (Stage III)—यह X_1 के प्रयोग की वह अवस्था है जिसमे कुल उत्पादन घटने लगता है यानी सीमात उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है।

उत्पादन की अवस्थाओ मे सगतिया
(Symmetry of the Stages of Production)

इस अनुभाग मे हम यह स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि यदि उत्पादन फलन रैखिक-समरूपी (linearly homogeneous) हो तो अल्पकाल मे भी जब परिवर्तनशील साधन (X_1) के उपयोग की प्रथम अवस्था (यानी वह अवस्था जिसमे AP_{x1} बढ रहा हो तथा $MP_{x1} > AP_{x1}$ हो) तो स्थिर साधन (X_2) का सीमात उत्पादन ऋणात्मक रहता है।

ऑयलर प्रमेय (Euler's Theorem) के अनुमार एक रैखिक-समरूपी उत्पादन फलन मे कुल उत्पादन वस्तुत सभी साधनो के सीमात उत्पादन एव इनकी मात्राओ के गुणनफल का योग होता है। अस्तु,

$$Q \equiv \frac{\partial Q}{\partial X_1} X_1 + \frac{\partial Q}{\partial X_2} . X_2 + \cdots \frac{\partial Q}{\partial X_n} . X_n \qquad \ldots(7.11)$$

समीकरण (7.11) मे $\frac{\partial Q}{\partial X_1}$ से $\frac{\partial Q}{\partial X_n}$ तक विभिन्न साधनो के सीमात उत्पादन के प्रतीक हैं जबकि $X_1, X_2, \ldots X_n$ प्रत्येक साधन की मात्रा को व्यक्त करते हैं। सुविधा के लिए हम उत्पादन के दो साधनो X_1 व X_2 को ही लेंगे। अस्तु,

$$Q = \frac{\partial Q}{\partial X_1} . X_1 + \frac{\partial Q}{\partial X_2} . X_2$$

अब X_1 को परिवर्तनशील एव X_2 को स्थिर साधन मानकर X_1 का औसत उत्पादन ज्ञात कीजिए—

$$\frac{Q}{X_1} = \frac{\partial Q}{\partial X_1} + \frac{\partial Q}{\partial X_2} . \frac{X_2}{X_1} \qquad \ldots(7.12)$$

हम इससे पूर्व यह पढ चुके हैं कि X_1 के प्रयोग की पहली अवस्था मे सीमात-

उत्पादन औसत उत्पादन से अधिक होता है $\left(\frac{\partial Q}{\partial X_1} > \frac{Q}{X_1} \right)$। इस दृष्टि से समीकरण (7.12) की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि समीकरण में प्रस्तुत $\frac{\partial Q}{\partial X_2} \cdot \frac{X_2}{X_1}$ ऋणात्मक हो। अस्तु जब X_1 की पहली अवस्था होती है तो स्थिर साधन यानी X_2 का सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक होगा।

इसी बात को हम तालिका 7.3 व 7.4 में बताने का प्रयत्न किया है। तालिका 7.3 में हमने X_1 के कुल उत्पादन, सीमान्त उत्पादन व औसत उत्पादन को पूर्व की भांति प्रस्तुत किया है, परन्तु अब हम X_2 का स्तर भूमि के 4 एकड़ के समान रखते हैं। इसके विपरीत X_1 को श्रम की दैनिक मात्रा के रूप में लिया गया है। चूंकि हमारी मान्यता के अनुसार उत्पादन फलन रैखिक समरूपी (linearly homogeneous) है इसलिए हम यह मान सकते हैं कि हमारे समक्ष एक खेत के दस टुकड़े हैं जिन पर एक साथ खेती हो रही है। पहला श्रमिक पहले खेत पर, दूसरा श्रमिक दूसरे खेत पर और इसी क्रम से दसवां श्रमिक दसवें खेत पर प्रयुक्त किया जाता है।

तालिका 7.3 व 7.4 में हमने परिवर्तनशील साधन (X_1) के कुल, सीमान्त एवं औसत उत्पादन को प्रस्तुत किया है जबकि तालिका 7.5 में स्थिर साधन (X_2) के कुल, सीमान्त व औसत उत्पादन को दिखाया गया है। वस्तुतः तालिका 7.5 में प्रस्तुत X_2 का कुल उत्पादन ऑयलर प्रमेय के आधार पर प्राप्त किया गया है जिसमें $AP_{x1} = TP_{x2}$ होता है। उदाहरण के लिए जब दस श्रमिक हैं तो एक श्रमिक औसतन 4/10 एकड़ भूमि पर काम करता है तथा 4.6 इकाई का उत्पादन करता है। इस आधार पर भूमि (X_2) का औसत उत्पादन 11.5 इकाई होगा।

तालिका 7.3

श्रम का कुल, औसत एवं सीमान्त उत्पादन

श्रमिकों की संख्या (X_1)	कुल उत्पादन (TP_{x1})	औसत उत्पादन (Q/X_1)	सीमान्त उत्पादन $\left(\frac{dQ}{dX_1}\right)$
1	2	3	4
1	4	4	—
2	10	5	6
3	18	6	8
4	28	7	10
5	35	7	7
6	41	6.8	6
7	46	6.6	5
8	48	6.0	2
9	48	5.3	0
10	46	4.6	−2

तालिका 7 4

श्रम (X_1) का कुल, औसत व सीमात उत्पादन (4 एकड के खेत पर)

भूमि का क्षेत्र (X_2)	श्रमिको की सख्या (X_1)	भूमि व श्रम का अनुपात (X_2/X_1)	श्रम का कुल उत्पादन (TP_{X1})	औसत उत्पादन (AP_{X1})	सीमात उत्पादन (MP_{X1})
1	2	3	4	5	
4	1	4/1	4	4	—
4	2	4/2	10	5	6
4	3	4/3	18	6	8
4	4	4/4	28	7	10
4	5	4/5	35	7	7
4	6	4/6	41	6 8	6
4	7	4/7	46	6 6	5
4	8	4/8	48	6 0	2
4	9	4/9	48	5 3	0
4	10	4/10	46	4 6	—2

तालिका 7 3 व 7 4 के अतिम तीन कॉलमो मे कोई अतर नही है। परतु इन दोनो मे एक प्रमुख अतर यह है कि तालिका 7 4 मे भूमि व श्रम का अनुपात प्रस्तुत किया गया है जिसके आधार पर हमने तालिका 7 5 मे भूमि (X_2) का कुल, औसत तथा सीमात उत्पादन प्रस्तुत किया है।

तालिका 7 5

भूमि के विभिन्न टुकडो पर श्रमिक का प्रयोग करने पर भूमि का कुल, औसत एव सीमात उत्पादन

भूमि का क्षत्र एकड मे (X_2)	श्रमिक की सख्या X_1	भूमि व श्रम का अनुपात X_2/X_1	भूमि का कुल उत्पादन TP_{X2}	औसत उत्पादन (AP_{X2})	सीमात उत्पादन (MP_{X2})
1	2	3	4	5	6
4/10	1	4/10	4 6	11 5	—
4/9	1	4/9	5 3	11 9	15 8
4/8	1	4/8	6 0	12 0	12 6
4/7	1	4/7	6 6	11 5	8 4
4/6	1	4/6	6 8	10 2	2 1
4/5	1	4/5	7	8 8	1 5
4/4	1	4/4	7	7 0	0
4/3	1	4/3	6	4 5	—3 0
4/2	1	4/2	5	2 5	—1 5
4/1	1	4/1	4	1 0	—0 5

उपरोक्त उदाहरण में जब 4 एकड़ भूमि (X_2) पर 10 श्रमिक कार्य करते हैं तो उनका कुल उत्पादन (TP_{X1}) 46 इकाई होता है। इस प्रकार प्रति श्रमिक 4/10 एकड़ भूमि पर कार्य किया जाता है। जब 4 एकड़ भूमि पर 10 श्रमिक कार्य करते हैं, उसकी तुलना में 4/10 एकड़ भूमि पर एक श्रमिक का कुल उत्पादन दसवां भाग होगा। इस प्रकार प्रति श्रमिक भूमि का कुल उत्पादन 4.6 इकाई होगा। इसी प्रकार जब 9 श्रमिक कार्य करते है तो 4/9 एकड़ भूमि पर एक श्रमिक का उत्पादन (AP_{X1}) 48/9 = 5.33 इकाई होगा जो भूमि का कुल उत्पादन (TP_{X2}) भी माना जा सकता है। इसी प्रकार गणना करते हुए हम यह निष्कर्ष दे सकते हैं कि श्रमिकों का औसत उत्पादन (AP_{X1}) भूमि के कुल उत्पादन (TP_{X2}) के समान हैं। तालिका 7.4 के कॉलम 5 एवं तालिका 7.5 के कॉलम 4 में इसीलिए कोई अंतर नहीं है क्योंकि एक रैखिक-समरूपी उत्पादन फलन में सदैव भूमि (X_2) का कुल उत्पादन श्रम (X_1) के औसत उत्पादन के समान होता है ($AP_{X1} \equiv TP_{X2}$)।

अब तालिका 7.5 के कॉलम 5 को देखिए। भूमि का औसत उत्पादन (AP_{X2}) ज्ञात करना एक अत्यंत सरल प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए यदि 4/10 एकड़ भूमि (कॉलम 1) पर भूमि का कुल उत्पादन 4.6 इकाई है तो एक एकड़ भूमि पर 11.5 इकाई का उत्पादन होगा। इसी प्रकार 4/9 एकड़ भूमि पर कुल उत्पादन 5.3 इकाई है, तो एक एकड़ भूमि पर उत्पादन 11.9 होगा।

भूमि पर प्राप्त सीमांत उत्पादन (MP_{X2}) का आकलन थोड़ा कठिन है। उदाहरण के लिए, तालिका 7.5 में जब भूमि का क्षेत्र 4/10 एकड़ से बदल कर 4/9 एकड़ होता है तो कुल उत्पादन 4.6 से बढ़ कर 5.3 इकाई होता है। इस प्रकार कुल उत्पादन में 0.7 की वृद्धि होती है ($\triangle TP_{X2} = 0.7$), जबकि भूमि की मात्रा में वृद्धि $\frac{4}{90}$ एकड़ की हुई है $\left(\triangle X_2 = \frac{4}{.90}\right)$ अस्तु भूमि का सीमांत उत्पादन 63/4 यानी 15.8 हुआ। पुनः जब भूमि का क्षेत्र 4/9 से बढ़कर 4/8 होने पर कुल उत्पादन 5.3 से बढ़ कर 6 इकाई होता है तो सीमांत उत्पादन ($\triangle TP_{X2}/\triangle X_2 = 0.7/.056$) या 12.6 इकाई होगा। इसी क्रम में तालिका 7.5 का कॉलम 6 प्राप्त किया गया है। फिर जब X_2 की मात्रा 4/4 से बढ़ कर 4/3 एकड़ होती है और X_2 का कुल उत्पादन 7 इकाई से घट कर 6 इकाई रह जाता है तो MP_{X2} गिर कर होकर—3 हो जाता है। इसका यह अर्थ है कि जब भूमि का अनुपात श्रम की तुलना में काफी अधिक होता है तो इसका सीमांत उत्पादन ऋणात्मक होता है। स्पष्टतः यह भूमि के उपयोग की तृतीय अवस्था मानी जा सकती है। पाठक यह स्वयं देख सकते हैं कि जब श्रम की प्रथम अवस्था रहती है तो भूमि का सीमांत उत्पादन ऋणात्मक रहता है, यानी भूमि का प्रयोग इसकी तृतीय अवस्था में होता है।

चित्र 7.5 में तालिका 7.4 व 7.5 में प्रस्तुत आंकड़ों का चित्रण किया गया है।
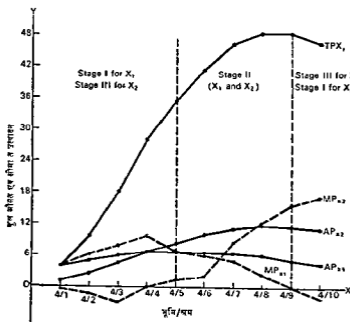
चित्र 7 5 X_1/X_2 का कुल, औसत एव सीमात उत्पादन

चित्र 7.5 मे श्रम के कुल, औसत व सीमात उत्पादन वक्रो के अतिरिक्त भूमि के औसत व सीमात उत्पादन वक्र भी प्रस्तुत किए गए हैं। पाठको से अनुरोध है कि चित्र 7 5 के क्षैतिज अक्ष को सावधानी के साथ देखें। वस्तुत यह अक्ष भूमि व श्रम के अनुपात (X_2 / X_1) को प्रस्तुत करता है। श्रम X_1 के प्रयोग मे वृद्धि के साथ-साथ इस अनुपात मे स्वभावत कमी होती जाती है।

चित्र 7 5 मे श्रम यानी X_1 से सबद्ध कुल उत्पादन, वक्र की आकृति एक सामान्य उत्पादन फलन (a normal well-behaved production function) के अनुरूप है, जिसके अनुसार परिवर्तनशील साधन (X_1) की मात्रा मे वृद्धि के साथ साथ कुल उत्पादन पहले बढती हुई दर से, और फिर घटती हुई से बढता है और अनत एक सीमा तक पहुचने के बाद इसमे कमी होने लगती है। ठीक इसी प्रकार औसत व सीमात उत्पादन वक्र भी सामान्य उत्पादन फलन के अनुरूप ही हैं।

चित्र 7 5 के अनुसार MP_{x2} उस समय तक ऋणात्मक रहता है जब तक कि X_2 / X_1 का अनुपात 4/4 नही हो जाता। इस स्तर पर भूमि का सीमात उत्पादन शून्य हो जाता है और तत्पश्चात् यह धनात्मक हो कर बढने लगता है। इसके विपरीत

भूमि का औसत उत्पादन (AP_{x2}) भूमि व श्रम का अनुपात 4/7 होने तक बढ़ता है और फिर घटने लगता है।

उत्पादन-अवस्थाओ मे सगतिया

तालिका 7 4 व 7 5 तथा चित्र 7 5 को देखने के बाद हम एक सरल चित्र द्वारा उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओ के बीच सगतियो का उल्लेख कर सकते हैं।
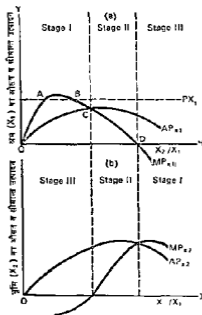
चित्र 7 6 उत्पादन अवस्थाओ मे संगतिया

उपरोक्त समस्त विवरण से हमें X_1 व X_2 के उपयोग से सम्बद्ध उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओ मे तीन प्रकार की सगतिया (svmmetry) दिखलाई देती है।

1. जब श्रम (X^1) का प्रयोग गहन मार्जिन (intensive margin) पर होता है, यानी जहा $MP_{x1}=0$ है ठीक उसी स्तर पर भूमि का औसत उत्पादन (AP_{x2}) अधिकतम है तथा इसका औसत उत्पादन सीमात उत्पादन के समान है ($AP_{x2}=MP_{x2}$)। अन्य शब्दो मे, श्रम के गहन मार्जिन की स्थिति भूमि के विस्तृत मार्जिन की स्थिति है (Intensive margin of labour is the extensive margin of land)।

2 जब श्रम का औसत उत्पादन बढ़ता है यानी श्रम का प्रयोग इसकी प्रथम अवस्था म होता है, तो चित्र 7 6 के पैनल (b) के अनुसार भूमि का सीमात उत्पादन ऋणात्मक होता है। समीकरण (7 12) के ऑइलर प्रमेय के अनुसार श्रम की प्रथम अवस्था म श्रम का सीमान्त उत्पादन इसके औसत उत्पादन से अधिक रहना चाहिए, परतु यह तभी सभव है जब कि भूमि का सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो। इस प्रकार श्रम के प्रयोग की प्रथम अवस्था वस्तुत भूमि के प्रयोग की तृतीय अवस्था होती है।

3 जब श्रम का प्रयोग इसके विस्तृत मार्जिन (extensive margin) पर होता है तथा $AP_{x1}=MP_{x1}$ की स्थिति होती है तो ठीक इसी स्तर पर भूमि का सीमात उत्पादन शून्य होता है ($MP_{x2}=0$)। इस प्रकार जब श्रम का प्रयोग विस्तृत मार्जिन पर होता है तो वह भूमि के प्रयोग के गहन मार्जिन की स्थिति होती है (Extensive margin of labour is the intensive margin of land)।

फर्म द्वितीय अवस्था म ही साधन का प्रयोग क्यों करती है ?
(Why does a firm use a factor in its second stage ?)

यह सिद्ध करने स पूर्व कि फर्म उत्पादन की द्वितीय अवस्था म ही परिवर्तनशील साधन (X_1) का प्रयोग क्यों करती है, हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि प्रत्येक फर्म का सर्वोपरि उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना होता है। फर्म को X_1 का प्रयोग करने पर जो लाभ होता है वस्तुत वह इससे प्राप्त कुल उत्पादन का इस पर किए गए व्यय का अतिरेक मात्र है। अस्तु,

$$\pi = Q - P_{x1} X_1 \qquad ..(7\ 13)$$

समीकरण (7 13) म π (पाई) लाभ का परिणाम है, Q कुल उत्पादन या $f(X_1)$ है, P_{x1} इस साधन की कीमत (भौतिक रूप म) है, तथा X_1 परिवर्तनशील साधन की मात्रा है। अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु लाभ फलन का प्रथम अवकलन इस प्रकार होगा—

$$\frac{d\pi}{dX_1} = \frac{dQ}{dX_1} - Px_1 = 0$$

$$\text{अथवा} \quad \frac{dQ}{dX_1} = Px_1 \qquad \dots \quad (7\ 14)$$

समीकरण (7 14) अधिकतम लाभ प्राप्ति हेतु आवश्यक अथवा प्रथम श्रम की शर्त (necessary or first order condition) है जिसके अनुसार X_1 का प्रयोग करके अधिकतम लाभ उस स्तर पर प्राप्त होगा जहा $\frac{dQ}{dX_1}$ यानी X_1 का सीमान्त उत्पादन इसकी कीमत (Px_1) के समान हो।

परन्तु इसी के साथ द्वितीय क्रम की अथवा पर्याप्त शर्त (second order or sufficient condition) भी पूरी होनी चाहिए, क्योंकि जैसा कि हम आगे देखेंगे,

केवल प्रथम क्रम की शर्त पूरी होने पर उपयोग करने से हमे हानि भी हो सकती है। अस्तु,

$$\frac{d^2\pi}{dX_1^2}=\frac{d^2Q}{dX_1^2}-\frac{dPx_1}{dX_1}<O$$

$$\text{अथवा} \quad \frac{d^2Q}{dX_1^2}<\frac{dPx_1}{dX_1} \qquad ..(7\,15)$$

समीकरण (7 15) का अभिप्राय यह है कि सीमात उत्पादन वक्र का ढलान साधन की कीमत रेखा के ढलान से कम होना चाहिए। चूंकि साधन की कीमत स्थिर (चित्र 7 7 मे Px_1) मानी जाती है, अत कीमत रेखा का ढलान शून्य है। स्पष्ट है, द्वितीय क्रम की शर्त तभी पूरी होगी जब X_1 के इष्टतम स्तर पर सीमात उत्पादन वक्र का ढलान कीमत रेखा के ढलान (जो शून्य है) से कम हो, यानी ऋणात्मक हो। सक्षेप मे, द्वितीय क्रम की शर्त X_1 के उस स्तर पर पूरी होगी जहा साधन का सीमात उत्पादन वक्र कीमत रेखा को ऊपर से काटे।

उपरोक्त शर्तों की विवेचना के पश्चात् अब हम यह देखेंगे कि फर्म द्वारा क्योंकर उत्पादन की द्वितीय अवस्था में ही साधन का उपयोग किया जाता है। अर्थशास्त्रियो द्वारा इसके लिए निम्न कारण प्रस्तुत किए जाते हैं—

1 पहले X_1 के प्रयोग की तृतीय अवस्था (Stage III) लीजिए। कोई भी विवेकशील फर्म इस अवस्था में X_1 का प्रयोग नही करना चाहेगा, क्योंकि इस अवस्था मे साधन का सीमात उत्पादन ऋणात्मक होता है, एव जैसे-जैसे साधन का उपयोग करते हैं वैसे-वैसे कुल उत्पादन मे कमी होती जाती है। ऐसा होने का कारण यह है कि स्थिर साधनो की तुलना मे परिवर्तनशील साधनो की मात्रा काफी अधिक हो जाती है।

2 अब X_1 की प्रथम अवस्था लीजिए। समीकरण (7 14) एव (7 15) के अनुसार चित्र 7 6 मे बिंदु B पर ही फर्म X_1 का प्रयोग करके अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकती है, जहा साधन का सीमात उत्पादन इसकी कीमत के समान है $\left(\frac{dQ}{dX_1}=Px_1\right)$, और साथ ही सीमात उत्पादन वक्र साधन की कीमत रेखा को ऊपर से काटता है $\left(\frac{d^2Q}{dX_1^2}<\frac{dPx_1}{dX_1}\right)$। परतु वस्तुत बिंदु B पर X_1 का उपयोग करके फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त नही कर सकती। जैसा कि हम पहले भी बतला चुके हैं, उत्पादन की प्रथम अवस्था मे सीमात उत्पादन औसत उत्पादन से अधिक होता है जबकि इस अवस्था मे कही भी साधन की कीमत सीमात उत्पादन के समान होने पर निम्न स्थिति बनेगी—

$$Px_1=\frac{dQ}{dX_1}>\frac{Q}{X_1}$$

अर्थात् X_1 का औसत उत्पादन इसकी कीमत से कम होगा और इस प्रकार

प्रथम अवस्था में कहीं भी साधन का उपयोग करने पर फर्म को हानि ही होगी।

3 यह भी हम पहले देख चुके हैं कि जब X_1 की प्रथम अवस्था होती है तो वह X_2 की तृतीय अवस्था होती है। अन्य शब्दों में, X_1 यानी श्रम की प्रथम अवस्था में भूमि का सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि इसी अवस्था में साधन का उपयोग न रोक कर यदि इसका उपयोग बढ़ाया जाए तो X_1 का औसत उत्पादन बढ़ता जाएगा।

अस्तु, परिवर्तनशील साधन का उपयोग करके अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु निम्न शर्त पूरी होनी आवश्यक है—

$$0 < \frac{dQ}{dX_1} = Px_1 < \frac{Q}{X_1} \qquad . . (7\ 16)$$

यदि X_1 मुफ्त में मिलता हो ($Px_1 = 0$) तब इसकी अधिकतम सीमा वहां होगी जहां $\frac{dQ}{dX_1} = 0$ हो, यानी जहां X_1 का गहन मार्जिन हो। इस साधन की न्यूनतम मात्रा वह होगी जहां X_1 का विस्तृत मार्जिन होता है, यानी जहां X_1 का सीमान्त तथा औसत उत्पादन समान हों, परन्तु Px_1 इनसे अधिक न हो $\left(\frac{dQ}{dX_1} = Px_1 = \frac{Q}{X_1}\right)$। संक्षेप में, विस्तृत तथा गहन मार्जिन (चित्र 7 6 में C तथा D बिंदु) के बीच जहां भी $Px_1 = \frac{dQ}{dX_1}$ की स्थिति होगी वहीं X_1 के उपयोग का इष्टतम स्तर होगा।

7 4 रैखिक समरूपी उत्पादन फलन
(Linearly Homogeneous Production Functions)

एक समरूपी उत्पादन फलन वह है जिसमें उत्पादन के सभी साधनों को समान अनुपात में बढ़ाया या घटाया जाता है। अन्य शब्दों में, ऐसे उत्पादन फलन में उत्पादन के सभी साधनों का अनुपात वही रहता है। सामान्य तौर पर "कोई भी फलन r डिग्री का समरूपी फलन तब माना जाता है जब इसमें विद्यमान सभी स्वतंत्र चरों (independent variables), यानी उत्पादन के सभी साधनों को निर्दिष्ट अनुपात K से बढ़ाने पर उत्पादन के स्तर में K^r से वृद्धि हो जाती है।" उदाहरण के लिए, यदि कोई समरूपी फलन की डिग्री 2 है तथा इसमें विद्यमान सभी स्वतंत्र चरों को 3 गुना बढ़ा दिया जाए तो उत्पादन K^r यानी 3^2 अथवा 9 गुना हो जाएगा।

एक प्रथम डिग्री के समरूपी उत्पादन फलन में (*homogeneous production fuction of degree one*), जिसे रैखिक समरूपी उत्पादन फलन के नाम से भी जाना जाता है, फलन की डिग्री 1 होती है और इसलिए जिस अनुपात में उत्पादन के साधन बढ़ाए जाते हैं उसी अनुपात में उत्पादन भी बढ़ता है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, एक रैखिक-समरूपी उत्पादन फलन या लॉग-लाइनियर उत्पादन

फलन में जब उत्पादन के सभी साधनों की मात्रा में समान अनुपात से वृद्धि की जाती है तो उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है। इसीलिए रैखिक समरूपी उत्पादन फलन के अन्तर्गत फर्म को पैमाने का समता-प्रतिफल वाला उत्पादन प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, हमारा उत्पादन फलन निम्न प्रकार का है—

$$Q = f(X_1, X_2)$$

तथा हम यह मान लेते हैं कि यह उत्पादन फलन रैखिक समरूपी है। अब कल्पना कीजिए, उत्पादन के पैमाने को λ से बढ़ा दिया जाता है, यानी X_1 व X_2 दोनों को इसी अनुपात में बढ़ा दिया जाता है—

$$Q = f(\lambda X_1, \lambda X_2)$$
$$= \lambda f(X_1, X_2)$$
$$\therefore \lambda Q = \lambda f(X_1, X_2)$$

एक कॉब-डगलस उत्पादन फलन को लीजिए—

$$Q = AX_1^{\alpha} X_2^{1-\alpha}$$

अब इसमें X_1 तथा X_2 को λ से बढ़ा दीजिए—

$$Q = A(\lambda X_1)^{\alpha} (\lambda X_2)^{1-\alpha}$$
$$= A\lambda^{\alpha}\lambda^{1-\alpha} X_1^{\alpha} X_2^{1-\alpha}$$
$$= A\lambda[X_1^{\alpha} X_2^{1-\alpha}]$$
$$= \lambda[AX_1^{\alpha} X_2^{1-\alpha}]$$
$$\lambda Q = \lambda[AX_1^{\alpha} X_1^{1-\alpha}]$$

इस प्रकार एक रैखिक समरूपी उत्पादन फलन में उत्पादन के साधन जिस अनुपात में बढ़ाए जाते हैं उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है।

रैखिक समरूपी उत्पादन फलन की विशेषताएं (Properties of A Linearly Homogeneous Production Function)

(1) जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, एक रैखिक-समरूपी उत्पादन फलन में जिस अनुपात में साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है उसी अनुपात में आश्रित चर यानी उत्पादन की मात्रा में भी परिवर्तन होता है। इसे चित्र 7.7 में विस्तार से समझाया गया है।

चित्र 7.7 एक रैखिक समरूपी उत्पादन फलन की उत्पादन सतह को व्यक्त करता है। मान लीजिए हम इसमें एक बिंदु R चुनते हैं तो इस बिंदु के सभी आनुपातिक निर्देशांकों की स्थिति भी इसी सतह पर होगी। यदि $Q = f(X_1, X_2)$ हो, तो (Q, X_1, X_2), $(\frac{1}{3}Q, \frac{1}{3}X_1, \frac{1}{3}X_2)$ तथा $(2Q, 2X_1, 2X_2)$ तीनों ही बिंदु इसी सतह पर विद्यमान होंगे। यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि चूंकि ऐसे उत्पादन फलन में X_1 व X_2 का Q से आनुपातिक संबंध रहता है, अतएव ये सभी बिंदु एक सरल रेखा पर स्थित होंगे।
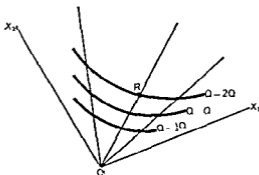
चित्र 7 7 रैखिक समरूपी उत्पादन फलन की उत्पादन-सतह

(ii) ऐसे उत्पादन फलन मे औसत व सीमान्त उत्पादनो के मूल्य उस अनुपात पर निर्भर करते हैं जिनमें कि इन साधनो का प्रयोग किया जाता है, भले ही इन साधनो की मात्रा कितनी ही क्यो न हो। कॉब-डग्लस फलन का ही उदाहरण लीजिए :

$$Q = AX_1^{\alpha} X_2^{1-\alpha}$$

X_1 का औसत उत्पादन $\left(\frac{Q}{X_1}\right)$ व सीमात उत्पादन इस प्रकार ज्ञात करेंगे :

$$\frac{Q}{X_1} = AX_1^{\alpha-1} X_2^{1-\alpha}$$

$$= A\left(\frac{X_2}{X_1}\right)^{1-\alpha} \qquad ...(7\ 17)$$

तथा $$\frac{\partial Q}{\partial X_1} = \alpha AX_1^{\alpha-1} X_2^{1-\alpha}$$

$$= \alpha A\left(\frac{X_2}{X_1}\right)^{1-\alpha} \qquad ...(7.18)$$

इस प्रकार औसत व सीमान्त उत्पादनो की मात्रा एक रैखिक समरूपी उत्पादन फलन मे इस बात पर निर्भर करती है कि X_2 व X_1 का प्रारंभिक अनुपात कितना रखा जाता है, क्योंकि फिर अंत तक यही अनुपात बना रहना आवश्यक है।

(iii) यदि अल्पकाल मे X_2 को स्थिर रखकर X_1 की मात्रा मे वृद्धि की जाए तो समीकरणो (7 17) व (7 18) के अनुसार X_1 के औसत व सीमान्त उत्पादन मे कमी होती जाएगी। अन्य शब्दो मे, कॉब-डग्लस अथवा रैखिक समरूपी उत्पादन फलन मे यदि एक साधन को अल्पकाल मे स्थिर रखकर दूसरे साधन की मात्रा बढ़ाई जाए तो औसत व सीमात उत्पादन का ह्रास होगा, यानी फर्म उत्पादन की द्वितीय अवस्था मे कार्य करती रहेगी। परन्तु चूंकि α, A या X_2 मे से कोई भी

प्रावल शून्य नहीं होता, ऐसे उत्पादन फलन में X_1 का सीमांत उत्पादन कभी भी शून्य नहीं होगा।

(iv) समीकरणों (7 7) व (7 18) से एक और विशेषता का पता चलता है, और वह यह है कि चूंकि एक रैखिक समरूपी उत्पादन फलन में α, A तथा X_2 / X_1 के मूल्य स्थिर रहते हैं, अत साधनों की मात्रा को कितने ही गुना क्यों न बढ़ा दिया जाए, X_1 के औसत व सीमांत उत्पादन के स्तर वही बने रहेंगे। चित्र 7 9 इस विशेषता को स्पष्ट करता है।
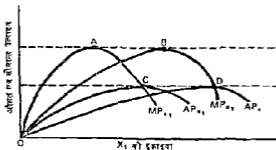
चित्र 7.8 एक रैखिक-समरूपी उत्पादन फलन के औसत व सीमांत उत्पादन

चित्र 7 8 में यह मान लिया गया है कि X_1 के साथ ही X_2 में भी आनुपातिक वृद्धि की जा रही है। MPx_1 तथा APx_1 वक्र X_1 व X_2 के प्रारंभिक स्तर से सबद्ध सीमांत व औसत उत्पादन को व्यक्त करते हैं जबकि MPx_1 तथा APx_1 इस साधन के साथ ही X_2 की बढ़ी हुई मात्राओं से सबद्ध सीमांत व औसत उत्पादन हैं। परंतु जैसा कि चित्र 7 8 से स्पष्ट है, साधनों की मात्रा बढ़ने पर भी औसत व सीमांत उत्पादन के स्तर यथावत् रहते हैं।

(v) ऑइलर प्रमेय (Euler's Theorem)—जैसा कि पहले भी बतलाया जा चुका है, ऑइलर प्रमेय के अनुसार उत्पादन की मात्रा (Q) विभिन्न साधनों के सीमांत उत्पादनों एवं उनकी मात्राओं के गुणनफल का योग होता है। अस्तु,

$$Q = \frac{\partial Q}{\partial X_1} X_1 + \frac{\partial Q}{\partial X_1} X_2 + \ldots + \frac{\partial Q}{\partial X_n} X_n \quad .(7\ 19)$$

इस प्रमेय की विशेषता यह है कि इसमें X_1, X_2, ..X_n की मात्रा जितनी बढ़ाई जाएगी, Q में भी उतनी ही वृद्धि होगी क्योंकि प्रत्येक साधन का सीमांत उत्पादन वही रहता है। यदि प्रत्येक साधन की कीमत उसके सीमांत उत्पादन के समान रखी जाए $\left(\frac{\partial Q}{\partial X_1} = Px_1 \right)$, तो समीकरण (7.19) का दायां पक्ष सभी साधनों को चुकाई गई कुल राशि (total cost of production) प्रस्तुत करेगा

जबकि बाया पक्ष (Q) उत्पादन की मात्रा का प्रतीक होगा । चूंकि उत्पादन की मात्र सभी साधनो के मध्य वितरित कर दी जाती है, ऑइलर प्रमेय के अनुसार उत्पादक प्राप्त समूची उत्पादन मात्रा को खर्च कर देता है (Product gets exhausted और न तो उसे उत्पादन मे कोई अतिरेक प्राप्त होता है और न ही घाटा हो पात है ।

(vi) **उत्पादन के साधनो का उत्पादन में हिस्सा यथावत् रहता है**—जैसे कि पूर्व मे बताया गया था, कॉब-डग्लस उत्पादन फलन जैसे सभी रैखिक समरूपी उत्पाद फलनो मे α तथा $(1-\alpha)$ दोनो साधनो की लोच के प्रतीक हैं । α को निम्न रूप भी व्यक्त किया जा सकता है—

$$\alpha = \frac{\text{उत्पादन मे प्रतिशत परिवर्तन}}{X_1 \text{ (श्रम) की मात्रा मे प्रतिशत परिवर्तन}}$$

अथवा $\alpha = \frac{dQ}{dX_1} \cdot \frac{X_1}{Q}$ अर्थात् $\frac{MPx_1}{APx_1} = X_1$ की उत्पादन लो

इसी प्रकार $(1-\alpha) = \frac{MPx_2}{APx_2} = X_2$ की उत्पादन लोच चूंकि प्रति

योगी परिस्थितियो मे फर्म उस स्तर पर साधन (X_1) का प्रयोग करता है ज $Px_1 = MPx_1$ की प्रथम क्रम की शर्तें पूरी होती हो । इस दृष्टि से हम X_1 व उत्पादन लोच को निम्न रूप मे भी व्यक्त कर सकते हैं—

$$\alpha = Px_1 / APx_1$$

$$Px_1 = \alpha APx_1 \text{ जबकि } APx_1 = \frac{Q}{X_1} \text{ है ।}$$

इसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि

$$Px_2 = (1-\alpha) APx_2 .$$

चूंकि रैखिक समरूपी उत्पादन फलन मे $\alpha, (1-\alpha)$, Px_2 , Px_2 , APx_1 एवं APx_2 सभी के मूल्य यथावत् रहते हैं, इसीलिए X_1 तथा X_2 का उत्पादन हिस्सा $\left(\frac{Px_1 \; X_1}{Q} \text{ एवं } \frac{Px_2 \; .X_2}{Q}\right)$ भी यथावत् रहता है ।

(vii) **रैखिक समरूपी उत्पादन फलन में साधनों के कुल औसत तथा सीमा उत्पादन में संबंध**—जैसा कि ऊपर बताया गया है, एक रैखिक समरूपी उत्पाद फलन मे विभिन्न साधनो के कुल, सीमांत तथा औसत उत्पादन के मध्य प्रत्यक्ष संबं रहता है । ऑइलर प्रमेय (समीकरण 7.19) मे केवल दो साधनो X_1 व X_2 व लेते हुए

$$Q \equiv \frac{\partial Q}{\partial X_1} \cdot X_1 + \frac{\partial Q}{\partial X_2} . X_2 \qquad \ldots (7.20$$

यदि $\frac{\partial Q}{\partial X_2} = 0$ रखा जाए तो

$$Q \equiv \frac{\partial Q}{\partial x_1} \quad X_1$$

$$\text{तथा } APx_2 \text{ यानी } \frac{Q}{X_1} = \frac{\partial Q}{\partial X_1} \qquad \ldots (7.21)$$

अर्थात् जब X_2 का सीमांत उत्पादन शून्य होता है तो X_1 का औसत उत्पादन इसके सीमांत उत्पादन के समान रहता है (चित्र 7.6 मे बिंदु C देखें) इसी आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि जब X_1 का सीमांत उत्पादन शून्य होता है तब X_2 के सीमांत तथा औसत-उत्पादन मे समानता रहती है।

अब हम यह सिद्ध करने का प्रयास करेंगे कि एक रैखिक समरूपी उत्पादन फलन मे X_1 का औसत उत्पादन X_2 के कुल उत्पादन के समान होता है अथवा X_2 का औसत उत्पादन X_1 के कुल उत्पादन के समान होता है। मान लीजिए $MPx_1 = 0$ है तो समीकरण (7.20) को निम्न रूप मे भी रखा जा सकता है—

$$Q = \frac{\partial Q}{\partial X_2} \cdot X_2 \text{ जबकि } \frac{\partial Q}{\partial X_2} \cdot X_2 = TPx_2 \qquad \ldots (7.22)$$

$$APx_1 \text{ या } \frac{Q}{X_1} = \frac{\partial Q}{\partial X_2} \cdot \frac{X_2}{X_1}$$

यदि $X_1 = 1$ हो तो

$$APx_1 = TPx_2 \qquad \ldots (7.23)$$

इस प्रकार रैखिक समरूपी उत्पादन फलन मे एक ऐसा स्तर अवश्य होता है जब $APx_1 = TPx_2$ होता है इसी प्रकार $APx_2 = TPx_1$ की भी स्थिति इस उत्पादन फलन की एक प्रमुख विशेषता है।

7.5 साधन के प्रतिफलों एवं पैमाने के प्रतिफलों से संबद्ध नियमो का अंतर

(Laws of Returns and Returns to Scale Distinguished)

यदि उत्पादन फलन मे एक साधन ही परिवर्तनशील हो अथवा उत्पादन के साधनो मे समानुपातिक परिवर्तन न हो, तो जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, प्रारंभ मे उत्पादन बढ़ती हुई दर पर बढ़ता है, फिर घटती हुई दर पर बढ़ता हुए एक सीमा तक पहुंचने के बाद कुल उत्पादन मे कमी होने लगती है। यह प्रवृत्ति जिसे ह्रासमान प्रतिफलों का नियम (Law of Diminishing Returns) कहा जाता है, इस मान्यता पर आधारित है कि उत्पादन के साधनों का अनुपात परिवर्तनशील है। जैसे-जैसे अन्य साधनो को स्थिर रखकर एक या दो साधनों की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है, इनके कारण उत्पादन मे हुए परिवर्तनों को ही प्रतिफल के नियमो के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

ये नियम वर्द्धमान प्रतिफल के नियम, समता प्रतिफल के नियम एवं ह्रासमान प्रतिफल के नियम के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। परन्तु जैसा कि अध्याय के अनुभाग 7.2 में बतलाया गया था, ये सभी नियम अल्पकाल में ही क्रियाशील रहते हैं। दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं और इसलिए दीर्घकाल में हम साधन के प्रतिफल को न देखकर पैमाने के प्रतिफल (return to scale) की जांच करते हैं। अस्तु साधन के प्रतिफल अल्पकालीन अवधारणाएं हैं जबकि पैमाने के प्रतिफलों का संबंध दीर्घकाल से होता है।

साधन की लोच एवं साधन का प्रतिफल

कॉब डगलस उत्पादन फलन का विवरण देते समय हमने बतलाया था कि किसी भी उत्पादन के साधन की लोच (उस संदर्भ में X_1 की उत्पादन लोच a तथा X_2 की उत्पादन लोच $1-a$ थी) उस साधन के सीमांत तथा औसत उत्पादन का अनुपात है। अस्तु, यदि X_1 को परिवर्तनशील साधन माना जाए तो इसकी लोच इस प्रकार ज्ञात की जाएगी—

$$e_{x_1} = \frac{dQ}{dX_1} \Big/ \frac{Q}{X_1} \text{ या } \frac{MPx_1}{APx_1} \quad (7.24)$$

चूंकि सामान्य उत्पादन फलन की प्रथम अवस्था में औसत उत्पादन फलन बढ़ता है तथा सीमांत उत्पादन औसत उत्पादन से अधिक रहता है ($MPx_1 > APx_1$), उत्पादन की प्रथम अवस्था में $e_{x_1} > 1$ होगी। संक्षेप में यदि साधन की लोच e_{x_1} इकाई से अधिक हो तो यह साधन के वर्द्धमान प्रतिफल का प्रतीक होगा (*If $e_{x_1} > 1$ it would indicate increasing returns*)।

इसके विपरीत उत्पादन की द्वितीय अवस्था में औसत उत्पादन घटता है तथा सीमान्त उत्पादन इससे कम होता है ($MPx_1 > APx_1$)। इस कारण इस अवस्था में साधन की लोच इकाई से कम होगी ($e_{x_1} < 1$)। यह साधन के ह्रासमान प्रतिफल (diminishing returns) का प्रतीक होगा।

इसी प्रकार यदि साधन में समता मान प्रतिफल प्राप्त होता हो तो इसका औसत उत्पादन स्थिर होगा और इस कारण सीमांत व औसत उत्पादन समान होंगे। ऐसी स्थिति में $e_{x_1} = 1$ होगी। इस प्रकार समता मान प्रतिफल के अंतर्गत साधन की उत्पादन लोच इकाई के समान होती है। एक सामान्य उत्पादन फलन में केवल उस स्तर पर $e_{x_1} = 1$ होगी जहां औसत उत्पादन अधिकतम होता है (क्योंकि इस स्तर पर—जिसे विस्तृत मार्जिन भी कहा जाता है औसत उत्पादन एवं सीमांत उत्पादन समान होते हैं)।

पैमाने के प्रतिफल एवं फलन-गुणांक
(Returns to Scale and Function Coefficient)

जहां साधन की लोच किसी परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल को व्यक्त करती

है, वही फलन गुणांक यह स्पष्ट करता है कि सभी साधनों को समान अनुपात में बढ़ाने, यानी पैमाने में वृद्धि करने पर उत्पादन में आनुपातिक वृद्धि होती है या नहीं। फलन गुणांक वस्तुतः किसी समरूपी उत्पादन फलन (homogeneous production function) की डिग्री का दूसरा नाम है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार यह उत्पादन के सभी साधनों की लोच का योग है। अस्तु,

$$r = \varrho x_1 + \varrho x_2 + \varrho x_3 + \cdots + \varrho x_n \qquad \ldots(7.25)$$

यदि $r > 1$ हो तो इसका अभिप्राय यह होगा कि फर्म जिस अनुपात में सभी साधनों में वृद्धि करती है उससे कहीं अधिक अनुपात में उत्पादन बढ़ जाता है। यह पैमाने का वर्द्धमान प्रतिफल है। इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि $r = 1$ होने पर पैमाने का समतामान प्रतिफल होगा जबकि फलन-गुणांक या $r > 1$ होने पर फर्म पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत कार्य कर रही होगी। तालिका 7.6 द्वारा साधन के प्रतिफल एवं पैमाने के प्रतिफल का यह अंतर स्पष्ट किया गया है।

तालिका 7.6
साधन के प्रतिफल एवं पैमाने के प्रतिफल का अंतर

साधन की उत्पादन लोच	साधन का प्रतिफल	फलन गुणांक या सभी साधनों की उत्पादन लोच का योग	पैमाने का प्रतिफल
$\varrho x_1 = 1$	समतामान	$r = 1$	समतामान
$\varrho x_1 > 1$	वर्द्धमान	$r > 1$	वर्द्धमान
$\varrho x_1 < 1$	ह्रासमान	$r < 1$	ह्रासमान

अब तीन साधनों से युक्त एक उत्पादन फलन लीजिए—

$$Q = f(X_1, X_2, X_3)$$

चूँकि पैमाने में परिवर्तन हेतु तीनों साधनों को एक ही अनुपात में बदलना होता है, हम इस अनुपात को $\Delta\lambda/\lambda$ एवं उत्पादन में परिवर्तन को $\Delta Q/Q$ द्वारा व्यक्त कर सकते हैं—

$$r = \frac{\Delta Q}{Q} - \frac{\Delta\lambda}{\lambda} \qquad \ldots(7.26)$$

हम यह भी जानते हैं कि उत्पादन में परिवर्तन ΔQ वस्तुतः X_1, X_2 व X_3 की मात्राओं में हुए परिवर्तनों का ही परिणाम है—

$$\Delta Q = \frac{\Delta Q}{\Delta X_1} \cdot \Delta X_1 + \frac{\Delta Q}{\Delta X_2} \Delta X_2 + \frac{\Delta Q}{\Delta X_3} \cdot \Delta X_3 \qquad \ldots(7.27)$$

समीकरण (7 27) को निम्न रूप मे भी लिखा जा सकता है—

$$\Delta Q = X_1 \cdot \frac{\Delta Q}{\Delta X_1} \cdot \frac{\Delta X_1}{X_1} + X_2 \cdot \frac{\Delta Q}{\Delta X_2} \cdot \frac{\Delta X_2}{X_2} + X_3 \frac{\Delta Q}{\Delta X_3} \cdot \frac{\Delta X_3}{X_3} \quad ...(7.28)$$

अब समीकरण (7 28) मे दोनो ओर Q से भाग दीजिए—

$$\frac{\Delta Q}{Q} = \frac{X_1}{Q} \quad \frac{\Delta Q}{\Delta X_1} \cdot \frac{\Delta X_1}{X_1} + \frac{X_2}{Q} \quad \frac{\Delta Q}{\Delta X_2} \cdot \frac{\Delta X_2}{\Delta X_2} + \frac{X_3}{Q} \cdot \frac{\Delta Q}{\Delta X_3} \quad \frac{\Delta X_3}{X_3} \quad ...(7\ 29)$$

चूकि X_1, X_2 व X_3 सभी मे समानुपाती $(\Delta\lambda/\lambda)$ परिवर्तन होते हैं, अत. हम यह भी कह सकते हैं कि

$$\frac{\Delta X_1}{X_1} = \frac{\Delta X_2}{X_2} = \frac{\Delta X_3}{X_3} = \frac{\Delta\lambda}{\lambda}$$

तथा फिर समीकरण (7 29) को निम्न नए रूप मे लिख सक्ते हैं —

$$\frac{\Delta Q}{Q} = \left[\frac{\Delta Q}{\Delta X_1} \cdot \frac{X_1}{Q} + \frac{\Delta Q}{\Delta X_3} \cdot \frac{X_2}{Q} + \frac{\Delta Q}{\Delta X_3} \cdot \frac{X_3}{Q}\right] \cdot \frac{\Delta\lambda}{\lambda} \quad ...(7.30)$$

अथवा
$$\frac{\Delta Q}{Q} \cdot \frac{\lambda}{\Delta\lambda} = \frac{\Delta Q}{\Delta X_1} \cdot \frac{X_1}{Q} + \frac{\Delta Q}{\Delta X_2} \cdot \frac{X_2}{Q} + \frac{\Delta Q}{\Delta X_3} \cdot \frac{X_3}{Q} \quad ..(7\ 31)$$

समीकरण (7 31) मे दाईं ओर प्रस्तुत तीनो पद वस्तुन. X_1, X_2 व X_3 की उत्पादन लोच (e_{X_1}, e_{X_2}, e_{X_3}) को व्यक्त करते हैं। जैसा कि पूर्व मे बताया गया था, उत्पादन के साधनो की लोच का योग फलन गुणाक (r) है, तथा यह बतलाता है कि फर्म पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के अतर्गत कार्य कर रही है, पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल के अतर्गत कार्य कर रही है अथवा पैमाने के समतामान प्रतिफल के अतर्गत।

8

समोत्पाद वक्र एवं उत्पादन सिद्धांत
(ISOQUANTS AND THE THEORY OF PRODUCTION)

प्रस्तावना इससे पूर्व के अध्याय मे हमने उत्पादन एव इसकी आदाओ (inputs) के साधनो के मध्य विद्यमान अभियांत्रिक अथवा भौतिक सबधो की व्याख्या की थी। हमने यह देखा था कि एक साधन की मात्रा मे, अथवा पैमाने मे, परिवर्तन होने पर उत्पादन की मात्रा मे किस प्रकार परिवर्तन होता है।

इस अध्याय मे हम एक अपेक्षाकृत अधिक सामान्य उत्पादन फलन का विवरण पढ़ेंगे। हम यह मान लेते हैं कि उत्पादन के दो साधन—क्रमशः श्रम एव पूजी—हैं तथा दोनो ही साधनो के मध्य स्थानापन्नता का सबध है। यदि उत्पादन फलन का निम्न स्वरूप हो—

$$Q=f\ (L, K)$$

तो श्रम (L) व पूजी (K) मे से किसी एक को स्थिर रखकर दूसरे साधन मे वृद्धि की जाए, या दोनो ही साधनो की मात्रा मे वृद्धि की जाए तो उत्पादन की मात्रा (Q) मे भी वृद्धि होगी क्योंकि हमारा यह उत्पादन फलन एकदिष्ट (monotonic) है। परतु यह भी सभव है कि फर्म उसी उत्पादन की मात्रा को श्रम व पूंजी के विभिन्न सयोगो की सहायता से प्राप्त करे। उदाहरण के लिए, फर्म थोडी सी मात्रा मे श्रम एव पर्याप्त मात्रा मे पूजी का प्रयोग कर सकती है, अथवा उतनी ही मात्रा मे Q प्राप्त करने हेतु पूजी मे कमी करके श्रम की मात्रा मे वृद्धि कर सकती है।

I उत्पादन तालिका एवं समोत्पाद वक्र
(Production Table and Isoquants)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, फर्म किसी वस्तु की निर्दिष्ट मात्रा का उत्पादन करने हेतु श्रम एव पूजी के अनेक सयोगो को प्रयुक्त कर सकता है। पिछले अध्याय मे प्रस्तुत तालिका 7 1 को देखिए। वस्तु 24 इकाई प्राप्त करने हेतु फर्म अनेको सयोगो मे से तीन सयोग प्रयोग मे ले सकती है, जो इस प्रकार हो सकते हैं—

$9X_1+3X_2$

$4X_1+4X_2$

$2X_1+6X_2$

एक प्रमुख बात जो हमे यहा दिखाई देती है वह यह है कि फर्म जब X_2 का अधिक प्रयोग करना चाहती है तो उसे X_1 की मात्रा मे कमी करनी होती है। उपरोक्त तीन सयोगो के अतिरिक्त और भी अनेक सयोग X_1 एव X_2 के ऐसे हो सकते हैं जिन का प्रयोग करके फर्म 24 इकाइयो का उत्पादन कर सकती है। इनमे से फर्म केवल उस सयोग का प्रयोग करेगी जिसकी लागत न्यूनतम है।

अस्तु यद्यपि X_1 एव X_2 दोनो ही परिवर्तनशील साधन हैं, तथापि उत्पादन की निर्दिष्ट मात्रा का उत्पादन करते समय यदि एक साधन की मात्रा को बढाना हो तो हमे दूसरे साधन की मात्रा मे कमी करनी होगी। पाठको को याद होगा कि यह स्थिति क्रमवाचक उपयोगिता विश्लेषण (ordinal utility analysis) के समान ही है जिसमें उपयोगिता के निर्दिष्ट स्तर को प्राप्त करने हेतु यदि हम X की मात्रा बढ़ाते है तो हमे Y की मात्रा मे कमी करनी होगी।

उत्पादन-सतह (*The Production Surface*)

चूकि हमारे उत्पादन फलन मे एक आश्रित चर (Q) है तथा दो स्वतंत्र चर (X_1 एव X_2) हैं, और चूकि उत्पादन के निर्दिष्ट स्तर हेतु X_1 को बढाने हेतु X_2 की मात्रा मे कमी करनी होती है, इस कारण उत्पादन-सतह वाली (dimensional space) होती है।

चित्र 8 1 मे श्रम व पूजी के विभिन्न सयोगो के साथ उत्पादन फलन को प्रस्तुत किया गया है। उत्पादन-सतह इस चित्र मे OLQK है जो चित्र 4 1 मे प्रस्तुत उपयोगिता सतह या उपयोगिता-धरातल OX_3ZY_3 के ही अनुरूप है।
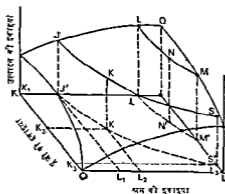
चित्र 8 1 उत्पादन सतह

चित्र 8 1 मे OL तथा OK अक्षो पर क्रमश श्रम व पूजी की इकाइयो का एव शीर्ष अक्ष पर उत्पादन के स्तर का माप लिया गया है। परतु उत्पादन मे वृद्धि

तभी सभव है जब श्रम पूजी अथवा दोनो ही साधनो की मात्रा मे वृद्धि हो। परतु जैसा कि पिछले अध्याय मे बतलाया गया था दोनो साधनो की मात्रा मे वृद्धि केवल दीर्घकाल मे ही हो सकती है।

यदि उत्पादन की मात्रा यथावत रखते हुए श्रम की मात्रा मे वृद्धि करनी हो तो इसके लिए फर्म को पूजी की मात्रा मे कमी करनी होगी। चित्र 8 1 मे जब फर्म J से K तथा फिर K से S पर आती है तो वस्तुत फर्म ऐसा ही कर रही है। पूजी की मात्रा K_1 से घटाकर K_2 और फिर K_3 तक की जाती है जब कि श्रम की मात्रा L_1 से बढाकर L_2 व फिर L_3 की जा रही है। चित्र 8 1 मे इस प्रकार J K S एक ऐसा वक्र है जिसके सभी बिंदुओ पर उत्पादन की मात्रा वही है परतु श्रम की मात्रा बढती जा रही है जबकि पूजी की मात्रा कम होती जा रही है। अस्तु उत्पादन के निर्दिष्ट स्तर को प्राप्त करने हेतु OL_1+OK_1 OL_2+OK_2 तथा OL_3+OK_3 ये तीन सयोग है। परतु यदि उत्पादन का स्तर बढाना हो तो पूजी अथवा श्रम अथवा दोनो ही साधनो की मात्रा बढाना होगा। चित्र 8 1 मे इस बढे हुए उत्पादन के स्तर को L N M वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

अब हम एक समोत्पाद वक्र अथवा सम उत्पादन वक्र की परिभाषा दे सकते है। यह श्रम व पूजी के विभिन्न सयोगो का वह बिंदु पथ (locus) है जिस पर उत्पादन का स्तर समान रहता है। चित्र 8 1 मे J K S अथवा L N M ऐसे ही दो समोत्पाद वक्र है जिनमे से L N M पर से J K S की अपेक्षा उत्पादन की अधिक मात्रा प्राप्त होती है परतु एक समोत्पाद वक्र के सभी बिंदुओ पर उत्पादन की मात्रा वही रहती है। ये समोत्पाद वक्र अनवरत (continuous) है क्योकि श्रम व पूजी को हम पूणत विभाजनशील साधन मानते है।

चूकि एक समोत्पाद वक्र पर उत्पादन का स्तर वही रहता है हम समोत्पाद वक्र के समीकरण को निम्न रूप मे व्यक्त कर सकते है—

$$dQ=\frac{\partial Q}{\partial L}\ dL+\frac{\partial Q}{\partial K}\ dK=0 \qquad (8\ 1)$$

क्योकि समोत्पाद वक्र के एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर जाने पर कुल उत्पादन मे कोई परिवतन नहीं होता ($dQ=0$)। श्रम की मात्रा मे वृद्धि के कारण कुल उत्पादन मे जो वृद्धि होती है ठीक उतनी ही कमी कुल उत्पादन मे पूजी की मात्रा मे कमी के कारण हो जाने से कुल उत्पादन पूर्ववत रहता है।

8 2 समोत्पाद मानचित्र
(The Isoquant Map)

चित्र 8 2 मे अनेक समोत्पाद वक्र प्रस्तुत किए गए है। इसे हम समोत्पाद-मानचित्र की सज्ञा देते है। इस मानचित्र मे प्रत्येक समोत्पाद वक्र एक भिन्न उत्पादन स्तर को व्यक्त करता है। यहाँ यह स्पष्टीकरण देना उचित होगा कि दो समोत्पाद वक्र भिन्न भिन्न उत्पादन स्तरो को व्यक्त करते है परतु इन वक्रो के मध्य की दूरी

का उत्पादन-स्तरों के अंतर से कोई संबंध नहीं है। हम केवल यह ध्यान रखना चाहिए कि मूल बिंदु से जैसे-जैसे किसी वक्र की दूरी अधिक होती है, वैसे वैसे उत्पादन का स्तर बढ़ता जाता है। उदाहरण के लिए, चित्र 8.2 में प्रस्तुत चार समोत्पाद वक्रों (जो अनगिनत समोत्पाद वक्रों में से थोड़े से वक्र हैं) में से I_0 पर उत्पादन का स्तर सबसे कम है, I_1 पर उससे अधिक I_2 पर I_1 से अधिक तथा I_3 पर सबसे अधिक उत्पादन होता है ($I^0<I^1<I^2<I^3$), परंतु प्रत्येक वक्र पर दूसरे वक्र की अपेक्षा कितना अधिक या कितना कम उत्पादन है यह हम अग्रिम रूप में दो वक्रों की दूरी को देखकर नहीं कह सकते। अधिक से अधिक हम यही कह सकते हैं कि श्रम व पूंजी
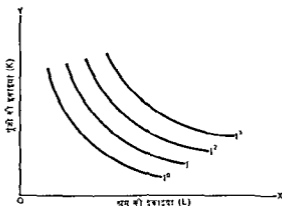
चित्र 8.2 समोत्पाद मानचित्र

के विभिन्न संयोगों में I^1 पर I^0 की अपेक्षा अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है तथा I^1 पर श्रम की, या पूंजी की अथवा दोनों की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है।

वस्तुतः किसी समोत्पाद वक्र का ऋणात्मक ढलान ही इस बात को स्पष्ट करता है कि श्रम व पूंजी के विभिन्न संयोगों की सहायता से उत्पादन की निर्दिष्ट मात्रा प्राप्त की जाती है। जैसा कि ऊपर बताया गया था, समोत्पाद वक्रों की चित्र 8.2 में प्रस्तुत सहज आकृति केवल यही स्पष्ट करती है कि श्रम व पूंजी को छोटी से छोटी इकाई के रूप में विभाजित किया जा सकता है। यह मान्यता विश्लेषण की सहजता के लिए ही ली गई है क्योंकि बहुधा व्यवहार में श्रम या पूंजी का अत्यंत छोटी इकाई तक विभाजनशील होना संभव नहीं हो पाता।

समोत्पाद वक्र की विशेषताएं (Properties of an Isoquant)

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि समोत्पाद वक्र अनधिमान या वक्रों के अनुरूप ही होते हैं। दोनों में केवल यही अंतर है कि जहां अनधिमान

वक्र दो वस्तुओं के उन संयोगों को प्रदर्शित करते हैं जिनका उपभोग करने से उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है, वही समोत्पाद वक्र द्वारा दो साधनों के उन संयोगों को प्रदर्शित किया जाता है जिनकी सहायता से उत्पादन का निर्दिष्ट स्तर प्राप्त किया जा सकता है। इसके बावजूद भी दोनों में एक प्रमुख अंतर है : जहां अनधिमान वक्र पर उपभोक्ता को प्राप्य संतुष्टि का कोई संख्यावाचक (cardinal) माप नहीं लिया जा सकता, हम किसी समोत्पाद वक्र पर प्राप्त उत्पादन का निश्चित माप लेने में समर्थ हैं।

समोत्पाद वक्रों की प्रथम विशेषता यह है कि इसका ढलान ऋणात्मक होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि एक साधन की मात्रा बढ़ाने हेतु हमें दूसरे साधन की मात्रा में कमी करनी होती है और केवल उसी स्थिति में उत्पादन का स्तर यथावत् रह सकता है। यदि समोत्पाद वक्र क्षैतिज (horizontal), शीर्ष (vertical) या धनात्मक ढलानयुक्त (positively sloped) हो तो इसका यह अर्थ है कि कम से कम एक अथवा दोनों साधनों की मात्रा में वृद्धि हो रही है, और ऐसी स्थिति में उत्पादन का स्तर भी बढ़ना चाहिए।

समोत्पाद वक्रों की दूसरी विशेषता यह है कि यह मूल बिंदु से उन्नतोदर होता है। इसका कारण यह है कि जैसे-जैसे श्रम की मात्रा में वृद्धि की जाती है, वैसे-वैसे अतिरिक्त श्रम के बदले पूंजी की त्यागी जाने वाली मात्रा में कमी होती जाती है। इसे सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर (marginal rate of technical substitution) कहा जाता है। समोत्पाद वक्र की उन्नतोदरता (convexity) का अर्थ यह है कि जैसे-जैसे श्रम की मात्रा में वृद्धि की जाती है, वैसे-वैसे सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर में कमी होती जाती है।

इसी बात को और अधिक स्पष्ट करने हेतु समीकरण (8.1) को पुनः देखिए—

$$dQ = \frac{\partial Q}{\partial L} \cdot dL + \frac{\partial Q}{\partial K} \cdot dK = 0$$

अथवा $$\frac{\partial Q}{\partial L} \cdot dL = -dK \frac{\partial Q}{\partial K}$$

$$\therefore \quad \frac{\frac{\partial Q}{\partial L}}{\frac{\partial Q}{\partial K}} = \frac{-dK}{dL} \text{ या } \frac{MP_L}{MP_K} = \frac{-dK}{dL} \qquad \ldots (8.2)$$

समीकरण (8.2) सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर $\left(\frac{-dK}{-dL}\right)$ यानी उस दर को प्रस्तुत करता है जिस पर श्रम की अतिरिक्त इकाई हेतु पूंजी का परित्याग किया जाता है। यह दर वस्तुतः समोत्पाद वक्र के ढलान को व्यक्त करती है। समीकरण

(8 2) से यह भी स्पष्ट होता है कि सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादन का अनुपात $\left(\frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K}\right)$ के समान भी है।

समोत्पाद वक्रो की मूल बिंदु में उन्नतोदरता का अर्थ यह है कि इस वक्र का ढलान कम होता जाता है। इसका कारण यह है कि जैसे जैसे हम श्रम का उपयोग बढाते हैं, वैसे-वैसे अतिरिक्त श्रम के बदले उत्तरोत्तर पूंजी की कम मात्रा का परित्याग किया जाएगा (चित्र 8 3)।
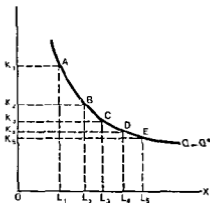
चित्र 8 3 समोत्पाद वक्र की उन्नतोदरता

चित्र 8 3 मे जब फर्म A से B बिंदु पर आती है तो वह श्रम की L_1L_2 इकाइयो के बदले K_1K_2 इकाइयो का परित्याग करती है $\left(-\frac{dK}{dL}=\frac{K_1K_2}{L_1L_2}\right)$। फिर B से C पर जाने के हेतु वह L_2L_3 इकाई अतिरिक्त श्रम के लिए K_2K_3 इकाई पूंजी का त्याग करता है। आप देख सकते हैं कि $\frac{K_2K_3}{L_2L_3}<\frac{K_1K_2}{L_1L_2}$, अर्थात् सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर मे कमी हुई है। इसी प्रकार यह भी देखा जा सकता है कि—

$$\frac{K_4K_5}{L_4L_5}<\frac{K_3K_4}{L_3L_4}<\frac{K_2K_3}{L_2L_3}$$

यानी उत्तरोत्तर सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर मे कमी होती जाती है।

समीकरण (8 2) के अनुसार सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर तथा श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादन मे समानता होती है। समोत्पाद वक्र की उन्नतोदरता का अर्थ यह भी है कि *जैसे-जैसे श्रम का उपयोग बढाया जाता है (तथा पूंजी की मात्रा मे कमी की जाती है)* वैसे-वैसे श्रम की सीमांत उत्पादन $\partial Q/\partial L$ कम होता है (जबकि पूंजी के सीमांत उत्पादन $\partial Q/\partial K$ मे वृद्धि होती है) और इसके फलस्वरूप दोनो के सीमांत उत्पादन का अनुपात घटता जाता है। यहा यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि

श्रम व पूजी दोनो का ही उपयोग उत्पादन की द्वितीय अवस्था मे किया जाता है जिस मे दोनो साधनों के औसत व सीमांत उत्पादन ह्रासमान होते हैं।

समोत्पाद वक्रो की तीसरी विशेषता यह है कि अनधिमान वक्रो की भांति दो समोत्पाद वक्र भी परस्पर काट नही सकते। यदि ऐसा हो जाता है तो इसका यह अर्थ होगा कि दो वक्रों पर भी उत्पादन का स्तर वही रहता है जो वस्तुत समोत्पाद वक्र की मूल धारणा के ही प्रतिकूल स्थिति होगी। समोत्पाद वक्रो की चौथी एव अंतिम मान्यता यह है कि ऊंचा समोत्पाद वक्र निचले वक्र की अपेक्षा उत्पादन के ऊंचे स्तर को व्यक्त करता है। इसका कारण यह है कि ऊंचे समोत्पाद वक्र पर श्रम या पूजी अथवा दोनो ही साधनो की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है।

2 स्थिर अनुपात वाले उत्पादन फलन एवं समोत्पाद वक्र
(Constant Proportions Production Function and Isoquants)

अनेक स्थितियो मे निर्दिष्ट मात्रा मे किसी वस्तु का उत्पादन करने हेतु फर्म के समक्ष श्रम व पूजी का प्रयोग करने हेतु एक ही विकल्प विद्यमान हो सकता है। यदि फर्म उत्पादन के स्तर को बढाना चाहती है तो उस श्रम व पूजी दोनों की मात्रा को एक ही अनुपात मे बढाना होगा। साधारण तौर पर इस स्थिर अनुपात वाली उत्पादन प्रक्रिया का नाम दिया जाता है एव इस प्रक्रिया से सम्बद्ध समोत्पाद वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर न होकर अंग्रेजी के अक्षर L के आकार के होते हैं। चित्र 8 4 मे
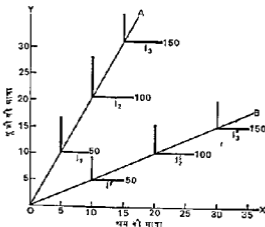
चित्र 8 4 स्थिर अनुपात वाली उत्पादन प्रक्रियाए एव समोत्पाद वक्र

फर्म के समक्ष दो संभावित उत्पादन प्रक्रिया दर्शायी गई हैं। जिनमे से OA प्रक्रिया पूजी प्रधान तथा OB श्रम प्रधान प्रक्रिया है। परतु हमने यहा यह मान्यता ली है कि प्रत्येक प्रक्रिया के अतर्गत श्रम व पूजी का अनुपात यथावत् रहता है।

चित्र 8 4 मे सभी समोत्पाद वक्र L आकृति के हैं। पहले OA को लीजिए। इस सरल रेखा पर फर्म पूंजी-प्रधान तकनीक का प्रयोग करती है तथा श्रम व पूजी दोनो का अनुपात वही रखते हुए उत्पादन की मात्रा 50, 100 या 150 तक बढाती है जिसके लिए फर्म को दोनो ही साधनो को समान अनुपात मे बढाना होता है। इसके विपरीत OB रेखा उत्पादन की श्रम-प्रधान तकनीक की प्रतीक है। जहा OA पर पूजी-श्रम का अनुपात 2 1 है, OB पर पूजी श्रम का अनुपात 1 : 2 है तथा ये अनुपात यथावत् रहते हैं, भले ही उत्पादन की मात्रा कितनी ही क्यो न हो।

इस विशेष स्थिति मे फर्म किसी एक साधन को बढाकर या दोनो ही साधनो को भिन्न-भिन्न अनुपातो मे बढाकर उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि नही कर सकती। उदाहरण के लिए OA रेखा पर समोत्पाद वक्र I_1 को लीजिए जिस पर श्रम की 5 व पूजी की 10 इकाइयों का प्रयोग होता है तथा 50 इकाई वस्तु का उत्पादन किया जाता है। यदि पूजी की मात्रा वही रखते हुए श्रम की मात्रा 8 कर दी जाए तब भी उत्पादन का स्तर 50 ही रहेगा। श्रम की मात्रा बढाने पर भी उत्पादन वही रहने का कारण यह है कि श्रम का सीमात उत्पादन 5 इकाई से आगे शून्य हो जाता है। इसी प्रकार OA व OB पर स्थित अन्य समोत्पाद वक्रो पर भी निर्दिष्ट मात्रा मे ही श्रम व पूजी का प्रयोग करना आवश्यक है अन्यथा दोनो मे स जिस भी साधन की मात्रा मे वृद्धि की जाएगी उसका सीमात उत्पादन शून्य हो जाएगा। यह सब दोनो साधनो के लिए स्थिर अनुपातों के कारण होता है, और इसी कारण इस स्थिति में समोत्पाद वक्र L आकार के होते हैं।

एक अन्य विशेष स्थिति मे समोत्पाद वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त सरल रेखा के रूप मे हो सकता है। ऐसी दशा मे श्रम व पूजी पूर्ण रूप से स्थानापन्न साधन (perfect substitutes) होते हैं तथा किसी भी एक साधन का प्रयोग करके उत्पादन की निर्दिष्ट मात्रा प्राप्त करना सभव है।

8 3 रिज रेखाएं तथा उत्पादन का आर्थिक (इष्टतम) क्षेत्र
(Ridge Lines and Economic Region of Production)

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा को यथावत् रखते हुए पूजी की मात्रा कम करते हुए श्रम की मात्रा को बढाया जाता है, वैसे-वैसे पूजी की तुलना मे श्रम का सीमात उत्पादन $\left(\frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K}\right)$, यानी समोत्पाद वक्र के ढलान मे कमी होती जाती है। बहुधा समोत्पाद वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर (convex) होते हैं। परतु यदि समोत्पाद-वक्र एक सीमा के बाद ऊपर दाईं ओर मुड जाए यानी उनका ढलान ऋणात्मक न रह कर धनात्मक हो जाए तो क्या होगा? प्रस्तुत अनुभाग मे हमने इसी प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत किया है।

चित्र 8 5 मे एक समोत्पाद-मानचित्र (isoquant map) प्रस्तुत किया गया है। इसमें OK रेखा पर A, B व C बिंदुओ मे आगे तथा OL रेखा पर D, E व F

से आगे समोत्पाद वक्रों का ढलान धनात्मक हो जाता है। पहले I_1 पर बिंदु A को देखिए। इस स्तर पर $O\bar{K}_1$ मात्रा में पूंजी का प्रयोग किया जाता है। परंतु A पर
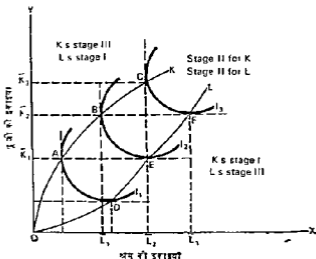
चित्र 8.5 रिज रेखाएं एवं उत्पादन का आर्थिक क्षेत्र

समोत्पाद वक्र का ढलान अनंत $\left(\frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K} = \infty\right)$ है जो तभी संभव है जब पूंजी का सीमांत उत्पादन शून्य हो। इसके बाद भी यदि पूंजी का उपयोग जारी रखा जाए तो समोत्पाद वक्र का ढलान धनात्मक हो जाता है यानी पूंजी का सीमांत उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। इसी प्रकार समोत्पाद वक्रों I_2 व I_3 पर B व C बिंदुओं पर पूंजी का सीमांत उत्पादन शून्य हो जाता है (क्योंकि समोत्पाद वक्रों का ढलान अनंत है) एवं इसके आगे पूंजी का उपयोग बढ़ाने पर पूंजी का सीमांत उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। यदि A, B व C बिंदुओं को मिला दिया जाए तो हमें OK के अनुरूप एक रेखा प्राप्त होती है जिस पर पूंजी का सीमांत उत्पादन शून्य है तथा जिसके ऊपर पूंजी का सीमांत उत्पादन ऋणात्मक है। इस रेखा को रिज रेखा कहा जाता है। संक्षेप में रिज रेखा OK पूंजी के गहन मार्जिन वाले स्तरों को व्यक्त करती है जिससे आगे पूंजी के प्रयोग की तृतीय अवस्था प्रारंभ हो जाती है।

इसी प्रकार की रिज रेखा OL है। पहले समोत्पाद वक्र I_1 पर बिंदु D देखिए। इस स्तर पर श्रम की मात्रा $O\bar{L}_1$ है परंतु इस स्तर के उत्पादन हेतु श्रम का यह अधिकतम स्तर है। क्योंकि समोत्पाद वक्र I_1 का ढलान $\left(\frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K}\right)$ यहां शून्य है, अर्थात् इस स्तर पर श्रम का सीमांत उत्पादन शून्य है। इसी प्रकार E व F बिंदुओं पर भी श्रम का सीमांत उत्पादन शून्य है। इन बिंदुओं को मिलाने पर हमें

OL रिज रेखा प्राप्त होती है जो श्रम के उन स्तरो को प्रदर्शित करती है जिन पर श्रम का सीमात उत्पादन शून्य है । इन स्तरो ($O\bar{L}_1$, $O\bar{L}_2$ व $O_3\bar{L}$) से आगे श्रम का प्रयोग करने पर इस साधन का सीमात उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है । सक्षेप मे, OL रिज रेखा श्रम के प्रयोग के गहन मार्जिन के स्तरो को व्यक्त करती है जबकि OK रिज रेखा पूजी के प्रयोग के गहन मार्जिन के स्तरो को मिलाती है ।

जैसाकि अध्याय 7 मे बतलाया गया था, कोई भी फर्म किसी साधन का प्रयोग कदापि उत्पादन की तृतीय अवस्था मे नही करेगी । अन्य शब्दो मे, OK व OL रिज रेखाओ के बाहर क्रमश पूजी व श्रम का प्रयोग कदापि नही किया जाएगा। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि रिज रेखाओ के बीच मे स्थित क्षेत्र ही श्रम व पूजी के प्रयोग हेतु इष्टतम अथवा आर्थिक क्षेत्र (economic region) है जहा श्रम व पूजी दोनो ही साधनो के सीमात उत्पादन धनात्मक रहते हैं यानी यह दोनो ही साधनो के प्रयोग की द्वितीय अवस्था है। साधनो का प्रयोग इसीलिए रिज रेखाओ के बीच की रेंज मे किया जाएगा । यह उल्लखनीय है कि रिज रेखाओ के मध्य समोत्पाद वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर (convex) रहते हैं तथा इनका ढलान $\left(\frac{\partial Q}{\partial L} / \frac{\partial Q}{\partial K}\right)$ कम होता रहता है। सक्षेप मे, दोनो रिज रेखाओ के मध्य समोत्पाद वक्र का ढलान निम्न प्रकार का होना चाहिए—

$$O < \frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K} < \infty \qquad (8\,4)$$

समीकरण (8 4) यही बताता है कि समोत्पाद वक्रो का वही भाग उत्पादन के साधनो के प्रयोग हेतु आर्थिक क्षेत्र माना जाता है जिसके बीच श्रम व पूजी दोनो ही का सीमात उत्पादन धनात्मक हो । ऐसा तभी होता है जब समोत्पाद वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर हो ।

8 4 साधनो का इष्टतम सयोग
(Optimum Combination of Inputs)

इससे पूर्व के अनुभाग मे यह बतलाया गया था कि समोत्पाद वक्रो का वही भाग पूजी व श्रम के उपयोग हेतु आर्थिक क्षेत्र माना जाता है जिसमे दोनो साधनो का सीमात उत्पादन धनात्मक हो (समीकरण 8 4) । चित्र 8 5 मे हम देखते हैं कि फर्म उत्पादन के तीन स्तरो को प्राप्त करने हेतु फर्म के समक्ष तीन आर्थिक रेंज विद्यमान हैं - I_0 पर AD, I_1 पर BE तथा I_2 पर CF। अब मान लीजिए फर्म को I_0 के अनुरूप उत्पादन करना है । A से D के मध्य फर्म श्रम व पूजी का कौन सा सयोग प्रयुक्त करेगी ताकि उत्पादन लागत न्यूनतम हो ? इसी प्रकार B से E के मध्य श्रम व पूजी का न्यूनतम लागत वाला यानी इष्टतम सयोग कौन सा होगा ? अथवा C व F के मध्य श्रम व पूजी का न्यूनतम लागत वाला सयोग कौन सा होगा ?

वस्तुत दो साधनो के इष्टतम अथवा न्यूनतम लागत वाले सयोग की पहचान करने हेतु हमें अनधिमान वक्रो की भाति दो बातो की आवश्यकता होती है—प्रथम, फर्म का उद्देश्य अथवा लक्ष्य फलन (objective function) एव द्वितीय वह सीमा (constraint) जिसके भीतर फर्म साधनो का प्रयोग करके फर्म लागत न्यूनतम करना चाहती है अथवा उत्पादन अधिकतम करना चाहती है। पाठक आगे देखेंगे कि श्रम व पूजी का अधिकतम उत्पादन या न्यूनतम लागत वाला (इष्टतम) सयोग एक ही होता है।[1]

1 सीमाबद्ध उत्पादन-अधिकतमकरण एव साधनो का इष्टतम सयोग (Constrained Output Maximization and Optimum Combination of Inputs)

अध्याय 4 मे यह बतलाया गया था कि अनधिमान वक्रो (indifference curves) के सदर्भ मे कोई भी उपभोक्ता X व Y के उस सयोग से अधिकतम सतुष्टि प्राप्त करता है जहा उसकी बजट रेखा किसी अनधिमान वक्र को स्पर्श करती हो $\left(\frac{MU_x}{MU_y}=\frac{P_x}{P_y}\right)$ अर्थात् जहा बजट रेखा का ढलान अनधिमान वक्र के ढलान के समान हो। इस स्तर पर उपभोक्ता को X व Y का इष्टतम सयोग प्राप्त होता है। ठीक इसी प्रकार एक फर्म निर्दिष्ट लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने हेतु श्रम व पूजी का इष्टतम सयोग प्रयुक्त करेगी। मान लीजिए फर्म का उद्देश्य फलन (objective function) व लागत सीमा इस प्रकार है—

अधिकतम कीजिए $\quad Q=f(K, L) \quad (8\ 5)$

जिसकी लागत सीमा है $\quad C^{\circ}=rK+wL \quad (8\ 6)$

समीकरण (8 5) मे Q उत्पादन का स्तर है जिसे फर्म अधिकतम करना चाहती है जबकि K, L क्रमश पूजी व श्रम की मात्राए हैं। समीकरण (8 6) मे C° फर्म को उपलब्ध कुल राशि (लागत) है जिसे वह श्रम व पूजी को प्राप्त करने हेतु आवटित करेगी। r तथा w क्रमश पूजी की ब्याज दर व श्रम की मजदूरी दर के प्रतीक हैं।

यदि फर्म चाहे तो उपलब्ध समूची राशि को पूजी की इकाइयो के लिए व्यय कर सकती है, अथवा केवल श्रम पर ही यह राशि व्यय की जा सकती है। परतु हमे वस्तुत श्रम व पूजी दोनो के ऐसे सयोग पर यह राशि व्यय करनी है जिससे उत्पादन की अधिकतम मात्रा प्राप्त हो सके। इसके लिए समीकरण (8 5) व समीकरण (8 6) को लैग्राजीयन फलन के रूप मे प्रस्तुत करते हैं—

$$S=f(K, L)+\mu(C^{\circ}-rK-wL)$$

1 विस्तृत विवरण के लिए देखिए Henderson, James M and Quandt Richard E, *Micro-economic Theory A Mathematical Approach*, Second International Student Edition (1971) pp 63 68

इस फलन में μ या "म्यू" एक अनिर्धारित लैग्रान्जीयन गुणक है तथा इसका मूल्य धनात्मक ($\mu \neq 0$) माना गया है। यदि हम अब S के आंशिक अवकलज (partial derivative) K, L व μ के सदर्भ में लें तथा प्रत्येक साधन से अधिकतम उत्पादन प्राप्ति हेतु इस आंशिक अवकलज को शून्य के बराबर रखें तो निम्न स्थितियां प्राप्त होंगी—

$$\left.\begin{aligned} \frac{\partial S}{\partial K} &= f' K - \mu r = 0 \text{ (a)} \\ \frac{\partial S}{\partial L} &= f' L - \mu w = 0 \text{ (b)} \\ \frac{\partial S}{\partial \mu} &= C^{\circ} - r K - w L = 0 \text{ (c)} \end{aligned}\right\} \quad (8.7)$$

समीकरण (8.7) में f' K व f'L क्रमश पूंजी व श्रम के सीमान्त उत्पादन हैं। इस समीकरण के भाग (a) व (b) से यही स्पष्ट होता है कि फर्म पूंजी व श्रम दोनों का पृथक् पृथक् रूप से इस प्रकार प्रयोग करती है कि इनसे अधिकतम उत्पादन प्राप्त हो सके। समीकरण (8.7) का भाग (c) बताता है कि लागत-सीमा विद्यमान है। यदि हम समीकरण (8.7) के भाग (a) व (b) को पुन लिखें तो हमें निम्न स्थिति प्राप्त होगी[2]—

$$\frac{f' L}{f' K} = \frac{w}{r} \text{ or } \frac{MP_L}{MP_K} = \frac{w}{r} \quad (8.8)$$

समीकरण (8.8) से यह सिद्ध होता है कि फर्म सीमाबद्ध उत्पादन अधिकतमकरण हेतु श्रम व पूंजी का प्रयोग उस स्तर पर करेगी जहां समोत्पाद वक्र का ढलान $\left(\frac{MP_L}{PM_K}\right)$ इसकी लागत रेखा के ढलान $\left(\frac{w}{r}\right)$ के समान हो। लागत रेखा को (Iso-cost line) भी कहते हैं क्योंकि श्रम व पूंजी की विभिन्न इकाइयों के प्रयोग हेतु फर्म के पास उपलब्ध लागत-राशि स्थिर है। समीकरण (8.6) को पुन लिखकर हम इसका ढलान ज्ञात कर सकते हैं—

$$C^{\circ} - w L = r K$$

$$\frac{C^{\circ}}{r} - \frac{w}{r} L = K \quad (8.9)$$

समीकरण (8.9) से हम सम-लागत रेखा का समीकरण प्राप्त होता है जो एक सरल रेखा (straight line) समीकरण के अनुरूप है। प्रस्तुत समीकरण में सम-लागत

2. इसका द्वितीय क्रम का शर्त इस प्रकार होगी—

$$\frac{\partial^2 Q}{\partial K^2} + 2\left(\frac{\partial^2 Q}{\partial K \partial L}\right)\left(-\frac{w}{r}\right) + \frac{\partial^2 Q}{\partial L^2}\left(-\frac{w}{r}\right)^2 < 0$$

इसका यह अर्थ है कि इष्टतम स्तर के बायें फर्म की लागत रेखा का ढलान $\left(\frac{w}{r}\right)$ समोत्पाद वक्र के ढलान $\left(\frac{MP_L}{MP_K}\right)$ से अधिक होना चाहिए।

रेखा का धनात्मक स्थिर मूल्य $\frac{C^{\circ}}{r}$ है जो बताता है कि यदि समस्त लागत को पूंजी पर व्यय किया जाए (L=0) तो फर्म $\frac{C^{\circ}}{r}$ के समान पूंजी की मात्रा प्रयोग मे लेगी। इस रेखा का ढलान $\frac{w}{r}$ यानी ब्याज व मजदूरी की दरो का अनुपात है। चित्र 8.6 मे हमने लागत-सीमा तथा समोत्पाद-मानचित्र प्रस्तुत करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि श्रम व पूंजी के इष्टतम सयोग का प्रयोग किस स्तर पर होगा।
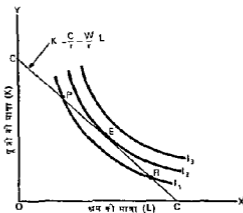
चित्र 8.6 श्रम व पूंजी के इष्टतम उपयोग द्वारा अधिकतम उत्पादन

चित्र 8.6 मे फर्म को उपलब्ध कुल राशि CC रेखा द्वारा व्यक्त की गई है जो वस्तुत फर्म की लागत-सीमा या सम लागत रेखा है। इस लागत रेखा का ढलान ब्याज की दर व मजदूरी-दर का अनुपात $\left(\frac{w}{r}\right)$ है। फर्म यही चाहती है कि दी हुई लागत सीमा मे वह अधिकतम उत्पादन प्राप्त करें। परंतु समोत्पाद वक्र I_3 का उत्पादन-स्तर यह प्राप्त नही कर सकती क्योकि यह उसकी पहुच से बाहर है। इससे ऊपर स्थित समोत्पाद वक्र भी फर्म की पहुच मे बाहर होगे। चित्र 8 6 से यह स्पष्ट है कि फर्म को उपलब्ध लागत राशि के अनुरूप वह या तो P बिंदु पर साधनो का उपयोग करेगी, या R बिंदु पर अथवा E पर। परतु P या R बिंदु साधनो के प्रयोग हेतु इष्टतम बिंदु नही हैं क्योकि

$$P \text{ पर } \frac{MP_L}{MP_K} > \frac{w}{r}$$

यानी P पर श्रम का सापेक्ष सीमात उत्पादन साधनो की कीमत-अनुपात से अधिक है और इस कारण वह श्रम का उपयोग बढ़ाकर कुल उत्पादन मे वृद्धि कर सकता है।

इसके विपरीत—

$$R \text{ पर } \frac{MP_L}{MP_K} < \frac{w}{r}$$

यानी R पर श्रम का सापेक्ष सीमांत उत्पादन साधनों के कीमत-अनुपात से कम है। अन्य शब्दों में, फर्म श्रम को जो मजदूरी चुका रही है वह इसके सीमांत उत्पादन से अधिक है और इसलिए यही उचित होगा कि श्रम का उपयोग कम किया जाए।

यही नहीं, P व R दोनों ही बिंदु I_1 समोत्पाद वक्र पर स्थित हैं जिसका उत्पादन-स्तर E बिंदु में सबद्ध उत्पादन स्तर पर कम है जो I_2 समोत्पाद वक्र पर स्थित है। हम यह भी देखते हैं कि E पर साधनों के इष्टतम संयोग की शर्त (समीकरण 8 7) पूरी होती है जहा $\frac{MP_L}{MP_K} = \frac{w}{r}$ है, और इस प्रकार दी हुई लागत से E पर ही *अधिकतम उत्पादन का स्तर प्राप्त होगा। यहाँ श्रम व पूंजी का इष्टतम संयोग प्रयुक्त किया जाएगा।*

2 सीमाबद्ध लागत न्यूनतमकरण एवं साधनों का इष्टतम संयोग (Constrained Cost Minimization and Optimum Combination of Inputs)

अब हम यह मान लेते हैं कि फर्म का उद्देश्य फलन उत्पादन की लागत को न्यूनतम करना है जबकि उत्पादन का स्तर दिया हुआ है।

न्यूनतम कीजिए $C^\circ = rK + wL$

जहा उत्पादन सीमा है $Q^\circ = f(K, L)$ (यहा Q° एक प्राचल है) अब हमारा लैग्रान्जीयन फलन इस प्रकार होगा—

$$V = rK + wL - \lambda[f(K, L) - Q^\circ] \qquad \ldots(8\ 10)$$

इसी प्रकार K, L तथा λ के सदर्भ में V के आंशिक अवकलज प्राप्त किए जा सकते हैं—

$$\left.\begin{aligned} \frac{\partial V}{\partial K} &= r - \lambda f_K = 0 \ (a) \\ \frac{\partial V}{\partial L} &= w - \lambda f_L = 0 \ (b) \\ \frac{\partial V}{\partial \lambda} &= Q^\circ - f(K, L) = 0 \ (c) \end{aligned}\right\} \qquad \ldots(8.11)$$

समीकरण (8 11) के भाग (a) व (b) स्पष्ट करते हैं कि फर्म पूंजी व श्रम दोनों की लागत न्यूनतम करना चाहती है जब कि भाग (c) यह बतलाता है कि *निर्दिष्ट उत्पादन सीमा (output constraint)* विद्यमान है। यदि भाग (a) व

(b) को पुन लिखा जाए तो हमें ठीक समीकरण (8 8) की स्थिति प्राप्त होगी—

$$\frac{w}{r} = \frac{f'L}{f'K} \quad \ldots(8\ 12)$$

अर्थात् श्रम व पूजी के प्रयोग की न्यूनतम लागत उस संयोग पर होगी जहा साधनों की कीमतों का अनुपात (सम लागत रेखा का ढलान) इनके सीमान्त उत्पादन के अनुपात (समोत्पाद वक्र के ढलान) के समान है। चित्र 8 7 में भी यह स्थिति स्पष्ट की जा सकती है।
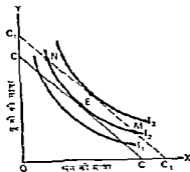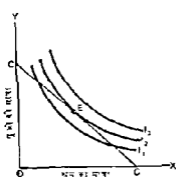
पैनल (a) सीमाबद्ध उत्पादन-अधिकतमकरण पैनल (b) सीमाबद्ध लागत न्यूनतमकरण

चित्र 8.7 उत्पादन-अधिकतमकरण एवं लागत न्यूनतमकरण की तुलना

चित्र 8 6 को चित्र 8 7 के पैनल (a) में पुनः प्रस्तुत किया गया है। इस पैनल में E बिंदु पर फर्म सीमाबद्ध उत्पादन अधिकतमकरण करती है। अब चित्र 8 7 का पैनल (b) देखिए। फर्म के समक्ष I_2 समोत्पाद वक्र के अनुरूप उत्पादन करने हेतु तीन विकल्प हैं। या तो वह CC सम लागत रेखा के E बिंदु पर साधनों का प्रयोग करके I_2 के स्तर का उत्पादन करे जहा सम लागत रेखा समोत्पाद वक्र को स्पर्श करती है यानी साधनों के इष्टतम संयोग हेतु समीकरण (8 8) या (8 12) में दी गई शर्त पूरी होती है; अथवा वह N या M बिंदुओं पर साधनों का प्रयोग करके I_2 के स्तर वाला उत्पादन प्राप्त करे। N बिंदु पर समोत्पाद वक्र का ढलान सम लागत रेखा के ढलान से अधिक है $\left(\frac{MP_L}{MP_K} > \frac{w}{r}\right)$ जबकि M पर इसकी विपरीत स्थिति है। $\left(\frac{MP_L}{MP_K} < \frac{w}{r}\right)$ ये दोनों ही स्थितियां साधनों के इष्टतम संयोग को प्रदर्शित नहीं करती। फर्म प्रथम स्थिति में श्रम का प्रयोग बढ़ाकर अथवा द्वितीय स्थिति में श्रम का प्रयोग कम करके (I_2 के स्तर का उत्पादन करने हेतु) लागत में कमी कर सकती है। चित्र 8 7 में यह भी स्पष्ट है कि N या M दोनों ही बिंदु ऊंची सम लागत रेखा C_1C_1 पर स्थित हैं। अस्तु, केवल उसी बिंदु (E) पर उत्पादन की लागत न्यूनतम होगी यानी साधनों का इष्टतम संयोग होगा जहा सम लागत रेखा समोत्पाद

वक्र को स्पर्श करता हो, यानी जहां साधनो की कीमतो का अनुपात सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर के समान हो ।

8 5 साधन-कीमत मे परिवर्तन
(Change in Input Price)

माग के नियम की व्याख्या करते समय हमने यह स्पष्ट किया था कि किसी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन होने पर इसकी मांग मे प्रतिकूल दिशा का परिवर्तन होता है । हमने यह भी स्पष्ट किया था कि निकृष्टतम यानी गिफिन वस्तुओ की कीमत बढने पर इनकी माग बढती है जबकि कीमत में कमी होने पर इसकी माग मे कमी हो जाती है ।

यह मानते हुए कि श्रम व पूजी दोनो ही 'सामान्य" साधन हैं, हम "माग के नियम" को उत्पादन के साधनो पर भी लागू कर सकते हैं । उदाहरण के लिए, यदि मजदूरी की दर (w) मे कमी हो जाती है तो इस नियम के अनुसार श्रम की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाएगा ।
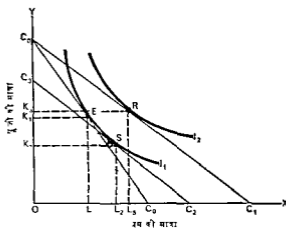
चित्र 8 8 मजदूरी की दर मे कमी से उत्पन्न उत्पत्ति एव स्थापन प्रभाव

चित्र 8 8 मे फर्म की मूल सम लागत रेखा C_0C_0 थी जिस पर फर्म OK_1 मात्रा मे पूजी व OL_1 मात्रा मे श्रम का प्रयोग करके I_1 के स्तर का उत्पादन प्राप्त करती थी । मान लीजिए अब श्रम की कीमत यानी मजदूरी दर कम हो जाती है। सम लागत रेखा का इसके फलस्वरूप आवर्तन होगा एव नई सम लागत रेखा C_0C_1 होगी जिस पर फर्म उत्पादन की मात्रा को बढाकर I_2 के अनुरूप कर लेगी तथा R बिंदु पर OK_3 मात्रा मे पूजी एव OL_3 मात्रा मे श्रम के इष्टतम सयोग का प्रयोग करेगी । इस प्रकार मजदूरी की दर मे कमी होने पर श्रम की मात्रा मे L_1L_3 इकाइयों

की वृद्धि हो जाएगी। साथ ही पूंजी की मात्रा भी K_1K_2 इकाइयों से बढ़ जाने के कारण उत्पादन का स्तर भी बढ़ जाएगा। इसके विपरीत यदि मजदूरी (या ब्याज) की दर में वृद्धि होती है तो श्रम तथा पूंजी की इकाइयों में कमी होगी तथा उत्पादन का स्तर भी कम हो जाएगा यानी फर्म नीचे वाले समोत्पाद वक्र पर आ जाएगी।

अनधिमान वक्रों की भांति हम समोत्पाद वक्रों के संदर्भ में भी साधन की कीमत में होने वाले परिवर्तन को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। यदि हम उत्पादन के स्तर को यथावत् (I_1 के अनुरूप) रखते हुए केवल श्रम व पूंजी की सापेक्ष कीमतों $\left(\frac{w}{r}\right)$ के परिवर्तन का प्रभाव देखें तो यह प्रतिस्थापन प्रभाव कहलाएगा। इसके विपरीत यदि उत्पादन में वृद्धि भी होने दी जाती है तो इसे उत्पादन प्रभाव की संज्ञा दी जाती है।

चित्र 8 8 में प्रतिस्थापन प्रभाव को ज्ञात करने हेतु C_0C_1 के समानांतर एक सम-लागत रेखा C_2C_2 इस प्रकार खींचिए ताकि यह मूल उत्पादन स्तर को व्यक्त करने वाले समोत्पाद वक्र I_1 को वहीं स्पर्श करे। यह श्रम व पूंजी का वह इष्टतम संयोग होगा जो मजदूरी व ब्याज के नए अनुपात के अनुरूप है परंतु जिसे मूल-उत्पादन-स्तर की प्राप्ति हेतु ही प्रयोग में लिया जाता है। चूंकि श्रम अब अपेक्षाकृत सस्ता साधन है, अतः प्रतिस्थापन प्रभाव के अंतर्गत फर्म श्रम की मात्रा का OL_1 से बढ़ाकर OL_2 करती है जबकि अपेक्षाकृत महंगे साधन यानी पूंजी की मात्रा OK_1 से घटाकर OK_2 कर दी जाती है। अस्तु प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण फर्म उत्पादन के पुराने स्तर को प्राप्त करने हेतु अपेक्षाकृत सस्ते साधन की मात्रा में वृद्धि करती है तथा अपेक्षाकृत महंगे साधन की मात्रा में कमी करती है।

इसके विपरीत, यदि फर्म को नई साधन-कीमतों के अनुरूप (C_3C_2 के ढलान के अनुरूप) उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करने दी जाए तो वह पूंजी मात्रा को OK_2 से बढ़ाकर OK_3 करेगी तथा श्रम की मात्रा OL_2 से बढ़ाकर OL_3 कर दी जाएगी। अस्तु, उत्पादन की मात्रा बढ़ाने हेतु श्रम व पूंजी की मात्रा में क्रमशः L_2L_3 व K_2K_3 की वृद्धि होगी। श्रम की मात्रा में यह वृद्धि उत्पत्ति प्रभाव (output effect) कहलाती है। संक्षेप में, मूल साम्य स्थिति E से उस समोत्पाद वक्र I_1 पर यदि नई साम्य स्थिति S पर साधनों का प्रयोग किया जाता है तो यह प्रतिस्थापन प्रभाव होगा, जबकि यदि S से हटकर उच्च समोत्पाद वक्र (I_2) पर R बिंदु पर साम्य स्थिति प्राप्त की जाए तो इसे उत्पत्ति प्रभाव कहा जाएगा।

समीकरण (8 13) उपरोक्त विवरण का संक्षेप में प्रस्तुत करता है—

$$\frac{dL}{dw}=\left(\frac{\partial L}{\partial w}\right)_{Q=Q^{\circ}}+L\left(\frac{\partial L}{\partial Q}\right)_{\frac{w}{r}=\text{Contstant}} \quad (8\ 13)$$

समीकरण (8 13) से स्पष्ट होता है कि मजदूरी की दर में कमी के फलस्वरूप श्रम

की मात्रा में कुल वृद्धि प्रतिस्थापन प्रभाव $\left(\frac{\partial L}{\partial w}\right)_{Q=Q^{\circ}}$ एवं उत्पत्ति प्रभाव $L\left(\frac{\partial L}{\partial Q}\right)_{\frac{w}{r}=\text{Constant}}$ का योग है। चूंकि श्रम (तथा पूंजी) सामान्य साधन है, अतः मजदूरी की दर में कमी होने पर श्रम की मात्रा में दोनों ही कारणों से वृद्धि होगी। चित्र 8.8 में प्रतिस्थापन प्रभाव L_1L_2 व उत्पत्ति प्रभाव L_2L_3 है तथा कुल प्रभाव $\left(\frac{dL}{dw}\right)$ L_2L_3 के समान है जो दोनों का योग मात्र है।

8.5 (a) श्रम एक हीन साधन के रूप में
(Labour as an Inferior Input)

समीकरण (8.13) यह बतलाता है कि यदि श्रम एक सामान्य (normal) साधन हो तो उसकी कीमत, यानी मजदूरी दर, में कमी (वृद्धि) होने पर प्रतिस्थापन प्रभाव तथा उत्पत्ति प्रभाव के कारण उसकी प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा में वृद्धि (कमी) होगी। परन्तु यदि श्रम एक हीन साधन हो तो मजदूरी की दर में वृद्धि या कमी होने पर इसकी मात्रा पर क्या प्रभाव होगा ?
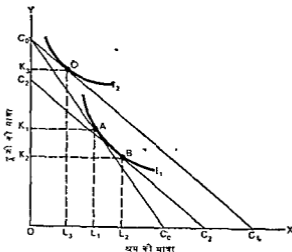
चित्र 8.9 हीन साधन की कीमत में कमी तथा साधन की मात्रा में परिवर्तन

वस्तुतः किसी भी साधन की कीमत में कमी (वृद्धि) होने पर फर्म प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण दूसरे साधन की मात्रा में कमी (वृद्धि) करके भी इस साधन की अधिक (कम) मात्रा का प्रयोग करेगी। परन्तु जहां उत्पत्ति प्रभाव सामान्य साधन के संदर्भ में प्रतिस्थापन प्रभाव के अनुरूप ही होता है, वहीं हीन साधन के संदर्भ में साधन की कीमत में कमी होने पर वह अधिक उत्पादन करने हेतु अपेक्षाकृत सस्ते साधन की

मात्रा में काफी अधिक कमी करके दूसरे साधन की मात्रा में पर्याप्त वृद्धि कर देती है। इसके विपरीत हीन साधन की कीमत बढ़ने पर अधिक उत्पादन करने हेतु अपेक्षाकृत महंगे साधन की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है।

चूंकि प्रस्तुत उदाहरण में श्रम एक हीन साधन है, इसकी कीमत यानी मजदूरी की दर में कमी होने पर अन्ततः इसकी प्रयुक्त मात्रा OL_1 से घटकर OL_3 हो जाती है (श्रम की मात्रा में कमी L_1L_3 के समान है)। मजदूरी की दर में कमी होने पर सम-लागत रेखा का दाईं ओर आवर्तन हो जाता है तथा इसकी स्थिति C_oC_o से बदलकर C_oC_1 हो जाती है। प्रतिस्थापन प्रभाव के अन्तर्गत फर्म श्रम का प्रयोग OL_1 से बढ़ाकर OL_2 एवं पूंजी का प्रयोग OK_1 से कम करके OK_2 करना चाहेगी तथा उत्पादन की मात्रा I_1 के अनुरूप ही करती रहेगी। ऐसी स्थिति में फर्म की साम्य स्थिति A से हटकर B हो जाएगी।

वस्तुतः श्रम की कीमत कम होने से फर्म अधिक उत्पादन करने में समर्थ हो जाती है। परंतु श्रम एक हीन साधन है। यही कारण है कि I_1 की अपेक्षा साम्य स्थिति में I_2 पर समोत्पाद वक्र का ढलान कम है $\left(\frac{MP_L}{MP_K} \text{ at } I_2 < \frac{MP_L}{MP_K} \text{ at } I_1\right)$ अन्य शब्दों में, अधिक उत्पादन करने हेतु फर्म कम सीमांत उत्पादन वाले यानी हीन साधन की मात्रा में कमी हो जाती है। चित्र 8.9 में I_2 पर नई साम्य स्थिति C पर प्राप्त होती है जहां श्रम की मात्रा घटकर OL_3 रह जाती है जबकि पूंजी की मात्रा बढ़कर OK_3 हो जाती है। इस प्रकार हीन साधन की कीमत में कमी होने पर भी साधन की मांग पर ऋणात्मक उत्पत्ति प्रभाव L_2L_3 है जबकि प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण फर्म इसकी मात्रा L_1L_2 से बढ़ाना चाहेगी। अन्ततः $L_1L_2 - L_2L_3$ के फलस्वरूप इसकी मांग में L_1L_3 इकाई की कमी हो जाएगी। वस्तु, जहां सामान्य साधन की मांग एवं इसकी कीमत में प्रतिकूल संबंध होता है, वहीं हीन साधन की मांग साधन की कीमत के साथ ही बढ़ती है या कम होती है।

हमने इस अध्याय में यह देखा कि फर्म श्रम व पूंजी का इष्टतम संयोग किस स्तर पर प्रयुक्त करेगी। हमने यह देखा कि श्रम व पूंजी का न्यूनतम लागत वाला संयोग वह है, जहां समोत्पाद वक्र का ढलान $\left(\frac{MP_L}{MP_K}\right)$ सम-लागत रेखा के ढलान $\left(\frac{w}{r}\right)$ के समान है, यानी जहां सम-लागत रेखा समोत्पाद वक्र को स्पर्श करती है। हमने यह भी देखा कि यदि साधन की कीमत में परिवर्तन होता है तो फर्म की साम्य स्थिति में भी परिवर्तन हो जाता है तथा वह ऊंचे या नीचे समोत्पाद वक्र पर (कीमत में कमी होने पर ऊंचे समोत्पाद वक्र पर तथा साधन की कीमत में वृद्धि होने पर नीचे वाले समोत्पाद वक्र पर) नई साम्य स्थिति प्राप्त कर लेती है। अगले अध्याय में हम यह देखेंगे कि यदि फर्म को उपलब्ध कुल लागत (outlay) में परिवर्तन हो जाए तो उसकी साम्य स्थिति में क्या परिवर्तन होगा।

9

उत्पादन के सिद्धांत से संवद्ध अन्य अवधारणाए
(ADDITIONAL TOPICS IN THE THEORY OF PRODUCTION)

प्रस्तावना

अध्याय 8 मे यह बतलाया गया था कि किसी साधन की कीमत म परिवर्तन होने पर सामान्य तौर एक फर्म ऊँचे या निचले समोत्पाद वक्र पर चली जाती है यानी श्रम व पूजी की अधिक या कम मात्रा का प्रयोग करके उत्पादन की अधिक या कम मात्रा प्राप्त करती है। वस्तुत फम साधनो के प्रयोग मे क्या परिवतन करती है यह इस बात पर निर्भर करता है कि साधनो की कीमतो के अनुपात मे, अर्थात फर्म की सम लागत रेखा के ढलान मे, किस प्रकार का परिवतन होता है।

फर्म द्वारा किए जाने वाले उत्पादन के स्तर मे इसलिए भी परिवर्तन हो सकता है कि फर्म को उपलब्ध व्यय राशि या कुल लागत मे वृद्धि या कमी हो जाए, जबकि साधनो की कीमतें यथावत् रह। चूकि कुल लागत मे परिवर्तन के साथ साथ भिन्न-भिन्न साधनो की मात्रा मे भिन्न परिवर्तन होते हैं, अत इस अध्याय मे हम साधन की माग के सदर्भ मे लागत लोच (outlay elasticity with respect to input demand) का भी विवरण प्रस्तुत करेंगे। इसी अध्याय म हमने समोत्पाद वक्रो के माध्यम म साधन प्रतिफल एव पैमाने के प्रतिफलो का भी विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अन्त मे, उपभोक्ता व्यवहार एव फम के साधन-प्रयोग सबधी व्यवहार की तुलना भी इसी अध्याय मे प्रस्तुत की गई है।

9 1 कुल व्यय मे परिवर्तन तथा विस्तार-पथ
(Change in Outlay and the Expansion Path)

यदि श्रम व पूजी की कीमतें यथावत् रहे तो कुल व्यय मे वृद्धि होने पर फर्म की इन साधनो को प्रयोग करने की क्षमता भी बढ जाती है जिसके फलस्वरूप वह अधिक मात्रा मे उत्पादन करने मे समर्थ हो जाती है। चित्र 9 1 मे यह स्थिति दर्शाई गई है। चित्र 9 1 मे बताया गया है, कि कुल व्यय (outlay) मे वृद्धि होने पर *सम लागत रेखा का ऊपर की ओर विवर्तन हो जाता है*। चूकि साधनो की कीमतें यथावत् रहती हैं, अत सम लागत रेखाओ का ढलान भी यथावत् रहता है।

चित्र 9 1 मे फर्म को प्रारंभ मे जितनी व्यय राशि उपलब्ध थी उसके अनुरूप सम लागत रेखा C_0C_0 थी जिस पर फर्म I_0 समोत्पाद वक्र के A बिंदु पर साम्य स्थिति प्राप्त करती थी। व्यय-राशि मे वृद्धि होने पर सम लागत रेखा विवर्तित होकर C_1C_1 का रूप लेती है जिस पर पूर्वापेक्षा ऊचे समोत्पाद वक्र I_1 के B बिंदु
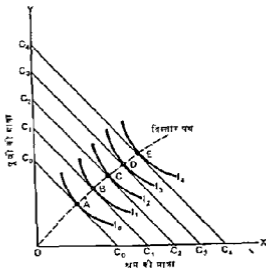
चित्र 9 1 विस्तार-पथ

पर फर्म साम्य स्थिति प्राप्त करती है। इसी प्रकार जैसे-जैसे व्यय-राशि (outlay) मे वृद्धि होती है, वैसे-वैसे फर्म क्रमश C, D व E बिंदुओं पर साम्य स्थिति प्राप्त करती हुई उत्तरोत्तर अधिक उत्पादन प्राप्त करती जाती है। इन सभी साम्य बिंदुओं को मिलाने पर जो बिंदु पथ (locus) प्राप्त होता है उसे विस्तार-पथ (expansion path) कहा जाता है। सक्षेप मे, विस्तार-पथ श्रम व पूजी के न्यूनतम लागत वाले उन सयोगों का बिंदु-पथ है जिन्हें उत्पादन के विभिन्न स्तरो को प्राप्त करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

चित्र 9 2 मे विस्तार-पथ के दो रूप प्रस्तुत किए गए हैं। पैनल (a) मे एक लहराता हुआ विस्तार पथ है जबकि पैनल (b) मे विस्तार-पथ मूल बिंदु से एक सरल रेखा के रूप मे है। दोनो ही स्थितियो मे विस्तार-पथ श्रम व पूजी के न्यूनतम लागत वाले सयोगो के बिंदु-पथ के रूप मे है। परतु जहा चित्र 9 2 का पैनल (a) यह बतलाता है कि कुल लागत मे वृद्धि के साथ-साथ श्रम व पूजी की मात्रा मे भिन्न अनुपात मे वृद्धि होती है, वही पैनल (b) मे विस्तार-पथ एक सरल रेखा के रूप मे है तथा यह स्पष्ट करता है कि उत्पादन के अलग-अलग स्तरो को प्राप्त करने हेतु

फर्म श्रम व पूजी को समान अनुपात मे बढाती है। उदाहरण के लिए पैनल (a) मे विस्तार-पथ OE को लीजिए। साम्य बिंदु A से साम्य बिंदु B के मध्य पूजी की
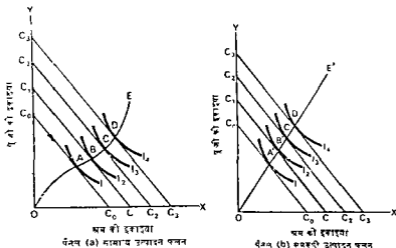
चित्र 9.2 विस्तार-पथ एवं उत्पादन फलन के प्रकार

अपेक्षा श्रम की मात्रा मे अधिक वृद्धि होती है जबकि C व D के मध्य पूजी की मात्रा मे अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है। इसके विपरीत पैनल (b) मे श्रम व पूजी की मात्रा मे समानुपाती वृद्धि की जाती है, यानी उत्पादन फलन समरूपी है, और इसलिए विस्तार-पथ एक सरल रेखा के रूप मे है।

परतु इसके बावजूद हमे पैनल (b) को देखकर समरूपी उत्पादन की डिग्री यानी पैमाने के प्रतिफल की प्रकृति के विषय मे कोई भी धारणा नही बना लेनी चाहिए। पिछले अध्याय मे हमने यह स्पष्ट कर दिया था कि एक नीचे वाले समोत्पाद वक्र की तुलना मे ऊचे समोत्पाद वक्र पर उत्पादन की अधिक मात्रा प्राप्त की जाती है, परतु समोत्पाद वक्रो की दूरी का इस बात से कोई सबध नही है कि ऊपर वाले समोत्पाद वक्र पर कितना अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकेगा। यह ठीक है कि हम साम्य बिंदुओ को देखकर यह बतला सकते हैं कि श्रम व पूजी की मात्रा मे कितनी वृद्धि की गई। इसके बावजूद उच्च समोत्पाद वक्र पर उत्पादन का स्तर कितना होगा यह एक कल्पना की बात होगी। हम I_1 पर उत्पादन का स्तर 20 रख कर I_2 पर 40 इकाई का उत्पादन मान सकते हैं जबकि I_3 पर 25 या 50 इकाई का कुछ भी रखा जा सकता है। वस्तुत. किसी भी समोत्पाद वक्र पर उत्पादन का क्या स्तर रखा जाएगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि फर्म के पैमाने के प्रतिफल के विषय मे हमारी मान्यता क्या है।

एक बात और भी है। विस्तार-पथ चाहे रैखिक हो अथवा लहराता हुआ,

दोनों में एक समानता यह है कि सभी साम्य बिंदुओं पर समोत्पाद वक्र का ढलान, यानी श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादन के अनुपात में कोई परिवर्तन नहीं होता (सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर वही रहती है), और इसीलिए फर्गूसन ने विस्तार-पथ को "आइसोक्लाइन" की भी संज्ञा दी है।[1]

1 रिज रेखाएं तथा विस्तार-पथ
(Ridge Lines and the Expansion Path)

अध्याय 8 में यह बताया गया था कि रिज रेखाएं श्रम व पूंजी के गहन मार्जिन (जहां इनके सीमांत उत्पादन शून्य होते हैं) वाले बिंदुओं का बिंदु-पथ (locus) होती हैं। यही कारण है कि रिज रेखा पर समोत्पाद वक्रों का ढलान $\left(\frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K}\right.$ या सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर $\left.\right)$ सर्वत्र यथावत रहता है। उदाहरण के लिए चित्र 8.4 को पुनः देखिए। इस चित्र में A, B तथा C पर (OK रिज रेखा पर) I_0, I_1 व I_2 का ढलान समान हैं। इसी प्रकार D, E तथा F बिंदुओं (OL रिज रेखा पर) पर भी इन समोत्पाद वक्रों का ढलान यथावत् है। पाठक यह देख सकते हैं कि A, B व C पर समोत्पाद वक्रों का ढलान $\left(\frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K}\right)$ अनंत है, यानी तीनों पर पूंजी का सीमांत उत्पादन शून्य है जबकि D, E व F पर श्रम का सीमांत उत्पादन शून्य है। संक्षेप में, OK व OL रिज रेखाएं स्वयं भी विस्तार-पथ अथवा 'आइसोक्लाइन' हैं।

2 विस्तार-पथ की सामान्य शर्तें
(General Conditions for the Expansion Path)

पिछले अध्याय के अनुभाग 8.4 में सीमाबद्ध उत्पादन अधिकतमकरण की प्रथम क्रम की शर्त के अनुसार श्रम व पूंजी का इष्टतम संयोग वहां होता है जहां इनके सीमांत उत्पादन का अनुपात यानी समोत्पाद वक्रों का ढलान सम लागत रेखाओं के ढलान के समान है $\left(\frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K} = \frac{w}{r}\right)$। यह मानते हुए कि द्वितीय क्रम की शर्त भी पूरी होती है यानी समोत्पाद वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर (convex) है, हम यह कह सकते हैं कि फर्म की लागत राशि में वृद्धि होने पर भी साम्य स्थिति की यह शर्त पूरी होती रहेगी।

यदि श्रम और पूंजी के अतिरिक्त अनेक दूसरे साधनों को भी उत्पादन फलन में प्रयोग किया जा रहा हो तो सभी साधनों का इष्टतम उपयोग तभी होगा जबकि प्रत्येक साधन के सीमांत उत्पादन एवं इसकी कीमत का अनुपात अन्य साधनों

1 C E. Ferguson, Micro-economic Theory (Revised Edition), pp 177-78

व सीमान्त उत्पादन एव कीमत के अनुपात के समान हो। अस्तु

$$\frac{fK}{r}=\frac{fK}{w}=\frac{fX_1}{Px_1}= \quad \frac{f'X_n}{Px_n} \qquad (9\ 1)$$

यदि उत्पादन फलन कॉब-डगलस फलन के अनुरूप हो $(Q=AL_\alpha K^{1}\ ^\alpha)$ तो समीकरण (9 1) का अर्थ यह होगा कि विस्तार-पथ पर प्रत्येक साम्य स्थिति पर निम्न शर्तें होनी पूरी होनी चाहिए—

$$\frac{w}{r}=\frac{\partial Q}{\partial L}\Big/\frac{\partial Q}{\partial K}=\frac{A\alpha L^{\alpha-1}K^{1-\alpha}}{AL^{\alpha}(1-\alpha)K^{\ \alpha}}=\frac{\alpha}{1-\alpha}\quad\frac{K}{L} \qquad (9\ 2)$$

समीकरण (9 2) का अभिप्राय यह है कि विस्तार-पथ के सभी बिंदुओं पर श्रम व पूजी के इष्टतम सयोग प्रयुक्त किए जाते हैं। परतु इससे यह भी स्पष्ट है कि कॉब-डगलस उत्पादन फलन से सबद्ध विस्तार पथ के सभी बिंदुओं पर श्रम व पूजी का अनुपात यथावत् रहना चाहिए, एव यह अनुपात $\frac{K}{L}=\frac{1-\alpha}{\alpha}\quad\frac{w}{r}$ के अनुरूप होना चाहिए। उदाहरण के लिए एक रैखिक समरूपी (कॉब डगलस) उत्पादन फलन में $\alpha=0\ 6$ है, $w=10$ तथा $r=8$ है, तो विस्तार-पथ के सभी बिंदुओं पर पूजी व श्रम का स्थिर अनुपात निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है—

$$\frac{4}{6}\times\frac{10}{8}=\frac{5}{6}$$

परतु यह स्थिति केवल तभी होगी जब उत्पादन फलन रैखिक समरूपी हो यानी पैमाने के समतामान प्रतिफल के अतर्गत उत्पादन किया जा रहा हो। बहुधा उत्पादन फलन समरूपी (homogeneous) नहीं होते और इसलिए विस्तार-पथ पर साधनों का अनुपात यथावत नहीं रहता।

9 2 विस्तार-पथ एव पैमाने के प्रतिफल
(Expansion Path and Returns to Scale)

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि ऊचा समोत्पाद वक्र उत्पादन के ऊचे स्तर *को व्यक्त करता है, हालांकि ऊचे समोत्पाद वक्र पर उत्पादन की कितनी मात्रा अधिक* प्राप्त होगी यह निश्चित नहीं होता। परतु यह अवश्य स्पष्ट होता है कि अधिक उत्पादन हेतु श्रम व पूजी की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है, तथा इसके लिए अधिक लागत व्यय की जाती है।

अध्याय 7 में हमने दीर्घकाल में अधिक साधनों के प्रयोग द्वारा पैमाने के प्रतिफलों का विश्लेषण किया था। हमने यह देखा था कि पैमाने में परिवर्तन से हमारा आशय किसी निर्दिष्ट अनुपात (λ) में उत्पादन के सभी साधनों के परिमाण में वृद्धि या कमी से है। यदि उत्पादन में होने वाला परिवर्तन इस अनुपात (λ) से अधिक है तो यह पैमाने का वर्द्धमान प्रतिफल (increasing returns to scale) कहलाता है,

जबकि उत्पादन का परिवर्तन साधनों में होने वाले परिवर्तन के अनुपात में ही हो तो हम इस पैमाने का समतामान प्रतिफल कहेंगे। यदि उत्पादन में होने वाला परिवर्तन साधनों के परिवर्तन की अपेक्षा कम हो तो इसे पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल की संज्ञा दी जाती है।

एक विस्तार-पथ भी लगभग इसी प्रकार की स्थिति को व्यक्त करता है। यह भी साधनों एवं उत्पादन के विभिन्न स्तरों का सबंध बतलाता है। परंतु पैमाने के प्रतिफल एवं विस्तार-पथ के मध्य सबंध की व्याख्या करने से पूर्व हमें कुछ बातों का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। प्रथम, विस्तार पथ पर विद्यमान समोत्पाद वक्रों पर कितना-कितना उत्पादन प्राप्त होता है, यह हमें निश्चित कर लेना चाहिए। जैसाकि पूर्व में बताया जा चुका है, प्रत्येक समोत्पाद वक्र से सबद्ध उत्पादन के स्तर को हम अपनी कल्पना में ही तय करते हैं, एवं इसके लिए समोत्पाद वक्रों के मध्य की दूरी का कोई महत्व नहीं होता। द्वितीय, चूंकि पैमाने में परिवर्तन से हमारा आशय यह है कि श्रम व पूंजी के अनुपात स्थिर रहते हैं, पैमाने में परिवर्तन के अंतर्गत विस्तार-पथ रैखिक (linear) होना चाहिए (चित्र 9 2 का पैनल b देखिए), तथा इसका आरंभ मूल बिंदु से होना चाहिए। तृतीय, चूंकि श्रम व पूंजी की कीमतें यानी समलागत रेखा एवं समोत्पाद वक्रों के ढलान में कोई परिवर्तन नहीं होता, तथा विस्तार पथ रैखिक होता है इसलिए हम उत्पादन के साधनों एवं उत्पादन की मात्रा के संबंधों की व्याख्या सम लागत रेखाओं के बिना भी कर सकते हैं। यहां इस बात को पुन दुहराना उपयुक्त होगा कि उत्पादन फलन की भांति पैमाने का प्रतिफल भी एक अभियांत्रिक अवधारणा (engineering concept) है तथा इसके विश्लेषण हेतु उत्पादन के साधनों की कीमतें यथावत् मानी जाती हैं।

1. समोत्पाद वक्र एवं पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Isoquants and Constant Returns to Scale)

पैमाने के स्थिर प्रतिफल से हमारा अभिप्राय उस स्थिति से है जिसके अन्तर्गत श्रम व पूंजी की मात्रा में जिस अनुपात से वृद्धि होती है उसी अनुपात में उत्पादन की मात्रा भी बढ़ती है। जैसाकि अध्याय 7 के अनुभाग 7 4 में बतलाया गया था, पैमाने के स्थिर प्रतिफल एवं रैखिक समरूपी उत्पादन फलन (linearly homogeneous production function) में कोई अंतर नहीं होता। चित्र 9 3 में हमने ऐसा ही एक उत्पादन फलन प्रस्तुत किया है। यह मानते हुए कि वस्तु का उत्पादन श्रम व पूंजी से प्राप्त होता है [$Q=f(L, K)$], यदि हम दोनों साधनों को λ से बढ़ा दें तो उत्पादन की मात्रा $\lambda^1 Q$ तक बढ़ जाएगी—

$$\lambda^1 Q=\lambda^1 f(L, K)=f(\lambda L, \lambda K) \quad \dots(9\ 4)$$

अन्य शब्दों में, चित्र 9 3 इस मान्यता के आधार पर खींचा गया है कि उत्पादन फलन एक डिग्री का (रैखिक) समरूपी है।

चित्र 9 3 का पैनल (a) तीन समोत्पाद वक्र एव उनमे सबद्ध समोत्पाद वक्र OEको प्रस्तुत करता है। श्रम की L_0 इकाइयो व पूजी की K_0 इकाइयो की सहायता से फर्म दस इकाई वस्तु का उत्पादन करती है। श्रम की $2L_0$ इकाई श्रम व $2K_0$ इकाई पूजी की सहायता से 20 इकाई का, तथा 3L इकाई श्रम तथा 3K- इकाई पूजी की
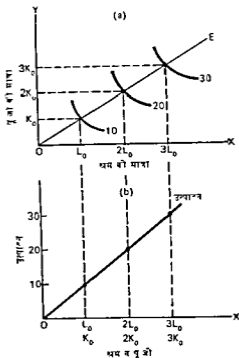
चित्र 9 3 समोत्पाद एव पैमाने के स्थिर प्रतिफल

सहायता से फर्म 30 इकाई वस्तु का उत्पादन करती है। इस प्रकार साधनो की मात्रा मे जिस अनुपात मे वृद्धि होती है, उसी अनुपात में उत्पादन भी बढता है। यही पैमाने का समता मान प्रतिफल है जिसके अनुसार विस्तार-पथ पर साधनो व उत्पादन की मात्राए समान अनुपात मे बढती हैं।

चित्र 9 3 के पैनल (b) में एक रैखिक (linear) उत्पादन फलन प्रस्तुत किया गया है। इसमे शीर्ष अक्ष पर उत्पादन की मात्रा को मापा गया है जबकि क्षैतिज अक्ष पर दोनो साधनो की मात्रा को (निर्दिष्ट अनुपात में) मापा गया है। चूकि यह स्थिति पैमाने के स्थिर प्रतिफल को व्यक्त करती है, उत्पादन की रेखा रैखिक है तथा मूल बिंदु से प्रारभ होती है।

2 समोत्पाद वक्र एवं पैमाने का वर्द्धमान प्रतिफल (Isoquants and Increasing Returns to Scale)

यदि फर्म पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के अन्तर्गत कार्य करती है तो श्रम व पूंजी की मात्रा मे जिस अनुपात म वृद्धि की जाती है उससे कही अधिक अनुपात म उत्पादन मे वृद्धि होगी। उदाहरण के लिए, फर्म के समरूपी उत्पादन फलन की डिग्री 2 है। इसका यह अर्थ है कि यदि उत्पादन के साधनो को दुगुना किया जाए तो उत्पादन
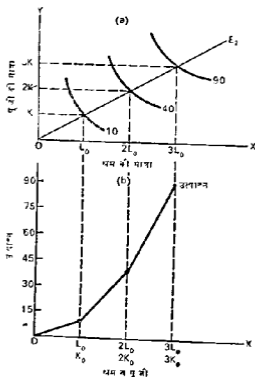
चित्र 9 4 समोत्पाद वक्र एवं पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल

की मात्रा चार गुनी हो जाएगी। परंतु चूंकि उत्पादन फलन समरूपी (homogeneous) है, समोत्पाद वक्रो की साम्य स्थितियो को मिलाने वाला विस्तार-पथ मूल बिंदु से एक सरल रेखा (straight line) के रूप मे प्रारंभ होगा। चित्र 9 4 मे समोत्पाद वक्रो की सहायता से पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल की स्थिति को दर्शाया गया है।

यदि समरूपी उत्पादन फलन की डिग्री 2 ($r>1$) है तो श्रम व पूजी की मात्रा मे वृद्धि के साथ साथ उत्पादन मे निम्न प्रकार मे वृद्धि होगी—

साधनों का स्तर	उत्पादन का स्तर	समरूपता की डिग्री	साधनों की वृद्धि का अनुपात
L_0, K_0	10	—	—
$2L_0$, $2K_0$	40	2	($\lambda=2$)
$3L_0$, $3K_0$	90	2	($\lambda=1\ 5$)
$4L_0$, $4K_0$	160	2	($\lambda=1\ 33$)
$5L_0$, $5K_0$	250	2	($\lambda=1\ 25$)

इस प्रकार पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के अतर्गत साधनो की मात्रा में जिस अनुपात से वृद्धि होती है, उत्पादन मे उससे कही अधिक अनुपात मे वृद्धि हो जाती है। चित्र 9 4 के पैनल (a) मे हमने श्रम व पूजी को एक ही अनुपात मे बढाया, और इसी कारण विस्तार-पथ का रूप रैखिक (linear) है। परतु उत्पादन की मात्रा मे उत्तरोत्तर अधिक अनुपात मे वृद्धि दिखाई गई है जो समोत्पाद वक्र पर अकित सख्याओ मे स्पष्ट है।

चित्र 9 4 के पैनल (b) मे उत्पादन की मात्रा एव साधनो के स्तर का सबध प्रस्तुत किया गया है। उत्पादन-वक्र का ढलान बढता जाता है जो इसी बात का प्रतीक है कि साधनो की अपेक्षा उत्पादन मे अधिक अनुपात मे वृद्धि हो रही है।

3 पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल
(Diminishing Returns to Scale)

जब फर्म पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल के अतर्गत कार्य करती है तो साधनो की अपेक्षा उत्पादन मे धीमी गति से वृद्धि होती है। यदि ऊपर प्रस्तुत उदाहरण में साधनो का स्तर L_0, K_0 से बढाकर $2L_0$, $2K_0$ करने पर उत्पादन का स्तर 10 से बढकर 16 तक हो, तथा पुन साधनो का स्तर $3L_0$, $3K_0$ तक बढाने पर उत्पादन 20 तक ही बढ सके तो यह स्थिति पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल की होगी। ऐसी स्थिति में पैमाने के प्रतिफल से सबद्ध समरूपता की डिग्री इकाई से कम होगी (degree of homogeneity or $r<1$)।

चित्र 9 5 के पैनल (a) मे इस स्थिति को दर्शाया गया है। जैसाकि चित्र से स्पष्ट है, उत्पादन के साधनो की मात्रा को समान अनुपात मे बढाए जाने के कारण विस्तार-पथ तो मूल बिंदु से प्रारभ होने वाली एक सरल रेखा का रूप लेता है, तथापि समोत्पाद वक्रो पर अकित उत्पादन का स्तर उसी अनुपात से नही बढ़ पाता।

चित्र 9 5 का पैनल (b) साधनों की मात्रा एव उत्पादन के स्तर का सबध प्रदर्शित करता है। चित्र म प्रस्तुत उत्पादन वक्र का घटता हुआ ढलान यह बतलाता है कि साधनों की वृद्धि के साथ साथ उत्पादन मे घटती हुई दर से वृद्धि होती है।
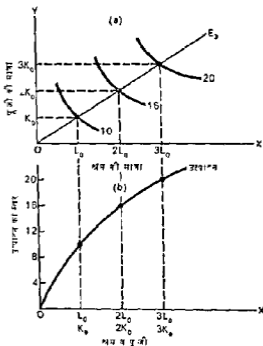
चित्र 9 5 समोत्पाद वक्र एव पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल

9 3 समोत्पाद वक्र एव परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल (Isoquants and Returns to A Variable Factor)

हम समोत्पाद वक्र के अन्तर्गत भी एक साधन को स्थिर रखकर दूसरे साधन की मात्रा मे वृद्धि करके कुल उत्पादन पर उसके द्वारा होने वाले प्रभाव का विश्लेषण कर सकते हैं। वस्तुत यह अध्याय 7 मे प्रस्तुत परिवर्तनीय अनुपातो के नियम (Law of Variable Proportions) की ही व्याख्या है। जैसा कि हमने वहा पढा था, यदि एक साधन को स्थिर रखकर दूसरे साधन की मात्रा मे वृद्धि की जाए तो उत्पादन पहले बढ़ती हुई दर पर बढता है, फिर घटती हुई दर पर बढ़ता है, और अन्तत एक स्तर पर पहुचने के पश्चात कुल उत्पादन का ह्रास होने लगता है।

हम समोत्पाद वक्रो के माध्यम से भी कुल उत्पादन की इस प्रवृत्ति को समझा

सकते हैं। परतु इस सदर्भ मे दो बातें स्मरण रखनी होगी। प्रथम तो यह है कि जैसे-जैसे फर्म पूजी को स्थिर रखकर श्रम की मात्रा मे वृद्धि करती है, वह उत्तरोत्तर ऊपर वाले समोत्पाद वक्र पर नई साम्य स्थिति प्राप्त करती जाती है, बशर्ते उत्पादन के साधनों की कीमतें यथावत् रहें। दूसरी बात यह है कि ऊचा समोत्पाद वक्र उत्पादन के ऊचे स्तर का प्रतीक होता है और इस कारण उत्पादन का स्तर अधिकतम होते ही हमें श्रम की अतिरिक्त मात्रा का प्रयोग रोक देना होगा क्योंकि समोत्पाद वक्र के सदर्भ मे किसी भी साधन का सीमात उत्पादन शून्य अथवा ऋणात्मक नहीं हो सकता ($MP_L > 0$, $MP_K > 0$)।
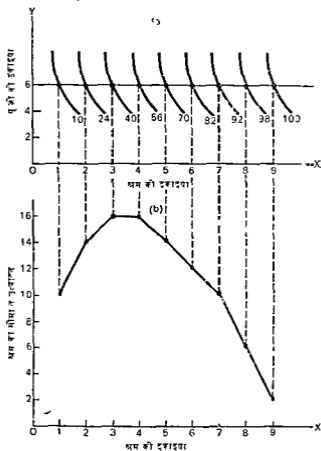
चित्र 9 6 समोत्पाद वक्र एव परिवर्तनीय अनुपातों का नियम

चित्र 9 6 मे हमने पूजी की मात्रा को 6 इकाई पर स्थिर रखकर श्रम की मात्रा मे उत्तरोत्तर वृद्धि करके इससे उत्पादन की मात्रा पर होने वाले प्रभाव की

व्याख्या प्रस्तुत की है। पैनल (a) में बतलाया गया है कि जैसे-जैसे श्रम की मात्रा बढ़ाई जाती है, तीन इकाई श्रम का प्रयोग होने तक कुल उत्पादन में बढ़ती हुई दर से वृद्धि होती है, चौथी इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में समान गति से वृद्धि होती है जबकि इसके आगे प्रयुक्त की जाने वाली श्रम की इकाइयों से कुल उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होगी। परन्तु जैसा कि चित्र 9 6 के पैनल (a) से स्पष्ट होता है, कुल उत्पादन नवें समोत्पाद वक्र पर पहुंच कर अधिकतम (100 इकाई) हो जाता है। इसके आगे श्रम की दसवीं इकाई प्रयुक्त करने पर उत्पादन इससे अधिक ही होना चाहिए क्योंकि ऊंचे समोत्पाद वक्र पर अधिक उत्पादन होना आवश्यक है ($MP_L>0$)।

चित्र 9 6 के पैनल (b) में सीमांत उत्पादन वक्र प्रस्तुत किया गया है। यह पैनल वस्तुत. पैनल (a) से निरूपित किया गया है। जैसे-जैसे पूंजी की मात्रा को स्थिर रखते हुए श्रम की मात्रा को बढाया जाता है, श्रम का सीमांत उत्पादन पहले बढता है, फिर यह घटने लगता है। परन्तु समोत्पाद वक्रों के संदर्भ में सीमांत उत्पादन न तो शून्य होता है और न ही ऋणात्मक हो सकता है। उत्पादन की अवस्थाओं का अध्ययन करते समय हमने यही देखा था कि परिवर्तनशील साधन का प्रयोग केवल द्वितीय अवस्था में ही हो सकता है जिसमें साधन का सीमांत उत्पादन धनात्मक होता है।

9 4 लागत-लोच एवं साधन की प्रकृति
(Outlay Elasticity and Nature of an Input)

अध्याय 8 में हमने कुल लागत की परिभाषा देते हुए बतलाया था कि यह वह राशि है जिसे फर्म श्रम व पूंजी के प्रयोग हेतु आवंटित करती है। वर्तमान अध्याय के अनुभाग 9 1 में हमने कुल लागत राशि में होने वाले परिवर्तन के प्रभाव की व्याख्या की थी तथा स्पष्ट किया था कि यदि साधनों की कीमतें (यानी समलागत रेखा का ढलान) यथावत् रहें तो कुल लागत राशि में वृद्धि होने पर फर्म सामान्यत पूंजी व श्रम दोनों की अधिक मात्रा का प्रयोग करके उत्पादन का स्तर बढा लेती है।

परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि कुल लागत राशि में वृद्धि होने पर श्रम व पूंजी दोनों की मात्राओं में समान वृद्धि की जाए। वस्तुत लागत-राशि में वृद्धि होने पर किसी साधन के प्रयोग में होने वाली सापेक्ष प्रतिक्रिया ही उस साधन की प्रकृति का निर्धारण करती है। इस प्रतिक्रिया (responsiveness) को 'लागत-लोच" अथवा कुल-व्यय लोच (outlay elasticity or expenditure elasticity) की संज्ञा दी जाती है। श्रम व पूंजी की व्यय लोच को हम निम्न रूप में व्यक्त कर सकते हैं—

$$\eta_L = \frac{dL}{dC^o} \cdot \frac{C^o}{L} \text{ (श्रम की लागत-लोच)} \qquad \ldots(9\ 5)$$

$$\eta_K = \frac{dK}{dC^o} \cdot \frac{C^o}{K} \text{ (पूंजी की लागत लोच)} \qquad \ldots(9.6)$$

समीकरण (9 5) मे श्रम की लागत-लोच (η_L) का सूत्र प्रस्तुत किया गया है जबकि समीकरण (9 6) मे पूजी की लागत-लोच निहित है। $\frac{dL}{dC^{\circ}}$ तथा $\frac{dK}{dC^{\circ}}$ क्रमश लागत मे वृद्धि के फलस्वरूप क्रमश. श्रम व पूजी मात्राओ मे होने वाली वृद्धि को व्यक्त करते हैं जबकि L, K व C° क्रमश. श्रम, पूजी व लागत की मूल मात्रा/राशि हैं।

सामान्य तौर पर यह मान्यता ली जा सकती है कि जिस अनुपात मे लागत राशि मे परिवर्तन होता है उसी अनुपात मे साधन की मात्रा मे भी परिवर्तन होगा। ऐसे साधन को "सामान्य साधन" (normal input) के नाम से जाना जाता है। इसके विपरीत यदि फर्म किसी साधन की मात्रा मे लागत (outlay) की अपेक्षा अधिक अनुपात मे वृद्धि करती है तो ऐसे साधन को श्रेष्ठतर (superior) साधन की सज्ञा दी जाती है, जबकि लागत बढने पर भी यदि किसी साधन की कम मात्रा प्रयोग मे ली जाए तो इसे हीन (inferior) साधन के रूप मे जाना जाता है। बहुधा श्रेष्ठतर साधन पर लागत राशि का अपेक्षाकृत अधिक भाग व्यय कर दिया जाता है, जबकि हीन साधन पर लागत राशि का अनुपात निरतर घटता जाता है।

चित्र 9 7 मे तीन स्थितिया प्रस्तुत की गई हैं। यह ठीक है कि लागत राशि मे वृद्धि होने पर फर्म ऊचे समोत्पाद वक्र I_2 पर नई साम्य स्थिति मे पहुच जाती है,
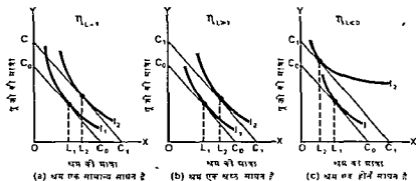
चित्र 9 7 लागत राशि मे परिवर्तन तथा श्रम की मात्रा

तथा उत्पादन का ऊचा स्तर प्राप्त करने लगती है। परतु लागत राशि मे वृद्धि का प्रभाव किसी साधन की मात्रा पर किस प्रकार का होगा, यह साधन की प्रकृति पर ही निर्भर करता है। चित्र 9 7 के पैनल (a) मे श्रम व पूजी दोनो को सामान्य साधन मानते हुए यह बतलाया गया है कि इनकी मात्रा मे लागत के समानुपाती वृद्धि होगी। पैनल (b) मे यह बतलाया गया है कि लागत राशि मे वृद्धि होने पर श्रम की मात्रा मे अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है यानी पूजी की मात्रा मे बहुत थोडी सी वृद्धि

हो पाती है। इन दोनों ही स्थितियों में श्रम व पूंजी की लागत-लोच धनात्मक होगी। प्रथम स्थिति (पैनल a) में दोनों की लागत लोच इकाई के समान होगी, जबकि द्वितीय स्थिति में श्रम की लागत लोच इकाई से अधिक ($\eta_L > 1$) तथा पूंजी की लागत लोच इकाई से कम ($\eta_K < 1$) होगी। पैनल (b) से यह भी स्पष्ट होता है कि समोत्पाद वक्र (I_2) पर श्रम के श्रेष्ठतर होने के कारण इसका सीमांत उत्पादन अधिक होगा तथा इस कारण उसका ढलान नई साम्य स्थिति में पूर्वापेक्षा अधिक होगा।

परन्तु यदि श्रम एक हीन साधन है तो इसका सीमांत उत्पादन कम होगा तथा लागत राशि के वृद्धि होने के बावजूद ऊंचे समोत्पाद वक्र पर श्रम की कम मात्रा प्रयुक्त की जाएगी। चित्र 9 7 के पैनल (c) से यह भी स्पष्ट होता है कि I_2 पर I_1 की अपेक्षा समोत्पाद वक्र का ढलान यानी श्रम का सापेक्ष सीमान्त उत्पादन $\frac{MP_L}{MP_K}$ कम है। श्रम के हीन साधन होने की स्थिति में श्रम की प्रयुक्त मात्रा OL_1 से घटकर OL_2 हो जाती है।

विस्तार-पथ एवं लागत लोच
(Expansion Path and Outlay Elasticity)

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, विभिन्न उत्पादन स्तरों पर श्रम व पूंजी के न्यूनतम लागत वाले संयोगों के बिंदु-पथ को विस्तार पथ कहा जाता है। इसीलिए विस्तार-पथ को किसी फर्म के दीर्घकालीन कुल लागत वक्र (long-run total cost curve) की भी संज्ञा जा सकती है। इसीलिए विस्तार-पथ के ढलान को देखकर हम लागत लोच का अनुमान कर सकते है। चित्र 9 8 में हमने OE विस्तार पथ के तीन बिंदुओं A, B व C पर लागत-लोच का माप लिया है।

चित्र 9 8 विस्तार पथ एवं लागत-लोच

पहले A बिंदु पर श्रम की लागत लोच देखिए। इस बिंदु पर लागत लोच इकाई से अधिक है ($\eta_L = \frac{dL}{dC} \cdot \frac{C}{L} > 1$) जिसका अभिप्राय यह है कि श्रम पूंजी की अपेक्षा एक श्रेष्ठतर साधन है। इस बिंदु पर विस्तार-पथ मूल बिंदु से नतोदर (concave) है जिसका यह अर्थ है कि लागत की अपेक्षा श्रम की मात्रा में अनुपात
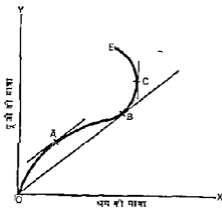
से अधिक वृद्धि होती है। A से आगे विस्तार पथ मूल बिंदु से उन्नतोदर (convex) हो जाता है जिसका यह अर्थ है कि श्रम की लागत लोच इकाई से कम ($\eta_L<1$) है यानी लागत की अपेक्षा श्रम की मात्रा मे अनुपात से कम वृद्धि होती है।

अब विस्तार पथ के बिंदु B को देखिए। इस बिंदु पर मूल बिंदु से चल रही किरण (ray from the origin) का ढलान $\left(\frac{C^0}{L}\right)$ तथा B पर स्पर्श रेखा का ढलान $\left(\text{slope of the tangent at } B \text{ or } \frac{dL}{dC^0}\right)$ दोनो समान हैं और इसलिए श्रम की लागत लोच इकाई के समान ($\eta_L=1$) है। विस्तार पथ के बिंदु C पर $\frac{dL}{dC^0}=0$ होने के कारण श्रम की लागत लोच भी शून्य ($\eta_L=0$) होगी। इसके आगे विस्तार-पथ बाईं ओर मुडता है जिसका अभिप्राय यह है कि लागत मे वृद्धि होने पर भी श्रम के प्रयोग मे कमी की जाती है यानी श्रम की लागत-लोच ऋणात्मक ($\eta_L<0$) होगी। संक्षेप मे, यदि विस्तार पथ नतोदर रहता है तो श्रम एक श्रेष्टतर साधन माना जाता है, यदि विस्तार-पथ का ढलान कम होता है अर्थात् यह मूल बिंदु से उन्नतोदर रहता है तो श्रम एक सामान्य साधन होता है, और यदि विस्तार-पथ बाई ओर मुड जाता है तो श्रम को एक हीन (inferior) साधन माना जाता है।

9 5 उपभोक्ता एवं उत्पादक के व्यवहार मे समानताए
(Analogies between the Consumer and the Producer Behaviour)

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपभोक्ता तथा उत्पादक के व्यवहार से सबद्ध सिद्धांतों मे काफी समानता है। प्रथम तो यह कि जहा उपभोक्ता का उद्देश्य या लक्ष्य फलन दी हुई आय का विभिन्न वस्तुओ के मध्य आवटन करके अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना है, वही उत्पादक का उद्देश्य साधनो का इष्टतम प्रयोग करके निर्दिष्ट लागत के अतर्गत अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। उत्पादक साधनो को इस प्रकार प्रयोग मे लेता है ताकि उत्पादन की लागत न्यूनतम हो सके।[2] द्वितीय, आय मे वृद्धि होने पर जिस प्रकार एक उपभोक्ता ऊचे अनधिमान वक्र पर

2 दो वस्तुओं के इष्टतम सयोग हेतु उपभोक्ता इनकी सीमात प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy}) को वस्तुओ की कीमत के अनुपात के समान करना चाहेगा—

$$-\frac{dY}{dX}=\frac{MU_x}{MU_y}=\frac{P_x}{P_y}$$

इसी प्रकार निर्दिष्ट लागत में अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने हेतु अथवा निर्दिष्ट उत्पादन-स्तर को न्यूनतम लागत पर प्राप्त करने हेतु फर्म दो साधनों की सीमात तकनीकी प्रतिस्थापन दर ($MRTS$ K *for* L) यानी श्रम व पूजी के सीमात उत्पादनो के अनुपात व साधनो की कीमतो के अनुपात को समान करना चाहेगा—

$$-\frac{dK}{dL}=\frac{MP_L}{MP_K}=\frac{w}{r}$$

नई साम्य स्थिति प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार लागत-राशि में वृद्धि होने पर फर्म ऊंचे समोत्पाद वक्र पर नई साम्य स्थिति प्राप्त करती है। दोनों ही प्रकार के विश्लेषण में हमारी मान्यता यह रहती है कि वस्तुओं या साधनों की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता तथा ऊंचा वक्र अधिक सन्तुष्टि अथवा उत्पादन के ऊंचे स्तर को व्यक्त करता है। इस दृष्टि से उपभोक्ता के आय-उपभोग वक्र (I_{CC}) एवं फर्म के विस्तार-पथ में समानता है।

दोनों ही प्रकार के विश्लेषण में तीसरी समानता यह है कि जहां उपभोक्ता किसी वस्तु की कीमत में कमी होने पर सामान्यतया उसकी अधिक मात्रा खरीदता है, ठीक उसी प्रकार किसी साधन की कीमत में कमी होने पर उत्पादक भी उस साधन की सामान्य तौर पर अधिक इकाइयों का प्रयोग करना चाहेगा। परन्तु हमने यह भी देखा कि उपभोक्ता गिफिन वस्तु की मात्रा में कीमत के साथ ही कभी मा वृद्धि करता है। चौथे, जिस प्रकार आय में वृद्धि होने पर भी हीन वस्तु की मात्रा में उपभोक्ता द्वारा कमी कर दी जाती है, ठीक उसी प्रकार कुल लागत राशि में वृद्धि होने पर उत्पादक हीन साधन के प्रयोग में कटौती कर देता है।

इसके बावजूद दोनों प्रकार के विश्लेषण में मूलभूत अंतर है। प्रथम, जहां उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण में अनधिमान वक्रों को सन्तुष्टि के क्रम में रखने के बावजूद हम सन्तुष्टि के स्तर को मापने में समर्थ नहीं हैं, वहीं उत्पादक व्यवहार के विश्लेषण में समोत्पाद वक्रों पर अंकित उत्पादन का स्तर काल्पनिक न होकर वास्तविक मात्र होती है। द्वितीय, हम उपभोक्ता के कीमत उपभोग वक्र (Price Consumption Curve) के माध्यम से किसी वस्तु के मांग वक्र को निरूपित कर सकते हैं, परन्तु किसी उत्पादक के समोत्पाद मानचित्र (isoquant map) के आधार पर साधन का मांग वक्र निरूपित नहीं किया जा सकता। जब मजदूरी की दर में कमी होती है तो उत्पादक श्रम व पूंजी दोनों की (सामान्यतया) अधिक मात्रा का प्रयोग करके उत्पादन की मात्रा को बढ़ाता है। इसके फलस्वरूप श्रम का सीमांत उत्पादन वक्र ऊपर की ओर विवर्तित होता है, और इसमें श्रम की मांग में और अधिक वृद्धि हो जाती है। परन्तु साथ ही यदि यह मान लिया जाए कि बाजार में विद्यमान सभी उत्पादक मजदूरी की दर में कटौती होने पर श्रम की अधिक मात्रा का प्रयोग करके उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करते हैं तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि सभी के द्वारा उत्पादन बढ़ाने पर वस्तु का पूर्ति वक्र विवर्तित हो जाएगा तथा वस्तु की कीमत में कमी हो जाएगी। इसके फलस्वरूप अगले चक्र में उत्पादकों को श्रम की कम मात्रा प्रयुक्त करने की प्रेरणा प्राप्त होगी। संक्षेप में, किसी साधन का वास्तविक मांग वक्र निरूपित करना अत्यंत कठिन है क्योंकि इसकी मांग केवल मजदूरी की दर ही नहीं, अनेक दूसरे घटकों द्वारा भी प्रभावित होती है।

10

अल्पकालीन लागत सिद्धांत
(THEORY OF SHORT RUN COSTS)

प्रस्तावना

अब तक हमने साधनो एव उत्पादन के मध्य विद्यमान भौतिक सबधो की व्याख्या की थी। हमने इसके पूर्व के दो अध्यायो मे बतलाया था कि कोई भी विवेकशील फर्म क्योकर साधनो का इष्टतम उपयोग करती है। अध्याय 8 मे हमने देखा कि जिस बिंदु पर सम-लागत रेखा (iso-cost line) समोत्पाद वक्र को स्पर्श करती है, उत्पादन के उसी स्तर पर श्रम व पूजी का न्यूनतम लागत वाला सयोग होगा। इस दृष्टि से सम-लागत रेखा दो कार्य सपादित करती है। एक ओर तो इसका ढलान श्रम व पूजी की कीमतो $\frac{w}{r}$ के अनुपात को प्रदर्शित करती है जो साम्य स्थिति मे समोत्पाद वक्र के ढलान के समान होना चाहिए। दूसरी ओर, सम-लागत रेखाओ एव समोत्पाद वक्रों का प्रत्येक स्पर्श बिंदु उत्पादन के विभिन्न स्तरो पर कुल लागत की प्रवृत्ति को भी दिखलाता है। हम विभिन्न सम-लागत रेखाओ से सबद्ध कुल लागतो एव विभिन्न साम्य स्थितियो पर प्राप्त उत्पादन के स्तरो को देखकर एक तालिका का निर्माण कर सकते हैं। यह तालिका उत्पादन की लागतो एव उत्पादित वस्तु की मात्राओं का सबध व्यक्त करेगी। इसी के आधार पर हम किसी फर्म के लागत-फलन का निरूपण कर सकते हैं। परतु फर्म के लागत फलन की विवेचना करने से पूर्व हम उत्पादन की लागत से सबद्ध विभिन्न अवधारणाओ (concepts) की व्याख्या करेंगे।

1 सामाजिक तथा निजी लागतें (Social versus Private Costs)

किसी भी देश अथवा समाज को उपलब्ध साधनों का स्टॉक सीमित होता है। जैसा कि अध्याय 2 मे बतलाया गया था, यदि समाज उपलब्ध साधनो की अधिक मात्रा का प्रयोग करके X का उत्पादन बढाना चाहता है तो उसे Y के उत्पादन मे प्रयुक्त साधनों मे कमी करके Y का उत्पादन कम करना होगा।

सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि समाज को उपलब्ध साधनो से A की अधिकतम OA^* इकाइयो का एव B की अधिकतम OB^* इकाइयों का उत्पादन सभव है। अन्य शब्दो मे, समाज की उत्पादन-सभावना-सीमा (production

Possibility-frontier) A*B* है। यह भी मान लीजिए, समाज वर्तमान मे इस उत्पादन सभावना सीमा पर E बिंदु पर स्थित है जहा उसे OA_1 मात्रा A की तथा OB_1 मात्रा B की उपलब्ध हो रही है। अब मान लीजिए समाज B की मात्रा को बढा कर OB_2 करना चाहता है। चित्र 10 1 के अनुसार B की B_1B_2 अतिरिक्त मात्रा को प्राप्त करने के लिए समाज को A की A_1A_2 मात्रा का परित्याग करना होगा। सक्षेप मे A_1A_2 यह सामाजिक लागत है जिसे कोई देश या समाज B_1B_2 की अतिरिक्त मात्रा प्राप्त करने हेतु वहन करता है।
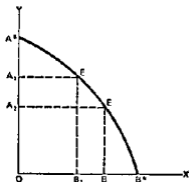
चित्र 10 1 को देखने के बाद यह निष्कर्ष देना उपयुक्त होगा कि B को प्राप्त करने की सामाजिक लागत A की मात्रा मे किया जाने वाला परित्याग ही है। वस्तुत दो वस्तुओ के सदर्भ म सामाजिक लागत की अभिव्यक्ति उत्पादन सभावना वक्रो के ढलान म ही हो जाती है।

चित्र 10 1 उत्पादन-सभावना-वक्र तथा सामाजिक लागत

कुछ सामाजिक लागतो का प्रत्यक्ष माप लेना सभव नही होता, परतु इनके प्रभाव दूरगामी होते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई समाज या देश औद्योगिक उत्पादन में 20 प्रतिशत वृद्धि करने का निर्णय ले ले, तथा इसके फलस्वरूप वायु अथवा जल प्रदूषण में 25 प्रतिशत वृद्धि हो जाए और इसके फलस्वरूप अगली पीढ़ियों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव हो तो यह सब अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादन की सामाजिक लागत है। परतु ऐसी सामाजिक लागतो का उत्पादन की निजी लागतो के आकलन में समावेश नही हो सकता। यही कारण है कि अनेक बार निजी लागतो एव सामाजिक लागतो में विरोधाभास पाया जाता है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सामाजिक लागतें किसी वस्तु की अतिरिक्त मात्रा की प्राप्ति हेतु समाज द्वारा किए गए त्याग का ही दूसरा नाम है। इस के विपरीत निजी लागतें वे खर्चे हैं जिन्हे कोई फर्म किसी वस्तु के उत्पादन हेतु चुकाती है। ये लागतें श्रम की मजदूरी, पूजी के ब्याज, कर्मचारियो की पगार, कच्चे माल की कीमत, परिवहन लागतें, भवन के किराए आदि के रूप में हो सकती है जिन्हे उत्पादक या उसकी फर्म चुकाती है। निजी लागतें वस्तुत उद्यमी की सगठन-कुशलता पर काफी सीमा तक निर्भर करती हैं। यदि उद्यमी कठिन प्रयास करके उत्पादन लागत में कमी कर ले तो इससे उसी को प्राप्त होने वाले लाभ में वृद्धि होगी। बहुधा सामाजिक लागतो तथा निजी लागतो में विरोधी प्रवृत्ति पाई जाती है।

2 बाह्य तथा आनरिक लागतें (Explicit versus Implicit Costs)

प्रोफेसर मार्शल ने 'उत्पादन की लागत' (cost of production) तथ उत्पादन के खर्चों' (production expenses) के मध्य अतर बतलाने का प्रया किया था। उन्होने कहा कि बहुधा किसी वस्तु के उत्पादन हेतु श्रम की अनेक किस्म तथा अनेक प्रकार की पूजी का प्रयोग करना होता है। मार्शल ने यह भी कहा f उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रयुक्त श्रम के अतिरिक्त हमारे द्वार उपभोग में कटौती करके उत्पादन हेतु आवश्यक पूजी जुटाई जाती है। उन्होने कहू "ये सब प्रयास एव त्याग मिलाकर वस्तु की उत्पादन लागत कहलात हैं।' इस विपरीत फर्म अन्य व्यक्तियो को उनके द्वारा किए गए प्रयासो के लिए जो भुगता करती है वह उत्पादन के खर्चों के रूप में जाना जाता है।[1]

आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पादन के खर्चों को उत्पादन की बाह्य लागत (explicit costs) के रूप में परिभाषित करते हैं। इसके विपरीत आतरिक लागत (Implicit costs) के अतर्गत हम उद्यमी के स्वय के अथवा परिवार के सदस्यो श्रम की मजदूरी, उसकी पूजी के ब्याज या स्वय के भवन के किराए को शामिल कर हैं जिनके लिए उस उस समय भुगतान करना होता जब कि इन साधनो को व दूसरो स लेकर उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त करता। अन्य शब्दो मे, आनरिक लाग वे भुगतान है जो उद्यमी अपने स्वय के साधनो के प्रयोग हेतु वसूल करना चाहता जिसमे उसके निवेश पर अपेक्षित न्यूनतम प्रतिफल भी शामिल है। इसके विपरी बाह्य लागतें वे मौद्रिक भुगतान हैं जो उद्यमी अन्य व्यक्तियो को उनकी सेवाओ बदले वस्तुत चुकाता है।

व्यष्टिगत अर्थशास्त्र मे लागत की परिभाषा
(Definition of Costs in Micro-economic Theory)

सामान्य लेखा-जोखा के अतर्गत उत्पादन की लागतों में केवल बाह्य या मौद्रि रूप मे किए गए भुगतानो को ही शामिल किया जाता है। इनमे हम कच्चे माल की कीमत, ऊर्जा स्रोतो या विद्युत-शक्ति के लिए किए गए व्यय, मजदूरी, ब्याज परिवह लागतों, भवन के लिए चुकाया गया किराया कर के रूप मे किए गये भुगतान, घिसाव इत्यादि को शामिल करते हैं। परतु सामान्य लेखा-जोखा के अतर्गत उद्यमी क द्वारा स्व के साधनो के प्रयोग हेतु चाहे गए भुगतान (आतरिक लागतो) को कदापि शामिल न किया जाता।

परतु ये सामान्य लेखा जोखा सबधी विवरण वास्तविक स्थिति को प्रस्तुत न करते क्योकि उद्यमी के अपने साधनो की भी कोई अवसर लागत (Opportuni cost) अवश्य होती है, और इसलिए उनमे सबद्ध लागतो (आतरिक लागतो) व

[1] Alfred Marshall, Principles of Economics (Eighth Edition—Reprint, 1959

भी कुल लागतों में शामिल किया जाना चाहिए। व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में इसीलिए कुल लागतों के निरूपण में बाह्य एवं आतरिक दोनों ही प्रकार की लागतों को शामिल किया जाता है।

यही नहीं, लागतों के आकलन को और अधिक वास्तविक स्वरूप प्रदान करने हेतु उपरोक्त लागतों में सामान्य लाभ को भी शामिल किया जाता है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी लेखाकार उत्पादन की लागत में लाभ को कदापि शामिल नहीं करता क्योंकि उसकी दृष्टि में लाभ तो आगम व लागतों के मध्य का एक अंतर मात्र है जो अवशेष राशि (residual) होती है। इसके विपरीत अर्थशास्त्री की रुचि उस कीमत का आकलन करने में होती है जिस पर कोई भी फर्म या उद्यमी वस्तु की निर्दिष्ट मात्रा बेचने को तत्पर है। प्रोफेसर बोल्डिंग ने स्पष्ट किया है कि आर्थिक विश्लेषण में लागत के अंतर्गत सामान्य लाभ को शामिल करना आवश्यक समझा जाता है क्योंकि लागतों में लाभ को शामिल करके ही उद्यमी को इस बात की प्रेरणा दी जा सकती है कि वह उत्पादन के साधनों को प्रयुक्त करके निर्दिष्ट मात्रा में वस्तु को बिक्री हेतु प्रस्तुत कर सके। "सामान्य लाभ" (normal profit) वस्तुत वह न्यूनतम राशि है जो उद्यमी को अपने श्रम व पूंजी के प्रयोग द्वारा उत्पादन प्रक्रिया जारी रखने की प्रेरणा देती है। अन्य शब्दों में, इस राशि से कम लाभ प्राप्त होने पर उद्यमी अपना व्यवसाय बंद कर देता है। अस्तु, उत्पादन की कुल लागत के तीन अंश हैं : बाह्य लागतें, आतरिक लागतें तथा सामान्य लाभ।[2]

उपरोक्त विवरण का अभिप्राय यही है कि कोई भी फर्म जिन बाह्य लागतों *अथवा मौद्रिक भुगतानों को लागत के रूप में चित्रित करती है, वस्तुत उनसे उत्पादन* की कुल लागतों का सही माप प्राप्त नहीं होता। बहुधा बाह्य लागतें भी आवश्यक रूप से उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त साधनों की अवसर लागतों को प्रतिबिंबित नहीं कर पाती। इस अध्याय के शेष भाग में हमारा लागत संबंधी समूचा विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित होगा कि कुल लागत में बाह्य लागतें, आतरिक लागतें तथा सामान्य लाभ सभी सम्मिलित हैं।

10 1 अल्प व दीर्घकाल
(Short and Long Runs)

अध्याय 7 में अल्पकाल की परिभाषा एक ऐसी अवधि के रूप में दी गई थी जिसमें उत्पादन का एक साधन या अनेक साधन स्थिर रहते हैं, तथा केवल एक या दो साधनों की मात्रा में ही परिवर्तन संभव है। हमने यह भी देखा था कि फर्म का प्रमुख उद्देश्य परिवर्तनशील साधन या साधनों का उपयोग इष्टतम स्तर तक ही करना होता है। अल्पकाल में फर्म परिवर्तनशील साधनों का उपयोग उस स्तर पर करती है जहां इनकी लागत न्यूनतम हो। परंतु जैसा कि हम अध्याय 7 में देख चुके हैं, दीर्घकाल में सभी

2 K E Boulding, Economic Analysis, Vol I Microeconomics, p 250

साधन परिवर्तनशील होते हैं तथा फर्म का उद्देश्य इष्टतम पैमाने तक अपना आकार बढाना होता है।

चूंकि अल्पकाल मे फर्म स्थिर एव परिवर्तनशील दोनों ही प्रकार के साधनो का प्रयोग करती है, अतएव अल्पकाल मे फर्म को स्थिर एव परिवर्तनशील लागतें वहन करनी होनी हैं। वस्तुत स्थिर लागतें वे हैं जो स्थिर साधनों के लिए चुकाई जाती हैं तथा जिनका उत्पादन के स्तर से कोई सबध नही होता। इसके विपरीत परिवर्तनशील साधनो से सबद्ध लागतें परिवर्तनशील लागतें (Variable costs) कहलाती हैं तथा इनमे उत्पादन की मात्रा के साथ साथ परिवर्तन होता है। अन्य शब्दो मे, परिवर्तनशील लागतें उत्पादन के स्तर से प्रत्यक्षत प्रभावित होती हैं। यदि उत्पादन की मात्रा शून्य हो तो परिवर्तनशील लागतें भी शून्य होनी हैं, परतु ऐसी स्थिति मे भी फर्म को स्थिर लागतें तो वहन करनी ही होगी। चूंकि दीर्घकाल मे उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, इसीलिए दीर्घकाल मे सभी लागतें परिवर्तनशील लागतें होती हैं।

अल्पकालीन लागत का सिद्धांत
(Theory of Cost in the Short Run)

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, अल्पकाल वह अवधि है जिसमे फर्म अपनी क्षमता को बढाए बिना ही उत्पादन के स्तर मे वृद्धि कर सकती है। यह क्षमता फर्म को उपलब्ध स्थिर साधनो की मात्रा अथवा प्लाट के आकार द्वारा निर्धारित होती है। इस स्थिर प्लाट से सबद्ध लागतो का भुगतान तो फर्म को करना ही होता है चाहे वह उत्पादन करती हो या नही करती हो। परतु, जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, उत्पादन के स्तर के साथ-साथ परिवर्तनशील लागतो मे प्रत्यक्षत परिवर्तन होता है, अलबत्ता लागतो मे होने वाली यह वृद्धि उत्पादन के सभी स्तरो पर एक जैसी नहीं होती। जैसा कि हम आगे देखेंगे, जब तक परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल वर्द्धमान दर पर प्राप्त होते हैं, परिवर्तनशील लागतो मे ह्रासमान दर से वृद्धि होगी। इसके विपरीत जब परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल ह्रासमान दर से प्राप्त होते हैं तो परिवर्तनशील लागतें बढती हुई दर से बढती हैं। तालिका 10 1 मे हमने उत्पादन के विभिन्न स्तरो पर स्थिर एव परिवर्तनशील लागतो की प्रवृत्ति को दिखाया है। जैसा कि तालिका 10 1 के कॉलम 2 से पता चलता है, स्थिर लागतें (TFC) सदैव स्थिर रहती हैं भले ही उत्पादन का स्तर कितना ही क्यो न बढा दिया जाए। परतु परिवर्तनशील लागतो (TVC) एव कुल लागतो (TC=TFC+TVC) मे उत्पादन के स्तर के अनुरूप वृद्धि होती है। वस्तुत परिवर्तनशील साधन का प्रयोग उत्पादन की किस अवस्था (देखिए अध्याय 7) मे किया जा रहा है, यह इस बात का निर्धारण करेगा कि परिवर्तनशील लागतो मे ह्रासमान दर से वृद्धि हो रही है अथवा वर्द्धमान दर से।

तालिका 10.1
उत्पादन की स्थिर, परिवर्तनशील एवं कुल लागतें

उत्पादन की मात्रा	कुल स्थिर लागतें TFC	कुल परिवर्तनशील लागतें (TVC)	कुल लागतें (TC) (TC=TFC+TVC)
1	2	3	4
0	10	0	10
1	10	10	20
2	10	16	26
3	10	20	30
4	10	22	32
5	10	26	36
6	10	32	42
7	10	39	49
8	10	50	60
9	10	65	75
10	10	85	95

तालिका 10.1 से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि परिवर्तनशील लागतों में उत्पादन की मात्रा के साथ-साथ परिवर्तन होता है। यह मान्यता लेते हुए कि परिवर्तनशील साधन (साधनों) की कीमत (कीमतों) में कोई परिवर्तन नहीं होता, परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल से विपरीत प्रवृत्ति परिवर्तनशील लागतों में दिखाई देगी। हम अगले अनुभाग में इस बात की विस्तृत व्याख्या करेंगे।

चित्र 10.2 को तालिका 10.1 के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। चित्र 10.2 से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुल परिवर्तनशील लागतें एवं कुल लागतें दोनों
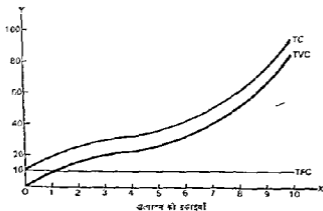
चित्र 10.2 स्थिर, परिवर्तनशील एवं कुल लागतें

ही मे उत्पादन की मात्रा के साथ-साथ वृद्धि होती है । जहा कुल स्थिर लागत अपरिवर्तनीय रहती है, कुल परिवर्तनशील लागतो (TVC) एव कुल लागतो (TC) मे पहले घटती हुई दर पर और फिर बढती हुई दर पर वृद्धि होती है ।

चित्र 10 2 से यह भी स्पष्ट होता है कि कुल लागत (TC) वक्र एव कुल परिवर्तनशील लागत वक्र की शीर्ष दूरी कुल स्थिर लागत है । एक महत्त्वपूर्ण बात जो हमें चित्र 10 2 म पता चलती है वह यह है कि उत्पादन के ऊचे स्तर पर कुल लागत एव कुल परिवर्तनशील लागत वक्र समीप आते दिखाई देते हैं । ऐसा इसलिए होता है कि उत्पादन के प्रारंभिक स्तर पर स्थिर लागतो का कुल लागतो मे अनुपात अधिक रहता है, परतु उत्पादन का स्तर बढने पर यह अनुपात घटता जाता है । इन वक्रो के ढलान एक सीमा के बाद बढते हैं और इसलिए दोनो वक्रो की शीर्ष दूरी वही रहने पर भी ऊपरी तौर पर देखने से यही आभास होता है कि दोनो वक्र निकट आते जा रहे हैं ।

10 3 कुल उत्पादन एव कुल परिवर्तनशील लागत (Total Product and Total Variable Cost)

जैसा कि ऊपर हमने देखा था, कुल परिवर्तनशील लागतो मे उत्पादन के साथ-साथ वृद्धि होती है, और इस दृष्टि से उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि हेतु हमे अधिक धन राशि व्यय करनी होती है । इसी बात को हम निम्न रूप मे भी व्यक्त कर सकते हैं—

$$\left.\begin{array}{l} TVC=f\ (Q) \\ \text{लेकिन}\ \ Q=g\ (X_1) \\ \text{अत}\ \ TVC=h\ (X_2) \end{array}\right\} \qquad \cdots\cdots(10\ 1)$$

समीकरण (10 1) से केवल यही ज्ञात होता है कि कुल परिवर्तनशील लागतें उत्पादन की मात्रा (Q) पर निर्भर करती हैं । परतु चूकि उत्पादन की मात्रा स्वय परिवर्तनशील साधन (X_1) की मात्रा पर निर्भर करती है अत. परिवर्तनशील लागतें वस्तुत परिवर्तनशील साधन की मात्रा पर निर्भर करती हैं । हम यह भी जानते हैं कि उत्पादन (Q) की मात्रा मे वृद्धि करने हेतु हमे परिवर्तनशील साधन की मात्रा मे वृद्धि करनी होती है । अर्थात्—

$$g\ (X_1'') > g(X_1')$$

की स्थिति तभी हो सकती है जब उत्पादन के कम स्तर $[g(X_1'')]$ की प्राप्ति हेतु ऊचे स्तर की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधन स्तर से कम साधन की जरूरत हो $[g(X_1') < g(X_1'')]$ । और इसीलिए जब साधन के प्रयोग का स्तर X_1' से बढाकर X_1'' किया जाता है तो उत्पादन के साथ-साथ कुल परिवर्तनशील लागतो मे भी वृद्धि होती है ।

यह मानते हुए कि X_1 ही एकमात्र परिवर्तनशील साधन है, हम अध्याय 7 में प्रस्तुत एक सामान्य उत्पादन फलन (चित्र 7) को यहां पुनः प्रस्तुत करना चाहेंगे। जैसा कि हम जानते हैं, परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of Variable Proportions) पर आधारित यह उत्पादन फलन (a normal well-behaved production function) इस बात की ओर इंगित करता है कि प्रारम्भ में X_1 की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर पर बढ़ता है, फिर घटती हुई दर पर, और फिर एक सीमा पर पहुंचकर अधिकतम हो जाता है। हम उत्पादन की तृतीय अवस्था में साधन के उपयोग को अव्यावहारिक एवं अविवेकपूर्ण मानते हैं। चित्र 10.3 के पैनल (a) में हमने क्षैतिज अक्ष पर साधन की इकाइयों का माप लेकर शीर्ष अक्ष पर उत्पादन की मात्रा को मापा है। जैसा कि चित्र में स्पष्ट हो जाता है X_1 की मात्रा में वृद्धि के साथ पहले उत्पादन बढ़ती हुई दर पर बढ़ता है, फिर घटती हुई दर पर और अन्त अधिकतम बिंदु पर पहुंच जाता है।
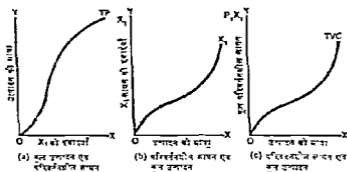
चित्र 10.3 परिवर्तनशील साधन, उत्पादन एवं परिवर्तनशील लागत

अब चित्र 10.3 का पैनल (b) देखिए। इस पैनल में हमने क्षैतिज अक्ष पर उत्पादन की मात्रा एवं शीर्ष अक्ष पर साधन की इकाइयों का माप लिया है। वस्तुतः पैनल (b) का OX_1 वक्र पैनल (a) के TP वक्र का ही प्रतिरूप है। परन्तु OX_1 वक्र से हमें यह पता लगता है कि उत्पादन की मात्रा जैसे-जैसे बढ़ाई जाती है, वैसे-वैसे प्रारम्भ में साधन की उत्तरोत्तर कम इकाइयों की आवश्यकता होती है परन्तु एक सीमा के बाद उत्पादन में वृद्धि हेतु साधन की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयों के प्रयोग द्वारा ही निर्दिष्ट मात्रा में अतिरिक्त उत्पादन किया जा सकता है। वस्तुतः यह TP की प्रवृत्ति से ठीक विपरीत है। हम पैनल (b) को देखकर उत्पादन की X_1 के रूप में लागत का अनुमान करते हैं। अन्य शब्दों में, प्रारंभ में उत्पादन की अतिरिक्त मात्रा हेतु X_1 की भौतिक लागत घटती हुई दर पर बढ़ती है (ऐसा X_1 के वर्द्धमान प्रतिफल के कारण होता है) और फिर X_1 की भौतिक लागत (physical cost)

बढती हुई दर पर बढती है (ऐसा X_1 के ह्रासमान प्रतिफल के कारण होता है)। अब यदि X_1 की भौतिक लागत को इसकी स्थिर कीमत से गुणा कर दिया जाए (यानी P_1 को X_1 की मात्रा से गुणा कर दिया जाए) तो हमें उत्पादन की कुल परिवर्तनशील लागत ($TVC=P_1 X_1$) ज्ञात हो जाती है। चित्र 10 3 के पैनल (c) म हमने कुल परिवर्तनशील लागत वक्र (TVC) को प्रस्तुत किया है। चूंकि X_1 की कीमत (P_1) स्थिर है इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि TVC वक्र OX_1 वक्र का मौद्रिक रूपातर मात्र है।

10 4 औसत एव परिवर्तनशील लागतें
(Average and Marginal Costs)

तालिका 10 1 को देखकर हम उत्पादन की प्रति इकाई लागत (Average Cost) का सहज ही आकलन कर सकते हैं। ज्ञातव्य है कि तालिका 10 1 के कॉलम 4 के अनुसार उत्पादन की कुल लागत (TC) म कुल स्थिर लागत (TFC) एव कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) का योग लिया जाता है। अर्थात्—

$$TC=TFC+TVC \qquad ...(10\ 2)$$

प्रति इकाई उत्पादन लागत अथवा औसत उत्पादन लागत (AC) ज्ञात करने हेतु हम समीकरण (10 2) को उत्पादन की मात्रा स विभाजित कर सकते हैं—

$$\frac{TC}{Q}=\frac{TFC}{Q}+\frac{TVC}{Q} \qquad ...(10\ 3)$$

अथवा $$AC=AFC+AVC \qquad ...(10\ 4)$$

समीकरण (10 4) का अर्थ है कि औसत स्थिर लागत (AFC) तथा औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) का योग औसत लागत (AC) के समान होता है। तालिका 10 2 को हमने इसी आधार पर तालिका 10 1 से निरूपित किया है।

तालिका 10 2 से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा (Q) मे वृद्धि होती है, औसत स्थिर लागत (AFC) म एकदिष्ट ह्रास (Monotonic decrease) होता है। परतु औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) एव औसत लागत (AC) मे उत्पादन का स्तर बढने पर पहले कमी होती है और फिर वे बढने लगती हैं। प्रति इकाई को प्राप्त करने हेतु जो अतिरिक्त लागत वहन करनी होती है उसे सीमात लागत (MC या Marginal Cost) कहा जाता है और उसे तालिका 10 2 के कॉलम 5 मे प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि स्पष्ट है, सीमात लागत मे भी पहले कमी होती है और फिर यह तीव्र गति से बढने लगती है।

तालिका 10.2

औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील लागत, औसत लागत एवं सीमांत लागत

उत्पादन का स्तर	औसत स्थिर लागत (AFC)	औसत परिवर्तन-शील लागत (AVC)	औसत लागत (AC)	सीमांत लागत (MC)
1	2	3	4	5
0	—	—	—	—
1	10	10	20	10
2	5	8	13	6
3	3.3	6.7	10	4
4	2 5	5.5	8	2
5	2.0	5 2	7 2	4
6	1.7	5 3	7 0	6
7	1.4	5 6	7.0	7
8	1.3	6 2	7.5	11
9	1.1	7.2	8.3	15
10	1.0	8.5	9.5	20

स्रोत : तालिका 10.1

अब हम औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील लागत, औसत लागत एवं सीमांत लागत की विस्तार से चर्चा करेंगे ।

औसत स्थिर लागत (Average Fixed Cost or AFC) : कुल स्थिर लागत में उत्पादन की मात्रा का भाग देकर औसत स्थिर लागत ज्ञात की जाती है $\left(AFC = \frac{TFC}{Q}\right)$ । जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा बढ़ती है, औसत स्थिर लागत में कमी होती जाती है ।

चित्र 10.4 में हमने औसत स्थिर लागत वक्र को पैनल (a) में प्रस्तुत किया है जब कि कुल स्थिर लागत वक्र के आधार पर औसत स्थिर लागत का निरूपण पैनल (b) में किया गया है ।

चित्र 10 4 के पैनल (a) मे प्रस्तुत वक्र औसत स्थिर लागत (AFC) है तथा यह बतलाता है कि औसत स्थिर लागत एव उत्पादन की मात्रा मे विपरीत
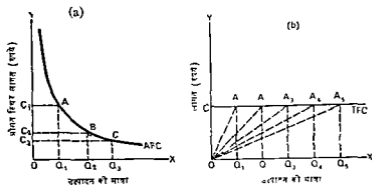
चित्र 10 4 औसत स्थिर लागत का निरुपण

सबध है। वस्तुत AFC एक आयताकार अधीद्र (rectangular hyperbola) है जिसके सभी बिंदुओ के अतर्गत वक्र का क्षेत्र समान रहता है। उदाहरण के लिए बिंदु A पर वक्र के अनर्गत क्षेत्र OQ_1AC_1 है, जो बिंदु B के अतर्गत क्षेत्र OQ_2BC_2 एव बिंदु C के अतर्गत विद्यमान क्षेत्र OQ_3CC_3 के समान है। यहा यह उल्लेखनीय है कि शीर्ष अक्ष पर औसत स्थिर लागत (AQ_1, BQ_2, CQ_3 .) को मापने पर कुल स्थिर लागत वही रहने के कारण ही इस वक्र को आयताकार अधीद्र की सज्ञा दी जाती है। अस्तु—

$$Q\ AFC=\overline{C}$$ जहा $\overline{C}$ कुल स्थिर लागत है।

परतु कुल उत्पादन को बहुत अधिक परिमाण तक बढाने पर भी AFC वक्र क्षैतिज अक्ष को कदापि नही छू सकेगा, अर्थात् औसत स्थिर लागत कभी शून्य नही हो सकेगी।

अब चित्र 10 4 का पैनल (b) देखिए। कुल स्थिर लागत $O\overline{C}$ स्तर पर स्थिर है जो TFC के क्षैतिज स्वरूप से स्पष्ट हो भी जाता है। यदि TFC पर हम कुछ बिंदु लेकर सबद्ध उत्पादन स्तर तक लब डालें तो हम केवल यही कहना चाहेगे कि सभी स्तरो पर इनकी शीर्ष दूरी (यानी स्थिर लागत) वही रहती है ($A_1Q_1= A_2Q_2=A_3Q_3=$ ...)। परतु यदि मूल बिंदु से प्रत्येक बिंदु पर एक किरण (ray) खींची जाए तो जैसे-जैसे उत्पादन बढेगा, इस किरण का ढलान उत्तरोत्तर कम हो जाएगा। अस्तु, कुल लागत के स्थिर रहते हुए जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है, औसत स्थिर लागत मे कमी होती जाती है। इस प्रकार OA_1 की अपेक्षा OA_2 का ढलान कम है और OA_2 की अपेक्षा OA_3 का ढलान कम है। इसी प्रकार Q की मात्रा बढने के साथ-साथ औसत स्थिर लागत मे कमी होती जाती है।

औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost) : जिस प्रकार चित्र 10.4 के पैनल (b) में हमने कुल स्थिर लागत की रेखा पर विभिन्न बिंदुओं का चुनाव करके इन पर पहुंचने वाली किरणों का ढलान देखकर औसत स्थिर लागत का निरूपण किया था, ठीक उसी प्रकार कुल परिवर्तनशील लागत वक्र (TVC) के आधार पर औसत परिवर्तनशील लागत वक्र का निरूपण किया जा सकता है। चित्र 10.5 के पैनल (b) में शीर्ष अक्ष पर कुल परिवर्तनशील लागत (TVC) एवं क्षैतिज अक्ष पर उत्पादन की मात्रा मापी गई है। यदि TVC वक्र पर तीन बिंदु A, B, C चुन कर इनसे क्षैतिज अक्ष पर लंब डालें जाएं तो इससे हमें तीन उत्पादन स्तरों OQ_1, OQ_2, व OQ_3 पर कुल परिवर्तनशील लागत का क्या स्तर होगा यह ज्ञात हो जाएगा। अब मूल बिंदु से इन पर किरण डालें तो हमें तीन त्रिभुज प्राप्त होंगे (OAQ_1, OBQ एवं OCQ_2)। इनकी भुजाओं OA, OB व OC के ढलान वस्तुतः औसत परिवर्तनशील लागत के स्तर को व्यक्त करती हैं। $\left(\frac{AQ_1}{OQ_1}=OA\ ,\ \frac{BQ}{OQ}=OB\ ,\ \frac{CQ_2}{OQ_2}=OC\right)$। चूंकि परिवर्तनशील साधन के वर्द्धमान प्रतिफल के कारण कुल परिवर्तनशील लागत प्रारंभ में ह्रासमान दर से बढ़ती है, अतः औसत परिवर्तनशील लागत में कमी होगी। B बिंदु पर मूल बिंदु से TVC वक्र पर पहुंचने वाली किरण का ढलान न्यूनतम है ($OA>OB<OC$), अतः B बिंदु पर औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) न्यूनतम है। चित्र 10.5 के पैनल (a) में प्रस्तुत AVC वक्र यही बतलाता है। पैनल (b) व (a) को देखने से यह भी स्पष्ट होता है कि ह्रासमान प्रतिफल के कारण TVC वक्र परिवर्तनशील लागत की वर्द्धमान प्रवृत्ति को दर्शाता है और इसलिए औसत परिवर्तनशील लागत B बिंदु के आगे बढ़ने लगती है।
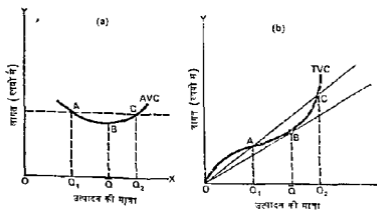
चित्र 10.5 औसत परिवर्तनशील लागत का निरूपण

अस्तु औसत परिवर्तनशील लागत वक्र अंग्रेजी के अक्षर U आकार का होता है जो इस बात को व्यक्त करता है कि औसत परिवर्तनशील लागत पहले घटती है और फिर एक सीमा के बाद बढ़ने लगती है।

औसत लागत (Average Cost)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, औसत स्थिर लागत (AFC) एवं औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) का योग औसत लागत मानी जाती है। औसत लागत का निरूपण भी औसत परिवर्तनशील लागत के अनुरूप ही होता है। चित्र 10 6 का पैनल (a) औसत लागत वक्र को तथा पैनल (b) कुल लागत वक्र को प्रदर्शित करता है जैसा कि पैनल (b) में हम देखते हैं जैसे जैसे हम कुल लागत वक्र (TC) पर ऊपर की ओर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे E बिंदु पर पहुंचने तक इस वक्र पर मूल बिंदु से चलने वाली किरणों का ढलान कम होता जाता है। इस बिंदु पर उत्पादन का स्तर OQ* है।
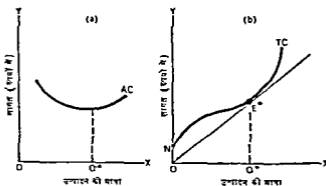
चित्र 10 6 औसत लागत वक्र का निरूपण

चित्र 10 6 के पैनल (b) में कुल लागत वक्र (TC) ON धनात्मक प्राचल से प्रारंभ होता है जो वस्तुत स्थिर लागत का प्रतीक है (देखिए चित्र 10 2)। चित्र 10 6 के पैनल (a) में औसत लागत वक्र प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि इस पैनल से स्पष्ट है, औसत परिवर्तनशील लागत वक्र (AVC) की भांति औसत लागत वक्र (AC) भी अंग्रेजी के अक्षर U की भांति है, जो इस बात को व्यक्त करता है कि औसत लागत पहले घटती है और फिर OQ* इकाई उत्पादन-स्तर से आगे बढ़ने लगती है। इसके बावजूद AC वक्र चित्र 10 5 के पैनल (a) में प्रदर्शित AVC वक्र से भिन्न है। इसका कारण यह है कि औसत लागत में औसत स्थिर लागत भी सम्मिलित होती है जबकि औसत परिवर्तनशील लागत में ऐसा नहीं है। इसी कारण यदि दोनों वक्रों को एक साथ प्रस्तुत किया जाए तो TVC से AVC का स्तर नीचा होगा।

सीमान्त लागत (Marginal Cost)

किसी भी विवेकशील अथवा अधिकतम लाभ प्राप्ति की आशा से कार्य करने वाली फर्म की निर्णय प्रक्रिया में सीमान्त लागत की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहती है। आगे हमने इस पुस्तक में यह बतलाया है कि प्रत्येक उपक्रमी उत्पादन के उसी स्तर पर अधिकतम लाभ अर्जित करता है जहाँ सीमान्त लागत उत्पादन के सीमान्त आगम के समान हो (MC=MR)। इस वर्तमान संदर्भ में फर्म के कुल लागत फलन के आधार पर सीमान्त लागत फलन एवं सीमान्त लागत वक्र का निरूपण करने का प्रयत्न करेंगे।
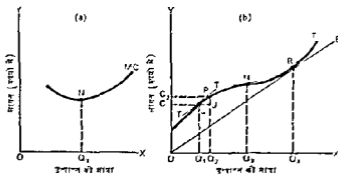
चित्र 10.7 सीमान्त लागत वक्र का निरूपण

सीमान्त लागत कुल लागत में हुए उस परिवर्तन को व्यक्त करती है जो उत्पादन की अतिरिक्त मात्रा की प्राप्ति हेतु फर्म द्वारा वहन की जाती है $\left(MC=\frac{dC}{dQ}\right)$। यदि उत्पादन की मात्रा में अत्यन्त परिवर्तन होना मान लिया जाए तो सीमान्त लागत वस्तुतः कुल लागत में होने वाले परिवर्तन की ही प्रतीक होगी। चूँकि कुल लागत में स्थिर एवं परिवर्तनशील दोनों ही लागतें शामिल की जाती हैं और चूँकि स्थिर लागत में कोई भी परिवर्तन नहीं होता अतः यह भी कहा जा सकता है कि सीमान्त लागत से हमारा आशय कुल परिवर्तनशील अथवा कुल लागतों में होने वाले परिवर्तन से है। एक त्रिघातांकीय लागत फलन (Cubic cost function) लीजिए—

$$C=a-Q^3-bQ^2+CQ+d \quad (10.4)$$

इस फलन में C कुल लागत तथा Q उत्पादन की मात्रा के प्रतीक हैं। a, b, c व d स्थिर प्राचल हैं। समीकरण (10.4) में d स्थिर लागत है, जिसका उत्पादन की मात्रा (Q) से कोई भी संबंध नहीं है इसके विपरीत aQ^3+bQ^2+CQ परिवर्तनशील

लागत है। ऐसी स्थिति में औसत लागत व सीमांत लागत इस प्रकार ज्ञात की जाएगी :

$$\left.\begin{aligned} \text{औसत लागत} \quad AC &= \frac{C}{Q} = aQ^2 - bQ + C + \frac{d}{Q} \\ \text{सीमांत लागत} \quad MC &= \frac{dC}{dQ} = 3aQ^2 - 2bQ + C \end{aligned}\right\} \quad \ldots(10.5)$$

औसत परिवर्तनशील लागत $AVC = aQ^2 - bQ + C$

इस प्रकार सीमांत लागत फलन वस्तुत कुल लागत फलन का वक्र प्रथम अवकलज (First derivative) है।

चित्र 10.7 में यह बतलाया गया है कि सीमांत लागत वक्र वस्तुत कुल लागत वक्र (पैनल b) के ढलान के आधार पर ज्ञात किया जा सकता है। पहले बिंदु L को लीजिए। इस पर एक स्पर्श-रेखा खींच कर उसका ढलान लेने पर OQ_1 उत्पादन स्तर पर सीमांत लागत ज्ञात की जा सकती है। अब P बिंदु पर खींची गई स्पर्श रेखा के ढलान से इसकी तुलना कीजिए। हम यह देख सकते हैं कि इस उत्पादन स्तर (OQ_2) पर स्पर्श रेखा का ढलान पूर्वापेक्षा कम है। अन्य शब्दों में OQ_1 व OQ_2 के मध्य सीमांत लागत में कमी हुई है। इसी प्रकार N बिंदु तक कुल लागत वक्र का ढलान कम होता जाता है। N बिंदु TC वक्र का ढलान न्यूनतम है। यहां फर्म OQ_3 इकाइयों का उत्पादन करती है। ठीक इसी स्तर पर पैनल (b) में सीमांत लागत (MC) का स्तर न्यूनतम दिखाया गया है।

इसी बात को हम एक अन्य रूप में भी बतला सकते हैं। जबकि उत्पादन OQ_1 से बढ़कर OQ_2 होता है तो लागत OC_1 से बढ़कर OC_2 होती है। इस आधार पर सीमांत लागत निम्न प्रकार ज्ञात की जा सकेगी—

$$\frac{dC}{dQ} = \frac{\Delta TC}{\Delta Q} = \frac{OC_2 - OC_1}{OQ_2 - OQ_1} = \frac{PJ}{LJ}$$

यदि L बिंदु को P की ओर खिसकाया जाए तथा दोनों बिंदुओं के बीच की दूरी उत्तरोत्तर कम होती जाए तो स्पर्श रेखा TT के आधार पर $\frac{PJ}{LJ}$ का आकलन बेहतर रूप में संभव हो जाता है।

कुल लागत वक्र TC पर N एक ऐसा बिंदु है जहां कुल लागत वक्र का ढलान न्यूनतम है यानी सीमांत लागत न्यूनतम है। यह ध्यान देने की बात है कि इसी स्तर पर कुल लागत वक्र पर इन्फ्लेक्शन बिंदु (Point of inflection) है। इससे संबद्ध उत्पादन स्तर OQ_3 पर सीमांत लागत न्यूनतम होने का यह भी आशय है कि कुल लागत फलन का द्वितीय अवकलन (Second derivative) शून्य है—

$$N \text{ पर } \frac{d^2TC}{dQ^2} = 0 \quad \ldots(10.6)$$

समीकरण 10.5 में इसे रखने पर

$$\frac{d^2TC}{dQ^2} = 6aQ - 2b = 0 \quad \ldots(10.7)$$

इसमे यदि a व b के स्थिर मूल्यों को रख दिया जाए तो हमे उत्पादन का वह स्तर ज्ञात हो जाता है जहा सीमात लागत न्यूनतम होती है। समीकरण (10 7) को Q के लिए हल करने पर,

$$6aQ = 2b$$

$$Q = \frac{2b}{6a} = \frac{b}{3a} \qquad \ldots(10\ 8)$$

अब चित्र 10 7 के पैनल (b) मे मूल बिंदु से प्रारम्भ होने वाली किरण (ray) OE को देखिए। जैसा कि ऊपर बतलाया गया था मूल बिंदु से चलने वाली किरण के ढलान को देखकर हम कुल लागत वक्र की भिन्न-भिन्न बिंदुओं पर औसत लागत ज्ञात कर सकते हैं। परतु चित्र 10 7 मे यह किरण OE कुल लागत वक्र के R बिंदु पर स्पर्श करती है। इस दृष्टि से R बिंदु पर दोहरा कार्य सपादित करती है। एक ओर यह मूल बिंदु से चलती हुई किरण (ray) है जिसका ढलान औसत लागत कहलाती है। दूसरी ओर यह TT की भाति कुल लागत वक्र के R बिंदु पर स्पर्श रेखा भी है जिसके ढलान से हम सीमात लागत ज्ञात करते हैं। इसीलिए R बिंदु पर मानो OQ_4 इकाइयो का उत्पादन करने पर फर्म की औसत व सीमात लागतो मे कोई अतर नही है (AC=MC)। चित्र 10 7 के पैनल (b) का बिंदु R तथा चित्र 10 6 के पैनल (b) का बिंदु एक समान ही हैं तथा दोनो ही उत्पादन के उस स्तर को प्रदर्शित करते हैं जहा सीमात लागत औसत लागत के समान होती है।

सीमात उत्पादन, औसत उत्पादन एव लागत वक्रो के आकार
(Marginal Product, Average Product and the Shape of Cost Curves)

औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) तथा सीमात लागत (MC) का निरूपण करते समय हमने यह पाया था कि सामान्य तौर पर इनसे सबद्ध वक्र अग्रेजी के अक्षर U के आकार के होते हैं। इस आकृति की पृष्ठभूमि मे अध्याय 7 मे प्रस्तुत उत्पादन का सिद्धात निहित है। इसी अध्याय के अनुभाग के 10 3 मे हमने कुल उत्पादन एव कुल परिवर्तनशील लागत के बीच विद्यमान सबध का वर्णन किया था। हम इस अनुभाग मे औसत उत्पादन एव औसत परिवर्तनशील लागत के मध्य तथा सीमांत उत्पादन एव सीमात लागत के मध्य विद्यमान सबधो की चर्चा करेंगे।

कुल परिवर्तनशील लागत की परिभाषा ऊपर $TVC = P_1 X_1$ के रूप मे दी गई थी जबकि TVC मे उत्पादन की मात्रा (Q) का भाग देकर औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) ज्ञात की जा सकती है। अस्तु—

$$TVC = P_1 X_1$$

$$AVC = \frac{P_1 X_1}{Q} = P_1 \left(\frac{X_1}{Q}\right) \qquad (10\ 9)$$

पाठको को स्मरण होगा कि अध्याय 7 मे हमने औसत उत्पादन की परिभाषा $\frac{Q}{X_1}$ के रूप मे दी थी। इस दृष्टि से समीकरण (10 9) को इस रूप मे भी लिखा जा सकता है—

$$AVC = P_1\left(\frac{1}{AP_{x_1}}\right) \quad ..(10\ 10)$$

यह उल्लेखनीय बात है कि परिवर्तनशील साधन की कीमत (P_1) स्थिर रहती है। एक सामान्य उत्पादन फलन मे जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन का प्रयोग बढाया जाता है, इसका औसत प्रतिफल (उत्पादन की प्रथम अवस्था मे) बढता जाता है। इस दृष्टि से जब तक उत्पादन की प्रथम अवस्था मे AP_{x_1} बढता है, साधन की कीमत यथावत् रहते हुए औसत परिवर्तनशील लागत मे कमी होगी। जिस स्तर पर साधन का औसत उत्पादन (AP_{x_1}) अधिकतम होगा वहा औसत परिवर्तनशील लागत न्यूनतम होगी। फिर जब AP_{x_1} घटने लगता है तो समीकरण (10 10) के अनुसार साधन की स्थिर कीमत के सदर्भ मे AVC बढती जाती है। चित्र 10 8 मे हमने औसत परिवर्तनशील लागत एव औसत उत्पादन के बीच सबध की रेखाचित्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है। तदनुसार उत्पादन की प्रथम अवस्था मे जब तक औसत उत्पादन बढता है, औसत परिवर्तनशील लागत मे कमी होती है। इसके विपरीत जब उत्पादन की द्वितीय अवस्था मे औसत उत्पादन घटता है तो औसत परिवर्तनशील लागत मे वृद्धि होती है। E बिंदु पर औसत उत्पादन अधिकतम होता है तो उत्पादन के इसी स्तर (K) पर औसत परिवर्तनशील लागत न्यूनतम होती है। अस्तु यदि औसत उत्पादन वक्र अग्रेजी के U से उल्टी आकृति का हो तो औसत परिवर्तनशील लागत वक्र U आकृति के
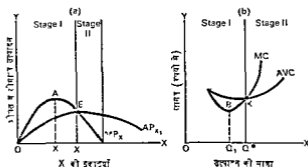
चित्र 10 8 उत्पादन वक्रों व लागत वक्रों का सबध

अनुरूप होगा। जो तर्क औसत उत्पादन एव औसत परिवर्तनशील लागत के मध्य विद्यमान सबधो की व्याख्या हेतु प्रस्तुत किए गए है, उन्ही के आधार पर सीमात उत्पादन एव सीमात लागत का सबध भी दर्शाया जा सकता है। हम ऊपर यह बतला चुके हैं कि उत्पादन की अतिरिक्त मात्रा की प्राप्ति हेतु फर्म को जो अतिरिक्त लागत

बहुत करती होती है वही सीमांत लागत $\left(\frac{dC}{dQ} \text{ या } \frac{\Delta TVC}{\Delta Q}\right)$ कहलाती है। अस्तु—

$$\frac{d(TC)}{dQ} = MC = \frac{\Delta TVC}{\Delta Q}$$

परन्तु हम यह जानते हैं कि $TVC = P_1 X_1$ और इसलिए परिवर्तनशील साधन की कीमत (P_1) यथावत् रहते हुए

$$\frac{d(TC)}{dQ} = MC = P_1 \frac{\Delta X_1}{\Delta Q}$$

$$MC = P_1\left(\frac{dX_1}{dQ}\right) \qquad (10\ 11)$$

समीकरण (10 11) मे $\frac{dX_1}{dQ}$ वस्तुत अध्याय 7 मे प्रस्तुत सीमांत उत्पादन $\left(\frac{dQ}{dX_1}\right)$ का विलोम है। इस प्रकार—

$$MC = P_1\left(\frac{1}{MP_{X_1}}\right) \qquad (10\ 12)$$

अब समीकरण (10 12) को चित्र 10 8 के सदर्भ म देखिए। पैनल (a) मे बिंदु A तक सीमांत उत्पादन मे वृद्धि हो रही है। ऐसी स्थिति मे समीकरण (10 12) के अनुसार सीमांत लागत (MC) मे कमी होती है। यह प्रवृत्ति चित्र 10 8 के पैनल (b) म B बिंदु तक प्रदर्शित की गई है। इसके आगे सीमांत उत्पादन मे कमी होती है और इस कारण सीमांत लागत म वृद्धि होती जाती है। अस्तु सीमांत लागत की प्रवृत्ति सीमांत उत्पादन की प्रवृत्ति से सर्वथा उल्टी होती है।

चित्र 10 8 के पैनल (a) मे परिवर्तनशील साधन की $O\bar{X}$ इकाइयों का प्रयोग होने तक औसत उत्पादन (AP_{X_1}) बढ़ता है। इस स्तर पर कुल उत्पादन (EX) (OX) = OQ* इकाई होगा। पैनल (b) मे हम यह देखते हैं कि उत्पादन OQ* होने तक औसत परिवर्तनशील लागत मे कमी होगी। इसके आगे, जैसा कि परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अंतर्गत हमने पढ़ा था, औसत उत्पादन घटता है और इसलिए औसत परिवर्तनशील लागत बढ़ती जाती है। इसी प्रकार जब तक सीमांत उत्पादन बढ़ता है, सीमांत लागत मे कमी होती है तथा सीमांत उत्पादन का ह्रास होने पर सीमांत लागत बढ़ने लगती है। अस्तु, इन दोनों म भी परस्पर प्रतिकूल संबंध है। परन्तु इनके बीच संबंधों की यह प्रतिकूलता केवल तभी वैध मानी जा सकती है जब साधन की कीमत (P_1) यथावत् रहे।

औसत व सीमांत लागत वक्रों के बीच संबंध

(Relationship between Average and Marginal Cost Curves)

अध्याय 7 के अनुभाग 7 2 मे हमने यह देखा था कि सामान्य (normal, well behaved) उत्पादन फलन मे औसत उत्पादन के उच्चतम स्तर पर सीमांत

उत्पादन इसके समान होता है। हमने उस सदर्भ मे औसत व सीमान्त उत्पादन के मध्य तीन सबध बतलाए थे (1) परिवर्तनशील साधन के प्रयोग की प्रथम अवस्था (Stage I) मे औसत उत्पादन बढता है तथा सीमात उत्पादन इससे अधिक होता है, तथा (ii) साधन के प्रयोग की द्वितीय अवस्था मे औसत उत्पादन मे कमी होती है तथा सीमात उत्पादन औसत उत्पादन से कम होता है, तथा (iii) जब औसत उत्पादन अधिकतम होता है तो सीमात उत्पादन इसके समान होता है। ऊपर चित्र 10 8 के पैनल (a) मे भी इन तीनो सबधो की पुष्टि होती है।

समीकरण (10 10) तथा (10 12) एव चित्र 10 8 को देखकर हम औसत परिवर्तनशील लागत एव सीमात लागत के मध्य निम्न तीन सबधो की पुष्टि कर सकते हैं—

(1) जब AP_{x_1} बढता है तथा MP_{x_1} इससे अधिक होता है, तो P_t के स्थिर रहते हुए औसत परिवर्तनशील लागत मे कमी होती है तथा सीमात लागत इससे कम होती है (देखिए चित्र 10 8 b)।

(2) जब AP_{x_1} कम होता है तथा MP_{x_1} इससे कम होता है, तो P_t के स्थिर रहते हुए औसत परिवर्तनशील लागत मे वृद्धि होती है तथा सीमात लागत इस से अधिक होती है।

(3) जब AP_{x_1} अधिकतम होने पर MP_{x_1} इसके समान होता है, उस स्तर पर औसत परिवर्तनशील लागत न्यूनतम होती है तथा सीमात लागत इसके समान होती है।

हम चलन अवकलज के आधार पर भी यह सबध स्पष्ट कर सकते है। समीकरण (10 1) के अनुसार —

$$TVC = f(Q)$$

$$AVC = \frac{TVC}{Q} = \frac{f(Q)}{Q} \qquad (10\ 13)$$

$$\frac{d(AVC)}{dQ} = \frac{Q\,f'(Q) - f(Q)}{Q^2}$$

$$= \frac{1}{Q}\left[f'Q - \frac{f(Q)}{Q} \right] \qquad (10\ 14)$$

वस्तुत समीकरण (10 14) से हम औसत परिवर्तनशील लागत फलन का प्रथम अवकलज (*first derivative*) प्राप्त होता है। अन्य शब्दो मे, यह चित्र 10 8 के पैनल (b) मे औसत परिवर्तनशील लागत वक्र का ढलान भी है। जब तक औसत परिवर्तनशील लागत घट रही है $\frac{1}{Q}\left[f'Q - \frac{f(Q)}{Q} \right] < 0$ की स्थिति होगी जिसका आशय यह है कि सीमात लागत वस्तुत औसत परिवर्तनशील लागत से कम है $\left[f'Q < \frac{f(Q)}{Q} \right]$। यदि औसत परिवर्तनशील लागत बढने लगती है तो इसका

अर्थ यह होगा कि इसके वक्र का ढलान धनात्मक होगा, यानी —

$$\frac{1}{Q}\left[f'(Q) - \frac{f(Q)}{Q}\right] > 0$$

जिसके अनुसार सीमांत लागत औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक होगी $\left[f'Q > \frac{f(Q)}{Q}\right]$। अन्त में, जब औसत परिवर्तनशील लागत न्यूनतम होती है उस समय औसत परिवर्तनशील लागत फलन का प्रथम अवकलज शून्य होता है यानी

$$\frac{1}{Q}\left[f'(Q) - \frac{f(Q)}{Q}\right] = 0$$

जो तभी सम्भव है जब सीमान्त लागत व औसत परिवर्तनशील लागत में समानता हो $\left(f'(Q) = \frac{f(Q)}{Q}\right)$।

ठीक इसी प्रकार हम औसत लागत $(AC = AFC + AVC)$ एवं सीमान्त लागत (MC) के बीच विद्यमान सम्बंध की व्याख्या कर सकते हैं।

$TC = FC + f(Q)$, जहां $f(Q)$ परिवर्तनशील लागत है।

$$AC = \frac{FC + f(Q)}{Q} \qquad \text{...(10 15)}$$

औसत लागत जहां न्यूनतम होती है वहीं AC फलन (10 15) का प्रथम अवकलज शून्य होगा।

$$\frac{d\left[\frac{FC + f(Q)}{Q}\right]}{dQ} = \frac{-FC}{Q^2} + \frac{Q f'(Q) - f(Q)}{Q^2} = 0 \qquad \text{..(10 16)}$$

अथवा $\quad Q f'(Q) = FC + f(Q)$

$$f'(Q) = \frac{FC + f(Q)}{Q}$$

अर्थात् औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग जहां न्यूनतम होता है, उत्पादन के उसी स्तर पर सीमांत लागत इसके समान होगी।

परन्तु उत्पादन के जिस स्तर पर औसत परिवर्तनशील लागत सीमांत लागत के समान होती है, उससे कहीं अधिक उत्पादन-स्तर पर औसत (कुल) लागत सीमांत लागत के समान होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि औसत (कुल) लागत में औसत स्थिर लागत भी निहित है। वस्तुतः, सीमांत लागत वक्र पहले औसत परिवर्तनशील लागत के, और फिर औसत (कुल) लागत के न्यूनतम बिंदुओं पर इन्हें काटता है। हमने इस तथ्य की पुष्टि चित्र 10 9 में की है।

10 5 अल्पकालीन लागत वक्र
(The Short Run Cost Curves)

उपरोक्त विवरण को देखने के पश्चात हम एक ऐसी स्थिति में पहुंच गए हैं जहा सभी अल्पकालीन लागत वक्रो की प्रवृत्ति को एक साथ दर्शाना सभव है । चित्र 10 9 मे औसत स्थिर लागत (AFC) वक्र औसत परिवर्तनशील लागत (AVC), औसत लागत वक्र (AC) तथा सीमांत लागत वक्र प्रस्तुत किए गए हैं ।
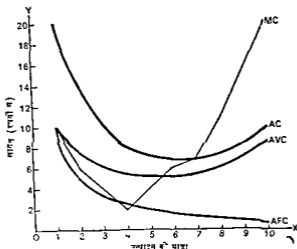
चित्र 10 9 अल्पकालीन औसत एवं सीमात लागत वक्र
स्रोत तालिका 10 2

चित्र 10 9 मे औसत स्थिर लागत (AFC), औसत परिवर्तनशील लागत (AVC), औसत लागत (AC) एव सीमात लागत (MC) स सबद्ध वक्र प्रदर्शित किए गए हैं । जैसा कि हम पूर्व मे देख चुके हैं, औसत स्थिर लागत औसत परिवर्तनशील लागत का योग औसत लागत कहलाती है (AC=AFC+AVC), और इस दृष्टि मे औसत लागत वक्र (AC) तथा औसत परिवर्तनशील लागत वक्र (AVC) की शीर्ष दूरी वस्तुत औसत स्थिर लागत का ही माप है । जैसे-जैसे औसत स्थिर लागत म (उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ) कमी होती है । AC वक्र मे AVC वक्र के बीच की शीर्ष दूरी में भी कमी होती जाती है ।

हम चित्र 10 9 स यह भी देख सकते हैं कि जब औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) मे कमी होती है तो सीमात लागत (MC) इससे कम होती है; जबकि औसत परिवर्तनशील लागत मे वृद्धि होने पर सीमात लागत इससे अधिक हो जाती है । यही नही, सीमात लागत वक्र औसत परिवर्तनशील लागत वक्र को इसके न्यूनतम

बिंदु पर तब काटता है जबकि फर्म 5 5 इकाई वस्तु का उत्पादन करती है। फिर जब फर्म 7 इकाई का उत्पादन करती है तो औसत लागत (AC) न्यूनतम होती है, तथा औसत लागत वक्र को सीमांत लागत वक्र इस स्तर पर काटता है।

चित्र 10 9 से भी स्पष्ट होता है कि AFC वक्र को छोड़कर शेष तीनों लागत वक्र U आकार के हैं। वस्तुतः यह एक सामान्य उत्पादन फलन से निरूपित लागत वक्र-समूह है। अन्य शब्दों में, यदि उत्पादन फलन सामान्य (normal, well-behaved) हो तो लागत फलन भी सामान्य होगा। एक सामान्य लागत फलन (normal, well behaved cost function) वह है जिसमें उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ पहले लागत घटती हुई दर पर बढ़ती है तथा फिर बढ़ती हुई दर पर बढ़ने लगती है, तदनुसार औसत तथा सीमांत लागत वक्र भी U आकार के होते हैं। ऐसे सामान्य लागत फलन का स्वरूप समीकरण 10 4 के अनुरूप त्रिघातांकीय (cubic form) होगा—

$$\left.\begin{aligned} TC &= aQ^3 - bQ^2 + CQ + d \\ AVC &= aQ^2 - bQ + C \\ AFC &= \frac{d}{Q} \\ AC &= aQ^2 - bQ + C + \frac{d}{Q} \\ \frac{dTC}{dQ} = MC &= 3aQ^2 - 2bQ + C \end{aligned}\right\} \quad \ldots 10\ 17$$

यह भी हम ऊपर देख चुके हैं कि ऐसे लागत फलन में a, b व c के स्थिर परंतु धनात्मक प्राचल हैं तथा उत्पादन के उस स्तर पर सीमांत लागत न्यूनतम होती है, यानी लागत वक्र में उस स्तर पर इन्फ्लेक्शन बिंदु होता है जहां सीमांत लागत फलन का अवकलज शून्य होता है। अस्तु, $\frac{d^2TC}{dQ^2} = 0$ यानी $6aQ - 2b = 0$ हो अर्थात्

$Q = \frac{b}{3a}$ हो। इस स्तर को हम Q^* की संज्ञा दे सकते हैं। यदि $a = 05$ तथा $b = 6$ हो तो $Q^* = 4$ होने पर सीमांत लागत न्यूनतम होगी।

हम उपरोक्त विश्लेषण से यह भी ज्ञात कर सकते हैं कि उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ AC में कमी होती है तथा इसका न्यूनतम स्तर वहां होता है जहां उत्पादन का वास्तविक स्तर (Q) Q^* से अधिक होता है ($Q > Q^*$)।

यदि जिस उत्पादन स्तर पर सीमांत लागत न्यूनतम हो (Q^*) उसे समीकरण (10 17) में प्रदत्त MC फलन में Q के स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिया जाए तो MC फलन एक पैराबोला (parabola) का रूप ले लेगा जिसका $Q = \frac{b}{3a}$ स्तर पर न्यूनतम मूल्य $\frac{3ac - b^2}{3a}$ होगा। सीमांत लागत फलन का द्वितीय अवकलज भी

धनात्मक है जो इस बात का प्रतीक है कि सीमान्त लागत वक्र भी U आकृति का है।

उपरोक्त विवरण का सारांश यही है कि एक U आकृति के लागत वक्र का द्वितीय अवकलज (Second derivative) धनात्मक होता है। समीकरण (10 17) मे प्रस्तुत लागत फलनो तथा चित्र 10 9 मे प्रस्तुत लागत वक्रो म इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

10 6 लागत लोच की अवधारणा
(The Concept of Cost Elasticity)

लागत लोच के द्वारा हम उत्पादन मे होने वाले परिवर्तन से कुल लागत मे होने वाली प्रतिक्रिया को मापते है। अस्तु

$$\in = \frac{dC}{dQ} \quad \frac{Q}{C}$$

जैसा कि हम जानते हैं $\frac{dC}{dQ}$ उत्पादन की सीमांत लागत है जबकि $\frac{Q}{C}$ औसत लागत का विलोम $\left(\frac{1}{AC}\right)$ है। इस प्रकार लागत लोच $\left(\frac{MC}{AC}\right)$ का ही माप है। इसी प्रकार हम औसत लागत $\left(\frac{C}{Q}\right)$ की लोच ज्ञात कर सकते हैं—

$$\frac{d\left(\frac{C}{Q}\right)}{dQ} \quad \frac{Q}{C/Q} = \frac{Q^2}{C} \quad \frac{d}{dQ}\left(\frac{C}{Q}\right)$$
$$= \frac{Q^2}{C} \quad \frac{1}{Q^2}\left(Q\frac{dC}{dQ} - C\right)$$
$$= \frac{Q}{C} \quad \frac{dC}{dQ} - 1 \qquad 10\ 18$$

परन्तु समीकरण (10 18) मे $\frac{Q}{C} \quad \frac{dC}{dQ}$ लागत लोच ($\in$) का माप है। इस प्रकार औसत लागत की लोच $\in - 1$ के समान है।

यदि हमे उत्पादन के विभिन्न स्तरो पर लागत लोच ज्ञात हो, तो हम सुविधापूर्वक उस अवस्था को ज्ञात कर सकते हैं जिसमे फर्म उत्पादन कर रही है। उदाहरण के लिए—

(i) यदि $\in < 1$ हो तो उत्पादन जिस अनुपात मे बढता है उससे कम अनुपात मे लागत बढ रही होनी है। इसका यह अर्थ हुआ कि औसत लागत घट रही है तथा सीमान्त लागत इससे कम है (MC<AC)। जैसा कि हम पढ चुके हैं यह स्थिति तब होती है जब फर्म को पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त हो रहे हों।

(ii) यदि $\in = 1$ हो तो उत्पादन तथा लागत मे समान अनुपात म वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति मे औसत लागत वक्र क्षैतिज (horizontal) होनी है तथा

सीमात एव औसत लागतें समान होती है (MC=AC)। इस स्थिति मे फर्म को **पैमाने के समता मान प्रतिफल** प्राप्त होते हैं।

(iii) यदि $\in > 1$ हो तो जिस अनुपात मे उत्पादन बढता है उससे अधिक अनुपात मे लागत बढती है। ऐसी स्थिति में औसत लागत में वृद्धि होती है तथा सीमात लागत इससे अधिक होती है (MC>AC)। यह स्थिति **पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल** की है तथा लागतो की दृष्टि से दोनों लागत वक्रो का ढलान धनात्मक होता है।

इस प्रकार चित्र 10 8 में प्रस्तुत एक सामान्य लागत फलन (normal and well behaved cost function) में K बिंदु तक औसत लागत में कमी होती है तथा सीमात लागत इससे कम होती है अत K से पूर्व $\in > 1$ होगी। K बिंदु पर MC=AC है अत $\in = 1$ होगी। K से आगे औसत लागत मे वृद्धि होती है तथा सीमात लागत इससे अधिक होती है, इस कारण $\in > 1$ की स्थिति होगी।

10 7 सीमाती लागत वक्र एवं फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र (Marginal Cost Curve and Short Run Supply Curve of a Firm)

इस अध्याय के अतिम खड में हम एक प्रतियोगी फर्म (Competitive firm) की सीमात लागत वक्र के आधार पर इसका अल्पकालीन पूर्ति वक्र निरूपित करने का प्रयास करेंगे। हम पहले यह मान्यता लेंगे कि कोई भी फर्म उत्पादन प्रक्रिया तभी जारी रखती है जब उसे वस्तु की कम से कम इतनी कीमत मिले जो परिवर्तनशील लागत के समान हो। जैसा कि हम इस अध्याय के प्रारभ मे पढ चुके हैं, फर्म को स्थिर लागतें तो वहन करनी ही होती हैं चाहे वह उत्पादन करे या न करे। परतु यदि फर्म परिवर्तनशील लागतें भी वसूल नहीं कर पाए तो उसके लिए उत्पादन प्रक्रिया जारी रखना अविवेकपूर्ण होगा।

हमारी दूसरी मान्यता यह है कि फर्म प्रतियोगी बाजार (Competitive market) में उत्पादन करती है। यह एक ऐसा बाजार होता है जिसमें वस्तु की कीमत निर्धारण फर्म नहीं कर पाती, अपितु बाजार में विद्यमान कुल माग व पूर्ति की शक्तियो द्वारा कीमत का निर्धारण होता है। ऐसी स्थिति में फर्म को कीमत बाह्य रूप से दी हुई है एव इसी कीमत पर उसे इतनी मात्रा मे बेचनी है जिससे कि इसे अधिकतम लाभ मिल सके। वस्तु—

$$\pi = TR - TC$$

इस फलन में π लाभ को, TR कुल आगम को तथा TC कुल लागत को व्यक्त करते हैं। इसके अनुसार कुल आगम एव कुल लागत का अतर ही फर्म का लाभ है। अधिकतम लाभ के लिए—

$$\frac{d\pi}{dQ} = \frac{d\,(TR)}{dQ} - \frac{d\,(TC)}{dQ} = 0$$

धनात्मक है जो इस बात का प्रतीक है कि सीमान्त लागत वक्र भी U आकृति का है।

उपरोक्त विवरण का साराश यही है कि एक U आकृति के लागत वक्र का द्वितीय अवकलज (Second derivative) धनात्मक होता है। समीकरण (10 17) मे प्रस्तुत लागत फलनो तथा चित्र 10 9 मे प्रस्तुत लागत वक्रो से इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

10 6 लागत लोच की अवधारणा
(The Concept of Cost Elasticity)

लागत लोच के द्वारा हम उत्पादन मे होने वाले परिवर्तन से कुल लागत मे होने वाली प्रतिक्रिया को मापते हैं। अस्तु

$$\in = \frac{dC}{dQ} \quad \frac{Q}{C}$$

जैसा कि हम जानते हैं $\frac{dC}{dQ}$ उत्पादन की सीमान्त लागत है जबकि $\frac{Q}{C}$ औसत लागत का विलोम $\left(\frac{1}{AC}\right)$ है। इस प्रकार लागत लोच $\left(\frac{MC}{AC}\right)$ का ही माप है। इसी प्रकार हम औसत लागत $\left(\frac{C}{Q}\right)$ की लोच ज्ञात कर सकते हैं—

$$\frac{d\left(\frac{C}{Q}\right)}{dQ} \quad \frac{Q}{C/Q} = \frac{Q^2}{C} \quad \frac{d}{dQ}\left(\frac{C}{Q}\right)$$

$$= \frac{Q^2}{C} \quad \frac{1}{Q^2}\left(Q\frac{dC}{dQ} - C\right)$$

$$= \frac{Q}{C} \quad \frac{dC}{dQ} - 1 \qquad 10\ 18$$

परतु समीकरण (10 18) मे $\frac{Q}{C} \quad \frac{dC}{dQ}$ लागत लोच ($\in$) का माप है। इस प्रकार औसत लागत की लोच $\in - 1$ के समान है।

यदि हमे उत्पादन के विभिन्न स्तरो पर लागत लोच ज्ञात हो, तो हम सुविधापूर्वक उस अवस्था को ज्ञात कर सकते हैं जिसमे फर्म उत्पादन कर रही है। उदाहरण के लिए—

(*i*) यदि $\in < 1$ हो तो उत्पादन जिस अनुपात मे बढता है उससे कम अनुपात मे लागत बढ रही होती है। इसका यह अर्थ हुआ कि औसत लागत घट रही है तथा सीमात लागत इससे कम है (MC<AC)। जैसा कि हम पढ चुके हैं यह स्थिति तब होती है जब फर्म को पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त हो रहे हों।

(ii) यदि $\in = 1$ हो तो उत्पादन तथा लागत मे समान अनुपात म वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति मे औसत लागत वक्र क्षैतिज (horizontal) होती है तथा

सीमात एव औसत लागतें समान होती है (MC=AC)। इस स्थिति मे फर्म को पैमाने के समता मान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।

(iii) यदि $\in > 1$ हो तो जिस अनुपात मे उत्पादन बढता है उससे अधिक अनुपात मे लागत बढती है। ऐसी स्थिति में औसत लागत में वृद्धि होती है तथा सीमात लागत इससे अधिक होती है (MC>AC)। यह स्थिति पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल की है तथा लागतो की दृष्टि से दोनो लागत वक्रो का ढलान धनात्मक होता है।

इस प्रकार चित्र 10 8 में प्रस्तुत एक सामान्य लागत फलन (normal and well behaved cost function) में K बिंदु तक औसत लागत में कमी होती है तथा सीमात लागत इससे कम होती है अत K से पूर्व $\in > 1$ होगी। K बिंदु पर MC=AC है अत $\in = 1$ होगी। K से आगे औसत लागत मे वृद्धि होती है तथा सीमात लागत इससे अधिक होती है, इस कारण $\in > 1$ की स्थिति होगी।

10 7 सीमात लागत वक्र एवं फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र
(Marginal Cost Curve and Short Run Supply Curve of a Firm)

इस अध्याय के अतिम खड में हम एक प्रतियोगी फर्म (Competitive firm) की सीमात लागत वक्र के आधार पर इसका अल्पकालीन पूर्ति वक्र निरूपित करने का प्रयास करेंगे। हम पहले यह मान्यता लेंगे कि कोई भी फर्म उत्पादन प्रक्रिया तभी जारी रखती है जब उसे वस्तु की कम से कम इतनी कीमत मिले जो परिवर्तनशील लागत के समान हो। जैसा कि हम इस अध्याय के प्रारभ में पढ चुके हैं, फर्म को स्थिर लागतें तो वहन करनी ही होती हैं चाहे वह उत्पादन करे या न करे। परतु यदि फर्म परिवर्तनशील लागतें भी वसूल नही कर पाए तो उसके लिए उत्पादन प्रक्रिया जारी रखना अविवेकपूर्ण होगा।

हमारी दूसरी मान्यता यह है कि फर्म प्रतियोगी बाजार (Competitive market) में उत्पादन करती है। यह एक ऐसा बाजार होता है जिसमें वस्तु की कीमत निर्धारण फर्म नही कर पाती, अपितु बाजार में विद्यमान कुल माग व पूर्ति की शक्तियो द्वारा कीमत का निर्धारण होता है। ऐसी स्थिति में फर्म को कीमत बाह्य रूप से दी हुई है एव इसी कीमत पर उसे इतनी मात्रा मे बेचनी है जिससे कि इसे अधिकतम लाभ मिल सके। अस्तु—

$$\pi = TR - TC$$

इस फलन में π लाभ को, TR कुल आगम को तथा TC कुल लागत को व्यक्त करते हैं। इसके अनुसार कुल आगम एव कुल लागत का अतर ही फर्म का लाभ है। अधिकतम लाभ के लिए—

$$\frac{d\pi}{dQ} = \frac{d(TR)}{dQ} - \frac{d(TC)}{dQ} = 0$$

अथवा $$\frac{d\,(TR)}{dQ} = \frac{d\,(TC)}{dQ} \qquad \ldots 10\ 19$$

$$MR = MC$$

इस प्रकार जिस उत्पादन-स्तर पर फर्म की सीमात लागत सीमात आगम के समान है वही फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है । परतु चूकि एक प्रतियोगी फर्म की कीमत बाह्य रूप मे दी हुई है तथा वह कीमत मे कोई परिवर्तन नहीं कर सकती, अतः कीमत एव सीमात आगम मे कोई अतर नही होता (AR=MR) ।

इन मान्यताओ को लेने के पश्चात् हम अब यह देखेंगे कि किस प्रकार एक फर्म सीमात-लागत वक्र के आधार पर हम इसका पूर्ति वक्र निर्धारित कर सकते हैं । चित्र 10 10 में हमने कीमत के चार स्तर लिए हैं तथा इनके आधार पर यह बतलाने का प्रयास किया है कि फर्म विभिन्न कीमतो पर कितनी मात्रा का उत्पादन करेगी ।
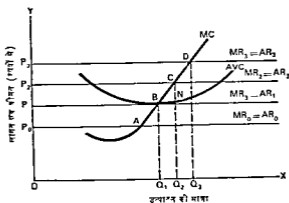
चित्र 10 10 प्रतियोगी फर्म के अल्पकालीन पूर्ति वक्र का निरूपण

चित्र 10 10 मे फर्म का सीमात लागत वक्र सीमात आगम वक्र को A बिंदु पर काटता है । परतु चूकि इस स्तर पर कीमत P_0 (या $MR_0 = AR_0$) वस्तु की औसत परिवर्तनशील लागत से भी कम है, अत फर्म उत्पादन प्रारभ ही नही करेगी । जब कीमत P_1 हो जाती है तो B बिंदु पर सीमात लागत एव सीमात आगम तो समान हैं ही, कीमत भी औसत परिवर्तनशील लागत के समान है और इसलिए फर्म को OQ_1 मात्रा उत्पादन करने का अवसर मिल जाता है । इस स्तर पर $MC = MR_1 = AR_1 = AVC$ की स्थिति है । फिर जब कीमत बढ़कर P_2 होती है तो C बिंदु पर $MC = MR_2 = AR_2 > AVC$ की स्थिति हो जाती है जिसके अनुसार फर्म न केवल औसत परिवर्तनशील लागत को वसूल कर लेती है, अपितु प्रति इकाई CN रुपए स्थिर लागत को चुकाने के लिए भी प्राप्त कर लेती है । इस कीमत पर फर्म OQ_2

इकाई का उत्पादन करती है। इसी आधार पर यह तर्क दिया जा सकता है कि कीमत P_3 होने पर फर्म OQ_3 इकाई का उत्पादन करेगी। अन्य शब्दों में B या इससे ऊपर सीमांत लागत वक्र का जो भी भाग है, वही फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र है तथा उसके प्रत्येक बिंदु पर $MC=MR=AR \geqslant AVC$ की शर्त पूरी होती है। यदि कीमत औसत परिवर्तनशील लागत से कम है तो फर्म द्वारा प्रस्तुत पूर्ति शून्य होगी। B से ऊपर जैसे-जैसे कीमत में वृद्धि होती है, फर्म MC के सहारे उत्तरोत्तर अधिक उत्पादन करती जाती है।

11

दीर्घकालीन लागत सिद्धांत
(THE THEORY OF LONG RUN COST)

प्रस्तावना

दीर्घकालीन से हमारा आशय समय की उस अवधि से है जिसमे उत्पादक उत्पादन के सभी साधनो में वृद्धि कर सकता है। अन्य शब्दों मे, दीर्घकाल मे फर्म अपने उत्पादन के पैमाने मे परिवर्तन करने मे सक्षम होती है। अध्याय 7 एव 10 मे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि अल्पकाल मे फर्म के लिए उत्पादन के सभी साधनो मे परिवर्तन करना सम्भव नही होता, परतु यदि उसे पर्याप्त समय मिल जाए तो वह उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त सभी साधनो की मात्रा मे परिवर्तन कर सकेगी। सक्षेप मे, *दीर्घकाल वह अवधि है जिसमे फर्म अनेक सयत्र लगा सकती है।* इसीलिए दीर्घकाल की फर्म का आयोजन क्षितिज (Planning horizon) भी कहा जाता है। दीर्घकाल मे फर्म वस्तु की माग के स्तर मे वृद्धि होने की अपेक्षा करती है और इसीलिए अपने लाभ के स्तर मे वृद्धि करने हेतु वह उत्पादन के पैमाने म विस्तार करने की योजना बनाती है। फर्म यह अपेक्षा करती है कि नया सयत्र लगाने पर उत्पादन की प्रति इकाई लागत मे कमी हो जाएगी। दीर्घकालीन लागत के सिद्धात मे हम यही देखने का प्रयास करते हैं कि उत्पादन-सयत्र मे वृद्धि होने पर लागत मे किस प्रकार परिवर्तन होते हैं।

सामान्य तौर पर फर्म अतिरिक्त सयत्र या प्लाट लगाने के विषय मे अग्रिम रूप स योजना बनाती है। अन्य शब्दो मे, नई पूजी निवेश करने अथवा उत्पादन के पैमाने मे वृद्धि करने से पूर्व फर्म सभावित लागत के विषय मे विचार करती है। फिर फर्म उत्पादन का वह पैमाना चुनती है जहा तक विस्तार करके वह न्यूनतम लागत पर उत्पादन करने मे समर्थ होगी, अथवा जहा उत्पादन करने पर उसका लाभ अधिकतम होगा।

11 1 अल्पकाल एव दीर्घकाल
(Short Run and the Long Run)

किसी प्लाट से हमारा आशय मशीनो व साज सज्जा के निर्दिष्ट स्तर से है, जिस पर हम परिवतनशील लागत का उत्तरोत्तर प्रयोग बढाते जाते हैं। यही कारण

है कि इस प्लाट से सबद्ध औसत तथा सीमात लागत वक्र अंग्रेजी के अक्षर U के अनुरूप होते हैं। यदि फर्म उत्पादन के पैमाने का विस्तार करने हेतु एक नए प्लाट की स्थापना करने का विचार करती है तो इस प्लाट से सबद्ध औसत व सीमात लागत वक्र की आकृति भी U की भांति ही होगी। कल्पना कीजिए, इसी प्रकार फर्म चार प्लाट लगाने की योजना बनाती है। इनमे सबद्ध चार औसत लागत वक्रो की प्रवृत्ति चित्र 11 1 मे प्रस्तुत वक्रो के अनुरूप हो सकती है।
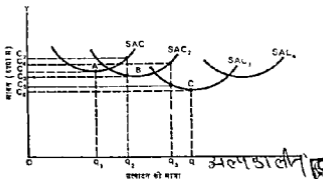
चित्र 11 1 भिन्न आकारो के प्लाट एव अल्पकालीन लागत वक्र

चित्र 11 1 मे फर्म के चार सयत्रो (Plants) से सबद्ध लागत वक्रो—SAC_1, SAC-, SAC_3 तथा SAC_4 को प्रदर्शित किया गया है। मान लीजिए, फर्म के पास केवल एक सयत्र है जिससे सबद्ध अल्पकालीन लागत वक्र SAC_1 है। इस सयत्र पर फर्म Oq_1 मात्रा मे उत्पादन करती है जहा इकाई लागत (OC_1) न्यूनतम है। यदि फर्म इसी प्लाट के रहते हुए उत्पादन की मात्रा Oq_2 तक बढाना चाहती है तो प्रति इकाई उत्पादन लागत (Average Cost) बढकर OC_2 हो जाएगी। परतु यदि फर्म एक नए प्लाट की स्थापना कर देती है तो उत्पादन की औसत लागत केवल OC_3 ही होगी ($OC_2 > OC_3$)। इस प्रकार नए प्लाट की स्थापना करके उत्पादन की प्रति इकाई लागत मे कमी करना सभव होगा। फिर यदि फर्म उत्पादन को Oq_3 तक बढाना चाहती है तो दो प्लाटो के रहते उसे प्रति इकाई उत्पादन लागत OC_4 चुकानी होगी परतु यदि वह तीसरा सयत्र प्रयोग मे ले तो उत्पादन लागत OC_5 ही होगी। इस प्रकार तीसरे प्लाट या सयत्र की स्थापना से अधिक उत्पादन करने के बावजूद औसत लागत मे कमी होगी ($OC_5 < OC_3 < OC_1$)। अन्य शब्दो मे, फर्म के लिए उत्पादन मे वृद्धि करने हेतु अपने सयत्रो की सख्या अथवा उत्पादन के पैमाने मे एक सीमा तक वृद्धि करना अधिक उपयुक्त है। परतु जैसा कि हम चित्र 11 1 मे देखते हैं, चौथे सयत्र की स्थापना से फर्म उत्पादन लागत मे कमी नही कर पाएगी, अपितु औसत लागत मे उत्पादन की मात्रा के साथ वृद्धि होगी। ऐसा इसलिए होता है कि एक सीमा के पश्चात् फर्म को पैमाने की अमितव्ययिताए (diseconomies of scale)

अनुभव होने लगती हैं। आगे हम इन अमितव्ययिताओं का विस्तार से उल्लेख करेंगे। वर्तमान सदर्भ मे इतना बतलाना पर्याप्त होगा कि तृतीय सयत्र की स्थापना से फर्म न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन करने मे समर्थ होती है, अत तृतीय सयत्र को इष्टतम सयत्र (Optimum plant) की सज्ञा दी जाती है। इस सयत्र के साथ यदि फर्म $O\bar{q}$ मात्र मे उत्पादन करती है तो औसत उत्पादन लागत OC_1 होगी जो न्यूनतम होगी। इस 'दीर्घकालीन' न्यूनतम लागत पर जो उत्पादन प्राप्त होता है ($O\bar{q}$) उसे हम इष्टतम उत्पादन स्तर पर (optimum level of output) की सज्ञा देते हैं।

यदि हम Z को सयत्र के आकार का एव q को उत्पादन की मात्रा का प्रतीक मानें तो अल्पकालीन लागत फलन को प्रथम सयत्र के सदर्भ मे निम्न रूप मे व्यक्त करेंगे—

$$SAC_1 = f(q, Z_1) \qquad 11\ 1$$

समीकरण (11 1) मे SAC_1 फर्म का अल्पकालीन लागत फलन है। यहा यह उल्लेखनीय बात है कि दीर्घकाल मे फर्म को कोई भी स्थिर लागत वहन नही करनी होती, अत जब फर्म नए सयत्र की स्थापना करती है तो उत्पादन की औसत लागत में केवल परिवर्तनशील साधनो से सबद्ध लागतें ही शामिल होती हैं। फिर भी एक सयत्र के रहते हुए फर्म का औसत लागत वक्र (SAC) U आकार का होता है, जैसा कि चित्र 11 1 मे देखा जा सकता है।

अब यदि फर्म दूसरे सयत्र की स्थापना करना चाहती है, तो जैसा कि चित्र 11.1 मे बतलाया गया है, दूसरे सयत्र से सबद्ध औसत लागत पहले सयत्र से सबद्ध लागत से कम होगी। वस्तुत दूसरे सयत्र की स्थापना से फर्म की उत्पादन क्षमता बढ जाती है ($Z_1 < Z_2$) तथा पैमाने की मितव्ययिताओं के कारण उत्पादन लागत मे कमी हो जाती है। परतु नए सयत्र की स्थापना के बाद केवल एक निर्दिष्ट स्तर पर उत्पादन करने से ही लागत मे कमी होगी। अन्य शब्दो में, बडे सयत्र के साथ उत्पादन की अधिक मात्रा प्राप्त करने पर ही लागत मे कमी होगी, जबकि उत्पादन का स्तर छोटा रखने पर छोटे सयत्र के प्रयोग से ही लागत कम रहेगी। इसे निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

$$f(q\ Z_1) < f(q, Z_2), \text{ उस स्तर पर जब } q < q_0 \text{ हो} \qquad 11\ 2$$

$$f(q, Z_1) > f(q, Z_2), \text{ उस स्तर पर जब } q > q_0 \text{ हो} \qquad 11\ 3$$

$$f(q, Z_1) = f(q, Z_2), \text{ उस स्तर पर जब } q = q_0 \text{ हो} \qquad 11\ 4$$

इस प्रकार बडा सयत्र फर्म की दक्षता मे वृद्धि अथवा औसत लागत मे कमी करने मे तभी सहायक होता है जब कि उत्पादन की मात्रा भी एक निर्दिष्ट स्तर तक बढाई जाए। इसका कारण यह है कि बडे सयत्र की स्थापना के पश्चात् उत्पादन का स्तर छोटा रखने पर उसकी क्षमता का पूर्णत उपयोग नही हो पाता और इसलिए उत्पादन की औसत लागत अधिक हो जाती है। सक्षेप में, छोटे सयत्र की अपेक्षा बडे सयत्र पर उत्पादन की अधिक मात्रा प्राप्त करके ही औसत लागत में कमी की जा सकती

है। (चित्र 11 2 देखिए)

हमारी द्वितीय मान्यता विभिन्न अल्पकालीन लागत वक्रो की स्थिति के विषय में है। इसके विषय में निम्न तथ्य विचारणीय हैं—

$f(q, Z_m)$ का न्यूनतम स्तर $< f(q, Z_i)$ सभी i के लिए
जबकि $i \neq m$ ... 11 5

$f(q, Z_i)$ का न्यूनतम स्तर $> f(q, Z_j)$, तब जब $i < j \leq m$ हो . 11 6

$f(q, Z_i)$ का न्यूनतम स्तर $< f(q, Z_j)$, तब जब $m \leq i < j$ हो
...11 7

समीकरण (11 5) से (11 7) से यह अर्थ निकलता है कि किसी अपेक्षाकृत छोटे सयत्र से प्रारभ करते हुए फर्म के औसत लागत फलनो के न्यूनतम बिंदु सयत्र के आकार मे वृद्धि के साथ साथ उत्तरोत्तर नीचे की ओर आते हैं (चित्र 11 1 में A से B व फिर C तक) तथा औसत लागत फलन का निम्नतम बिंदु वहा स्थित होगा जहा सयत्र का आकार Z_m (चित्र 11 1 में तृतीय सयत्र जहा उत्पादन के $\overline{O}\,q$ स्तर पर लागत न्यूनतम हो सकती है)। परतु यदि फर्म के सयत्र का आकार Z_i या Z_j हो तो उत्पादन की लागत अपेक्षाकृत अधिक होगी। उपरोक्त विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि सयत्र का आकार Z_m से अधिक होने पर लागत में वृद्धि होगी तथा औसत लागत फलन की स्थिति उत्तरोत्तर ऊची होती जाएगी। चित्र 11 1 में चौथे सयत्र, एव इसके बाद के सभी सयत्रो से सबद्ध औसत लागत वक्रो की स्थिति ऐसी होगी।

नए सयत्रो एव उनसे सबद्ध लागत वक्रो के विषय मे हमारी तीसरी व अतिम मान्यता यह है कि यदि फर्म अविरल रूप से सयत्र के आकार मे वृद्धि करती जाए तो हमें इनसे सबद्ध अनेक लागत वक्र प्राप्त होगे जिन्हे आच्छादित करता हुआ एक 'दीर्घकालीन औसत लागत वक्र" (Long Run Average Cost Curue) प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि हमने अब तक देखा है, नए सयत्रो की स्थापना के कारण प्रारभ मे उत्पादन की औसत लागत में कमी होती है, और फिर एक सीमा के पश्चात् (Z_m के बाद) उत्पादन लागत में वृद्धि होती जाती है। यही कारण है कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र भी U आकृति का होगा।

11 2 दीर्घकालीन लागत वक्र
(The Long Run Cost Curves)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र वस्तुत. विभिन्न सयत्रो से सबद्ध अल्पकालीन औसत लागत वक्रो (SAC_s) का आच्छादन वक्र (envelope curve) है। इसका यह अर्थ हुआ कि अल्पकालीन कुल लागत वक्रो को आच्छादित करते हुए एक दीर्घकालीन कुल लागत वक्र का निरूपण करना भी सभव है। चित्र 11 2 मे दीर्घकालीन कुल लागत वक्र का निरूपण विभिन्न अल्प-

कालीन लागत वक्रो के आधार पर किया गया है। वस्तुत चित्र मे प्रस्तुत दीर्घकालीन कुल लागत वक्र OC भी अल्पकालीन लागत वक्रो का आच्छादन ही करता है।
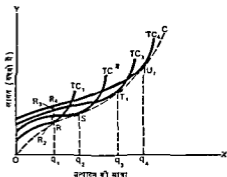
चित्र 11.2 फर्म के दीर्घकालीन लागत वक्र का निरूपण

चित्र 11 2 मे फर्म के चार सयत्रो से सबद्ध कुल लागत वक्र (TC_1, TC_2, TC_3 व TC_4) प्रस्तुत किए गए हैं। फर्म Oq_1 मात्रा का उत्पादन किसी भी सयत्र पर कर सकती है। परतु यदि फर्म केवल एक सयत्र के साथ इस मात्रा का उत्पादन करे तो उत्पादन की लागत q_1R_1 होगी जबकि दो, तीन या चार सयत्र होने पर कुल उत्पादन लागत क्रमश q_1R_2 q_1R_3 व q_1R_4 होगी। जैसा कि चित्र मे स्पष्ट है, इतनी छोटी मात्रा मे उत्पादन करने पर एक सयत्र से सबद्ध लागत ही सबसे कम है ($q_1R_1 < q_1 R_2 < q_1R_3 < q_1R_4$), क्योकि बडे सयत्र के साथ थोडी मात्रा मे उत्पादन करने से उसकी क्षमता का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। यदि फर्म नए सयत्र की स्थापना कर ले तो वह Oq_2 उत्पादन करके एक सयत्र से सबद्ध लागत की तुलना मे कुल उत्पादन लागत मे कमी ला सकता है। इसी प्रकार Oq_3 मात्रा मे उत्पादन करने हेतु न्यूनतम लागत q_3T_1 होगी जबकि Oq_4 के लिए न्यूनतम लागत q_4U_1 होगी। यदि इन बिंदुओ (R_1, S_1, T_1, U_1) को मिलाते हुए एक वक्र का निर्माण किया जाए तो दीर्घकालीन लागत वक्र OC प्राप्त हो जाएगा। यह OC वक्र अल्पकालीन लागत वक्रो का एक आच्छादन वक्र (envelope curve) ही है जो *अल्पकालीन लागत वक्रो (STC_i) के स्पर्श बिंदुओ का बिंदु पथ (locus) है।*

यदि फर्म के स्थिर साधनो के स्तर को Z के रूप मे व्यक्त किया जाए (जो फर्म के सयत्र के आकार को व्यक्त करता है) तो Z के मूल्य के अनुरूप ही फर्म के सयत्र का आकार भी बढता जाएगा। हम फर्म के लागत फलन को ऐसी स्थिति मे उत्पादन के स्तर तथा सयत्र के आकार पर आश्रित मान सकते हैं—

$$C = f(q, Z) + \phi(Z) \qquad ...11\,8$$

यदि हम प्राचल Z को अलग-अलग मूल्य प्रदान करें तो हमे अनेक अल्पकालीन लागत फलन प्राप्त हो जाएगे जिनका स्वरूप चित्र 11.2 में प्रस्तुत वक्रो के अनुरूप होगा।

चूकि दीर्घकालीन लागत वक्र अल्पकालीन लागत वक्रो को आच्छादित करता है, इसलिए हम समीकरण (11 8) को इस प्रकार भी लिख सकते हैं जिसमे सभी अल्पकालीन लागत फलनो का भी समावेश हो जाए। अस्तु—

$$C-f(q, Z)-\phi(Z)=0$$

अथवा $$G(C, q, Z)=0 \qquad ...11\ 9$$

Z के सदर्भ मे आंशिक अवकलज को शून्य के समान रखने पर

$$G_Z(C, q, Z)=0 \qquad ...11\ 10$$

परतु दीर्घकाल मे सयत्र का आकार अविरल रूप से बढ सकता है, यानी सभी उत्पादन साधनो मे वृद्धि सभव है। इसीलिए हम दीर्घकालीन लागत फलन को निम्न रूप मे लिखना चाहेंगे—

$$C=f(q) \qquad ...11.11$$

यह उत्पादन को दीर्घकालीन कुल लागत फलन की अभिव्यक्ति है। हम इसी आधार पर यह भी तर्क दे सकते हैं कि उत्पादन की दीर्घकालीन औसत लागत भी केवल उत्पादन के स्तर पर आश्रित है, तथा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) भी अल्पकालीन औसत लागत वक्रो का आच्छादन वक्र (envelope curve) ही है। चित्र 11 ३ मे हमने ऐसे ही दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का निरूपण किया है।
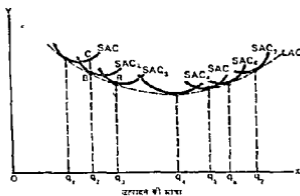
चित्र 11 3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

चित्र 11 3 मे सात औसत लागत वक्र (SAC_1 से SAC_7) प्रस्तुत किए गए हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे उत्पादन करने हेतु बडे आकार के सयत्र पर उत्पादन लागत कम आती है जबकि छोटी मात्रा म उत्पादन हेतु छोटा सयत्र अधिक दक्ष होता है। उदाहरण के लिए, यदि उत्पादन का स्तर Oq_1 से बढ़ाकर Oq_2 करना हो तो सयत्र का आकार यथावत् रहने पर (सयत्र का आकार Z_1 पर स्थिर रहते हुए) औसत उत्पादन लागत Cq_2 होगी। इसके विपरीत

संयत्र का आकार Z_2 करने पर, यानी दूसरा संयत्र स्थापित करने पर, Oq_2 मात्रा की उत्पादन लागत केवल Bq_2 होगी।

चित्र 11.3 से यह भी स्पष्ट है कि आच्छादन वक्र (LAC) विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर स्पर्श करता है। *वस्तुतः ये उत्पादन स्तर वे ही हैं जिन पर अल्पकालीन कुल लागत वक्रों को दीर्घकालीन कुल लागत वक्र स्पर्श करता है।* प्रत्येक अल्पकालीन लागत वक्र (SAC_1) अंग्रेजी के U आकार का है, तथा आच्छादन वक्र अथवा दीर्घकालीन लागत वक्र (LAC) इनमें से प्रत्येक को केवल एक ही बिंदु पर स्पर्श करता है। जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं फर्म जैसे-जैसे नए संयत्र स्थापित करती है, एक सीमा तक पैमाने की मितव्ययिताओं (economies) के कारण औसत लागत में कमी होती है और फिर अमितव्ययिताओं (diseconomies) के कारण लागत में वृद्धि होने लगती है। चूंकि फर्म संयत्र का विस्तार करने से पूर्व ही इन सभी का अनुमान करती है, उस इष्टतम आकार के संयत्र एवं इष्टतम उत्पादन के स्तर (जहां औसत लागत न्यूनतम हो) का चुनाव करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र
(The Long Run Marginal Cost Curve)

दीर्घकालीन सीमांत लागत फलन को ज्ञात करने हेतु हम दीर्घकालीन लागत फलन के (विभिन्न उत्पादन-स्तरों पर) प्रथम अवकलज प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत, दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र का निरूपण विभिन्न अल्पकालीन लागत वक्रों
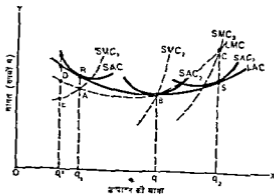
चित्र 11.4 दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र का निरूपण

के माध्यम से किया जा सकता है। परंतु यह ध्यान रखने की बात है कि यद्यपि दीर्घकालीन कुल लागत वक्र (LTC) एवं दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) वस्तुतः अल्पकालीन कुल लागत वक्रों (STC) एवं अल्पकालीन औसत लागत वक्रों (SAC_1) के आच्छादन वक्र हैं, तथापि दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र (LMC)

अल्पकालीन सीमात लागत वक्रों (SMC_s) का आच्छादन वक्र नहीं है ।

दीर्घकालीन सीमात लागत वक्र का निरूपण चित्र 11.4 के माध्यम से किया गया है ।

चित्र 11 4 मे दीर्घकालीन लागत वक्र LAC प्रथम सयत्र से सबद्ध औसत लागत वक्र SAC_1 को R बिंदु पर स्पर्श करता है जहा फर्म Oq_1 इकाई का उत्पादन करती है । इसीलिए उत्पादन के Oq_1 स्तर पर अल्पकालीन औसत लागत एव दीर्घ-कालीन औसत लागत मे समानता होगी (SAC=LAC) । इसका यह भी अर्थ होगा कि उत्पादन के Oq_1 स्तर पर अल्पकालीन कुल लागत तथा दीर्घकालीन कुल लागत मे समानता होगी (STC=LTC), और साथ ही अल्पकालीन सीमात लागत एव दीर्घकालीन सीमात लागत मे समानता होगी । जैसा कि चित्र मे बतलाया गया है, Oq_1 उत्पादन-स्तर पर अल्प व दीर्घकालीन औसत लागतें Rq_1 हैं, और इस स्तर पर औसत लागत ह्रासमान होने के कारण अल्पकालीन सीमात लागत Aq_1 है ($Aq_1<Rq_1$) । फलस्वरूप दीर्घकालीन सीमात लागत भी Aq_1 होगी । सक्षेप मे, दीर्घकालीन सीमात लागत Oq_1 उत्पादन स्तर पर Aq_1 होगी तथा दीर्घकालीन सीमात लागत वक्र का प्रथम बिंदु A होगा ।

अब मान लीजिए की सयत्र का आकार बढाकर दिया जाता है तथा विस्तृत सयत्र का लागत वक्र SAC_2 है । इस पर $O\bar{q}$ उत्पादन-स्तर पर दीर्घकालीन औसत लागत वक्र B बिंदु पर अल्पकालीन औसत लागत वक्र को स्पर्श करता है । ऊपर दिए गए तर्क के आधार पर यह कहा जा सकता है कि $O\bar{q}$ उत्पादन-स्तर पर यदि SAC व LAC मे समानता है तो अल्पकालीन कुल लागत व दीर्घकालीन कुल लागत मे भी समानता होगी (STC=LTC), और इसी प्रकार अल्पकालीन सीमात लागत एवं दीर्घकालीन सीमात लागत मे भी समानता होगी (SMC=LMC) । इसी प्रकार तीसरे सयत्र की स्थापना पर उत्पादन का स्तर जब Oq_2 होता है तो वहा भी सभी अल्पकालीन लागतें समस्त दीर्घकालीन लागतो के समान होगी (यानी SAC_3= LAC, STC=LAC एव SMC=LMC) । परतु इस सदर्भ मे ध्यान रखने की बात यह है कि अमितव्ययिताओं के कारण B बिंदु के बाद दीर्घकालीन औसत लागत मे वृद्धि होने लगती है और इसीलिए अल्पकालीन सीमात लागत अल्पकालीन औसत लागत से (Oq_2 उत्पादन स्तर पर) अधिक होगी ($Cq_2>Sq_2$) । यही कारण है कि दीर्घकालीन सीमात लागत भी दीर्घकालीन औसत लागत से अधिक है । अस्तु, दीर्घ-कालीन सीमात लागत (LMC) के निरूपण हेतु हम उत्पादन के उन विभिन्न स्तरो पर अल्पकालीन सीमात लागतो (SMC) को देखते हैं जहा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) अल्पकालीन औसत लागत वक्रो (SAC_1, SAC_2, SAC_3...) को स्पर्श करता है । चित्र 11 4 मे दीर्घकालीन सीमात लागत वक्र A, B व C बिंदुओ का बिंदु-पथ है ।

चित्र 11 4 से यह भी स्पष्ट होता है कि B बिंदु पर दीर्घकालीन औसत लागत न्यूनतम है । जैसाकि ऊपर बतलाया गया था, यह स्तर फर्म के इष्टतम पैमाने

को व्यक्त करता है, और तदनुसार द्वितीय संयत्र फर्म के लिए इष्टतम संयत्र (optimum plant) माना जाएगा।

एक उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि उत्पादन के उस प्रत्येक स्तर पर, जहां SAC=LAC की स्थिति है, SMC तथा LMC में भी समानता होगी, तथापि इनमें से प्रत्येक स्तर से कम उत्पादन होने पर दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत से अधिक होगी (LMC>SMC) तथा LMC वक्र SMC वक्र से ऊपर होगा।

उदाहरण के लिए, जब फर्म Oq_1 इकाइयों का उत्पादन करती है तो अल्पकालीन औसत एवं सीमांत लागतें दीर्घकालीन औसत व सीमांत लागतों के समान हैं ($SAC=LAC=Rq_1$, $SMC=LMC=Aq_1$)। परन्तु यदि फर्म Oq'_1 मात्रा में ही उत्पादन करती हो तो दीर्घकालीन सीमांत लागत, अल्पकालीन सीमांत लागत से अधिक होगी ($Dq'_1>Eq'_1$)। परन्तु Oq'_1 मात्रा में उत्पादन करने पर अल्पकालीन औसत लागत दीर्घकालीन औसत लागत से अधिक है और इसीलिए अल्पकालीन कुल लागत भी दीर्घकालीन कुल लागत से अधिक होगी (SAC>LAC, STC>LTC)। संक्षेप में, जब फर्म Oq'_1 से Oq_1 उत्पादन स्तर पर पहुंचती है तो वह STC>LTC की स्थिति से हटकर ऐसी स्थिति में पहुंचती है जहां STC=LTC तथा SAC=LAC की स्थिति है (बिंदु A पर)। इसीलिए अल्पकालीन कुल लागत में Oq'_1 व Oq_1 के बीच दीर्घकालीन कुल लागत की तुलना में कम वृद्धि होनी चाहिए ($\Delta STC<\Delta LTC$)।[1]

संक्षेप में, प्रत्येक संयत्र के दीर्घकालीन इष्टतम (जहां SAC व LAC समान हैं) पर उत्पादन होने की स्थिति में अल्पकालीन व दीर्घकालीन सीमांत लागतें समान होती हैं जबकि इस स्तर से कम उत्पादन होने पर दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत से अधिक होगी (LMC>SMC)।

दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) व दीर्घकालीन सीमांत लागत (LMC) में संबंध

दीर्घकालीन औसत लागत व दीर्घकालीन सीमांत लागत के बीच उसी प्रकार का संबंध होता है जैसा कि गत अध्याय में औसत लागत व सीमांत लागत के मध्य

1. मान लीजिए $Oq'_1=10$ व $Oq_1=15$ है। यह भी मान लीजिए कि इनसे संबद्ध अल्पकालीन व दीर्घकालीन लागतें इस प्रकार हैं—

उत्पादन का स्तर	LTC	LMC	STC	SMC
10	40	30/5	50	20/5
15	70		70	

इस प्रकार Oq_1 स्तर पर उत्पादन करने पर अल्पकालीन व दीर्घकालीन औसत एवं कुल लागतें समान हैं परन्तु इससे कम उत्पादन करने पर दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत से अधिक होगी (LMC>SMC)।

बतलाया गया था। जब दीर्घकालीन औसत लागत मे कमी होती है (चित्र 11 4 मे B बिंदु तक) तो इसके पीछे प्रमुख कारण यह होता है कि फर्म को पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल (increasing returns to scale) मिलने के कारण उत्पादन की अपेक्षा लागत मे धीमी गति से वृद्धि होगी। ऐसी स्थिति मे दीर्घकालीन सीमात लागत दीर्घकालीन औसत लागत से कम होगी (LMC<LAC)। जब पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल के कारण दीर्घकालीन औसत लागत मे वृद्धि होने लगती है तो दीर्घकालीन सीमात लागत दीर्घकालीन औसत लागत से अधिक हो जाती है (LMC>LAC), जैसा कि चित्र 11 4 मे B बिंदु से आगे दिखाया गया है। ग्रत मे, जब दीर्घकालीन औसत लागत न्यूनतम होती है (जैसा कि चित्र 11 4 मे B पर होता है) तब दीर्घकालीन सीमात लागत इसके समान होती है (LMC=LAC)।

11 3 विस्तार-पथ एवं दीर्घकालीन लागत फलन
(Expansion Path and the Long Run Cost Function)

अध्याय 9 के खड 9 2 मे हमने पैमाने के प्रतिफलो एव विस्तार-पथ (Expansion Path) के बीच विद्यमान सबध की चर्चा की थी। लागत के सदर्भ मे हम अब विस्तार-पथ तथा लागत-फलन के सबधो की चर्चा करेंगे।

अध्याय 9 मे हमने देखा था कि समोत्पाद वक्रो एव सम लागत रेखाओ के स्पर्श-बिंदुओ के बिंदु-पथ (locus) को विस्तार-पथ कहा जाता है। अन्य शब्दो मे, यदि साधनो के मूल्य यथावत रहें, तो सम लागत रेखा (iso-cost line) के विवर्तन का अर्थ यह होगा कि फर्म के सयत्र का आकार बढ गया है। चित्र 11 5
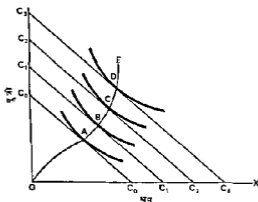
चित्र 11.5 विस्तार-पथ एव दीर्घकालीन लागत

मे हमने चार सम लागत रेखाए, क्रमश C_0C_0, C_1C_1, C_2C_2 व C_3C_3 प्रस्तुत की हैं जो यह बताती हैं कि श्रम व पूजी की कीमतें यथावत रहते हुए फर्म उत्तरोत्तर अधिक लागत राशि व्यय करने की स्थिति मे आती जा रही है। ये सम लागत रेखाए जिन

बिंदुओ (A, B, C, D) पर विभिन्न समोत्पाद वक्रो को स्पर्श करती हैं उन्हे मिलाने पर हमे OE विस्तार पथ प्राप्त होता है। इन समोत्पाद वक्रो पर उत्पादन की जितनी मात्राएं प्राप्त होती हैं उनकी सूचना उपलब्ध होने पर हम कुल लागत फलन ज्ञात कर सकते हैं। अस्तु, सभी सम लागत रेखाओ से सबद्ध (साम्य) उत्पादन मात्राओ को देखकर हम कुल लागत तालिका प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार विभिन्न लागत-स्तरो एव सबद्ध उत्पादन की मात्राओ (जो समोत्पाद वक्रो से ज्ञात होती हैं) को देखकर हम दीर्घकालीन सीमात लागत वक्र (LMC) ज्ञात कर सकते हैं।

अल्पकालीन औसत लागत एव दीर्घकालीन औसत लागत के मध्य सबध (Relationship between SAC and LAC)

ऊपर अनुभाग 11.1 मे हमने यह स्पष्ट किया था कि यदि उत्पादन की मात्रा काफी कम हो तो सयत्र के छोटे आकार से ही प्रति इकाई उत्पादन लागत कम होती है, परतु काफी अधिक उत्पादन करने हेतु सयत्र के आकार मे वृद्धि करके ही लागत मे कमी लाई जा सकती है (चित्र 11.1)।

सामान्य तौर पर अल्पकाल मे सयत्र का आकार यथावत् रहता है। मान लीजिए फर्म की पूजी की मात्रा OK_2 पर स्थिर रखी जाती है। जैसा कि चित्र 11.6 मे बताया गया है, यदि फर्म C_1C_1 लागत राशि व्यय करना चाहती है, तो I_2 समोत्पाद वक्र पर B बिंदु पर ही यह श्रम व पूजी का प्रयोग न्यूनतम लागत पर कर
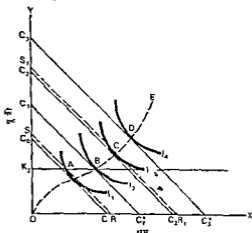
चित्र 11.6 साधन की स्थिर मात्रा एव इष्टतम भिन्न समायोजन

सकती है। कल्पना कीजिए फर्म उत्पादन की मात्रा बढ़ाकर I_3 के अनुरूप करना चाहती है। अल्पकाल मे पूजी का स्तर OK_2 पर स्थिर रहने पर फर्म को श्रम की मात्रा K_2B से बढाकर K_2D करना होगा उत्पादन की कुल लागत S_1R_1 सम लागत

रेखा के अनुरूप है। यदि इसके विपरीत फर्म को श्रम के साथ साथ पूंजी की मात्रा मे भी वृद्धि करने की छूट दी जाए (जैसा कि दीर्घकाल मे ही सभव है) तो उत्पादन की कुल लागत C_2C_2 ही रहेगी। जो S_1R_1 से कम है ($C_2C_2 < S_1R_1$)। इस प्रकार दोनो साधनों की मात्रा मे यानी सयत्र के आकार मे वृद्धि की छूट मिल जाने पर उत्पादन की लागत म कमी लाई जा सकती है।

इसी प्रकार यदि पूंजी की मात्रा OK_2 पर स्थिर रखते हुए फर्म उत्पादन का स्तर I_2 से घटाकर I_1 करना चाहे तो उसे K_2A मात्रा मे श्रम का प्रयोग करना होगा, जहा कुल लागत का स्तर SR सम-लागत रेखा के अनुरूप है। परतु यदि श्रम के साथ पूंजी की मात्रा मे भी कमी करने, यानी सयत्र का आकार घटाने की छूट हो तो लागत C_0C सम लागत रेखा के अनुरूप ही होगा, जो SR से कम होगी। इस प्रकार यदि पजी की मात्रा वही रखते हुए श्रम की मात्रा मे कमी या वृद्धि के द्वारा ही उत्पादन के स्तर म कमी या वृद्धि की जाए तो उत्पादन की लागत का स्तर उस स्थिति की अपेक्षा अधिक होगा जिसमे पूंजी की मात्रा मे भी कमी या वृद्धि करना, यानी पैमाने मे कमी या वृद्धि करना सभव है ($C_0C < SR$, $C_2C_2 < S_1R_1$)। सक्षेप मे, पैमाने के परिवर्तन के द्वारा हम प्रति इकाई उत्पादन लागत मे कमी कर सकते हैं।

इसी प्रकार यह तर्क भी दिया जा सकता है कि विभिन्न उत्पादन-स्तरो के लिए विस्तार पथ (expansion) पर ही प्रति इकाई (औसत) लागत कम होती है क्योंकि विस्तार पथ साधनो के न्यूनतम लागत वाले सयोगो का ही बिंदु पथ है। यदि फर्म विस्तार पथ से हटकर उत्पादन करना चाहती है तो इसे अपेक्षाकृत ऊची लागतें वहन करनी होगी।

11 4 पैमाने की मितव्ययिताए एव अमितव्ययिताएं तथा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

(Economies and Diseconomies of Scale, and the Shape of LAC)

ऊपर हमने यह देखा था कि कोई भी फर्म अपने सयत्र का विस्तार करके उत्पादन की औसत लागत मे कमी कर सकती है। मार्शल ने बतलाया कि फर्म जब भी पैमाने का विस्तार करती है तो उसे एक सीमा तक कुछ मितव्ययिताए प्राप्त होती है। ऐसी मितव्ययिताओ (economies) को उन्होने दो श्रेणियो मे विभाजित किया[2] आतरिक मितव्ययिताए (internal economies) तथा बाह्य मितव्ययिताए (external economies)। हम अब इन्ही मितव्ययिताओं की विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

आतरिक मितव्ययिताए या बचतें ये ऐसी मितव्ययिताए हैं जो किसी भी फर्म को विभिन्न उत्पादन क्रियाओ के बेहतर सगठन के कारण प्राप्त होती हैं। बहुधा

2 Alfred Marshall 'Principles of Economics' (Eighth Edition) London, MacMillan & Co, Book IV, Ch IX to XI

सयत्र के विस्तार के साथ-साथ एक सीमा तक फर्म को तीन प्रकार की आन्तरिक मितव्ययिताए प्राप्त होती हैं तकनीकी (technical) मितव्ययिताए, प्रबध सबधी (managerial) मितव्ययिताए तथा विपणन मितव्ययिताए (marketing economies)।

तकनीकी मितव्ययिताए उस समय प्राप्त होती हैं जब पैमाने के विस्तार के साथ-साथ उद्यमी प्रत्येक श्रमिक की दक्षता में वृद्धि करने म सफल हो जाता है। यही नही, इसमे उत्पादन-प्रक्रिया मे होने वाली समय की बचत को भी शामिल किया जा सकता है। मार्शल ने तकनीकी मितव्ययिताओ म उद्यमी की दक्षता व प्रतिभा को भी शामिल किया है जिसके द्वारा वह नई मशीनो का आविष्कार करके उत्पादन के बडे पैमाने पर भी औसत लागत मे कमी कर लेता है। वे यह मानते हैं कि नए आविष्कार केवल दीर्घकाल मे ही सभव हो पाते हैं। एक छोटी फर्म साधारणतया प्रयोगो म व्यय की जाने वाली धनराशि नहीं जुटा पाती, और इसलिए आविष्कारो की खोज का बीड़ा केवल बडी फर्म ही उठा सकती है। तकनीकी मितव्ययिताए यत्रो के प्रयोग मे भी प्राप्त हो सकती हैं। बडे पैमाने पर उत्पादन करके प्रति इकाई लागत को न्यूनतम केवल उसी स्थिति मे किया जा सकता है जबकि सयत्र की क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग किया जाए। यह सब बडे पैमाने पर उत्पादन करने पर ही (दीर्घकाल मे) सभव है।

प्रबध-सबधी मितव्ययिताए फर्म के सगठन एव कार्यालय-क्षमता आदि म सबद्ध होती हैं। सयत्र को दुगुना या तीन गुना कर देने पर यह आवश्यक नहीं है कि कार्यालय के कर्मचारियों की सख्या एव कार्यालय के स्थान मे भी उसी अनुपात मे वृद्धि की जाए। मार्शल ने स्वय यह तर्क दिया कि वही मैनजर थोडी सी अधिक पगार लेकर दो गुने आकार की फर्म का सचालन कर सकता है। इस प्रकार पैमाने का विस्तार करने पर प्रति इकाई प्रबध-लागत व्यय मे कमी हो सकती है।

मार्शल ने यह भी तर्क दिया कि बडे आकार की फर्म कच्चा माल खरीदने, तैयार माल बेचने तथा मगाने या भेजने म सबधित परिवहन आदि के खर्चों मे भी बचत कर सकती है। थोक भाव पर बडी मात्रा मे खरीदने पर इसकी उत्पादन लागत मे कमी होती है। इसी प्रकार बडी फर्म की विक्रय-नीति मे प्रति इकाई विज्ञापन-लागत भी छोटी फर्म की अपेक्षा कम होती है।

बडे आकार की फर्म को एक महत्वपूर्ण आतरिक मितव्ययिताए विशिष्टीकरण (specialization) एव श्रम विभाजन (division of labour) के कारण भी प्राप्त होती है। यदि उत्पादन का आकार छोटा है तो श्रमिको का काफी समय उपकरणो के परिवर्तन मे ही व्यय हो जाता है। इसके विपरीत बडे पैमाने पर उत्पादन होने की स्थिति मे श्रमिको को विशिष्ट कार्यों के लिए ही काम पर रखा जाएगा। य श्रमिक अपेक्षाकृत अधिक दक्ष एव अनुभवी होंगे और इस कारण समय तथा श्रम दोनों की बचत होने के कारण उत्पादन लागत मे कमी आएगी।

बाह्य मितव्ययिताएं : बाह्य मितव्ययिताए वे बचतें हैं जो किसी बडे सयत्र वाली फर्म को बाहरी सस्थाओं द्वारा प्रदत्त छूट के कारण प्राप्त होती हैं। उदाहरण

के लिए एक विशालकाय औद्योगिक इकाई को सरकार द्वारा विद्युत्-दरों में छूट दी जा सकती है अथवा बैंक व डाकघर की सुविधाओं के अतिरिक्त परिवहन व संचार की सुविधाएं इसके प्रांगण में ही उपलब्ध कराई जा सकती हैं। ये सुविधाएं बहुधा किसी छोटी फर्म को नहीं मिल पाती। इसी प्रकार तकनीकी ज्ञान का आदान-प्रदान भी किसी उद्योग की दक्षता में वृद्धि करता है जो केवल पैमाने के सवर्द्धन के लिए ही सम्भव है। आंतरिक एवं बाह्य मितव्ययिताओं के कारण एक बड़ी फर्म के लिए उत्तरोत्तर अपनी उत्पादन लागत में कमी करना सम्भव हो जाता है। इसके फलस्वरूप इसका दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) ह्रासमान प्रवृत्ति दिखाता है और फलस्वरूप दीर्घकालीन सीमान्त लागत इससे भी अधिक तीव्र गति से घटती जाएगी। इस प्रवृत्ति को चित्र 11.7 के पैनल (a) में प्रदर्शित किया गया है।
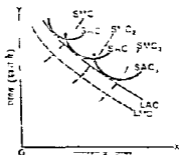
(a) पैमाने की मितव्ययिताएं एवं दीर्घकालीन लागत वक्र

परन्तु फर्म को सदैव ही मितव्ययिताएं प्राप्त नहीं हो पातीं। कुछ समय के पश्चात् ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है जिसमें फर्म का आकार काफी बड़ा हो जाने के कारण इसे अनेक अमितव्ययिताओं (diseconomies) का सामना करना पड़ता है। एक बहुत बड़ी फर्म के लिए अपनी उत्पादन, विपणन, परिवहन, वित्त,
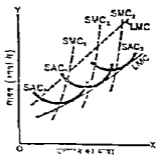
(b) पैमाने की अमितव्ययिताएं एवं दीर्घकालीन लागत वक्र
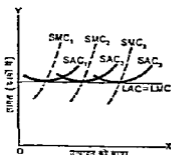
(c) पैमाने के स्थिर प्रतिफल एवं दीर्घकालीन लागत वक्र

चित्र 11.7 पैमाने के प्रतिफल एवं LAC व LMC वक्रों का स्वरूप

कर्मचारियों की भर्ती, कच्चे माल की खरीद आदि सभी क्रियाओं में पूर्णतया तालमेल बनाए रखना एक बहुत बड़ी समस्या है। बहुत अधिक विस्तार कर चुकने पर श्रमिकों व प्रबंधकों के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क बनाए रखना कठिन हो जाता है, तथा श्रमिक-विवादों से

बहुधा काफी क्षति उठानी पड़ती है । इसी प्रकार प्रबंधको के पास सभी सूचनाए तत्काल नही पहुच पाती और इसीलिए वे तत्काल निर्णय नही ले पाते । नौकरशाही, लालफीताशाही एव ऊपर वर्णित समस्याओ के कारण कुल मिला कर एक सीमा के बाद फर्म का पैमाना बढने पर इसकी कार्यकुशलता मे कमी होती है और इसके फलस्वरूप उत्पादन मे वृद्धि की अपेक्षा लागत मे अधिक तीव्र गति से वृद्धि होने लगती है । यही कारण है कि अमितव्ययिताओ के कारण दीर्घकालीन औसत एव सीमात लागत वक्रो का ढलान धनात्मक होता है । बहुधा किसी उद्योग का जिस गति से विस्तार होता है उस गति से कच्चे माल की उपलब्धिया नही बढ पाती । इसके फलस्वरूप कच्चे माल की कीमत किराए, मजदूरी-दर आदि मे वृद्धि होने के कारण भी लागतो मे वृद्धि होने लगती है । चित्र 11 7 के पैनल (b) मे हमने अमितव्ययिताओं के संदर्भ मे प्राप्त दीर्घकालीन औसत एव सीमात लागतो को प्रस्तुत किया है ।

अत मे, एक ऐसी भी स्थिति हो सकती है जिसमे फर्म को न तो किसी प्रकार की मितव्ययिता प्राप्त होती है और न ही इसे किसी प्रकार की अमितव्ययिताओ का भय होता है । ऐसी स्थिति मे फर्म को पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होते हैं तथा कुल लागत मे उत्पादन के साथ समानुपाती वृद्धि होने के कारण औसत (दीर्घकालीन) लागत स्थिर रहती है । इसीलिए दीर्घकालीन सीमात लागत भी स्थिर रहती है (LMC = LAC) यह स्थिति चित्र 11 7 के पैनल (c) मे बतलाई गई है ।

परतु बहुधा एक फर्म के कार्य काल के प्रारंभिक चरण मे उत्पादन का पैमाना बढाने के साथ साथ आतरिक एव बाह्य मितव्ययिताओ के कारण औसत (दीर्घकालीन) एव सीमात लागतो मे कमी होती है । कभी कभी आतरिक एव बाह्य अमितव्ययिताए पैमाने के विस्तार के प्रथम चरण मे ही उदित होने लगती हैं, परन्तु तकनीकी मितव्ययिताए इस चरण मे इतनी अधिक होती हैं कि कुल मिलाकर औसत एव सीमात लागतें एक सीमा तक तो कम होती ही हैं । यदि फर्म के पैमाने का विस्तार जारी रहता है तो जैसा कि हम पूर्व मे पढ चुके हैं, अमितव्ययिताए प्राप्त होने के कारण कुल लागत मे उत्पादन की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से वृद्धि होगी, तथा औसत एव सीमात लागत वक्र चित्र 11 7 के पैनल (b) के अनुरूप होगे । सभव है पैमाने की विस्तार प्रक्रिया मे कहीं पैमाने का स्थिर प्रतिफल भी प्राप्त हो । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि चित्र 11 7 मे प्रस्तुत तीनो प्रवृत्तिया परस्पर स्वतत्र एव शुद्ध
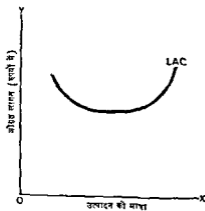
चित्र 11.8 दीर्घकालीन लागत वक्र LAC की सामान्य आकृति

नहीं है, तथा एक ही फर्म को इन तीनों प्रवृत्तियों की अनुभूति हो सकती है। इसीलिए दीर्घकाल में एक फर्म का औसत लागत वक्र चित्र 11.8 में प्रस्तुत वक्र के अनुरूप हो सकता है।

संक्षेप में, यदि फर्म के पैमाने का अविरल रूप से विस्तार किया जाए तो एक सीमा तक दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) में कमी होगी, कुछ समय तक यह स्थिर रहेगी, और अन्त में अमितव्ययिताओं के कारण इसमें वृद्धि प्रारंभ हो जाएगी।

11.5 पैमाने के प्रतिफल एवं लागत वक्रों का संबंध
(Returns to Scale and Cost Curves)

हमारे समूचे विश्लेषण में यह मान्यता ली गई है कि यदि साधनों की कीमतें यथावत रहती हैं तो पैमाने के प्रतिफल एवं लागत की प्रवृत्ति में विपरीत संबंध होगा। उदाहरण के लिए, यदि फलन गुणांक (function coefficient)—जो पैमाने के प्रतिफल का प्रतीक है—को α मान लें ($Q = L^{\alpha}$, जहां L उत्पादन के सभी साधनों का प्रतीक है) तथा लागत लोच को β मान लें (अर्थात् $C = Q^{\beta}$, जहां Q उत्पादन एवं लागत के प्रतीक हैं) तो साधनों की कीमतें स्थिर रखते हुए $\alpha = \frac{1}{\beta}$ अथवा $\beta = \frac{1}{\alpha}$ का संबंध वैध होगा। अन्य शब्दों में, यदि $\alpha = 2$ है तो यह पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल का प्रतीक है, तथा ऐसी स्थिति में लागत लोच $\beta = \frac{1}{2}$ होगी, अर्थात् सीमान्त लागत का स्तर औसत लागत के स्तर से आधा होगा। अन्य शब्दों में, यदि साधनों के औसत तथा सीमान्त उत्पादन वक्र धनात्मक ढलानयुक्त (positively sloped) हों तो उत्पादन के औसत व सीमान्त लागत वक्रों का ढलान ऋणात्मक होगा।

परन्तु यदि साधनों की कीमतों में परिवर्तन की छूट दे दी जाए तो α एवं β के बीच यह संबंध वैध नहीं रह पाएगा। अब α एवं β के भिन्न मान लागत वक्रों की आकृति का निर्धारण करेंगे। यदि $\alpha = \beta = 1$ हो तो यह स्थिति पैमाने के स्थिर प्रतिफल की होगी तथा इसके अन्तर्गत औसत एवं सीमान्त उत्पादन वक्रों के साथ-साथ दीर्घकालीन एवं सीमान्त लागत वक्र भी क्षैतिज (horizontal) होंगे (MP of all Factors=AP; LAC=LMC)। परन्तु यदि $\beta > \alpha > 1$ हो तो चूंकि $\alpha > 1$ है, यह पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल की स्थिति है, फिर भी चूंकि उत्पादन की लागत लोच बहुत अधिक है, लागतों में होने वाली वृद्धि पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल को भी सोख लेती है। ऐसी स्थिति में लागत वक्र भी धनात्मक ढलानयुक्त होंगे। चित्र 11.9 में इसी स्थिति को प्रदर्शित किया गया है जिसमें पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल होने पर भी औसत व सीमान्त लागत वक्र का ढलान धनात्मक है।

चित्र 11.9 के पैनल (a) में पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के कारण सभी साधनों के संयुक्त औसत एवं सीमान्त उत्पादन वक्र (AP एवं MP) वर्द्धमान प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। परंतु साधनों की कीमतें बहुत तीव्र गति से बढ़ने के कारण लागत में

होने वाली वृद्धि उत्पादन की वृद्धि के अनुपात से अधिक है। और इसीलिए पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल होने पर भी दीर्घकालीन औसत एवं सीमांत लागत वक्रों की प्रवृत्ति भी वर्द्धमान है। (चित्र 11 9 पैनल b)।[3]

(a) पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के अंतर्गत औसत व सीमांत उत्पादन वक्र ($\propto>1$)
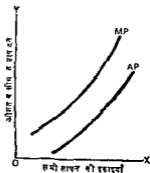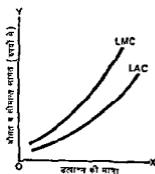
(b) साधन लोच इकाई से अधिक होने पर ($\beta>\propto>1$) दीर्घकालीन औसत व सीमांत लागत वक्र

चित्र 11 9 साधनों की वर्द्धमान कीमतों के संदर्भ में पैमाने के प्रतिफल एवं लागतों के मध्य संबंध

11 6 उत्पादन संभावना वक्र एवं लागत फलन
(The Production Possibility Curve and Cost Functions)

यदि फर्म को उपलब्ध साधनों का आवंटन एक से अधिक वस्तु के उत्पादन हेतु किया जा सकता हो तो इन वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन प्रारंभ हो जाएगा। कल्पना कीजिए कि फर्म को उपलब्ध लागत राशि का प्रयोग दो वस्तुओं के उत्पादन हेतु ही किया जा सकता है। दोनों वस्तुओं पर व्यय की जाने वाली कुल लागत यथावत रहती है परंतु यदि एक वस्तु के उत्पादन हेतु अधिक राशि व्यय करनी हो तो

3 निम्न तालिका से यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है—

साधनों की संयुक्त इकाइयां	उत्पादन की कुल मात्रा	AP	MP	साधन की प्रति इकाई कीमत	कुल लागत	औसत लागत	सीमांत लागत
2	5	2 5	—	10	20	4 0	—
4	12	3 0	3 5	20	80	6 7	8 6
6	20	3 3	4 0	30	180	9 0	12 5

इस प्रकार साधनों की कीमतों में वृद्धि होने पर AP एवं MP में वृद्धि होने पर भी दीर्घकालीन औसत तथा सीमांत लागतों में वृद्धि हो सकती है।

दूसरी वस्तु के उत्पादन हेतु उपलब्ध राशि मे कमी करना जरूरी होगा। अस्तु—

$$dC = \frac{\partial C}{\partial X} \cdot dX + \frac{\partial C}{\partial Y} \cdot dY = 0 \qquad 11\ 14$$

समीकरण (11 14) का अर्थ यह है कि X के उत्पादन मे वृद्धि करने हेतु Y के उत्पादन मे कमी करनी होती है। परतु X का उत्पादन बढाने हेतु फर्म को X पर अधिक लागत-राशि व्यय करनी होगी। X के लिए वहन की गई अतिरिक्त लागत $\left(\frac{\partial C}{\partial X} \quad dX\right)$ की राशि Y के उत्पादन में कमी करन पर उसकी उत्पादन लागत मे हुई कमी $\left(\frac{\partial C}{\partial Y} \cdot dY,\ \text{जहा } dY<0\right)$ के समान है और इस प्रकार कुल लागत मे कोई परिवर्तन नही होता (dC=0)।

समीकरण (11 14) वस्तुत उत्पादन सभावना वक्र का समीकरण है। जैसा क च 11 1) r बतलाया गया है, उत्पादन सभावना वक्र का ढलान ऋणात्मक है।
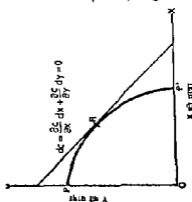
चित्र 11.10 उत्पादन सभावना वक्र

परतु जैसा कि हम चित्र 11 10 मे देखते हैं, उत्पादन सभावना वक्र मूल बिंदु से नतोदर (concave) है। उदाहरण के लिए, हम P से P' की ओर जाते हैं तो उत्पादन सभावना वक्र का ढलान बढता जाता है। वस्तुत उत्पादन सभावना वक्र का ढलान हमे यह बतलाता है कि X की निर्दिष्ट मात्रा बढ़ने पर Y की कितनी मात्रा का परित्याग किया जाता है। इसे सीमात उत्पादन-रूपातर दर (Marginal Rate of Product Transformation) कहा जाता है। समीकरण (11 14) के माध्यम से सीमात उत्पादन रूपातर दर का निरूपण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

$$dC = \frac{\partial C}{\partial X} \cdot dX + \frac{\partial C}{\partial Y} \cdot dY = 0$$

$$\frac{-\partial C}{\partial Y} \cdot dY = \frac{\partial C}{\partial X} \cdot dX$$

$$\frac{-dY}{dX} = \frac{\partial C}{\partial X} \Big/ \frac{\partial C}{\partial Y} \qquad ...11.15$$

समीकरण (11.15) का बाया पक्ष X की अतिरिक्त मात्रा के उत्पादन हेतु Y की त्यागी गई मात्राओ को प्रस्तुत करता है जब कि दाई ओर X तथा Y की सीमात लागतो का अनुपात (MC_x/MC_y) है। उत्पादन सभावना वक्र की नतोदरता (concavity) का अर्थ यह हुआ कि X की अतिरिक्त मात्रा प्राप्त करने हेतु हमें उत्तरोत्तर Y की

अधिक मात्राओं का परित्याग करना होगा, अर्थात् X के उत्पादन हेतु उत्तरोत्तर अधिक अवसर लागत (opportunity cost) वहन करनी होगी।

X एवं Y की सीमांत लागतों का अनुपात बढ़ने के कारण भी उत्पादन संभावना वक्र का ढलान बढ़ता है। इसका कारण यह है कि द्वितीय अवस्था में X का उत्पादन बढ़ने पर इसकी सीमांत लागत में वृद्धि होती है जबकि Y का उत्पादन कम होने पर इसकी सीमांत लागत में कमी होती है। परिणामस्वरूप MC_x/MC_y यानी उत्पादन संभावना वक्र के ढलान में वृद्धि होती है। वस्तुतः यह तभी होता है जब फर्म ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत उत्पादन कर रही हो। यदि फर्म वर्द्धमान प्रतिफल के अंतर्गत कार्य करती हो तो X का उत्पादन बढ़ाने पर सीमांत लागत (MC_x) में कमी होगी जबकि Y का उत्पादन कम करने पर सीमांत लागत में (MC_y) में वृद्धि होगी। इस स्थिति में उत्पादन संभावना वक्र मूल बिंदु से नतोदर न होकर उन्नतोदर (convex) होगा।

चूंकि उत्पादन संभावना वक्र पर कुल उत्पादन लागत (C) स्थिर रहती है, हम इसे सम-लागत वक्र (isocost curve) भी कह सकते हैं। लागत सीमा C के भीतर प्रत्येक फर्म दोनों वस्तुओं से प्राप्त आगम (revenue) को अधिकतम करना चाहेगी। अस्तु—

$$\text{Maximize } R = P_x X + P_y Y$$

जहां लागत सीमा इस प्रकार है—

$$C^{\circ} = f(X, Y)$$

लैग्रान्जीयन एवम्ड्रेसम फलन के अनुसार—

$$F = P_x X + P_y Y + \lambda[C^{\circ} - f(X, Y)]$$

चूंकि फर्म X एवं Y दोनों ही में अधिकतम आगम प्राप्त करना चाहती है, हम आंशिक अवकलज का मूल्य शून्य के समान रखना चाहेंगे—

$$\left.\begin{aligned} \frac{\partial F}{\partial X} &= P_x - \lambda f'X = 0 \\ \frac{\partial F}{\partial Y} &= P_y - \lambda f'Y = 0 \\ \frac{\partial F}{\partial \lambda} &= C^{\circ} - f(X, Y) = 0 \end{aligned}\right\} \quad \ldots 11.16$$

उपरोक्त फलनों में $f(X, Y)$ कुल लागत का प्रतीक है, $f'X$ एवं $f'Y$ क्रमशः X एवं Y की सीमांत लागतें हैं। समीकरण (11 16) के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि लागत सीमा के दिए होने पर फर्म का आगम उस स्तर पर अधिकतम होगा जहां

$$\frac{P_x}{P_y} = \frac{f'(X)}{f'(Y)} \text{ or } \frac{P_x}{P_y} = \frac{MC_x}{MC_y} \qquad 11\ 17$$

समीकरण (11 17) से स्पष्ट होता है कि जहां उत्पादन संभावना वक्र का ढलान MC_x/MC_y सम आगम रेखा के ढलान (P_x/P_y) के समान है, X एवं Y के उसी संयोग का उत्पादन करने पर फर्म को अधिकतम आगम प्राप्त होता है। चित्र 11 10 में यह इष्टतम संयोग की साम्य स्थिति R बिंदु पर प्राप्त होती है।

12

विनिमय का सामान्य सिद्धांत
(GENERAL THEORY OF EXCHANGE)

प्रस्तावना

इस पुस्तक के अध्याय 3 से 6 तक हमने उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण किया था तथा यह बतलाया था कि किसी वस्तु की माग का निर्धारण करने वाली शक्तिया कौन सी होती हैं। फिर अध्याय 7 से 11 तक हमने एक विवेकशील फर्म के व्यवहार का विश्लेषण प्रस्तुत किया, जिसके अतर्गत फर्म निर्दिष्ट स्तर पर उत्पादन करने हेतु लागत को न्यूनतम करने का प्रयत्न करती है, अथवा वह साधनो की निर्दिष्ट मात्रा का प्रयोग करके अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास करती है। इस विश्लेषण मे यह मान्यता ली गई थी कि बाजार मे प्रत्येक फर्म साधनो को न्यूनतम लागत पर प्रयुक्त करके अधिकतम लाभ अर्जित करना चाहती है। इन अध्यायो मे हमने उन सभी शक्तियो का उल्लेख किया था जो व्यष्टिगत स्तर पर वस्तु की पूर्ति (उत्पादन) को प्रभावित करती हैं।

वर्तमान अध्याय मे हम पहले फर्म के वैकल्पिक उद्देश्यो का विवरण प्रस्तुत करेंगे। हमारी इस अध्याय मे तथा आगे के चार अध्यायो मे यह मान्यता रहेगी कि उत्पादक स्वय ही वस्तु की बिक्री करता है, तथा कुल उत्पादन एव कुल पूर्ति मे कोई अतर नही होता। हम इस अध्याय मे यह भी देखेंगे कि व्यष्टिगत माग व पूर्ति के आधार पर बाजार मे वस्तु की माग व पूर्ति का निरूपण किस प्रकार होता है। अध्याय के अत मे यह भी बतलाने का प्रयास किया गया है कि बाजार की कुल माग व पूर्ति की साम्य स्थिति के अनुरूप कीमत का निर्धारण किस प्रकार होता है।

12.1 फर्म के वैकल्पिक उद्देश्य
(Alternative Objectives of A Firm)

कोई भी फर्म किस उद्देश्य से कार्य करती है इसकी जानकारी प्राप्त करने हेतु कोई भी सरल तरीका नही है। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि कोई भी फर्म परोपकार की दृष्टि से व्यवसाय प्रारभ नही करती। अनुभव के आधार पर यह बतलाया जाता है कि भिन्न-भिन्न उत्पादको के उद्देश्य भी भिन्न हो सकते हैं। प्रोफेसर बॉमोल, कोहेन, सायर्ट, हेग आदि विद्वानों की शोध से इस तथ्य की पुष्टि होती है। प्रोफेसर

बॉमोल ने मोटे तौर पर फर्म के तीन उद्देश्य बतलाए हैं : (i) अधिकतम लाभ की प्राप्ति, (ii) अधिकतम आगम की प्राप्ति तथा (iii) लाभ सीमा के अतर्गत अधिकतम आगम की प्राप्ति ।[1] हम अब इन उद्देश्यो की व्याख्या करेंगे ।

अधिकतम लाभ की प्राप्ति (Maximization of Profit)

किसी उद्यमी या फर्म द्वारा अधिकतम लाभ की प्राप्ति ठीक उसी प्रक्रिया की भाति है जिसके अतर्गत कोई उपभोक्ता अधिक उपयोगिता या सतोष प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। बॉमोल एव हेग आदि द्वारा की गई शोध से यह स्पष्ट हो गया है कि कुल मिलाकर अधिकतम लाभ की प्राप्ति ही प्रत्येक फर्म का अतिम लक्ष्य होता है, हालाकि कभी-कभी कोई फर्म लाभ-इतर लक्ष्य की सिद्धि हेतु भी व्यवसाय करती रहती है ।

प्रश्न उठता है, लाभ' क्या है । वस्तुत फर्म की उत्पादित वस्तु की बिक्री से जो आगम प्राप्त होता है उसमें स कुल लागत को घटाने के बाद जो शेष रहता है वही फर्म का लाभ कहलाता है (π=TR—TC) । तालिका 12 1 मे हमने एक सामान्य लागत फलन के अनुरूप लागतो को स्थिर कीमत के विरुद्ध रखकर उत्पादन के विभिन्न स्तरो पर प्राप्य लाभ का आकलन किया है । यह ज्ञातव्य है कि कीमत को परिवर्तनशील मान लेने पर भी फर्म के अधिकतम लाभ की मूल शर्त मे कोई परिवर्तन नही होता । फिलहाल विश्लेषण को सरलता के लिए हमने यही मान्यता ली है कि वस्तु की कीमत यथावत रहती है ।

तालिका 12 1 से यह स्पष्ट होता है कि फर्म जब 8 इकाई का उत्पादन करती

तालिका 12 1

एक काल्पनिक फर्म के आगम, लागत एव लाभ का विवरण

उत्पादन की मात्रा	कीमत (AR)	कुल आगम (TR)	सीमात आगम (MR)	कुल लागत (TC)	औसत लागत (AC)	सीमात लागत (MC)	लाभ (π) (TR—TC)
1	2	3	4	5	6	7	8
0	10	0	—	4	—	—	—
1	10	10	10	8	8	8	2
2	10	20	10	15	7 5	7	5
3	10	30	10	21	7 0	6	9
4	10	40	10	26	6 5	5	14
5	10	50	10	30	6 0	4	20
6	10	60	10	36	6 0	6	24
7	10	70	10	45	6 4	9	25
8	10	80	10	54	6 8	10	26
9	10	90	10	66	7 3	12	24
10	10	100	10	82	8 2	16	18
11	10	110	10	115	10 5	33	—5

1 Willian J Baumol 'Economic Theory and Operations Analysis' (Third Edition—1973), Chapter 13

है तो उसे अधिकतम लाभ (26 रुपये) प्राप्त होता है। ठीक इसी तरह फर्म की सीमांत लागत इसके सीमांत आगम के समान है (MC=MR)। फर्म द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करने की यह प्रथम क्रम की शर्त है।

चित्र 12 1 के आधार पर हम फर्म द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करने की प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकते हैं। पैनल (a) में कुल आगम एवं कुल लागत के अंतर (दोनों वक्रों—TR व TC की सीध दूरी) के आधार पर कुल लाभ की स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है फर्म का अधिकतम लाभ 8 इकाइयों के उत्पादन पर होता है। इसी बात की पुष्टि चित्र 12 1 के पैनल (b) से होती है जिसमें सीमांत लागत वक्र सीमांत आगम रेखा को वहां काटता है जहां फर्म 8 इकाइयों का उत्पादन करती है, और इस प्रकार अधिकतम लाभ का स्तर यहाँ
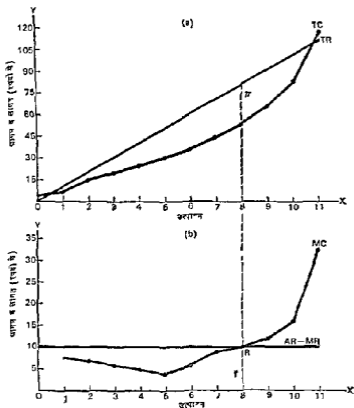
चित्र 12 1 फर्म द्वारा अधिकतम लाभ की प्राप्ति

माना जा सकता है। इस प्रकार किसी फर्म का अधिकतम लाभ प्राप्त करने का उद्देश्य उत्पादन के उस स्तर पर पूरा होता है जहा कुल आगम व कुल लागत का अतर अधिकतम हो, अथवा जहा *सीमात लागत व सीमात आगम सामान हो।*

सक्षेप मे, फर्म उत्पादन के उस स्तर पर अधिकतम लाभ प्राप्त करती है जहा MC=MR है। चित्र 12 1 मे हम यह भी देखते हैं कि 8 इकाई के पश्चात् भी उत्पादन जारी रखने पर सीमात लागत का स्तर सीमात आगम के स्तर से अधिक हो जाता है। ऐसी स्थिति मे प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन पर फर्म को हानि होगी। चित्र 12 1 के पैनल (b) मे साम्य बिंदु R के आगे सीमात लागत वक्र का ढलान सीमात आगम ढलान से अधिक है। यह अधिकतम लाभ प्राप्त करने की द्वितीय क्रम की शर्त (second order condition) कहलाती है। हम अब अधिकतम लाभ प्राप्त करने की दोनो शर्तों को गणितीय रूप मे प्रस्तुत करेंगे।

$$\pi = TR - TC$$

परन्तु $TR = f(Q)$, तथा $TC = g(Q)$

अत अधिकतम लाभ के लिए लाभ फलन का प्रथम अवकलज लेंगे—

$$\frac{d\pi}{dQ} = \frac{df(Q)}{dQ} - \frac{dg(Q)}{dQ} = 0$$

अर्थात् MR=MC ... 12 1

यह अधिकतम लाभ की प्रथम क्रम की शर्त (first order condition) है।

साथ ही $$\frac{d^2f(Q)}{dQ^2} - \frac{d^2g(Q)}{dQ^2} < 0 \quad 12\ 2$$

यह द्वितीय क्रम की शर्त है जिसके अनुसार साम्य बिंदु पर सीमात आगम रेखा के ढलान से सीमात लागत वक्र का ढलान अधिक होना चाहिए। अन्य शब्दो मे, सीमात लागत वक्र साम्य स्थिति पर सीमात आगम रेखा को नीचे से काटता हो, *यही द्वितीय क्रम की शर्त है।* अस्तु, फर्म के अधिकतम लाभ (*या न्यूनतम हानि*) की ये दोनो शर्तें हैं।

जब कीमत परिवर्तनशील हो उस स्थिति मे अधिकतम लाभ की प्राप्ति

समीकरण (12 1) एव (12 2) मे प्रस्तुत प्रथम एव द्वितीय क्रम की शर्तें फर्म द्वारा प्रत्येक स्थिति मे अधिकतम लाभ (या न्यूनतम हानि) प्राप्त करने की शर्तें हैं, चाहे कीमत तालिका 12 1 के अनुरूप स्थिर हो अथवा इसमे परिवर्तन करना सभव हो। चित्र 12 2 मे हमने यह मान्यता ली है कि फर्म अधिक मात्रा मे वस्तु बेचने हेतु कीमत मे कमी करती जाती है और इसलिए इसका कुल आगम एक सीमा तक तो घटती हुई दर से बढता है और फिर अतत इसमे कमी होने लगती है (पैनल a)। इसी कारण फर्म की कीमत रेखा (AR) एव सीमात आगम रेखा के ढलान ऋणात्मक होते हैं।

चित्र 12.1 के पैनल (a) में हम देखते हैं कि फर्म का लाभ OQ उत्पादन स्तर पर अधिकतम होता है क्योंकि इसी स्तर पर TR व TC का अंतर अधिकतम है जिसे लाभ फलन (π) के वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। चित्र 12.2 के पैनल (b) में ठीक इसी स्तर पर यानी R बिंदु पर $MR = MC$ तथा $\frac{d^2f(Q)}{dQ^2} < \frac{d^2g(Q)}{dQ^2}$ की शर्तें भी पूरी होती हैं।
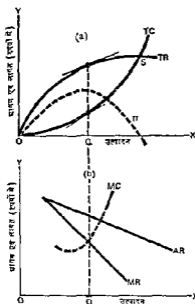
चित्र 12.2 के पैनल (a) से यह भी स्पष्ट होता है कि यदि फर्म उत्पादन में वृद्धि का क्रम $O\bar{Q}$ के आगे भी जारी रखती है तो उसके लाभ में कमी होती जाती है और अंततः S बिंदु पर लाभ शून्य हो जाता है। इस स्तर को (break-even point) कहा जाता है। इसके आगे भी उत्पादन जारी रखने पर कुल लागत कुल आगम से अधिक हो जाती है तथा फर्म को शुद्ध हानि होने लगती है।[2]

चित्र 12.2 कीमत परिवर्तनशील होने पर अधिकतम लाभ की प्राप्ति

2. अधिकतम लाभ के लक्ष्य को स्पष्टतः समझने हेतु हम एक उदाहरण लेते हैं।

$$P = 1000 - 2Q$$

कुल आगम $TR = PQ = 1000\,Q - 2Q^2$

मान लीजिए लागत फलन इस प्रकार है—

$$TC = Q^3 - 59\,Q^2 + 1315\,Q + 2000$$

लाभ फलन $\pi = TR - TC$

$$= 1000\,Q - 2\,Q^2 - (Q^3 - 59\,Q^2 + 1315\,Q + 2000)$$

अधिकतम लाभ हेतु

$$\frac{d\pi}{dQ} = 114\,Q - 3\,Q^2 - 315 = 0$$

एक द्विघाती समीकरण के रूप में प्रस्थापित करके इसे Q के लिए हल करने पर $Q = \begin{cases} 3 \\ 35 \end{cases}$ प्राप्त होगा।

द्वितीय क्रम की शर्त के अनुसार $\frac{d^2\pi}{dQ^2} < 0$ होना चाहिए।

अस्तु, $\frac{d^2\pi}{dQ^2} = 6Q + 114$. यदि $Q = 3$ को रखें तो $\frac{d^2\pi}{dQ^2} > 0$ होगा। परन्तु यदि $Q = 35$ रखा जाए तो $\frac{d^2\pi}{dQ^2} < 0$ है। अस्तु, फर्म को 35 इकाई का उत्पादन करने पर अधिकतम लाभ होगा।

अधिकतम आगम की प्राप्ति (Maximization of Revenue)

यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने का ही प्रयास करे। अनुभव के आधार पर यह पता चलता है कि अमरीका एव अन्य विकसित देशो मे अनेक उद्यमी अधिकतम आगम प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहते हैं, हालांकि इससे उनके लाभ का स्तर अधिकतम नही हो पाता। यदि हम चित्र 12 2 के पैनल (a) को चित्र 12 3 के रूप मे पुन खीचें तो हम यह कह सकते हैं कि फर्म का आगम उस
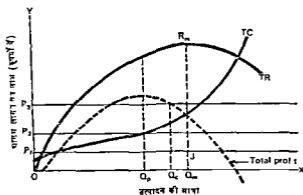
चित्र 12 3 फर्म द्वारा अधिकतम आगम की प्राप्ति

स्तर पर अधिकतम होगा जहा यह OQ_m इकाइयो का उत्पादन करती है। जैसा कि हम जानते हैं, *जहा फर्म का सीमात आगम शून्य होता है ($MR=O$) वही इस प्राप्त कुल आगम अधिकतम होगा।* उल्लेखनीय है कि यदि फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहती है तो वह OQ_p इकाई का उत्पादन करेगी।

सीमाबद्ध अधिकतम आगम की प्राप्ति (Constrained Revenue Maximization)

यह भी सभव है कि फर्म अपना लाभ अथवा आगम अधिकतम करने की अपेक्षा न्यूनतम लाभ की एक सीमा निर्धारित करके उस सीमा के अन्तर्गत ही अधिकतम आगम प्राप्त करना चाहे। परतु जैसाकि हम ऊपर देख चुके हैं, फर्म किसी भी स्थिति मे OQ_m से अधिक मात्रा बेचना पसद नही करेगी क्योकि उस स्थिति मे उसका सीमात आगम ऋणात्मक हो जाता है।

मान लीजिए, फर्म प्रति इकाई OP_1 परिमाण मे न्यूनतम लाभ अर्जित करते हुए *अपना आगम अधिकतम करना चाहती है।* यदि फर्म OQ_m मात्रा ही बेचती हो तो उसका कुल लाभ OP_1JQ_m होगा तथा यह इस मात्रा को R_mQ_m/OQ_m कीमत पर बचेगी। यदि फर्म प्रति इकाई OP_2 रुपये का लाभ अर्जित करना चाहे तब भी

यह OQ_m इकाई बेच कर अधिकतम आगम प्राप्त कर सकती है। परन्तु यदि फर्म के लाभ का न्यूनतम स्तर OP_3 हो तो वह अधिक से अधिक OQ_c मात्रा बेच पाएगी। बिक्री का यह स्तर अधिकतम आगम प्रदान नहीं करता परन्तु OP_3 रुपये प्रति इकाई लाभ अर्जित करते हुए यही विकल्प उसे उपलब्ध हो सकता है। अत मे, यदि फर्म के लाभ का स्तर और बढ़ाया जाए तो फर्म की बिक्री में और अधिक कटौती करनी होगी।

फर्म के अन्य उद्देश्य

कोहन तथा सायर्ट[3] ने बतलाया है कि कोई फर्म अनेक अन्य उद्देश्यो से प्रेरित होकर भी कार्य कर सकती है। बहुत से उद्यमी प्रतिष्ठा के लिए अथवा परपरा को निभाने हेतु व्यवसाय मे बने रहना चाहते हैं। परन्तु इन विद्वानो के मतानुसार फर्म के कीमत उत्पादन सामान्य बिक्री सबधी नीतियो आदि से सबद्ध निर्णयो की पृष्ठभूमि मे निम्न पाच महत्त्वपूर्ण लक्ष्य निहित हो सकते है—

1 उत्पादन सबधी लक्ष्य (Production Goal)—यह माना जा सकता है कि उत्पादन प्रक्रिया मे भाग लेते समय फर्म के समक्ष अनेक लक्ष्य हो सकते हैं। बहुधा उत्पादन सबधी लक्ष्य को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम को स्थिरीकरण (smoothing) का लक्ष्य माना जा सकता है जिसके अनुसार फर्म दो अवधियो के मध्य उत्पादन की मात्रा मे निर्दिष्ट सीमा से अधिक परिवर्तन नही होने देती। उत्पादन सबधी द्वितीय लक्ष्य उत्पादन के स्तर से सबद्ध है जिसके अनुसार फर्म उत्पादन की एक न्यूनतम सीमा निर्धारित करके इसके समान अथवा इससे अधिक उत्पादन करने का प्रयत्न करती है।

2 स्टॉक सबधी लक्ष्य (Inventory Goal)—कभी कभी फर्म का उद्देश्य एक निर्दिष्ट मात्रा अथवा निर्दिष्ट रैन्ज मे स्टॉक बनाए रखना भी होता है।

3 बिक्री सबधी लक्ष्य (Sales Goal)—हम फर्म के इस उद्देश्य की विस्तृत चर्चा ऊपर कर चुके हैं। जैसाकि हमने ऊपर देखा था, इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु फर्म अधिकतम लाभ की अपेक्षा कुल बिक्री को अधिकतम (लाभ सीमा सहित अथवा केवल अधिकतम आगम की प्राप्ति) करने का प्रयत्न करती है।

4 बाजार मे स्थान बनाए रखने का लक्ष्य (Market Share Goal)—कभी कभी फर्म यह भी चाहती है कि बाजार मे कुल बिक्री मे इसकी बिक्री का अनुपात बना रहे। इसकी सभी नीतिया एव विपणन रणनीति इसी लक्ष्य से सबद्ध हो सकती है।

5 अधिकतम लाभ की प्राप्ति (Profit Maximization)—कोहन व सायर्ट की ऐसी मान्यता है कि अधिकाश उद्यमी अधिकतम लाभ प्राप्त करने का ही

3 K J Cohen and R M Cyert 'Theory of Firm', Prentice Hall of India New Delhi (1976) Chapter 17

प्रयत्न करते हैं तथा उनके इसी लक्ष्य की चर्चा भी सर्वाधिक रूप मे की जाती है। जैसाकि ऊपर बतलाया जा चुका है, प्रत्येक फर्म उत्पादन के उस स्तर पर अधिकतम लाभ प्राप्त करती है जहा सीमात उत्पादन लागत एव सीमात आगम मे समानता है (यानी MC=MR)।

डी० सी० हेग[4] ने बतलाया है कि फर्म के उद्देश्यो को हम दो श्रेणियो में विभाजित कर सकते हैं सक्रियात्मक उद्देश्य (operational objectives) एव असक्रियात्मक उद्देश्य (Non operational objectives)। पहले हम उनके द्वारा चर्चित असक्रियात्मक उद्देश्यो की व्याख्या करेंगे।

हेग के अनुसार असक्रियात्मक उद्देश्य बहुधा अस्पष्ट वक्तव्यों के रूप मे व्यक्त किए जाते हैं। उदाहरण के लिए किसी फर्म का यह कथन कि उसने 'धन कमाने हेतु" या 'फर्नीचर बनाने हेतु', अथवा "जनता की सेवा करने हेतु" व्यवसाय मे प्रवेश किया है, एक असक्रियात्मक उद्देश्य ही कहलाएगा। ऐसे कथन के पीछे फर्म का सुनिश्चित उद्देश्य निहित प्रतीत नही होता। इसके बावजूद बहुधा उद्यमी अपने उद्देश्यो को इसी प्रकार के अस्पष्ट वक्तव्यो द्वारा जताने का प्रयास करत हैं।

सक्रियात्मक (operational) उद्देश्यो मे हम निर्दिष्ट कार्यों या प्रयोजनो को सम्मिलित करते हैं जिनके लिए फर्म ने व्यवसाय प्रारभ किया है। इनके साथ ही फर्म उस अवधि का भी निर्धारण कर सकती है जिसमे वह इस निर्दिष्ट काय को सपन्न करना चाहती है।

प्रोफेसर हेग ने सक्रियात्मक लक्ष्यो मे "इष्टतम स्थिति की प्राप्ति" (optimizing) तथा "तुष्टीकरण" (satisficing) के उद्देश्यो की भी चर्चा की है। इष्टतम स्थिति को प्राप्त करने का उद्देश्य इस मान्यता पर आधारित है कि फर्म किसी भी कार्य के निष्पादन (performance) को जाचने हेतु किन्ही मानदडो का निर्धारण कर सकती है। द्वितीय, इसका यह भी अर्थ है कि फर्म प्रत्येक कार्य के सपादन हेतु उपलब्ध वैकल्पिक विधियो की उपादेयता पर भी विचार करती है। फर्म यह भी पता लगाने का प्रयत्न करती है कि उनमे से प्रत्येक विधि निर्धारित मानदडो पर किस सीमा तक आधारित है। अत में, निर्धारित मानदडो के अनुरूप कौन सी विधि सर्वश्रेष्ठ या इष्टतम है उसी का चुनाव फर्म करती है। परतु यह आवश्यक नही है कि इस इष्टतम विधि के प्रयोग मे फर्म को अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो। *यहा तक कि यदि फर्म यह तय कर ले कि इसे पूजी पर 15 प्रतिशत प्रतिफल प्राप्त करना है तो यह भी इष्टतम निर्णय की श्रेणी मे गिना जाएगा। बहुधा लाभ या आगम को* अधिकतम करने का लक्ष्य एक या दो-तीन सीमाओ के अतर्गत पूरा करने का प्रयत्न *किया जाता है, जबकि इष्टतम की प्राप्ति का प्रयास अनेक सीमाओ (constraints) के अतर्गत भी किया जा सकता है।*

4 D C Hague, Pricing in Business', George Allen & Unwin (1971), pp 45 94

तुष्टीकरण का लक्ष्य—प्रोफेसर साइमन, मार्श एवं सायर्ट की यह मान्यता है कि बहुधा उद्यमी तुष्टीकरण (satisficing) के लक्ष्य को लेकर भी फर्में कार्य करती हैं। इस लक्ष्य के अंतर्गत फर्म अनेकों क्षेत्रों में न्यूनतम निष्पादन के स्तर निर्धारित करती है, और यथासंभव इन न्यूनतम स्तरों से अधिक ही हासिल करने का प्रयत्न करती है। उदाहरण के लिए फर्म निम्नांकित न्यूनतम लक्ष्यों को एक साथ प्राप्त करने का संकल्प कर सकती है (अ) पूंजी पर 12 प्रतिशत प्रतिफल की प्राप्ति, (ब) बाजार की कुल बिक्री का 20 प्रतिशत हस्तगत करना, तथा (स) विद्यमान संयंत्र क्षमता का 90 प्रतिशत प्रयोग में लेना। निष्पादन के इन न्यूनतम स्तरों को 'वांछित आकांक्षा स्तर" कहा जाता है। जब तक ये आकांक्षा स्तर प्राप्त होते रहते हैं तब तक फर्म प्रतिदिन की सामान्य कार्यविधि से संबद्ध निर्णय ही लेती है, परंतु यदि इनमें से एक भी क्षेत्र में फर्म को वांछित न्यूनतम सफलता नहीं मिलती अथवा फर्म अपने आकांक्षा स्तरों में से किसी एक को संशोधित कर देती है, तो फर्म उससे संबद्ध विशेष निर्णय लेना चाहेगी।

कभी-कभी फर्म ऊपर वर्णित उद्देश्यों के अतिरिक्त निम्न अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु भी कार्य कर सकती है (i) प्रतिस्पर्द्धा के बीच अपने अस्तित्व को बनाए रखना, (ii) शोध, विकास अथवा नए उत्पादों के विकास हेतु धनराशि जुटाना, तथा (iii) अपने कर्मचारियों को पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करना एवं उनकी दक्षता/रोजगार के स्तर को बनाए रखना।

परंतु इन सबके बावजूद, जैसा कि प्रोफेसर हेग की मान्यता है, अधिकतम लाभ की प्राप्ति ही सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से फर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य होता है, हालांकि बहुधा फर्म लाभ के एक न्यूनतम स्तर पर भी कार्य करती रहेगी। इसके अतिरिक्त, फर्म अपने लाभ के स्तर को बढाने हेतु कीमत में वृद्धि कर सकती है, तथा / अथवा लागतों में कमी कर सकती है। कई बार फर्म एक साथ दो या अधिक लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयत्न करती है। यदि दो लक्ष्यों में विरोधाभास हो तो फर्म कोई न कोई समाधान निकाल कर वांछित लक्ष्यों को पूरा करने का यत्न करती है।

12 2 बाजार मांग व बाजार-पूर्ति की अवधारणाएं
(The Concepts of Market Demand and Market Supply)

अध्याय 5 में हमने मांग के नियम की व्याख्या पढी थी। अध्याय 6 में हमने यह भी देखा था कि मांग व पूर्ति में संतुलन होने पर ही साम्य कीमत प्राप्त होती है। परंतु कोई भी साम्य कीमत तब तक यथावत् रह पाती है जब तक कि मांग व पूर्ति की मात्राएं भी वे ही रहें। हमने उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण के अंतर्गत यह पढा था कि किस प्रकार किसी उपभोक्ता के सीमांत उपयोगिता वक्र के द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर वस्तु के मांग वक्र का निरूपण किया जा सकता है, तथा किस प्रकार फर्म के सीमांत लागत वक्र के आधार पर एक फर्म के पूर्ति वक्र को प्राप्त किया जा सकता

है। परतु वस्तु बाजार मे साम्य कीमत का निर्धारण एक फर्म के पूर्ति वक्र तथा एक उपभोक्ता के माग वक्र के आधार पर नही किया जा सकता। इसके लिए हमे बाजार मे वस्तु की कुल पूर्ति का ज्ञान होना चाहिए तथा जिस स्तर पर कुल माग व कुल पूर्ति मे सतुलन हो वही साम्य कीमत मानी जानी चाहिए।

बाजार माग का निरूपण
(Determining the Market Demand)

अध्याय 5 के खड 5 2 मे यह बतलाया जा चुका है कि किसी उपभोक्ता के माग वक्र का निरूपण वस्तु के सीमात उपयोगिता वक्र के आधार पर सरलतापूर्वक किया जा सकता है। *यह भी सभव है कि कोई वस्तु गिफिन वस्तु हो और इसलिए उसका* माग वक्र धनात्मक ढलानयुक्त हो। परतु जब हम बाजार माग का निरूपण करते हैं तो एक व्यक्ति की रुचि, प्राथमिकता एव किसी वस्तु के प्रति उसके माग वक्र की असामान्य आकृति का कोई महत्व नही रह जाता क्योंकि ये सब बाजार मे विद्यमान सभी उपभोक्ताओ की रुचियो एव उनके निर्णयो मे आत्मसात् हो जाते हैं। अन्य शब्दो मे, बाजार मे विद्यमान सभी उपभोक्ताओं के सामूहिक निर्णयो को हम बाजार माग फलन के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकते हैं और इस पर एक उपभोक्ता के असामान्य व्यवहार का कोई प्रभाव नही होता।

फिर भी यह ज्ञातव्य है कि बाजार की अनुसूची (*market demand* schedule) एव बाजार माग वक्र का निरूपण बाजार मे विद्यमान सभी उपभोक्ताओ की (सयुक्त) रुचियो एव प्राथमिकताओ के आधार पर किया जाता है। तालिका 12 2 एव चित्र 12 4 से यह स्पष्ट होता है कि B एक सीमा के बाद कीमत कम होने पर भी वस्तु की कम मात्रा खरीदता है जबकि A, C व D के व्यवहार मे इस प्रकार की कोई विसगति नही है—वे कीमत कम होने पर अधिक मात्रा खरीदते जाते हैं। हमने इस सदर्भ मे यह मान्यता ली है कि बाजार मे केवल चार ही उपभोक्ता हैं, परतु *यदि बाजार मे इस सख्या से बहुत अधिक* उपभोक्ता हो तब भी इस विश्लेषण का निष्कर्ष यही रहेगा, अर्थात् कीमत एव बाजार की कुल माग के मध्य प्रतिकूल सबध की ही पुष्टि होगी। इस प्रकार एक उपभोक्ता (B) के व्यवहार की असामान्य प्रवृत्ति का बाजार के कुल माग फलन पर कोई प्रभाव नही होता।

चित्र 12 4 मे *तालिका* 12 2 के आधार पर चारो उपभोक्ताओं के माग वक्र पृथक् रूप मे प्रस्तुत करके फिर इनके क्षैतिज योग द्वारा बाजार का माग वक्र प्राप्त किया गया है। जैसा कि चित्र मे प्रस्तुत वक्र D_B से ज्ञात होता है, B के लिए वस्तु का माग वक्र एक सीमा के बाद पीछे की ओर *मुड जाता है। इसके बावजूद बाजार* के कुल माग वक्र (D_m) का ढलान ऋणात्मक है। *इस प्रकार साधारण* तौर पर बाजार माग वक्र माग के नियम के अनुरूप ही होता है।

तालिका 12.2

व्यक्तिगत एवं बाजार माँग की अनुसूची

(चार उपभोक्ताओं के संदर्भ में)

कीमत	व्यक्तिगत माँग की मात्रा				कुल बाजार माँग (D_m)
	A	B	C	D	(A+B+C+D)
10	5	4	2	10	21
9	6	5	4	11	26
8	7	7	6	12	32
7	8	9	8	13	38
6	9	7	10	14	40
5	10	6	12	15	43
4	11	5	14	16	46
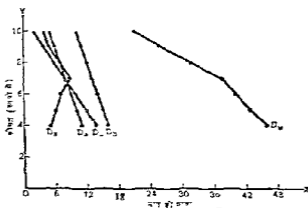
चित्र 12.4 व्यक्तिगत माँग वक्रों से बाजार-माँग वक्र का निरूपण

जैसा कि चित्र 12.4 से स्पष्ट होता है, बाजार माँग वक्र (D_M) सभी उपभोक्ताओं के माँग वक्र का क्षैतिज योग है यह भी सम्भव है कि आरंभ में कीमत "ऊँची" होने के कारण कुछ उपभोक्ता वस्तु की कोई भी मात्रा नहीं खरीदें। परंतु जब कीमतें पर्याप्त रूप में कम हो जाती हैं तो ऐसे उपभोक्ता भी बाजार में प्रवेश कर जाते हैं और इनके साथ ही पुराने उपभोक्ता भी (सामान्य तौर पर) वस्तु की अधिक मात्रा खरीदते हैं। यही कारण है कि कीमतों के अपेक्षाकृत नीचे स्तर पर माँग की मात्रा बहुत अधिक होती है। परंतु यदि बहुत बड़ी संख्या में उपभोक्ता इस वस्तु को भिन्न वस्तु समझते हैं तो कीमत घटने पर बाजार माँग में कुल मिलाकर बहुत धीमी गति से वृद्धि होगी।

बाजार की पूर्ति का निरूपण (Determining the Market Supply)

अध्याय 10 के खड मे 10 7 मे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि सीमात लागत वक्र की उपयुक्त रेन्ज के आधार पर हम किसी भी प्रतियोगी फर्म का पूर्ति वक्र ज्ञात कर सकते हैं। तदनुसार, जब P ≥ AVC की स्थिति हो तो कीमत मे वृद्धि के साथ-साथ फर्म वस्तु का अधिक मात्रा मे उत्पादन करना चाहेगी, यानी कीमत मे वृद्धि के साथ-साथ फर्म अपनी वस्तु की पूर्ति मे भी वृद्धि करेगी। सीमात आगम वक्र की उपयुक्त रेन्ज मे, दी हुई कीमत पर वक्र के क्षैतिज माप को ही फर्म द्वारा की गई पूर्ति के रूप मे व्यक्त किया जाता है। जैसा कि अध्याय 10 मे बतलाया जा चुका है, औसत परिवर्तनशील लागत के न्यूनतम बिंदु से ऊपर सीमांत लागत वक्र का जो भी भाग होता है वही फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र माना जाता है।

चूकि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत बाजार मे बहुत अधिक उत्पादक होते हैं, हम प्रत्येक कीमत पर बाजार की पूर्ति ज्ञात करने हेतु विभिन्न फर्मों की पूर्ति अनुसूचियो का क्षैतिज योग लेते हैं। सुविधा के लिए हम मान लेते हैं कि बाजार मे केवल तीन फर्में हैं। हम यह भी मान्यता लेते हैं कि प्रत्येक फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है और इसके लिए फर्म उस स्तर पर उत्पादन करती है जहा सीमात लागत दी हुई कीमत के समान हो (MC=MR=P)।

तालिका 12 3 मे तीन फर्मों A, B व C की पूर्ति-अनुसूचिया (Supply Schedules) दी गई हैं तथा फिर इनके (क्षैतिज) योग को लेकर बाजार की पूर्ति-अनुसूची निरूपित की गई है। चित्र 12 5 मे प्रत्येक फर्म की पूर्ति अनुसूची के आधार पर फर्म का पूर्ति वक्र खींचा गया है और अत मे इन पूर्ति वक्रो के क्षैतिज योग को लेकर वस्तु का बाजार पूर्ति वक्र निरूपित किया गया है।

तालिका 12 3

तीन विक्रेताओं वाले बाजार मे व्यक्तिगत एवं कुल पूर्ति अनुसूची

कीमत=सीमात आगम =सीमांत लागत		पूर्ति की मात्रा		बाजार की कुल पूर्ति
P=MR=MC	S_A	S_B	S_C	S_M
2	0	2	2	4
3	0	9	8	17
4	3	15	13	31
5	6	20	17	43
6	8	24	20	52
7	10	27	22	59
8	12	29	23	64

अब हम तालिका 12 3 को चित्र 12 5 के रूप मे प्रस्तुत करेंगे।
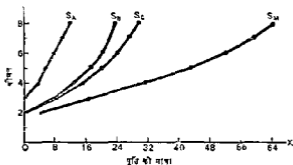
चित्र 12.5 व्यक्तिगत पूर्ति वक्रों से बाजार पूर्ति वक्र का निरूपण

वस्तुत, बाजार में बहुत सी फर्म हो सकती हैं तथा इन सभी के पूर्ति वक्रों का क्षैतिज योग लेकर हम बाजार के पूर्ति वक्र का निरूपण कर सकते हैं।

सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि सभी फर्मों के लागत फलन एक जैसे हैं। ऐसी स्थिति में बाजार की पूर्ति ज्ञात करने के लिए निर्दिष्ट कीमतों पर एक फर्म द्वारा की गई पूर्ति-मात्राओं को उत्पादकों की संख्या से गुणा किया जा सकता है। ($S=n.q_i$) । उदाहरण के लिए हम फर्म का परिवर्तनशील लागत फलन (TVC) निम्न रूप में लेकर इसके माध्यम से फर्म का पूर्ति फलन निरूपण कर सकते हैं।

$$TVC=f(Q)=(Q-a)^3+bQ+a^3$$

इस फलन में Q उत्पादन की मात्रा है तथा a व b स्थिर प्राचल हैं। फर्म का लाभ फलन (π) इस प्रकार होगा—

$$\pi=P.Q-[(Q-a)^3+bQ+a^3+C]$$

(यहा C स्थिर लागत का द्योतक है।)

इस लाभ फलन के प्रथम अवकलज को शून्य के बराबर रखने (क्योंकि फर्म का प्रयोजन अधिकतम लाभ प्राप्त करना है) पर हमे निम्न समीकरण प्राप्त होता है—

$$\frac{d\pi}{\delta Q}=P-3(Q-a)^2-b=0$$

इस द्विघाती समीकरण (Quadratic equation) को Q के लिए हल करने पर हमे Q के निम्न दो मूल्य प्राप्त होगे—

$$Q=a+\frac{\sqrt{3(P-b)}}{3}\ ;Q=a-\frac{\sqrt{3(P-b)}}{3}$$

द्वितीय क्रम की शर्त (second order condition) के लिए यह जरूरी है कि द्वितीय अवकलज ऋणात्मक हो : ($-6(Q-a)<0$ यानी $Q-O$ हो)। इसीलिए ऊपर वर्णित Q के मूल्य हेतु प्रथम समीकरण $Q=a+\frac{\sqrt{3(P-b)}}{3}$ को स्वीकार करेंगे। वस्तुतः यह आवश्यक है कि कीमत औसत परिवर्तनशील लागत के

न्यूनतम स्तर के समान या इससे अधिक हो ($P \geqslant AVC_{min}$) चूंकि AVC उस स्तर पर न्यूनतम होती है जहा $Q = \frac{3}{2}a$ है, हम न्यूनतम स्तर की AVC को इस प्रकार व्यक्त करेंगे

$$AVC_{min} = \frac{3}{4}a^2 + b$$

यदि $P < \frac{3}{4}a^2 + b$ हो तो फर्म कदापि उत्पादन नही करेगी। यदि $P \geqslant \frac{3}{4}a^2 + b$ हो तभी फर्म उत्पादन करना प्रारभ करेगी। ऐसी दशा मे ही फर्म का पूर्ति फलन निम्नाकित होगा

$$Q = a + \frac{\sqrt{3(P-b)}}{3} \quad \ldots 12\,4$$

यदि इस समीकरण को जो वस्तुत एक फर्म का पूर्ति फलन है, उत्पादको की सख्या (n) से गुणा कर दिया जाए तो बाजार पूर्ति वक्र का समीकरण प्राप्त किया जा सकता है—

$$S = n \cdot \left(a + \frac{\sqrt{3(P-b)}}{3}\right)$$

यदि विभिन्न फर्मों के लागत फलन एक जैसे नही हों तो तालिका 12 3 व चित्र 12 5 की भाति बाजार का पूर्ति फलन ज्ञात करने हेतु सभी फर्मों के पूर्ति फलन का (क्षैतिज) योग लेना होगा—

$$\sum_{i=1}^{n} a_i + \frac{\sqrt{3(P-b)}}{3}$$

सक्षेप मे, किसी फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र उस उत्पादन-स्तर से प्रारभ होगा जहा कीमत कम से कम औसत लागत के न्यूनतम स्तर के समान हो। इससे आगे जैसे-जैसे कीमत मे वृद्धि होती है (समीकरण 12 4 मे), Q की मात्रा बढती जाती है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, हम विभिन्न कीमतो पर सभी फर्मों द्वारा की गई पूर्ति का योग लेकर बाजार का पूर्ति वक्र निरूपित कर सकते हैं

पूर्ति की लोच
(Elasticity of Supply)

चित्र 12 5 (पृ० 277) से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ति वक्र, चाहे वह एक फर्म का हो अथवा समूचे बाजार का, धनात्मक ढलानयुक्त होता है। परतु भिन्न भिन्न वस्तुओ की पूर्ति पर कीमत की वृद्धि का भिन्न भिन्न प्रभाव होता है। इसी प्रकार एक ही पूर्ति वक्र भी कीमत के परिवर्तन की पूर्ति पर होने वाली प्रतिक्रिया भिन्न भिन्न हो सकती है। इसे हम पूर्ति लोच
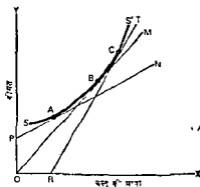
चित्र 12 6 पूर्ति की सापेक्ष लोच

(Elasticity of Supply) की संज्ञा देते हैं। संक्षेप में, कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की पूर्ति में होने वाली प्रतिक्रिया को ही पूर्ति-लोच कहते हैं। इसे सामान्यतया निम्न सूत्र द्वारा मापा जाता है :

$$\eta_s = \frac{\Delta Q_s}{\Delta P} \cdot \frac{P}{Q_s} \quad ...12.5$$

इस सूत्र में P व Q_s क्रमशः वस्तु की कीमत व पूर्ति की मात्रा को व्यक्त करते हैं जबकि ΔP एवं ΔQ_s इनमें परिवर्तन की मात्राएं हैं। चित्र 12.6 में SS' पूर्ति वक्र के तीन बिंदुओं—A, B व C पर पूर्ति की लोच मापी गई है। इसके लिए A पर खींची गई स्पर्श रेखा PN P बिंदु से प्रारंभ होती है जो एक धनात्मक इंटरसेप्ट है। इसीलिए P पर पूर्ति की लोच इकाई से अधिक है (η_s—1)। इसके विपरीत B पर खींची गई स्पर्श रेखा OM मूल बिंदु से प्रारंभ होती है। यही कारण है कि B पर पूर्ति लोचदार है ($\eta_s = 1$)। ऋणात्मक इंटरसेप्ट R से प्रारंभ होने वाली रेखा RT पूर्ति वक्र को c पर स्पर्श करती है जहां पूर्ति बेलोच है ($\eta_s < 1$)।

इसी स्थिति को हमने पृष्ठ 280 पर अंकित चित्र 12.7 में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। चित्र 12.7 के पैनल (a) में पूर्ति की रेखा धनात्मक इंटरसेप्ट से प्रारंभ होती है। यहां R बिंदु पर समीकरण (12.5) में प्रस्तुत सूत्र के आधार पर पूर्ति की लोच इस प्रकार ज्ञात की जाएगी—

$$\eta_s = \frac{RP}{TP} \cdot \frac{RQ}{OQ}$$

परंतु हम यह जानते हैं कि $\frac{Q'Q}{RQ} = \frac{RP}{TP}$ है, क्योंकि RQ'Q एवं TRP एक जैसे त्रिभुज हैं। इसलिए ऊपर वर्णित समीकरण को निम्न रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$\eta = \frac{Q'Q}{RQ} \cdot \frac{OQ}{RQ} > 1 \text{ (क्योंकि } Q'Q > OQ)\text{।}$$

अब चित्र 12.7 का पैनल (b) देखिए। इसमें भी पूर्ति लोच हेतु प्रस्तुत सूत्र के अनुसार R बिंदु पर लोच का माप निम्नांकित होगा—

$$\eta_s = \frac{RP}{TR} \cdot \frac{RQ}{OQ}$$

परंतु $\frac{OQ}{RQ} = \frac{RP}{TP}$ हैं क्योंकि ROQ एवं TRP एक जैसे त्रिभुज हैं। अस्तु पैनल (b) में R बिंदु पर पूर्ति लोच इस प्रकार होगी—

$$\eta_s = \frac{RP}{TP} \cdot \frac{RQ}{OQ} = 1$$

अंत में, पैनल (c) में R बिंदु पर पूर्ति लोच का माप देखिए—

$$\eta_s = \frac{RP}{TP} \cdot \frac{RQ}{OQ}$$
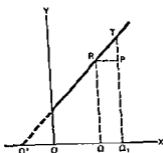
(a) सापेक्षत: अत्यधिक लोचदार पूर्ति
$(\eta_s > 1)$

परतु RQ'Q तथा TRP एक जैसे त्रिभुज हैं और इसलिए $\frac{Q'Q}{RQ} = \frac{RP}{TP}$ होंगे; अस्तु पैनल (c) मे R बिंदु पर पूर्ति की लोच इस प्रकार होगी—

$$\eta^s = \frac{Q'Q}{RQ} \cdot \frac{RQ}{OQ} < 1$$

(क्योंकि Q'Q < OQ है)।

(b) सापेक्षत लोचदार पूर्ति
$(\eta_s = 1)$
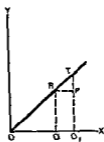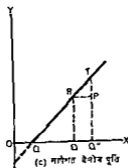
(c) सापेक्षत बेलोच पूर्ति
$(\eta_s < 1)$

चित्र 12.7 पूर्ति लोच के तीन रूप

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि किसी भी पूर्ति वक्र के निर्दिष्ट बिंदु पर पूर्ति लोच जानने हेतु हम एक स्पर्श रेखा खीचते हैं, (i) यदि स्पर्श रेखा मूल बिंदु से प्रारभ होती है तो पूर्ति-लोच इकाई के समान होगी (पैनल b); (ii) यदि स्पर्श रेखा का उद्गम धनात्मक इटरसेप्ट हो (पैनल a) तो पूर्ति अत्यधिक लोचदार होगी; तथा (iii) यदि स्पर्श रेखा ऋणात्मक इटरसेप्ट से प्रारभ हो (पैनल c) तो पूर्ति बेलोच होगी। यह भी उल्लेखनीय है कि पूर्ति रेखा या इसके निर्दिष्ट बिंदु पर स्पर्श रेखा का उद्गम ही पूर्ति लोच की प्रकृति को निर्धारित करेगा, तथा पूर्ति वक्र या स्पर्श रेखा का ढलान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए, मूल बिंदु से प्रारभ होने वाली रेखा के सभी बिंदुओ पर पूर्ति लोच इकाई के समान होगी या धनात्मक इटरसेप्ट से प्रारभ होने वाली रेखा पर पूर्ति लोच इकाई से अधिक होगी भले ही इन रेखाओ का ढलान कैसा भी क्यो न हो।

माग की लोच व पूर्ति की लोच मे अतर

अध्याय 6 मे माग की लोच का विश्लेषण करते समय हमने यह देखा था कि माग व कीमत मे प्रतिकूल सबध होता है, भले ही कीमत मे निर्दिष्ट परिवर्तन से माग पर होने वाली प्रतिक्रिया (माग की लोच) विभिन्न वस्तुओ या विभिन्न व्यक्तियों के सदर्भ मे भिन्न होती हो। ऊपर हमने यह बताया है कि कीमत मे परिवर्तन होने पर वस्तु की पूर्ति मे भी परिवर्तन होता है। परतु पूर्ति का यह परिवर्तन कीमत की दिशा मे ही होता है, यानी पूर्ति व कीमत मे प्रतिकूल नहीं अपितु (धनात्मक) सह-सबध होता है। माग की भाति पूर्ति की लोच भी इकाई से कम, अधिक या इकाई के समान हो सकती है। फिर भी दोनो मे प्रमुख अतर यही है कि जहा माग की लोच कीमत व माग के विपरीत सबध को व्यक्त करती है, वही पूर्ति लोच दोनो के सह-सबध को बतलाती है।

इन दोनो के मध्य दूसरा अतर यह है कि जब किसी माग वक्र के सभी बिंदुओ पर माग की लोच इकाई के समान होती है तो वस्तु पर किया जाने वाला कुल व्यय स्थिर रहता है तथा ऐसी स्थिति मे माग वक्र आयताकार अधोन्द्र (rectangular hyperbola) होता है। इसके विपरीत किसी पूर्ति वक्र के सभी बिंदुओ पर पूर्ति-लोच उस दशा मे इकाई के समान होती है जब पूर्ति वक्र रेखीय (linear) हो तथा मूल बिंदु (origin) से प्रारभ होता हो।

पूर्ति वक्र में विवर्तन (Shift in the Supply Curve)

यदि साधनो की कीमतो मे वृद्धि हो या सरकार द्वारा रोपित उत्पादन-कर बढा दिए जाए तो ऐसी स्थिति मे प्रत्येक फर्म का लागत फलन ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है और इसके फलस्वरूप सीमात लागत वक्र भी ऊपर की ओर विवर्तित होगा। अन्य शब्दो मे, प्रत्येक फर्म का पूर्ति वक्र बाई ओर विवर्तित होगा जिसका अर्थ यह है कि फर्म उसी मात्रा की पूर्ति केवल ऊची कीमत पर ही कर सकेगी। अन्य शब्दो मे, इस विवर्तन का अभिप्राय यह भी है कि फर्म की पूर्ति मे कमी होती है यानी निर्दिष्ट कीमत पर फर्म कम मात्रा बेचना चाहेगी (अथवा वही मात्रा ऊची कीमत पर बेचना चाहगी)। इसी प्रकार सभी फर्मों के पूर्ति वक्रो का क्षैतिज योग यानी बाजार का पूर्ति वक्र भी बाईं ओर विवर्तित होगा।

बाजार के पूर्ति वक्र मे बाईं ओर विवर्तन उस स्थिति मे भी हो सकता है जब कुछ फर्मों के व्यवसाय से बाहर चले जाने के कारण फर्मों की सख्या मे कमी हो जाए। ऐसी स्थिति मे भी निर्दिष्ट कीमत पर पूर्वापेक्षा बाजार मे कुल पूर्ति कम हो जाती है।

इसके विपरीत साधनो की कीमतें कम हो जाने पर या नई फर्मों के बाजार मे प्रवेश करने पर बाजार का पूर्ति वक्र (चित्र 12 5 मे S_M) नीचे दाईं ओर विवर्तित होगा जिसका अभिप्राय यह होगा कि निर्दिष्ट कीमत पर बाजार मे पूर्वापेक्षा अधिक मात्रा बिक्री हेतु प्रस्तुत की जाएगी।

इस प्रकार पूर्ति वक्र मे विवर्तन या तो फर्म की उत्पादन लागतों मे परिवर्तन का परिणाम हो सकता है अथवा फर्मों की सख्या मे परिवर्तन का।

12 3 बाजार साम्य
(Market Equilibrium)

अध्याय 6 मे यह बतलाया जा चुका है कि बाजार की साम्य स्थिति उस बिंदु पर प्राप्त होती है जहा कुल पूर्ति एव कुल माग समान हैं। हम ऊपर यह देख चुके हैं कि कुल माग वस्तुत निर्दिष्ट कीमतो पर विभिन्न उपभोक्ताओ द्वारा मागी गई मात्राओ का योग है, जबकि विभिन्न फर्मो द्वारा निर्दिष्ट कीमतो पर बची जाने वाली मात्राओ के योग को कुल पूर्ति कहते हैं। हम यह भी पढ चुके हैं कि माग व पूर्ति दोनो ही फलन कीमतो पर निर्भर करते हैं, हालाकि कीमत स माग का सबध प्रतिकूल रहता है जबकि पूर्ति कीमत के साथ ही बढती या कम होती है।

अस्तु, बाजार म एक कीमत-स्तर ऐसा अवश्य होना है जिस पर कुल माग व कुल पूर्ति समान होत हैं। ऐसी दशा म कुल या बाजार माग वक्र बाजार पूर्ति वक्र को काटता है।

मान लीजिए बाजार मे एक सौ फर्में कार्य कर रही हैं जिनके सभी के लागत फलन एक जैसे हैं। मान लीजिए, एक प्रतिनिधि लागत फलन इस प्रकार है—

$C_1 = 0\ 1q_1^2 + 2q_1 + 20$

इस लागत फलन के प्रथम अवकलज से सीमात लागत प्राप्त होगी। जैसाकि हम देख चुके हैं, सीमात लागत व कीमत (MR=P) समान होने पर ही फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। अस्तु—

$\frac{dC_1}{dq_1} = 0\ 2q_1 + 2 = p$

$q_1 = 5p - 10$

यह फर्म का पूर्ति फलन जिससे यह स्पष्ट है कि कीमत (p) म वृद्धि के साथ-साथ पूर्ति (q_1) म वृद्धि होती है। अब बाजार के पूर्ति फलन को ज्ञात करने हेतु हम फर्म के पूर्ति फलन को 100 स गुणा करेंगे। अस्तु—

$S = 500p - 1000$ (I)

अब बाजार का माग फलन लीजिए—

$D = 2000 - 500p$ (II)

चूकि साम्य स्थिति मे बाजार माग व बाजार पूर्ति समान होत हैं, हम समीकरण I को समीकरण II के बराबर रख कर साम्य कीमत प्राप्त कर सकत हैं—

$500p - 1000 = 2000 - 500p$

$1000p = 3000$

$p = 3\ ,\ D = S = 500$

तालिका 12 2 एव 12.3 तथा चित्र 12 4 एव 12 5 को देखकर हम यह कह सकते है कि साम्य कीमत 5 रुपए होगी जहा बाजार माग व बाजार पूर्ति 43

इकाई है। इन तालिकाओं व चित्रो के आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि यदि कीमत 5 रुपए से कम हो तो बाजार पूर्ति बाजार माग से कम होगी यानी माग के आधिक्य की समस्या उत्पन्न हो जाएगी। इसके विपरीत यदि कीमत 5 रुपए से अधिक हो तो बाजार पूर्ति बाजार माग से अधिक होगी। ऊपर प्रस्तुत उदाहरण मे भी यदि कीमत 3 रुपए न होकर 4 रुपए हो तो बाजार माग घटकर शून्य हो जाएगी जबकि पूर्ति बढकर 2000 हो जाएगी। इसके विपरीत कीमत 2 रुपए होने पर पूर्ति शून्य हो जाएगी जबकि माग बढकर 1000 हो जाएगी।

सक्षेप मे, अल्पकाल मे बाजार की साम्य स्थिति उस कीमत पर प्राप्त होगी जहा बाजार माग तथा बाजार पूर्ति पूर्णतया समान हो ($D_M = S_M$)। प्रतियोगी परिस्थितियो मे इसका यह भी अर्थ होगा कि प्रत्येक उपभोक्ता तथा प्रत्येक फर्म भी साम्य स्थिति मे है। जैसा कि हम जानते हैं, उपभोक्ता के सीमात उपयोगिता वक्र द्वारा हम *व्यक्तिगत माग वक्र प्राप्त करते हैं जबकि फर्म का पूर्ति वक्र उसके सीमात* लागत वक्र मे निरूपित होता है। हम यह भी जानते हैं कि उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता उस स्तर पर प्राप्त होती है जहा वस्तु की कीमत सीमात उपयोगिता के समान हो (P=MU)। इसके विपरीत फर्म की साम्य स्थिति वहा होगी जहा इसकी सीमात लागत सीमात आगम (या कीमत) के समान हो। इस प्रकार बाजार की साम्य स्थिति वह स्थिति होती है जिसमे प्रत्येक उपभोक्ता एव प्रत्येक फर्म भी इष्टतम स्थिति मे हो।

12.4 अंतरालयुक्त पूर्ति तथा कॉबवेब प्रमेय

(Lagged Supply Behaviour and the Cobweb Theorem)

अब तक हमने यही मान्यता ली थी कि माग व पूर्ति दोनो ही मे कोई समय-अतराल (time lag) नही है, अर्थात् वस्तु का उपभोग व उत्पादन दोनो ही उसी अवधि से संबद्ध हैं और कीमत मे परिवर्तन होने पर उनमे तत्काल परिवर्तन हो जाता है। परंतु वास्तविक जीवन मे ऐसा नही होता। वस्तु के उत्पादन मे कुछ समय लगता है तथा कीमत मे परिवर्तन होने पर जहा माग मे तत्काल परिवर्तन किया जा सकता है, वही पूर्ति मे तत्काल कमी या वृद्धि करना बहुधा सभव नही हो पाता। ऐसा अतरालयुक्त पूर्ति फलन (lagged supply function) बहुधा कृषि पदार्थों मे पाया जाता है। उदाहरण के लिए, एक कृषक अक्तूबर-नवम्बर मे प्रचलित कीमत के आधार पर गेहू का उत्पादन बढाने या कम करने की योजना बनाता है। हम यह जानते हैं कि गेहू की फसल अप्रैल-मई मे प्राप्त होती है। इस प्रकार गहू के पूर्ति फलन मे एक अवधि का अतराल है तथा उत्पादन (पूर्ति) बढाने या कम करने सबधी निर्णय वर्ष मे केवल एक बार (कही-कही दो बार) लिए जा सकत हैं। इस प्रकार माग फलन एव अतरालयुक्त पूर्ति फलन को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

$$\left.\begin{aligned} S_t &= f(P_{t-1}) \\ D_t &= f(P_t) \end{aligned}\right\} \quad \cdots 12.7$$

यह मान्यता लेते हुए कि माग अतराल-हीन एव पूर्ति फलन अतराल-युक्त होने पर भी कीमत का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि माग व पूर्ति मे समानता होने की प्रवृत्ति रहे।

$D_t = S_t$

अब रेखीय पूर्ति व माग फलन लीजिए—

$$\left.\begin{array}{ll} D_t = \alpha - \beta P_t, & \alpha, \beta > 0 \\ S_t = \gamma + \delta P_{t-1} & \gamma < 0, \delta > 0 \end{array}\right\} \qquad (12\ 8)$$

चूकि $S_t = D_t$ की मान्यता ली गई है, समीकरण (12 8) का हल इस प्रकार होगा[2]—

$$\gamma + \delta P_{t-1} = \alpha - \beta P_t$$
$$\beta P_t + \delta P_{t-1} = \alpha - \gamma$$

सुविधा के लिए प्रवधि सूचक पादचिह्नो मे एक एक अवधि की वृद्धि कर दी जाती है ($t-1$ के बदले t व t के बदले $t+1$ लिखें)

$$\beta P_{t+1} + \delta P_t = \alpha - \gamma$$
$$P_{t+1} + \frac{\delta}{\beta} P_t = \frac{\alpha - \gamma}{\beta}$$

अब एक निम्न प्रकार का समीकरण (difference equation) लीजिए

$$y_{t+1} + a y_t = 0$$

अस्तु, $y = P$, $a = \frac{\delta}{\beta}$ एव $C = \frac{\alpha - \gamma}{\beta}$

जब तक δ एव β दोनो धनात्मक हैं यह कहा जा सकता है कि $a \neq -1$ (यानी a ऋणात्मक नही है)। परिणामस्वरूप, कीमत व मात्राओ मे परिवर्तन का अवधि पथ (time path) जानने हेतु हम निम्न सूत्र का प्रयोग कर सकते हैं—

$$P_t = \left(P_0 - \frac{\alpha - \gamma}{\beta + \delta} \right) \left(\frac{-\delta}{\beta} \right)^t - \frac{\alpha - \gamma}{\beta + \delta}$$

जिसमे P_0 प्रारभिक कीमत है जबकि α, β, γ आदि स्थिर प्राचल हैं। जब $t = 0$ होगा तो हम यह पाएगे कि $P_t = P_0$ होगी यानी t अवधि की कीमत व प्रारंभिक कीमत मे कोई अतर नहीं है।

उपरोक्त सूत्र के आधार पर चियाग ने तीन आधारभूत मुद्दे प्रस्तुत किए हैं। प्रथम, $\alpha - \gamma / \beta + \gamma$ को माडल की साम्य कीमत के समान माना जा सकता है—

$$\overline{P} = \frac{\alpha - \gamma}{\beta + \delta}$$

उस दशा मे ऊपर प्रस्तुत कीमत (P_t) के समीकरण को निम्नांकित रूप मे पुन लिखा जा सकता है—

$$P_t = (P_0 - \overline{P}) \left(\frac{-\delta}{\beta} \right)^t + \overline{P} \qquad \ldots(12.9)$$

2 Alpha C Chiang 'Fundamental Methods of Mathematical Economics', New York, McGraw Hill Book Co (Chapter 16)

द्वितीय, उपरोक्त समीकरण में $(P_0 - \bar{P})$ के आधार पर हम मूल कीमत तथा साम्य कीमत $(\bar{P})$ का अंतर ज्ञात कर सकते हैं तथा इसका चिह्न इस बात का निर्धारण करता है कि अवधि-पथ साम्य स्थिति के ऊपर से प्रारंभ होगा अथवा नीचे से। अंतिम बात यह है कि β तथा α के बीच का अंतर कॉबवेब या मकड़जाल की दशा को अभिव्यक्त करता है। इस संदर्भ में तीन नियम ध्यान देने योग्य हैं—

(i) यदि δ > β हो (यानी पूर्ति वक्र का ढलान माग वक्र के ढलान से अधिक हो), तो विस्फोटक या फैलता हुआ (diverging) मकड़जाल (कॉबवेब) होगा, यानी पूर्ति व माग का अंतर उत्तरोत्तर बढ़ता जाएगा (देखिए, चित्र 12 8 का पैनल a)।

चित्र 12 8 अंतरालयुक्त पूर्ति एवं मकड़जाल
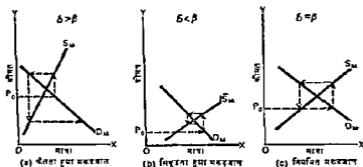
(ii) यदि δ < β हो (यानी माग वक्र का ढलान पूर्ति वक्र के ढलान से अधिक हो) तो मकड़जाल सिकुड़ता हुआ (converging) होगा, अर्थात् पूर्ति व माग का अंतर उत्तरोत्तर कम होता जाएगा, जैसा कि चित्र 12 8 के पैनल (b) में बतलाया गया है।

(iii) यदि δ = β हो (माग व पूर्ति वक्र के ढलान एक जैसे हो) तो माग व पूर्ति का अन्तराल वही बना रहेगा (चित्र 12 8 का पैनल C देखिए)।

12 5 लागत-ऊपर कीमत निर्धारण
(Mark-up or Cost-plus Pricing)

इस अध्याय के खंड एक में हमने किसी फर्म के प्रमुख उद्देश्यो की विस्तृत चर्चा की थी। हमने यह देखा था कि सामान्य तौर पर प्रत्येक फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहती है, अथवा लाभ-सीमा के साथ अथवा इसके बिना अधिकतम आगम प्राप्त करना चाहती है। परंतु अनुभव के आधार पर यह भी बतलाया गया है कि विश्व भर में उत्पादक वस्तु की कीमत का निर्धारण लागत-ऊपर कीमत प्रणाली (cost-plus अथवा mark-up pricing) के आधार पर करते हैं। यह यह स्पष्ट

कर देना उपयुक्त होगा कि इस संदर्भ में लागत का अर्थ व्यावसायिक लागत से है जिसमें वस्तु की *उत्पादन या क्रय लागत*, परिवहन लागत, किराया-भाड़ा, प्रबंध सबंधी लागत, आदि शामिल की जाती हैं। फर्म प्रति इकाई व्यावसायिक लागत में अपना लाभ जोड़कर कीमत निर्धारित करती है तथा यह आवश्यक नहीं है कि इस कीमत पर उसे अधिकतम लाभ बहुधा हो। इसे वर्धित कीमत (mark-up price) भी कहते हैं। लागत के ऊपर कितनी राशि जोड़ी जाए यह इस बात पर निर्भर करता है कि फर्म व्यवस्थापन, पूंजी निवेश, प्रचलित माग तथा अनुमानित पूर्ति, के के विषय में क्या अनुभव करती है। बहुधा लागत-ऊपर राशि एक परपरागत अनुपात का रूप ले लेती है। उदाहरण के लिए, यदि कपड़ा मिलें उत्पादन लागत पर 25 प्रतिशत जोड़कर थोक व्यापारी को दें, या थोक व्यापारी खुदरा व्यापारी से क्रय मूल्य पर 20 प्रतिशत ऊपर वसूल करे, अथवा प्रत्येक खुदरा व्यापारी प्रति मीटर 15 प्रतिशत लागत-ऊपर (mark-up) जोड़कर उपभोक्ता से कीमत ले तो यह सब लागत-ऊपर कीमत निर्धारण माना जाएगा।

वाटसन के मतानुसार[3] लागत-ऊपर कीमत निर्धारण की अनेक विधियां हो सकती हैं। फिर भी वे ऐसा मानते हैं कि अधिकांश फर्में इस संदर्भ में लागत के साथ परपरागत अनुपात को जोड़ कर कीमत निर्धारित करती हैं। जो उद्यमी परिष्कृत विधि अपनाते हैं वे भविष्य की बिक्री, लागतों, माग आदि के अनुमान करके कंपनी के निवेश पर कितना प्रतिफल प्राप्त करना चाहिए इसका निर्धारण करते हैं।

यद्यपि लागत-ऊपर कीमत निर्धारण के पीछे फर्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ की प्राप्ति होना आवश्यक नहीं है, तथापि सीमान्त लागत व सीमान्त आगम विधि के द्वारा हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि फर्म को औसत लागत के ऊपर कितना मार्जिन जोड़कर कीमत का निर्धारण करना चाहिए।

हम पहले फर्म के सीमान्त आगम का सूत्र लें—

$$MR = P\left(1 - \frac{1}{e}\right)$$

$$= P - \frac{P}{e}$$

परन्तु चूंकि अधिकतम लाभ के लिए प्रथम क्रम की शर्त MC=MR है, हम उपरोक्त सूत्र को निम्न रूप में भी लिख सकते हैं—

$$MC = P - \frac{P}{e}$$

$$P = MC\left(\frac{e}{e-1}\right) \qquad \ldots(12.10)$$

अब मान लीजिए फर्म स्थिर प्रतिफलों के अन्तर्गत कार्य कर रही है जिससे

3 D. S. Watson & Mary A. Holman, 'Price Theory & Its Uses', Kalyani & Co., Delhi (1978, Indian Reprint), pp. 354-65.

अनुसार औसत व सीमांत लागतें समान होती हैं (AC=MC) अस्तु समीकरण (12.10) को निम्न रूप में भी लिखा जा सकता है—

$$P = AC\left(\frac{e}{e-1}\right) \qquad (12.11)$$

इस प्रकार यदि वस्तु की माग की लोच (e) तथा औसत लागत ज्ञात हो तो हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु फर्म लागत-ऊपर कितना मार्जिन प्राप्त करना चाहेगी। उदाहरण के लिए मान लीजिए e=4 है। ऐसी स्थिति में $P=AC\left(\frac{4}{3}\right)$ होगी, यानी औसत लागत के ऊपर 33% मार्जिन जोड़कर कीमत निर्धारित करनी चाहिए। यदि इसके विपरीत माग की लोच 5 हो तो $P=AC\left(\frac{5}{4}\right)$ होगी यानी औसत लागत के ऊपर केवल 25 प्रतिशत ही मार्जिन लेना चाहिए। इस प्रकार वस्तु की माग की लोच (e) जितनी अधिक होगी, लागत ऊपर मार्जिन में कमी आती जाएगी। जैसा कि हम अगले अध्याय में देखेंगे, पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म के लिए माग की लोच अनत होती है ($e=\infty$)। ऐसी स्थिति में $P=AC\left(\frac{\infty}{\infty-1}\right)$ होगी यानी कीमत व औसत लागत मे कोई अतर नही होगा क्योंकि ∞ एव ∞ — 1 मे वस्तुत कोई अतर नही होता।

12.6 विक्रेता या उत्पादक का अतिरेक
(Producer's Surplus)

प्रोफेसर मार्शल ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनॉमिक्स' मे अनेक प्रकार के अतिरेक या बचतों का उल्लेख किया है, जैसे श्रमिक का अतिरेक, बचतकर्ता का अतिरेक, उपभोक्ता का अतिरेक या उपभोक्ता की बचत तथा उत्पादक की बचत। इनमे से प्रत्येक अतिरेक या बचत का अर्थ कुल प्राप्ति एव कुल त्याग के मध्य विद्यमान अतर से लिया जाता है। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता की बचत का अर्थ हमने अध्याय 5 मे उपभोक्ता को प्राप्त कुल उपयोगिता एव उसके द्वारा वस्तु पर व्यय की गई कुल राशि के अतर से लिया है। उत्पादक की बचत या अतिरेक से हमारा अभिप्राय उस अतिरिक्त आय से है जो किसी उद्योग मे नीची लागत वाली फर्मों को सीमांत फर्म की तुलना मे प्राप्त होती है। डेविड रिकार्डो ने इसे शुद्ध भेदमूलक शेष (differential rent) की सज्ञा दी थी।

अल्पकाल मे किसी भी प्रतियोगी बाजार मे वस्तु की साम्य कीमत का निर्धारण सीमांत फर्म की औसत लागत के अनुरूप होता है। जैसा कि रिकार्डो व मार्शल ने माना था यदि कीमत औसत लागत से कम है तो सीमांत फर्म उत्पादन बद कर देगी। यदि विभिन्न फर्मों के औसत लागत वक्रो को आरोही क्रम मे (ascending order) बाए से दाए सजो दिया जाए तथा इनमे सबद्ध सीमांत लागत वक्र भी प्रस्तुत कर दिए जाए तो हमे विभिन्न फर्मों द्वारा किए जाने वाले उन उत्पादन स्तरों

का ज्ञान हो जाता है जिन पर औसत तथा सीमांत लागतें समान हैं। इन सभी स्तरों को व्यक्त करने वाले बिंदुओं को मिलाने पर हमें उद्योग या बाजार का अल्पकालीन पूर्ति वक्र (SRS) प्राप्त हो जाता है।
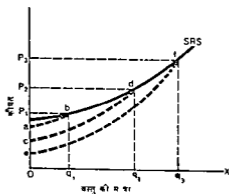
चित्र 12.9 उत्पादक का अतिरेक

चित्र 12.9 में तीन PE वक्र प्रदर्शित किए गए हैं a-b, c-d तथा e-f। प्रत्येक PE वक्र का अंतिम छोर उत्पादन के उस स्तर को व्यक्त करता है जहां सीमांत फर्म की सीमांत लागत तथा औसत लागत समान हैं। उद्योग या बाजार का पूर्ति वक्र SRS इन्हीं बिंदुओं (b, d व f) को मिलाकर निरूपित किया गया है।

PE वक्र सदैव अल्पकालीन पूर्ति वक्र से नीचे रहते हैं, क्योंकि अधिकतम लाभ वाले उत्पादन पर अंतःसीमांत फर्म (intra-marginal firm) के सीमांत लागत वक्र से उसका औसत लागत वक्र हमेशा नीचे रहता है। हम यह जानते हैं कि औसत लागत (AC) तथा औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) के बीच का अंतर औसत स्थिर लागत है (AC—AVC=AFC)। हम यह भी जानते हैं कि अल्पकाल में वस्तु की कीमत यदि औसत परिवर्तनशील लागत के समान हो तब भी फर्म उत्पादन जारी रखती है, यानी वह अल्पकाल में स्थिर लागत के वसूल न होने पर भी उत्पादन करती रहती है। इसीलिए, औसत परिवर्तनशील लागत से ऊपर जो आय प्राप्त होती है वह भी उत्पादक के अतिरेक का एक भाग है।

यदि साम्य कीमत OP_3 हो तो तीनों उत्पादकों को प्राप्त होने वाला कुल अतिरेक efP_3 होगा। यदि कीमत इस स्तर से कम हो तो उत्पादकों को प्राप्त अतिरेक भी कम हो जाएगा जबकि कीमत OP_3 से अधिक होने पर ऊंची लागत वाली फर्में भी उत्पादन प्रारंभ कर देती हैं और फलस्वरूप अंतःसीमांत फर्मों को प्राप्य अतिरेक बढ़ जाता है। संक्षेप में विभिन्न उत्पादन स्तरों पर ऊंची लागत वाले सीमांत उत्पादक की तुलना में नीची लागत वाले उत्पादकों को प्राप्त होने वाली अतिरिक्त आय को ही उत्पादकों का अतिरेक कहा जाता है।

13

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत निर्धारण
(THEORY OF PRICING IN A COMPETITIVE MARKET)

प्रस्ताव

कीमतों व उत्पादन की मात्राओं का निर्धारण काफी सीमा तक इस बात पर निर्भर करता है कि बाजार में क्रेताओं व विक्रेताओं के मध्य कितनी प्रतियोगिता विद्यमान है। विक्रेताओं के मध्य परस्पर कितनी प्रतियोगिता है, अथवा एकाधिकारी शक्तियां कितनी प्रबल हैं इसका भी बाजार में निर्धारित साम्य कीमत व उत्पादन की मात्रा पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है।

सस्थापक अर्थशास्त्रियों की मान्यता थी कि स्वतंत्र प्रतियोगिता ही सर्वश्रेष्ठ प्राकृतिक नियम था। उनके मत में प्रतियोगिता के कारण उपभोक्ताओं को सस्ती वस्तुएं उपलब्ध हो जाती हैं तथा उत्पादकों के मध्य परस्पर स्पर्द्धा के कारण नए आविष्कारों को प्रोत्साहन मिलता है। वे यह भी मानते थे कि इस स्पर्द्धा के कारण उद्यमी अपनी लागतों को घटाने का भी सतत प्रयास करते रहते हैं। 1852 में प्रकाशित 'राजकीय अर्थशास्त्र के शब्दकोश' (Dictionnarie d' economie politique) में बतलाया गया कि भौतिक विश्व के लिए जो महत्त्व सूर्य का है वही महत्त्व औद्योगिक जगत के लिए प्रतियोगिता का है। विशेष रूप से जॉन स्टुअर्ट मिल ने इस बात पर बल दिया कि प्रतियोगिता का विस्तार सदैव हितकर होता है जबकि इस पर रोपित प्रत्येक अंकुश से समाज का अहित होता है। इतने पर भी मिल, सीनियर एवं अन्य सस्थापक विचारकों ने यह भी स्वीकार किया कि समकालीन यूरोप के देशों में एकाधिकारिक शक्तियां भी विद्यमान थीं।[1] प्रोफेसर मार्शल ने भी एकाधिकार का उल्लेख करते हुए एकाधिकारिक मूल्य, एकाधिकारिक आगम-अनुसूची तथा एकाधिकार पर नियंत्रण आदि की विस्तृत विवेचना की।[2]

संक्षेप में यह कहना अनुचित न होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक लगभग सभी अर्थशास्त्रियों की ऐसी मान्यता थी कि बाजार में या तो पूर्ण प्रतियोगिता

1 Charles Gide & Charles Rist, 'A History of Economic Doctrines', George G. Harrap & Co Ltd (1961), pp. 362 63

2 Alfred Marshall, 'Principles of Economics' (Eigth Edition), London, Mac Millan & Company, pp 395-410

की स्थिति हो सकती है अथवा एकाधिकार की। फिर भी उनके मतानुसार समाज का अधिकतम कल्याण पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे ही सभव है, जबकि एकाधिकार की स्थिति मे समाज का आर्थिक कल्याण न्यूनतम होता है।

पिछले चार दशको मे बाजार मे कीमत तथा उत्पादन की मात्रा के निर्धारण मे सबद्ध विश्लेषण मे दो अन्य प्रकार की स्थितियो का भी उल्लेख किया जाने लगा है। ये हैं अपूर्ण अथवा एकाधिकारिक प्रतियोगिता (imperfect or monopolistic competition) तथा अल्पाधिकार (oligooly)। वस्तुत पूर्ण एकाधिकार एव पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की दो चरम सैद्धांतिक या काल्पनिक स्थितिया हैं, जबकि वास्तविक बाजार मे या तो हमे अल्पाधिकार की दशा दिखलाई देती है, अथवा एकाधिकारिक (या अपूर्ण) प्रतियोगिता के दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत अध्याय मे हम किसी प्रतियोगी बाजार मे कीमत तथा उत्पादन की मात्रा के निर्धारण की चर्चा करेंगे। अगले अध्याय मे हम एकाधिकारी द्वारा कीमत तथा उत्पादन का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है इसकी व्याख्या करेंगे। इसके बाद के दो अध्यायो मे एकाधिकारिक प्रतियोगिता एव अल्पाधिकार के अतर्गत कीमत निर्धारण से सबद्ध सिद्धातो की विवेचना प्रस्तुत की जाएगी। परतु इन चारो अध्यायो मे कीमत सिद्धात के विश्लेषण की पृष्ठभूमि म हमने दो मुख्य मान्यताए ली हैं प्रथम यह कि प्रत्येक फर्म अधिकतम लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से ही कार्य करती है एव उसके इस उद्देश्य पर बाजार की प्रकृति का कोई प्रभाव नही होता। द्वितीय, यद्यपि वस्तु के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता एकाधिकार, अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा अल्पाधिकार की दशा विद्यमान हो सकती है, तथापि प्रत्येक फर्म उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त साधनो को प्रतियोगिताशील बाजार मे ही खरीदती है। अन्य शब्दो मे, साधन की कीमत बाह्य रूप से निर्धारित होती है तथा एक फर्म इसमे किसी प्रकार का परिवर्तन नही कर सकती।

13.1 पूर्ण प्रतियोगिता की प्रमुख विशेषताएं

(Charcteristics of a Perfectly Competitive Market)

प्रतियोगिता की दृष्टि से बाजार को दो रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रथम विशुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति है जबकि द्वितीय स्थिति को पूर्ण प्रतियोगिता की सज्ञा दी जाती है। विशुद्ध प्रतियोगिता की प्रमुख विशेषताए इस प्रकार हैं (i) क्रेताओ तथा विक्रेताओ की बहुलता, (ii) वस्तुओ की समरूपता, तथा (iii) *प्रवेश अथवा निर्गम की स्वतत्रता। इन तीन विशेषताओ के अतिरिक्त निम्न चार अन्य* विशेषताए और होने पर विशुद्ध प्रतियोगिता (pure competition) पूर्ण प्रतियोगिता (perfect competition) का रूप ले लेती हैं—

(i) बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान, (ii) साधनों की पूर्ण गतिशीलता, (iii) स्वतत्र निर्णय-प्रक्रिया, तथा (iv) दीर्घकाल मे सामान्य लाभ। इस प्रकार **पूर्ण प्रतियोगिता की अवधारणा विशुद्ध प्रतियोगिता की अपेक्षा अधिक व्यापक है।**

हम अब पूर्ण प्रतियोगिता की सभी विशेषताओ का विस्तार से वर्णन करेंगे ।

1. क्रेताओं तथा विक्रेताओं का बाहुल्य (Large number of buyers and sellers) एक पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में क्रेताओं व विक्रेताओ की सख्या इतनी अधिक होती है कि किसी भी एक क्रेता या एक फर्म के व्यवहार का बाजार कीमत पर कोई प्रभाव नही होता यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता को आणविक प्रतियोगिता (atomistic competition) भी कहा जाता है।[3] हमने पिछले अध्याय (खड 12 2) मे यह पढा था कि एक फर्म का सीमात लागत वक्र इसके पूर्ति वक्र का निरूपित करता है जबकि एक उपभोक्ता का सीमात उपयोगिता वक्र उसके व्यष्टिगत माग वक्र का द्योतक है । यदि एक फर्म की बाजार कीमत को प्रभावित करने की शक्ति को ∝ मान लें तो हम यह भी कह सकते हैं कि यह शक्ति प्रत्यक्षत: कुल बाजार पूर्ति मे एक फर्म की पूर्ति (S) का अनुपात व्यक्त करती है । अस्तु—

$$\alpha = \frac{S_i}{\sum_{i=1}^{n} S_i} \qquad \text{.. 13 1}$$

यदि बाजार मे विक्रेताओ की सख्या n बढती जाती है तो ∝ का मूल्य घटता जाता है । (यदि $n \to \infty$ तो $\alpha \to 0$) इस प्रकार विक्रेताओ की विशाल सख्या के कारण एक फर्म की स्थिति नगण्य होती है । इसी प्रकार यदि एक उपभोक्ता की बाजार कीमत को प्रभावित करने की शक्ति को β मान लें तो इसकी कुल बाजार मे स्थिति का ज्ञान निम्न प्रकार से हो जाता है—

$$\beta = \frac{d_j}{\sum_{j=1}^{K} d_j} \qquad \text{...13 2}$$

यदि उपभोक्ताओ की सख्या K बढती जाती है तो एक उपभोक्ता की स्थिति भी नगण्य हो जाती है । (यदि $K \to \infty$ तो $\beta \to 0$)

प्रश्न है, यदि पूर्ण प्रतियोगिता की दशा मे एक विक्रेता अथवा एक क्रेता द्वारा वस्तु की बाजार कीमत का निर्धारण नही किया जा सकता तो फिर वस्तुत: इसका निर्धारण क्योंकर होता है ? इसका उत्तर यही है कि व्यक्तिगत रूप से कोई भी फर्म या उपभोक्ता कीमत को प्रभावित नही कर सकता, परतु सभी फर्मों की सयुक्त पूर्ति एव सभी उपभोक्ताओ की सयुक्त माग वस्तु की बाजार कीमत को निर्धारित अथवा प्रभावित करने मे सक्षम हैं । हम पिछले अध्याय मे यह पढ चुके हैं कि साम्य कीमत का निर्धारण उस स्तर पर होता है जहा बाजार की कुल पूर्ति एव माग समान हैं। यदि बाजार के कुल माग वक्र, पूर्ति वक्र या दोनो मे ही परिवर्तन हो जाए तो साम्य कीमत मे भी परिवर्तन हो जाएगा । अस्तु, अन्य बातें यथावत् रहते हुए (यानी

3 K J Cohen and R M. Cyert, 'Theory of the Firm' (Second Edition), Prentice Hall of India (1976), p 51

कुल माग व पूर्ति फलन जब तक अपरिवर्तित रहते हैं) पूर्ण प्रतियोगिता की दशा मे कीमत का निर्धारण कुल माग व कुल पूर्ति द्वारा ही होता है तथा प्रत्येक फर्म एव *प्रत्येक उपभोक्ता दी हुई कीमत के अनुरूप ही अपनी व्यक्तिगत पूर्ति एव माग का* निर्धारण इस प्रकार करता है कि फर्म को अधिकतम लाभ तथा उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो जाए।

2 **वस्तुओं की समरूपता** (Homogeneity of products) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तुत उपभोक्ता या फर्म की अपनी कोई पसद नही होती। इसका कारण यह है कि सभी विक्रेताओ द्वारा उत्पादित वस्तुए समरूप होती हैं और इसलिए इनमे परस्पर पूर्ण स्थानापन्नता (perfect substitution) हो सकती है। यदि उपभोक्ता X, Y या Z सभी मे एक ही कीमत पर वह वस्तु प्राप्त हो सकती है तो वह इनमें से किसी से भी वह वस्तु खरीद सकता है।

यहा उल्लेखनीय बात यह है कि वस्तुओ की समरूपता मे न केवल वस्तु की *बनावट व क्वालिटी की समरूपता को लिया जाता है अपितु इसमे निम्न अन्य विशेषताए* भी शामिल की जाती हैं (i) वस्तु का रग, ट्रेड मार्क, पैकिंग व डिजाइन, (ii) विक्रेताओ का क्रेताओ के साथ व्यवहार एव (iii) दूकानों का आकार, सजावट तथा स्थिति। इस प्रकार वस्तुओ की प्रकृति के साथ विक्रेताओं का व्यवहार एव दूकानो की सजावट आदि भी पूर्ण रूप मे समरूपी हो तो क्रेता की अपनी कोई पसद नही होगी इसके फलस्वरूप समूचे बाजार मे वस्तु की एक ही कीमत प्रचलित होगी। ऐसी स्थिति में एक विक्रेता की वस्तु की माग की लोच (η_i) अनत होगी। अस्तु—

$$\eta_i = \frac{\eta_M}{\alpha} \qquad 13.3$$

(यहा η_M बाजार मे वस्तु की माग लोच है।)

परन्तु $\alpha = \frac{S_i}{\sum_{i=1}^{n} S_i}$ है (समीकरण 13.1)

अत

$$\eta_i = \eta_M \frac{\sum_{i=1}^{n} S_i}{S_i} \qquad 13.4$$

जैसे जैसे बाजार मे विक्रेताओ की सख्या (n) बढती जाती है, एक फर्म के सदर्भ मे माग की लोच अनतता (∞) की ओर प्रवृत्त होती है (as $n \to \infty, \eta_i \to \infty$)। अन्य शब्दो मे बाजार माग वक्र का ढलान ऋणात्मक होता है लेकिन विक्रेताओ की सख्या अनन्त हो जाने पर एक फर्म का माग वक्र पूर्णत क्षैतिज हो जाता है (MR—AR अत $\eta_i = \infty$)।

3 **प्रवेश अथवा बहिर्गमन की स्वतन्त्रता** (freedom of entry or exit) पूर्ण प्रतियोगिता को मुक्त व्यापार का भी पर्यायवाची माना जाता है, क्योकि केवल

इसी बाजार मे नई फर्मों के प्रवेश अथवा पुरानी फर्मों के उद्योग से बाहर चले जाने पर कोई प्रतिबंध नही होता। वस्तुत प्रवेश अथवा बहिर्गमन के अतर्गत चार बातें शामिल की जाती हैं—

(1) यदि (अल्पकाल मे) उद्यमियो को बहुत अधिक लाभ प्राप्त हो रहे हो तो नए उद्यमियो को प्रवेश करने की स्वतत्रता होती है। जैसा कि पिछले अध्याय मे बतलाया गया था, नई फर्मों के प्रवेश स बाजार का पूर्ति वक्र दाईं ओर विवर्तित हो जाता है जिसके फलस्वरूप साम्य कीमत मे कमी हो जाती है। नई फर्मों का प्रवेश तब तक होता रहेगा जब तक कि प्रत्यक विद्यमान फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त होता रहता है। (ii) यदि (अल्पकाल मे) फर्मों को हानि हो रही है तो उद्योग से कुछ उद्यमी बाहर जाना प्रारभ कर देंगे। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप बाजार का पूर्ति वक्र ऊपर की ओर विवर्तित होगा तथा साम्य कीमत मे वृद्धि होगी। उद्यमियो का बहिर्गमन तब तक होगा जब तक विद्यमान फर्मों मे से प्रत्येक को हानि हो रही है। (iii) प्रत्यक फर्म अपने पैमाने का विस्तार करने हेतु स्वतत्र है। (iv) प्रत्येक फर्म को पैमाने का सकुचन करने की भी स्वतत्रता है।

प्रवेश अथवा बहिर्गमन की स्वतत्रता के दो परिणाम होते हैं। प्रथम तो यह कि दीर्घकाल मे फर्मों की इष्टतम सख्या ही बाजार मे रह जाती है। द्वितीय, प्रत्येक फर्म दीर्घकाल मे केवल इष्टतम पैमाने पर ही उत्पादन करती है, जहा दीर्घकालीन लागत न्यूनतम होती है।

4 बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान (Perfect knowledge) पूर्ण प्रतियोगिता की एक विशेषता यह भी है कि उपभोक्ताओ, उत्पादको तथा साधनों के विक्रेताओ को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। बाजार की स्थिति का सही ज्ञान न होने पर कोई भी फर्म अनजान क्रेताओ स बाजार कीमत से अधिक कीमत वसूल कर सकती है अथवा श्रमिको को प्रचलित दर मे कम मजदूरी दे सकती है। यदि किसी उद्यमी को बाजार की स्थिति का ज्ञान न हो तो चालाक क्रेता भी उसे प्रचलित कीमत स कम दे सकते हैं। इस प्रकार पूर्ण ज्ञान के अतर्गत सभी पक्षो को वस्तु या साधन की बाजार कीमत, उपलब्ध मात्रा या स्टॉक, या विकल्पों की स्थिति की सही सूचना उपलब्ध रहती है। इसके परिणामस्वरूप कोई भी फर्म अथवा पक्ष दूसरे पक्ष का शोषण नही कर पाता। साधनो के स्वामियो को भी सीमात उत्पादन एव वैकल्पिक तकनीक की उपलब्धि का पूरा ज्ञान होना चाहिए।

पूर्ण ज्ञान का परिणाम यह होगा कि (i) प्रत्यक फर्म सीमात लागत व सीमात आगम को समान कर अधिकतम लाभ प्राप्त करेगी, (ii) प्रत्येक उपभोक्ता सीमात उपयोगिता से अधिक कीमत नही देगा, (iii) साधन का स्वामी साधन के सीमात उत्पादन मूल्य (Value of marginal product) से कम साधन कीमत स्वीकार नहीं करेगा; तथा (iv) कोई भी फर्म औसत लागत से कम कीमत नही लेगा, और न ही साधन के लिए सीमात उत्पादन मूल्य से अधिक कीमत देगा।

5 **साधनों की पूर्ण गतिशीलता** (Perfect mobiliy of the factors) : पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार मे उत्पादन के सभी साधन पूर्णतया गतिशील होते हैं। पूर्ण गतिशीलता के इस सदर्भ मे दो अर्थ होते हैं। प्रथम, कोई भी साधन एक फर्म से हटाया जाकर उसी उद्योग से सबद्ध अन्य दूसरी फर्म में प्रयुक्त किया जा सकता है। द्वितीय, उत्पादन के किसी साधन को एक उद्योग स हटाकर दूसरे उद्योग मे लगाने पर भी कोई प्रतिबध नही है। बहुधा साधन की गतिशीलता के पीछे इसके प्रयोग हेतु प्राप्त पारिश्रमिक की दरो का अतर निहित होता है। साधन की गतिशीलता का अर्थ यह है कि किसी भौगोलिक क्षेत्र मे साधन के प्रयोग वाले सभी क्षेत्रो मे इसकी कीमत वही हो जाती है। यदि एक उद्योग A (या फर्म) मे मजदूरी की दर दूसरे उद्योग B (या फर्म) की तुलना मे अधिक है तो प्रथम उद्योग (या फर्म) मे श्रमिको का उस क्षेत्र से अतरण प्रारभ हो जाएगा जहा मजदूरी की दर कम है। परिणामस्वरूप B मे श्रम की पूर्ति कम होन के कारण मजदूरी की दर मे वृद्धि होगी जबकि A मे श्रम की पूर्ति बढ जाने के कारण वहा मजदूरी की दर मे कमी होगी। अतत दोनो मे मजदूरी की दर समान हो जाएगी। इस प्रकार, अतर्फर्म (inter-firm) एव अन्तर्उद्योग (inter-industry) गतिशीलता के कारण मजदूरी की दर सर्वत्र वही हो जाएगी। ऐसी स्थिति उत्पादन के अन्य साधनो के सदर्भ मे भी होगी। इस प्रकार साधनो की पूर्ण गतिशीलता के फलस्वरूप उत्पादन के प्रत्येक साधन की कीमत इसके प्रयोग क समस्त क्षेत्रों मे समान होगी। इसका एक परिणाम यह होगा कि अतत **सभी फर्मों की उत्पादन लागतें एक जैसी हो जायेंगी एव यथासभव प्रत्येक फर्म न्यूनतम लागत पर उत्पादन करने लगेगी।**

6 **स्वतत्र निर्णय प्रक्रिया** (Independent decision making) पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत प्रत्येक फर्म स्वतत्र रूप से निर्णय लेती है। जैसा कि हम आगे देखेंगे अल्पाधिकार (oligopoly) एव एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म की *निर्णय प्रक्रिया पर आवश्यक रूप से इसकी प्रतियोगी फर्मों की रणनीतियो का* प्रभाव पडता है। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत बाजार की तुलना मे फर्म का आकार इतना छोटा होता है कि इसके कार्यकलापो पर सामान्यत किसी का ध्यान नही जाता। यह बतलाया जा चुका है कि एक उपभोक्ता या एक फर्म बाजार कीमत को प्रभावित करने मे नितात अक्षम है, तथा इसके लिए कीमत दी हुई है। फर्म को ऐसी स्थिति मे कीमत बढाने या कीमत कम करने पर कोई लाभ नही हो सकता। इसी प्रकार फर्म अपनी वस्तुओ का विज्ञापन नही करती क्योंकि सभी वस्तुए एव दूकानें समरूप है, तथा एक फर्म द्वारा विज्ञापन करने पर उसे स्वय को कोई भी अतिरिक्त आय प्राप्त नही होती।

अस्तु, जब कीमत दी हुई हो तो फर्म को केवल एक ही निर्णय लेना होता है, और यह उत्पादन की उस मात्रा के निर्धारण स सबद्ध है जिस पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकता है। इस निर्णय हेतु फर्म स्वतत्र रूप से बाजार से सकेत (signal) प्राप्त करती रहती है।

7 **दीर्घकाल में सामान्य लाभ** (Normal profit in the long run) यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि अल्पकाल में भले ही फर्म को पर्याप्त लाभ प्राप्त हो रहे हों (P>SAC) या हानि होती हो (P<SAC), फिर भी दीर्घकाल में फर्मों के प्रवेश अथवा बहिर्गमन की स्वतन्त्रता के कारण कीमत में परिवर्तन होगा तथा प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा। इस स्तर पर कीमत तथा औसत लागत समान होती है (P=AC)। इसी प्रकार, पैमाने के विस्तार या संकुचन की स्वतन्त्रता के कारण दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म इष्टतम स्तर पर उत्पादन करती है जहां दीर्घकालीन लागत कीमत के समान होती है (P=LAC)। परन्तु इष्टतम पैमाने के कारण यहां संयन्त्र की लागत भी न्यूनतम होती है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत प्रत्येक फर्म दीर्घकालीन न्यूनतम लागत पर कार्य करते हुए केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती है (P=MR=LMC=LAC=SAC=SMC)।

13 2 बाजार अवधि में साम्य स्थिति
(Equilibrium in the Market Period)

बाजार अवधि वह अवधि होती है जिसमें किसी वस्तु की पूर्ति पूर्ण रूप से स्थिर होती है तथा कीमत में परिवर्तन से इस पर किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं होता। इससे पूर्व के अध्यायों में अल्पकाल व दीर्घकाल की परिभाषा साधनों की परिवर्तनशीलता के संदर्भ में दी गई थी और यह स्पष्ट किया गया था कि वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर अल्पकाल में एक या अधिक साधनों की मात्रा में वृद्धि करके उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है जबकि दीर्घकाल में सभी साधनों यानी पैमाने में वृद्धि करके उत्पादन को बढ़ाना संभव है। परन्तु बाजार अवधि इन दोनों ही से भिन्न होती है। इस अवधि में वस्तु का कुल स्टॉक सर्वथा अपरिवर्तित रहता है और ऐसी दशा में मांग में वृद्धि होने पर कीमत में तो वृद्धि होती है परन्तु पूर्ति अथवा उत्पादन में कोई भी परिवर्तन नहीं हो पाता।

बाजार में साम्य कीमत तथा मात्रा के निर्धारण का विश्लेषण करने से पूर्व यह स्पष्ट करना उपयुक्त होगा कि कीमत सिद्धांतों के अंतर्गत उद्योग के साम्य तथा बाजार की साम्य स्थिति में कोई अंतर नहीं है। समरूपी वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों के समूह को उद्योग कहा जाता है। इसी प्रकार प्रतियोगितापूर्ण स्थिति में बाजार के पूर्ति वक्र का निरूपण विभिन्न फर्मों के पूर्ति वक्रों का क्षैतिज योग लेकर ही किया जाता है। इसीलिए बाजार के पूर्ति वक्र को उद्योग के पूर्ति वक्र की भी संज्ञा दी जाती है।

अब बाजार-अवधि में कीमत निर्धारण की प्रक्रिया को देखिए। चूंकि इस अवधि में उद्योग की कुल पूर्ति पूर्णत स्थिर रहती है, अत पूर्ति वक्र ऐसी दशा में एक शीर्ष रेखा के रूप में होती है। पूर्ति वक्र के शीर्ष स्थिति में होने पर पूर्ति की अपेक्षा केवल मांग ही कीमत को प्रत्यक्षत प्रभावित करती है।

कीमत नहीं रहने के कारण सीमांत आगम व कीमत में कोई अंतर नहीं होता (P=MR) तथा फर्म उस स्तर पर उत्पादन करके अधिकतम लाभ अर्जित करती है जहां सीमांत आगम व सीमांत लागत समान हो (MR=MC)।
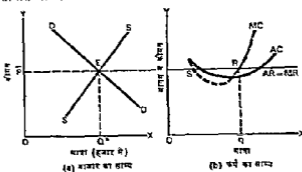
चित्र 13.2 बाजार एवं फर्म की साम्य स्थिति

चित्र 13.2 के पैनल (a) में E बिंदु पर मांग वक्र (DD) पूर्ति वक्र (SS) का प्रतिच्छेदन करता है तथा साम्य कीमत $O\overline{P}$ व साम्य मात्रा OQ* का इनके द्वारा निर्धारण होता है। पर पैनल (b) में फर्म का सीमांत लागत वक्र R बिंदु पर सीमांत आगम रेखा (AR=MR) को काटता है जहां $O\overline{q}$ मात्रा का उत्पादन करके फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करती है। वैसे सीमांत लागत वक्र सीमांत आगम वक्र को S पर भी काटता है, परन्तु अधिकतम लाभ हेतु समीकरण (12.2) में प्रस्तुत शर्त केवल R पर ही पूरी होती है।

13.3 अल्पकाल में साम्य स्थिति
(Equilibrium in the Short Run)

इसके पूर्व हम पढ़ चुके हैं कि अल्पकाल समय की वह अवधि है जिसमें परिवर्तनशील-साधनों की मात्रा में वृद्धि करके ही उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। जैसा कि अध्याय 12 में बतलाया गया था, उद्योग या बाजार के पूर्ति वक्र का ढलान धनात्मक होता है, क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर विद्यमान संयत्र द्वारा शोषित सीमाओं के भीतर ही फर्म अपने उत्पादन स्तर में समायोजन कर सकती है।

परन्तु जैसा कि ऊपर अनुभाग 13.1 में बतलाया गया था, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में वस्तु की कीमत का निर्धारण एक फर्म द्वारा नहीं किया जा सकता। पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत बाजार की मांग व पूजी की पक्तियां ही साम्य कीमत का निर्धारण करती हैं, तथा निर्दिष्ट कीमत पर ही फर्म को उत्पादन के उस स्तर का निर्धारण करना होता है जहां उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। यदि यह कीमत औसत उत्पादन लागत से भी कम है तो फर्म को हानि होती है। इसके विपरीत यदि औसत उत्पादन लागत से कीमत अधिक है (P>AC) तो फर्म को शुद्ध लाभ होता है।

जैसा कि पिछले अध्याय मे तथा इस अध्याय के भी अनुभाग 13 1 मे बतलाया गया था, दीर्घकाल मे उद्योग का पूर्ति वक्र (तथा उपभोग का स्तर भी) इस प्रकार समायोजित हो जाएगा कि फर्म की अल्पकालीन हानि अथवा इसके अल्पकालीन लाभ का लोप हो जाता है, और फर्म को केवल *सामान्य लाभ* ही प्राप्त होता है।

एक प्रतियोगी फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति हेतु हम सक्षेप मे भिन्न तथ्य प्रस्तुत कर सकते हैं। प्रथम, यदि बाज़ार मे माग व पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित साम्य कीमत पर फर्म लाभ अर्जित करने में असमर्थ है तो यह अपनी हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करेगी। द्वितीय यदि दी हुई कीमत पर फर्म लाभ अर्जित करने में सक्षम है तो *यह अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करेगी*। इन दोनो ही उद्देश्यो की प्राप्ति उत्पादन के उस स्तर पर होती है जहा सीमात आगम एव सीमात लागत समान हो (MR=MC)। तृतीय, यदि कीमत काफी ऊ ची हो तो फर्म उस स्तर तक भी उत्पादन कर सकती है जहा उसका कुल आगम कुल लागत के समान हो (TR=TC), अथवा जहा औसत आगम (AR या कीमत) तथा औसत लागत मे समानता हो, उसे लाभ-अलाभ स्थिति बिंदु (*break even point*) कहा जाता है। हम प्रतियोगी फर्म के व्यवहार का विश्लेषण करते समय इनकी पुन चर्चा करेंगे।

1. एक प्रतियोगी फर्म द्वारा हानि को न्यूनतम करना
(Loss Minimization by a Competitive Firm)

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि कीमत का स्तर बहुत नीचा होने पर अल्पकाल मे फर्म अपनी हानि को न्यूनतम करने का प्रयत्न करती है। चित्र 13 3 मे इस स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। पैनल (a) मे कुल आगम व कुल लागत वक्र प्रस्तुत किए *गए* हैं जिनके अनुसार वस्तु की कीमत कुल लागत से प्रत्येक स्तर पर कम है लेकिन जहा कुल आगम (TR) तथा कुल परिवर्तनशील लागत का अतर अधिकतम है, फर्म उसी स्तर पर उत्पादन करके हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करती है। चित्र 13 3 के पैनल (a) व पैनल (b) मे उत्पादन का यह स्तर OQ है। यह एक ऐसी स्थिति का चित्र है जिसमे फर्म की उत्पादन लागत इतनी ऊची है कि
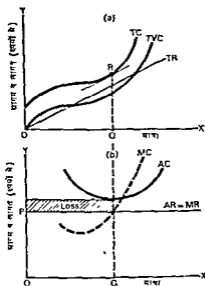
चित्र 13 3 एक प्रतियोगी फर्म द्वारा हानि को न्यूनतम करना

इस लाभ होने की कोई भी आशा नही है। परतु कीमत इतनी नीची भी नही है कि औसत परिवर्तनशील लागत से भी कम हो। यही कारण है कि फर्म उत्पादन प्रक्रिया जारी रखते हुए हानि को न्यूनतम करने का प्रयत्न करती है।

चित्र 13 3 के पैनल (b) मे OQ स्तर का उत्पादन करने पर ही सीमात लागत तथा सीमात आगम को समान किया जा सकता है। यदि उत्पादन का स्तर OQ से कम या अधिक है तो फर्म को अपेक्षाकृत अधिक हानि होगी। न्यूनतम हानि का उत्पादन स्तर OQ ही होगा।

2 अधिकतम लाभ प्राप्त करना (Maximization of Profit)

अल्पकाल मे यदि वस्तु की कीमत औसत उत्पादन लागत से अधिक है (P>AC) तो फर्म को लाभ होगा। जैसा कि अनुभाग 12 1 मे बतलाया गया था, ऐसी स्थिति मे फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयास करेगी। वस्तुत, जैसा कि
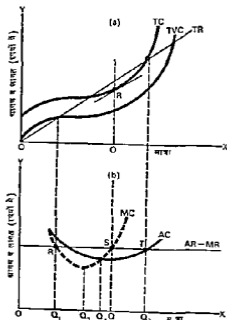
चित्र 13 4 प्रतियोगी फर्म द्वारा अधिकतम लाभ की प्राप्ति

हम आगे देखेंगे, फर्म द्वारा हानि को न्यूनतम करने अथवा अधिकतम लाभ प्राप्त करने की शर्तें एक सी ही होती हैं। चित्र 13 4 मे हमने एक ऐसी (अल्पकालीन) स्थिति को प्रस्तुत किया है जिसमे फर्म $\overline{OQ}$ मात्रा मे वस्तु का उत्पादन करके अधिकतम लाभ अर्जित करती है।

1 एक प्रतियोगी फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र इसका सीमांत लागत वक्र होता है जबकि इसके माग वक्र की अभिव्यक्ति कीमत रेखा (AR=MR) द्वारा की जाती है। इस रेखा का क्षैतिज होना इस बात को व्यक्त करता है कि फर्म दी हुई कीमत पर कितनी ही मात्रा बेच सकती है और इसलिए वस्तु की माग की लोच अनंत होती है ($\eta_1 = \infty$)। इस प्रकार जहा बाजार-माग व बाजार पूर्ति समान होने पर बाजार का साम्य स्थापित होता है, वही फर्म का साम्य उत्पादन के उस स्तर पर स्थापित होगा जहा इसके माग वक्र (AR=MR) को पूर्ति वक्र (MC) नीचे से काटता हो।

2. अल्पकाल म फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने का प्रयास करती है, अथवा लागतें ऊंची होने पर हानि को न्यूनतम करने का प्रयत्न करती है। दोनों ही स्थितियो के लिए प्रथम क्रम की शर्त (MR=MC) के साथ-साथ द्वितीय क्रम की शर्त $\left(\frac{d^2TR}{dQ^2} < \frac{d^2TC}{dQ^2}\right)$ का पूरा होना जरूरी है। द्वितीय क्रम की शर्त (Second order condition) का अर्थ यह है कि फर्म का सीमात लागत वक्र इसके सीमात आगम वक्र को नीचे से काटता हो।

परन्तु जैसा कि हम आगे देखेंगे, दीर्घकाल म फर्म को केवल सामान्य लाभ की ही प्राप्ति होती है। सभव है अल्पकाल मे लागत-फलनो के अतर के कारण कुछ फर्मों को हानि होती हो जबकि अन्य फर्म लाभ अर्जित करती हो, परतु दीर्घकाल में फर्मों के प्रवेश व वहिर्गमन की स्वतन्त्रता तथा / अथवा फर्मों के पैमाने मे परिवर्तन के फलस्वरूप प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर पाती है।

3 अल्पकालीन साम्य स्थिति पर कर का प्रभाव
(Effect of a Tax on the Short Run Equilibrium)

साधारणतया उत्पादन कर (excise duty) अथवा बिक्री कर (sales tax) के रोपित किए जाने पर फर्म की साम्य स्थिति मे परिवर्तन हो जाता है। जैसा कि अध्याय 12 के अनुभाग 12 2 मे बतलाया गया था, उत्पादन कर या बिक्री कर मे वृद्धि हो जाने पर प्रत्येक फर्म का सीमात लागत वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है। इसके फलस्वरूप उद्योग का पूर्ति वक्र भी ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है जिसके कारण बाजार मे साम्य कीमत में वृद्धि हो जाती है।

मान लीजिए i^{th} एक प्रतिनिधि फर्म का लागत फलन इस प्रकार है—

$$C_i = 0\ q_i^2 + 2q_i + 20$$

सीमात लागत $\frac{dC_i}{dq_i} = 0\ 2q_i + 2$

चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए सीमात लागत व कीमत (AR या P=MR) समान होनी चाहिए, हम उपरोक्त समीकरण को P के समान इस प्रकार रखते हैं—

$$\frac{dC_1}{dq_1}=0\ 2q_1+2=P$$

$$q_1=5p-10$$

यह फर्म का सीमांत लागत वक्र या पूर्ति वक्र का समीकरण है। यदि बाजार म ऐसी 100 फर्में विद्यमान हों तो बाजार का पूर्ति वक्र इस प्रकार होगा—

$$S=500P-1000$$

यदि बाजार का माग फलन $D=2000-500P$ हो बाजार की साम्य कीमत $(D=S)$ $P=3$ होगी तथा एक फर्म की साम्य मात्रा S इकाई होगी।

अब मान लीजिए सरकार वस्तु की प्रत्येक इकाई पर चालीस पैसे का उत्पादन कर रोपित कर देती है। अब फर्म का लागत फलन इस प्रकार हो जाएगा—

$$C_1=0\ q_1^2+2\ 4q_1+20$$

सीमांत लागत $\frac{dC_1}{dq_1}=0\ 2q_1+2\ 4q_1$

पुन सीमांत लागत को P के समान रखकर उपरोक्त प्रक्रिया को दोहराने पर बाजार की साम्य कीमत $P=3\ 20$ तथा एक फर्म की साम्य मात्रा $q_1=4$ प्राप्त होगी। अस्तु, उत्पादन कर के रोपित हो जाने पर बाजार की साम्य कीमत म वृद्धि होगी तथा प्रत्येक फर्म द्वारा पूर्वापेक्षा कम मात्रा बेची जाएगी। परंतु एक रोचक बात यह है कि उत्पादन कर की राशि प्रति इकाई 40 पैसे थी, जबकि वस्तु की कीमत में केवल 20 पैसे की ही वृद्धि हुई। इसका कारण यह था कि बाजार माग वक्र का ढलान ऋणात्मक होने के कारण कर का एक अंश ही उपभोक्ताओं को अंतरित किया जाता है जबकि शेष विक्रेताओं को ही वहन करना होता है।

इसी बात को हमने चित्र 13.5 के माध्यम से भी बतलाने का प्रयास किया है।

(a) बाजार की साम्य स्थिति (b) फर्म की साम्य स्थिति
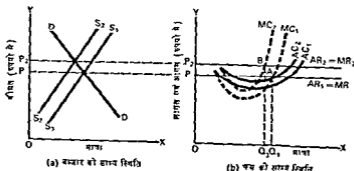
चित्र 13.5 अल्पकालीन साम्य स्थिति पर करारोपण का प्रभाव

पहले चित्र 13 5 के पैनल (b) को देखिए। उत्पादन कर के रोपित होने पर फर्म की औसत एवं सीमांत लागतों म वृद्धि होने के कारण लागत वक्र AC_1 व MC_1

से विवर्तित होकर AC_2 व MC_2 हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप उद्योग का पूर्ति वक्र (पैनल a) S_1S_1 से बाईं ओर विवर्तित होकर S_2S_2 की स्थिति में आ जाता है तथा साम्य कीमत OP_1 से बढ़कर OP_2 हो जाती है। जहां करारोपण से पूर्व फर्म OQ_1 मात्रा का उत्पादन करके अधिकतम लाभ प्राप्त करती थी। (A बिंदु पर $MC_1 = AR_1 = MR_2$), अब फर्म की साम्य स्थिति B बिंदु पर होगी, तथा अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु यह OQ_2 मात्रा का ही उत्पादन करेगी। परंतु जितना विवर्तन करारोपण के कारण लागत वक्रों में हुआ था, कीमत में उतनी वृद्धि नहीं हो पाई, जैसा कि चित्र 13 5 के पैनल (b) से स्पष्ट होता है।

13 4 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत दीर्घकालीन साम्य

(The Long Run Equilibrium Under Perfect Competition)

दीर्घकाल उस अवधि को माना जाता है जिसमें प्रत्येक प्रतियोगी फर्म सुविधापूर्वक अपने पैमाने का विस्तार कर सकती है। यही नहीं, दीर्घकाल में नई फर्में (अल्पकालीन लाभ से प्रेरित होकर) बाजार में प्रवेश कर सकती हैं, अथवा (अल्पकालीन हानि से परेशान होकर) कुछ फर्में बहिर्गमन भी कर सकती हैं। कुल मिला कर दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म के पैमाने में तथा उत्पादकों (फर्मों) की संख्या में इस प्रकार परिवर्तन होते हैं कि अल्पकालीन लाभ या हानि का लोप हो जाता है यानी प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होता है। यही नहीं, दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म अपने संयंत्र अथवा पैमाने के इष्टतम स्तर पर उत्पादन करती है।

प्रस्तुत खंड में हम दीर्घकालीन साम्य स्थिति को तीन चरणों में प्रस्तुत करेंगे। प्रथम, हम नई फर्मों के प्रवेश के कारण बाजार की साम्य कीमत तथा फर्म की साम्य स्थिति में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या करेंगे। द्वितीय चरण में हम फर्मों की संख्या यथावत् रखते हुए यह देखेंगे कि प्रत्येक फर्म द्वारा अपने पैमाने का विस्तार करने पर बाजार कीमत व फर्म की साम्य स्थिति पर क्या प्रभाव होंगे। अंत में हम फर्मों के प्रवेश व बहिर्गमन की स्वतंत्रता के साथ पैमाने में परिवर्तन की छूट देंगे तथा इनके परिणामस्वरूप फर्म की साम्य स्थिति पर होने वाले प्रभावों की व्याख्या करेंगे। हमने इस विश्लेषण में यह मान्यता ली है कि अल्पकाल में प्रत्येक फर्म को लाभ हो रहा है और इसी से प्रेरित होकर वह दीर्घकाल में अपना पैमाना बढ़ाती है, तथा/अथवा नई फर्में उद्योग में प्रवेश करती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि अल्पकालीन लाभ लुप्त नहीं हो जाते। परंतु यदि अल्पकाल में प्रत्येक फर्म को हानि होती हो तो इससे उल्टी प्रक्रिया होगी। (फर्मों का बहिर्गमन होगा तथा पैमाने का सकुचन होगा) एवं दीर्घकाल में यह हानि लुप्त हो जाएगी।

1 नई फर्मों का प्रवेश तथा दीर्घकालीन साम्य
(Entry of New Firms and the Long Run Equilibrium)

हम पिछले अध्याय में यह भी बतला चुके हैं कि नई फर्मों का प्रवेश होने पर उद्योग का पूर्ति वक्र दाईं ओर विवर्तित हो जाता है जिसका यह अर्थ होता है कि उन्हीं कीमतों पर अब बाजार में अधिक पूर्ति उपलब्ध है।

परन्तु नई फर्मों के प्रवेश के बावजूद साधनों की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता और इसलिए प्रत्येक फर्म का लागत फलन यथावत रहता है। जैसा कि चित्र 13 6 के पैनल (b) में बतलाया गया है अल्पकाल में वस्तु की साम्य कीमत OP_1 होने पर प्रत्येक फर्म OQ_1 मात्रा बेचती है तथा P_1RSP_2 के समान लाभ अर्जित करती है। दीर्घकाल में नई फर्मों के प्रवेश करने के साथ-साथ बाजार-पूर्ति वक्र दाईं ओर तब तक विवर्तित होता जाएगा जब तक कि कीमत घट कर OP_2 नहीं हो जाती (पैनल (a))। इस कीमत पर फर्म की साम्य मात्रा घट कर OQ_2 रह जाती है तथा इसके अल्पकालीन लाभ का लोप हो जाता है। जैसा कि चित्र 13 6 में
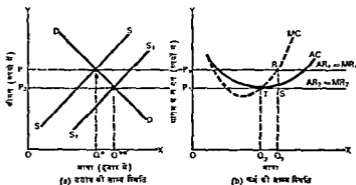
चित्र 13 6 नई फर्मों का प्रवेश तथा दीर्घकालीन साम्य

स्पष्ट है, नई फर्मों का प्रवेश होने पर बाजार का पूर्ति वक्र विवर्तित होता है (SS से S_1S_1) तथा वस्तु की नई साम्य कीमत OP_2 पर कुल मिलाकर पूर्वापेक्षा अधिक मात्रा बाजार में बेची जाती है ($OQ^{**} > OQ^{*}$)। परन्तु फर्मों की और अधिक संख्या हो जाने के कारण प्रत्येक फर्म अब नई कीमत (OP_2) पर पूर्वापेक्षा कम मात्रा ही बेच पाती है ($OQ_2 < OQ_1$)। यह भी चित्र 13 6 के पैनल (b) से स्पष्ट होता है कि नई कीमत पर फर्म का साम्य बिंदु T होता है जहां यह न्यूनतम सयंत्र लागत पर बेचती है। अस्तु T पर दीर्घकालीन साम्य स्थिति होगी जहां फर्म को केवल सामान्य लाभ की ही प्राप्ति होती है। संक्षेप में दीर्घकालीन साम्य में तीन बातें विद्यमान होनी जरूरी हैं—

(1) प्रत्येक फर्म दीर्घकालीन साम्य-स्थिति में न्यूनतम सयंत्र लागत पर कार्य करती है जहां $AC = MC$ हैं।

(ii) प्रत्येक फर्म इष्टतम उत्पादन करती है जहा AR = MR = MC की प्रथम क्रम की, व साथ ही $\frac{d^2(TR)}{dQ^2} < \frac{d^2(TC)}{dQ^2}$ की द्वितीय क्रम की शर्तें पूरी होती हैं।

(iii) प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ (AR = AC) मिलने के कारण इस साम्य स्थिति के आगे न तो नई फर्मों को उद्योग में प्रवेश करने में रुचि होगी और न ही किसी फर्म को उद्योग से बाहर जाने की आवश्यकता होगी।

अस्तु, फर्मों को उपलब्ध प्रवेश व बहिर्गमन की स्वतन्त्रता के अतर्गत दीर्घकालीन साम्य की तीनों शर्तें T बिंदु पर पूरी होती हैं जहा कीमत, सीमात आगम, सीमांत लागत, औसत लागत आदि सभी समान है (AR = MR = MC = AC)।

2 पैमाने में परिवर्तन एव दीर्घकालीन साम्य
(Change in Scale and Long Run Equilibrium)

अध्याय 11 के अनुभाग 11 2 में यह बतलाया गया था कि यदि नए सयत्रो की स्थापना द्वारा कोई फर्म अपने पैमाने का विस्तार करती है तो प्रत्येक सयत्र का इष्टतम उपयोग उस स्तर पर होता है जहा सबद्ध अल्पकालीन औसत लागत वक्र (SAC) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) को स्पर्श करता हो। हमने यह भी देखा था कि ठीक उसी उत्पादन स्तर पर सबद्ध सयत्र की सीमात लागत दीर्घकालीन सीमात लागत के समान होती है ($SMC_1 = LMC$)।

सामान्य तौर पर फर्म उसी दशा में अपने सयत्र का विस्तार करती है जब उसे ऐसा करने पर प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी होने तथा लाभ में वृद्धि करने की अपेक्षा हो। परतु फर्म स्वतन्त्र रूप से सयत्र या पैमाने का विस्तार करते समय इस तथ्य की उपेक्षा कर सकती है कि सभी फर्मों के ऐसा ही करने पर बाजार के पूर्ति वक्र का दाईं ओर आवर्तन (rotation) होगा और इससे बाजार की साम्य कीमत मे कमी हो जाएगी। हम 11वें अध्याय में यह भी पढ़ चुके हैं कि सयत्र का विस्तार करने पर प्रारम्भ में मितव्ययिताओं के कारण दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) में कमी होती है; एक सीमा के बाद अमितव्ययिताओं के कारण दीर्घकालीन औसत लागत में वृद्धि होने लगती है। यही कारण है कि दीर्घकालीन औसत व सीमात लागत वक्र U आकार के होते हैं।

चित्र 13 7 के पैनल (a) में माग व पूर्ति की संतुलन स्थिति के कारण प्रारभ में साम्य कीमत OP दिखलाई गई है, इस कीमत पर फर्म अपने द्वितीय सयत्र का प्रयोग करके OQ इकाई का उत्पादन करती है जहा $AR = MR = SMC_2$ की स्थिति है। यह फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति है।

अब मान लीजिए कि फर्म अपने सयत्र का विस्तार करती है। जैसा कि हम जानते हैं, उद्योग के पूर्ति वक्र का निरूपण सभी फर्मों के दीर्घकालीन सीमात लागत वक्रो का क्षैतिज योग लेकर किया जाता है। हम यह भी जानते हैं कि

अल्पकालीन सीमांत लागत की तुलना मे दीर्घकालीन सीमांत लागत का ढलान कम होता है। यही कारण है कि दीर्घकाल मे संयत्र का विस्तार होने पर जो पूर्ति वक्र प्राप्त होगा वह पूर्वापेक्षा कम ढलानयुक्त होगा। चित्र 13.7 के पैनल (a) मे मूल पूर्ति वक्र SS है, जबकि फर्मों के पैमाने मे विस्तार होने पर पूर्ति वक्र आवर्तित होकर S_1S_1 का रूप ले लेता है।
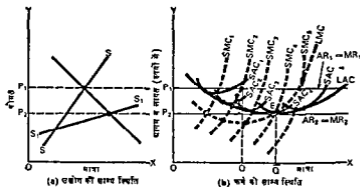
चित्र 13.7 पैमाने का विस्तार एवं दीर्घकालीन साम्य

पूर्ति वक्र का यह आवर्तन एकदम नही हो जाता। फर्म जैसे-जैसे संयत्र का विस्तार करती जाती है, पूर्ति वक्र मे आवर्तन होता है तथा उस स्तर पर यह आवर्तन रुक जाता है जहा कीमत दीर्घकालीन औसत लागत के समान (P=LAC) हो जाती है। इसका कारण यह है कि सामान्य लाभ की प्राप्ति के साथ ही फर्म की संयत्र का विस्तार करने मे कोई रुचि शेष नही रह जाती। चित्र 13.7 के पैनल (b) मे जब प्रत्येक फर्म चार संयंत्र लगा चुकती है तब पूर्ति वक्र S_1S_1 की स्थिति में आ जाता है। इस स्थिति मे साम्य कीमत OP_2 है *तथा फर्म का दीर्घकालीन साम्य E* बिंदु पर है जहा पर दीर्घकालीन साम्य की निम्न शर्तें पूरी होती हैं—

(i) फर्म इष्टतम स्तर पर उत्पादन कार्य करती है, क्योंकि E बिंदु पर $MR=SMC_4=LMC$ की स्थिति है;

(ii) फर्म इष्टतम पैमाने एवं इष्टतम संयत्र (Optimum scale and optimum plant) पर कार्य करती है : इस दशा मे दीर्घकालीन औसत लागत न्यूनतम है और साथ ही संयत्र की लागत भी न्यूनतम है, अत.—

$$LAC=LMC=SAC=SMC।$$

(iii) फर्म को सामान्य लाभ होता है, क्योंकि इस स्तर पर $AR=LAC=SAC$ की स्थिति भी है। इसी कारण E बिंदु पर पहुचने के बाद फर्म पैमाने का विस्तार नही करेगी।

इस प्रकार उपरोक्त तीनों शर्तों को मिला देने पर फर्म की दीर्घकालीन साम्य

स्थिति वहां मानी जाएगी जहां

$$AR=MR=LMC=SMC=LAC=SAC \quad (13\ 5)$$

यदि फर्म इस स्तर के आगे भी सयत्र का विस्तार करना चाहती है तो बाजार वक्र में पुन आवर्तन होने से एक ओर कीमत में कमी होगी जबकि औसत व सीमात लागतें इष्टतम स्तर से आगे बढती जाएगी। अन्य शब्दो मे, इष्टतम से आगे सयत्र का विस्तार करने पर फर्म को हानि होगी।

3. नई फर्मों का प्रवेश तथा पैमाने मे परिवर्तन

(Entry of New Firms Combined with Change in Scale)

यदि अल्पकाल मे फर्मों को काफी अधिक लाभ होने के कारण एक ओर तो और अधिक लाभ प्राप्ति की आशा से प्रत्येक विद्यमान फर्म अपने सयत्र का विस्तार करने लगे और इसके साथ ही नई फर्में भी उद्योग मे प्रवेश करें तो उद्योग तथा फर्म का दीर्घकालीन साम्य कहा स्थित होगा ? चित्र 13 7 तथा समीकरण (13 5) के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पैमाने मे परिवर्तन की स्वतत्रता होने पर फर्म का दीर्घकालीन साम्य उत्पादन के उस स्तर पर प्राप्त होगा जहा कीमत, सीमात आगम, दीर्घकालीन सीमात लागत, अल्पकालीन सीमात लागत, दीर्घकालीन औसत लागत तथा अल्पकालीन औसत लागत समान हो ($AR=MR=LMC=SMC=LAC=SAC$)।

चित्र 13 8 मे हमने एक ऐसी स्थिति प्रदर्शित की है जिसमे प्रत्येक फर्म अपने सयत्र के आकार मे परिवर्तन करने को तो स्वतत्र है ही, साथ ही जिसमे फर्मों को प्रवेश तथा बहिर्गमन की भी स्वतत्रता प्राप्त है।
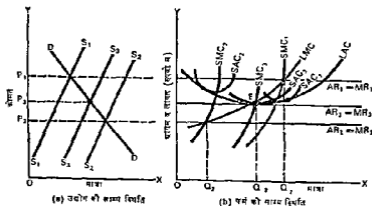
चित्र 13.8 उद्योग एव फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति

चित्र 13 8 के पैनल (a) मे माग व पूर्ति के मूल वक्र क्रमश DD एव S_1S_1 होने पर साम्य कीमत OP_1 थी जिस पर फर्म अपने प्रथम सयत्र के अनुरूप OQ_1 मात्रा

का उत्पादन करती थी। इस स्तर पर फर्म की दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन सीमांत लागतें सीमांत आगम के समान थीं ($LMC = SMC = MR_1$)। मान लीजिए, पर्याप्त शुद्ध लाभ से प्रेरित होकर बहुत सी फर्में उद्योग मे प्रवेश कर लेती हैं जिसके कारण पूर्ति वक्र विवर्तित होकर S_2S_2 की स्थिति मे आ जाता है तथा कीमत घटकर OP_2 रह जाती है। पैनल (b) मे फर्म इस कीमत पर OQ_2 मात्रा का उत्पादन करती है जिस पर भी साम्य की शर्तें ($LMC = SMC = MR_2$) होती है। परन्तु यह मात्र अल्पकालीन साम्य है क्योंकि इस कीमत स्तर पर औसत लागत अपेक्षाकृत बहुत ऊंची है। ऐसी दशा मे हानि होने के कारण कुछ फर्में बहिर्गमन करती हैं और साथ ही बची हुई फर्में सयत्र का आकार बढ़ाती हैं। उद्योग का पूर्ति वक्र बाईं ओर विवर्तित होगा तथा कीमत स्तर बढ़कर OP_3 हो जाएगा। जैसा कि पैनल (b) से स्पष्ट होता है, इस कीमत स्तर पर फर्म E बिंदु पर साम्य स्थिति को प्राप्त करती है जहा समीकरण (13 5) मे प्रस्तुत दीर्घकालीन साम्य की सभी शर्तें पूरी होती हैं। जैसा कि हम देखते हैं इस दशा मे फर्म OQ_3 मात्रा का उत्पादन करती है जो इष्टतम है क्योंकि यहा

$$AR_3 = MR_3 = LMC = SMC_3 = LAC = SAC_3$$

है, तथा न केवल उद्योग मे फर्मों की सख्या इष्टतम हो जाती है, अपितु प्रत्येक फर्म भी इष्टतम पैमाने पर उत्पादन करने लगती है। यही प्रतियोगी फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति है। इस दशा मे फर्म केवल सामान्य लाभ अर्जित करती है, तथा न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत पर उत्पादन करके साधनों का इष्टतम उपयोग करती है।
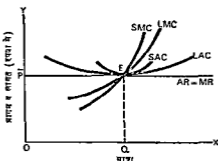
चित्र 13 9 एक प्रतियोगी फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति

पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति को चित्र 13 9 में सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इस चित्र से यह स्पष्ट होता है कि दीर्घकाल मे बाजार की माग व पूर्ति उस साम्य कीमत का निर्धारण करती हैं जिस पर फर्म अपने इष्टतम सयत्र पर न्यूनतम दीर्घकालीन लागत पर उत्पादन करती है, और साथ ही सामान्य लाभ ($OP = LAC = SAC$) प्राप्त होने के कारण नई फर्मों को उद्योग मे प्रवेश करने मे कोई रुचि नही होती, यानी फर्मों की सख्या भी इष्टतम हो जाती

है। चित्र मे E फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति को व्यक्त करता है जहा OP कीमत पर फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करती है।

13 5 इष्टतम उद्योग-क्षमता
(Optimum Industry-Capacity)

अब तक हमने इस अध्याय मे यह मान्यता ली थी कि फर्मों की सख्या, तथा/अथवा प्रत्येक फर्म के पैमाने मे परिवर्तन के फलस्वरूप बाजार की साम्य-कीमत मे इस प्रकार परिवर्तन होते है कि अतत प्रत्येक फर्म अपने इष्टतम स्तर पर उत्पादन करती हुई सामान्य लाभ प्राप्त करती है। इस समूचे विश्लेषण मे हमने माग फलन को यथावत् माना था। अब हम यह मान्यता ले रहे हैं कि दीर्घकाल मे तीन कारणो से माग फलन मे भी दाई और विवर्तन हो जाता है (i) जनसख्या मे वृद्धि के कारण, (ii) लोगो की आय मे वृद्धि के कारण, तथा (iii) रुचि मे परिवर्तन के कारण। इनमे से प्रथम दो कारण वस्तु की माग मे पर्याप्त वृद्धि कर देते हैं।

हमारे अब तक के विश्लेषण मे हमने यह भी मान्यता ली थी कि दीर्घकाल मे भी साधनो की कीमतें यथावत् रहती हैं और इस कारण फर्म के लागत फलन भी यथावत् रहते हैं। अन्य शब्दो मे, हमारी अब तक यह मान्यता थी कि उत्पादन मे वृद्धि एव साधनो की अधिक माग का इनकी कीमतो पर कोई प्रभाव नही होता। हम अब इस मान्यता को भी छोड कर यह मानेंगे कि दीर्घकाल मे साधनो की माग बढने के कारण इनकी कीमतो मे भी वृद्धि सभव है। यह भी सभव है कि साधनो की पूर्ति पर्याप्त रूप मे बढने के कारण इनकी कीमतें कम हो जाए अथवा यथावत् रहें। अस्तु दीर्घकाल मे उद्योग का पूर्ति वक्र किस प्रकार का होगा यह साधनो की कीमतो मे होने वाले परिवर्तनो पर ही निर्भर करेगा। तथापि, फर्म के विषय मे हम इस पूर्व मान्यता को ही दोहराना चाहेंगे कि दीर्घकाल मे प्रत्येक फर्म अपने इष्टतम स्तर पर ही उत्पादन करती है तथा इसे सामान्य लाभ ही प्राप्त होते है।

1. स्थिर लागत वाला उद्योग (Constant Cost Industry)

स्थिर लागत वाला उद्योग वह है जिसमे सभी फर्में—चाहे वे पुरानी फर्में हो अथवा प्रवेशार्थी फर्में—अपने पैमाने को बढाने हेतु स्थिर कीमतो पर ही अतिरिक्त साधन जुटा सकती हैं। इसके विपरीत वर्द्धमान या ह्रासमान लागतो वाला उद्योग वह होगा जिसमे पुरानी व नई फर्मों को अतिरिक्त साधनो के लिए बढी हुई या उत्तरोत्तर कम कीमतें चुकानी होती हैं।

चित्र 13 10 मे स्थिर लागत वाले उद्योग की दीर्घकालीन साम्य स्थिति को चित्रित किया गया है। बाजार की प्रारभिक साम्य स्थिति मे कीमत OP_1 तथा साम्य मात्रा OQ_1 है। अब मान लीजिए माग मे वृद्धि होने के कारण माग वक्र विवर्तित होकर DD से D_1D_1 हो जाता है (पैनल a) तो कीमत मे वृद्धि की अपेक्षा से नई फर्में

बाजार मे प्रवेश करेंगी । परतु उनके आगमन से साधनो की कीमतो पर कोई प्रभाव नही होता । इसीलिए एक फर्म के लागत फलन भी स्थिर रहते हैं ।
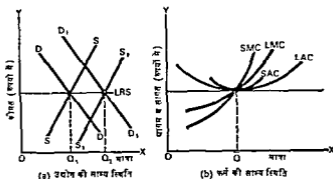
चित्र 13 10 दीर्घकालीन साम्य एव स्थिर लागत वाले उद्योग मे पूर्ति-कीमत

चूकि उद्योग मे विद्यमान एव प्रवेशार्थी सभी फर्मों को अतिरिक्त साधनो के लिए कोई अतिरिक्त कीमत नही देनी होती, दीर्घकाल मे भी वस्तु की उसी कीमत पर वस्तु उपलब्ध होती रहती है । इसका कारण यह है कि जितनी वृद्धि माग मे होती है, बिना कीमत मे वृद्धि किए उद्योग उतनी ही वृद्धि पूर्ति मे भी करने मे सक्षम है । यही कारण है कि पैनल (a) मे माग OQ_1 से बढ़कर OQ_2 हो जाने पर पूर्ति मे भी उतनी ही वृद्धि हो जाती है । ऐसी दशा मे उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र (LRS) क्षैतिज (horizontal) होता है । इसके बावजूद प्रत्येक फर्म अपनी पूर्व मात्रा $\overline{OQ}$ का ही उत्पादन करती रहती है क्योकि समूची अतिरिक्त पूर्ति नई फर्मों से ही प्राप्त होती है ।

2 वर्द्धमान लागत वाला उद्योग (Decreasing Cost Industry)

यदि वस्तु की माग मे वृद्धि के पश्चात् अधिक उत्पादन हेतु साधनो की अतिरिक्त माग के कारण साधनो की कीमतों मे वृद्धि हो जाए, तो उद्योग द्वारा माग के अनुरूप पूर्ति मे वृद्धि करना कठिन हो जाता है । स्पष्ट है, साधनो की कीमतो मे वृद्धि से फर्म के लागत फलन ऊपर की ओर विवर्तित हो जाएगे ।

चित्र 13 11 के पैनल (a) में बतलाया गया है कि जब माग मे वृद्धि के कारण माग वक्र DD से विवर्तित होकर D_1D_1 होता है तो पूर्ति मे इसकी अपेक्षा कम विवर्तन होता है । जैसा कि पैनल (b) मे बतलाया गया है, साधनो की कीमतें बढ जाने के कारण फर्म के लागत वक्र LAC_1 (SAC_1) से विवर्तित होकर LAC_2 (SAC_2) की स्थिति मे आ जाते हैं । परतु लागतों का यह विवर्तन ऊपर बाईं ओर होता है जिसका यह अभिप्राय है कि फर्म ऊची लागत पर भी उत्पादन की थोडी

मात्रा प्राप्त कर पाती है। परंतु नई फर्मों के आगमन से बाजार की कुल पूर्ति दीर्घकाल में बढ़ती है, भले ही पूर्ति में यह वृद्धि माँग में हुई वृद्धि के अनुरूप न हो (पैनल a)।
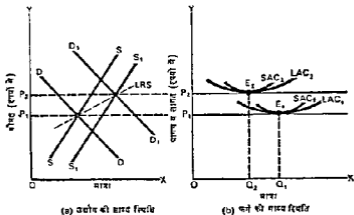
चित्र 13.11 वर्द्धमान लागत वाले उद्योग में उद्योग व फर्म की साम्य स्थिति

वर्द्धमान लागतों के कारण उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र (LRS) भी धनात्मक ढलानयुक्त होता है। इसका यह अभिप्राय है कि दीर्घकाल में वस्तु की अधिक मात्रा केवल ऊंची कीमतों पर ही उपलब्ध हो सकेगी। दीर्घकालीन साम्य कीमत में OP_1 से OP_2 तक की वृद्धि इसका प्रमाण है।

3. ह्रासमान लागत वाला उद्योग (Decreasing Cost Industry)

वर्द्धमान लागतों से विपरीत स्थिति वह है जिसमें साधनों की पूर्ति काफी तीव्र गति से बढ़ती है, तथा इसके फलस्वरूप उत्पादन की लागतें कम होती जाती हैं
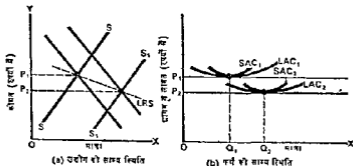
चित्र 13.12 ह्रासमान लागत वाले उद्योग के अंतर्गत दीर्घकालीन साम्य एवं पूर्ति कीमत

क्योंकि अतिरिक्त उत्पादन के लिए आवश्यक अतिरिक्त साधन पूर्वापेक्षा कम कीमतों पर उपलब्ध हो जाते हैं।

साधनो की कीमतें कम होने पर फर्म के लागत वक्र LAC_1 (SAC_1) से नीचे की ओर विवर्तित होकर LAC_2 (SAC_2) की स्थिति मे आ जाते हैं, जिसका यह अभिप्राय है कि पुरानी व प्रवेशार्थी फर्में अधिक उत्पादन करके भी प्रति इकाई उत्पादन लागत कम करने मे सफल हो जाती हैं (पैनल b)। यही कारण है कि माग की तुलना में पूर्ति मे अधिक विवर्तन होता है तथा दीर्घकालीन पूर्ति कीमत OP_1 से घटकर OP_2 हो जाती है। उद्योग का दीर्घकालीन वक्र (LRS) इसी कारण ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है जिसके अनुसार दीर्घकाल मे वस्तु की अधिक मात्रा उत्तरोत्तर नीची कीमत पर उपलब्ध हो सकती है।

13.6 प्रतिनिधि फर्म, साम्य फर्म तथा इष्टतम फर्म
(Representative Firm, Equilibrium Firm and Optimum Firm)

प्रोफेसर मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म (representative firm) की अवधारणा का प्रतिपादन किया जबकि साम्य फर्म (equilibrium firm) की अवधारणा प्रोफेसर पीगू की देन है। परतु आधुनिक अर्थशास्त्री, विशेष तौर पर श्रीमती जोन रॉबिन्सन, इष्टतम फर्म (Optimum firm) की चर्चा अधिक करते हैं। इनमे से प्रत्येक अवधारणा का पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति के लिए विशेष महत्त्व है। इनकी जानकारी के बिना पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार की स्थिति का विश्लेषण अपूर्ण रहता है। इसीलिए सक्षेप मे हम इस अनुभाग मे इन तीनो अवधारणाओ का वर्णन करेंगे।

प्रतिनिधि फर्म (The Representative Firm)

यदि किसी उद्योग से सबद्ध फर्में उत्पादन के वर्द्धमान प्रतिफल के अतर्गत कार्य कर रही हो, तो फर्म सीमात लागत की अपेक्षा औसत लागत को कीमत के समान लाते हुए उत्पादन करेगी क्योकि ऐसी दशा मे औसत लागत ह्रासमान होती है तथा सीमात लागत औसत लागत से भी कम होती है। यदि कीमत को सीमात लागत के बराबर रखते हुए उत्पादन किया जाए तो फर्म को लाभ की अपेक्षा हानि होगी (क्योकि तब $AR = MR = MC < AC$ रहती है)। ऐसी स्थिति म एक प्रश्न उठता है यदि उद्योग मे बहुत सी फर्में हो तो किस फर्म की औसत लागत को कीमत के समान रखकर उत्पादन किया जाए? मार्शल द्वारा प्रतिपादित प्रतिनिधि फर्म की अवधारणा से इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त होता है।

इस अवधारणा का प्रतिपादन करते समय प्रोफेसर मार्शल ने एक प्राकृतिक वन मे वृक्षो का उदाहरण प्रस्तुत किया। इस वन मे तीन प्रकार के वृक्ष हो सकते हैं: (a) ऐसे वृक्ष जिनकी उत्पत्ति कुछ ही समय पूर्व हुई है, (b) ऐसे वृक्ष जो कुछ पुराने हो चुके हैं तथा पर्याप्त रूप से लबे हो चुके हैं, तथा (c) ऐसे वृक्ष जो काफी पुराने

होकर गिरने प्रारंभ हो गए हैं। मार्शल ने कहा, "ठीक इसी प्रकार किसी उद्योग मे शिशु, वयस्क तथा पुरानी फर्में हो सकती हैं। शैशवावस्था वाली फर्मे वे हैं जिनके लाभ बढते जा रहे हैं जबकि वयस्क फर्में ऐसी सुसगठित फर्में हैं जिन्हे पर्याप्त आतरिक एवं बाह्य बचतें प्राप्त हो रही हैं।" पुरानी फर्मों मे मार्शल ने उन फर्मों को रखा है जिनकी दक्षता घटती रही है तथा जिनका पराभव होता जा रहा है। मार्शल ने कहा कि द्वितीय श्रेणी की फर्मों को प्रतिनिधि फर्म की श्रेणी मे रखा जाता है, तथा इन्ही की औसत लागत कीमत का निर्धारण करती है।

एक प्रतिनिधि फर्म मे निम्न विशेषताएं होनी चाहिए—

(i) ऐसी फर्में न तो काफी पुरानी हो और न ही हाल मे प्रारभ की गई औद्योगिक इकाई हो। अन्य शब्दो मे इसे व्यवसाय करते हुए पर्याप्त समय हो जाना चाहिए।

(ii) यह व्यवसाय मे पर्याप्त रूप से सफल रही हो।

(iii) इसका सचालन सामान्य योग्यता वाले व्यक्ति (व्यक्तियो) के द्वारा किया जाता हो।

(iv) इसके समकक्ष (आयु, आकार एव स्थिति मे) फर्मों को उपलब्ध सभी आतरिक एव बाह्य मितव्ययिताएं इस फर्म को भी उपलब्ध होनी चाहिए।

(v) इसे केवल सामान्य लाभ प्राप्त होना चाहिए।

साम्य फर्म (The Equilibrium Firm)

पीगू की "साम्य फर्म" मार्शल की प्रतिनिधि फर्म का सशोधित रूप ही है। पीगू बतलाते हैं कि अनेक फर्मों वाला उद्योग साम्य स्थिति मे होने पर भी यह संभव है कि कुछ फर्में इस स्थिति मे न हो। अन्य शब्दो मे, समूचा उद्योग स्थैतिक दशा मे होने पर भी कुछ फर्में सकुचन की, तथा कुछ फर्में विस्तार की अनुभूति कर सकती हैं। ऐसी दशा मे यदि एक फर्म (या अधिक फर्में) साम्य स्थिति मे हो एव उत्पादन का स्तर यथावत् रख सकती हो तो इसे साम्य फर्म के नाम से जाना जाता है।

साम्य फर्म की विशेषताएं : प्रोफेसर पीगू द्वारा प्रस्तुत साम्य फर्म मे निम्न विशेषताएं विद्यमान होती हैं—

(i) ऐसी फर्म को न तो लाभ होता है और न ही हानि; *अर्थात् एक साम्य* फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।

(ii) उद्योग या बाजार द्वारा निर्धारित साम्य कीमत तथा साम्य फर्म की उत्पादन लागत समान होती है।

(iii) फर्म उस स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है जिसमे समूचा उद्योग साम्य स्थिति मे होता है, चाहे कुछ फर्में साम्य स्थिति में न हों।

इष्टतम फर्म (The Optimum Firm)

श्रीमती जोन रॉबिन्सन के मतानुसार एक इष्टतम फर्म वह है जो वस्तु का

न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत पर उत्पादन करती है। उनके मत मे दी हुई तकनीक एव सगठनात्मक योग्यता के अनुरूप यदि फर्म इस स्तर पर उत्पादन कर रही हो जहा दीर्घकालीन लागत न्यूनतम है, तो ऐसी फर्म को इष्टतम फर्म कहा जाएगा। उदाहरण के लिए, एक दीर्घकालीन लागत वक्र (LAC) लीजिए यदि कोई फर्म सयत्र का विस्तार उस सीमा तक कर लेती है जहा LAC न्यूनतम हो तो उस फर्म को इष्टतम फर्म कहेंगे। यदि कुछ फर्में इससे छोटे या बडे आकार के सयत्र का प्रयोग कर रही हैं तो उनकी दीर्घकालीन औसत लागत इष्टतम फर्म की औसत लागत से अधिक होगी। इष्टतम फर्म की विशेषताए इस प्रकार हैं—

(i) यह फर्म इष्टतम आकार के सयत्र पर कार्य करती है। अन्य शब्दो मे, यह न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत पर उत्पादन करती है तथा इसके आगे सयत्र का विस्तार करने पर अमितव्ययिताओ के कारण औसत लागत मे वृद्धि होने लगती है।

(ii) समूचे उद्योग मे यह फर्म सबसे अधिक दक्ष फर्म होती है।

(iii) इस फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है तथा समीकरण (13.5) के अनुरूप यह इष्टतम स्थिति मे कार्य करती है। इसकी साम्य स्थिति वहा होती है जहा LAC=LMC=MR=AR=SAC=SMC हो।

(iv) यदि उत्पादन की प्रविधि मे परिवर्तित होता है तो फर्म का इष्टतम आकार भी बदल जाता है। अन्य शब्दो मे, प्रविधि के यथावत् रहते हुए फर्म का इष्टतम आकार भी यथावत् रहता है।

13 7 पूर्ण प्रतियोगिता की वाछनीयता
(Desirability of Perfect Competition)

सस्थापक एव नव-सस्थापक अर्थशास्त्रियो ने पूर्ण प्रतियोगिता को एक आदर्श स्थिति माना था। एडम स्मिथ से लेकर मार्शल तक प्रत्येक अर्थशास्त्री का यह दृढ विश्वास था कि समाज का आर्थिक कल्याण केवल उसी दशा मे अधिकतम हो सकता है जब वस्तु तथा साधन के बाजारो मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मौजूद हो। यहा तक कि परेटो का कल्याण-अर्थशास्त्र (Welfare Economics) भी इसी मान्यता पर आधारित है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत ही अधिकतम आर्थिक कल्याण की प्राप्ति होती है तथा इससे होने वाला प्रत्येक विचलन आर्थिक कल्याण में कमी लाता है। (अध्याय 24 देखें)।

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होने पर प्रत्येक उपभोक्ता सीमात उपयोगिता व वस्तु की कीमत को समान रखकर ($MU_{x1} = P_{x1}$) अधिकतम उपयोगिता प्राप्त कर सकता है जबकि प्रत्येक उत्पादक साधन की कीमत एव सीमात उत्पादन को समान करके ($P_{z1} = MP_{z1}$) उत्पादन को न्यूनतम लागत पर प्राप्त करने में सफल हो जाता है। इसी प्रकार साधनो के स्वामियो मे से प्रत्येक को साधन के सीमात उत्पादन मूल्य (Value of Marginal Product) के समान पारिश्रमिक केवल पूर्ण प्रतियोगिता

के अतर्गत मिल पाता है, और इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता समाज के सभी वर्गों के लिए शोषण रहित स्थिति प्रदान करती है।

परतु पूर्ण प्रतियोगिता सदैव वाछनीय हो, यह जरूरी नही है, और न ही केवल पूर्ण प्रतियोगिता के द्वारा ही समाज का कल्याण अधिकतम किया जा सकता है। प्रोफेसर बोल्डिंग की मान्यता है कि पूर्ण प्रतियोगिता को बनाए रखने की हम भारी कीमत चुकानी पड़ती है। इसकी तुलना जानूस (Janus) की दो मुह वाली मूर्ति से की जा सकती है। बोल्डिंग बताते हैं कि एक ओर तो पूर्ण प्रतियोगिता दक्षता का स्रोत है, जबकि दूसरी ओर इसके कारण अनेक प्रकार के अपव्यय होते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता से सबका सामान्य रूप से कल्याण केवल उसी स्थिति मे हो सकता है जबकि साधन एक उद्योग से दूसरे उद्योग के बीच पूर्ण गतिशील हो। परतु व्यवहार मे कुछ साधन कुछ विशिष्ट उद्योगो मे ही प्रयुक्त किए जा सकते हैं, इसीलिए पूर्ण प्रतियोगिता मे भी लबे समय तक गभीर कुप्रबध की परिस्थितिया विद्यमान रह सकती हैं।[4]

यदि किसी उद्योग मे अस्थायी लाभ या हानि के कारण भी व्यापक परिवर्तन (फर्मों की सख्या तथा/अथवा पैमाने मे) हो जाते हो तो उद्योग व्यापार चक्रो मे फस जाता है। बहुधा ये व्यापार चक्र उद्यमियो की जल्दबाजी तथा अविवेकपूर्ण व्यापार का ही परिणाम होते हैं।

चूकि प्रत्येक प्रतियोगी फर्म स्वतत्र रूप से निर्णय लेती है, अतएव कभी तो बाजार में वस्तु की आवश्यकता से काफी अधिक पूर्ति हो जाती है, और कभी-कभी गभीर अभाव (scarcity) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। केवल आदर्श स्थिति मे ही पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत उपभोक्ता एव उत्पादक क्रमश अपनी उपयोगिता एव लाभ को अधिकतम कर सकते हैं। परतु फर्मों एव उपभोक्ताओ को पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत जो प्रवेश अथवा बहिर्गमन की स्वतत्रता प्राप्त रहती है, उसका समाज मे विद्यमान सभी आर्थिक इकाइयो पर सदैव अनुकूल प्रभाव नही होता।

4 Kenneth E Boulding "Economic Analysis , Vol I—'Micro-economics', (Fourth Edition, 1966) pp 512 515

14

एकाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण
(THEORY OF PRICE UNDER MONOPOLY)

प्रस्तावना

पूर्ण प्रतियोगिता के मॉडल मे हमने बाजार की उस स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया था जिसमे एक विक्रेता वस्तु की पूर्ति अथवा बाजार-कीमत पर कोई भी प्रभाव नही डाल सकता। (हमने एक फर्म की बाजार कीमत को प्रभावित करने की क्षमता $\propto$ को इस प्रकार पारिभाषित किया था : $\propto \frac{s_i}{\sum_{i=1}^{n} s_i}$, तथा यह मान्यता ली थी कि जैसे-जैसे फर्मों की सख्या n बढती जाती है, वैसे-वैसे $\propto$ का मूल्य घटता जाता है।) पिछले अध्याय मे हमने यह पढा था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत बाजार की साम्य कीमत का निर्धारण बाजार की माग व पूर्ति की शक्तियो द्वारा होता है, तथा प्रत्येक फर्म इसी कीमत पर अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि प्रदान करने वाली उत्पादन-मात्रा को बेचने हेतु बाध्य रहती है।

बाजार के विभिन्न स्वरूपो मे पूर्ण प्रतियोगिता से सर्वथा विपरीत स्थिति एकाधिकार की है जिसमे एक फर्म का किसी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियत्रण रहता है, तथा वही वस्तु की मनमानी कीमत निर्धारित कर सकती है। सक्षेप मे, संपूर्ण बाजार पर जिस एक विक्रेता का अधिकार हो उसे एकाधिकारी के नाम से जाना जाता है। जैसा कि हमने अध्याय 13 के अतिम खड मे बतलाया था कि सस्थापक एव नव सस्थापक अर्थशास्त्रियो के मतानुसार पूर्ण प्रतियोगिता एक आदर्श स्थिति है, तथा इसमे होने वाला प्रत्येक विचलन आर्थिक कल्याण मे कमी ला देता है। इनसे पूर्व अरस्तू ने एकाधिकारो का उल्लेख अवश्य किया था, तथापि उन्होंने एकाधिकारी की धन बटोरने की प्रवृत्ति को किसी भी नैतिक दृष्टि से निन्दनीय नही माना।[1] परतु एडम स्मिथ ने एकाधिकारियो की कडी आलोचना की तथा इनकी प्रवृत्ति को

[1] H W Spiegel, 'The Growth of Economic Thought,' Englewood Cliffs, N. J '1971), pp 33 34

दुष्टतापूर्ण वणिक वृत्ति का नाम दिया।[2] कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि केवल एडम स्मिथ ने ही नही, अपितु उसके अनुगामियो ने भी इग्लैड, फ्रास व अमरीका मे उद्योग मे एकाधिकार को सर्वथा असगत एव अवाछनीय बतलाते हुए एकाधिकारियो की कडी भर्त्सना की।

तथापि एकाधिकार पूर्ण प्रतियोगिता से सर्वथा प्रतिकूल है। बाजार कीमत एव साम्य उत्पादन मात्रा के निर्धारण से सबद्ध सिद्धात भी दोनो परिस्थितियो मे सर्वथा भिन्न हैं। जहा प्रतियोगिता वाले बाजार मे एक फर्म की स्थिति नगण्य होती है, वही एकाधिकार के अतर्गत फर्म का बाजार पर पूर्ण नियत्रण रहता है।

प्रस्तुत अध्याय मे हम पहले एकाधिकार की प्रकृति एव इसकी विशेषताओ का अध्ययन करेंगे, तथा पूर्ण प्रतियोगिता वाली स्थिति से इसकी तुलना करेंगे। इसके पश्चात् हम यह देखेंगे कि एकाधिकार के अतर्गत फर्म साम्य कीमत एव मात्रा का निर्धारण किस प्रकार करती है। हम इस अध्याय मे भेदमूलक एकाधिकार के अतिरिक्त आर्थिक कल्याण पर एकाधिकार के प्रभावो एव सरकार द्वारा एकाधिकार पर नियत्रण का भी विवरण प्रस्तुत करेंगे।

14.1 एकाधिकार का उदय एवं इसकी विशेषताएं
(Emergence and Characteristics of Monopoly)

सामान्य तौर पर एकाधिकार की शक्ति पूर्णतया उत्पादन या पूर्ति पर नियत्रण से सबद्ध होती है। एकाधिकारी किसी वस्तु की पूर्ति को सीमित करके इसकी कीमत का स्तर ऊचा बनाए रख सकता है। प्रश्न है, वह अपने प्रतिद्वद्वियो को बाहर रखते हुए क्योकर अकेला ही वस्तु का उत्पादन करने मे सफल हो सकता है?

एकाधिकार के उदय का सर्वप्रथम कारण कच्चे माल के स्रोत पर एक ही फर्म के अधिकार मे निहित हो सकता है। उदाहरण के लिए ताबे के तार बनाने वाली एक कपनी हो और देश की ताबे की खानो पर भी उसी का नियत्रण हो तो यह एकाधिकार के उदय का प्रथम महत्वपूर्ण कारण हो सकता है।

पेटेंट कानूनो मे एकाधिकार के उदय का दूसरा कारण निहित हो सकता है। यदि कोई फर्म अपनी वस्तु के पेटेंट को पजीकृत करा लेती है तो कोई भी दूसरी फर्म उससे मिलती-जुलती वस्तु का उत्पादन नही कर सकती। एकाधिकार के उदय का तीसरा कारण सरकारी नीति भी हो सकती है। इसे बाजार का विशेषाधिकार (market franchise) कहा जाता है। इस विशेषाधिकार के अतर्गत सरकार किसी एक व्यवसायी फर्म के साथ अनुबध करती है तथा तदनुसार कोई भी दूसरी फर्म उस वस्तु का निर्दिष्ट क्षेत्र मे विपणन अथवा उत्पादन नही कर सकती। केरोसीन, रसोई गैस, सीमेंट आदि वस्तुओ के विपणन हेतु स्वय सरकार ऐसी एकाधिकारिक फर्मों का सृजन करती है तथा इन्हें पूर्ण सरक्षण प्रदान किया जाता है।

2 H W Spiegel 'The Growth of Economic Thought', Englewood Cliffs, N J (1971), pp 234-35

एकाधिकार की पृष्ठभूमि मे चौथा कारण यह भी निहित हो सकता है कि सरकार किन्ही वस्तुओ के आयात पर प्रतिबंध लगा दे। ऐसी दशा मे जो फर्म देश मे इस वस्तु विशेष का उत्पादन करती है उसे ही एकाधिकार प्राप्त हो जाता है। सरक्षणात्मक प्रशुल्क (protective tariffs) के कारण बहुधा इस प्रकार के एकाधिकार का जन्म होता है।

एकाधिकार का अतिम कारण किसी एक फर्म की उच्चतम दक्षता भी हो सकती है। यदि किसी एक फर्म को लबी अवधि तक पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होते रहें तो अततः यह अपने सभी प्रतिद्वद्वियो को बाजार से खदेड कर बाहर करने मे सफल हो जाती है। यह भी सभव है कि सरकारी अनुदान या अन्य किसी विधि द्वारा कोई सस्था या फर्म लागत के समान या इससे भी कम कीमत पर वस्तु बेचती हो। सार्वजनिक उपयोगिता की आपूर्ति करने वाली सस्थाए इसी आधार पर अपनी एकाधिकारिक स्थिति को बनाए रखती हैं।

एकाधिकार की विशेषताए (Characteristics of Monopoly)

एकाधिकार चाहे कच्चे माल के स्रोतो पर नियत्रण की उत्पत्ति हो, अथवा पेटेंट कानूनो की अथवा यह सरकार द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकार के कारण उत्पन्न हुई हो, इसमे निम्न विशेषताए अवश्य विद्यमान होती हैं। प्रथम, निर्दिष्ट वस्तु का समूचे बाजार में वही एक विक्रेता होता है। फिर भी हम यह मान्यता अवश्य लेते हैं कि बाजार मे क्रेताओ की सख्या अब भी काफी अधिक है, और इस कारण कोई भी एक क्रेता बाजार-कीमत को प्रभावित नही कर पाता। वस्तु, वस्तु की बिक्री एक ही फर्म द्वारा किए जाने पर इसकी कीमत का निर्धारण भी वही फर्म करती है। फर्म अपनी बिक्री को बढाने हेतु कीमत मे कमी कर सकती है, अथवा इच्छानुसार कीमत मे वृद्धि कर सकती है, भले ही उपभोक्ता बढी हुई कीमत पर माग मे काफी कटौती कर दें।

द्वितीय एकाधिकारी फर्म द्वारा निर्मित वस्तु का सामान्य तौर पर प्रतिस्थापन सभव नही होता। यदि वस्तु की स्थानापन्न वस्तुए विद्यमान हो तो एकाधिकार बनाए रखना सभव नही होता, क्योंकि ऐसी दशा में फर्म द्वारा कीमत मे थोडी सी वृद्धि किए जाने पर भी इसकी बिक्री मे काफी कमी हो जाती है। उदाहरण के लिए, विद्युत-शक्ति, जल आपूर्ति सीमेंट, टेलीफोन, आदि ऐसी वस्तुए या सेवाए हैं जिनकी बिक्री एकाधिकारी सस्थाओ द्वारा की जाती है परतु जिनकी स्थानापन्न वस्तुए या सेवाए उपलब्ध नही हैं।

अत मे, वैधानिक या अन्य किन्ही कारणो से बाजार मे किसी अन्य फर्म का प्रवेश नही हो पाता, और इस प्रकार एकाधिकारी दीर्घकाल मे भी अपना वर्चस्व बनाए रख सकता है। हम अध्याय 13 मे यह पढ चुके हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता में नई फर्मों को प्रवेश की स्वतत्रता (freedom of entry) होती है और इस कारण दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है। चूकि एकाधिकार के अतर्गत नई फर्मों के प्रवेश का कोई भय नही होता, एकाधिकारी

दीर्घकाल तक भी अपने लाभ को बनाए रख सकता है। इसके बावजूद हम पूर्ण प्रतियोगिता से सबद्ध यह मान्यता जारी रखते हैं कि उपभोक्ताओ की सख्या काफी अधिक है, तथा एकाधिकारी केवल वस्तु की पूर्ति को ही प्रभावित कर सकता है। इसके साथ ही हम यह मान्यता भी जारी रखते हैं कि एकाधिकारी भी प्रतियोगी फर्म की भांति अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि प्राप्त करने का प्रयास करता है। तीसरी बात यह भी है कि प्रतियोगी फर्म की भांति एकाधिकारी भी उत्पादन के साधनों को पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत खरीदता है। अन्य शब्दो मे, फर्म का एकाधिकार वस्तु के बाजार तक सीमित रहता है, जबकि साधनो के बाजार मे यह अन्य अनेक फर्मों की भांति एक फर्म के रूप मे प्रवेश करती है तथा प्रत्येक साधन की माग व पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमत पर ही साधन खरीदती है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तु के उत्पादक के रूप मे एकाधिकारी फर्म एव प्रतियोगी फर्म के मध्य कोई अतर नही होता। परतु वस्तु की बिक्री करते समय पूर्ति पर सपूर्ण नियत्रण होने के कारण उसे कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो प्रतियोगी फर्म को प्राप्त नही होते। एक एकाधिकारी फर्म इच्छानुसार कीमत मे परिवर्तन कर सकती है जो पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत सभव नही है।

2 एकाधिकारिक शक्ति[3] (The Monopoly Power)

पिछले अध्याय मे ∝ अथवा एकाधिकार शक्ति को एक फर्म द्वारा की गई पूर्ति तथा बाजार की कुल पूर्ति के अनुपात के रूप मे परिभाषित किया गया था $\left(\text{यानी } \propto = \frac{s_1}{\sum\limits_{i=1}^{n} s_i}\right)$। चूकि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत बाजार मे विक्रेताओ की सख्या बहुत अधिक होती है, उस स्थिति मे एक फर्म की बाजार-कीमत को प्रभावित करने की शक्ति नगण्य रहती है। परतु एकाधिकार के अतर्गत बाजार मे एक ही फर्म रहती है, और इसलिए इसी फर्म का वस्तु की पूर्ति एव बाजार-कीमत पर पूर्ण नियत्रण रहता है। लर्नर ने ऐसी स्थिति का विवरण प्रस्तुत किया है जिसमे एक फर्म के पास पर्याप्त एकाधिकारिक शक्ति निहित रहती है क्योकि अन्य विक्रेता ऊची परिवहन लागतो के कारण इस बाजार मे प्रवेश नही कर पाते। ऐसी दशा मे "एकाधिकारी फर्म" तथा अन्य विक्रेताओ द्वारा उत्पादित वस्तुओ मे समरूपता होने पर भी इस फर्म को "स्थिति-जन्य" एकाधिकार प्राप्त रहता है।

3 विस्तृत विवरण हेतु देखें - Abba P. Lerner, "The Concept of Monopoly and the Measurement of Monopoly Power", Review of Economic Studies (June 1943). Reprinted in W Breit and H. M. Hochman (ed) Readings in Microeconomics, pp, 239-255.

एकाधिकारिक शक्ति को मापने की द्वितीय विधि एकाधिकारी द्वारा प्राप्त आगम पर आधारित है। यदि कुल आगम में एक फर्म को प्राप्त आगम का अनुपात बहुत अधिक हो तो फर्म की एकाधिकारिक शक्ति भी अधिक होगी। लर्नर ने आगे चलकर वस्तु की कीमत एवं सीमान्त लागत की तुलना करते हुए एकाधिकारिक शक्ति के माप का निम्न सूत्र प्रस्तुत किया—

$$\propto^* = \frac{P - MC}{P} \quad \text{.. (14.1)}$$

इस समीकरण में $\propto^*$ एकाधिकारिक शक्ति का प्रतीक है, जबकि P एवं MC क्रमशः कीमत एवं सीमांत लागत के माप हैं। $\propto^*$ या एकाधिकारिक शक्ति को सामान्य तौर पर लर्नर इंडैक्स (Lerner Index) के नाम से जाना जाता है। प्रोफेसर लर्नर ने यह मान्यता ली है कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में P=MR रहता है, तथा अधिकतम लाभ की स्थिति में MR=MC होने आवश्यक हैं, इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एकाधिकारिक शक्ति शून्य रहती है। ($\propto^*=0$)। एकाधिकार के अंतर्गत भी फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु सीमांत आगम एवं सीमांत लागत को समान करती है परन्तु अब सीमांत आगम कीमत से कम होता है (P>MR)। इसीलिए लर्नर के मतानुसार निर्दिष्ट उत्पादन स्तर पर कीमत तथा सीमांत आगम का अंतर भी एकाधिकारिक शक्ति का माप हो सकता है। पाठकों को स्मरण होगा कि (अध्याय 6) के समीकरण (6 38) में माग की लोच को इस रूप में परिभाषित किया गया था : $\eta_{xx} = \frac{P}{P - MR}$। ऊपर समीकरण (14 1) में प्रस्तुत एकाधिकारिक शक्ति का सूत्र माग की लोच के सूत्र से ठीक उल्टा है। इस प्रकार $\propto^* = \frac{1}{\eta_{xx}}$ की स्थिति को भी एकाधिकारिक शक्ति का माप माना जा सकता है। पूर्ण प्रतियोगिता मे एकाधिकारिक शक्ति $\propto^*=0$ होती है, अत. उस दशा में फर्म की वस्तु की माग-लोच अनंत हो सकती है। इसके विपरीत एकाधिकार के अंतर्गत एकाधिकारिक शक्ति काफी अधिक होती है क्योंकि कीमत तथा सीमांत आगम का अंतर बहुत अधिक होता है।

एकाधिकारिक शक्ति का तीसरा माप अल्पकाल में फर्म के लाभों के परिमाण एवं दीर्घकाल तक इन लाभों को बनाए रखने की क्षमता में निहित है। जैसाकि हम अध्याय 13 में पढ चुके हैं, पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म को पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सकते हैं, परंतु कोई भी प्रतियोगी फर्म दीर्घकाल में इन लाभों को बनाए रखने में समर्थ नहीं होती—दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त हो सकता है।

14.2 एकाधिकार के अंतर्गत आगम एवं लागतें (Costs and Revenue Under Monopoly)

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वस्तु के बाजार में एकाधिकार के बावजूद फर्म उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की खरीद पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजारों

(competitive factor markets) में ही खरीदती है। इसीलिए एकाधिकारी फर्म का लागत वक्र भी सामान्य आकृति (normal well behaved) वाला होता है तथा इसके औसत एवं सीमांत लागत वक्र भी U आकृति के होते हैं।

परंतु एकाधिकारी फर्म की वस्तु का मांग, अथवा औसत आगम (AR) वक्र प्रतियोगी फर्म के मांग वक्र से सर्वथा भिन्न होता है। अध्याय 13 में बतलाया गया था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत का निर्धारण बाजार की मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है एवं प्रत्येक फर्म इसी कीमत पर बेचते हुए अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है। इसके विपरीत एकाधिकारी को स्वयं अपनी वस्तु की कीमत का निर्धारण करते हुए अधिकतम लाभ प्रदान करने वाले उत्पादन स्तर का निर्धारण करना होता है। चूंकि एकाधिकारी फर्म अधिक से अधिक लाभ अर्जित करना चाहती है, वह कीमत में कमी करके अपनी बिक्री को बढ़ाने का प्रयास करेगी। यही कारण है कि एकाधिकारी फर्म का मांग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है। प्रोफेसर बेन्हम का कथन है कि एकाधिकारी फर्म वही है जिसकी वस्तु का मांग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त हो, जबकि एक प्रतियोगी फर्म का मांग वक्र (AR) क्षैतिज होता है। इसका अर्थ यह है कि एकाधिकारी को अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ाने हेतु कीमत में कमी करनी ही पड़ती है।

ऊपर हम उन कारणों पर प्रकाश डाल चुके हैं जिनके कारण प्रतियोगी फर्म तथा एकाधिकारी फर्म के लागत वक्रों में कोई अंतर नहीं होता। फिर भी ऋणात्मक ढलानयुक्त मांग वक्र के संदर्भ में सीमांत आगम वक्र का निरूपण किस प्रकार किया जाएगा इसका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है।

एकाधिकार के अंतर्गत कीमत एवं सीमांत आगम
(Price and Marginal Revenue under Monopoly)

जैसा कि हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं, पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म के लिए कीमत बाह्य रूप से निर्धारित होती है अतः कीमत तथा सीमांत आगम में कोई अंतर नहीं होता (AR=MR)। ऐसी दशा में फर्म का मांग वक्र क्षैतिज होता है। इसके विपरीत, जैसाकि ऊपर बतलाया गया है, एकाधिकारी का मांग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है, और इसलिए कीमत एवं सीमांत आगम में पर्याप्त अंतर होता है।

तालिका 14.1 में कीमत (AR) तथा कुल आगम (TR) के संदर्भ में सीमांत आगम का निरूपण किया गया है। अध्याय 6 में हम यह पढ़ चुके हैं कि जब मांग वक्र या कीमत रेखा रैखिक (linear) परंतु ऋणात्मक ढलानयुक्त होती है तो उसकी अपेक्षा सीमांत आगम का ढलान दुगुना होता है। अन्य शब्दों में जितनी कमी कीमत में होती है उससे दुगुनी कमी सीमांत आगम में होती है। तालिका 14.1 से इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

तालिका 14 1
एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत एवं सीमांत आगम
(Price and Marginal Revenue Under Monopoly)

कीमत (AR)	मात्रा	कुल आगम (TR)	सीमांत आगम (MR)
10	0	0	—
9	1	9	9
8	2	16	7
7	3	21	5
6	4	24	3
5	5	25	1
4	6	24	—1
3	7	21	—3
2	8	16	—5

इसी तालिका को चित्र 14 1 में प्रस्तुत किया गया है। इस चित्र से यह स्पष्ट है कि चूंकि कीमत में कमी करके ही एकाधिकारी अधिक मात्रा बेच सकता है,
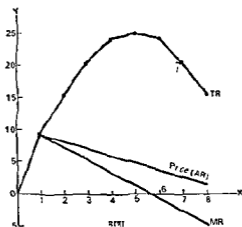
चित्र 14 1 कुल, औसत व सीमांत आगम वक्र

कुल आगम वक्र में धीमी गति से वृद्धि होती है तथा पांच इकाई बेचने पर कुल आगम अधिकतम हो जाता है। तत्पश्चात् कुल आगम में कमी होने लगती है जिसके कारण पांचवी इकाई की बिक्री के पश्चात् सीमांत आगम ऋणात्मक हो जाता है। जब तक कुल आगम में धीमी गति से वृद्धि होती है, सीमांत आगम कम होता रहता है।

एक रेखिक माग वक्र के आधार पर सीमांत आगम वक्र का निरूपण इस मान्यता के आधार पर किया जा सकता है कि सीमांत आगम वक्र का ढलान कीमत रेखा के ढलान से दुगुना होता है। यदि माग वक्र या कीमत रेखा रेखिक न हो तो क्या होगा ? चित्र 14.2 मे एक अ-रैखिक (non-linear) माग वक्र से संबद्ध सीमात आगम वक्र निरूपित किया गया है।

चित्र 14.2 मे माग वक्र DD है जो अ-रैखिक (non-linear) है। इसका सीमात आगम वक्र निरूपित करने हेतु हमने DD पर तीन बिंदु A_1, B_1 व C_1 चुने हैं। अब इन बिंदुओं पर स्पर्श रेखाए A, B व C बिंदुओं से खींचते हुए, A_1, B_1 व C_1 से शीर्ष अक्ष पर क्रमश: A_1P_1, B_1P_2 व C_1P_3 तथा क्षैतिज अक्ष पर A_1Q_1, B_1Q_2 एव C_1Q_3 लब डालिए। चूंकि A_1, B_1 तथा C_1 पर स्पर्श रेखाओं के ढलान तथा मांग वक्र के ढलान समान हैं, अत इन मात्राओं पर सीमात आगम भी समान होंगी। उदाहरण के लिए A_1 पर सीमात आगम ज्ञात करने हेतु AP_1 के समान

चित्र 14.2 अ-रैखिक मांग वक्र का सीमांत आगम निरूपित करना

शीर्ष दूरी A_1A_2 ली जा सकती है ($AP_1 = A_1A_2$)। इसी प्रकार B_1Q_2 पर B_1B_2 को सीमात आगम के रूप मे लिया जा सकता है जो वस्तुत: BP_2 के समान है ($BP_2 = B_1B_2$)। इसी प्रकार OQ_3 मात्रा बेचने पर सीमात आगम जितना प्राप्त होगा इसके लिए C_1Q_3 पर C_1C_2 को पृथक् किया जा सकता है जो वस्तुत: CP_3 के समान है ($CP_3 = C_1C_2$)। हम इसी प्रकार माग वक्र DD पर पर अन्य स्पर्श बिंदु लेकर उनसे संबद्ध मात्राओं पर सीमांत आगम ज्ञात कर सकते हैं। चित्र 14.2 मे A_2, B_2 व C_2 बिंदुओं को मिलाने पर हमें माग वक्र DD से संबद्ध सीमात आगम वक्र प्राप्त हो जाता है।

14.3 एकाधिकार के अंतर्गत साम्य
(Equilibrium Under Monopoly)

अध्याय 12 मे यह स्पष्ट कर चुके हैं, कि प्रत्येक फर्म उत्पादन के उस स्तर पर अधिकतम लाभ प्राप्त करती है जहा (i) सीमांत लागत वस्तु के सीमांत आगम के समान हो, तथा (ii) सीमांत आगम वक्र का ढलान सीमांत लागत वक्र के

ढलान में कम हो।[4] एक एकाधिकारी भी स्वभावत अधिकतम लाभ प्राप्त करने का, अथवा हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करता है। पूर्ण प्रतियोगिता की भांति एकाधिकार के अतर्गत भी फर्म की साम्य स्थिति को बाजार अवधि, अल्पकाल एवं दीर्घकाल के सदर्भ में समझाया जा सकता है।

1 बाजार-अवधि मे एकाधिकारी की साम्य स्थिति
(Equilibrium in the Market Period)

पिछले अध्याय में बाजार अवधि को समय की ऐसी अवधि के रूप में परिभाषित किया गया था जिसमे वस्तु की पूर्ति पूर्णत स्थिर है तथा कीमत में होने वाले परिवर्तनों का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता।

जैसा कि चित्र 14 3 के पैनल (a) में बतलाया गया है, वस्तु की पूर्ति (बाजार अवधि में) $O\overline{Q}$ पर स्थिर है। एकाधिकारी फर्म का माग वक्र AD है तथा इससे सबद्ध सीमात आगम वक्र AQ_1 है। चूकि पूर्ति दी हुई है, एकाधिकारी उस सीमा तक वस्तु बेचना चाहेगा जहा सीमान्त आगम शून्य हो जाता है। चित्र 14 3 के
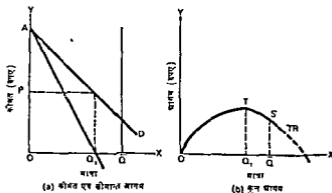
चित्र 14 3 एकाधिकार के अतर्गत बाजार अवधि में साम्य स्थिति

पैनल (a) मे एकाधिकारी OQ_1 इकाइया बेचकर अधिकतम आगम प्राप्त करना चाहेगा। इस स्तर पर उसे प्राप्य सीमान्त आगम शून्य हो जाएगा। चित्र 14 3 के पैनल (b) मे कुल आगम T बिंदु पर अधिकतम है जहां एकाधिकारी OQ_1 इकाइया बेचता है।

4. लाभ फलन $\pi = TR - TC$ जबकि $TR = f(Q)$, $TC = g(Q)$
अधिकतम लाभ हेतु $\frac{d\pi}{dQ} = \frac{d(TR)}{dQ} - \frac{d(TC)}{dQ} = 0$
यानी $MR = MC$ (प्रथम क्रम की शर्त)
तथा $\frac{d^2\pi}{dQ^2} = \frac{d^2(TR)}{dQ^2} - \frac{d^2(TC)}{dQ^2} < 0$ (द्वितीय क्रम की शर्त)

इस प्रकार यदि वस्तु की पूर्ति पूर्णतः स्थिर हो तो एकाधिकारी सीमांत लागत-सीमांत आगम विधि के आधार पर अधिकतम लाभ देने वाली मात्रा में बेचकर वस्तु की उतनी मात्रा बेचेगा जहां उसे अधिकतम कुल आगम प्राप्त होता है। बहुधा यह दशा नाशवान वस्तुओं के संदर्भ में उत्पन्न होती है। इस स्थिति में एकाधिकारी को Q_1Q मात्रा में बिना बिका स्टॉक भी रखना होता है परंतु जैसाकि पैनल (b) से स्पष्ट है, इस अतिरिक्त मात्रा को बेचने से एकाधिकारी को प्राप्य कुल आगम में कमी हो जाती है $(TQ_1 > SQ)$।

2 अल्पकाल में साम्य स्थिति (Equilibrium in the Short Run)

ऊपर हम यह बता चुके हैं कि किसी भी अन्य फर्म की भांति एकाधिकारी फर्म भी अधिकतम लाभ अर्जित करने का प्रयास करती है। हमने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि एकाधिकारी फर्म भी प्रतियोगी फर्म की भांति उत्पादन के साधनों को पूर्ण प्रतियोगिता वाले साधन-बाजारों में खरीदती है और इस कारण एकाधिकारी के लागत फलन प्रतियोगी फर्म के लागत फलन के अनुरूप ही होते हैं।
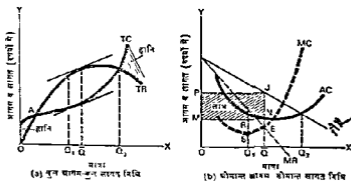
चित्र 14.4 एकाधिकारी द्वारा अधिकतम लाभ की प्राप्ति

चित्र 14.4 के पैनल (a) में बतलाया गया है कि एकाधिकारी $O\bar{Q}$ मात्रा में उत्पादन करके अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकता है जहां कुल आगम तथा कुल लागत का अंतर अधिकतम है। यदि एकाधिकारी $O\bar{Q}$ से अधिक उत्पादन करता है तो उसके लाभ का स्तर घटता जाता है, तथा OQ_2 मात्रा का उत्पादन करने पर वह लाभ-अलाभ की स्थिति (break-even point) में पहुंच जाता है। इससे आगे उत्पादन जारी रखने पर कुल लागत कुल आगम से अधिक हो जाती है तथा फर्म को हानि होने लगती है।

चित्र 14.4 के पैनल (b) में इसी बात को सीमांत आगम-सीमांत लागत विधि द्वारा समझाया गया है। E बिंदु पर अधिकतम लाभ की दोनों शर्तें पूरी होती हैं जहां एकाधिकारी $O\bar{Q}$ मात्रा का उत्पादन करता है। इस स्तर पर एकाधिकारी को

प्राप्त कुल लाभ PJNM है। यदि एकाधिकारी उत्पादन प्रक्रिया $O\bar{Q}$ के बाद भी जारी रखता है तो सीमांत लागत सीमांत आगम से अधिक होती जाती है (MC>MR) और इसलिए OQ के बाद की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन पर फर्म को हानि होती है, यानी $O\bar{Q}$ के उत्पादन तक अर्जित लाभ कम होते जाते हैं। OQ_3 पर एकाधिकारी लाभ-अलाभ की स्थिति में पहुंचता है जहां कीमत व औसत लागत समान हैं (AC=Price)। इसके आगे कीमत से औसत लागत का स्तर अधिक होता जाता है।

यदि एकाधिकारी $O\bar{Q}$ से कम उत्पादन करता है (उदाहरण के लिए OQ_1) तब भी उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति नहीं होती। जैसा कि चित्र 14 4 के पैनल (a) से स्पष्ट है, OQ_1 मात्रा में उत्पादन करने पर कुल लाभ (TR – TC) उस स्तर से कम है जो एकाधिकारी को OQ_1 मात्रा के उत्पादन से प्राप्त हो सकता है। पैनल (b) को देखने से भी यही स्पष्ट होता है। OQ_1 मात्रा में उत्पादन करने पर सीमांत आगम RQ_1 है जबकि सीमांत लागत SQ_1 है ($RQ_1>SQ_1$)। ऐसी स्थिति में उत्पादन बढ़ाने पर एकाधिकारी के लाभ में वृद्धि ही होगी। लाभ के स्तर में यह वृद्धि तब तक होगी जब तक उत्पादन का स्तर $O\bar{Q}$ नहीं हो जाता। अस्तु एकाधिकारी को अधिकतम लाभ की प्राप्ति केवल उस दशा में होती है जब वह $O\bar{Q}$ मात्रा में उत्पादन करता है। इसी स्तर पर सीमांत आगम व सीमांत लागत समान हैं (MR=MC), एवं साथ ही सीमांत लागत वक्र सीमांत आगम वक्र को नीचे से काटता है $\left[\frac{d^2(TR)}{dQ^2}<\frac{d^2(TC)}{dQ^2}\right]$।

उपरोक्त विवरण से यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि एकाधिकारी को सदैव लाभ ही होता है। अल्पकाल में एकाधिकारी को हानि भी हो सकती है, परंतु वह फिर ऐसी विधियां अपनाता है जिनसे उसकी अल्पकालीन हानि दीर्घकालीन लाभ के रूप में परिवर्तित हो जाए।

चित्र 14 5 अल्पकाल में एकाधिकारी द्वारा हानि को न्यूनतम करना

जैसा कि हम पिछले अध्याय में स्पष्ट कर चुके हैं, फर्म द्वारा अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि प्राप्त करने हेतु प्रथम व द्वितीय क्रम की समान शर्तें प्रयुक्त की जाती हैं। चित्र 14 5 में इसी स्थिति को प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 14 5 में सीमांत लागत वक्र सीमांत आगम वक्र को E बिंदु पर काटता

मात्रा ही बेचेगी तथा इसके लिए $O\bar{P}$ कीमत ही लेती रहेगी। यदि कीमत $O\bar{P}$ से अधिक हो तो ऋणात्मक ढलानयुक्त माग वक्र (AR) के कारण फर्म पूर्वापेक्षा कम मात्रा ही बेच पाएगी। ऐसी दशा मे सीमात लागत वक्र को पूर्ति वक्र नही माना जा सकता क्योकि $O\bar{P}$ के अतिरिक्त प्रत्येक कीमत पर सीमात लागत वक्र एव सीमांत आगम की अनुरूपी मात्राओं मे पर्याप्त अतर रहता है। इस प्रकार, दिए हुए माग व सीमात आगम फलनो के सदर्भ में एकाधिकारी केवल एक ही कीमत ($O\bar{P}$) पर एक ही मात्रा ($O\bar{Q}$) बेचेगा। ऐसी दशा मे फर्म का पूर्ति वक्र किसी भी प्रकार से निरूपित करना सभव नही है।
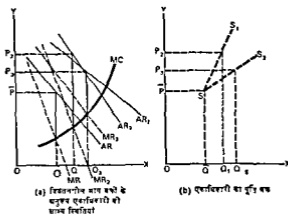
चित्र 14 6 एकाधिकारी के पूर्ति वक्र का निरूपण

परतु यदि एकाधिकारी के माग वक्र मे विवर्तन हो जाए तथा उसका माग वक्र AR_1 से विवर्तित होकर AR_2 हो जाए तो तदनुरूपी सीमात आगम वक्र भी MR_2 हो जाएगा। ऐसी स्थिति मे एकाधिकारी OP_2 कीमत पर OQ_1 मात्रा बेचकर अधिकतम लाभ अर्जित करता है। पैनल (b) में इसके अनुसार SS_1 फर्म का पूर्ति वक्र माना जाएगा। अन्य शब्दो में, माग वक्र विवर्तित होने पर ही कीमत मे वृद्धि होने के साथ-साथ एकाधिकारी अधिक मात्रा मे पूर्ति करता है। परतु यदि माग फलन यथावत् रहे तो एकाधिकारी का पूर्ति वक्र कदापि निरूपित नही हो सकता।

यह भी उल्लेखनीय बात है कि एकाधिकारी फर्म का पूर्ति वक्र किस प्रकार का होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि माग फलन का परिवर्तन या विवर्तन किस प्रकार का है। उदाहरण के लिए, यदि चित्र 14 6 के पैनल (a) में माग वक्र का (AR_1) से बदलकर AR_3 हो जाए तथा तदनुरूपी सीमात आगम वक्र MR_3 हो जाए तो साम्य मात्रा $O\bar{Q}$ से बदल कर OQ_3 होगी तथा कीमत OP_3 होगी ($OQ_3 > OQ_1$, परतु $OP_3 < OP_2$)। पैनल (b) मे इसका अनुरूपी पूर्ति वक्र SS_2 है। सक्षेप मे,

एकाधिकारी फर्म का पूर्ति वक्र केवल दो दशाओं के अतर्गत निरूपित किया जा सकता है (i) जब माग फलन मे परिवर्तन हो, तथा (ii) माग फलन के परिवर्तन की सही जानकारी हो। यदि माग फलन स्थैतिक (static) हो तो एकाधिकारी फर्म $\overline{OP}$ कीमत पर $\overline{OQ}$ मात्रा ही बेचती रहेगी तथा हम कदापि उसके पूर्ति वक्र का निरूपण नही कर सकेंगे।

4 अनेक सयत्र वाली एकाधिकारी फर्म का साम्य (Multiple Plant Monopoly in the Short Run)

अब तक हमने एक ऐसी फर्म की साम्य-स्थिति का ही विश्लेषण किया था जिस के पास (एक स्थान पर ही) एक सयत्र है। अब मान लीजिए कि एकाधिकारी के पास दो या अधिक सयत्र हैं जिनकी स्थिति भी पृथक्-पृथक् है। स्वाभाविक है कि एकाधिकारी के समक्ष अब दो (या अधिक) लागत फलन होंगे। परतु उसे वस्तु को एक ही बाजार मे बेचना है, अत माग अथवा आगम फलन एक ही होगा।

अनेक सयत्र की स्थिति मे भी हमारी मान्यता यही रहती है कि एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना है, और इसके लिए वह प्रत्येक सयत्र का इष्टतम प्रयोग करना चाहेगा। अस्तु—

$$\pi = R\ (q_1+q_2) - C_1\ (q_1) - C_2(q_2)$$

उक्त फलन मे q_1, q_2 क्रमश प्रत्येक सयत्र द्वारा उत्पादित मात्राए हैं जबकि R_1C_1 व C_2 क्रमश कुल आगम, प्रथम सयत्र की कुल लागत व द्वितीय सयत्र की कुल लागत के प्रतीक हैं। स्पष्ट है, एक ही बाजार मे बेचने के कारण उसका कुल आगम $R(q_1+q_2)$ होगा। अब आशिक अवकलज ज्ञात करते हुए हम प्रत्येक सयत्र द्वारा कितनी मात्रा के उत्पादन पर अधिकतम लाभ प्राप्त होगा यह ज्ञात करेंगे।

$$\frac{\partial \pi}{\partial q_1} = R'(q_1+q_2) - C'_1(q_1) = 0$$

$$\frac{\partial \pi}{\partial q_2} = R'(q_1+q_2) - C'_2(q_2) = 0$$

यहा $R'(q_1+q_2)$ सीमात आगम व $C'(q_1)$ प्रथम सयत्र का सीमात लागत फलन है जबकि $C'(q_2)$ द्वितीय सयत्र का सीमात लागत फलन है। चूकि सीमात आगम प्रत्येक सयत्र स सबद्ध सीमात लागत के समान होने पर ही अधिकतम लाभ प्राप्त होता है, दो सयत्रो द्वारा एकाधिकारी अधिकतम लाभ केवल उन उत्पादन स्तरो पर प्राप्त कर सकता है जब

$$R'\ (q_1+q_2) = C'_1(q_1) = C'_2(q_2)$$

अनेक (n) सयत्र होने पर इसे निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

$$MR = MC_1 = MC_2 = \ldots\ldots\ldots = MC_n \quad \ldots(14\ 2)$$

इसी बात को चित्र 14 7 के माध्यम से समझाया गया है।

चित्र 14.7 में एकाधिकारी फर्म का नमग्र-सीमान्त लागत वक्र (Overall Marginal Cost Curve) MC इसके सीमान्त लागत आगम वक्र को H बिंदु पर
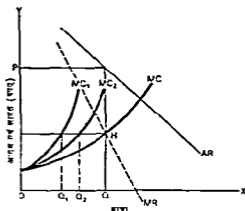
चित्र 14.7 बहु-संयत्र वाली एकाधिकारी की साम्य स्थिति

काटता है। सीमान्त लागत-सीमान्त आगम में इसी स्तर पर दोनों संयत्रों में सम्बद्ध सीमान्त लागतों का स्तर भी समान होना चाहिए। तदनुसार $MC_1 = MC_2 = MC = MR$ की शर्त के अनुसार फर्म प्रथम संयत्र द्वारा OQ_1 इकाइयों का तथा द्वितीय संयत्र द्वारा OQ_2 का उत्पादन करेगी।

14.4 एकाधिकार के अंतर्गत दीर्घकालीन साम्य
(Long Run Equilibrium Under Monopoly)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अल्पकाल में कोई फर्म भारी लाभ अर्जित कर सकती है, अथवा हानि भी उठा सकती है, परन्तु दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है (जहां LAC=P है)। हम ऊपर यह देख चुके हैं कि एकाधिकार के अन्तर्गत फर्म को बाहर से अन्य किसी फर्म के बाजार में प्रवेश का भय नहीं होता और इसलिए एकाधिकारी फर्म अपने अल्पकालीन लाभ को दीर्घकाल में भी सुरक्षित रख सकती है। परन्तु यदि अल्पकाल में एकाधिकारी को हानि हो रही है, तो वह ऐसे कदम अवश्य उठाना चाहेगा जिनके माध्यम से उसकी अल्पकालीन हानि दीर्घकालीन लाभ के रूप में बदल जाए। यह भी संभव है कि एकाधिकारी पैमाने में विस्तार करके अल्पकाल में प्राप्त होने वाले लाभ को अत्यधिक दीर्घकालीन लाभ में परिवर्तित कर ले। हम इन सभी पर नीचे विचार करेंगे।

1. अल्पकालीन हानि : एकाधिकारी द्वारा पैमाने का विस्तार
(Short Run Losses : Expansion of Scale by the Monopolist)

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, एकाधिकारी दीर्घकाल में हानि उठाकर

व्यवसाय में कदापि नहीं ठहरना चाहेगा। इसीलिए वह या तो पैमाने का विस्तार करके मितव्ययिताओं (economies) के माध्यम से उत्पादन लागतों में पर्याप्त कमी करना चाहेगा, अथवा किन्हीं विधियों द्वारा वस्तु की माग में वृद्धि करके कीमत में उतनी वृद्धि करना चाहेगा ताकि उसे दीर्घकाल में हानि न हो।

चित्र 14 8 में बतलाया गया है कि अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म को P_1NSC के समान हानि हो रही है। परन्तु यह इस फर्म के लिए हानि का न्यूनतम स्तर है क्योंकि इसी उत्पादन स्तर (OQ_1) पर अल्पकालीन सीमांत लागत फर्म के सीमांत आगम के समान है (SMC=MR)। परन्तु इस स्तर पर दीर्घकालीन सीमांत लागत का स्तर अल्पकालीन सीमांत लागत से कम है (LMC<SMC=MR), जिसका अर्थ यह है कि पैमाने के विस्तार द्वारा फर्म अपनी हानि को कम कर सकती है। फर्म अपने पैमाने में तब तक विस्तार करता चाहेगी जबकि दीर्घकालीन सीमांत लागत, अल्पकालीन सीमांत लागत एवं सीमांत आगम समान नहीं हो जाते।
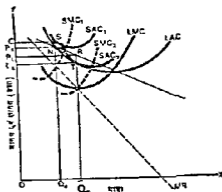
चित्र 14 8 सयंत्र के आकार में विस्तार करके एकाधिकारी फर्म द्वारा अल्पकालीन हानि को दीर्घकालीन लाभ में परिवर्तित करना

संक्षेप में, मितव्ययिताओं के कारण एकाधिकारी फर्म अपने संयत्र के आकार में वृद्धि करके अल्पकालीन हानि को दूर करती है। संयत्र का विस्तार तब तक किया जाता है जहां LMC=SMC=MR की स्थिति है। यही फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति होगी, जहां उत्पादन का स्तर OQ_L है तथा कीमत OP_L है। इस दशा में फर्म को लाभ P_LRTC_L के अनुरूप दीर्घकालीन लाभ प्राप्त होता है।

2. अल्पकालीन हानि : माग में वृद्धि
(Short Run Loss : Increasing the Demand)

एकाधिकारी फर्म को अल्पकाल में होने वाली हानि को समाप्त करने की दूसरी विधि के अन्तर्गत ऐसे उपाय शामिल किए जाते हैं जिनके द्वारा वस्तु की माग

मे वृद्धि की जा सकती हो। सभव है, माग या बिक्री बढ़ाने हेतु किए गए इन उपायो के कारण लागत मे वृद्धि हो जाए। परतु कभी-कभी एकाधिकारी फर्म अतिरिक्त लागत वहन किए बिना भी माग मे वृद्धि करने मे सफल हो जाती है।

चित्र 149 के पैनल (a) एव पैनल (b) मे एकाधिकारी फर्म के माग व सीमान्त लागत फलन क्रमश AR_1 एव MR_1 हैं। पैनल (a) मे अल्पकालीन साम्य स्थिति वहा थी जहा अल्पकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आगम MR_1 को काटता है
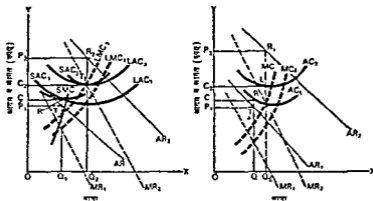
(a) एकाधिकारी द्वारा विज्ञापन के माध्यम से हानि को समाप्त करना इष्टतम पैमाने पर उत्पादन

(b) एकाधिकारी द्वारा विज्ञापन के माध्यम से हानि को समाप्त करना। पैमाने को यथावत् रखते हुए

चित्र 149 एकाधिकारी द्वारा माग वक्र मे विवर्तन के माध्यम से अल्पकालीन हानि को समाप्त करना

$(SMC_1 = MR)$। इस स्तर पर उत्पादन की मात्रा OQ_1 है तथा कीमत OP_1 है। परतु जैसा कि चित्र 148 (a) मे स्पष्ट है, इस उत्पादन-स्तर पर लागत OC_1 है। अस्तु, फर्म को $P_1C_1\,RT_1$ के बराबर हानि होती है। स्पष्ट है, एकाधिकारी दीर्घकालीन मे इस हानि को कदापि वहन नहीं करना चाहेगा। वह वस्तु का विज्ञापन करता है। जिसके कारण उसके लागत फलन मे विवर्तन हो जाता है। परतु साथ ही एकाधिकारी यह भी चाहता है कि दीर्घकाल म वह इष्टतम पैमाने पर उत्पादन करे। इसीलिए वह तब तक विज्ञापन करता रहता है जब तक कि माग वक्र विवर्तित होकर AR_1 स AR_2 की स्थिति म नहीं हो जाता तथा सीमान्त आगम वक्र MR_2 नहीं हो जाता। ऐसी स्थिति मे उसकी साम्य स्थिति T_2 पर होगी तथा यहा $MR_2 = LAC = LMC_2 = SAC_2 = SMC_2$ की स्थित होगी। परतु चूकि एकाधिकारी का माग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त है, $P > MR_2$ होने के कारण एकाधिकारी को लाभ होने लगता है। इस प्रकार एकाधिकारी दीर्घकाल मे इष्टतम स्तर पर उत्पादन करते हुए अपनी अल्पकालीन हानि को दीर्घकालीन लाभ $(C_2P_2R_2T_2)$ मे परिवर्तित कर लेता है।

चित्र 14 8 के पैनल (b) में अपेक्षाकृत सरल स्थिति प्रदर्शित की गई है। इनमे भी एकाधिकारी अपनी अल्पकालीन हानि को दीर्घकालीन लाभ के रूप में बदलना चाहता है, परंतु उसे इष्टतम पैमाने पर उत्पादन करने की चिंता नहीं है। वह विज्ञापन पर व्यय करता है, परंतु पैमाना नहीं बढ़ाता। विज्ञापन पर व्यय करने के कारण लागत वक्रों (AC व MC) में विवर्तन होता है। जहां अल्पकाल में वह OQ_1 मात्रा को OP_1 कीमत पर बेचकर P_1C_1RT के समान हानि उठाता था, दीर्घकाल में वह OQ_2 मात्रा को OP_2 कीमत पर बेचने लगता है (यहां $MC_2=MR$ है), तथा उसे $C_2P_2R_1L$ के समान लाभ होने लगता है। इस प्रकार दोनों ही स्थितियों में एकाधिकारी विज्ञापन के माध्यम से मांग वक्र में विवर्तन प्राप्त करके अल्पकालीन हानि को लाभ में परिवर्तित कर लेता है। परंतु यदि मांग वक्र में विवर्तन न हो और न ही एकाधिकारी के लागत वक्रों में नीचे की ओर विवर्तन हो (जो दक्षता में वृद्धि द्वारा ही संभव है), तो एकाधिकारी को दीर्घकाल में भी हानि होती रहेगी, एवं उसके समक्ष व्यवसाय बंद करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प शेष नहीं रह जाएगा।

14 5 दीर्घकाल में एकाधिकारी के संयंत्र की स्थिति
(Long Run Scale of Plant Adjustments)

ऊपर के अनुभाग (14 4) में हमने एकाधिकारी फर्म द्वारा अपनाई गई उन विधियों का उल्लेख किया था जिनके द्वारा वह अपनी अल्पकालीन हानि को लाभ में परिवर्तित कर लेता है। यदि एकाधिकारी को अल्पकाल में लाभ प्राप्त हो रहा हो तब भी वह ऐसे उपाय करेगा जिनसे दीर्घकाल में मांग फलन नहीं रहने पर भी उसे अधिक लाभ हो। इसके लिए वह पैमाने में विस्तार करके लागत में कमी करने का प्रयत्न करेगा।

प्रश्न है, कि यदि एकाधिकारी अपने उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन करता रहे तो उसकी दीर्घकालीन साम्य स्थिति कहां स्थित होगी? हमने समीकरण 13 1 के माध्यम से पिछले अध्याय में स्पष्ट किया था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म का इष्टतम उत्पादन स्तर वहां होता है जहां $SAC_1=SMC_1=LMC=LAC=MR=AR$ की स्थिति हो। ऐसी दशा में फर्म की दीर्घकालीन औसत उत्पादन लागत न्यूनतम होती है तथा संयंत्र का प्रयोग भी इष्टतम स्तर पर होता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत व सीमांत आगम समान होने के कारण फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।

परंतु एकाधिकारी के लिए कीमत से सीमांत आगम कम होता है ($AR>MR$) क्योंकि वस्तु की मांग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है। इसीलिए एकाधिकारी को सामान्यतः दीर्घकाल में भी सामान्य अधिक लाभ प्राप्त होता है। फर्म के लिए दीर्घकालीन साम्य की शर्त अब इस प्रकार होगी—

$$LMC=SMC=MR \qquad \ldots (14\ 3)$$

यह शर्त पूरी होने पर ही फर्म को अधिकतम (दीर्घकालीन) लाभ की प्राप्ति होगी।

परंतु यह आवश्यक नहीं है कि एकाधिकारी का दीर्घकालीन साम्य इष्टतम पैमाने पर ही स्थित हो। चित्र 14.10 मे तीन स्थितियां प्रस्तुत की गई हैं जिनमें प्रथम स्थिति मे समीकरण (14 3) मे प्रस्तुत शर्तें उत्पादन के OQ_1 स्तर पर पूरी हो रही है। यह इष्टतम स्तर के उत्पादन ($O\bar{Q}$) से कम है। पैनल (b) मे एकाधिकारी OQ_2 मात्रा का उत्पादन करता है जो इष्टतम स्तर से अधिक है। इसके विपरीत, पैनल (c) मे फर्म की साम्य स्थिति उस उत्पादन स्तर ($O\bar{Q}$) पर है जहा दीर्घकालीन औसत लागत न्यूनतम है (LAC=LMC=SAC=SMC=MR) परतु तीनों ही दशाओ मे एकाधिकारी को पर्याप्त लाभ प्राप्त होता है क्योंकि उसका माग
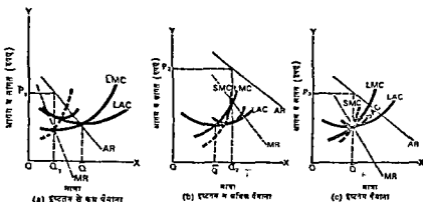
चित्र 14 10 एकाधिकारी फर्म द्वारा दीर्घकाल मे पैमाने का विस्तार

वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होने के कारण कीमत से सीमांत आगम कम है (P>SMC =LMC=MR)।

14 6 एकाधिकारी फर्म के विषय में कुछ भ्रांतियां
(Some Misconceptions about the Monopoly Firm)

एकाधिकारी फर्म के विषय मे साधारण तौर पर कुछ भ्रांतियां व्याप्त हैं। प्रथम भ्रांति तो यह है कि एकाधिकारी सदा ही लाभ अर्जित करता है। हम ऊपर यह देख चुके है कि अल्पकाल मे एकाधिकारी द्वारा उत्पादन वस्तु की माग काफी कम रहने, तथा/अथवा लागतें ऊंची होने के कारण उसे हानि हो सकती है। परतु दीर्घकाल मे एकाधिकारी सदैव लाभ अर्जित करता है।

एकाधिकारी फर्म के विषय मे दूसरी भ्रांति यह है कि एकाधिकारी को तभी लाभ होता है जबकि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की माग बेलोच हो ($\eta_{PP}<1$)।

उदाहरण के लिए यदि एकाधिकारी वस्तु की कीमत 10 से 20 रुपए कर दे और माग 15 इकाई से घटकर केवल 12 ही रहे तो उसको प्राप्त कुल आगम 150 रुपए से बढकर 240 रुपए हो जाएगा। इस प्रकार बेलोच माग होने पर एकाधिकारी कीमत को पर्याप्त रूप मे बढाकर भी अधिक आगम अर्जित कर लेता है। परतु वस्तुतः यह धारणा गलत है। अध्याय 6 मे हमने माग की लोच को निम्न रूप मे परिभाषित किया था—

$$\eta_{xx} = \frac{AR}{AR - MR}$$

यदि माग बेलोच हो ($\eta_{xx} < 1$) तो उपरोक्त सूत्र के अनुसार सीमात आगम ऋणात्मक होना चाहिए ($MR < 0$)। परतु जैसा कि हम जानते है, अधिकतम लाभ हेतु सीमात आगम व सीमात लागत समान होने चाहिए, परतु सीमात लागत धनात्मक होनी चाहिए ($MR = MC > 0$)। जैसा कि चित्र 14 11 से स्पष्ट है, यदि एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त करना है तो उसे माग वक्र की उसी रेंज मे कार्य करना होगा जिसमे माग की लोच इकाई से अधिक हो ($\eta_{xx} > 0$, क्योंकि $MR > 0$ है)।
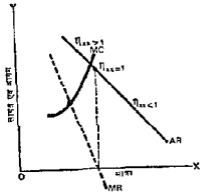
चित्र 14 11 माग की लोच एव एकाधिकारी द्वारा अधिकतम लाभ की प्राप्ति

यह शर्त (कि एकाधिकारी द्वारा अधिकतम लाभ तभी प्राप्त होगा जब मांग अधिक लोचदार हो) प्रत्येक स्थिति मे पूरी होनी चाहिए, चाहे माग वक्र का ढलान कैसा भी क्यो न हो।

एकाधिकारी फर्म के विषय मे अतिम भ्राति यह भी है कि एकाधिकारी अपने बाजार मे कुछ भी कीमत लेने को, तथा इच्छानुसार मात्रा बेचने को स्वतत्र है। वस्तुतः ऐसी बात नही है। जैसा कि हम जानते हैं, एकाधिकारी फर्म का माग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है। ऐसी दशा मे यदि एकाधिकारी कीमत मे वृद्धि करता है तो वस्तु की माग मे कमी हो जाती है। इसके विपरीत, यदि एकाधिकारी अधिक मात्रा बेचना चाहता है तो उसे वस्तु की कीमत मे कमी करनी होगी। अतः एकाधिकारी फर्म या तो कीमत मे वृद्धि कर सकती है अथवा कीमत मे कमी करके ही अधिक मात्रा बेच सकती है। कीमत मे वृद्धि करने पर उसे कम मात्रा मे बिक्री करके ही सतोष करना होगा।

14 7 एकाधिकारी द्वारा कीमत-विभेद
(Price Discrimination by A Monopolist)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, कीमत मे वृद्धि करके एकाधिकारी अधिक लाभान्वित होने की आशा नही कर सकता क्योंकि ऐसा करने पर वस्तु की माग मे

कमी हो जाती है। परन्तु बहुधा एकाधिकारी भिन्न भिन्न बाजारों में भिन्न कीमतें निर्धारित करके अपने लाभ को बढाने मे सफल हो जाता है। जब एकाधिकारी एक ही वस्तु की भिन्न भिन्न कीमतें निर्धारित करता है तो ऐसी स्थिति को कीमत विभेद (price discrimination) की संज्ञा दी जाती है। निम्न दशाओ मे एकाधिकारी की कीमत नीति को कीमत विभेद की नीति माना जा सकता है: (i) जब वह अलग-अलग बाजारो मे एक ही वस्तु की भिन्न भिन्न कीमतें वसूल करे (ii) जब वह वस्तु की क्वालिटी मे अतर रखते हुए भिन्न-भिन्न बाजारो मे, या भिन्न भिन्न उपभोक्ताओ से एक ही कीमत वसूल करे, तथा (iii) जब वह खुदरा (retail) क्रेताओं से प्रति इकाई अधिक, तथा थोक (wholesale) क्रेताओ से प्रति इकाई कीमत ले। कीमत-विभेद का स्वरूप कैसा भी क्यो न हो, इसका अभिप्राय यही है कि एकाधिकारी क्रेताओं के भिन्न-भिन्न समूहो के बीच भेद-भावपूर्ण व्यवहार करता है।

1 कीमत विभेद की श्रेणिया (Degrees of Price Discrimination)

कीमत विभेद की नीति को तीन श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी की कीमत विभेद नीति (first degree of price discrimination) के अतर्गत एकाधिकारी वस्तु की प्रत्येक इकाई के लिए उसी उपभोक्ता से अलग-अलग कीमत विभेद नीति के अतर्गत उपभोक्ता से प्रत्येक इकाई के लिए जितनी उच्चतम कीमत वह दे सकता है, वही वसूल की जाती है। स्पष्ट है, उपभोक्ता वस्तु की सीमात उपयोगिता के समान कीमत दे सकता है और यही कीमत एकाधिकारी उससे वसूल करने का प्रयत्न करता है।
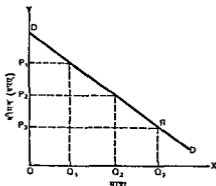
चित्र 14 12 एकाधिकारी द्वारा प्रथम श्रेणी का कीमत विभेद

चित्र 14 12 मे बतलाया गया है कि एकाधिकारी वस्तु की प्रथम इकाई को OP_1 कीमत पर बेचता है जबकि द्वितीय व तृतीय इकाइयो को क्रमश OP_2 व OP_3 कीमतो पर बेचता है। यह मानते हुए कि मुद्रा की सीमात उपयोगिता स्थिर रहती है,

हम माग वक्र DD को वस्तु का सीमात उपयोगिता वक्र (उपभोक्ता के लिए) भी मान सकते हैं। चूकि एकाधिकारी उपभोक्ता स उस प्राप्य सीमात उपयोगिता के समान ही कीमत वसूल करता है, ऐसी दशा मे माग वक्र के अतर्गत समस्त क्षेत्र ही उसका कुल आगम बन जाता है। उदाहरण के लिए, यदि फर्म OQ_3 मात्रा उपभोक्ता को बेचती है तो उसे प्राप्त होने वाला कुल आगम OP_3RQ_3 न होकर $ODRQ_3$ होगा। सक्षेप मे, प्रथम श्रेणी के कीमत विभेद के अतगत एकाधिकारी का यही प्रयास रहता है कि उपभोक्ता को प्राप्त समूची उपयोगिता हस्तातरित होकर उसके (एकाधिकारी के) पास पहुच जाए, यानी उपभोक्ता कोई भी उपभोक्ता की बचत प्राप्त न होने पाए।

वस्तुत प्रथम श्रेणी का कीमत विभेद व्यवहार मे कम ही दिखाई देता है, क्योकि प्रथम तो इसके लिए एकाधिकारी को उपभोक्ता की उपयोगि ा-सूची का ज्ञान होना आवश्यक है, और यदि कदाचित उस उपयोगिता सूची का ज्ञान हो भी जाए, तब भी उपभोक्ता की प्राप्य उपयोगिता के समान कीमत वसूल कर पाना एक कठिन कार्य होगा। द्वितीय श्रेणी के कीमत विभद (second degree price discrimination) के अतर्गत एकाधिकारी उपभोक्ता को वस्तु की एक ढेरी एक कीमत पर बेचने की पेशकश करता है परतु यदि उपभोक्ता एक अतिरिक्त ढेरी खरीदने का प्रस्ताव करता है तो एकाधिकारी इस अतिरिक्त ढेरी को कम कीमत पर बेचने हेतु सहमत हो जाता है। उदाहरण के लिए, चित्र, 14 13 मे वस्तु की OQ_1 मात्रा की
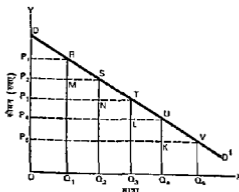
चित्र 14 13 एकाधिकारी द्वारा द्वितीय श्रेणी का कीमत-विभेद

त OP_1 रखी जाती है, परतु Q_1Q_2 के लिए एकाधिकारी OP_2 कीमत पर भी ा हेतु सहमत हो जाता है। इसी प्रकार Q_2Q_3 के लिए कीमत OP_3 एव Q_3Q_4 . .लए इसका स्तर घटाकर OP_4 किया जा सकता है।

बहुधा एकाधिकारी द्वितीय श्रेणी के कीमत-विभेद की नीति इस कारण अप-

माना है कि वह ग्राहक को अतिरिक्त खरीद पर छूट देकर आकर्षित कर सके। इस दशा में भी उसको प्राप्त होने वाला कुल आगम माँग वक्र के निर्दिष्ट बिंदु पर सबद्ध क्षेत्र न होकर उससे भिन्न होगा। उदाहरण के लिए, यदि वह कुल मिला कर OQ_4 इकाइयाँ बेचता है तो उसे प्राप्त होने वाला कुल आगम इस प्रकार होगा कुल आगम U बिंदु पर—

$$OP_1RQ_1+Q_1MSQ_2+Q_2NTQ_3+Q_3LUQ_4$$

तृतीय श्रेणी का कीमत विभेद (third degree of price discrimination) सर्वाधिक चर्चित एवं प्रचलित कीमत विभेद होता है। इस प्रकार के कीमत-विभेद के लिए निम्न शर्तें पूरी होनी जरूरी हैं—

(i) एकाधिकारी फर्म में बाजार को दो या अधिक भागों में विभाजित करने की क्षमता होनी चाहिए,

(ii) दोनों (या अधिक) बाजारों में वस्तु की माँग की लोच में अन्तर होना चाहिए,

(iii) एकाधिकारी द्वारा अलग अलग बाजारों में अलग अलग कीमतें वसूल की जानी चाहिए तथा

(iv) प्रत्येक बाजार (या उपभोक्ताओं का प्रत्येक समूह) प्रत्येक दूसरे बाजारों (या समूहों) से पृथक रहना चाहिए ताकि कम कीमत पर खरीदने वाले उपभोक्ता ऊंची कीमत वाले बाजार में वस्तु को न बेच सकें।

यदि इनमें से एक भी शर्त पूरी नहीं होती तो एकाधिकारी द्वारा कीमत विभेद की नीति क्रियान्वित करना संभव नहीं होगा।

2. *तृतीय श्रेणी के कीमत विभेद के अंतर्गत कीमत का निर्धारण*

(Determination of Price under Third Degree Price Discrimination)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था तृतीय श्रेणी के कीमत विभेद के अंतर्गत बाजार को दो या अधिक भागों में विभाजित करना आवश्यक है। यह भी जरूरी है कि इन बाजारों में वस्तु की माँग की लोच भिन्न भिन्न हो। तथापि हम अपनी इस मान्यता को दोहराना चाहेंगे कि एकाधिकारी प्रत्येक बाजार में वस्तु की उतनी मात्रा बेचना चाहेगा कि उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो। चूंकि अब उसे दो (या अधिक) बाजारों में वस्तु को बेचना है उसका लाभ फलन इस प्रकार व्यक्त किया जाएगा—

$$\pi = R_1(Q_1)+R(Q_2)-C(Q_1+Q_2)$$

इस लाभ फलन में $R_1(Q_1)$ तथा $R_2(Q_2)$ क्रमशः दो बाजारों के कुल आगम फलन हैं जबकि वस्तु का लागत फलन एक ही यानी $C(Q_1+Q_2)$ है। Q_1 तथा Q_2 वस्तु की वे मात्राएं हैं जिन्हें वह दोनों बाजारों में बेचकर अधिकतम लाभ अर्जित करना चाहता है।

अब यह भी मान लीजिए कि एकाधिकारी अपने कुल लाभ को अधिकतम करने के साथ ही प्रत्येक बाजार में अधिकतम लाभ अर्जित करना चाहता है। इसके

लिए MR_1 तथा MR_2 (यानी प्रत्येक बाजार का सीमांत आगम) सीमांत लागत (MC) के समान होना जरूरी है। अस्तु, अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु—

$$\frac{\partial\pi}{\partial Q_1}=R'_1(Q_1)-C(Q_1+Q_2)=0$$

$$\frac{\partial\pi}{\partial Q_2}=R'_2(Q_2)-C(Q_1+Q_2)=0$$

$$\therefore\ R'_1(Q_1)=R'_2(Q_2)=C(Q_1+Q_2)$$

अथवा $$MR_1=MR_2=MC \qquad (...14\ 4)$$

इसी बात को हम चित्र 14 14 के माध्यम से समझ सकते हैं। इस चित्र में हमने यह मान्यता ली है कि एकाधिकारी को अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा जब कुल बिक्री से प्राप्त सीमांत आगम, प्रथम बाजार के सीमांत आगम, द्वितीय बाजार के सीमांत आगम एवं सीमांत लागत में समानता हो ($MR=MR_1=MR_2=MC$), जो वस्तुतः समीकरण (14 4) में प्रस्तुत शर्त का ही सशोधित रूप है।

पहले चित्र 14 14 के पैनल (b) को देखिए। इसमें अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु एकाधिकारी OQ^* इकाइयों के उत्पादन का निर्णय लेता है जहां MC तथा कुल बिक्री से प्राप्त सीमांत आगम (MR^*) समान हैं। अब एकाधिकारी को यह निर्णय लेना होता है कि OQ^* को दोनों बाजारों में किस प्रकार आवंटित किया जाए ताकि प्रत्येक बाजार से अधिकतम लाभ प्राप्त हो।
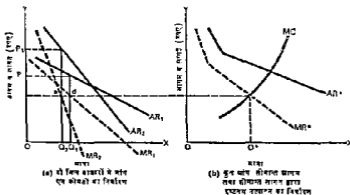
चित्र 14 14 एकाधिकारी द्वारा कीमत विभेद

प्रत्येक बाजार में कितनी मात्रा बेचने पर एकाधिकारी को अधिकतम लाभ मिलेगा इसके लिए पैनल (a) देखिए। प्रथम बाजार का मांग वक्र AR_1 एवं द्वितीय बाजार का मांग वक्र AR_2 है। इनसे संबद्ध सीमांत आगम वक्र क्रमशः MR_1 एवं MR_2 हैं जिन पर d व e बिंदु उत्पादन के उन स्तरों को व्यक्त करते हैं जिन पर MR_1 तथा MR_2 का स्तर MR^* एवं MC के स्तर के समान है। अस्तु, प्रथम बाजार में

OQ_1 इकाइयों का तथा द्वितीय बाजार में OQ_2 इकाइयों का उत्पादन करने पर एकाधिकारी को अधिकतम लाभ की प्राप्ति होगी। तदनुसार दोनों बाजारों में कीमतों के स्तर OP_1 एवं OP_2 होंगे। पाठक यह देख सकते हैं कि प्रथम बाजार में एकाधिकारी कम कीमत पर अधिक मात्रा की बिक्री करता है, जबकि द्वितीय बाजार में बिक्री की राशि कम है तथा कीमत अधिक है $(OP_1 < OP_2, OQ_1 > OQ_2)$। इसका कारण भी स्पष्ट है। प्रथम बाजार में द्वितीय बाजार की अपेक्षा माग की लोच अधिक है $(e_1 > e_2)$। अस्तु, जिस बाजार में माग अधिक लोचदार है वहा अपेक्षाकृत कम कीमत पर अधिक मात्रा बेची जाती है।

हम यह जानते हैं कि $MR_1 = P_1\left(1 - \frac{1}{e_1}\right)$ तथा $MR_2 = P_2\left(1 - \frac{1}{e_2}\right)$ होते हैं, तथा साथ ही हम यह भी जानते हैं कि अधिकतम लाभ की दशा में MR_1 एवं MR_2 समान होंगे। इस दृष्टि से

$$P_1\left(1 - \frac{1}{e_1}\right) = P_2\left(1 - \frac{1}{e_2}\right)$$

तथा

$$\frac{P_1}{P_2} = \frac{1 - \frac{1}{e_2}}{1 - \frac{1}{e_1}}$$

यदि प्रथम बाजार में माग की लोच द्वितीय बाजार की अपेक्षा अधिक हो $(e_1 > e_2)$ तो प्रथम बाजार में प्रचलित कीमत द्वितीय बाजार की कीमत से कम होगी $(P_1 < P_2)$ इसके विपरीत यदि $e_1 < e_2$ की स्थिति हो तो द्वितीय बाजार में कीमत प्रथम बाजार से कम होगी $(P_1 > P_2)$।

एकाधिकारी द्वारा कीमत निर्धारण की प्रक्रिया को और स्पष्ट रूप से समझने हेतु एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए, एकाधिकारी के लागत फलन (C) एवं दोनों बाजारों में प्रचलित माग फलन इस प्रकार हैं—

$$C = 80 + 20\,(Q_1 + Q_2)$$
$$P_1 = 80 - 3Q_1$$
$$P_2 = 110 - 15Q_2$$

अस्तु, एकाधिकारी का लाभ फलन इस प्रकार होगा—

$$\pi = 80Q_1 - 3Q_1^2 + 110Q_2 - 15Q_2^2 - [80 + 20(Q_1 + Q_2)]$$

आंशिक अवकलजों (partial derivatives) को शून्य के समान रखने पर

$$\frac{\partial \pi}{\partial Q_1} = 80 - 6Q_1 - 20 = 0$$

$$\frac{\partial \pi}{\partial Q_2} = 110 - 30Q_2 - 20 = 0$$

$$\therefore \quad Q_1 = 10,\ Q_2 = 3,\ P_1 = 50,\ P_2 = 65$$

दोनों बाजारों की साम्य स्थिति में माग की लोच इस प्रकार ज्ञात की जाएगी—

$$e_1=\frac{P_1}{P_1-MR_1},\ e_2=\frac{P_2}{P_2-MR_2}$$

$$e_1=\frac{50}{50-20}=1\ 67$$

$$\text{तथा}\quad e_2=\frac{65}{65-20}=1\ 44$$

इस प्रकार माग की लोच प्रथम बाजार में द्वितीय बाजार की अपेक्षा अधिक है और कीमत प्रथम बाजार में कम है। एकाधिकारी प्रथम बाजार में द्वितीय बाजार की अपेक्षा अधिक मात्रा बेचता है ($e_1>e_2$, $P_1<P_2$ एवं $Q_1>Q_2$)।

एक अन्य विधि से भी इसी बात को यों समझाया जा सकता है—

चूंकि $MR_1=P_1\left(1-\frac{1}{e_1}\right)$ तथा $MR_2=P_2\left(1-\frac{1}{e_2}\right)$, है तथा $MR^*=MC=MR_1=MR_2$। $e_1=1\ 67$ व $e_2=1\ 44$ हमें पूर्व रूप में ज्ञात हैं। कुल लागत फलन के आधार पर हम जानते हैं कि $MC=20=MR^*=MR_1=MR_2$

$$20=P_1\left(1-\frac{1}{1\ 67}\right)$$

$$\text{तथा}\ 20=P_2\left(1-\frac{1}{1\ 44}\right)$$

अतः $P_1=50$ एवं $P_2=65$ होंगे।

अस्तु, दोनों बाजारों में माग की लोच एवं कीमतों में प्रतिकूल संबंध है, परन्तु जिस बाजार में माग की लोच अधिक है, एकाधिकारी वहां अधिक मात्रा बेचता है।

14 8 एकाधिकार के आर्थिक कल्याण पर प्रभाव
(Welfare Effects of Monopoly)

इस अध्याय में अब तक प्रस्तुत विवरण के आधार पर यह तर्क सरलतापूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति उपभोक्ताओं एवं साधनों के स्वामियों के लिए एकाधिकार की तुलना में श्रेष्ठ है। इस बात को सिद्ध करने हेतु अनेक तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं (1) पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकार के अंतर्गत वस्तु की कीमत अधिक होती है तथा इसकी कम मात्रा उपलब्ध हो पाती है। एक रैखिक माग फलन (P) रैखिक लागत फलन (C) वाले बाजार का उदाहरण लीजिए—

$$P=100-2Q \qquad (TR=100-2Q^2)$$

$$C=50+20Q$$

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म अधिकतम लाभ उत्पादन के उस स्तर पर प्राप्त करती है जहां $MC=MR=P$ हो। प्रस्तुत उदाहरण में सीमांत लागत (MC) 20 है। अस्तु—

$$P=100-2Q=20$$

$$\therefore Q=40 \text{ तथा } P=20$$

यदि इस बाजार को एकाधिकारी के नियत्रण मे दे दिया जाए तो एकाधिकारी उत्पादन के उस स्तर पर अधिकतम लाभ प्राप्त करेगा जहा $MC=MR$ हो। उपरोक्त फलन मे $MR=100-4Q$ है। इस $MC=20$ के समान रखन पर $Q=20$ एव $P=60$ प्राप्त होगे।

इस प्रकार उन्ही माग व लागत फलनो के सदर्भ मे पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना मे एकाधिकारिक बाजार मे वस्तु की कीमत काफी अधिक एव उपभोक्ताओ को उपलब्ध मात्रा काफी कम हो जाती है। इसी बात को हम चित्र 14 15 के माध्यम से भी समझ सकते हैं।
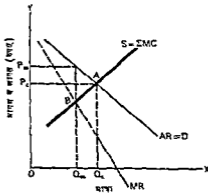
चित्र 14.15 प्रतियोगी साम्य स्थिति की एकाधिकार से तुलना

चित्र 14 15 मे पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत साम्य-स्थिति A पर दर्शायी गई है जहा कुल माग (D) तथा कुल पूर्ति (S) समान हैं। तदनुसार वस्तु की कीमत OP_c रहेगी तथा उपभोक्ताओ को OQ_c इकाइया प्राप्त होती हैं। यदि इस बाजार को एकाधिकारी के नियत्रण मे दे दिया जाए तो अब उसके माग वक्र $AR(=D)$ तथा सीमात आगम वक्र MR हो जाएगे। फर्म का सीमात लागत वक्र सीमात आगम वक्र को B पर काटता है जहा साम्य कीमत बढकर OP_M होगी तथा साम्य मात्रा घटकर OQ_M हो जाएगी।

(2) एकाधिकारी द्वारा साधनो की अपेक्षाकृत कम मात्रा का प्रयोग किया जाता है व साथ ही साधन की कीमत इसके योगदान से कम दी जाती है। इस प्रकार एकाधिकार के अतर्गत न केवल साधनो का इष्टतम से कम प्रयोग होता है, अपितु इनके स्वामियो का शोषण भी किया जाता है। अध्याय 19 मे इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यहा इतना बता देना पर्याप्त होगा कि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत साधन की कीमत (मान लीजिए मजदूरी की दर) इसके सीमात उत्पादन मूल्य (Value of Marginal Product) के समान होने तक साधन का प्रयोग किया है। यह सीमात उत्पादन मूल्य साधन के सीमात उत्पादन तथा वस्तु की निर्दिष्ट

कीमत का गुणनफल है (VMP=Product Price$\times MP_L$)। परतु इसके विपरीत एकाधिकारी सीमात आगम उत्पत्ति (Marginal Revenue Product) तथा साधन-कीमत समान होने पर ही साधन का प्रयोग समाप्त कर देता है। साधन की सीमात आगम उत्पत्ति वस्तुत सीमात आगम एव साधन के सीमात उत्पादन का गुणनफल है (MRP=MR$\times MP_L$)। चूकि सीमात आगम वस्तु की कीमत से कम होता है इसलिए सीमात आगम उत्पत्ति भी सीमात उत्पादन मूल्य से कम होगा (MRP<VMP)। यही कारण है कि एकाधिकार के अतर्गत साधनो की अपेक्षाकृत कम मात्रा प्रयोग मे ली जाती है।

3 प्रतियोगी बाजार को एकाधिकार मे परिवर्तित करने पर उपभोक्ताओं को प्राप्त अतिरेक (consumers' surplus) मे काफी कमी हो जाती है। परतु जैसा कि नीचे बतलाया गया है उपभोक्ताओ के अतिरेक मे होने वाली समूति क्षति एकाधिकारी को नही मिलती। अपितु इसका एक भाग अप्रतिभूत क्षति (dead weight loss) के रूप मे नष्ट हो जाता है।

चित्र 14 16 मे बाजार की दो स्थितिया प्रदर्शित की गई है। प्रथम स्थिति यह है जिसमे फर्मे स्थिर लागतो के अतर्गत कार्य कर रही होती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता
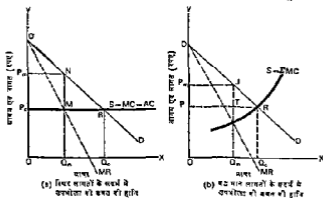
चित्र 14.16 एकाधिकार के अतर्गत उपभोक्ता की बचत का ह्रास

के अतर्गत इसके कारण उद्योग का पूर्ति वक्र क्षैतिज होगा। माग व पूर्ति का सतुलन उत्पादन के OQ_c स्तर पर होता है जहा उपभोक्ता OP_c कीमत चुकाते हैं। उपभोक्ता जब OQ_c इकाइया खरीदते है तो उन्हे प्राप्त कुल उपयोगिता $ODRQ_c$ होती है जबकि वे इसके लिए OP_cRQ_c रुपयो का भुगतान करते हैं। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत उपभोक्ताओ को DP_cR के समान उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है। अब यदि हम माग वक्र DD को एकाधिकारी AR मान लें तो इसका अनुरूपी सीमात आगम वक्र (MR) को अब M बिंदु पर सीमात लागत वक्र (MC=AC) काटता है। उपभोक्ता अब OQ_M इकाइया खरीदते हैं तथा इसके लिए OP_M

कीमत चुकाकर $ODNQ_M$ के समान कुल उपयोगिता प्राप्त करते हैं। उपभोक्ताओं को प्राप्त कुल उपभोक्ता की बचत अब घटकर DP_MN रह जाती है। पाठक देख सकते हैं कि उपभोक्ताओं की बचत में कुल ह्रास P_cP_MNR है $(DP_cR - DP_MN)$ जिसमें से P_MP_cMN तो एकाधिकारी की अतिरिक्त आय के रूप में हस्तांतरित हो जाता है जबकि NMR का अप्रतिभूत क्षति के रूप में लोप हो जाता है।

चित्र 14.16 के पैनल (b) में वर्द्धमान लागतों के संदर्भ में भी यही बात बतलाई गई है। पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उपभोक्ता की कुल बचत DP_cR ही थी तथा उस दशा में उपभोक्ता OQ_c इकाइयाँ OP_c कीमत पर खरीदते थे। इस बाजार को एकाधिकारी के नियंत्रण में देने के बाद उपभोक्ता OQ_M इकाइयों को OP_M कीमत पर खरीदने लगते हैं। उन्हें अब DP_MJ के अनुरूप उपभोक्ता की बचत प्राप्त होती है। कुल उपभोक्ता की बचत में होने वाला कुल ह्रास P_cP_MJR है जिसमें से एकाधिकारी को प्राप्त अतिरिक्त आगम P_cP_mJT है तथा JTR अप्रतिभूत क्षति है। इस प्रकार दोनों ही दशाओं में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि एकाधिकार के कारण उपभोक्ता की बचत का पर्याप्त ह्रास होता है तथा इसका केवल एक अंश ही एकाधिकारी को मिल पाता है, जबकि शेष अप्रतिभूत क्षति के रूप में नष्ट हो जाता है— यह अंश न तो उपभोक्ता के पास रह पाता है और न ही एकाधिकारी फर्म को अतिरिक्त आगम के रूप में यह राशि मिल पाती है।

14.9 एकाधिकारों पर नियंत्रण
(Control of Monopoly)

पिछले अनुभाग में स्पष्ट रूप में यह संकेत दे दिए गए थे कि एकाधिकार से उपभोक्ताओं तथा साधनों के स्वामियों को पर्याप्त हानि होती है। हमने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि एकाधिकार के कारण साधनों के प्रयोग, या रोजगार के स्तर में भी कमी आती है। यही कारण है कि विश्व के लगभग सभी देशों में एकाधिकार पर नियंत्रण लगाना आवश्यक समझा जाता है। इस संदर्भ में बहुधा दो प्रकार की नीतियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। प्रथम विधि के अंतर्गत सरकार एकाधिकारी को प्राप्त लाभ का एक अंश अतिरिक्त करों के रूप में वसूल कर लेती है। द्वितीय, सरकार एकाधिकारी पर कीमत नियंत्रण की नीति इस प्रकार लागू करती है मानो वह एक प्रतियोगी फर्म हो। अब हम इन दोनों विधियों की विस्तृत चर्चा करेंगे।

1 एकाधिकारी फर्म पर करारोपण (Taxation of Monopoly)

एकाधिकारी फर्म पर तीन प्रकार के कर रोपित किए जा सकते हैं। प्रथम, सरकार एकाधिकारी द्वारा अर्जित लाभ का एक अंश आय-कर के रूप में ले सकती है। इस कर का फर्म के औसत व सीमांत लागत वक्रों पर कोई प्रभाव नहीं होता और न ही इससे वस्तु की कीमत प्रभावित होती है। एकाधिकारी इस कर का ... न लाभ में से करते हुए पूर्व जितनी मात्रा का उत्पादन जारी रखता है।

द्वितीय, सरकार एकाधिकारी फर्म पर एकमुश्त कर (lump-sum tax) रोपित कर सकती है अथवा एकाधिकारी फर्म को भारी लाइसेंस फीस देने के लिए बाध्य कर सकती है। यह एकमुश्त कर या लाइसेंस फीस वस्तुत: एक स्थिर लागत का रूप ले लेती है जिसके कारण फर्म का औसत लागत वक्र तो विवर्तित हो जाता है, परन्तु सीमांत लागत वक्र पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। अंत में, सरकार द्वारा एकाधिकारी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु पर उत्पादन कर या बिक्री कर रोपित किए जा सकते हैं। चूंकि उत्पादन या बिक्री कर का उत्पादन की मात्रा से प्रत्यक्ष संबंध होता है, अत इनके रोपण से फर्म के औसत तथा सीमांत लागत वक्र विवर्तित हो जाते हैं तथा वस्तु की साम्य कीमत एवं उत्पादन की मात्रा पर भी प्रतिकूल प्रभाव होते हैं। पिछले अनुभाग में प्रस्तुत उदाहरण को ही लीजिए तथा उसमें यह मान्यता जोड़ दीजिए कि एकाधिकारी पर अब सरकार 12 रुपए प्रति इकाई का उत्पादन-कर (excise duty) रोपित कर देती है। अब फर्म का लाभ फलन इस प्रकार हो जाएगा—

$$- = 100Q - 2Q^2 - [50 + 20Q + 12Q]$$

$$\frac{d-}{dQ} = 100 - 4Q - 32 = 0$$

$Q = 17$ तथा $P = 66$

पाठक नोट कर सकते हैं कि 12 रुपए प्रति इकाई कर लगाने पर एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत 60 रुपए से बढ़कर 66 रुपए हो जाती है जबकि उत्पादन की मात्रा 20 इकाई से घटकर 17 इकाई रह जाती है। एकाधिकारी का लाभ इस दशा में 750 रुपए से घटकर 528 रुपए रह जाता है।
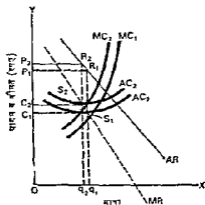
चित्र 14.17 एकाधिकारी फर्म पर उत्पादन कर रोपित करना

यह ज्ञातव्य है कि एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु पर सरकार ने 12 रुपए प्रति इकाई कर लगाया था परन्तु कीमत में केवल 6 रुपए की ही वृद्धि हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि शेष 6 रुपए का भार एकाधिकारी ने स्वयं भुगता है। चित्र 14.17 में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है कि राज्य जितना कर रोपित करता है उसका एक भाग उपभोक्ता पर हस्तांतरित होता है जबकि शेष एकाधिकारी फर्म को वहन करना होता है।

चित्र 14 17 मे औसत व सीमात लागत वक्रो मे जो विवर्तन हुआ है वह वस्तुत उत्पादन-कर की राशि (प्रति इकाई) के समान है। परतु कीमत मे होने वाली वृद्धि P_1P_2 लागत मे हुई वृद्धि की अपेक्षा कम है। अस्तु, कर का एक अश एकाधिकारी द्वारा वहन किया जाता है। परतु चित्र से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जब कीमत OP_1 मे बढकर OP_2 होती है तो एकाधिकारी द्वारा बेची जाने वाली मात्रा Oq_1 से घटकर Oq_2 हो जाती है। एकाधिकारी को प्राप्त लाभ $C_1S_1R_1P_1$ मे घटकर $O_2S_2R_2P_2$ रह जाता है।

2 एकाधिकारी कीमत पर नियत्रण (Regulation of Monopoly Price)

बहुधा सरकार एकाधिकारी फर्म द्वारा निर्धारित की जाने वाली कीमत पर नियत्रण लगा देती है। परतु इस सदर्भ मे काफी सावधानीपूर्वक निर्णय लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि सरकार ऐसा अनुभव करती है कि एकाधिकारी फर्म द्वारा निर्धारित साम्य कीमत "बहुत अधिक" है, और इसलिए यदि अत्यत नीची कीमत की घोषणा कर दी जाती है तो यह भी सभव है कि इससे समस्या और अधिक जटिल हो जाए। उदाहरण के लिए, यदि चित्र 14 18 मे एकाधिकारी फर्म की साम्य कीमत $O\overline{P}$ के स्थान पर सरकार द्वारा OP_1 कीमत लागू कर दी जाए तो इस कीमत पर बाजार माग का स्तर OQ_1 होगा। परतु चूकि यह कीमत सरकार
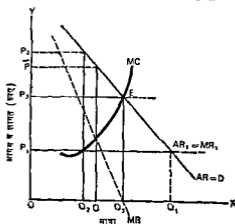
चित्र 14 18 एकाधिकारी कीमत पर नियत्रण

द्वारा निर्धारित है, अत $AR_1 = MR_1 = MC$ के अनुरूप एकाधिकारी फर्म केवल OQ_2 मात्रा का ही उत्पादन करेगा। अस्तु, Q_2Q_1 के समान माग का अतिरेक होगा। उपभोक्ताओं की माग के दबाव के कारण एकाधिकारी उत्पादित मात्रा OQ_2 को ही "काला बाजार" (black market) मे OP_2 कीमत पर बेचेगा। इस प्रकार, ... द्वारा अत्यत नीची कीमत की घोषणा से वस्तु की माग तो बढेगी परतु

उत्पादन मे काफी कमी हो जाने के कारण वस्तु का बाजार प्रारंभ हो जाएगा।

परंतु यदि सरकार एकाधिकारी कीमत पर इस प्रकार अंकुश लगाए मानो यह फर्म पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कार्य करती हो, तो अनेक समस्याएं सुलझ सकती है। उदाहरण के लिए माग वक्र D पूर्ति वक्र (MC) को E बिंदु पर काटता है। पूर्ण प्रतियोगिता का साम्य यही स्थित होगा, यानी OP_3 कीमत पर बाजार मे OQ_3 मात्रा बेची जाएगी। यदि सरकार द्वारा निर्धारित कीमत OP_3 ही हो तो अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु एकाधिकारी इस कीमत पर OQ_3 इकाइया बेचेगा। यहा बाजार की साम्य स्थिति भी होगी क्योंकि वस्तु की कुल माग यहा कुल पूर्ति के समान होगी।

14 10 द्विपक्षीय एकाधिकार
(Bilateral Monopoly)

द्विपक्षीय एकाधिकार किसी बाजार की वह स्थिति है जिसमे एक विक्रेता के समक्ष क्रेता भी एक ही होता है। ऐसे एकाकी क्रेता को एकक्रेताधिकारी (monopsonist) कहा जाता है। चूंकि इस स्थिति मे दोनों ही पक्ष एकाधिकारियो द्वारा नियंत्रित होते हैं, इसे द्विपक्षीय एकाधिकार की सज्ञा दी जाती है।

चित्र 14 19 मे एकक्रेताधिकारी उपभोक्ता का माग वक्र DD या AR है तथा इससे सबद्ध सीमात आगम वक्र MR है। एकाधिकारी फर्म का सीमात लागत
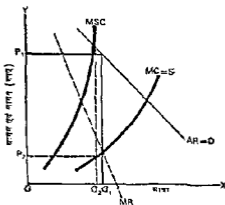
चित्र 14 19 द्विपक्षीय एकाधिकार

वक्र MC भी चित्र मे दर्शाया गया है। यदि एकाधिकारी को ही अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने दिया जाए तो वह OQ_1 इकाइयो का उत्पादन करेगा जहा MC=MR की स्थिति है। इसके विपरीत यदि एकक्रेताधिकारी उपभोक्ता को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने दिया जाए तो वह एकाधिकारी फर्म के MC — पूर्ति वक्र मानते हुए यह समझ लेगा कि यह वक्र इन मात्राओ

है जिन्हे विभिन्न कीमतो पर फर्म बेचने को तैयार है। इससे सबद्ध सीमात वक्र को सीमात पूर्ति लागत वक्र (Marginal Supply Cost Curve or MCS) कहा जा सकता है। एकक्रेताधिकारी (monopsonist) वह मात्रा (OQ_2) खरीदना चाहेगा *जिस पर विक्रेता की सीमात पूर्ति लागत* (MSC) *उसके (एकक्रेताधिकारी) द्वारा* चुकाई जाने वाली कीमत के समान हो। परतु साथ ही वह अपनी एकक्रेताधिकार की शक्ति का परीक्षण भी करना चाहेगा। और इस मात्रा (OQ_2) के लिए वह फर्म को OP_2 कीमत ही चुकाने का प्रयत्न करेगा। अस्तु, एकाधिकारी OQ_1 मात्रा को OP_1 कीमत पर बेचना चाहता है जबकि एकक्रेताधिकारी OQ_2 मात्रा को OP_2 कीमत पर खरीदना चाहेगा। वस्तुत OP_1 व OP_2 के बीच कीमत कहा निर्धारित होगी यह दोनो की सापेक्ष शक्ति पर निर्भर करेगा।

14 11 एकाधिकार का औचित्य
(Desirability of Monopoly)

उपभोक्ताओ तथा साधनों के स्वामियो के हितो पर एकाधिकार के प्रतिकूल प्रभावो की विवेचना करने के पश्चात् यह धारणा बन जाना स्वाभाविक है कि एकाधिकार अपने आप मे बहुत बुरा है, तथा यह कि समाज के आर्थिक कल्याण मे वृद्धि हेतु *पूर्ण प्रतियोगिता को पुन स्थापित किया जाना चाहिए। फिर भी कहीं कहीं ऐसी* परिस्थितिया विद्यमान हो सकती हैं जिनमे प्रतियोगिता मे वृद्धि करना एकाधिकार की अपेक्षा और भी अहितकर होता है। विशेष तौर पर हम ऐसी स्थिति की चर्चा
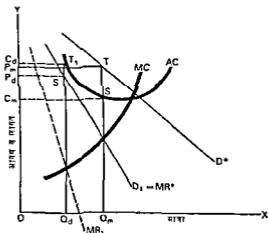
चित्र 14 20 एक छोटे बाजार मे एकाधिकार का औचित्य

कर रहे हैं जहा एक फर्म के पास विद्यमान सयत्र की उत्पादन क्षमता पर्याप्त है परतु बाजार मे माग का स्तर काफी कम है। ऐसी दशा मे फर्म उत्पादन लागत को

वहन करने की स्थिति में तभी हो पाती है जब उसे पर्याप्त मात्रा में उत्पादन करने का अवसर दिया जाए। उदाहरण के लिए, चित्र 14.20 में वस्तु का माग वक्र D^* तथा इससे सबद्ध सीमांत आगम वक्र MR^* है। यदि एक ही फर्म (एकाधिकारी) को उत्पादन करने का अवसर दिया जाए तो वह Q_m मात्रा का उत्पादन करके इस P_m कीमत पर बेचती है। ऐसी दशा में फर्म को $C_m STP_m$ का कुल लाभ प्राप्त होता है।

परंतु यदि इस बाजार में एक फर्म को ग्रौर प्रवेश करने दिया जाए तो अब प्रत्येक फर्म का बाजार में आधा भाग होगा तथा माग वक्र D_1 हो जाएगा। इसका सीमांत आगम वक्र MR_1 होगा जिसे समग्र का सीमांत लागत वक्र उस स्तर पर काटता है जहा फर्म अधिकतम लाभ या न्यूनतम हानि हेतु OQ_d मात्रा का उत्पादन करना चाहेगी। इस स्तर पर वस्तु की कीमत OP_d होगी तथा प्रत्येक फर्म $P_dS_1T_1C_d$ के समान हानि उठाएगी। वस्तु एक छोटे बाजार में एक फर्म (एकाधिकार) का रहना ही उपयुक्त है, तथा दो या अधिक फर्मों के उत्पादन क्रिया में भाग लेने पर प्रत्येक को हानि उठानी पड़ सकती है।

15

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत निर्धारण का सिद्धांत

(THEORY OF PRICE UNDER MONOPOLISTIC COMPETITION)

प्रस्तावना इससे पूर्व के दो अध्यायों में हमने पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत अल्प एवं दीर्घकाल में कीमत का निर्धारण किस प्रकार होता है, इसकी विस्तृत विवेचना की थी। यह कहना अनुचित न होगा कि पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार बाजार की दो चरम (extreme) स्थितियां हैं, तथा एक बाजार दूसरे बाजार से सर्वथा भिन्न है। सस्थापक अर्थशास्त्रियों तथा मार्शल व पीगू जैसे नव-सस्थापक विचारकों ने इसी बात पर बल दिया और कहा कि आर्थिक कल्याण अधिकतम करने हेतु हमें पूर्ण प्रतियोगिता को ही सभी बाजारों में स्थापित करना होगा।

वास्तव में न तो पूर्ण प्रतियोगिता में और न ही एकाधिकार के अन्तर्गत प्रतियोगिता अथवा स्पर्द्धा प्रभावी हो पाती है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत समरूपी वस्तुएं बनाने वाली फर्मों की विशाल संख्या के कारण एक फर्म को वस्तुतः किसी भी प्रतिद्वंद्वी से भय नहीं होता। इस दशा में फर्म दी हुई कीमत पर उतनी ही मात्रा बेचना चाहेगी जिस पर उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इसके विपरीत एकाधिकार के अन्तर्गत केवल एक ही फर्म ऐसी वस्तु का उत्पादन करती है जिसका प्रतिस्थापन साधारणतया सम्भव नहीं हो पाता। इस फर्म को भी किसी प्रतिद्वंद्वी का भय नहीं होता क्योंकि कानूनी या अन्य बाधाओं के कारण बाजार में नई फर्मों का प्रवेश सम्भव नहीं है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार दोनों ही प्रकार के बाजारों में वस्तुतः प्रभावी प्रतियोगिता की कोई आशंका नहीं होती। हां, यह अन्तर अवश्य है कि जहां पूर्ण प्रतियोगी फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है, एक एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में भी पर्याप्त लाभ अर्जित कर सकती है।

वास्तविकता तो यह है कि सस्थापक तथा नव-सस्थापक अर्थशास्त्री कल्पनालोक में ही विचरण करते रहे थे। उन्होंने इस बात को जानने का प्रयास नहीं किया कि वास्तविक बाजार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता की सभी विशेषताएं विद्यमान होती हैं और न ही पूर्ण एकाधिकार की। यथार्थतः बाजार में फर्मों की संख्या कभी भी

इतनी अधिक नहीं होती कि एक फर्म का अस्तित्व गौण हो जाए, और न ही विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं या 3 विक्रेताओं के व्यवहार में कहीं पूर्ण समरूपता दिखाई देती है। यही नहीं, पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत नई फर्मों के प्रवेश अथवा साधनों की पूर्ण गतिशीलता से संबद्ध जो मान्यताएं ली गई हैं वे भी वास्तविकता से काफी दूर हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पूर्ण प्रतियोगिता की अवधारणा मात्र एक कल्पना (myth) है तथा वास्तविकता में इसका कोई संबंध नहीं है।

इसी प्रकार बाजार में कोई भी विक्रेता (एकाधिकारी) इतना अधिक निरंकुश नहीं हो सकता कि वस्तु की मनमानी कीमत वसूल करते हुए भी पर्याप्त मात्रा बेचता रहे। भले ही एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु से मिलती-जुलती वस्तुएं बाजार में उपलब्ध न हों, परन्तु ऐसी वस्तुएं अवश्य मिल जाती हैं जिनका उपभोक्ता कुछ कष्ट उठाकर भी उपभोग करने लगते हैं, और इससे एकाधिकारी को दीर्घकाल में मनमानी करने की छूट नहीं मिल पाती।

सर्वप्रथम 1926 में पीगू ने स्पष्ट किया कि एकाधिकार व पूर्ण प्रतियोगिता दोनों ही स्थितियां वास्तविक बाजार में कदाचित् ही दिखाई देती हों। आगे चलकर एच० होटलिंग तथा जुदन ने भी बतलाया कि वास्तविक बाजार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होती है और न ही शुद्ध एकाधिकार की। उन्होंने कहा कि वस्तुतः बाजार की स्थिति इन दोनों की मिश्रित व्यवस्था को प्रतिबिंबित करती है।

कीमत सिद्धान्त के परम्परागत सिद्धांतों के विरुद्ध वैचारिक क्रांति उस समय अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई जब इंग्लैंड में श्रीमती जोन रॉबिन्सन की पुस्तक 'दी इकोनॉमिक्स ऑफ इम्परफेक्ट कम्पीटीशन' (अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थशास्त्र) तथा अमरीका में प्रोफेसर ई० एच० चेंबरलिन की पुस्तक 'दी थ्योरी ऑफ मोनोपोलिस्टिक कम्पीटीशन' (एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धांत) का 1933 में एक साथ प्रकाशन हुआ। यद्यपि दोनों ही अर्थशास्त्रियों ने यह स्वीकार किया कि वास्तविक बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता अथवा शुद्ध एकाधिकार में से कोई भी स्थिति नहीं पाई जाती, तथापि दोनों के दृष्टिकोण एवं विश्लेषण की विधियों में पर्याप्त अंतर है। हम पहले इन्हीं की चर्चा करेंगे।

15.1 एकाधिकारिक प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता में अंतर
(Distinction between Monopolistic Competition and Imperfect Competition)

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि क्रेताओं की निष्क्रियता अथवा बाजार के विषय में उनके अपूर्ण ज्ञान के कारण कोई भी विक्रेता अन्य विक्रेताओं द्वारा ली जा रही कीमत से भिन्न कीमत वसूल करने में सफल हो जाता है। फर्मों की संख्या काफी अधिक होने, तथा

उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के समरूप होने के बावजूद कोई क्रेता जानबूझकर किसी विशेष फर्म से ही वस्तु खरीदता है, भले ही उसे वस्तु के लिए थोड़ी सी ऊंची कीमत देनी पड़ती हो। श्रीमती रॉबिन्सन ने कहा कि अनेक विकृतियों या अपूर्णताओं के कारण बाजार में विभिन्न विक्रेताओं द्वारा एक ही वस्तु की भिन्न भिन्न कीमतें निर्धारित की जा सकती हैं। ये अपूर्णताएं भिन्न प्रकार की हो सकती हैं (i) विशेष दूकानों या विक्रेताओं के प्रति क्रेताओं की व्यक्तिगत सपत्ति अथवा पसंद, (ii) बाजार में प्रचलित कीमत के विषय में क्रेताओं को सही जानकारी न होना, (iii) वस्तु की क्वालिटी के विषय में विक्रेताओं द्वारा दी जाने वाली गारंटी में अन्तर, (iv) बाजार से दूरी जिसके कारण एक क्रेता समीपस्थ विक्रेता से वस्तु खरीदता है, भले ही वह थोड़ी सी ऊंची कीमत वसूल करता हो (v) विक्रेताओं द्वारा क्रेताओं को दी जाने वाली सुविधाओं के व्यवहार में विद्यमान अन्तर इन सुविधाओं में उधार या किस्तों में बिक्री, शॉपिंग में आराम, बच्चों के लिए खेलने की सुविधाएं आदि शामिल हैं, तथा (iv) विज्ञापन तथा विक्रय कौशल (salesmanship)।

इन कारणों से बाजार में अपूर्णताएं व्याप्त हो जाती हैं तथा प्रत्येक फर्म अपने-अपने ढंग से ग्राहकों को प्रभावित करने लगती है। परिणाम यह होता है कि प्रत्येक फर्म द्वारा निर्धारित कीमत भी भिन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में वस्तु की कीमत बाह्य निर्धारित (exogenously determined) न रह कर फर्म द्वारा निर्धारित हो जाती है तथा फर्म के लिए वस्तु का माग वक्र (AR) क्षैतिज न रहकर (जैसा कि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत होता है) ऋणात्मक ढलानयुक्त हो जाता है। यही स्थिति सीमांत आगम वक्र की भी होती है क्योंकि माग वक्र के ऋणात्मक ढलानयुक्त होने पर सीमांत आगम वक्र उससे अधिक ढलानयुक्त हो जाता है। इस प्रकार, श्रीमती जोन रॉबिन्सन के मत में अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत फर्म किसी सीमा तक एक एकाधिकारी फर्म की भांति व्यवहार करती हुई वस्तु की उतनी मात्रा बेचती है जहां MR=MC की स्थिति हो। फिर भी फर्म की वस्तु का माग वक्र एकाधिकारी के माग वक्र से कम ढलानयुक्त होता है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एकाधिकार की अपेक्षा फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की माग अधिक लोचदार होती है। इसका कारण यही है कि अपूर्णताओं के बावजूद वस्तुओं की समरूपता के कारण क्रेता कीमत में थोड़ी सी कमी से भी माग में पर्याप्त वृद्धि कर सकते हैं।

श्रीमती रॉबिन्सन ने यह भी स्पष्ट किया कि अपूर्णताओं के बावजूद बाज़ार में पर्याप्त प्रतियोगिता विद्यमान है तथा नई फर्मों के प्रवेश की स्वतंत्रता के कारण दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर पाती है।

श्रीमती रॉबिन्सन के विश्लेषण के विपरीत प्रोफेसर चैंबरलिन ने एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धांत प्रतिपादित किया। प्रोफेसर चैंबरलिन ने बतलाया कि बाजार में विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक नहीं होती, अपितु प्रत्येक विक्रेता अपने आप में एकाधिकारी होता है। परंतु विभिन्न विक्रेताओं द्वारा उत्पादित वस्तुएं मिलती-जुलती

होती हैं, और इसलिए प्रत्येक विक्रेता के अधिकार का क्षेत्र अत्यत सीमित रह जाता है।

चेंबरलिन ने स्पष्ट किया कि वास्तविक जगत मे कोई भी फर्म निरपेक्ष रूप मे एकाधिकारी नही होती क्योकि बाजार मे अन्य फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुए इस फर्म द्वारा प्रस्तुत वस्तु की निकट स्थानापन्न (close substitutes) होती हैं। फिर भी विभिन्न फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की विविधता एव विशेषताओं की जानकारी उपभोक्ताओं को प्राप्त होती रहे इसके लिए वे सतत रूप से विज्ञापन एव प्रचार का आश्रय लेती रहती हैं। उपभोक्ताओं की रुचियों एव प्राथमिकताओं के कारण विभिन्न फर्म अपनी वस्तुओं के लिए अलग-अलग कीमत वसूल करने मे सफल हो जाती हैं, हालांकि इन कीमतों मे अधिक अतर नही होता क्योंकि विभिन्न वस्तुओं में भी निकट की स्थानापन्नता है।

श्रीमती रॉबिन्सन एव प्रोफेसर चेंबरलिन के सिद्धातो मे तुलना

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम जोन रॉबिन्सन तथा चेंबरलिन के विचारो मे एक समानता तो अवश्य देखते हैं और वह यह है कि दोनो ही विद्वानों ने शुद्ध एकाधिकार एव पूर्ण प्रतियोगिता के पृथक्-पृथक् अस्तित्व को अवास्तविक एव काल्पनिक मानते हुए दोनों के तत्त्वो को मिलाते हुए कीमत सिद्धात का प्रतिपादन किया। तथापि दोनो के दृष्टिकोण एव विश्लेषण विधि एव प्रयुक्त उपकरणो मे पर्याप्त अतर है।

1 श्रीमती रॉबिन्सन के विचारों का उद्गम पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उत्पन्न अपूर्णताओं से हुआ है जबकि प्रोफेसर चेंबरलिन का सिद्धात इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक विक्रेता एक सीमा तक एकाधिकार का प्रयोग करने मे सक्षम है।

2. श्रीमती रॉबिन्सन के सिद्धात मे वस्तुओं की समरूपता को स्वीकार किया गया है। इसके विपरीत एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धात मे प्रोफेसर चेंबरलिन प्रमुख मान्यता ही वस्तु-विभेद (product differentiation) है।

3 प्रोफेसर चेंबरलिन की मान्यता यह है कि बाजार मे विक्रेताओं की सख्या कम होने पर ही एकाधिकारिक प्रतियोगिता सभव है। इसके विपरीत जोन रॉबिन्सन यह मानती हैं कि बाजार में विक्रेताओं की सख्या काफी अधिक है।

4 श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने अपूर्ण प्रतियोगिता का व्याख्या करते समय ऋणात्मक ढलानयुक्त माग वक्र का प्रयोग किया। इस माग वक्र का ढलान एकाधिकारी के माग वक्र (AR) के ढलान से कम रखा गया। अन्य शब्दो मे, उनके मतानुसार अपूर्णताओं के बावजूद वस्तुओं के मध्य समरूपता होने के कारण एक वस्तु की माग अत्यधिक लोचदार होती है। इस प्रकार जोन रॉबिन्सन ने परपरागत आगम वक्रों एव लागत वक्रों के माध्यम से अपूर्ण प्रतियोगिता की व्याख्या की। उन्होंने किसी नये विश्लेषणात्मक उपकरणों अथवा अवधारणाओं का प्रतिपादन नहीं किया। इसके विपरीत प्रोफेसर चेंबरलिन ने न केवल नए विश्लेषणात्मक उपकरण प्रदान किए

अर्थात् विक्रय लागतों (selling costs) वस्तु विभेद, समूह साम्य (group equilibrium) आदि अनेक नई अवधारणाओं का प्रतिपादन किया।

इतने अधिक अन्तर के उपरांत भी दोनों ही विद्वानों द्वारा यह अवश्य स्वीकार किया गया कि दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।

हम इस अध्याय में एकाधिकारिक प्रतियोगिता की ही व्याख्या प्रस्तुत करेंगे। सर्वप्रथम हम चेंबरलिन द्वारा प्रस्तुत इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करेंगे तथा साथ ही यह भी देखेंगे कि यह सिद्धांत किन मान्यताओं पर आधारित है। इसके पश्चात् हम एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन साम्य का विवरण प्रस्तुत करेंगे।

15.2 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की प्रमुख विशेषताएं (Characteristics of Monopolistic Competition)

प्रोफेसर चेंबरलिन के मतानुसार एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाले बाजार में निम्नांकित विशेषताएं विद्यमान होती हैं—

(i) विक्रेताओं की अपेक्षाकृत कम संख्या—अध्याय 13 में पूर्ण प्रतियोगिता की व्याख्या करते समय यह बतलाया गया था कि उस बाजार में विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि कोई भी एक फर्म बाजार में कीमत को निर्धारित अथवा प्रभावित करने की क्षमता नहीं रखती। इसके सर्वथा विपरीत एकाधिकार के अन्तर्गत बाजार में एक ही फर्म का वर्चस्व रहता है। परन्तु एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या पर्याप्त होने के बावजूद इतनी अधिक भी नहीं होती कि एक फर्म का अस्तित्व गौण हो जाए। प्रत्येक फर्म एक सीमा तक कीमत को प्रभावित करने में सक्षम है।

(ii) वस्तु विभेद[1] (Product Differentiation) : एकाधिकारिक प्रतियोगिता की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक विक्रेता एक विभेदीकृत या अन्य विक्रेताओं से भिन्न वस्तु लेकर बाजार में प्रवेश करता है। चेंबरलिन यह स्वीकार करते हैं कि यह वस्तु-विभेद वास्तविक हो सकता है अथवा काल्पनिक। वस्तु-विभेद वस्तु के कुछ लक्षणों पर आधारित हो सकता है, जैसे (i) पेटेंटकृत लक्षण, (ii) व्यापार चिह्न (trade mark), (iii) पैकिंग की विशिष्टता, (iv) रंग, गुण या डिजाइन, तथा (v) विक्रेता की स्थिति की सुविधा, विपणन कौशल अथवा निष्कपट व्यवहार हेतु उसकी ख्याति। प्रोफेसर चेंबरलिन यह भी मानते हैं कि विभिन्न विक्रेताओं द्वारा क्रेताओं को दी जाने वाली सुविधाओं के कारण भी अनेक क्रेता वस्तुओं की समरूपता के बावजूद विशिष्ट विक्रेता से प्रतिबद्ध हो जाते हैं।

चेंबरलिन का ऐसा मत है कि वस्तु-विभेद या विक्रेताओं के विभेदीकृत व्यवहार के कारण विभिन्न विक्रेता क्रेताओं से भिन्न-भिन्न कीमतें वसूल करते हैं।

यह स्थिति पूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार से सर्वथा भिन्न है जहा समूचे बाजार मे वस्तु की एक ही कीमत प्रचलित रहती है।

(iii) **उद्योग की अवधारणा का कोई महत्व नहीं :** प्रोफेसर चेंबरलिन के मतानुसार जब विभिन्न विक्रेता मिलती जुलती वस्तुओ का उत्पादन करती है तो उद्योग की सीमाओं का निर्धारण करना सभव नही हो पाता। वस्तु-विभेद के कारण यह कहना कठिन है कि 'उद्योग' में किस वस्तु" के निर्माताओं को शामिल किया जाए। मान लीजिए हम 'पुस्तक उद्योग' की व्याख्या करना चाहते हैं। इस उद्योग मे हम पुस्तक प्रकाशको के अनेक समूहो को शामिल कर सकते हैं जैसे हिंदी व अंग्रेजी पुस्तको के प्रकाशक, जासूसी पुस्तको के प्रकाशक, बाल साहित्य के प्रकाशक, धार्मिक पुस्तको के प्रकाशक, आदि। इनमे से प्रत्येक समूह के सदस्यो के बीच भी स्पर्धा होती है जबकि दो समूहो के बीच होने वाली प्रतियोगिता इतनी तीव्र होना जरूरी नही है।

वस्तु विभेद के कारण ही 'फर्नीचर उद्योग', साबुन उद्योग तथा कपडा उद्योग अथवा साबुन उद्योग की चर्चा करना निरर्थक हो जाता है, क्योकि प्रत्येक तथाकथित उद्योग मे एक से अधिक समूह हो सकते है, तथा प्रत्येक समूह मे अनेक फर्में हो सकती हैं जिनमे से प्रत्येक एक विभेदीकृत वस्तु का निर्माण करती है।

चेंबरलिन ने यह भी स्पष्ट किया कि वस्तु विभेद के बावजूद फर्मों के लागत व माग फलन समरूपी होते है। अन्य शब्दो मे, एक समूह की सदस्य फर्मो द्वारा भिन्न प्रकार की वस्तुओ का उत्पादन करने पर भी उनकी उत्पादन लागतें समान होती है।

(iv) उन्होने यह भी बतलाया कि समूह मे नई फर्मों के प्रवेश से कोई बाह्य बचतें (मितव्ययिताए) या अबचतें उत्पन्न नही होती, और इसलिए नई फर्मों के आगमन के बावजूद प्रत्येक फर्म का लागत फलन वही रहता है। परतु समूह मे नई फर्मों के आगमन से फर्म का माग वक्र (AR) नीचे की ओर तब तक विवर्तित होता जाता है जब तक कि प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ (AR=AC) प्राप्त नही हो जाता। उस स्थिति के बाद नई फर्मों का प्रवेश नही होता। यदि नई फर्मों का प्रवेश न हो तब भी प्रत्येक विद्यमान फर्म के कार्यकलापो व नीतियो के कारण उसे दीर्घकाल मे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त हो पाता है।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धात की मान्यताएं

(Assumption underlying the Theory of Monopolistic Competition)

प्रोफेसर चेंबरलिन ने एकाधिकारिक प्रतियोगिता के सिद्धात का प्रतिपादन करते समय अनेक मान्यताए ली हैं, हालांकि ये मान्यताए उनकी पुस्तक मे यत्र तत्र दी गई हैं। उनके सिद्धात की सर्वप्रथम मान्यता यह है कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत अनेक विक्रेता मिलती-जुलती वस्तुओ का उत्पादन करते हैं और इसलिए ये परस्पर निकट की स्थानापन्न वस्तुए हैं। द्वितीय, प्रत्येक फर्म एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत इस विश्वास के साथ कार्य करती है कि उसके क्रियाकलापो

को उसकी प्रतिद्वन्द्वी फर्मों पर कोई भी प्रतिक्रिया नहीं होगी । इसी विश्वास के कारण फर्म कीमत मे थोडी सी कमी करके बिक्री मे पर्याप्त विस्तार की अपेक्षा कर लेती है, जबकि वास्तव मे ऐसा नही हो पाता क्योकि प्रतिद्वन्द्वी भी अपनी अपनी वस्तुओ की कीमतो मे कमी कर देते हैं । इस प्रकार, फर्म को जहा वस्तु की माग अत्यधिक लोचदार होने की अपेक्षा होती है वस्तुत ऐसा नही होता तथा प्रतिद्वन्द्वियो के व्यवहार के कारण वस्तु की माग बेलोच रहती है । इसी के आधार पर चैंबरलिन ने दो माग वक्रो की अवधारणा (The concept of two demand curves) का प्रतिपादन किया । तृतीय, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म केवल कीमत मे परिवर्तन करके ही अपने लाभ म वृद्धि करने का प्रयास करती है। चैंबरलिन की अतिम मान्यता यह है कि प्रत्येक वस्तु समूह का उत्पादन करने वाली फर्मों के लागत तथा माग वक्र एक जैसे हैं । अन्य शब्दो मे, चैंबरलिन के मतानुसार वस्तु-विभेद के कारण वस्तु की उत्पादन लागतो मे कोई अतर नही आता ।

उपरोक्त मान्यताओ की समीक्षा के पश्चात् हम अब यह देखेंगे कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत एक फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति क्योकर निर्धारित होती है । आगे चलकर हम यह देखेंगे कि दीर्घकाल में फर्म का व्यवहार किस प्रकार का होता है तथा वस्तु की कीमत किस प्रकार निर्धारित होती है ।

15 3 एक एकाधिकारिक प्रतियोगी फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति (Short Run Equilibrium of a Firm Under Monopolistic Competition)

जैसा कि इसमे पूर्व बतलाया जा चुका है, अल्पकाल मे एक एकाधिकारिक प्रतियोगी फर्म ठीक एकाधिकारी फर्म की भाति कार्य करती है । चूकि इसके द्वारा उत्पादित वस्तु किन्ही अर्थों मे प्रतिद्वन्द्वी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओ से भिन्न होती है, ऐसी फर्म को एक सीमा तक एकाधिकारिक शक्ति प्राप्त रहती है । फर्म की वस्तु का माग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है तथा फर्म अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु उस सीमा तक उत्पादन करती है जहा सीमान्त लागत वक्र सीमात आगम वक्र को काटता है । अल्पकाल मे फर्म को हानि हो सकती है, बहुत अधिक लाभ हो सकता है अथवा सामान्य लाभ भी अर्जित कर सकती है । परतु दीर्घकाल मे एकाधिकारिक प्रतियोगी फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है ।

प्रोफेसर चैंबरलिन ने ऐसे बाजार मे फर्म की साम्य स्थिति का विवरण दो माग वक्रो के आधार पर किया था । इनकी चर्चा हम आगे करेंगे । वर्तमान सदर्भ मे हम यह मान कर चल रहे हैं कि अल्पकाल मे फर्म का व्यवहार एकाधिकारी फर्म से भिन्न नहीं है । ऐसी स्थिति मे फर्म की साम्य स्थिति किस प्रकार निर्धारित होती है यह चित्र 15 1 से स्पष्ट हो जाता है ।

चित्र 15 1 मे फर्म का माग वक्र एकाधिकारी फर्म के माग वक्र की तुलना मे कम ढलानयुक्त है जो इस बात का प्रतीक है कि फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु अन्य फर्मों

द्वारा प्रस्तुत वस्तुओ की निकट स्थानापन्न होने के कारण वस्तु की माग अत्यधिक लोचदार होती है।

चित्र 15 1 मे फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करके इसे OP_1 कीमत पर बेचती है। इस स्थिति मे फर्म को C_1P_1AB के अनुरूप कुल अल्पकालीन लाभ की प्राप्ति
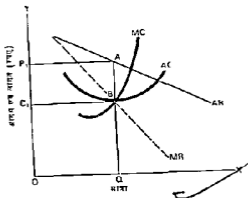
चित्र 15 1 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म की अल्पकालीन साम्य स्थिति

होती है। दीर्घकाल मे नई फर्मों के आगमन तथा/अथवा फर्म की अपनी स्वय की नीतियो के कारण इसको केवल सामान्य लाभ ही मिल पाता है।

15 4 दीर्घकालीन साम्य-स्थिति
(Long Run Equilibrium)

ऊपर यह स्पष्ट कर दिया गया था कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म को सदैव यह भ्रम रहता है कि इसके क्रियाकलापो के प्रति प्रतिद्वद्वी फर्मे उदासीन हैं, और इसलिए यह फर्म कीमत मे तनिक-सी कमी करके वस्तु की माग मे पर्याप्त वृद्धि कर सकती है। चैबरलिन की ऐसी मान्यता है कि समय की अवधि कम होने पर वस्तुत प्रतिद्वद्वी विक्रेता किसी फर्म की गतिविधियो के प्रति उदासीन रह सकते हैं, परतु दीर्घकाल मे वे कदापि उदासीन नहीं रह पाएगे। इसीलिए यदि एक फर्म बिक्री मे काफी वृद्धि करने के उद्देश्य से वस्तु की कीमत मे 2 प्रतिशत की कटौती करती है तो उसकी प्रतिद्वद्वी फर्मे उसकी नीति को असफल बनाने हेतु इतनी ही या इससे अधिक कटौती कर देंगी, या फिर किसी अन्य विधि द्वारा अपने ग्राहको को बाधे रखने का प्रयत्न करेंगी। इसीलिए दीर्घकाल मे फर्म कीमत मे कमी करके किसी बिक्री को कितना बढा पाती है यह इस पर निर्भर करेगा कि प्रतिद्वद्वी फर्मों द्वारा किस प्रकार की जवाबी नीति अपनायी जाती है। द्वितीय, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत दीर्घकालीन साम्य स्थिति का निर्धारण कहा होगा यह इस बात

पर भी निर्भर करता है कि नई फर्मों के प्रवेश को कितनी छूट दी जा रही है। परतु पूर्ण प्रतियोगिता की भाति इस बाजार मे भी हम यही मान्यता लेते हैं कि बाजार मे विद्यमान सभी फर्मों की उत्पादन लागतें एव उनके माग फलन एक जैसे हैं, और इसलिए एक प्रतिनिधि फर्म के व्यवहार का विश्लेषण ही पर्याप्त है।

हम सर्वप्रथम चेंबरलिन द्वारा प्रस्तुत दो माग वक्रों की अवधारणा की व्याख्या करेंगे। *इन दो माग वक्रों की जानकारी एकाधिकारिक प्रतियोगी फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति को समझने हेतु आवश्यक है। इसके पश्चात् हम नई फर्मों के आगमन अथवा फर्मों की इष्टतम सख्या के सदर्भ मे फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।*

अपेक्षित एव वास्तविक माग वक्र
(The Anticipated and the Actual Demand Curves)

पूर्ण प्रतियोगिता की व्याख्या करते हुए हमने यह देखा था कि उस बाजार मे दो प्रकार के माग वक्र होते हैं प्रथम तो उद्योग या समूचे बाजार का माग वक्र होता है, जबकि दूसरा माग वक्र (जो क्षैतिज होता है) एक फर्म से सबद्ध है। फर्म से सबद्ध माग वक्र क्षैतिज इसलिए होता है कि समरूपी वस्तुओ का उत्पादन करने वाली प्रत्येक फर्म बाजार मे माग व पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित कीमत पर ही वस्तु की बिक्री कर सकती है। यदि फर्म कीमत मे वृद्धि करने का प्रयास करती है तो कोई भी क्रेता उस फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु को नहीं खरीदेगा। इसके विपरीत, ऐसे बाजार मे यदि एक फर्म कीमत में कमी करके बेचना चाहती है तो उसकी इस नीति को कदापि विवेकपूर्ण नहीं माना जाएगा।

हम ऊपर यह स्पष्ट कर चुके हैं कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत वस्तुओ की निकट स्थानापन्नता के कारण प्रत्येक विक्रेता इस भ्रम मे रहता है कि वस्तु की कीमत मे थोडी सी कमी करके वह अपनी बिक्री को काफी अधिक बढा सकता है। वह यह सोचता है कि उसके क्रियाकलापो की उसके प्रतिद्वद्वियो पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। यही कारण है कि फर्म का अपेक्षित माग वक्र का ढलान काफी कम रहता है, यानी फर्म की अपेक्षा के अनुसार वस्तु की माग काफी लोचदार रहती है। चित्र 15 2 मे dd फर्म का अपेक्षित माग वक्र (anticipated demand curve) है। फर्म इसी अपेक्षा के साथ कीमत मे कमी करती है कि इससे प्राप्त कुल आगम में काफी अधिक वृद्धि हो जाएगी।

परतु, जैसा कि प्रोफेसर चेंबरलिन ने कहा है, प्रतिद्वद्वी सदा एक-दूसरे के क्रियाकलापो पर दृष्टि रखते हैं। जैसे ही एक फर्म इस भ्रम के साथ कीमत मे कमी करती है कि अन्य फर्मों का उसकी इस क्रिया की ओर ध्यान नहीं है, अन्य फर्में भी कीमतो मे कमी कर देती हैं। परिणाम यह होता है कि फर्म बिक्री मे जितनी वृद्धि की अपेक्षा करती है, वस्तुत उसकी अपेक्षा बिक्री मे बहुत ही थोडी वृद्धि हो पाती है।

अन्य शब्दों में, बिक्री में होने वाली वास्तविक वृद्धि अपेक्षित वृद्धि की तुलना में बहुत ही कम होती है।
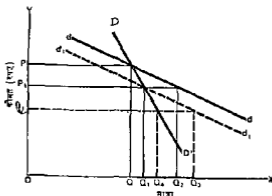
चित्र 15.2 अपेक्षित एवं वास्तविक मांग वक्र

चित्र 15.2 में प्रारंभिक कीमत OP थी जिस पर फर्म OQ मात्रा बेचती थी। मान लीजिए, फर्म कीमत को घटाकर OP_1 कर देती है तथा यह अपेक्षा करती है कि उसकी बिक्री बढ़कर OQ_2 हो जाएगी। वस्तुतः प्रतिद्वंद्वी भी अपनी-अपनी वस्तुओं की कीमतों में कमी कर देते हैं, और इसलिए फर्म की बिक्री OQ से बढ़कर केवल OQ_1 तक ही पहुंच पाती है। दरअसल फर्म इस बात को अनुभव कर ही नहीं पाती कि प्रतिद्वंद्वियों ने कीमतों में कमी केवल प्रतिक्रियास्वरूप ही की है। इसीलिए वह मांग में अपेक्षित वृद्धि एवं वास्तविक वृद्धि के अंतर की पृष्ठभूमि में क्या कारण निहित है इसे कभी नहीं समझ पाती। फर्म पुनः OP_1 से कम करके कीमत को OP_2 करती है क्योंकि अब वह D_1D_1 को अपेक्षित मांग वक्र समझ कर कीमत में कमी करके मांग को OQ_3 तक बढ़ाने की आशा रखती है। परंतु वस्तुतः मांग OQ_4 तक तक ही बढ़ पाती है क्योंकि इस फर्म के साथ ही इसके प्रतिद्वंद्वी भी कीमतों में कटौती करते हैं। अस्तु, फर्म का वास्तविक मांग वक्र DD' ही है जबकि अपेक्षित मांग वक्र इसके सहारे-सहारे नीचे की ओर खिसकता जाता है।

यदि हम रैखिक (linear) मांग वक्रों का उदाहरण लें तो प्रत्येक विक्रेता को प्राप्त कीमत को एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

$$P_i = A_i - a_{ii}\, q_i - \sum_{\substack{j=1 \\ i \neq j}}^{n} b_{ij}\, q_j \quad (i=1,2\ldots,n) \qquad \ldots(15.1)$$

समीकरण 15.1 में P_1 किसी एक प्रतिनिधि फर्म की वस्तु की कीमत है तथा q_1 उसकी बिक्री की मात्रा का प्रतीक है। A_1 तथा a_{11} स्थिर प्राचल (Parameters) हैं। समीकरण के स्वरूप से स्पष्ट है कि माग वक्र का ढलान यानी $\partial P_1/\partial q_1 = -b_{1j}$ है, यानी माग वक्र का ढलान ऋणात्मक है। यह भी इस समीकरण से स्पष्ट होता है कि फर्म को प्राप्त कीमत अन्य फर्मों द्वारा बेची जाने वाली मात्रा Σq_j से प्रभावित होती है। जैसाकि हमने पूर्व में स्पष्ट कर दिया था, सभी फर्मों के माग तथा लागत फलन एक जैसे हैं (यानी $b_{1j}=b$)। यही नहीं, माग फलन का इटर्सेप्ट A_1 भी सभी फर्मों का एक-सा है ($A_1=A$)। अस्तु, समीकरण (15.1) को निम्न रूप म भी व्यक्त किया जा सकता है—

$$P_1 = A - aq_1 - b \sum_{\substack{j=1 \\ 1 \neq j}}^{n} q_j \qquad (15.2)$$

चूकि माग वक्र का ढलान (b) काफी कम है तथा प्रतिनिधि फर्म की बिक्री मे होने वाला प्रत्येक परिवर्तन इसके प्रतिद्वंद्वियो (n—1) को समान रूप स प्रभावित करता है, इस कारण यह अपेक्षा की जा सकती है कि इस फर्म द्वारा कीमत में परिवर्तन स बिक्री की मात्रा पर बहुत थोडा प्रभाव होगा। परतु इससे ठीक भिन्न अपेक्षा के साथ फर्म कीमत मे कमी करती है। जैसा कि स्पष्ट है, फर्म अपने माग फलन मे अन्य विक्रेताओ की प्रतिक्रिया से उत्पन्न प्रभाव को शामिल नही करती। वह $P_1 = A - aq_1$ को ही अपना माग फलन मानती है, और यह अपेक्षा करती है कि कीमत मे कमी करके वह अपनी आय मे पर्याप्त वृद्धि करने मे सफल हो जाएगी। परतु चूकि उसके प्रतिद्वंद्वी भी कीमतो मे कटौती करते हैं, उसका वास्तविक माग वक्र समीकरण (15.2) के अनुरूप होगा। इसे निम्न रूप मे भी प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$P_1 = A - [a + (n-1)b]\, q_1 \qquad \ldots (15.3)$$

जबकि (n—1) म प्रतिनिधि फर्म के अतिरिक्त सभी फर्में शामिल होती हैं तथा इनकी बिक्री की कुल मात्रा काफी अधिक होती है। इसके अनुसार प्रतिनिधि फर्म द्वारा बिक्री मे थोडी भी वृद्धि करने हेतु कीमत मे भारी कटौती की आवश्यकता हो सकती है। सक्षेप म, फर्म के अपेक्षित माग वक्र की तुलना मे वास्तविक माग वक्र वस्तु की बेलोच प्रकृति को दर्शाता है।

नई फर्मों के प्रवेश की आवश्यकता न होने पर दीर्घकालीन साम्य
(Long Run Equilibrium when Entry of New Firms is not Required)

यदि अल्पकाल मे किसी फर्म को अत्यधिक लाभ प्राप्त हो रहे हो तो इसे कीमत मे और अधिक कमी करके अपनी कुल बिक्री एव तदनुसार कुल लाभ को और अधिक बढाने की प्रेरणा प्राप्त होगी। अल्पकालीन लाभ के कारण बाजार मे नई

फर्में भी प्रवेश कर सकती हैं। परन्तु इस अनुभाग मे हम यही मानकर चल रहे हैं कि बाजार मे फर्मों की सख्या पर्याप्त है तथा केवल फर्म की अपनी नीतियां ही कीमत व उत्पादन की मात्रा को प्रभावित कर पाती हैं। अगले अनुभाग मे हम नई फर्मों के प्रवेश के प्रभावों की व्याख्या करेंगे।

चित्र 15 3 मे बतलाया गया है कि प्रारंभ मे फर्म OP_1 कीमत पर Oq_1 मात्रा बेचती थी। फर्म इस बात को जानती है कि नई फर्मों का बाजार मे आगमन नही होगा। अत वह कीमत को OP_2 तक घटाकर बिक्री को Oq'_2 तक बढाने का
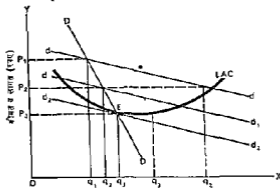
चित्र 15 3 नई फर्मों का आगमन न होने पर एकाधिकारिक प्रतियोगिता

प्रयास करती है। जैसाकि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं, फर्म का अपेक्षित माग वक्र dd है। परतु प्रतिद्वंद्वी फर्मों द्वारा भी कीमत मे कमी करने के कारण फर्म की बिक्री Oq_2 तक ही बढ पाती है। पुन फर्म d_1d_1 को अपना (अपेक्षित) माग वक्र समझते हुए कीमत का OP_3 तक घटाकर बिक्री Oq'_3 तक बढाने का प्रयत्न करती है परतु वस्तुत वह Oq_3 मात्रा ही बेच पाती है। चित्र 15 3 मे E बिंदु पर पहुचने के बाद फर्म का कीमत मे कटौती करके बिक्री मे वृद्धि करने का उत्साह समाप्त हो जाता है। क्योकि E पर फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है ($P_3=LAC$) तथा कीमत मे इसके बाद कमी करने पर उसे हानि ही होगी। अस्तु फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति E होगी जहा वह सामान्य लाभ प्राप्त करती है।

नई फर्मों के प्रवेश के साथ दीर्घकालीन साम्य स्थिति
(Long Run Equilibrium with Entry of New Firms)

अब हम एकाधिकारिक प्रतियोगिता की उस स्थिति का विश्लेषण करेंगे जिसमे अल्पकालीन लाभ के कारण बाजार म नई फर्मों को प्रवेश की छूट प्राप्त है। पूर्व की भाति हम यह मान लेते है कि अल्पकाल मे प्रत्येक फर्म को पर्याप्त लाभ प्राप्त हो रहे हैं। इसके कारण बाजार मे जैसे-जैसे नई फर्में प्रवेश करती हैं, एक प्रतिनिधि

में का माग वक्र बाईं ओर विवर्तित होता जाता है क्योंकि बाजार पर फर्म का अधिकार उत्तरोत्तर सीमित होता जाता है। अत मे माग वक्र $D_F D_F$ पहुचने पर, नई फर्मों का प्रवेश रुक जाता है। यहा फर्मों की अधिकतम सख्या मानी जा सकती है। इस स्थिति मे फर्म की साम्य स्थिति G है तथा वह OP_1 कीमत पर Oq_1 मात्रा बेचती
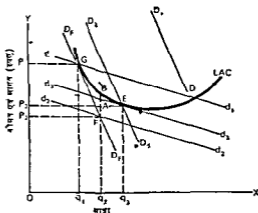
चित्र 15 4 नई फर्मों के प्रवेश के साथ एकाधिकारिक प्रतियोगी फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति

है। परतु G को फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति नही माना जा सकता। फर्म $d_1 d_1$ को अपना (अपेक्षित) माग वक्र समझ कर कीमत मे कमी करती है और यह अपेक्षा करती है कि लागत (LAC) मे कीमत की अपेक्षा अधिक कमी होने के कारण वह अधिक मात्रा को बेचकर भी पर्याप्त लाभ अर्जित कर सकेगी। वस्तुत, जैसा कि पूर्व मे भी बतलाया जा चुका है, प्रतिद्वद्वियो के व्यवहार के कारण बिक्री मे पर्याप्त (अपेक्षित) वृद्धि नही हो पाती तथा अपेक्षित माग वक्र वास्तविक माग वक्र $D_F D_F$ के सहारे सहारे खिसकता जाता है। जब फर्म A बिंदु पर पहुच जाती है तो कीमत OP_2 रहती है, परतु इस स्तर पर इसे प्रति इकाई BF रुपए की हानि होने लगती है ($LAC > OP_2$)। ऐसी दशा मे दो क्रियाएं एकसाथ सपादित होगी। प्रथम तो यह कि कुछ फर्मे बाजार छोडकर चली जाएगी जिसके कारण वास्तविक माग वक्र $D_2 D_2$ हो जाएगा। द्वितीय बात यह होगी कि फर्म वस्तु की कीमत मे थोडी सी वृद्धि करेगी जिसके कारण उसका अपेक्षित माग वक्र $d_3 d_3$ हो जाएगा। फलत फर्म E बिंदु पर पहुच जाएगी जहा कीमत एव औसत लागत समान हो जाती हैं, यानी फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होने लगता है।

चित्र 15 3 एव चित्र 15 4 दोनों ही मे फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति मे इसे केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है। वस्तुत यह फर्म की ही नही, समूचे

समूह की भी साम्य स्थिति (Group Equilibrium) है क्योंकि इस स्थिति मे पहुचने के बाद न तो विक्रेताओ की सख्या मे कोई परिवर्तन हो पाएगा, और न ही फर्म को कीमत मे कमी करने का कोई उत्साह होगा।

15 5 विपणन लागतें एवं उनके प्रभाव
(Selling Costs and Their Implications)

अनुभाग 15 2 मे हमने स्पष्ट किया था कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता का आधार ही वस्तु-विभेद होता है, भले ही वस्तु-विभेद वास्तविक हो या काल्पनिक। यह भी ऊपर स्पष्ट कर दिया गया था कि वस्तु-विभेद के कारण प्रत्येक फर्म को विज्ञापन या प्रचार पर धनराशि व्यय करनी होती है। जैसाकि स्वाभाविक है, पूर्ण प्रतियोगिता अथवा शुद्ध एकाधिकार मे फर्म को वस्तु का विज्ञापन करने की कोई आवश्यकता नही होती। पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत तो इसलिए कि इस बाजार मे सभी विक्रेता समरूपी वस्तुए बेचते हैं, और एकाधिकार के अतर्गत इसलिए कि यहा एक ही विक्रेता विद्यमान रहता है।

अस्तु, विपणन लागतो का एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत एक विशेष महत्व है। फर्म विज्ञापन के माध्यम से अपनी वस्तु की विशिष्टताओ से उपभोक्ताओं को परिचित कराती है और इस प्रकार वस्तु की माग मे वृद्धि कर सकती है। वस्तुत. विज्ञापन या विपणन लागतो के द्वारा पुराने तथा नए ग्राहको को वस्तु की अधिक मात्रा खरीदने की प्रेरणा दी जाती है। अन्य शब्दो मे, विज्ञापन के माध्यम से माग वक्र मे विवर्तन लाया जा सकता है।

विज्ञापन के माध्यम से फर्म अपनी वस्तु के विशेष लक्षणो या गुणो का प्रचार ही नही करती, अपितु वस्तु की कीमत के विषय मे उपभोक्ताओ को जानकारी भी प्रदान करती है। विभिन्न फर्मों के विज्ञापन देखकर नए उपभोक्ता भी यह निर्णय ले सकते हैं कि वस्तु किस फर्म से खरीदी जाए।

प्रोफेसर चैम्बरलिन ने विपणन लागतो मे केवल उन्ही लागतो को शामिल किया है जिनके कारण माग वक्र मे विवर्तन होता है। उदाहरण के लिए परिवर्तन, भडारण एव लदान सबधी व्यय उत्पादन लागत का ही एक अश है तथा इनके कारण वस्तु की उपयोगिता मे पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। परतु ये लागतें वस्तु की पूर्ति मे वृद्धि करती हैं, जबकि विज्ञापन सबधी लागतें वस्तु की माग को बढाती हैं। चैम्बरलिन ने यह भी तर्क दिया कि वस्तु का निर्माता, थोक व्यापारी, खुदरा व्यापारी, बडा विक्रेता एव छोटा विक्रेता, ये सभी भिन्न-भिन्न प्रकार से विज्ञापन करके अपने उद्देश्यो की पूर्ति करते हैं। परतु चैम्बरलिन ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि प्रारभ मे विज्ञापन से वस्तु की माग मे अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से वृद्धि होती है, परतु धीरे-धीरे विज्ञापन का प्रभाव कम होने के कारण विज्ञापन के कारण मांग मे होने वाली वृद्धि कम होती जाती है।

इष्टतम विज्ञापन-लागत स्तर का निर्धारण
(Determination of the Optimum Selling Costs Outlay)

प्रोफेसर बॉमोल[2] की ऐसी मान्यता है कि कोई फर्म किस सीमा तक विज्ञापन पर धनराशि व्यय करेगी यह उसके उद्देश्यो पर भी निर्भर करता है। फर्म का उद्देश्य बिक्री या लाभ की अधिकतम राशि प्राप्त करना हो सकता है। वे भी *चेम्बरलिन की भांति यह बतलाते हैं कि विज्ञापन के कारण प्रारभ मे कुल आगम* बढती हुई दर से बढता है, परतु एक सीमा के पश्चात् फिर विज्ञापन के बावजूद कुल बिक्री मे धीमी गति से वृद्धि होने लगती है। इसीलिए विज्ञापन व्यय का एक स्तर अवश्य ऐसा होता है जहा इसके कारण कुल आगम मे होने वाली वृद्धि एव अतिरिक्त विज्ञापन व्यय समान होते हैं। इसी स्तर पर विज्ञापन के कारण फर्म को होने वाल लाभ अधिकतम होता है।
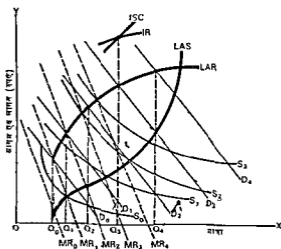
चित्र 15 5 विपणन लागतो का इष्टतम स्तर एव उनके प्रभाव

चित्र 15 5 मे पाच माग वक्र (D_0 से D_4) एव तत्सबधी पाच सीमात आगम वक्र (MR_0 स MR_4) प्रस्तुत किए गए हैं, तथा चार औसत विज्ञापन लागत व्यय (S_0 से S_3) भी प्रस्तुत किए गए हैं। प्रारभिक माग वक्र D_0 था परतु यह मान्यता ली गई है कि विज्ञापन व्यय के साथ-साथ माग वक्र मे (तथा तदनुसार सीमात आगम वक्र मे) विवर्तन होता जाता है।

पहले S_0 मे सबद्ध विज्ञापन व्यय के कारण माग वक्र D_0 से विवर्तित होकर

[2] William J Baumol, 'Economic Theory and Operations Analysis' (Third Edition), p 327

D_1 होता है। इसी प्रकार S_1 के कारण माग वक्र D_2 होगा तथा S_2 व S_3 से सबद्ध माग वक्र क्रमश D_3 व D_4 होगे। यह हम चित्र मे देख सकते हैं कि उत्तरोत्तर औसत विज्ञापन लागत मे वृद्धि होती जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि एक सीमा के तुरत बाद ही विज्ञापन से उत्तरोत्तर ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होते जाते हैं और इसके फलस्वरूप कुल आगम मे घटती हुई दर से वृद्धि होती है जो कि LAR वक्र की आकृति से स्पष्ट है। इसके विपरीत LAS वक्र का ढलान एक बिंदु के बाद बढने लगता है जो इस बात का प्रतीक है कि बिक्री मे उतनी ही वृद्धि हेतु फर्म को उत्तरोत्तर अधिक विज्ञापन व्यय वहन करना होगा।

विज्ञापन व्यय का इष्टतम स्तर उत्पादन या बिक्री के उस स्तर (OQ_3) पर होगा जहा LAR (कुल आगम) तथा LAS (विज्ञापन व्यय सहित कुल लागत) का अतर अधिकतम है। जैसा कि हम चित्र 15 5 मे देखते हैं इसी उत्पादन स्तर पर सीमात विज्ञापन लागत (ISC) तथा सीमात आगम (IR) मे समानता है। इस प्रकार OQ_3 वह उत्पादन-स्तर है जहा फर्म की विज्ञापन व्यय की राशि इष्टतम होगी तथा इसके बाद विज्ञापन पर व्यय किया गया प्रत्येक रुपया अपेक्षाकृत कम प्रतिफल देगा और इससे उसके लाभ म कमी होती जाएगी।

15 6 एकाधिकारिक प्रतियोगिता एव अधिक्षमता
(Monopolistic Competition and Excess Capacity)

अध्याय 13 मे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत प्रत्येक फर्म इस स्तर पर उत्पादन करती है जहा दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) न्यूनतम हो। परतु इस 'इष्टतम" स्तर पर फर्म तभी उत्पादन कर सकती है जब माग वक्र क्षैतिज (horigontal) हो। इसके विपरीत जब माग वक्र का ढलान ऋणात्मक होता है तो इष्टतम स्तर पर माग वक्र न्यूनतम दीर्घकालीन लागत वक्र को कदापि स्पर्श नहीं कर सकता, और इसके फलस्वरूप एकाधिकार या एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म को इष्टतम से कम स्तर पर उत्पादन करना होता है। इष्टतम स्तर तथा उत्पादन के वास्तविक स्तर का अतर ही अधिक्षमता कहलाती है।

प्रोफेसर केशव ने बतलाया है कि अधिक्षमता को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—प्रथम, वह अधिक्षमता जो समाज की दृष्टि मे अनुपयुक्त है, तथा द्वितीय फर्म जिसे अपनी दृष्टि मे अधिक्षमता मानती है। चित्र 15 6 मे E_p वह साम्य स्थिति है जिसमे कीमत-प्रतियोगिता तथा फर्मों के मुक्त प्रवेश के अतर्गत फर्म अतत पहुच जाती है। यह चित्र 15 4 की दीर्घकालीन साम्य स्थिति E के ही अनुरूप है। इस स्थिति मे फर्म OQ_p मात्रा मे उत्पादन करती है। परतु यदि फर्म पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार मे कार्यरत होती तो उसकी साम्य स्थिति इष्टतम स्तर पर यानी उस स्तर पर होती जहा दीर्घकालीन औसत लागत न्यूनतम होती। यह स्थिति E_0 हो सकती थी जहा फर्म OQ_0 मात्रा का उत्पादन करने की स्थिति मे थी। यही नही,

यदि फर्म दिए हुए प्लाट का भी दृष्टतम उपयोग करे तो T बिंदु पर न्यूनतम औसत लागत पर OQ_P मात्रा का उत्पादन कर सकती है।
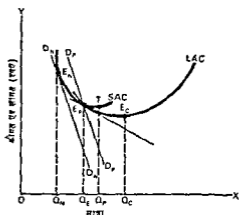
चित्र 15 6 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत अधिक्षमता

इस प्रकार दिए हुए प्लाट पर फर्म की उत्पादन अधिक्षमता Q_EQ_P होगी, परतु समाज की दृष्टि में फर्म की उत्पादन अधिक्षमता न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत के अनुरूपी उत्पादन (OQ_C) तथा OQ_P के अतर के समान होगी। यह अधिक्षमता चित्र 15 6 मे Q_PQ_C है। अस्तु, कुल अधिक्षमता $Q_PQ_C+Q_EQ_P=Q_EQ_C$ है जिसमे से Q_PQ_C समाज की दृष्टि मे अधिक्षमता है जबकि फर्म की दृष्टि में अधिक्षमता Q_EQ_P होगी।

प्रोफेसर चेंबरलिन ने तर्क दिया कि उपभोक्ता स्वय वस्तु विभेद चाहते हैं, और इसीलिए फर्म का माग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है, जो वस्तुत. अधिक्षमता के अस्तित्व का मूल कारण है। उत्पादन का वास्तविक स्तर OQ_E को प्रोफेसर चेंबरलिन "एक प्रकार से आदर्श उत्पादन स्तर" (A sort of ideal output) मानते हैं क्योकि निर्दिष्ट परिस्थितियो मे फर्म इससे अधिक उत्पादन कर ही नही सकती। Q_EQ_C के समान अधिक्षमता इस प्रकार वस्तु-विभेद की ही देन कही जाएगी।

आगे प्रो० चेंबरलिन बतलाते हैं कि अनेक कारणों से फर्म इस तथाकथित "आदर्श" स्तर के उत्पादन को भी प्राप्त नही कर पाती। विभिन्न विक्रेताओं के मध्य कीमत सघर्ष को टालने हेतु एक समझौता हो सकता है। यद्यपि प्रारंभ मे वस्तु-समूह छोटा होने पर नई फर्मों को प्रवेश की छूट हो सकती है, परतु एक सीमा के पश्चात् वे "जीओ और जीने दो" की भावना को लेकर नई फर्मों के प्रवेश पर रोक लगा सकती हैं और साथ ही कीमत सघर्ष को टालने का निर्णय ले सकती हैं। ऐसी स्थिति मे प्रत्येक फर्म का माग वक्र D_ND_N होगा (चित्र 15 6) तथा अपेक्षित माग वक्र का

स्थान गौण हो जाएगा। ऐसी दशा मे फर्म की साम्य स्थिति E_N पर होगी तथा यह केवल OQ_N मात्रा का उत्पादन करेगी। इस स्थिति मे फर्म की अपनी दृष्टि मे अधिक्षमता का माप Q_NQ_P होगा, तथा कुल अधिक्षमता Q_NQ_C होगी। चैंबरलिन इसीलिए यह भी तर्क देते है कि ऋणात्मक ढलान वाले माग वक्र के साथ साथ **कीमत सघर्ष का अभाव** भी अधिक्षमता का एक प्रमुख कारण हो सकता है। यदि कीमत-सघर्ष की अनुमति दी जाए तो प्रत्येक फर्म E_P पर OQ_E मात्रा का उत्पादन करना चाहेगी। परतु बहुधा फर्मे परस्पर समझौते के द्वारा अत्यल्प मात्रा म उत्पादन करके ऊंची कीमत पर वस्तु को बेचना चाहती है, और इस प्रकार अधिक्षमता बनाए रखती हैं।

15 7 एकाधिकारिक प्रतियोगिता के प्रभाव
(Effects of Monopolistic Competition)

इस अनुभाग म हम पूर्ण प्रतियोगिता एव एकाधिकार के साथ एकाधिकार या *अपूर्ण प्रतियोगिता* की तुलना करेंगे। *प्रथम बात तो यह है कि एक* एकाधिकारिक प्रतियोगिता वाले बाजार मे फम द्वारा पूर्ण प्रतियोगी फर्म की तुलना मे उत्पादन की *कम मात्रा तैयार की जाती है, परतु निस्सदेह इसके उत्पादन का स्तर प्रतियोगी फर्म* के स्तर की अपेक्षा अधिक होता है।
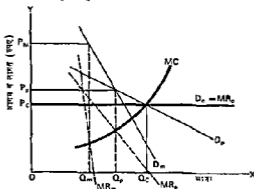
चित्र 15 7 विभिन्न बाजारों मे उत्पादन तथा कीमतों का निर्धारण

चित्र 15 7 मे पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार का माग वक्र फर्म के लिए $D_c = MR_c$ है तथा दी हुई कीमत OP_c पर फर्म OQ_c मात्रा बेचती है जहा फर्म की सीमात लागत व कीमत ($D_c = MR_c$) मे समानता है। यदि यही बाजार एकाधिकारी के नियत्रण मे हो तो माग वक्र D_M व सीमात आगम वक्र MR_M होगा। सीमात लागत व सीमात आगम की समानता अब OQ_M उत्पादन-स्तर पर होगी जहा एकाधिकारी फर्म OP_M कीमत वसूल करती है। परतु यदि एकाधिकारिक या अपूर्ण प्रतियोगिता वाली फर्म के माग वक्र D_P के अनुरूपी सीमात आगम वक्र MR_P को देखा

जाए तो फर्म का उत्पादन स्तर OQ_P व कीमत OP होगी। अस्तु, अपूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार मे कीमत एकाधिकार की अपेक्षा कम होती है परतु पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा कीमत का स्तर अधिक होता है ($OP_C < OP_P < OP_M$, परतु $OQ_C > OQ_P > OQ_M$)।

द्वितीय बात यह है कि ऋणात्मक ढलानयुक्त माग वक्र के कारण एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म के पास बहुधा अधिक्षमता (excess capacity) विद्यमान रहती है। जैसा कि ऊपर बताया गया था (अनुभाग 15 6) पूर्ण प्रतियोगिता मे फर्म न केवल सामान्य लाभ अर्जित करती है, अपितु इष्टतम पैमाने पर भी उत्पादन करती है ($P=LAC=SAC=SMC=LMC=MR$) जहा दीर्घकालीन औसत लागत न्यूनतम होती है। यदि बाहर से फर्मों का आना सभव न हो तो एकाधिकारिक प्रतियोगी फर्म सामान्य लाभ अर्जित करते हुए भी इष्टतम स्तर से बहुत कम उत्पादन करती है।

तीसरी बात यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार दोनो ही स्थितियों मे फर्म को अपनी वस्तु के लिए विज्ञापन करने की आवश्यकता नही होती। परतु एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत वस्तु विभेद के कारण विज्ञापन एव प्रचार-प्रसार पर फर्म को काफी राशि व्यय करनी होती है। वस्तुत विज्ञापन का उद्देश्य केवल वस्तु के गुणो, इसकी कीमत या उपलब्धि के स्थान के बारे मे जानकारी देना ही नही होता। बोल्डिग का तर्क है कि दुर्भाग्य से प्राय अधिकाश विज्ञापनो के द्वारा उपभोक्ताओ के मस्तिष्क मे विशेष ब्राड की वस्तुओ के प्रति अविवेकपूर्ण प्राथमिकताए उत्पन्न कर दी जाती हैं।[3] वे यह बतलाते हैं कि साधनो के प्रयोग की दृष्टि से एकाधिकार अथवा अल्पाधिकार की स्थिति एकाधिकारिक प्रतियोगिता से बेहतर होती है।

यही नही, एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत जो अधिक्षमता विद्यमान रहती है वह भी वस्तु विभेद से उत्पन्न एक सामाजिक लागत (social cost) है जिसे उपभोक्ता या पूरा समाज वहन करता है।

इसके बावजूद एकाधिकारिक प्रतियोगिता मे कुछ नैतिक गुण विद्यमान हैं जिन्हें देखकर ही इस बाजार के विषय मे निश्चित मतव्य बनाना चाहिए। इस बाजार मे उपभोक्ताओ को अपनी रुचि एव पसद के अनुसार वस्तुए उपलब्ध हो जाती हैं। जैसा कि हम जानते हैं, पूर्ण प्रतियोगिता या शुद्ध एकाधिकार मे उपभोक्ता की अपनी रुचि का कोई महत्त्व नही होता, तथा उसे बाजार मे उपलब्ध वस्तु ही खरीदनी होती है। यही नही, अखबारो, विविध-भारती तथा अन्य माध्यमो से विभिन्न प्रकार की वस्तुओ का जो प्रचार प्रसार किया जाता है, वह उपभोक्ताओ को पर्याप्त जानकारी देने के अतिरिक्त उन्हें सस्ता मनोरजन भी प्रदान करता है।

3 K. E Boulding, Economic Analysis, Vol I Micro economics (Fourth Edition), Harper and Row (Reprint, 1955), p 513

16

अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण

(THEORY OF PRICE UNDER OLIGOPOLY)

प्रस्तावना

इससे पूर्व के तीन अध्यायो मे यह बतलाया गया था कि बाजार मे विद्यमान फर्म कीमत तथा उत्पादन की मात्रा का निर्धारण करते समय अन्य फर्मों के व्यवहार की सर्वथा उपेक्षा करती है। अन्य शब्दो मे, पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार अथवा एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म स्वतत्र रूप से निर्णय लेती है। न तो इस के निर्णयो का प्रतिद्वद्वी फर्मों पर कोई प्रभाव होता है और न ही फर्म की निर्णय प्रक्रिया उनके व्यवहार से प्रभावित हो पाती है। यहा तक कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत दो माग वक्रो (अध्याय 15) का विश्लेषण करते समय भी हमने यह स्पष्ट किया था कि फर्म अपने प्रतिद्वद्वियो पर होने वाली प्रतिक्रिया की उपेक्षा करके कीमत मे कमी करती है।

वस्तुत यह सब भ्रातिपूर्ण एव अस्वाभाविक प्रतीत होता है। यदि बाजार मे विक्रेताओ की सख्या बहुत अधिक हो तो सभवत फर्म स्वतत्र रूप से निर्णय लेने मे सक्षम हो सकती है। परतु यदि फर्मों की सख्या बहुत सीमित हो तो व्यवहार मे प्रत्येक फर्म के किसी निर्णय का इसके प्रतिद्वद्वियो पर तो प्रभाव होगा ही, इसके प्रतिद्वद्वियो द्वारा लिए गए निर्णयो के इस फर्म पर भी दूरगामी प्रभाव होंगे। इस स्थिति को अर्थशास्त्रियो ने "परस्पर निर्भरता" (interdependence) की सज्ञा दी है। बाजार मे विद्यमान सभी विक्रेता इस परस्पर निर्भरता को अनुभव करते है एव इसके अनुरूप ही कीमत एव उत्पादन सबधी निर्णय लेते हैं। परतु परस्पर निर्भरता की यह स्थिति तभी विद्यमान रहेगी जब विक्रेताओ की सख्या बहुत कम हो। इसीलिए इस स्थिति को अल्पाधिकार (Oligopoly) की सज्ञा दी जाती है।

16 1 अल्पाधिकार एवं एकाधिकारिक प्रतियोगिता मे अंतर

(Oligopoly Distinguished from Monopolistic Competition)

पिछले अध्याय के अनुभाग 15 5 मे बताया गया था कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म हमेशा इस भ्रम के साथ कीमत मे कमी करती है कि इससे

वह अपने प्रतिद्वंद्वियो (जो स्वय कीमतो मे कमी नहीं करते) के ग्राहको को भी आकृष्ट करके बिक्री मे पर्याप्त वृद्धि करने मे सफल हो जाएगी। परतु वस्तुत फर्मों की सख्या कम होने पर प्रत्येक फर्म को यह अनुभूति अवश्य हो जाती है कि बाजार माग का एक बडा भाग इसके प्रतिद्वंद्वियो के नियत्रण मे है और वे कदापि इसका कोई भी अश नही खोना चाहेंगे। फर्म यह भी जानती है कि प्रतिद्वंद्वियो की दृष्टि इसके क्रियाकलापो पर है, तथा वे इसकी प्रत्येक आक्रामक नीति के प्रत्युत्तर म प्रतिरक्षात्मक एव आक्रामक नीतियां अपनाने को तत्पर रहते हैं। इस प्रकार अल्पाधिकार के अतर्गत जो परस्पर निर्भरता की स्थिति रहती है वह एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत विद्यमान नही होती (कम स कम फर्म तो ऐसा ही समझती है)।

16 2 अल्पाधिकार 'समस्या"
(The Oligopoly 'Problem")

पूर्ण प्रतियोगिता एव एकाधिकार वाल बाजारो मे अन्य बातो के यथावत् रहते हुए बहुधा हमे स्थिर समाधान (Stab'e solution) प्राप्त हो जाते हैं। अन्य शब्दो मे, *माग व कीमत फलनो के यथावत्* रहत हुए हम *प्रत्येक फर्म के सदर्भ मे* साम्य कीमत तथा साम्य मात्रा का पता लगा सकते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म उत्पादन के उस स्तर पर अधिकतम लाभ प्राप्त करती है जहा कीमत (P=MR) तथा सीमात लागत मे समानता हो। पूर्ण प्रतियोगिता के अतगत कीमत का निर्धारण बाह्य रूप स (Exogenously) कुल माग व कुल पूर्ति के द्वारा ही होना है एव फर्म इसे किसी भी प्रकार से घटा या बढा नहीं सकती।

जब हम अल्पाधिकार वाले बाजार मे परस्पर निर्भरता का समावेश कर देते हैं तो हम यह स्वीकार करते हैं कि अत्यत अल्प सख्या मे होने के कारण फर्मों के लिए एक-दूसरे पर दृष्टि रखना सभव हो सकता है। ऐसी स्थिति मे जैसे ही एक फर्म कीमत मे कमी करती है, अन्य फर्में भी अपनी वस्तुओं की कीमतें घटा देती हैं। इसके फलस्वरूप फर्म के माग वक्र का वस्तुत क्या स्वरूप होगा। यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। प्रत्येक फर्म जीवन पर्यंत प्रतिद्वद्वी फर्मों के सभावित व्यवहार का अनुमान लगाती रहती है। वह यह नही जानती कि उसके द्वारा कीमत मे 5 या 10 प्रतिशत कमी करने पर उसके प्रतिद्वद्वी कौन सी जवाबी कार्रवाई कर बैठेंगे, तथा अतत उसे कितनी अतिरिक्त आय प्राप्त होगी। इसी प्रकार किसी भी अन्य फर्म द्वारा कब कीमत मे कितनी कमी की जाएगी, या बिक्री बढान हेतु वह कब कौन सी विधि अपनाएगी, यह भी पूर्वानुमान नही किया जा सकता। फिर भी फर्म को प्रतिरक्षात्मक नीतियो की एक सूची हमेशा तैयार रखनी होती है ताकि समय-समय पर वह इनका प्रयोग कर सके। इसके निर्णय के प्रत्युत्तर मे प्रतिद्वंद्वियो की कौन सी नीतिया प्रयोग मे ली जाएगी, अथवा प्रतिद्वद्वी फर्मों की प्रमुख नीतियो के प्रत्युत्तर में फर्म के लिए कौन सी नीति अपनाना उपयुक्त रहेगा यह सब अनिश्चित रहता है। यही कारण है कि अल्पाधिकार की दशा मे फर्म की स्थिर साम्य-स्थिति का निर्धारण

नहीं हो पाता और एक प्रकार की अनिश्चितता का वातावरण बना रहता है। इसी अनिश्चितता को अल्पाधिकार की समस्या कहा जाता है।

अल्पाधिकार-समस्या के प्रति संभावित दृष्टिकोण
(Possible Approaches to the Oligopoly Problem)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, अल्पाधिकार-समस्या का उद्गम विभिन्न फर्मों के व्यवहार में विद्यमान परस्पर निर्भरता में निहित है। ऐसी स्थिति में कोई भी फर्म कीमत व उत्पादन के उस स्तर का पूर्व-निर्धारण नहीं कर सकती जहां उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकता हो। प्रोफेसर बॉमोल के मतानुसार इस भ्रम एवं अनिश्चितता की स्थिति में फंसी हुई फर्म के समक्ष तीन विकल्प हो सकते हैं[1]—

(i) **परस्पर निर्भरता की उपेक्षा कर दें**—अल्पाधिकार के अंतर्गत विद्यमान अनिश्चय की स्थिति से निकलने का सबसे सरल एवं सुविधापूर्ण उपाय यह हो सकता है कि फर्म यह सोच ले कि वह स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने में समर्थ है, तथा यह भी कि उसके प्रतिद्वंद्वी भी स्वतंत्र रूप से ही निर्णय लेंगे। ऐसी दशा में प्रत्येक फर्म सीमांत उत्पादन लागत (MC) एवं सीमांत आगम के अनुरूप उतनी मात्रा का उत्पादन करेगा जहां इसके लाभ अधिकतम हो। अन्य शब्दों में, फर्म परस्पर निर्भरता को अनुभव करते हुए भी यह धारणा बना लेती है कि प्रतिद्वंद्वी भी स्वतंत्र रूप से निर्णय लेते हुए कीमत व उत्पादन का निर्धारण करेंगे। परंतु वस्तुतः ऐसा होता नहीं है क्योंकि प्रतिद्वंद्वी केवल प्रतिरक्षात्मक नीतियां ही नहीं अपितु आक्रामक नीतियां भी अपनाते हैं, जिनके कारण फर्म को भारी हानि उठानी पड़ सकती है।

(ii) **प्रतिद्वंद्वियों की जवाबी नीतियों का अनुमान करना**—अल्पाधिकार-समस्या से निपटने हेतु द्वितीय विधि यह है कि फर्म अपने प्रतिद्वंद्वियों की जवाबी नीतियों का पूर्वानुमान करे, हालांकि यह एक अपरिष्कृत विधि है। उदाहरण के लिए, यदि फर्म अनुमान अथवा पिछले अनुभवों के आधार पर यह जानती है कि इसके द्वारा कीमत में 5 प्रतिशत कमी करने पर या ग्राहकों को गिफ्ट कूपन वितरित करने पर प्रतियोगी फर्म 8 या 10 प्रकार की विधियां अपना सकती है, तो इसे वह नीति अपनानी चाहिए जिससे अन्य फर्मों की प्रतिरक्षात्मक नीतियों के बावजूद अधिकतम लाभ हो।

(iii) **प्रतिद्वंद्वियों की नीतियों के विरुद्ध प्रतिरक्षात्मक विधियों का प्रयोग**—वस्तुतः यह विधि खेल-सिद्धांत (Theory of Games) पर आधारित है। इसके अंतर्गत फर्म प्रतिद्वंद्वी फर्मों द्वारा अपनाई जाने वाली (संभावित) इष्टतम नीतियों का आकलन करती है और तदनुसार स्वयं की आक्रामक एवं रक्षात्मक रणनीति

1 W. J. Baumol, 'Economic Theory and Operations Analysis' (Third Edition), pp. 353-54.

तैयार करती है। इस विधि के अतर्गत प्रतिद्वद्वियो की आक्रामक नीतियो के प्रत्युत्तर मे फर्म ऐसी रणनीति का चुनाव करती है जिससे इसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। खेल सिद्धात की विस्तृत व्याख्या इसी अध्याय के अनुभाग 7 मे की गई है।

16 3 अल्पाधिकार-समस्या के "पुराने" समाधान
(Classical Solutions to the Oligopoly Problem)

उन्नीसवी शताब्दी मे फ्रास के ऑगस्टीन कूर्नो ही एकमात्र ऐसे अर्थशास्त्री थे जिन्होने प्रतियोगी फर्मों की निर्णय प्रक्रिया मे किसी सीमा तक परस्पर निर्भरता के अस्तित्व को स्वीकार किया। उन्होंने एकाधिकारी फर्म से अपने विश्लेषण को प्रारभ करते हुए बतलाया कि यह फर्म उस स्तर पर उत्पादन करके अधिकतम लाभ प्राप्त करती है जहा सीमात लागत (MC) एव सीमात आगम (MR) मे समानता होती है। इसके पश्चात् उन्होने द्वयाधिकार (duopoly) वाले बाजार की चर्चा की तथा बतलाया कि दो विक्रेताओ वाले बाजार मे परस्पर निर्भरता के अतर्गत निर्णय किस प्रकार लिए जाते हैं।[2] आगे चलकर एजवर्थ, होटलिंग, स्टैकल बर्ग एव चैम्बरलिन ने भी द्वयाधिकार सबधी मॉडल प्रस्तुत किए। इन सभी मॉडलों मे दो प्रतियोगी फर्मों द्वारा परस्पर निर्भरता के अतर्गत लिए जाने वाले निर्णयो से सबद्ध प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। इन्हे सस्थागत मॉडल इसलिए कहा जाता है कि इनके प्रतिपादक अर्थशास्त्रियो ने बाजार कीमत निर्धारण आदि की प्रक्रिया हेतु परपरागत विचारो को आधार मानते हुए पूर्ण प्रतियोगिता को ही आदर्श स्थिति माना था। इन मॉडलो का आज की आर्थिक समस्याओ के विश्लेषण मे कोई भी महत्व नहीं है।

कूर्नो मॉडल (Cournot's Model)

कूर्नो ने दो धात्विक झरनो का उदाहरण लेते हुए यह मान्यता प्रस्तुत की कि दोनों झरनों मे एक ही जैसा धात्विक जल उपलब्ध है। उन्होंने दूसरी मान्यता यह ली कि झरने पर पानी लेने जो भी उपभोक्ता आते हैं वे स्वय अपने पात्र साथ लेकर आते हैं और इसलिए जल की कोई भी परिवहन लागत नही है। तृतीय, कूर्नो के मतानुसार धात्विक जल की कोई भी उत्पादन लागत नही है तथा केवल झरने की खुदाई का व्यय ही स्वामी को वहन करना होता है। ऐसी दशा मे जब झरने के स्वामी को कोई भी उत्पादन तथा परिवहन लागतें वहन नही करनी होती, वह अपने कुल आगम को अधिकतम करने हेतु उस सीमा तक धात्विक जल बाहर निकालेगा जहा सीमात आगम अधिकतम हो ($MR=0$) कूर्नो ने एक चौथी महत्वपूर्ण मान्यता यह भी ली कि बाजार मे धात्विक जल की कुल अधिकतम माग स्थिर है तथा झरने का प्रत्येक स्वामी इस मान्यता के आधार पर धात्विक जल की कीमत का

2 H W Spiegel, The Growth of Economic Thought' (Englewood Cliffs N.J). Prentice Hall Inc (1971), pp 508-10

निर्धारण करता है कि उसका प्रतिद्वंद्वी अपने उत्पादन स्तर मे कोई भी परिवर्तन नही करेगा। कूर्नो मॉडल की पांचवी व अंतिम मान्यता यह है कि धात्विक जल का माग फलन रैखिक है तथा इसका स्वरूप चित्र 16.1 मे प्रस्तुत DQ के अनुरूप है।
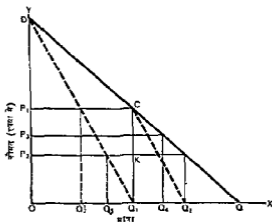
चित्र 16.1 अल्पाधिकार समस्या का कूर्नो मॉडल द्वारा समाधान

कल्पना कीजिए कि धात्विक जल की बाजार माग DQ है तथा प्रारभ मे बाजार मे केवल एक ही विक्रेता A है। कूर्नो के मतानुसार A OQ_1 मात्रा मे धात्विक जल की बिक्री करना चाहेगा क्योंकि इसी स्तर पर कुल आगम अधिकतम है $(MC=MR=0)$। इस स्थिति मे A जल की प्रत्येक इकाई के लिए OP_1 कीमत लेना चाहेगा।

अब मान लीजिए B का प्रवेश इस आशा के साथ होता है कि A OQ_1 की ही बिक्री करता रहेगा तथा उसका स्वय का माग वक्र CQ होगा। तदनुरूपी सीमांत आगम वक्र जहा शून्य है उस स्तर पर Q_1Q_2 मात्रा की बिक्री करने पर B को अधिकतम आगम प्राप्त हो जाएगा। यहा जल की कीमत OP_3 होगी।

अब A की बारी है। यह अनुभव करते हुए कि B का बाजार मे प्रवेश हो चुका है, तथा वह जल की Q_1Q_2 मात्रा बेचने लगा है $(Q_1Q_2=\frac{1}{4}OQ=\frac{1}{2}O_1Q)$, A अपनी माग की कुल मात्रा OQ_3 $(OQ-Q_1Q_2)$ मानते हुए इसके आधे अंश को (जहा $MR=0$ होगा) अपनी सभावित बिक्री समझ लेगा क्योंकि तभी उसे अधिकतम कुल आगम प्राप्त हो सकेगा। इसके बाद B पुनः बाजार की स्थिति की समीक्षा करने के बाद जितनी मात्रा A बेच रहा होता है उसके बाद शेष का आधा भाग बेचना चाहेगा। इस प्रकार A की बिक्री OQ_1 के स्तर से कम होती जाएगी व B की बिक्री का स्तर बढ़ता जाएगा। अन्ततः दोनों ही विक्रेताओं द्वारा बेची जाने वाली मात्राओं

का स्तर समान हो जाने पर कीमतो का परिवर्तन स्वयमेव रुक जाएगा। इस प्रकार कूर्नो मॉडल मे सभी (दोनो) फर्मों के द्वारा कितनी मात्रा बेची जाएगी (QD) तथा प्रत्येक फर्म कितना बेच पाती है (Q_i) इसका ज्ञान निम्न सूत्र से हो सकता है—

$$Q_D = \frac{n}{n+1} (Q_M) \qquad \ldots(16\,1)$$

$$Q_i = \frac{1}{n}\left[\frac{n}{n+1} (Q_M)\right] \qquad \ldots(16\,2)$$

इस सूत्र मे n फर्मों की सख्या (कूर्नो मॉडल म n=2) है Q_M बाजार की कुल माग (OQ) है तथा Q_i प्रत्येक फर्म द्वारा बेची जाने वाली मात्रा है। कूर्नो मॉडल मे बाजार की माग का $\frac{2}{3}$ पूरा होगा तथा प्रत्येक फर्म $\frac{1}{3}$ भाग पूरा करेगी। परतु यदि फर्मों की सख्या बढती जाए तो कुल माग (Q_M) का उत्तरोत्तर अधिक भाग पूरा हो सकेगा। उदाहरण के लिए, फर्मों की सख्या 9 हो तो बाजार माग का $\frac{9}{10}$ पूरा होगा तथा प्रत्येक फर्म $\frac{1}{10}$ भाग पूरा करेगी। यही साम्य स्थिति होगी क्योंकि इसी स्तर पर सभी फर्मों की बिक्री एव उनके द्वारा ली गई कीमतो का स्तर समान होगा।

चित्र 16 1 मे अतत A द्वारा बेचे गए जल की मात्रा OQ_3 होगी जबकि B Q_3Q_4 मात्रा बेचेगा, एव ऐसी स्थिति मे बाजार कीमत OP_3 होगी। यह एक स्थिर समाधान (stable solution) होगा क्योकि इसके बाद मात्रा व कीमत के परिवर्तन रुक जाएगे।

प्रतिक्रिया फलन (The Reaction Functions)

कूर्नो मॉडल को एक अन्य (गणितीय) रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। कूर्नो-समाधान प्राप्त करने की यह विधि प्रतिक्रिया फलनों पर आधारित है। एक प्रतिक्रिया फलन इस मान्यता पर आधारित है कि A द्वारा बेची जाने वाली मात्रा उसकी कीमत तथा B द्वारा बेची गई मात्रा पर निर्भर करती है। इसी प्रकार B कितनी मात्रा बेचेगा यह उसकी वस्तु की कीमत के अतिरिक्त A द्वारा बेची गई मात्रा पर निर्भर करेगा। परतु अब अर्थशास्त्री कूर्नो की भाति यह मानने को तत्पर नहीं हैं कि अतत A व B दोनो ही समान मात्राए बेचेंगे (यानी $Q_A \pm Q_B$)। वे भी यह मानने को तैयार नहीं हैं कि A व B को उत्पादन की कोई लागत वहन नही करनी होती। परतु आधुनिक अर्थशास्त्री यह अवश्य स्वीकार करते हैं कि साम्य स्थिति मे वस्तु की कीमत समान होगी।

मान लीजिए, कुल माग तथा A व B के लागत फलन इस प्रकार हैं—

$$P = 60 - 0\,5\,(Q_A + Q_B)\ ,\quad C_A = 10\,Q_A \text{ तथा } C_B = 0\,5\,Q_B^2$$

अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु A व B के लाभ फलन एव अधिकतम लाभ की शर्तें कहा पूरी होगी यह निम्न रूप मे देखा जा सकता है—

$$\pi_A = P\,Q_A - C_A = 60\,Q_A - 0\,5\,(Q_A + Q_B)\,Q_A - 10\,Q_A$$

तथा $$\pi_B = P\,Q_B - C_B = 60\,Q_B - 0\,5\,(Q_A + Q_B)\,Q_B - 0\,5\,Q_B^2$$

अस्तु $\frac{\partial\pi_A}{\partial Q_A}=0=60-Q_A-0.5Q_B$

एवं $\frac{\partial\pi_B}{\partial Q_B}=0=60-2Q_B-0.5Q_A$

उपरोक्त लाभ फलनों को क्रमश Q_A व Q_B के लिए हल करने पर हमें A व B के प्रतिक्रिया फलन प्राप्त हो जाते हैं—

$$Q_A=50-0.5Q_B$$
$$Q_B=30-0.22Q_A$$

इन प्रतिक्रिया फलनों के अंतर्गत दोनों विक्रेता समान कीमत (P) पर वस्तु को बेच कर अधिकतम लाभ अर्जित करते हैं। उपरोक्त उदाहरण में इष्टतम समाधान के अंतर्गत P, Q_A व Q_B इस प्रकार होंगे—

$$Q_A=40 \quad Q_B=20 \text{ तथा } P=20$$
$$\pi_A=800 \text{ एवं } \pi_B=400$$

इस प्रकार प्रतिक्रिया फलनों के आधार पर हम A व B के द्वारा बेची जाने वाली उन मात्राओं एवं उस कीमत को ज्ञात कर सकते हैं जहां दोनों लागतों में अंतर होने पर भी अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है।

एक अन्य उदाहरण लीजिए। मान लीजिए बाजार माग वक्र रैखिक है—

$$P=a-bQ \tag{16.3}$$

$$\text{जहां } Q=q_1+q_2 \tag{16.4}$$

यानी कुल मात्रा वस्तुत दो विक्रेताओं द्वारा बेची गई मात्राओं का योग है परन्तु यदि q_1 में वृद्धि होनी है तो q_2 में कमी करनी होगी जबकि q_2 में वृद्धि होने पर q_1 में कमी होगी। यदि प्रत्येक फर्म का कुल आगम फलन निकाल कर सीमांत आगम फलन ज्ञात किया जाए तो निम्न स्थिति प्राप्त होगी—

(यहां कूर्नो माडल के अनुसार लागतें शून्य मानी गई हैं।)

$$MR_1=\frac{\partial R_1(q_1,q_2)}{\partial q_1}=a-2bq_1-bq_2=0 \tag{16.5}$$

$$\text{तथा } MR_2=\frac{\partial R_2(q_1,q_2)}{\partial q_2}=a-bq_1-2bq_2=0 \tag{16.6}$$

लागतों के शून्य होने की स्थिति में प्रत्येक फर्म की अधिकतम लाभ वाली स्थिति ज्ञात करने हेतु समीकरण (16.5) व (16.6) को q_1 एवं q_2 के लिए हल कीजिए।

$$\text{अस्तु } q_1=\frac{a}{2b}-\frac{q_2}{2} \tag{16.7}$$

$$\text{तथा } q_2=\frac{a}{2b}-\frac{q_1}{2} \tag{16.8}$$

जैसा कि हम स्पष्टत जानते हैं a एवं b स्थिर प्राचल हैं। ऐसी स्थिति में यदि समीकरण (16.7) में q_2 की मात्रा बढ़ाते जाएं तो स्वत q_1 कम होता जाएगा। इसी प्रकार यदि समीकरण (16.8) में q_1 की मात्रा बढ़ाते जाएं तो q_2 कम होता जाएगा। ये दोनों समीकरण ही प्रतिक्रिया फलन हैं। परन्तु एक ऐसी स्थिति अवश्य होती है

जिसम दोनो विक्रेताओ द्वारा समान मात्राए बेची जा सकती हैं। समीकरण (16 7) व (16 8) मे यह स्थिति तब होगी जब

$$q_1 = q_2 = \frac{a}{3b} \qquad (16\ 9)$$

चित्र 16 2 मे प्रतिक्रिया फलनो को प्रस्तुत किया गया है।
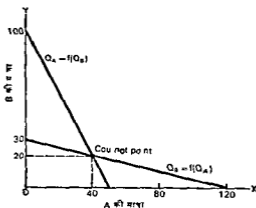
चित्र 16 2 प्रतिक्रिया फलन तथा कूर्नो समाधान

इस प्रकार चित्र 16 2 मे कूर्नो बिंदु वह बिंदु है जहा दोनों विक्रेताओ के प्रतिक्रिया फलन परस्पर काटते हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, A व B क्रमश 40 इकाई व 20 इकाई बेचकर अधिकतम लाभ अर्जित करते हैं।

अब हम ऊपर प्रस्तुत प्रथम उदाहरण मे एक संशोधन करेंगे। यदि A व B दोनों ही समझौता कर लें तथा संयुक्त लाभ अधिकतम करने हेतु प्रयास करें तो यह स्थिति एकाधिकार को जन्म देगी। ऐसी स्थिति मे कुल लाभ A व B के निजी लाभ की राशिया इस प्रकार होंगी—

$$\pi = \pi_A + \pi_B - 60\,(Q_A + Q_B) - 0\ 5\,(Q_A + Q_B)^2 - 10Q_A - 0\ 5Q_B^2$$

उक्त लाभ फलन म आंशिक अवकलजो को शून्य के समान रख कर A व B के लाभ अधिकतम किस स्तर पर होंगे, इस बात का पता लगाया जा सकता है।

$$\frac{\partial \pi}{\partial Q_A} = 50 - Q_A - Q_B - 0$$

$$\frac{\partial \pi}{\partial Q_B} = 60 - Q_A - 2Q_B = 0$$

Q_A व Q_B के लिए हल करने पर निम्न संख्याए प्राप्त होंगी—

$$Q_A = 40\ ,\ Q_B = 10\ ,\ P = 25 \text{ तथा } \pi = 1300$$

इस प्रकार दोनो विक्रेताओ के मध्य समझौता हो जाने पर वस्तु की कीमत मे वृद्धि

होती है, कुल (सयुक्त) लाभ मे भी वृद्धि होती है परन्तु B के द्वारा बेची गई मात्रा मे कमी हो जाती है।

एजवर्थ समाधान (Edgeworth Solution)

प्रोफेसर एजवर्थ ने द्वयाधिकार की समस्या के लिए एक दूसरे ही ढग से समाधान प्रस्तुत करने का (असफल) प्रयास किया। उनसे पूर्व 1887 मे एक फ्रासीसी गणितज्ञ प्रो० जोसेफ बर्ट्रेन्ड ने यह मत व्यक्त किया था कि द्वयाधिकार वाले बाजार मे प्रत्येक विक्रेता इस मान्यता को लेकर कीमत निर्धारित करता है कि दूसरा विक्रेता उसकी कीमत को यथावत् रखेगा। एजवर्थ ने 1897 मे इसी के आधार पर अपने विचार व्यक्त किए।

एजवर्थ मॉडल को चित्र 16 3 के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। यह मान्यता ली गई है कि दोनो विक्रेता पास-पास ही हैं, समरूपी वस्तुए बेचते हैं तथा दोनो ही को उत्पादन हेतु कोई भी परिवर्तनशील लागत वहन नहीं करनी होती, यह भी माना गया है कि दोनो के माग वक्र एक जैसे हैं—DD तो A का माग वक्र है जबकि B का माग वक्र DD′ है। परन्तु एजवर्थ ने यह भी मान्यता ली थी कि A व B क्रमश OC व OC′ से अधिक मात्रा मे उत्पादन कदापि नही कर सकते। अत मे, चित्र 16 3 मे OD को कीमत का मापक माना गया है।
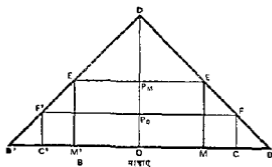
चित्र 16 3 एजवर्थ समाधान

चूकि A व B का बाजार पर समान अधिकार है, चित्र 16 3 मे OM = MD तथा OM′ = M′D है साथ ही OM = OM′ तथा MD = M′D′ भी हैं। चूकि उत्पादन की लागतें शून्य हैं, A उस स्तर पर उत्पादन करता है जहा MR = 0 हो। उत्पादन का यह स्तर OM है तथा इस स्तर पर A द्वारा ली गई कीमत OP_M होगी। यहा एजवर्थ ने यह माना है कि प्रारभ मे A अकेला ही वस्तु का विक्रेता है एव इसलिए उसका व्यवहार एकाधिकारी के अनुरूप होता है। A का कुल लाभ इस स्थिति मे OP_MEM होगा। जब B का बाजार में प्रवेश होता है तो वह A द्वारा ली जा

रही कीमत (OP_M) से नीची कीमत पर वस्तु बेचना प्रारंभ करता है और इस प्रकार A के काफी ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

अब A की बारी है। वह स्थिति का मूल्यांकन करता है तथा यह मानते हुए कि B का कीमत-स्तर वही रहेगा, उससे नीची कीमत रखकर अपने खोए हुए ग्राहकों के अतिरिक्त B के नए ग्राहकों को भी आकर्षित करने का प्रयास करेगा। A की बिक्री में वृद्धि होती है। अब B भी A के कीमत स्तर से नीची कीमत पर यह सोचकर वस्तु बेचेगा कि A का कीमत स्तर यथावत् रहेगा। पुन: A भी ऐसे ही कदम उठाएगा। A एवं B के मध्य यह कीमत युद्ध इसी प्रकार तब तक चलता रहेगा जब तक कि कीमत घटकर OP_D के स्तर तक नहीं पहुंच जाती। इस स्तर पर B अधिकतम उत्पादन OC′ प्राप्त करता है। A यह महसूस करने लगता है कि B के शेष ग्राहकों के पास इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है कि वे उसी (A के) पास आएं —यानी B के इन ग्राहकों की मांग बेलोच है। इसी विश्वास के साथ A अपने कीमत स्तर को OP_D से थोड़ा ऊपर रखता है। B भी इसी प्रकार की धारणा रखते हुए कीमत को बढ़ा देता है। दोनों की कीमतों में वृद्धि का यह क्रम OP_m तक चलेगा। इसके पश्चात् फिर से कीमतों में कमी का क्रम चालू हो जाता है। एजवर्थ ने कहा कि द्वयाधिकार वाले बाजार में कीमत सदैव इन दो (अधिकतम व न्यूनतम) सीमाओं के बीच घटती व बढ़ती रहेगी। संक्षेप में, इस मॉडल के अंतर्गत कीमत स्थिर नहीं रह सकती।

होटलिंग-समाधान (Hotelling Solution)

हैरॉल्ड होट्लिंग ने बाजार-व्यवहार का अनुभवमूलक विश्लेषण किया जिसे होट्लिंग समाधान कहा जाता है। इस मॉडल में भी होट्लिंग ने दो विक्रेताओं का उदाहरण लिया जो शून्य सीमांत लागत पर समरूपी वस्तु का उत्पादन करते हैं। परंतु दोनों विक्रेताओं की भौगोलिक स्थिति में अंतर होने के कारण वस्तु विभेद की दशा उत्पन्न हो जाती है। होटलिंग की ऐसी मान्यता है कि बाजार ऐसे खंडों में विभक्त हो जाता है जिसके कारण प्रत्येक विक्रेता की स्थिति लगभग एकाधिकारी जैसी हो जाती है। जैसा कि चित्र 16.4 में बतलाया गया है, क्रेता लोग एक सीधी रेखा (राजमार्ग) के दोनों ओर समान रूप से फैले हुए हैं। दोनों विक्रेता प्रारंभ में क्रमशः A व B बिंदुओं पर स्थित होते हैं।
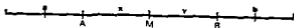
चित्र 16.4 होट्लिंग-समाधान

प्रत्येक क्रेता को विक्रेता की दूकान पर जाकर वस्तु खरीद कर फिर उसे स्वयं ही घर लाना होता है। इस प्रकार A से X किलोमीटर दूर विद्यमान क्रेता को CX रुपए की परिवहन लागत (प्रति इकाई) वहन करनी होती है।

अब होटलिंग यह मान्यता लेते हैं कि A से बाईं ओर अनेक क्रेता विद्यमान हैं और इसी प्रकार अनेक क्रेता B से दाईं ओर विद्यमान हैं। इन क्रेताओं की संख्या क्रमशः a व b मान कर यह कहा जा सकता है कि A से बाईं ओर A फर्म का व B से दाईं ओर B फर्म का सुरक्षित बाजार विद्यमान है। यद्यपि दूर-दूर स्थित होने के कारण प्रत्येक फर्म को कीमत निर्धारण की किसी सीमा तक छूट है, तथापि कोई भी फर्म इतनी ऊंची कीमत कदापि निर्धारित नहीं करना चाहेगी जिससे उसके ग्राहक आगे चलकर प्रतिद्वन्द्वी फर्म के पास पहुंच जाएं। चूंकि वस्तुओं के मध्य अंतर केवल परिवहन लागत का ही है, वस्तुतः सुपुर्दगी के समय वसूली गई कीमतों में कोई अंतर नहीं होता। अन्य शब्दों में, परिवहन लागतों सहित कीमतें इस प्रकार होंगी—

$$P_A + cx = P_B + cy$$

A का कुल लाभ $P_A\ (a+x)$ होगा जबकि B का कुल लाभ $P_B\ (b+y)$ होगा। होटलिंग ने यह मान्यता भी ली कि अतः दोनों की कीमतों में कोई अंतर नहीं रहना चाहिए।

फिर उन्होंने यह बतलाया कि दीर्घकाल में A व B दोनों ही अपने अपने सुरक्षित बाजारों का विस्तार करने हेतु M की ओर बढ़ना प्रारंभ करेंगे। इस प्रकार A दाईं ओर बढ़ेगा जबकि B अपनी बाईं ओर बढ़ने का प्रयास करेगा। अतः दोनों ही M पर स्थित हो जाएंगे एवं समान कीमत पर वस्तु बेचेंगे। संक्षेप में, होटलिंग मॉडल के अनुसार विक्रेताओं की यह स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया होने का एकमात्र कारण उनकी अपने-अपने सुरक्षित बाजारों के विस्तार की आकांक्षा ही है, और यही कारण है कि महानगरों में नगर के केंद्रीय भाग में ही अधिकांश दुकानें स्थित होती हैं, तथा विक्रेता एक ही कीमत पर वस्तु को बेचते हैं।

प्रोफेसर बोल्डिंग के मतानुसार यह पूर्ण अल्पाधिकार (perfect oligopoly) की स्थिति है। वे यह बताते हैं कि ऐसी स्थिति में या तो अतः परिवहन लागत शून्य हो जाती है, अथवा दोनों ही विक्रेता एक ही स्थल पर पहुंच जाते हैं। A तथा B के सहअस्तित्व का क्षेत्र अब 45° की एक रेखा पर केंद्रित हो जाता है। जैसा कि चित्र 16.5 में बतलाया गया है, A एवं B दोनों ही का सहअस्तित्व OE रेखा पर होता है जहां दोनों द्वारा वसूली गई कीमतें पूर्णतः समान हैं ($P_A = P_B$)। OE रेखा से नीचे A बाजार में नहीं टिक पाएगा क्योंकि OE से नीचे $P_A > P_B$ होगी। इसी प्रकार OE से ऊपर B
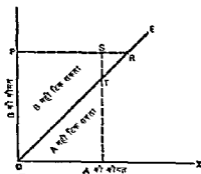
चित्र 16.5 पूर्ण अल्पाधिकार एवं होटलिंग-समाधान

का बाजार मे टिके रहना असभव हो जाता है क्योंकि उसकी कीमत A द्वारा ली गई कीमत से अधिक हो जाती है ($P_A < P_B$)। उदाहरण के लिए, यदि A अपनी कीमत को PR से घटाकर PS कर देता है तो B तुरत ही अपनी कीमत को घटाकर T के स्तर पर ले आएगा अन्यथा उसका अस्तित्व खतरे मे पड जाएगा। ऐसी दशा मे प्रत्येक फर्म द्वारा प्रतिद्वद्वी को बाजार से बाहर कर देने का प्रत्येक प्रयास प्रतिद्वद्वी की जवाबी कार्रवाई के कारण बेकार हो जाता है, तथा कीमत का स्तर OE पर ले आया जाता है।

स्टैकलवर्ग-समाधान[3] (Stackelberg Solution)

एक जर्मन अर्थशास्त्री हैनरिच वा स्टैकलवर्ग ने द्वयाधिकार वाले बाजार के लिए एक अत्यत रोचक समाधान प्रस्तुत किया है। उन्होंने यह मान्यता ली है कि अतत दोनो मे से एक नेतृत्व करता है जबकि दूसरा उसका अनुगमन करता है। वस्तुत नेतृत्व करने वाली फर्म ऐसा अनुभव करती है कि दूसरी फर्म उसका अनुगमन कर रही है।[4]

यदि फर्म A अनुगमन कर रही है तो वह यह मान्यता लेते हुए कि $dQ_B/dQ_A=0$ है, अपनी उस मात्रा (Q_A) का उत्पादन करेगी जहा $\pi_A(Q_A, Q_B)$ अधिकतम हो। यदि B अनुमान करने वाली फर्म है तो वह भी $\pi_B(Q_A, Q_B)$ को अधिकतम करने हेतु यह मान्यता लेगी कि $dQ_A/dQ_B=0$ है।

यदि A नेतृत्व करने वाली फर्म है तो वह Q_A का चुनाव इस प्रकार करेगी ताकि $\pi_A[Q_A, \phi_B(Q_A)]$ अधिकतम हो। इस सदर्भ मे $\phi_B(Q_A)$ B का प्रतिक्रिया फलन है, यानी $\phi_B(Q_A)$ वस्तुत Q_B की वह इष्टतम मात्रा है जब B अनुगमन करने वाली फर्म तथा A नेतृत्व करने वाली फर्म हो। अन्य शब्दो म, फर्म A की मान्यता यह रहती है कि

$$\frac{dQ_B}{dQ_A}=\frac{d\phi_B(Q_A)}{dQ_A}$$

इसके विपरीत यदि B नतृत्व करने वाली फर्म हो तो वह Q_B का चुनाव इस प्रकार करेगी ताकि $\pi_B[\phi_A(Q_B), Q_B]$ अधिकतम हो। अब $\phi_A(Q_B)$ वस्तुत A का प्रतिक्रिया फलन बन जाता है। अन्य शब्दो मे, $\phi_A(Q_B)$ को Q_A की वह इष्टतम मात्रा माना जा सकता है जब A को अनुगमन करने वाली (follower) तथा B को नेतृत्व करन वाली (leader) फर्म माना गया हो। ऐसी दशा मे फर्म B की निम्न मान्यता रहती है—

$$\frac{dQ_A}{dQ_B}=\frac{d\phi_A(Q_B)}{dQ_B}$$

3 See A. Koutsoyiannis Modern Microeconomics London', MacMillan Press Ltd., 1978 (pp 233-236)

4 K J Cohen and R M Cyert, 'Theory of the Firm' (1975), pp 240,243

पाठक समझ सकते हैं कि स्टैकलबर्ग समाधान का आधार कूर्नो मॉडल, और विशेष तौर पर प्रतिक्रिया फलनों में निहित है। ऐसे विश्लेषण में चार संभावित स्थितियां हो सकती हैं। (i) यदि A व B दोनों ही अनुगमन करना चाहें तो अंतत कूर्नो मॉडल का समाधान हो प्राप्त हो जाता है, (ii) व (iii) यदि A (अथवा B) नेतृत्व करना चाहे तथा दूसरी फर्म अनुगमन करना चाहे तब भी स्थिर समाधान की प्राप्ति हो जाती है, तथा (iv) यदि दोनों फर्में नेतृत्व करना चाहें तो यह एजवर्थ मॉडल की भांति अस्थिरता को जन्म देगा, तथा कीमतों व मात्राओं के विषय में कुछ भी कहना संभव नहीं होगा। संक्षेप में, ऐसे बाजार में स्थिर समाधान केवल उस दशा में प्राप्त होगा जब या तो दोनों ही विक्रेता अनुगमन करने वाले हों (*both are followers*) अथवा एक विक्रेता नेतृत्व करता हो जबकि दूसरा अनुगमन कर रहा हो।

स्टैकलबर्ग ने बतलाया कि द्वयाधिकार के अंतर्गत प्रत्येक फर्म इस बात की जांच करती है कि नेतृत्व करने अथवा अनुगमन करने पर उसे कितना अधिकतम लाभ प्राप्त होगा, और फिर वह इस बात का निर्णय करेगी कि उसे क्या करना चाहिए। परंतु उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि अधिकांश समय तक दोनों ही फर्में नेतृत्व करने को उत्सुक रहती हैं और इसी कारण बाजार में कीमत-युद्ध चलता रहता है।

चैंबरलिन-समाधान[5] (Chamberlin Solution)

चैंबरलिन समाधान वस्तुत कूर्नो समाधान के जैसा ही है। परंतु चैंबरलिन ने कूर्नो-समाधान में एक संशोधन करके यह स्पष्ट किया है कि द्वयाधिकार के अंतर्गत जब B का बाजार में प्रवेश होता है तो A को यह बात समझ में आ जाती है कि उसमें तथा B में परस्परनिर्भरता है, तथा कीमत-युद्ध होने पर दोनों को ही भारी क्षति हो सकती है। चित्र 16.1 को पुन देखने पर हमें ज्ञात होता है कि प्रारंभ में A OQ_1 इकाइयां बेच रहा होता है तथा इसके लिए OP_1 कीमत वसूल करता है तथा OP_1CQ_1 के समान कुल लाभ अर्जित करता है। जब B बाजार में प्रवेश करता है तथा Q_1Q_2 मात्रा को OP_2 कीमत पर बेचना चाहता है तो A अपनी वस्तु का उत्पादन घटाकर $OQ'_2=\frac{1}{2}\ OQ_1$ कर देता है। B भी A के साथ सहयोग करने में ही अपना हित समझता है तथा अपना उत्पादन स्तर Q_1Q_2 $(=OQ'_2)$ पर ही बनाए रखता है। इस प्रकार उत्पादन का कुल स्तर $OQ'_2+Q_1Q_2=\frac{1}{2}\ OQ$ रहता है तथा कीमत OP_1 पर ही बनी रहती है। संक्षेप में, B के प्रवेश करते ही A उसे अपने एकाधिकारिक लाभ (OP_1CQ_1) में समान भागीदार बना लेता है तथा दोनों ही OP_1 कीमत पर समान मात्रा बेचने लगते हैं।

5 E H Chamberlin, 'The Theory of Monopolistic Competition' (Eighth Edition), Ch III

16. पॉल एम० स्वीज़ी द्वारा प्रस्तुत समाधान : विकुंचित मांग वक्र
(Paul M Sweezy's Solution The Kinked Demand Curve)

1939 में पॉल एम० स्वीज़ी ने अल्पाधिकार की समस्या हेतु एक स्थिर समाधान प्रस्तुत किया जिसे "विकुंचित माग की परिकल्पना" (The Kinked Demand Hypothesis) कहा जाता है। स्वीज़ी ने कहा कि अल्पाधिकार के अतर्गत प्रत्येक विक्रेता अपनी प्रत्येक नीति में प्रतिद्वंद्वियों पर होने वाली प्रतिक्रियाओं का यथासभव सही अनुमान लगाने का प्रयत्न करता है, तथा इन्हीं संभावित प्रतिक्रियाओं को दृष्टिगत रखकर वह अपनी बिक्री का पूर्वानुमान करता है। स्वीज़ी ने तर्क दिया कि प्रत्येक विक्रेता यह अवश्य अनुभव करता है कि उसके द्वारा कीमत में कमी करने अथवा कीमत में वृद्धि करने पर प्रतिद्वंद्वियों की प्रतिक्रियाएं एक जैसी नहीं होंगी, चूंकि अल्पाधिकार के अन्तर्गत सभी विक्रेता समरूपी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, एक फर्म द्वारा अपनी वस्तु की कीमत में वृद्धि करने पर सभी प्रतिद्वंद्वी अपनी कीमतों में कोई वृद्धि नहीं करेंगे। परिणाम यह होगा कि कीमत में वृद्धि करने वाली फर्म की बिक्री में भारी कमी हो जाएगी तथा इसका कुल आगम पूर्वापेक्षा कम हो जाएगा। इसके विपरीत यदि फर्म कीमत में कमी करके बिक्री में पर्याप्त वृद्धि करने का प्रयास करती है तो सभी प्रतिद्वंद्वी भी प्रतिक्रिया-स्वरूप अपनी-अपनी कीमतों में उतनी ही या उससे भी अधिक समरूपी कमी कर देंगे ताकि कीमत में कटौती करने वाली फर्म की बिक्री आशानुरूप नहीं बढ़ सके।
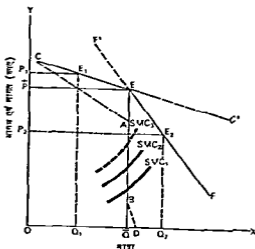
चित्र 16.6 विकुंचित माग वक्र

संक्षेप में, निम्न रेन्ज की कीमतों पर फर्म का माग वक्र बेलोच होता है, जबकि ऊंची कीमतों पर माग काफी अधिक लोचदार होती है। इसी कारण फर्म के माग वक्र

मे एक विकुचन (Kink) होता है। (चित्र 16 6)।

चित्र 16 6 से यह स्पष्ट होता है कि फर्म के माग वक्र मे E बिंदु पर विकुचन उत्पन्न होता है जहा माग वक्र के ढलान मे आकस्मिक रूप से परिवर्तन हो जाता है। इस बिंदु पर फर्म $O\bar{Q}$ इकाई का उत्पादन करती है तथा $O\bar{P}$ कीमत वसूल करती है। E से ऊपर की ओर वस्तु की माग काफी लोचदार है, जिसका अभिप्राय यह है कि कीमत मे तनिक सी वृद्धि होने पर प्रतिद्वद्वियो द्वारा उनकी कीमतें यथावत् रखने के कारण माग म काफी कमी हो जाती है। इसके विपरीत E से नीचे माग बेलोच है जिसके अनुसार कीमत मे काफी कटौती के बावजूद माग में बहुत थोडी सी वृद्धि होती है। कुल मिलाकर E पर ही फर्म को प्राप्त कुल आय (आगम) अधिकतम होगी जब कि अन्यत्र उसे प्राप्त होने वाली आय कम होगी। उदाहरण के लिए, यदि कीमत OP_1 हो तो कुल आगम $OP_1E_1Q_1$ होगा, जबकि OP कीमत पर प्राप्य कुल आगम $(O\bar{P}E\bar{Q})$ इससे अधिक हो सकता था $(O\bar{P}E\bar{Q} > OP_1E_1Q_1)$। इसी प्रकार कीमत का स्तर OP_2 होने पर प्राप्य कुल आगम भी $O\bar{P}$ के अनुरूप आगम से कम होगा $(O\bar{P}E\bar{Q} > OP_2E_2Q_2)$। कुल मिलाकर E पर ही फर्म को अधिकतम आगम प्राप्त होता है।*

पाठको को स्मरण होगा कि प्रोफेसर चेम्बरलिन ने दो माग वक्रो की अवधारणा का प्रतिपादन किया था (*अध्याय 15*)। वस्तुत माग वक्र *CEF* या *CE* अश अपेक्षित माग वक्र CC से तथा इस वक्र (CEF) का EF अश वास्तविक माग वक्र F F से प्राप्त किया गया है। चूकि E से ऊपर या नीचे कीमत रखने पर फर्म को प्राप्त कुल आगम में कमी आ जाती है, उसका वास्तविक माग वक्र CEF रह जाता है तथा कीमत का स्तर $O\bar{P}$ पर ही स्थिर हो जाता है। पॉल स्वीजी ने स्पष्ट किया कि फर्म प्रत्येक स्थिति मे अधिकतम आगम प्राप्त करना चाहती है और इसलिए E पर ही कीमत अनम्य बनी रहती है। यही स्वीजी द्वारा प्रतिपादित अल्पाधिकारिक कीमत अनम्यता (Price rigidity) कहलाती है। फिर भी स्वीजी एव चेम्बरलिन मे एक मूल अतर यह है कि जहा एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अतर्गत फर्म परस्पर अतनिर्भरता की उपेक्षा करती है, स्वीजी के मॉडल मे वह भली भाति जानती है कि प्रतिद्वद्वी फर्में इसके द्वारा कीमत मे वृद्धि अथवा कमी के प्रति भिन्न भिन्न दृष्टिकोण अपनाएगी—यदि वह कीमत मे कमी करती है तो प्रत्येक प्रतिद्वद्वी भी कीमत कम करेगा, जबकि उसके द्वारा कीमत मे वृद्धि करने पर कोई भी प्रतिद्वद्वी ऐसा नही करेगा। कुल मिला कर स्वीजी मॉडल की सबसे बडी विशेषता E बिंदु पर विद्यमान विकुचन एव इससे सबद्ध कीमत अनम्यता है—

पॉल स्वीजी ने यह भी बतलाया कि E पर सीमांत आगम वक्र खडित हो

* मान लीजिए $O\bar{P}=20$, $O\bar{Q}=30$ है तथा $OP_1=25$ व $OQ_1=15$ हो तो $O\bar{P}$ पर कुल आगम 600 व OP_1 पर 375 होगा। $OP_2=12$ व $O\bar{Q}=40$ हो तो कुल आगम 480 होगा। अस्तु, कुल आगम $O\bar{P}$ पर ही अधिकतम होगा।

समीकरण (16 20) को समीकरण (16 16) मे प्रतिस्थापित कीजिए।

अब A का माग फलन इस प्रकार होगा—

$$65=100-2q_A-\left(\frac{55-q_A}{3}\right) \quad \ldots (16\,21)$$

$$195=300-6q_A-55+q_A \quad \ldots (16\,22)$$

$$5q_A=50 \quad , \; q_A=10$$

ऐसी दशा मे A को प्राप्त कुल आगम $65 \times 10 = 650$ होगा जो वस्तुत मूलतः प्राप्त कुल आगम ($70 \times 10 = 700$) से कम है। इस प्रकार A को न तो कीमत मे वृद्धि करने से कोई लाभ है और न ही कीमत मे कटौती करने से। फलस्वरूप A अपनी वस्तु की कीमत को 70 पर ही स्थिर रखना चाहेगा।

यद्यपि पॉल स्वीज़ी ने विकुचन की उत्पत्ति एव तत्सबधी कीमत-अनम्यता का विवरण दिया, तथापि उन्होने यह स्वीकार किया कि कभी-कभी विक्रेता अपने ग्राहको को कीमत मे गुप्त रूप से रियायतें भी देते हैं। इन गुप्त रियायतो का बाजार पर कोई प्रभाव नही होता और इस कारण कीमत युद्ध प्रारभ नहीं हो पाता।

अत मे स्वीज़ी ने इन परिस्थितियो का भी विवरण प्रस्तुत किया जिसमे विकुचन का लोप हो जाता है तथा माग वक्र एक सरल रेखा का रूप ले लेता है। ये परिस्थितिया निम्नाकित हो सकती हैं (i) जब प्रतिद्वद्वी विक्रेताओ का दृष्टिकोण एकदम उल्टा हो जाता है तथा चित्र 16 6 मे प्रस्तुत कीमत $\overline{OP}$ से नीची कीमत पर नया माग वक्र कम ढलानयुक्त (यानी अधिक लोचदार माग) हो जाए जबकि $\overline{OP}$ से ऊची कीमत पर यह वक्र अधिक ढलानयुक्त (यानी बेलोच) हो जाए, (ii) जब प्रतिद्वद्वी विक्रेता परस्पर अविश्वास को समाप्त करके एक सघ का निर्माण कर लें, (iii) जब विक्रेताओ की सख्या मे भारी वृद्धि हो जाए और इस कारण एक फर्म के लिए अपने सभी प्रतिद्वदियो द्वारा लिए गए निर्णयो की जानकारी रखना अत्यत कठिन हो जाए, (iv) जब क्रेताओ की रुचि मे परिवर्तन हो जाए तथा वे ऊची कीमत पर भी वे अधिक मात्रा खरीदें तथा कीमत मे कमी होने पर भी अधिक माग करें। इस प्रकार रुचि मे परिवर्तन के कारण माग मे पर्याप्त विस्तार होने की स्थिति मे भी विकुचन का लोप हो जाता है, तथा (v) जब प्रतिद्वद्वी फर्में मिलकर एक फर्म को बैरोमेट्रिक कीमत-नेतृत्व सौंप दें।

जॉर्ज स्टिग्लर ने स्वीज़ी के विकुचित माग वक्र के सिद्धात का सांख्यिकीय परीक्षण किया।[6] उन्होने कहा था कि किसी फर्म द्वारा कीमत मे कमी करने पर

6 George J Stigler, 'The Kinked Oligopoly Demand Curve and Rigid Prices', 'Journal of Political Economy', Vol LV (1947) Reprinted in AEA *Readings in Price Theory* इस लेख में स्टिग्लर ने निम्न बाजारों मे विद्यमान अल्पाधिकार की स्थिति का परीक्षण किया (i) सिगरेट (जहा कीमत नेतृत्व काफी प्रबल रहा है (ii) मोटर कारें (जहां कीमत नेतृत्व न होने पर भी कीमत में कटौतियों की अपेक्षा कीमत

[शेष पृष्ठ 386 पर]

जितनी तत्परता से उसके प्रतिद्वंद्वी भी कीमतों में कमी करते हैं, उतनी ही तत्परता से वे उसके द्वारा कीमत बढ़ाने पर अपनी कीमतें भी बढ़ाते हैं। इस प्रकार स्टिग्लर के मतानुसार *हमारे पास यह विश्वास करने हेतु कोई आधार या प्रमाण नहीं है कि अल्पाधिकारी फर्म के माग वक्र में कोई विकुचन भी होता है।*

प्रोफेसर फर्ग्यूसन ने बतलाया है कि स्वीजी के मॉडल से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि फर्म के *माग वक्र* में विकुचन की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, परतु इससे यह पता नहीं चलता कि विकुचन कहा उत्पन्न होता है। फर्ग्यूसन के मतानुसार कीमत सिद्धात का उद्देश्य यह बतलाना है कि माग व लागत फलनों की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप साम्य कीमत तथा साम्य मात्रा का निर्धारण किस प्रकार होता है। परतु विकुचित माग वक्र का सिद्धात ऐसा नहीं कर पाता क्योंकि लागतों में अतर के कारण बाजार की साम्य स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। फर्ग्यूसन का कथन है कि स्वीजी का मॉडल बाजार की साम्य स्थिति का प्रत्याशित (ex-ante) विश्लेषण प्रदान करने की अपेक्षा यथार्थ (ex post) स्थिति का बोध कराता है। प्रो० स्टिग्लर ने भी कहा है कि स्वीजी का मॉडल दीर्घकाल में कदापि लागू नहीं हो सकता।

16 5 खेल-सिद्धात एव अल्पाधिकार की स्थिति
(Theory of Games And Oligopoly Behaviour)

जॉन वा न्यूमैन तथा आस्कर मार्गेस्टर्न ने 1953 में प्रकाशित पुस्तक 'थ्योरी ऑफ गेम्स एड इकॉनोमिक बिहेवियर' में खेल सिद्धात का प्रतिपादन किया था। इस सिद्धात का प्रमुख उद्देश्य उन परिस्थितियों में विवेकशील मापकों का निर्धारण करना था जिनमें प्रतिफल परस्पर निर्भर "खिलाडियो" की क्रियाओं पर निर्भर करते हैं।

सरलता एव सुविधा की दृष्टि से हम केवल दो खिलाडियो का उदाहरण लेते हैं। यह मानते हुए कि दोनो ही खिलाडी खेल (टेनिस, शतरज या रमी) के नियमो का पालन करते हैं, हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक खिलाडी के पास अपनी कुछ रणनीतिया (चालें) होती हैं। प्रत्येक खिलाडी प्रतिरक्षात्मक तथा आक्रामक,

में वृद्धि की घटनाए अधिक सामान्य रही हैं (iii) एथ्रासाइट कोयला, जहा कीमतों में उतार-चढ़ाव काफी होती रही हैं, (iv) इस्पात, जहां यु० एस० स्टील कपनी के पास कीमत-नेतृत्व केंद्रित रहा है तथा कीमत-अनम्यता का कोई प्रमाण नहीं दिखाई देता, (v) डायनेमाइट, जहां कीमतें एक साथ ऊपर या नीचे होती रहती हैं तथा (vi) गैसोलिन, (पेट्रोल) जहां कीमत में वृद्धि तथा कमी की घटनाए साथ-साथ होती हैं। स्टिग्लर ने इन सबका विश्लेषण करने के पश्चात यह निष्कर्ष दिया कि फर्म के पास यह विश्वास करने का कोई आधार नहीं है कि उसके द्वारा कीमत में कमी करने पर प्रतिद्वंद्वी भी कीमतें कम करेंगे, जबकि उसके द्वारा कीमतें बढ़ाने पर कोई भी प्रतिद्वंद्वी कीमत नहीं बढ़ाएगा।

दोनो प्रकार की रणनीतिया का प्रयोग करके प्रतिद्वंद्वी द्वारा उस पहुचाई जाने वाली क्षति को न्यूनतम कर सकता है, और साथ ही स्वय भी नीतियो का प्रयोग करके अधिकतम लाभ अर्जित कर सकता है। एक द्वयाधिकार वाले बाजार मे प्रत्येक विक्रेता अपनी चालो या रणनीतियो के प्रत्युत्तर म प्रतिद्वंद्वी द्वारा अपनाई गई रणनीतियो के सदर्भ म प्राप्य आय राशि का पूर्वानुमान करता है, और फिर उस रणनीति का चुनाव करता है जिससे प्रतिद्वंद्वियो के विरोध के बावजूद उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इन प्रतिफलो को निम्न प्रकार की भुगतान मैट्रिक्स (Pay-off matrix) के रूप म क्रमानुसार रखा जा सकता है—

$$\begin{bmatrix} Q_{11} & Q_{12} & \cdots & Q_{1n} \\ Q_{21} & Q_{22} & \cdots & Q_{2n} \\ \vdots & & & \vdots \\ Q_{m1} & Q_{m2} & \cdots & Q_{mn} \end{bmatrix}$$

उपरोक्त मैट्रिक्स म घटक a_{ij} वस्तुत वह आय है जो A नामी फर्म को अपनी i^{th} रणनीति अपनाने पर प्राप्त हो सकती है। परतु ऐसी दशा में B अपनी j^{th} रणनीति अपना सकता है। उपरोक्त मैट्रिक्स मे प्रस्तुत प्रत्येक घटक (element) A द्वारा अपनाई गई रणनीतियो के प्रत्युत्तर मे B द्वारा अपनाई गई रणनीति के सदर्भ मे A को प्राप्त होने वाली आय का सूचक है। सरलता के लिए हम यह मान लेते है कि A का लाभ ही B को होने वाली हानि है। इसी स्थिर योग या शून्य-योग वाला खेल (Constant-sum game or Zero-sum game) कहा जाता है जिसमे एक फर्म का लाभ दूसरी फर्म की हानि के समान होता है।

अब एक उदाहरण लीजिए। यदि A अपनी वस्तु की कीमत म 5 प्रतिशत कटौती करने का विचार करता है तो B इसके प्रत्युत्तर में चार या पान्च उपाय प्रयुक्त कर सकता है या तो B भी कीमत मे 5 प्रतिशत की ही कटौती करे, या वह 10 प्रतिशत कमी करे, या वह कीमत को वही रखकर इनामी कूपन देना शुरू कर दे, या वह विज्ञापन व्यय की राशि को दुगुनी कर दे। B के लिए A की एक रणनीति के प्रत्युत्तर मे अनेक रणनीतिया हो सकती हैं, और इसी प्रकार B की रणनीतियो के उत्तर में A के समक्ष अनेक रणनीतिया हो सकती हैं। कीमत में 5 प्रतिशत कटौती के प्रत्युत्तर में B द्वारा अपनाई जाने वाली विभिन्न रणनीतियो के सदर्भ मे A को प्राप्य आय की राशिया भी भिन्न होगी। इसी प्रकार B द्वारा अपनाई जाने वाली रणनीतियों के प्रत्युत्तर में अपनाई जाने वाली विभिन्न रणनीतियों से A को प्राप्य आय की राशिया भी भिन्न होंगी। इस प्रकार हम A को उसकी आक्रामक एव प्रतिरक्षात्मक रणनीतियो स प्राप्त होने वाली आय की राशियो को एक मैट्रिक्स के रूप मे प्रस्तुत कर सकते हैं।

तालिका 16 1

तालिका अथवा शून्य योग वाले खेल में A को प्राप्य आय की मैट्रिक्स

(A's Pay off Matrix Under Zero-sum Game)

		B की रणनीतियां				पंक्तियों की न्यूनतम राशि
		a′	b′	c′	d′	
A की रणनीतियां	a	20	17	14	18	14
	b	22	25	18	25	18
	c	15	30	16	32	15
	d	16	28	17	35	16
कालमों की अधिकतम राशि		22	30	15	35	18=18 $a_{23}=18$

तालिका 16 1 मे हमने A को प्राप्य आय की मैट्रिक्स प्रस्तुत की है। इस उदाहरण मे A को चार रणनीतियां उपलब्ध हैं : a, b, c तथा d। इसके प्रत्युत्तर मे B भी चार मे कोई सी एक रणनीति (a′, b′, c′ एव d′ मे से) अपना सकता है। उदाहरण के लिए यदि A अपनी तीसरी रणनीति (यानी c) अपनाए और उसके बदले B अपनी चौथी रणनीति (यानी d′) अपनाए तो A को 32 रुपए (a_{34}) का लाभ होगा। चूंकि स्थिर अथवा शून्य योग वाले खेल में A का लाभ B की हानि के समान है, A को 32 रुपए का लाभ होने पर B को प्राप्य आय —32 होगी।

तालिका 16 1 मे A को अपनी रणनीतियों से B की जवाबी रणनीतियों के संदर्भ मे जो आय प्राप्त होती है उसे पंक्तिबद्ध (row-wise) रूप मे प्रदर्शित किया गया है। चूंकि B का प्रयोजन A को प्राप्त होने वाली आय को न्यूनतम करना है, वह A की प्रत्येक चाल के बदले ऐसी जवाबी चाल चलेगा जिससे A की आय न्यूनतम हो जाए। उदाहरण के लिए, यदि A अपनी प्रथम रणनीति (a) अपनाने की सोचता है तो B तुरंत अपनी तृतीय रणनीति (c′) लागू कर देगा जिससे A को उसकी प्रथम रणनीति से प्राप्य आय न्यूनतम हो जाए। तालिका 16 1 मे इस आय का मूल्य $a_{13}=14$ बतलाया गया है। इसी प्रकार A की दूसरी चाल के प्रत्युत्तर में भी B अपनी तीसरी चाल चलेगा जबकि A की तीसरी व चौथी चाल के प्रत्युत्तर मे B अपनी प्रथम चाल चलकर A को उसी की रणनीतियों से प्राप्त होने वाली आय को न्यूनतम करना चाहेगा। A को प्राप्य ये न्यूनतम राशियां—जो B की जवाबी चालों

के सदर्भ मे A को प्राप्त हो सकती हैं—अंतिम कॉलम मे पंक्तियो की न्यूनतम राशि (Row Minima) के रूप मे प्रदर्शित की गई है। परतु A इन न्यूनतम राशियो मे से भी अधिकतम राशि प्रदान करने वाली रणनीति अपनाना चाहेगा (A will maximin) और इसलिए वह अपनी दूसरी रणनीति (b) अपनाएगा जिसमे उसे 18 रुपए की आय प्राप्त हो सकती है। सक्षेप मे, B द्वारा A को न्यूनतम आय प्रदान करने के प्रयासो के बावजूद A अपनी द्वितीय रणनीति अपना कर 18 रुपए अर्जित करना चाहेगा।

अब हम B की रणनीतियो के सदर्भ मे A की चालो से उसे (A को) प्राप्त होने वाली आय का विवरण देखेंगे। B की a, b', c व d' रणनीतियो के उत्तर में A को जो आय उसकी अपनी रणनीतियो से प्राप्त होगी वह कॉलम रूप मे प्रदर्शित की गई है। स्वाभाविक है कि B की प्रत्येक चाल के उत्तर मे A ऐसी चाल चलेगा जिससे उसकी आय अधिकतम हो। उदाहरण के लिए, यदि B यदि अपनी प्रथम रणनीति (a') अपनाने का निर्णय लेता है तो A तत्काल अपनी द्वितीय रणनीति (b) अपनाने का निर्णय लेगा ताकि उसकी (A की) आय अधिकतम हो जाए। इसी प्रकार B की b, c' व d' रणनीतियो के बदले A अपनी क्रमश तीसरी (c), दूसरी (b) व चौथी (d) रणनीतिया अपना कर अधिकतम आय प्राप्त करने का प्रयास करेगा। B की रणनीतियो से A अधिकतम आय प्राप्ति हेतु जो जवाबी चालें काम मे लेगा उनसे प्राप्त आय को अंतिम पंक्ति (कॉलमो की अधिकतम राशि—Column Maxima) मे प्रदर्शित किया गया है। अब B के लिए यह महत्त्वपूर्ण बात है कि उसकी अपनी रणनीतियो के सदर्भ मे A जो अधिकतम आय अर्जित करना चाहता है उसे वह (A) न्यूनतम करे (B will minimax)। इसीलिए B अपनी तृतीय रणनीति (c) अपनाता है जहा A को प्राप्य आय न्यूनतम होती है। शून्य-योग खेल मे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि A व B की रणनीतियो का इष्टतम सयोग वह है जहा A को वही आय प्राप्त होती है जो B उसे देना चाहता है प्रस्तुत मैट्रिक्स म a_{23} के अतिरिक्त (यानी A की द्वितीय तथा B की तृतीय चालें) कोई भी अन्य रणनीति इष्टतम नही हो सकती क्योंकि उस दशा मे B जितनी आय A को प्राप्त होने के पक्ष मे है, उससे A को अधिक या कम आय मिलती है। सक्षेप मे, शून्य-योग खेल (Zero sum game) के अतर्गत साम्य स्थिति की शर्त को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

$$\underset{i}{\text{Max}}\ \underset{j}{\text{Min}}\ a_{ij} = \underset{j}{\text{Min}}\ \underset{i}{\text{Max}}\ a_{ij} = a_{23} = 18$$

परतु जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, यह स्थिति केवल शून्य-योग खेल के सदर्भ में ही लागू होती है। धनात्मक योग खेल या अन्य किसी भी प्रकार की दशा मे A जितनी आय प्राप्त करता है, B वस्तुत उसे इससे कम या अधिक आय देना चाहता है।

16 6 अल्पाधिकार की समस्या के लिए कुछ समाधान : गठबंधन वाला अल्पाधिकार
(Some Market Solutions to The Oligopoly Problem : Collusive Oligopoly)

ऊपर अनुभाग 16 3 मे हमने द्वयाधिकार (duopoly) से सबधित पुराने समाधानों की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट कर दिया था कि आधुनिक सदर्भ मे बाजार मे विद्यमान अल्पाधिकारिक फर्मों के व्यवहार का विश्लेषण इन मॉडलो के आधार पर नही किया जा सकता। चेंबरलिन के मॉडल के अतिरिक्त सभी समाधानो मे यह मान्यता रखी गई थी कि बाजार मे विद्यमान विक्रेता परस्पर निर्भर होने पर भी इस अनुभूति के अनुरूप व्यवहार नही करते। इस अनुभाग मे हम यह देखेंगे कि परस्पर निर्भरता की स्थिति तथा कीमत-युद्ध के सभावित (या वास्तविक) घातक परिणामो के परिप्रेक्ष्य मे विभिन्न अल्पाधिकारी फर्में किस प्रकार गठबधन अथवा समझौते के माध्यम से वस्तु की कीमत एव मात्रा का निर्धारण करते हैं। फर्में परस्पर निर्भरता एव कीमत-युद्ध विराम के औचित्य को समझते हुए औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से कीमत तथा/अथवा मात्रा के विषय में कोई समझौता कर लेती हैं। यही भावना अथवा समझौता फर्मों के मध्य होने वाले कीमत-युद्ध पर अकुश लगाता है तथा उन्हें मिलजुल कर काम करने हेतु बाध्य करता है।

पूर्ण गठबधन कार्टेल या केंद्रीय सगठन (Perfect Collusion : The Cartel) — कार्टेल से हमारा अभिप्राय विभिन्न फर्मों के उस सगठन से है जिसका प्रयोजन किसी बाजार मे प्रतियोगी शक्तियो पर अकुश लगाना हो। किसी उद्योग या वस्तु-समूह से सबद्ध सभी फर्में सयुक्त रूप से एक केंद्रीय समिति को कीमत व उत्पादन सबधी निर्णय लेने का अधिकार सौंप देती हैं। इस प्रकार यह सगठन एकाधिकारी फर्म का रूप धारण कर लेता है तथा उसी रूप मे कीमत एव मात्रा के विषय में निर्णय लेता है।

कार्टेल या सगठन की स्थापना के समय यह मान्यता ली जाती है कि सभी सबद्ध फर्में समरूपी वस्तुओ का उत्पादन कर रही हैं। ऐसी दशा मे वस्तु का बाजार माँग वक्र अब सगठन का माग वक्र (AR या DD curve) बन जाता है। सुविधा के लिए कि यह माग वक्र रैखिक है और इसीलिए इसका सीमात आगम वक्र (MR) भी रैखिक (linear) होता है। जैसा कि हम जानते हैं, रैखिक माग वक्र अपेक्षा सीमात आगम वक्र का ढलान दुगुना होता है।

चित्र 16 7 में एक केंद्रीय सगठन या कार्टेल की कार्य-प्रणाली को दर्शाया गया है। DD_c वस्तु का माग वक्र है जबकि MR_c इससे सबद्ध सीमात आगम वक्र है। ΣMC कार्टेल मे सबद्ध फर्मों के सीमात लागत वक्रो का क्षैतिज योग है। इस वक्र का निरूपण इस मान्यता पर आधारित है कि सभी सदस्य फर्में पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार मे साधनो को खरीदती हैं। कार्टेल का उद्देश्य एकाधिकारी फर्म की भाति

अधिकतम लाभ अर्जित करना है। इस दृष्टि से कार्टेल का सीमात लागत वक्र सीमात आगम को जहा काटता है वही उत्पादन स्तर (OQ_c) फर्मों के सयुक्त लाभ को अधिकतम करने वाला स्तर है। इस स्तर पर कार्टेल द्वारा निर्धारित कीमत OP_c होगी तथा सभी सदस्य फर्मों से यह अपेक्षा की जाएगी कि वे इसी कीमत पर वस्तु बेचेंगी।
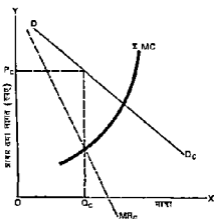
चित्र 16 7 केंद्रीय सगठन या कार्टेल द्वारा कीमत निर्धारण

इस प्रकार कार्टेल के अतर्गत कीमत का निर्धारण कार्टेल की केंद्रीय समिति द्वारा किया जाता है तथा फर्म के लिए कीमत बाह्य रूप से निर्धारित (exogenously determined) होती है, जैसा कि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत हुआ करता है। फर्म इस कीमत पर उतनी मात्रा बेचकर अधिकतम लाभ अर्जित कर सकती है जहा इसकी सीमात लागत कीमत ($MR=P$) के समान हो।

कभी-कभी कार्टेल की सदस्य फर्मों मे से प्रत्येक के लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य छोडकर कार्टेल की केंद्रीय समिति कुल मात्रा (OQc) को अभ्यशो (quotas) के आधार पर आवटित कर देती है। ये अभ्यश तीन प्रकार से निर्धारित किए जा सकते है। प्रथम विधि को ऐतिहासिक या सांख्यिकीय (historical or statistical) विधि कहा जा सकता है जिसके अतर्गत प्रत्येक फर्म द्वारा विगत कुछ वर्षों मे बेची गई मात्रा का औसत लेकर इन औसतो के अनुपात मे OQc का आवटन किया जाता है।[7] परतु यह

7. इस विधि के अनुसार ith फर्म को कुल बिक्री मे कितना अभ्यश प्राप्त होगा, इसका पता निम्न सूत्र से चल सकता है—

$$Q^i = \frac{\frac{1}{t}\left\{\sum_{j=1}^{t} S_j\right\}}{\sum_{i=1}^{n} Q} OQ_c$$

इस सूत्र में t तो भूतकालीन वर्षों का प्रतीक है, OQ_c कार्टेल द्वारा निर्धारित कुल बिक्री की मात्रा है जबकि S_j एक फर्म द्वारा jth वर्ष में बेची गई मात्रा है।

$\sum_{i=1}^{n} Q$ सभी फर्मों की सयुक्त बिक्री का औसत है।

विधि बहुधा विकासशील फर्मों को स्वीकार्य नहीं होती, और वे गुप्त रियायतों द्वारा अन्य फर्मों के ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास कर देती हैं। द्वितीय विधि के अन्तर्गत सभी सदस्य फर्मों की उत्पादन-क्षमता के अनुपात में अभ्यंशों का आवंटन किया जाता है। परन्तु इसमें नई फर्मों को अपेक्षाकृत अधिक फायदा होता है, जबकि पुरानी व प्रतिष्ठित फर्में इन अभ्यंशों से असन्तुष्ट रहने के कारण संगठन विरोधी कार्य करने लगती हैं ताकि उनकी बिक्री बढ़ सके।

अभ्यंशों के आवंटन की तृतीय विधि बिक्री का भौगोलिक या क्षेत्रीय आवंटन है। विभिन्न फर्में निर्धारित कीमत पर अपनी-अपनी भौगोलिक सीमाओं तक बिक्री सीमित रखने पर सहमत हो जाती हैं। परन्तु यह व्यवस्था भी इसलिए नहीं चल पाती कि किसी सदस्य फर्म द्वारा अन्तर्क्षेत्रीय तस्करी को प्रभावी ढंग से रोकना संभव नहीं होता। यही कारण है कि कार्टेल द्वारा भौगोलिक या क्षेत्रीय आधार पर अभ्यंशों का निर्धारण भी असफल होने की आशंका रहती है।

कार्टेल द्वारा निर्धारित बिक्री की मात्रा के आवंटन का आदर्श तरीका यह है जिसके अनुसार सभी सदस्य फर्मों को समान मात्रा में वस्तु बेचने का अधिकार दिया जाए। परन्तु यह तरीका तभी प्रभावी अथवा सफल हो सकता है जब कार्टेल की सभी सदस्य फर्मों के लागत फलन समरूपी हों। जैसा कि चित्र 16.8 में बतलाया गया है, बाजार का कुल माँग वक्र DD_c है तथा इससे सबद्ध सीमान्त आगम वक्र को फर्मों (इस उदाहरण में तीन फर्में हैं)। पूर्व की भाँति इस चित्र में भी तीनों फर्मों की सीमान्त लागतों का क्षैतिज योग लेकर ΣMC वक्र प्राप्त किया गया है जो कार्टेल के सीमान्त आगम वक्र MR_c को OQ_c उत्पादन स्तर पर काटता है।

चित्र 16.8 कार्टेल के अंतर्गत आदर्श अभ्यंश-आवंटन

चूंकि बाजार का माँग वक्र DD_c तीनों फर्मों के माँग वक्रों का क्षैतिज योग है, अतः एक फर्म का माँग वक्र Dd' इससे एक-तिहाई दूरी पर खींचा गया है।

कार्टेल की न्यूनतम लागत वह होती है जहाँ प्रत्येक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मात्रा पर सीमान्त लागत, संयुक्त सीमान्त लागत एवं संयुक्त सीमान्त आगम के समान हो ($MC=MC_c=MR_c$)। इसीलिए एक फर्म को OQ मात्रा (कुल कार्टेल-बिक्री $3OQ=OQ_c$ के समान है) का उत्पादन करने पर अधिकतम लाभ प्राप्त होता है, तथा वह इस मात्रा को OP_c कीमत पर बेचती है।

परंतु बहुधा भिन्न-भिन्न फर्मों की उत्पादन लागतें एक-सी नहीं होती। यही नहीं, ऊपर वर्णित कारणों से कार्टेल का अस्तित्व कुछ ही समय के लिए होता है क्योंकि गुप्त रियायतें देकर प्रत्येक सदस्य फर्म अपनी बिक्री को बढाने का प्रयत्न करती है, भले ही इसके लिए उसे अन्य फर्मों के ग्राहकों को अपने अनुकूल बनाना पड़े। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, कार्टेल की केंद्रीय समिति द्वारा आवंटित अभ्यंशों के प्रति सदस्य फर्मों में जो असंतोष होता है, चाहे वह सांख्यिकीय हो चाहे भौगोलिक आधार पर, उसके कारण वे अभ्यंशों से अधिक बिक्री करने के प्रयास में गुप्त कीमत-रियायतें देना प्रारंभ कर देती हैं, और इसके परिणाम स्वरूप कार्टेल कुछ समय के बाद ही टूट जाता है।

अनेक बार सदस्य फर्में केंद्रीय समिति द्वारा दिए गए निर्देशों की अवहेलना करना प्रारंभ कर देती हैं। यह अवहेलना गोपनीय हो सकती है अथवा खुली, परंतु इसके कारण कार्टेल की स्थापना के पीछे विद्यमान भावना ही समाप्त हो जाती है, संक्षेप में, जब तक कार्टेल को प्रबल वैधानिक संरक्षण प्राप्त न हो, सदस्यों के आंतरिक दबाव एवं उनकी स्वार्थपरक नीतियों के कारण कार्टेल कुछ ही समय में टूट जाता है तथा सदस्य फर्में फिर से कीमत-युद्ध में संलग्न हो जाती हैं। इसीलिए बहुधा कार्टेल के स्थान पर कीमत-नेतृत्व को एक स्थायी अथवा दीर्घकालीन समाधान के रूप में स्वीकार किया जाता है।

16.7 एकाधिकार के अंतर्गत कीमत नेतृत्व
(Price Leadership Under Oligopoly)

अल्पाधिकार वाले बाजार में कीमत नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता बहुधा एक विशालकाय अथवा अनुभवी फर्म में निहित होती है। अनेक बार ऐसी फर्म को भी कीमत-नेतृत्व सौंप दिया जाता है जिसकी उत्पादन लागत न्यूनतम हो। इस मॉडल में वस्तु की कीमत की घोषणा 'नेता' द्वारा की जाती है जबकि अन्य सभी फर्में उसका अनुगमन करने को विवश होती हैं अन्यथा नेतृत्व करने वाली फर्म उन्हें भारी क्षति पहुंचा सकती है। उदाहरण के लिए यदि डी० सी० एम० द्वारा उत्पादित वनस्पति घी की उत्पादन लागत सब से कम हो तो यह फर्म कीमत का निर्धारण करने में सक्षम है। इसी प्रकार साबुन निर्माण में हिंदुस्तान लीवर अपने विशाल आकार के कारण कीमत नेतृत्व प्रदान करने में समर्थ है। इसी प्रकार एक अनुभवी एवं प्रतिष्ठित फर्म अंतर्राष्ट्रीय एवं देश के भीतर के घटना-चक्रों को देख कर कीमतों की प्रवृत्ति का पूर्वानुमान कर सकती है तथा अन्य फर्में उसी के द्वारा सुझायी गई कीमत लेने को सहमत हो सकती हैं। इसे बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व कहा जाता है, जबकि पूर्व में वर्णित न्यूनतम लागत वाली फर्म द्वारा तथा विशालकाय फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व की श्रेणियां हैं। हम सभी का क्रमानुसार विश्लेषण करेंगे।

बैरोमेट्रिक धर्म द्वारा कीमत नेतृत्व
(Price Leadership by a Barometric Firm)

बैरोमेट्रिक कीमत नेतृत्व तब होता है जब परंपरागत रूप में एक फर्म सर्वप्रथम कीमत में परिवर्तनों की घोषणा करती है, तथा अन्य फर्में उसका अनुसरण करती हैं। ऐसी फर्म को बैरोमेट्रिक फर्म कहा जाता है। बहुधा बैरोमेट्रिक फर्म के लिए विशालकाय फर्म होना आवश्यक नहीं होता। स्टिग्लर ने कहा था, "उदाहरण के लिए, दीर्घकाल तक इंटरनेशनल पेपर कंपनी ने अखबारी कागज उद्योग में कीमत नेतृत्व प्रदान किया, हालांकि यह कुल उत्पादन का सातवें से भी कम भाग का उत्पादन करती थी, फिर बाद में कीमत नेतृत्व का कार्य ग्रेट नार्दर्न के हाथों में चला गया, हालांकि यह कंपनी अपेक्षाकृत छोटी थी।

"वस्तुत बैरोमेट्रिक फर्म एक ऐसी फर्म होती है जिसने पर्याप्त ज्ञान एव अनुभव अर्जित कर लिया है तथा जो अन्य फर्मों की तुलना में अधिक दक्षतापूर्वक पूर्वानुमान कर सकती है। इसीलिए फर्म का आकार छोटा होने पर भी अन्य फर्में बैरोमेट्रिक फर्म से कीमत के विषय में निर्देश अथवा संकेत प्राप्त करने हेतु आतुर रहती हैं। स्टिग्लर ने पैट्रोल पंपों का भी उदाहरण इस संदर्भ में प्रस्तुत किया है जहा किसी क्षेत्र में विद्यमान सभी पंप-मालिक एक जैसे तथ्यों पर ध्यान तो देते हैं परंतु वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर भावी अनुमान करने का दायित्व एक फर्म पर ही छोड देते हैं। तथापि, स्टिग्लर का तर्क है, बैरोमेट्रिक फर्म बहुधा अपने लाभ को अधिकतम करने हेतु कीमत नेतृत्व नही कर पाती।"[8]

एक न्यूनतम लागत वाली फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व
(Price Leadership by a Low Cost Firm)

सरलता के लिए हम यह मान लेते हैं कि बाजार में तीन फर्में हैं जो एक-सी वस्तु का उत्पादन करती हैं। बाजार में वस्तु की कुल माग को प्रदर्शित करने वाला वक्र चित्र 16.9 में DD' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हम यह भी मान्यता ले रहे हैं कि फर्में बाजार को समान रूप से बाट लेती हैं और इस प्रकार प्रत्येक फर्म का माग वक्र dd' के रूप में होता है। परंतु इस मॉडल की सबसे महत्त्वपूर्ण मान्यता है यह कि सभी फर्मों के लागत फलन भिन्न हैं। प्रस्तुत उदाहरण में तीसरी फर्म द्वारा वस्तु का उत्पादन न्यूनतम लागत पर किया जा सकता है, जैसा कि इस फर्म के लागत वक्रों से स्पष्ट होता है।

यदि न्यूनतम लागत वाली फर्म चाहे तो OP_2 कीमत निर्धारित करके शेष दोनों फर्मों को बाजार छोडने के लिए बाध्य कर सकती है। इसके विपरीत यदि वह प्रथम फर्म को बाजार छोडने हेतु विवश करना चाहे तो OP_1 कीमत निर्धारित कर सकती है। दोनों ही परिस्थितियों में न्यूनतम लागत वाली फर्म का उद्देश्य स्वयं का

8 Stigler, op cit

वर्चस्व स्थापित करना हो सकता है, भले ही उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति न हो। परतु यदि ऊची लागत वाली दोनों ही फर्में न्यूनतम लागत वाली फर्म का नेतृत्व स्वी-

चित्र 16 9 एक न्यूनतम लागत वाली फर्म द्वारा कीमत-लागत
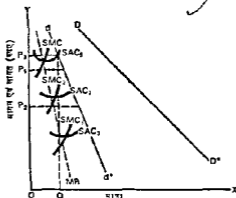
कार कर लें, तथा न्यूनतम लागत वाली फर्म इन दोनों को "जीओ, और जीने दो" के सिद्धात के अनुरूप अस्तित्व म बने रहने का अवसर देने पर सहमत हो जाए तो वह OP_2 कीमत निर्धारित कर सकती है। जैसा कि चित्र 16 9 से स्पष्ट होता है, इस कीमत पर सबसे ऊची लागत वाली (प्रथम) फर्म भी अस्तित्व मे बनी रहती है। इसी कीमत पर प्रत्येक फर्म समान मात्रा $O\bar{Q}$ बेच सकती है। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि ऊची लागत वाली फर्में न्यूनतम लागत वाली फर्म की दयादृष्टि पर निर्भर रहती हैं।

एक विशालकाय फर्म द्वारा कीमत-नेतृत्व

(Price Leadership by a Dominant Firm)

कीमत-नेतृत्व का एक विलक्षण उदाहरण चित्र 16 10 मे प्रस्तुत किया गया है। सभव है भारत मे इस प्रकार के कीमत-नेतृत्व के अधिक उदाहरण न दिखाई दें, परतु अमरीका के अनेक उद्योगों मे लबे अर्से से विशालकाय फर्मों का वर्चस्व विद्यमान है।

एक विशालकाय फर्म बहुधा उस फर्म को माना जाता है जो उद्योग के कुल उत्पादन का महत्त्वपूर्ण अश प्रदान करती हो। स्पष्ट है, एक विशालकाय फर्म के विरुद्ध अनेक छोटी-छोटी फर्में विद्यमान होती हैं। यदि यह फर्म चाहे तो कीमत-युद्ध प्रारम करके अपने सभी प्रतिद्वद्वियों को बाजार छोडने के लिए विवश कर सकती है। परतु बहुधा छोटी-छोटी फर्में विशालकाय फर्म को इस बात के लिए सहमति प्राप्त कर लेती हैं कि वह उन्हें भी अस्तित्व म रहने देगी। विशालकाय फर्म इसके लिए तीन शर्तें रख सकती है। प्रथम, कीमत का निर्धारण वह करेगी, तथा छोटी फर्मों को इसी

कीमत पर वस्तु बेचनी होगी। द्वितीय, निर्दिष्ट कीमत पर छोटी फर्में जितनी मात्रा चाहेंगी उतनी बेच सकेंगी तथा बाजार माग का शेष भाग विशालकाय फर्म द्वारा पूरा किया जाएगा। तृतीय, निर्दिष्ट कीमत पर छोटी फर्मों को कितना लाभ प्राप्त होता है, इससे विशालकाय फर्म को कोई प्रयोजन नही है, परतु वह अपने लाभ को अधिकतम करने हेतु कीमत एव मात्रा का निर्धारण करती है।

चित्र 16 10 मे वस्तु की बाजार माग को DD वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इसके विपरीत S_s छोटी फर्मों का पूर्ति वक्र है तथा इसका निरूपण इस मान्यता के आधार पर किया गया है कि विशालकाय फर्म द्वारा सुझायी गई प्रत्येक कीमत पर पहले छोटी फर्में उनके द्वारा प्रस्तावित बिक्री की मात्रा की घोषणा करेंगी तथा बाजार माग का शेष भाग बडी फर्म द्वारा पूरा किया जाएगा।
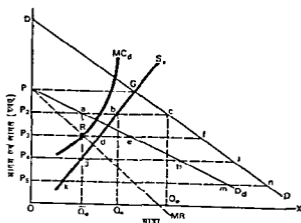
16 10 एक विशालकाय फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व

विशालकाय फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व वाले मॉडल मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष इस फर्म के अपने माग वक्र (P_1D_d) के निरूपण से सबद्ध है। अब कल्पना कीजिए कि विशालकाय फर्म OP_1 कीमत निर्धारित करती है। इस कीमत पर कुल माग P_1G है तथा समूची माग की पूर्ति छोटी फर्मों द्वारा की जा सकती है (S_s तथा DD यहा प्रतिच्छेदित हैं), अत विशालकाय फर्म की वस्तु की माग शून्य होगी। यदि विशालकाय फर्म OP_2 कीमत निर्धारित करे तो छोटी फर्में P_2b मात्रा की पूर्ति करना चाहेंगी जब कि बाजार माग (P_2c) का शेष भाग (bc) बडी फर्म द्वारा पूरा किया जाएगा। इस प्रकार P_2b पर विशालकाय फर्म द्वारा P_2a मात्रा बेची जा सकती है (जबकि $P_2a=$ bc)। इसी प्रकार कीमत OP_3 रखे जाने पर छोटी फर्में P_3d मात्रा बेचना चाहेंगी जबकि बाजार माग का शेष भाग (df) विशालकाय फर्म के लिए छोड देंगी ($df=$ P_3e)। इसी प्रकार अन्य कीमतो पर कुल बाजार माग में से छोटी फर्मों द्वारा प्रस्ता-

चित पूर्ति को घटाकर विशालकाय फर्म की वस्तु की माग ज्ञात की जा सकती है। तालिका 16 2 मे हमने विभिन्न कीमतो पर कुल माग, छोटी फर्मों द्वारा प्रस्तावित मात्राए तथा विशालकाय फर्म की माग की मात्राए प्रस्तुत की हैं। इनसे सबद्ध बिंदुओ को मिलाने पर हमे चित्र 16 10 मे विशालकाय फर्म का माग वक्र (P_1D_d) प्राप्त होता है, जो एक सामान्य माग वक्र के अनुरूप ही है।

तालिका 16 2

विशालकाय फर्म की मांग अनुसूची का निरूपण

कीमत	बाजार माग	छोटी फर्मों द्वारा प्रस्तावित पूर्ति	विशालकाय फर्म की मांग (कालम 2-3)
1	2	3	4
OP_1	P_1G	P_1G	शून्य
OP_2	P_2C	P_2b	$bC=P_2a$
OP_3	P_3f	P_3d	$df=P_3e$
OP_4	P_4j	P_4g	$gj=P_4h$
OP_5	P_5n	P_5k	$km=P_5m$

इस प्रकार हम विशालकाय फर्म का माग वक्र प्राप्त कर सकते हैं। चूकि यह माग वक्र रैखिक (linear) है, इसका अनुरूपी सीमात आगम वक्र (MR) भी रैखिक होगा। इस वक्र को विशालकाय फर्म का सीमात लागत वक्र (MCd) R बिंदु पर काटता है, इसलिए विशालकाय फर्म की अधिकतम लाभ प्रदान करने वाली उत्पादन मात्रा $O\bar{Q}_d$ है। इस मात्रा की बिक्री हेतु विशालकाय फर्म OP_2 कीमत निर्धारित करती है। इस कीमत पर बाजार की कुल माग $O\bar{Q}_D$ है तथा छोटी फर्में OQ_s मात्रा बेचती हैं।

व्यावहारिक जीवन मे विशालकाय फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व के अनेक उदाहरण देखने को मिलते रहे हैं। चौथे दशक के उत्तरार्द्ध मे बेरिलियम उद्योग के सदर्भ मे यह देखा गया कि अमेरिकन ब्रास कपनी कुल बाजार-पूर्ति का 30 प्रतिशत प्रदान कर रही थी। यही फर्म कीमत की घोषणा करती थी जिसे अन्य विक्रेता भी स्वीकार करते थे। अमरीका मे ही किराना व खाद्य पदार्थों की पूर्ति के क्षेत्र मे 1958 मे यह देखा गया कि ए० एड पी० अपने क्षेत्र मे कीमत नेतृत्व प्रदान कर रही थी। इसी प्रकार इस्पात के क्षेत्र मे यू० एस० स्टील कपनी, जहा 1920 मे देश के इस्पात का 50 प्रतिशत उत्पादन करती थी, और आज भी 25 प्रतिशत उत्पादन करती है। कीमत नेतृत्व प्रदान करती रही है, तथा भारत मे हिंदुस्तान स्टील को यह वर्चस्व प्राप्त है। इसी प्रकार भारत मे टाइप राइटर के क्षेत्र मे रैमिंगटन तथा वनस्पति के क्षेत्र मे डी० सी० एम० या हिंदुस्तान लीवर को कीमत नेतृत्व प्रदान करने मे सक्षम फर्में माना

जा सकता है। वस्तुत: यदि किसी भी उद्योग या वस्तु समूह मे कुल उत्पादन का एक बडा अश एक ही फर्म द्वारा प्रस्तुत किया जाता हो तो वह फर्म कीमत नेतृत्व की भूमिका निभाने मे समर्थ होती है।

कहीं-कहीं दो या अधिक विशालकाय फर्में भी विद्यमान हो सकती हैं। परतु इससे हमारे विश्लेषण एव इससे प्राप्त निष्कर्षों मे कोई भी परिवर्तन नही होगा। ऐसी दशा मे छोटी फर्में कीमत नेतृत्व के लिए किसी भी एक विशालकाय फर्म अथवा सभी विशालकाय फर्मों का आश्रय ले सकती हैं। ऐसी स्थिति म सभी विशालकाय फर्में मिल-जुल कर कीमत निर्धारण करती हैं, तथा निर्दिष्ट कीमत पर छोटी फर्मों द्वारा की गई बिक्री के बाद बाजार की अवशिष्ट माग को किसी सर्वसम्मत अनुपात मे पूरा करने हेतु समझौता कर सकती हैं।

16 8 अल्पाधिकार मे प्रतियोगिता का स्वरूप
(Nature of Competition Under Oligopoly)

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि अल्पाधिकार के अतर्गत परस्पर निर्भरता के कारण कोई भी फर्म अपनी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन नही करना चाहेगी, क्योंकि ऐसा करने पर उसको प्राप्त होने वाली आय बढने की बजाय घट जाएगी। फिर भी अल्पकाल में कीमत-प्रतियोगिता विद्यमान रहना सभव है, क्योंकि बहुधा अल्पकाल मे फर्म को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता। परतु दीर्घकाल में प्रत्येक अल्पाधिकारी कीमत में कमी या वृद्धि करने की पहल नहीं करेगा। इसीलिए कहा जाता है कि अल्पाधिकार में "कीमत-इतर प्रतियोगिता" (non price competition) ही दिखाई देती है।

कीमत-इतर प्रतियोगिता के अतर्गत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधि विज्ञापन है। कीमत में कटौती करके प्रतिद्वद्वी फर्मों को भी कीमतें कम करने की प्रेरणा देने से तो यह बेहतर समझा जाता है कि फर्म बिक्री बढाने हेतु प्रचार प्रसार या विज्ञापन का आश्रय ले। विज्ञापन के माध्यम से फर्म अपनी वस्तु के गुणों एव विशेषताओ से उपभोक्ताओ को सफलतापूर्वक अवगत करा सकता है। यह ठीक है कि प्रतिद्वद्वी भी अपनी-अपनी वस्तु का प्रचार-प्रसार करना चाहेंगे, परतु कुल मिला कर विज्ञापन के कारण नए उपभोक्ताओं को भी प्रेरणा दी जा सकती है, और इससे कुल बिक्री में वृद्धि हो सकती है।

कीमत-इतर प्रतियोगिता की दूसरी विधि वह है जिसके अतर्गत फर्म अपनी वस्तु की डिज़ाइन या क्वालिटी में निरतर परिवर्तन करती रहती है। शृगार-प्रसाधन एव वस्त्र-परिधान इसके अच्छे उदाहरण हैं। धनी देशो में मोटर कारो की डिज़ाइनें आम तौर पर बदलती रहती हैं। यदि एक विक्रेता नई डिज़ाइन की वस्तु लेकर बाजार में प्रवेश करता है तो उसके प्रतिद्वद्वी भी निश्चित रूप से पूर्वापेक्षा अधिक आकर्षक डिज़ाइनें प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। कभी-कभी प्रतिद्वद्वी फर्में वस्तु की क्वालिटी में सुधार करके भी अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करते हैं।

कुल लागत पर कीमत निर्धारण[9]
(Full Cost Pricing)

1939 में ऑक्सफोर्ड के दो अर्थशास्त्रियों हॉल तथा हिच ने शोध के पश्चात् बतलाया कि बहुधा फर्में सीमांत आगम व सीमांत लागत को समान करके अधिकतम लाभ अर्जित करने की अपेक्षा कुल लागत पर कीमत निर्धारण करती हैं। इन लेखकों ने स्पष्ट किया कि विक्रेता उत्पादन स्तर से सबद्ध कुल लागत का आकलन करने के बाद इसमें एक "संतोषप्रद लाभ-मार्जिन" जोड देते हैं। इसी "कुल लागत" (full cost) के आधार पर प्रत्येक फर्म कीमत का निर्धारण करती है। इस प्रकार हॉल व हिच के मॉडल में कीमत में संतोषजनक लाभ-मार्जिन शामिल रहता है। इन दोनों ने यह भी स्पष्ट किया कि व्यवहार में फर्म का प्रमुख संबंध कुल उत्पादन या लाभ से न होकर कीमत से होता है।

परंतु अल्पाधिकार की दशा में इस स्वीकार्य लाभ-मार्जिन को ज्ञात करने हेतु प्रतिद्वंद्वी फर्मों के बीच किसी प्रकार की परस्पर सहमति होनी चाहिए और साथ ही उनमें यह भी समझौता होना चाहिए कि वे एक-दूसरे के प्रति अनुचित व्यवहार नहीं करेंगे। हॉल एवं हिच ने बतलाया कि सामान्य तौर पर अल्पाधिकारी फर्में कीमत में परिवर्तन नहीं करती तथा सीमांत आगम व सीमांत लागत के आकलन की कठिनाइयों के कारण कुल लागत के आधार पर ही कीमत का निर्धारण करती हैं।

इन दोनों विद्वानों द्वारा की गई शोध से प्राप्त निष्कर्षों को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है : प्रथम, सस्थापक तथा नवसंस्थापक मान्यताओं के विपरीत फर्मों की स्थिति अणविक (atomistic) नहीं है, और न ही वे अधिकतम लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से कार्य करती हैं। बहुधा प्रतिद्वंद्वी फर्में लागत के आधार पर कीमत निर्धारित करती हैं—

$$P = AVC + AFC + \text{Normal profit margin}$$

(कीमत = औसत परिवर्तनशील लागत + औसत स्थिर लागत + सामान्य लाभ-मार्जिन)

हॉल व हिच ने फर्मों द्वारा सीमांत लागत व सीमांत आगम के आधार पर उत्पादन के स्तर का निर्धारण नहीं किए जाने हेतु दो कारण प्रस्तुत किए : (अ) फर्मों को उपभोक्ताओं की रुचियों तथा प्राथमिकताओं का ज्ञान नहीं है और इसलिए वे मांग फलन तथा सीमांत आगम फलन का निरूपण नहीं कर सकती, जिसके फलस्वरूप सीमांत आगम-सीमांत लागत विधि निरर्थक हो जाती है; तथा (ब) फर्म को ऐसा विश्वास है कि कुल लागत पर आधारित कीमत "सही" कीमत है क्योंकि प्लांट की क्षमता का सामान्य उपभोग करते हुए इस कीमत पर वह उत्पादन लागत के ऊपर सामान्य लाभ प्राप्त कर लेती है।

परंतु यदि फर्म काफी बड़ी मात्रा में वस्तु बेचना चाहती है तो संभव है यह

9 Koutsoyiannis, op. cit., pp. 263-265.

"औसत लागत" के आधार पर कीमत निर्धारण पर जोर न दे। फर्म लागत के आधार पर कीमत निर्धारण की परपरा को उस स्थिति में भी छोड सकती है जब उसे यह भय होने लगे कि ऐसा करने पर उसकी प्रतिष्ठा को धक्का लग सकता है।

अन्त मे, हॉल तथा हिच ने यह भी पाया कि निर्माताओं द्वारा घोषित कीमतें काफी अनम्य होती हैं तथा माग व लागतो मे परिवर्तन होने पर भी इन पर अधिक प्रभाव नहीं होता। जैसा कि हम पूर्व मे देख चुके हैं, परपरागत कीमत सिद्धात के अनुसार लागत तथा/अथवा माग फलन मे परिवर्तन होते ही फर्म के उत्पादन स्तर व कीमत मे भी परिवर्तन हो जाता है। विकुचित माग वक्र का वर्णन करते हुए उन्होंने बताया कि बहुधा व्यवसायी वस्तु की कीमत का निर्धारण औसत लागत तथा सामान्य लाभ के मार्जिन (AVC+AFC+Normal Profit) के आधार पर किया जाता है एव उसी कीमत पर विकुचन की स्थिति होती है। अधिकाश फर्मों ने हॉल व हिच को बताया कि उनका प्रतिद्वद्वी विक्रेताओ स कोई ऐसा समझौता नही होता या जिससे उन्हें कीमत मे वृद्धि करने की जरूरत महसूस होती। वस्तुत इन विद्वानो ने यह पाया कि कीमत बढाने के साथ ही पुरानी फर्मों के अस्तित्व को बाहर की फर्मों के आगमन का खतरा महसूस होने लगता है। इसी प्रकार फर्मों का अपने प्रतिद्वद्वियो से कीमत मे कटौती हेतु भी कोई समझौता नही था क्योकि कीमत मे कटौती से वस्तु समूह के सदस्यो को कोई लाभ होने की आशा नही होती। फर्मों न यह भी बताया कि कीमतो मे बार-बार कमी या वृद्धि को उनके ग्राहक पसद नही करत।

1948 मे आर० ए० गॉर्डन ने भी इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत किए। उन्होने कहा कि वास्तविक औद्योगिक जगत काफी जटिलताओ से परिपूर्ण है तथा माग व लागतो को प्रभावित करने वाले घटकों मे इतने अधिक परिवर्तन होते हैं कि कोई भी फर्म भूतकालीन अनुभवो के आधार पर भविष्य मे होने वाली घटनाओ का पूर्वानुमान नही कर सकती। यही कारण है कि व्यावहारिक जीवन मे फर्म के माग व लागत फलनो का सही निरूपण नहीं किया जा सकता। गॉर्डन ने कहा कि अधिकाश व्यवस्थापक अपनी-अपनी फर्म में उत्पन्न होने वाली सामान्य समस्याओ म उलझे रहते हैं तथा इनके समाधान ढूढने का प्रयास करते हैं जिनका सीमात आगम-सीमात लागत विधि से कोई सबध नही है।

16.9 अल्पाधिकार के आर्थिक कल्याण पर प्रभाव
(Welfare Effects of Oligopoly)

प्रथम बात तो यह है कि एक अल्पाधिकारी फर्म का उत्पादन स्तर एक प्रतियोगी फर्म की तुलना मे काफी कम होगा जबकि इसके द्वारा वसूली गई कीमत अपेक्षाकृत काफी ऊची होगी। ऐसा बहुधा इसलिए होता है कि या तो फर्म के माग वक्र का निरूपण ही नहीं हो सकता, अथवा सामान्यतया इसका माग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होता है। द्वितीय, अल्पाधिकारी फर्म बहुधा इष्टतम स्तर पर उत्पादन नहीं कर पाती। इसके अलावा वह कीमत इतर प्रतियोगिता के कारण विज्ञापन व

प्रचार-प्रसार पर भारी राशि व्यय करती है। इन सबके फलस्वरूप उपभोक्ता पर पड़ने वाला कुल भार पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा अल्पाधिकार में अधिक हो जाता है। तृतीय, इष्टतम से कम स्तर पर उत्पादन के कारण अल्पाधिकार फर्म की उत्पादन क्षमता का एक बड़ा भाग प्रयोग में नहीं आ पाता।

इन सब दोषों के बावजूद अल्पाधिकार ही बाजार की वह स्थिति है जिसमें शोध व विकास (R & D) पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। प्रतिद्वंद्वी फर्में बहुधा नई से नई डिजाइनों की खोज में रहती हैं और साथ ही यथासंभव क्वालिटी में निरंतर सुधार करके ग्राहकों की सहानुभूति बनाए रखना चाहती हैं। विशालकाय औद्योगिक संस्थानों में उनके वार्षिक बजट का एक बड़ा अंश शोध व विकास पर ही व्यय किया जाता है। यह सब पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अंतर्गत करने की जरूरत नहीं समझी जाती। कुल मिलाकर अन्य बाजारों की अपेक्षा अल्पाधिकार के अंतर्गत फर्में अपने ग्राहकों को बनाए रखने हेतु पूरा प्रयास करती हैं। संक्षेप में, शोध एवं विकास पर व्यय की जाने वाली भारी राशि अल्पाधिकार वाले बाजार की प्रगतिशीलता की सूचक है।

17
रैखिक प्रोग्रामिंग
(LINEAR PROGRAMMING)

प्रस्तावना

अब तक हमने एक उपभोक्ता, उत्पादक अथवा एक फर्म के व्यवहार का विश्लेषण किया था। हमने पिछले चार अध्यायों में एक फर्म के आर्थिक व्यवहार का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया था कि निश्चितता की दशा में किस प्रकार वह अधिकतम लाभ अर्जित करने का प्रयास करती है अथवा अनिश्चितता की स्थिति में क्योंकर वह अपनी हानि को न्यूनतम करती है।

परंतु अब तक हमारे विश्लेषण में हमने ऐसे सामान्य व्यवहारात्मक एवं क्रियात्मक संबंधों की ही व्याख्या की थी जिनका आर्थिक जगत से सीधा संबंध होता है। उदाहरण के लिए, अध्याय 5 में माग के नियम का विश्लेषण करते समय हमने यह मान्यता ली थी कि माग व कीमत में प्रतिकूल संबंध होता है परंतु हमने यह स्पष्ट नहीं किया था कि दोनों में आवश्यक रूप से रैखिक संबंध ही होता है। हमने रैखिकता का माग पर क्या प्रभाव होता है इसको स्पष्ट करने का भी कोई प्रयास नहीं किया था। वस्तुतः हमारा अत्यधिक सामान्य दृष्टिकोण उन समस्याओं की उपेक्षा कर देता है जिन्हें कोई एक किसान, एक फर्म अथवा कोई सरकारी अधिकारी अनुभव करता है। जहां तक सीमांत मूल्यों एवं संबंधों का प्रश्न है इनकी उपयोगिता तभी तक है जब तक हमारा विश्लेषण अत्यंत थोड़ी संख्या वाले चरों तक सीमित रहे। परंतु यदि हमारे विश्लेषण में काफी अधिक चर सम्मिलित किए जाएं तो व्यष्टिगत आर्थिक इकाई के समक्ष प्रस्तुत होने वाली समस्याओं के हल की खोज हेतु हमें सीमांत संबंधों का आश्रय छोड़कर अन्य किसी विधि को अपनाना होगा।

हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि सीमांत संबंधों की व्याख्या (उदाहरण के लिए सीमांत उपयोगिता व कीमत की तुलना अथवा सीमांत आगम एवं सीमांत लागत की तुलना) वस्तुतः परिवर्तन की दरों की तुलना मात्र है। गणितीय दृष्टि में इसका यह अर्थ है कि हम निर्दिष्ट फलनों के अवकलज (derivatives) प्राप्त करके उन स्थितियों का पता करते हैं जो उपभोक्ता या फर्म के लिए इष्टतम हो सकती हैं। परंतु जैसा कि आगे बतलाया गया है, अनेक ऐसी स्थितियां होती हैं

जिनमे इष्टतम मात्रा का निर्धारण सीमांत मूल्यो के आधार पर हो ही नहीं सकता, तथा हमे अन्य परिष्कृत विधियो का आश्रय लेना होता है।

17 1 सीमांत-सबंधो से सबद्ध समस्याए
(Problems Related to Marginal Relationships)

सीमांत सबधो से जुड़े हुए विश्लेषण मे उपस्थित होने वाली तीन प्रकार की कठिनाइया इस प्रकार की हैं जिनके कारण सीमात आगम के आधार पर इष्टतम का गणितीय निर्धारण सभव नहीं हो पाता। प्रथम, यह दशा हो सकती है जब हमारे विश्लेषण से सबद्ध माग फलनो म कोई विकुचन (kink) अथवा विरतता (discontinuity) विद्यमान हो। इसी कारण से सीमांत सबधो के आधार पर अल्पाधिकार के अतर्गत फर्म का माग वक्र विकुंचित होने पर इसके व्यवहार का विश्लेषण सभव नहीं हो पाता।

द्वितीय यह भी सभव है कि जो सीमांत मूल्य अधिकतम लाभ या अधिकतम उपयोगिता का निर्धारण करते हैं वे उपलब्ध आकडो की उपयुक्त रेंज के बाहर मिलते हो। अन्य शब्दो म, हम आकडे प्रस्तुत करने के साथ ही यह शर्त भी जोड सकते हैं कि निर्दिष्ट सीमाओ म ही परिवर्तन सभव हैं जबकि अधिक लाभ वाली मात्रा इन सीमाओ से बाहर हो। उदाहरण के लिए, पर्याप्त आदाओं (inputs) के अभाव म फर्म उस स्तर तक उत्पादन बढ़ाने म सक्षम नहीं हो पाती जहा सीमात आगम तथा सीमात लागत समान हैं। ऐसी दशा मे फर्म को इष्टतम से कम पर ही उत्पादन को रोक देना होगा।

तृतीय, किसी किसी फलन मे एक से अधिक अधिकतम (या न्यूनतम) मूल्य प्राप्त हो सकते है तथा ऐसी दशा म कौन सा अधिकतम मूल्य स्वीकार किया जाए यह निर्धारण करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति म हमे सीमात मूल्यो के अतिरिक्त कुछ सूचनाए भी एकत्रित करनी होंगी जिनके आधार पर हम अपने निष्कर्षों की जाच कर सकते हैं।

परतु इस सदर्भ मे हिब्डन यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि सीमात सबधो की सीमाओ का यह अर्थ कदापि नहीं लिया जाना चाहिए कि सीमांत मूल्यो की अवधारणा ही गलत है। उनके मत मे कि हीं-किन्ही परिस्थितियो मे सीमात मूल्यो पर आधारित तकनीक विफल हो सकती है, तथापि इनका सैद्धांतिक महत्व इसी आधार पर कम नहीं हो जाता।

यह भी सभव है कि कभी-कभी सीमांत सबधो द्वारा प्रदत्त इष्टतम मूल्य हम ऋणात्मक उत्पादन स्तर अथवा ऋणात्मक सीमात लागत/सीमात आगम प्रदान कर दे, जो वस्तुत एक असभव-सी बात होगी। चित्र 17 1 मे ऐसी दो स्थितियो का

1 James E Hibdon Price and Welfare Theory (New York, Mc Graw Hill Book Company), 1969, pp 221 22.

चित्रण किया गया है। पैनल (a) मे जहां सीमात आगम व सीमात लागत समान हैं वहा फर्म को अधिकतम लाभ हेतु ऋणात्मक उत्पादन करना चाहिए जबकि पैनल (b) मे अधिकतम लाभ उत्पादन के उस स्तर पर प्राप्त होगा जहा फर्म की सीमांत लागत ऋणात्मक ($-OC_1$) हो। दोनो ही स्थितिया सामान्य तर्क-बुद्धि एव व्यावहारिक ज्ञान के प्रतिकूल हैं और इसलिए इन दोनो ही परिस्थितियो मे सीमात सबध पूर्णतया असगत हैं।
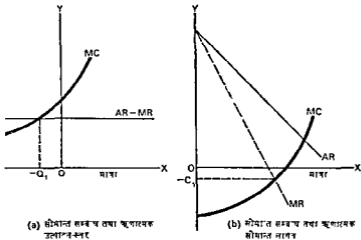
चित्र 17.1 इष्टतम मूल्य के निर्धारण में सीमात सबधों की विफलताए

चित्र 17.1 के पैनल (a) मे एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म का उदाहरण लिया गया है जिसका सीमात लागत वक्र कीमत तथा सीमात आगम वक्र ($AR=MR$) को ऐसे स्तर पर काटता है जहा फर्म $-OQ_1$ उत्पादन करके ही अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकती है। इसके विपरीत पैनल (b) मे फर्म को एकाधिकारी मानते हुए ऋणात्मक ढलानयुक्त माग व सीमात आगम वक्र प्रदर्शित किए गए हैं ($MR<AR$)। फर्म का सीमात लागत वक्र सीमात आगम को जहा काटता है उस स्थिति मे इसकी सीमात लागत $-OC_1$ है। ये दोनो ही निष्कर्ष असभव स प्रतीत होत हैं, परन्तु गणितीय दृष्टि से ऐसा होना अनुचित नही होगा। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु सीमात सबधो द्वारा जो निष्कर्ष दिए जाते हैं, वे कभी-कभी गणितीय दृष्टि से सही होने पर भी अविवेकपूर्ण हो सकते हैं।

रैखिक प्रोग्रामिग (linear programming) इष्टतम मूल्य को ज्ञात करने की ऐसी तकनीक है जो उस दशा मे प्रयुक्त की जाती है जब कतिपय सीमाओ का निर्धारण करके यह शर्त रोपित कर दी जाती है कि इष्टतम की प्राप्ति इन सीमाओ के भीतर ही होनी चाहिए। ये सीमाए अधिकतम मूल्यो स सबद्ध हो सकती हैं जिनके भीतर हमे

इष्टतम की प्राप्ति करनी है; अथवा इनका सदैव न्यूनतम मूल्यों से हो सकता है जिनके बाहर ही इष्टतम का निर्धारण संभव है।

17.2 रैखिक प्रोग्रामिंग की परिभाषा एवं विशेषताएं
(Definitions and Characteristics of Linear Programming)

रैखिक प्रोग्रामिंग किसी फर्म या निर्णय लेने वाली आर्थिक इकाई के समक्ष विद्यमान अधिकतम या न्यूनतम मात्रा ज्ञात करने से संबद्ध समस्याओं के समाधान प्राप्त करने की विधि है। परंतु फर्म को यह अधिकतम या न्यूनतम मात्रा निर्दिष्ट सीमाओं के भीतर ही प्राप्त करनी होती है।[2] कुल मिला कर रैखिक प्रोग्रामिंग (L.P.) एक गणितीय विधि है तथा इसमें आर्थिक तत्वों का समावेश होना आवश्यक नहीं है। अन्य शब्दों में, रैखिक प्रोग्रामिंग के अंतर्गत निर्दिष्ट सीमाओं के अंतर्गत इष्टतम समाधान की खोज की जाती है, और इस प्रकार इसके माध्यम से किसी आर्थिक इकाई के व्यवहार की विवेकशीलता का परीक्षण किया जाता है। तथापि इसके माध्यम से अर्थव्यवस्था की गतिविधि की पूरी जानकारी नहीं मिल पाती। रैखिक प्रोग्रामिंग से हमें कुछ आकलित संभावनाओं (computational possibilities) का ज्ञान होता है जो फर्म के व्यवहार संबंधी परंपरागत सिद्धांत के द्वारा संभव नहीं हो पाता। जैसा कि हम जानते हैं, परंपरागत सिद्धांत में उत्पादन व लागत फलन रैखिक नहीं होते, और बहुधा मांग फलन में भी रैखिकता का अभाव होता है।

च्यांग ने रैखिक प्रोग्रामिंग की परिभाषा इस प्रकार दी है: 'कुछ रैखिक असमान मूल्यों की सीमा में फर्म द्वारा अधिकतम आगम किस प्रकार प्राप्त किया जाता है, या उत्पादन की लागत किस प्रकार न्यूनतम की जाती है, उसी का विश्लेषण रैखिक प्रोग्रामिंग के माध्यम से किया जाता है।'[3] इस प्रकार च्यांग के मतानुसार फर्म के समक्ष एक उद्देश्य फलन (objective function) होता है जिसे वह निर्दिष्ट सीमाओं (constraints) के भीतर अधिकतम या न्यूनतम करना चाहती है। इन सीमाओं को असमानताएं (inequalities) कहा जाता है।

परंपरागत विश्लेषण तथा रैखिक प्रोग्रामिंग की तुलना (Comparison of traditional analysis with linear programming) : परंपरागत यानी सीमांत मूल्यों पर आधारित विश्लेषण, तथा रैखिक प्रोग्रामिंग दोनों ही विधियां यह बतलाती हैं कि कोई आर्थिक इकाई (फर्म, उत्पादक या उपभोक्ता) किस प्रकार इष्टतम की प्राप्ति करती है, यानी किस प्रकार वह नियोजन करती है, तथा लाभ को अधिकतम या लागत को न्यूनतम करने का प्रयास करती है। परंतु न तो परंपरागत आर्थिक सिद्धांत से और न ही रैखिक प्रोग्रामिंग से यह ज्ञात हो पाता है कि इष्टतम

2. R.H. Leftwich, 'Price System and Resource Allocation Hinsdale', The Dryden Press (Fourth Edition), p. 372
3. A. C. Chiang, 'Fundamental Methods of Mathematical Economics', New York, Mc Graw Hill Book Company (1967), p. 574

की प्राप्ति किस प्रकार होती है—इनसे केवल निर्दिष्ट स्थिति में इष्टतम समाधान (optimum solution) प्राप्त हो सकता है। यही कारण है कि दोनों ही दृष्टिकोणों से किसी फर्म द्वारा लक्ष्य की सिद्धि हेतु प्रत्याशित विधियां (ex-ante methods) प्राप्त होती हैं।

परंतु जहां परंपरागत विश्लेषण में इष्टतम समाधान की अभिव्यक्ति गुणात्मक रूप में की जाती है (रेखाचित्रों या गणितीय संकेतों के माध्यम से), वहीं रैखिक प्रोग्रामिंग के अंतर्गत विशिष्ट इष्टतमीकरण समस्याओं के लिए विशिष्ट संख्यात्मक समाधान प्राप्त किए जाते हैं। दूसरी बात यह है कि आर्थिक विश्लेषण के अंतर्गत विभिन्न संबंध बहुधा अरैखिक होते हैं, जबकि रैखिक प्रोग्रामिंग में सभी संबंध रैखिक होते हैं। हालांकि अ-रैखिक प्रोग्रामिंग (non-linears programming) की विधि भी खोजी जा चुकी है, तथापि वह विधि जो अत्यंत जटिल एवं परिष्कृत गणित पर आधारित होने के कारण अर्थशास्त्रियों द्वारा अभी तक व्यापक रूप से स्वीकार नहीं की गई है।

रैखिक प्रोग्रामिंग की विशेषताएं
(Characteristics of Linear Programming)

रैखिक प्रोग्रामिंग विधि के प्रयोग बतलाने से पूर्व यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि इस विधि की प्रमुख विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर ली जाए। इस विधि के अंतर्गत दो प्रमुख विशेषताएं हैं। प्रथम, आर्थिक इकाई के समक्ष एक उद्देश्य फलन (objective function) होना चाहिए। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता का उद्देश्य अधिकतम उपयोगिता की प्राप्ति करना हो सकता है जबकि फर्म का उद्देश्य अधिकतम आगत (लाभ) की प्राप्ति करना होता है।

द्वितीय, फर्म अथवा उपभोक्ता को केवल निर्दिष्ट सीमाओं के भीतर ही अपने उद्देश्य फलन को अधिकतम या न्यूनतम करना होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी उपभोक्ता के पास एक सौ रुपए हैं तो हम यह कहेंगे कि उसे एक सौ रुपए की संपूर्ण राशि (constraint) इस प्रकार व्यय करनी है ताकि उसे प्राप्य उपयोगिता अधिकतम हो जाए। इसी प्रकार, हम यह कह सकते हैं कि किसी फर्म को पचास सोफा सैटों का उत्पादन इस प्रकार करना है (पचास से न कम न अधिक) कि उत्पादन लागत न्यूनतम हो जाए। रैखिक प्रोग्रामिंग की प्रत्येक समस्या के समाधान हेतु यह आवश्यक है कि हमें इन सीमाओं का पूर्ण ज्ञान हो।

रैखिक प्रोग्रामिंग की मान्यताएं (Assumptions of L P) उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रैखिक प्रोग्रामिंग की विधि की सर्वप्रथम मान्यता यह है कि आर्थिक इकाई निर्दिष्ट सीमा (constraint) के अपने उद्देश्य फलन को अधिकतम या न्यूनतम करना चाहती है। यदि फर्म अपने कुल आगम को अधिकतम करना चाहती है तो इसकी सीमा से हमारा अभिप्राय उपलब्ध साधनों की मात्रा से होगा। यदि इसके विपरीत फर्म उत्पादन लागत को न्यूनतम करना

चाहती है तो इसकी सीमा हेतु उत्पादन की निर्दिष्ट मात्रा को लेना होगा जिसे न्यूनतम लागत पर प्राप्त किया जाता है।

द्वितीय, हमारी मान्यता यह भी है कि फर्म के आदा-प्रदा (input-output) आदा-आदा (input-input), तथा प्रदा-प्रदा (output-output) सबंध रैखिक हों। आदा-प्रदा रैखिक संबंध से हमारा अभिप्राय है कि उत्पादन की प्रत्येक इकाई हेतु प्रयुक्त आदानों की मात्रा अपरिवर्तित रहती है। इन्हें हम आदा-प्रदा गुणांक (input-output coefficients) कहते हैं। ये आदा-प्रदा गुणांक वस्तु के उत्पादन हेतु अपरिवर्तित रहते हैं। इसी प्रकार आदा-आदा रैखिक संबंध का अर्थ यह है कि समोत्पाद वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर न होकर रेखीय होते हैं, जबकि प्रदा-प्रदा रैखिक संबंध से हमारा प्रयोजन यह है कि उत्पादन संभावना वक्र भी मूल बिंदु से नतोदर न होकर रेखीय होगा।

तृतीय, रैखिक प्रोग्रामिंग विधि इस मान्यता पर भी आधारित है कि सभी साधनों (आदाओं) तथा वस्तुओं (प्रदाओं) की कीमतें स्थिर रहती हैं। वस्तुतः इसका अर्थ यह है कि रैखिक प्रोग्रामिंग विधि में एक फर्म को एक पूर्ण प्रतियोगी इकाई माना जाता है, तथा तदनुसार वस्तुओं व साधनों की कीमतें इसके लिए बाह्य रूप से निर्धारित (exogenously determined) रहती हैं।

रैखिक प्रोग्रामिंग के लिए चौथी व अंतिम मान्यता यह है कि आदाओं, प्रदाओं व कीमतों से संबद्ध कोई भी संख्या ऋणात्मक नहीं होगी। अन्य शब्दों में, किसी साधन या वस्तु की मात्रा शून्य हो सकती है, परंतु ऋणात्मक कदापि नहीं हो सकती। इसी प्रकार साधनों व वस्तुओं की कीमतें भी ऋणात्मक नहीं होतीं।

17.3 रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या का गणितीय निरूपण*
(Mathematical Formulation of an L. P. Problem)

किसी रैखिक प्रोग्रामिंग मॉडल का प्रयोग करके हम सुविधापूर्वक एक या एक से अधिक प्रदा (output) के लिए इष्टतम समाधान प्राप्त कर सकते हैं। मान लीजिए, कोई फर्म s वस्तुओं या प्रदाओं का उत्पादन कर सकती है। यह भी मान लीजिए कि इनमें से प्रत्येक वस्तु के उत्पादन हेतु m आदाओं या साधनों का प्रयोग किया जाता है। अंत में, यह भी मान लीजिए कि एक वस्तु का एक से अधिक प्रक्रिया द्वारा उत्पादन किया जा सकता है जिनमें से प्रत्येक प्रक्रिया को गुणांकों के एक समूह (set of coefficients) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है, जिसे a_i $(i=1, 2, 3, ..,m)$ के आधार पर प्रस्तुत करना संभव है। किसी भी वस्तु के निर्दिष्ट स्तर के उत्पादन हेतु साधनों की कितनी मात्रा प्रयुक्त की जाएगी इसे निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है—

$$X_i = a_i q \qquad (i=1, 2, 3, ..m) \qquad ...(17.1)$$

* इस अनुभाग को औपचारिक पढ़ना आवश्यक नहीं है।

किसी साधन की दी हुई मात्रा से वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जा सकता है यह नीचे समीकरण (17 2) मे प्रस्तुत है।

$$q = \frac{\min}{i}\left(\frac{x_i}{a_i}\right) \quad a_i > 0 \qquad \ldots(17\,2)$$

प्रत्येक साधन (x_i) की उपलब्ध मात्रा वस्तु के उत्पादन की सीमा का निर्धारण करती है। परतु जब फर्म को एक से अधिक वस्तुओ का उत्पादन करना होता है तो x_i की कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी यह समीकरण (17.3) से ज्ञात होता है।

$$X_i = \sum_{j=1}^{s} a_{ij}\, q_j \qquad (i=1, 2, 3, \ldots, m) \qquad \ldots(17\,3)$$

समीकरण (17 3) मे q_j किसी वस्तु विशेष की निर्दिष्ट मात्रा का प्रतीक है। जब हम फर्म को दो या अधिक वस्तुओ का दो या अधिक प्रक्रियाओ द्वारा उत्पादन करने की छूट देते हैं तो हम यह मान लते हैं कि वस्तुओ व साधनो के मध्य परस्पर प्रतिस्थापन सभव है, हालाकि इसकी सीमात प्रतिस्थापन दर स्थिर रहती है।[4]

यह नही, हमे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि रैखिक उत्पादन प्रक्रियाओ के फलस्वरूप एक या अधिक वस्तुओ का उत्पादन सभव है। मान लीजिए फर्म की n उत्पादन प्रक्रियाए उपलब्ध हैं जिनके माध्यम से वह s वस्तुओ का उत्पादन कर सकती है, तथा इसके लिए m साधनो का प्रयोग करती है। अन्य शब्दो मे, हमारी मान्यता यह है कि प्रत्येक उत्पादन प्रक्रिया मे m साधनो का प्रयोग किया जाता है तथा निर्दिष्ट आदा प्रदा गुणाको के अतर्गत s वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है। मान लीजिए j^{th} उत्पादन प्रक्रिया के स्तर को Z_j के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। यह भी मान लीजिए कि i^{th} वस्तु हेतु a_{ij} का प्रयोग किया जा सकता है। अस्तु—

$$q_i = \sum_{j=1}^{n} a_{ij} Z_j \qquad (i=1, 2, 3, \ldots, s) \qquad \ldots(17\,4)$$

$$\text{एव} \quad X_i = \sum_{j=1}^{n} b_{ij} Z_j \qquad (i=1, 2, 3, \ldots m) \qquad \ldots(17.5)$$

परतु केवल उपरोक्त समीकरणो के आधार पर हमे इष्टतम समाधान प्राप्त नही हो सकता। इसके लिए हमे निम्न सूचनाओ की आवश्यकता होती है. (i) फर्म का उद्देश्य फलन क्या है, इसकी जानकारी होनी चाहिए। अर्थात् फर्म लागत को न्यूनतम करना चाहती है अथवा उसकी रुचि आगम को अधिकतम करने मे है, (ii) फर्म को प्रत्येक साधन की कितनी मात्रा उपलब्ध है, (iii) आदा प्रदा गुणाक क्या है? तथा (iv) साधनो तथा वस्तुओ की कीमतो का स्तर क्या है? सामान्य तौर पर हम Z_1

4 J M Henderson and J E Quandt, 'Microeconomic Theory A Mathematical Approach' (Second Edition), pp 335-339

के ऐसे मूल्य प्राप्त करना चाहते हैं जिनसे फर्म को प्राप्य कुल आगम अधिकतम हो जाए।

फर्म के उद्देश्य फलन एवं इसकी सीमाओं को हम निम्न रैखिक प्रोग्रामिंग मॉडल के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—

$$\text{Maximize } R = \gamma_1 Z_1 + \gamma_2 Z_2 + \quad + \gamma_n Z_n \qquad (17.6)$$

जहां सीमाएं इस प्रकार हैं—

$$a_{i1}Z_1 + a_{i2} Z_2 + \quad + a_{in}Z_n < k_i$$
$$(i = 1, 2, 3, \ldots, m) \qquad (17.7)$$
$$Z_j \geq 0 \qquad (j = 1, 2, 3, \quad n) \qquad (17.8)$$

उपरोक्त समीकरणों में γ_j के द्वारा j^{th} वस्तु की बाह्य निर्धारित कीमत को व्यक्त किया जाता है, जबकि Z_j के माध्यम से j^{th} वस्तु की मात्रा को प्रदर्शित किया जाता है। a_{ij} $(i = 1, 2, \quad n)$ i^{th} साधन की j^{th} वस्तु के उत्पादन हेतु प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा अथवा आदा प्रदा गुणांक का द्योतक है। समीकरण (17.7) में k^i के द्वारा i^{th} साधन की उपलब्ध मात्रा अथवा सीमा (constraint) को व्यक्त किया जाता है। इस समीकरण में असमानता (<) को प्रस्तुत करने का प्रयोजन यह है कि i^{th} साधन की सभी वस्तुओं के उत्पादन हेतु प्रयुक्त मात्रा k_i से कम या इसके समान तो हो सकती है परन्तु इससे अधिक कदापि नहीं हो सकती। यदि समीकरण (17.7) में k_i की मात्रा (पूर्ति) बाईं ओर प्रस्तुत साधन की प्रयुक्त मात्रा (मांग) से अधिक है तो इसका यह अर्थ होगा कि i^{th} साधन की कुछ मात्रा अप्रयुक्त रहेगी। इसीलिए हम सरलता के लिए यह मान लेते हैं कि i^{th} साधन की मांग व इसकी पूर्ति में समानता है, अर्थात $a_{i1}Z_1 + a_{i2}Z_2 + \quad + a_{in}Z_n = k_i$ की स्थिति है।

17.4 रैखिक प्रोग्रामिंग विधि द्वारा आगम को अधिकतम करना
(Revenue Maximization and L. P. Technique)

यदि हमारे पास समीकरण (17.7) तथा (17.8) के अनुरूप सख्याएं उपलब्ध हो तो हम रैखिक प्रोग्रामिंग के आधार पर यह ज्ञात कर सकते हैं कि Z_1, Z_2, Z_n की कितनी कितनी मात्रा का उत्पादन करने पर कुल आगम अधिकतम होगा। संक्षेप में, यदि हम वस्तुओं की कीमतों (γ_j), आदा प्रदा गुणांकों (a_{ij}) तथा साधनों की उपलब्ध मात्राओं (k_i) का ज्ञान हो तो सभी वस्तुओं के उत्पादन के इष्टतम स्तर का पता लगाया जा सकता है। यहां हमें इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि ये तीनों ही तथ्य हम बाह्य रूप से (exogenously) प्राप्त होते हैं तथा हमारा प्रयोजन केवल Z_j की इष्टतम मात्राओं को ज्ञात करना है जिससे फर्म को अधिकतम आगम प्राप्त हो सकता है। सरलता के लिए पहले हम दो वस्तुओं तथा दो साधनों के मॉडल को लेंगे तथा ग्राफ के द्वारा यह बतलाने का प्रयास करेंगे कि

उपलब्ध साधनों के उपयोग द्वारा कोई फर्म किस प्रकार अधिकतम आगम प्राप्त करती है। परंतु दो से अधिक वस्तुओं के इष्टतम संयोग का पता लगाने हेतु ग्राफ की विधि उपयुक्त नहीं होती। मान लीजिए, फर्म को अधिकतम आगम प्राप्त करना है तथा वस्तुओं की कीमतें, आदा-प्रदा गुणांक एवं दोनों साधनों की उपलब्ध मात्राएं हमें ज्ञात हैं। समीकरण (17 7) व (17 8) के अनुरूप हम उपलब्ध सूचनाओं को निम्न रूप मे प्रस्तुत कर सकते हैं—

$$\text{Maximize } R = 16Z_1 + 14Z_2$$

जहां सीमाएं हैं—

$$4Z_1 + 8Z_2 \leq 40$$
$$10Z_1 + 5Z_2 \leq 60$$

तथा

$$Z_1 \geq 0, \ Z_2 \geq 0$$

जैसा कि पूर्व मे बतलाया जा चुका है, Z_1, Z वस्तुएं हैं। आगम फलन में Z_1 व Z_2 की कीमतें क्रमश 16 व 14 रुपए हैं जबकि सीमाओं (constraints) के संदर्भ मे 40 व 60 क्रमश दोनों साधनों की उपलब्ध मात्राएं हैं। Z_1 की प्रत्येक इकाई के उत्पादन मे प्रथम साधन (X_1) की 4 इकाइयां तथा द्वितीय साधन (X_2) की 10 इकाइयां प्रयुक्त की जाती हैं। इसी प्रकार Z_2 के लिए आदा-प्रदा गुणांक क्रमश 8 व 5 हैं। जैसाकि ऊपर बतलाया गया है वस्तुओं की कीमतें, साधनों की मात्राएं एवं आदा-

चित्र 17 2 रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या का रेखाचित्रीय समाधान
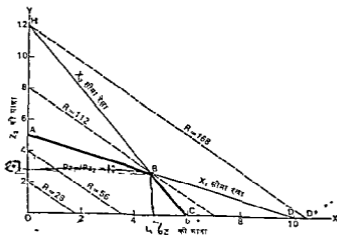
प्रदा गुणांक पूर्वनिर्धारित हैं। X_1 तथा X_2 की उपलब्ध मात्राओं के अनुरूप ही फर्म को अधिकतम आगम प्रदान करने वाली Z_1 व Z_2 की इकाइयों का उत्पादन करना है। सुविधा के लिए हम यह मान लेते हैं कि फर्म X_1 व X_2 की उपलब्ध मात्राओं का

पूर्ण उपयोग करना चाहती है। इसीलिए हम असमानताओ ($\leq$) के स्थान पर समानता (=) का चिह्न रखेंगे। अंत मे, हम यह शर्त भी रोपित करते हैं कि Z_1 व Z_2 की मात्राएं कदापि ऋणात्मक नहीं हो सकती।

चित्र 17.2 में हमने X_1 व X_2 सीमाओ के आधार पर Z_1 व Z_2 की अधिकतम कितनी मात्राएं प्राप्त की जा सकती हैं इसका चित्रण किया है। यदि Z_2 की मात्रा शून्य हो तो फर्म X_1 की उपलब्ध मात्रा (40) से 5 इकाई Z_2 की प्राप्त कर सकती है। इसी प्रकार Z_2 का उत्पादन शून्य हो तो फर्म 10 इकाई Z_1 की प्राप्त कर सकती है। इस आधार पर हमने X_1 सीमारेखा (X_1 constraint) प्राप्त की है। इसी प्रकार X_2 की उपलब्ध मात्रा के आधार पर Z_2 की 12 इकाई (जब $Z_1=0$ हो) या Z_1 की 6 इकाई (जब $Z_2=0$) प्राप्त करना संभव है। इन मात्राओ को मिलाने पर X_2 सीमारेखा (X_2 constraint) प्राप्त की गई है।

रेखाचित्र 17.2 मे यह बात तो स्पष्ट है कि फर्म को Z_1 व Z_2 का उत्पादन X_1 तथा X_2 की उपलब्ध सीमाओ के भीतर ही करना है। परंतु यह भी स्पष्ट है कि फर्म को X_1 तथा X_2 दोनों ही का उपयोग करना है। इसी कारण से फर्म का उत्पादन संभाव्य क्षेत्र (feasible region) ज्ञात करना जरूरी है जिसका निर्धारण दोनों ही साधनों की सीमा रेखाओ के आधार पर होता है। चित्र 17.2 में यह संभाव्य क्षेत्र OABC है जो वस्तुतः एक बहुभुज क्षेत्र (polygon) है। इसमे AB भाग तो X_1 सीमा रेखा (AD) से प्राप्त किया गया है जबकि BC भाग X_2 सीमारेखा (CH) से प्राप्त किया गया है। चूंकि फर्म को Z_1 व Z_2 के उत्पादन हेतु X_1 व X_2 दोनों ही का प्रयोग करना होता है, वह OABC बहुभुज क्षेत्र के बाहर कदापि नही जा सकेगी। क्योंकि यदि वह AB से बाहर रहकर उत्पादन करना चाहती है तो उसके पास X_2 तो है परंतु X_1 की मात्रा समाप्त हो चुकती है। इसी प्रकार BC के बाहर X_1 की मात्रा पर्याप्त अवशेष रहने पर भी X_2 की मात्रा समाप्त हो चुकती है। दोनों की उपलब्ध मात्राओ के अनुरूप उसका उत्पादन संभाव्य क्षेत्र OABC पर ही होगा। फर्म द्वारा Z_1 व Z_2 का किया जाने वाला उत्पादन OABC पर ही कहीं पर अथवा इस क्षेत्र के भीतर कहीं निर्धारित किया जाएगा।

उत्पादन संभाव्य क्षेत्र (feasible region) का निर्धारण होने के बाद Z_1 व Z_2 की निर्दिष्ट कीमतो के अनुरूप फर्म को दोनो वस्तुओ के उस संयोग को ज्ञात करना होगा जिससे उसे प्राप्य आगम अधिकतम हो। इसके लिए हमें वस्तुओं की कीमतो के आधार पर सम-आगम रेखा ज्ञात करनी होती है। यस्तु—

$$Z_2 = \frac{R}{14} - \frac{16}{14} Z_1$$

जिसमे $\frac{16}{14}$ वस्तुत—Z_1 व Z_2 की कीमतों का अनुपात P_{Z_1}/P_{Z_2} है। पाठकों को स्मरण होगा कि अध्याय 2 मे हमने यह स्पष्ट किया था कि किसी भी अर्थव्यवस्था मे साधनो का इष्टतम उपयोग वहा होता है जहा सम आगम रेखा का ढलान उत्पादन

सभावना वक्र के ढलान के समान हो, यानी सम-आगम रेखा उत्पादन सभावना वक्र को स्पर्श करती हो। चित्र 17 2 मे $\frac{10}{14}$ से भी हमे सम-आगम रेखा का ढलान ज्ञात होना चाहिए।

इस ढलान के अनुरूप हम अब एक सम-आगम रेखा खीचते हैं जहा $R=28$ है। परतु इस रेखा के सभी बिंदु सभाव्य क्षेत्र से काफी नीचे हैं—यानी इस रेखा पर साधनो का इष्टतम उपयोग नही हो पाता। इसी प्रकार दूसरी सम-आगम रेखा पर $R=56$ है। यहा भी सभाव्य क्षेत्र से प्रत्येक बिंदु काफी नीचे है, और Z_1 व Z_2 का उत्पादन बढाकर फर्म अपने आगम मे वृद्धि कर सकती है। चूकि Z_1 व Z_2 की कीमतें यथावत हैं, हम इसके समानातर सम-आगम रेखा को विवर्तित करते जाते हैं। जब फर्म की सम आगम रेखा सभाव्य क्षेत्र को B बिंदु पर स्पर्श करती है तो यहा Z_1 व Z_2 की अधिकतम सभावित मात्रा का उत्पादन किया जा सकता है—जहा कुल आगम 112 रुपए होगा। फर्म दोनो वस्तुओ की निर्दिष्ट कीमतो, साधनो की उपलब्ध मात्राओ तथा आदा प्रदा गुणाको के अनुरूप इससे अधिक आगम प्राप्त कदापि नहीं कर सकती। यदि फर्म B से विचलित होती है तो वह सभाव्य क्षेत्र से बाहर चली जाएगी। अस्तु, फर्म की सीमाओ, वस्तुओ की कीमतो व आदा-प्रदा गुणाको के अनुरूप वह Z_1 की $4\frac{5}{8}$ व Z_2 की $2\frac{5}{7}$ इकाइयो का उत्पादन करके अधिकतम आगम प्राप्त करती है। यहा तक कि सभाव्य क्षेत्र OABC के अन्य किसी बिंदु पर भी उसको B की अपेक्षा कम आगम प्राप्त होगा। उदाहरण के लिए, उसे C पर 96 रुपए तथा A पर 70 रुपए का ही आगम प्राप्त होगा। इसके विपरीत B से परे जाने पर उसे अधिक आगम तो प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए, HD' पर उसे 168 रुपए का आगम मिल सकता है, परतु इस रेखा तक पहुचने हेतु उसके पास X_1 व X_2 दोनो ही की उपलब्ध मात्राए कम पडती हैं।

पाठक यह समझ सकते हैं कि B बिंदु पर $Z_1=4\frac{5}{8}$ व $Z_2=2\frac{5}{7}$ होने पर कुल आगम 112 प्राप्त करने पर (जो अधिकतम है) फर्म X_1 की तो समूची उपलब्ध मात्रा का उपयोग कर लेती है परतु X_2 की काफी मात्रा अप्रयुक्त रहती है। यदि फर्म को अधिक मात्रा मे X_1 मिल जाए तो वह Z_1 व Z_2 दोनों का उत्पादन बढाकर अपने कुल आगम मे वृद्धि कर सकती है।

तीन साधनो व दो वस्तुओ के संदर्भ में इष्टतम समाधान
(Optimum Solution A Case of Three Inputs and two Products)

ऊपर जिन विश्लेषणात्मक उपकरणो को प्रस्तुत किया गया है उन्ही को सरलतापूर्वक दो से अधिक साधनो के सदर्भ मे भी प्रयुक्त किया जा सकता है। अब मान लीजिए, फर्म Z_1 व Z_2 का उत्पादन करने हेतु a, b व c तीन साधनो का प्रयोग करती है—यानी फर्म के समक्ष तीन प्रतिबंध सीमाए (constranits) हैं। तालिका 17 1 मे इन सीमाओ तथा Z_1 व Z_2 की प्रत्येक इकाई के लिए a, b व c की प्रयुक्त की जाने वाली इकाइयो, यानी आदा प्रदा गुणाको को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 17 1
एक काल्पनिक फर्म की उपलब्ध साधन एवं आद-प्रदा गुणांक

साधन	वस्तु की एक इकाई के लिए साधन की आवश्यक मात्रा Z_1	Z_2	साधनों की उपलब्ध मात्रा
a	5	15	60
b	3	4	24
c	12	7	84

अत मे यह भी मान लीजिए कि Z_1 व Z_2 की कीमतें क्रमश 20 व 15 रुपये हैं।

उपरोक्त तालिका एव वस्तुओ की कीमतों के विषय मे उपलब्ध सूचनाओ के आधार पर हम निम्न रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या का निरूपण कर सकते है—

Maximize $R = 20Z_1 + 15Z_2$

जहा सीमाए इस प्रकार हैं—$5Z_1 + 15Z_2 < 60$

$3Z_1 + 4Z_2 < 24$

$12Z_1 + 7Z_2 \leqslant 84$

तथा $Z_1 \geqslant 0,\ Z_2 \geqslant 0$

ऊपर वर्णित विधि के अनुसार हम चित्र 17 3 के अनुसार a, b व c सीमा रेखाओ को खीच सकते हैं। तीनो साधनो की सीमाओ मे रहते हुए फर्म का उत्पादन सभाव्य क्षेत्र इस सदर्भ मे OBCD होगा जो स्वय भी चित्र 17.2 की भाति एक बहुभुज क्षेत्र (polygon) है।
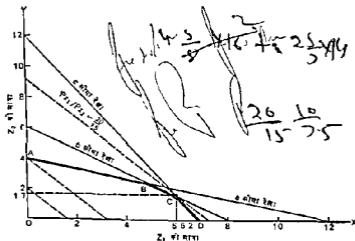
चित्र 17 3 तीन साधनों के सदर्भ मे इष्टतम समाधान

चित्र 17 3 मे सम प्रागम रेखा बहुभुज क्षेत्र यानी सभाव्य क्षेत्र को c बिंदु पर स्पर्श करती है जहा फर्म द्वारा Z_1 की 6 2 इकाइया व Z_2 की 1 7 इकाइया का उत्पादन किया जाता है, तथा फर्म को 149 50 रुपये का कुल आगम प्राप्त होता है जो सर्वाधिक है। a, b तथा c की उपलब्ध मात्राओ, तथा दिए हुए आदा प्रदा गुणांकों के अनुसार फर्म इससे अधिक आगम कदापि प्राप्त नही कर सकती।

चार साधनो के सदर्भ में इष्टतम समाधान

अब हम एक ऐसा उदाहरण ...न की स्थिति म पहुच गए हैं जहा फर्म Z_1 व Z_2 के उत्पादन हेतु तीन से भी अधिक साधनो का प्रयोग करती है। प्रस्तुत उदाहरण को तालिका 17 2 म प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 17 2

एक काल्पनिक फर्म को उपलब्ध चार साधन एव आदा प्रदा गुणांक

साधन	वस्तु की एक इकाई के लिए आवश्यक साधन की मात्रा Z_1	Z_2	साधनो की कुल उपलब्ध मात्रा
a	0 00	0 033	1
b	0 02	0 03	1
c	0 04	0 02	1
d	0 05	0 00	1

उपरोक्त तालिका के आधार पर फर्म का उद्देश्य फलन एव इसके प्रतिबधो (सीमाओ) को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

$$\text{Maximize } R = 20Z_1 + 16Z_2$$

जहा प्रतिबध इस प्रकार है—

$$0\,0Z_1 + 0\,033Z_2 < 1$$
$$0\,02Z_1 + 0\,03Z_2 < 1$$
$$0\,04Z_1 + 0\,04Z_2 \leqslant 1$$
$$0{,}05Z_1 + 0\,0Z_2 < 1$$

तथा $Z_1 > 0,\ Z_2 > 0$

इस उदाहरण मे a का उपयोग केवल Z_2 के उत्पादन हेतु किया जाता है जबकि d का उपयोग केवल Z_1 के उत्पादन हेतु किया जाता है। इसीलिए a सीमारेखा क्षैतिज रूप मे तथा d सीमारेखा शीर्ष रूप मे प्रदर्शित की गई है। चित्र 17 4 मे उत्पादन का सभाव्य क्षेत्र (feasible solution) OABCDE के रूप म दिखलाया

गया है जिसे सम-आगम रेखा C बिंदु पर स्पर्श करती है। जैसाकि चित्र में देखा जा सकता है, इस इष्टतम स्तर पर फर्म Z_1 व Z_2 की क्रमशः 12 व 25 इकाइयों का
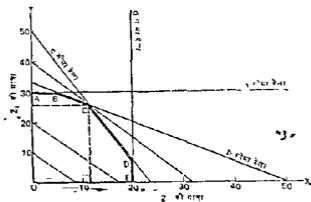
चित्र 17.4 चार साधनों के संदर्भ में इष्टतम समाधान

उत्पादन करके 640 रुपए का कुल आगम प्राप्त करती है। संभाव्य क्षेत्र के भीतर या इससे संबद्ध बहुभुज क्षेत्र पर कहीं भी इससे अधिक कुल आगम की प्राप्ति नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए, A पर 480 रुपए का कुल आगम प्राप्त होता है जबकि E पर 400 रुपए ही प्राप्त होते हैं। केवल C पर अधिकतम कुल आगम की प्राप्ति होती है।

12×20 = 240
25×16 = 400

रैखिक प्रोग्रामिंग विधि से संबद्ध प्रमेय (Theorems for L. P. Technique)

अब हम एक ऐसी स्थिति में पहुंच चुके हैं जहां ऊपर के अनुभागों में प्रस्तुत दो निष्कर्षों को समेकित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—(1) प्रथम यह है कि कोणीय बिंदुओं के मध्य एक इष्टतम समाधान अवश्य प्राप्त किया जा सकता है, तथा (2) द्वितीय, एक कोणीय बिंदु पर ही आधारभूत समाधान प्राप्त होता है। बॉमोल ने इन निष्कर्षों के आधार पर रैखिक प्रोग्रामिंग के तीन प्रमेय प्रस्तुत किए हैं।[5]

प्रमेय 1 : किसी भी रैखिक प्रोग्रामिंग में केवल आधारभूत समाधानों के आधार पर ही इष्टतम समाधान को ज्ञात किया जा सकता है। अन्य शब्दों में, हमें एक न एक ऐसा इष्टतम समाधान अवश्य प्राप्त हो जाएगा जिसमें अ-ऋणात्मक मूल्य वाले चरों की संख्या प्रस्तुत समस्या में दिए गए प्रतिबंधों के ठीक बराबर होती है।

5 William J. Baumol, 'Economic Theory and Operations Analysis' (Third Edition), pp 82-83.

इस प्रमेय को स्पष्ट करने हेतु बॉमोल बतलाते हैं कि उत्पादों की रेखाओं की सख्या साधनों की सख्या के समान होनी चाहिए। अर्थात्, यदि पैमाने के स्थिर प्रतिफल विद्यमान हो तथा केवल एक ही प्रतिबंध (constraint) हो (उदाहरण के लिए, मशीन घंटे ही सीमित हो) तो इसकी क्षमता तक उत्पादन में वृद्धि उस सीमा तक करना उचित होगा जहाँ पर प्रति मशीन घंटा प्राप्त होने वाला लाभ अधिकतम हो। यदि दूसरा प्रतिबंध शामिल कर दिया जाए तो द्वितीय वस्तु को इस प्रकार शामिल करना लाभप्रद रहेगा ताकि द्वितीय साधन से प्राप्त प्रति इकाई लाभ अधिकतम हो। संक्षेप में, अतिरिक्त वस्तु (या वस्तुओं) को मॉडल में शामिल करना तभी लाभप्रद रहेगा जब प्रतिबंधों (सीमित साधनों) की सख्या बढ़ाई जाए।

अन्य दो प्रमेय समाव्य समाधानों की प्राप्ति हेतु आवश्यक हैं तथा अपेक्षाकृत सरल हैं।

प्रमेय 2 यदि S एक सीमाबद्ध उन्नतोदर बहुभुज क्षेत्र (polygon) हो तो इसके ऊपरी बिंदुओं पर स्थित प्रत्येक बिंदु X' इसी सीमा पर स्थित होगा।

प्रमेय 3 यदि संभावित समाधानों के समूह S का रूप बहुभुज क्षेत्र जैसा हो तो अधिक मूल्य (आगम) S के एक चरम बिंदु (extreme point) पर ही प्राप्त होगा। (चित्र 17 3 तथा 17 4 में यह बिंदु C पर स्थित है।)

ऊपर अनुभाग 17 3 व 17 4 में हमने अधिकतम आगम की प्राप्ति हेतु रैखिक प्रोग्रामिंग विधि का प्रयोग किया था। यदि हमें साधनों की उपलब्ध मात्राओं, आदा-प्रदा गुणांकों तथा वस्तुओं व साधनों की कीमतों के विषय में पर्याप्त सूचनाएं प्राप्त हों तो हम साधनों के इष्टतम संयोग का भी पता लगा सकते हैं जिसका प्रयोग करके निर्दिष्ट मात्राओं में वस्तुओं का उत्पादन न्यूनतम लागत पर किया जा सकता है। वस्तुतः आगम अधिकतम करने से संबद्ध रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या को 'प्राइमल' या मौलिक समस्या मानते हुए हम लागत न्यूनतम करने वाली समस्या को 'ड्यूअल" (dual) या युग्म समस्या की संज्ञा दे सकते हैं। हम अगले अनुभाग में इसी युग्म अथवा ड्यूअल समस्या पर विचार करेंगे।

17 5 युग्म समस्या
(The Dual Problem)

जैसाकि ऊपर बतलाया गया था, किसी भी रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या को एक ड्यूअल अथवा युग्म समस्या के रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है। यदि किसी फर्म का उद्देश्य उत्पादन लागत को न्यूनतम करना हो तो यह मौलिक अथवा "प्राइमल" समस्या कहलाएगी। इसकी युग्म अथवा ड्यूअल समस्या के अंतर्गत यह देखा जाएगा कि फर्म क्योंकर अपना आगम अधिकतम करती है। इसके विपरीत यदि फर्म की मौलिक समस्या अधिकतम आगम प्राप्त करने से संबद्ध हो तो इसकी युग्म समस्या लागत को न्यूनतम करने से संबद्ध होगी। ऊपर अनुभाग 17.4 में प्रस्तुत तीन साधनों वाले मॉडल को अब हम युग्म समस्या के रूप में प्रस्तुत करेंगे।

जैसाकि स्पष्ट है, आगम अधिकतम किए जाने वाली समस्या की युग्म समस्या उत्पादन के तीनो साधनो के उस संयोग की खोज करना है जिसके प्रयोग से उत्पादन की लागत न्यूनतम हो जाए। इसके लिए हमें उत्पादन के तीनो साधनो, a, b व c की कीमतो का आकलन करना होगा।

तालिका 17 1 से हमें Z_1 व Z_2 की कुल उपलब्ध मात्राओं का ज्ञान हो जाता है। हमे उपरोक्त उदाहरण से यह भी ज्ञात है कि Z_1 व Z_2 की कीमतें क्रमशः 20 व 15 रुपए हैं। यही नही, हमे आदा-प्रदा गुणाको की भी जानकारी तालिका 17 1 से हो जाती है। इन सूचनाओं के आधार पर हम युग्म समस्या का निरूपण कर सकते हैं।

परतु अब हमें यह बात ध्यान मे रखनी होगी कि Z_1 की एक इकाई मे साधनों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि औसत (कुल लागत) Z_1 की कीमत के समान हो। यही बात z_2 के उत्पादन मे प्रयुक्त साधनो की लागत एव उसकी कीमत (P_{Z_2}) पर भी लागू होती है। तालिका 17 1 के आधार पर अब हमारी युग्म समस्या इस प्रकार होगी—

$$\text{Minimize } TC = au_a + bu_b + cu_c$$

जहा सीमाए इस प्रकार हैं—

$$5u_a + 3u_b + 12u_c \geqslant 20$$
$$15u_a + 4u_b + 7u_c \geqslant 15$$
$$\text{तथा } u_a \geqslant 0,\ u_b \geqslant 0,\ u_c \geqslant 0$$

उपरोक्त युग्म समस्या मे u_a, u_b व u_c क्रमशः a, b व c की यानी साधनो की कीमतें है। वस्तुत, इन्हे कल्पित कीमतो (shadow prices) की सज्ञा दी जा सकती है। उपरोक्त समस्या मे अंतिम शर्त यह रखी गई है कि साधनो की कल्पित कीमतें शून्य हो सकती हैं, परतु ऋणात्मक कदापि नही हो सकती।

युग्म समस्या मे प्रस्तुत असमानताओ का अर्थ यह है कि Z_1 व Z_2 की प्रति-इकाई लागत इनकी कीमत से अधिक या समान हो सकती है परतु कम कभी नही हो सकती। परतु सुविधा के लिए हम यही मान्यता लेते हैं कि औसत लागत व कीमत समान रहती है।

उपलब्ध साधनो की सबसे उपयुक्त कीमतें (shadow prices) ज्ञात करने हेतु सर्वप्रथम यह मान लीजिए कि a की कल्पित कीमत शून्य है। इसके फलस्वरूप ही हमें दो अज्ञात मूल्यो (unknown values) की जानकारी हेतु दो समीकरण प्राप्त हो सकेंगे। अस्तु $u_a = 0$ रखने पर हमे निम्न समीकरण प्राप्त होगे—

$$3u_b + 12u_c = 20$$
$$4u_b + 7u_c = 15$$

समानातर समीकरण विधि (simultaneous equation) से हल करने पर $u = \frac{40}{27}$ तथा $u_c = \frac{35}{27}$ प्राप्त होंगे। इन साधन कीमतो को कुल लागत के समीकरण मे रखने पर $TC = 144.4$ प्राप्त होगी।

अगली बार $u_b = 0$ मानिए तथा पुन समानातर समीकरणो को हल करने पर $u = \frac{8}{29}$ तथा $u_c = \frac{45}{29}$ प्राप्त होगी। इन साधन-कीमतों को कुल लागत फलन मे रखने पर TC=147 (लगभग) होगी।

अन्त में $u_c = 0$ मानकर उसी प्रक्रिया को दोहराइए। ऐसी दशा मे $u_a = -\frac{7}{5}$ तथा $u_b = 9$ होगी। परन्तु किसी भी साधन की कीमत ऋणात्मक नही हो सकती और इसलिए साधनो की ये कल्पित कीमतें ($u_a = -\frac{7}{5}$, $u = 9$ तथा $u_c = 0$) स्वीकार्य नही हो सकती।

यदि प्रथम दो लागतो (TC=144 4 तथा TC=147) की तुलना की जाए तो हम यही कह सकते हैं कि $u_a = 0$, $u_b = \frac{40}{27}$ एव $u_c = \frac{35}{27}$ होने पर ही कुल उत्पादन लागत न्यूनतम हो सकती है।

ऊपर अध्याय 8 मे समोत्पादो (Isoquants) का विवरण प्रस्तुत करत हुए, हमने यह स्पष्ट किया था कि दो साधनो का प्रयोग करते हुए उत्पादन की कुल लागत उस समय न्यूनतम होगी जहा समोत्पाद वक्र को साधनो की सम लागत रेखा स्पर्श करती हो। यहा भी इसी सिद्धात को प्रयुक्त किया जा सकता है। साधारणतया न्यूनतम लागत के उद्देश्य की पूर्ति हेतु फर्म का सभाव्य क्षेत्र (feasible region) अप्रतिबधित (unbounded) रहता है एव इसकी न्यूनतम सीमा पर साधनो के प्रयोग द्वारा ही कुल उत्पादन लागत को न्यूनतम किया जा सकता है।[6]

इष्टतम स्थिति मे परिवर्तन (Change in the optimum solution)—रैखिक प्रोग्रामिंग विधि से प्राप्त इष्टतम समाधान मे निम्न दशाओ मे परिवर्तन सभव है (i) यदि एक या अधिक साधनो की मात्रा मे परिवर्तन हो जाए (ii) यदि वस्तुओ की कीमतो में परिवर्तन हो जाए, या (iii) यदि प्रादा प्रदा गुणांकों में परिवर्तन हो जाए। इनमें से किसी एक मे परिवर्तन होने पर वस्तुओ या साधनो के इष्टतम सयोग मे भी परिवर्तन हो जाएगा तथा फलस्वरूप प्राप्त अधिकतम आगम या न्यूनतम लागत की राशि मे भी परिवर्तन हो जाएगा।

6 मान लीजिए उत्पादन के दो ही साधन X_1, X_2 हैं। यह मानते हुए कि साधनों की आकलित कल्पित कीमतें धनात्मक हैं तथा फर्म को उपलब्ध सीमाए या प्रतिबध इस प्रकार हैं—

Minimize $C = 0\ 6\ X_1 + X_2$

जहा रेखीय प्रतिबध है—

$$10X_1 + 4X_2 \geqslant 20$$
$$5X_1 + 5X_2 \geqslant 20$$
$$2X_1 + 6X_2 \geqslant 12$$

इन सूचनाओ के आधार पर हम प्रतिबध [शेष पृष्ठ 419 पर]

176 सिम्प्लेक्स विधि
(The Simplex Method)

किसी रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या के गणितीय समाधान के अंतर्गत हमे अनेक समीकरणो को एक साथ हल करना होता है । परतु जैसे-जैसे चरो की सख्या मे वृद्धि होती है, वैसे वैसे अनेको समीकरणो को हल करने का कार्य भी अधिक जटिल होता जाता है । सिम्प्लेक्स विधि वस्तुत हमे गणितीय आकलन की जटिलताओ से बचाती है तथा सरल रूप मे रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या का समाधान प्रदान करती है ।

इस विधि मे सबसे पहले तो हमे मद चरो (slack variables) का समावेश करना होता है, जिनकी सख्या हमारे मॉडल म शामिल वस्तुओ की सख्या के समान होती है । सुविधा के लिए हम दो वस्तुओ व दो साधनो का ही उदाहरण लेंगे तथा यह मानेंगे कि फर्म का उद्देश्य अधिकतम आगम प्राप्त करना है ।

$$\text{Meximize } R = 2\,5x_1 + 2x_2$$

जहा रेखीय प्रतिबध इस प्रकार हैं—

$$x_1 + 2x_2 \leq 8000$$
$$3x_1 + 2x_2 \leq 9000$$
$$\text{तथा } x_1 \geq 0,\ x_2 \geq 0$$

मद चरो को सम्मिलित करते हुए उपरोक्त मॉडल को निम्न रूप मे भी लिख सकते हैं—

$$\text{Maximize } R = 0 + 2\,5x_1 + 2x_2$$

जहा रेखीय प्रतिबध इस प्रकार हैं—

$$S_a = 8000 - x_1 - 2x_2$$
$$S_b = 9000 - 3x_1 - 2x_2$$
$$\text{तथा } S_a \geq 0,\ S_b \geq 0,\ X_1 \geq 0,\ X_2 \geq 0$$

[पृष्ठ 418 का शेष]

रेखाए तथा सभाव्य क्षेत्र की निचली सीमा ज्ञात कर सकते हैं । प्रस्तुत चित्र मे यह सीमा ABCD है । साधनो की कीमतों का अनुपात $\left(\frac{0\,6}{1\,0}\right)$ जहा इस सभाव्य क्षेत्र को निम्नतम बिंदु पर स्पर्श करता है वही साधनों का इष्टतम सयोग प्रयुक्त होगा तथा उत्पादन की कुल लागत न्यूनतम होगी । इस उदाहरण मे C पर सम लागत रेखा ABCD सभाव्य रेखा को स्पर्श करती है । सभाव्य रेखा के किसी भी बिंदु पर, अथवा सभाव्य क्षेत्र में अन्यत्र कहीं भी C की अपेक्षा उत्पादन की लागत अधिक होगा । अस्तु C पर ही कम साधनो के इष्टतम प्रयोग द्वारा न्यूनतम लागत पर उत्पादन करेगी ।
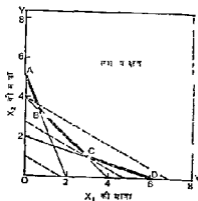
पाठको को यह ध्यान रखना होगा कि सिम्प्लेक्स विधि के प्रयोग हेतु मैट्रिक्स बीजगणित की जानकारी होनी आवश्यक है। ऊपर प्रस्तुत सूचनाओं के आधार पर हम गुणाको को मैट्रिक्स के रूप मे प्रस्तुत कर सकते हैं।[7]

	1	X_1	X_2
R	0	2.5	2
S_a	8000	−1	−2
S_b	9000	−3	−2

प्रारभ में हम यह मानेंगे कि $X_1=0$ एव $X_2=0$ हैं और इसलिए $R=0$ है। चूलीकरण प्रक्रिया (pivoting process) के माध्यम स हम सबसे पहले ऊपर वाले चरों मे से एक (मान लीजिए X_1) को बाईं ओर घुमा देते हैं तथा बाईं ओर प्रस्तुत चरो मे से एक (मान लीजिए S_b) को ऊपर की ओर ले जाते हैं। वस्तुत ऐसा करते हुए हम X_1 तथा S_b की भूमिकाओ मे परिवर्तन करते हैं तथा S_b पक्ति (row) में −3 को एव मैट्रिक्स के X_1 कालम का चूलीकरण करते हैं। चूलीकरण प्रक्रिया मे हम अब ऊपर प्रस्तुत प्रतिबधो को नए रूप मे लिखेंगे तथा S_b को दाईं ओर लाते हुए X_1 को बाईं ओर ले आएगे।

7 इसकी सामान्य विधि इस प्रकार है—

	1	Q_1	Q_2	Q_n
$R=$	0	P_1	P_2	P_n
$S_a=$	C_1	$-a_{11}$	$-a_{12}$—	$-a_{1n}$
$S_b=$	C_2	$-a_{21}$	$-a_{22}$——	$-a_{2n}$
$S_n=$	C_m	$-a_{m1}$	$-a_{m2}$— —	$-a_{mn}$

यानी $(-3X_1 = -9000 + 2X_1)$

$$X_1 = \frac{-9000}{-3} + \frac{1}{-3} S_b + \frac{2}{-3} X_2$$

$$\therefore \; X_1 = 3000 - \frac{1}{3} S_b - \frac{2}{3} X_2$$

अब मैट्रिक्स की अंतिम पंक्ति को पुनः लिखेंगे।

	1	S_b	X_2
R			
S_a			
X_1	3000	$-\frac{1}{3}$	$-\frac{2}{3}$

X_1 का नया समीकरण प्राप्त होने पर हम उद्देश्य फलन एवं S_a प्रतिबंध को पुनः लिखेंगे।

$$R = 0 + 2.5\left(3000 - \frac{1}{3} S_b - \frac{2}{3} X_2\right) + 2X_2$$

तथा $S_a = 8000 - \left(3000 - \frac{1}{3} S_b - \frac{2}{3} X_2\right) - 2X_2$

अथवा $R = 7500 - \frac{5}{6} S_b + \frac{1}{3} X_2$

तथा $S_a = 5000 - \frac{1}{3} S_b - \frac{4}{3} X_2$

इन सूचनाओं के आधार पर हम तृतीय मैट्रिक्स का निर्माण कर सकते हैं।

	1	S_b	X_2
R	7500	$-\frac{5}{6}$	$\frac{1}{3}$
S_a	5000	$\frac{1}{3}$	$-\frac{4}{3}$
X_1	3000	$-\frac{1}{3}$	$-\frac{2}{3}$

परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रथम चलीकरण प्रक्रिया में ही हमें इष्टतम समाधान प्राप्त हो जाए। हमें द्वितीय व तृतीय चलीकरण प्रक्रियाएं भी पूरी करनी होंगी तथा जहां R का अधिकतम मूल्य प्राप्त होगा, X_1 व X_2 से संबद्ध वे ही मूल्य इष्टतम माने जाएंगे।[8]

17 7 रैखिक प्रोग्रामिंग विधि की सीमाएं
(Limitations of the L.P Technique)

प्रस्तुत अध्याय में यह बतलाया गया है कि यदि किसी फर्म को उपलब्ध साधनो की मात्राओं, आदा-प्रदा गुणांकों तथा वस्तुओं की कीमतों के विषय में वांछित जानकारी हो तो हम रैखिक प्रोग्रामिंग विधि के माध्यम से यह ज्ञात कर सकते हैं कि दो वस्तुओं का कौन सा संयोग फर्म को अधिकतम आगम प्रदान करेगा अथवा साधनों के किस संयोग का प्रयोग करने पर लागत न्यूनतम होगी। परन्तु रैखिक प्रोग्रामिंग को एक निर्दोष विधि मान लेना अनुचित बात होगी। यह ठीक है कि इसके माध्यम से हमें इष्टतम समाधान मिल सकता है। फिर भी केवल कुछ सीमाओं में ही यह विधि उपयोगी सिद्ध हो पाती है।

यदि आदा-प्रदा, आदा-आदा तथा प्रदा-प्रदा संबंध रैखिक (linear) न हों तो क्या होगा ? ऐसी दशा में हम अरैखिक (non linear) प्रोग्रामिंग का आश्रय ले सकते हैं। परन्तु यह विधि काफी जटिल है तथा सामान्य विद्यार्थी उसके आधार पर कदापि इष्टतम समाधान प्राप्त नहीं कर सकता।

द्वितीय, रैखिक प्रोग्रामिंग विधि इस मान्यता पर आधारित है कि विभिन्न उत्पादन प्रक्रियाओं में साधनों का प्रयोग योगशीलता के आधार पर किया जाता है तथा साधनों की उपलब्ध मात्रा में साधन की प्रयुक्त मात्रा कम या समान है। परन्तु अनेक परिस्थितियों में ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिए, मशीन के घंटों का प्रयोग केवल Z_1 एवं Z_2 के उत्पादन हेतु ही नहीं किया जाता। कुछ समय मशीन को संचालन हेतु उपयोगी बनाने हेतु भी प्रयुक्त किया जाता है। अस्तु उपलब्ध साधन का शत प्रतिशत प्रयोग नहीं हो पाता।

तृतीय, रैखिक प्रोग्रामिंग विधि इस मान्यता पर भी आधारित है कि फर्म पैमाने के स्थिर प्रतिफल के अंतर्गत उत्पादन करने में सक्षम है। परन्तु यदि पैमाने के प्रतिफल समान या वर्द्धमान हो तो यह विधि उपयोगी नहीं रह जाती।

चतुर्थ, यह मानते हुए कि फर्म पूर्ण प्रतियोगिता की दशा के अंतर्गत कार्य करती है, रैखिक प्रोग्रामिंग विधि के अंतर्गत साधनों व वस्तुओं की कीमतें फर्म के लिए बाह्य निर्धारित मानी जाती हैं। परन्तु व्यवहार में हमें पूर्ण *प्रतियोगिता की सभी* शर्तें कहीं भी पूरी होती नहीं दिखाई देती।

8 चलीकरण प्रक्रिया को समझने हेतु देखें, A C Chiang, op cit , pp 606-610, Baumol, op cit , pp 90 96 तथा Hibdon op cit , pp 225 223

अत मे, यदि किसी फर्म को उपलब्ध साधनो मे से एक मद चर (slack variable) के रूप मे है, तब भी इस साधन की अविभाज्यता (indivisibility) अथवा अन्य सहयोगी साधनो के उपलब्ध न हो सकने से इस मंद चर का पूर्ण उपयोग सभव नही हो पाता ।

इस प्रकार रैखिक प्रोग्रामिंग के माध्यम से सभी परिस्थितियो मे इष्टतम समाधान की प्राप्ति नही हो पाती और इसीलिए व्यवहार मे इस विधि का सार्वभौमिक रूप उपयोग नही किया जा सकता ।

18
वितरण के सामान्य सिद्धांत
(GENERAL THEORIES OF DISTRIBUTION)

प्रस्तावना

अध्याय 13 से लेकर अध्याय 16 तक हमने किसी वस्तु की कीमत-निर्धारण से सबद्ध सिद्धानो का विवेचन किया था। उक्त विश्लेषण मे हमने यह मान्यता रखी थी कि उत्पादन के साधनो की कीमतें यथावत् रहती हैं।

उत्पादन के साधन वस्तुत परिवारो के द्वारा व्यावसायिक फर्मों को अर्पित सेवाओ के प्रतीक हैं। जैसाकि अध्याय 2 मे बतलाया गया था, व्यावसायिक फर्मे उत्पादन प्रक्रिया हेतु परिवारो से ही उत्पादन के साधन प्राप्त करती हैं। यही कारण है कि अर्पित सेवाओ के अनुपात मे राष्ट्रीय आय का वितरण भी साधनो के स्वामियों के बीच किया जाना जरूरी है। उत्पादन के ये साधन श्रम, भूमि, खानो, पूजी या मशीनों, सगठन तथा उद्यम के रूप मे हो सकते हैं। उत्पादन के साधनो एव वस्तुओ मे यही अतर है कि जहां वस्तुओ को बेचा या खरीदा जाकर इनके स्वामित्व मे परिवर्तन किया जाता है, वही साधनो को खरीदे बिना भी फर्म केवल इनके प्रयोग को खरीद सकती है। उत्पादित वस्तुओ व साधनो के मध्य दूसरा अतर यह है कि जहा वस्तु की माग अन्तिम माग होती है, वही साधन की माग इसलिए की जाती है कि इसके प्रयोग से वस्तु का उत्पादन सभव है। अन्य शब्दो मे, साधन की माग एक व्युत्पन्न माग होती है जबकि वस्तु की माग अतिम माग है।

साधन की कीमत के निर्धारण का विश्लेषण इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसी पर समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय का निर्धारण निर्भर करता है, तथा इसी के द्वारा लोगो का आर्थिक कल्याण निर्धारित होता है। वितरण के माध्यम से श्रमिको, भूमि व खानो के मालिको, पूजीपतियो तथा उद्यमियो का कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) मे हिस्सा तय होता है। इसीलिए वितरण की समस्या के साथ आर्थिक ही नही, अपितु नैतिक एव राजनीतिक प्रश्न भी जुड जाते हैं। परतु वस्तु की कीमत-निर्धारण-प्रक्रिया मे इनका कोई महत्त्व नही है। प्रश्न है, समाज के विभिन्न व्यक्तियों एव समूहो को राष्ट्रीय उत्पाद मे कितना अश प्राप्त होता है, इसका निर्धारण किसके द्वारा व किस प्रकार किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम आय-वितरण के

सामान्य सिद्धातो की विवेचना प्रस्तुत करेंगे। इसके बाद अगले चार अध्यायों मे मज-दूरी, लगान, ब्याज व लाभ की निर्धारण प्रक्रिया की चर्चा की जाएगी। सबसे पूर्व हम वैयक्तिक आय वितरण एव कार्यानुसार आय-वितरण के अतर पर प्रकाश डालेंगे।

18 1 कार्यानुसार एवं वैयक्तिक आय वितरण
(Functional and Personal Distribution)

चूकि उत्पादन के साधनो अथवा उत्पादक सेवाओ को उत्पादक प्रक्रिया मे ही प्रयुक्त किया जाता है अत प्रत्येक फर्म इन साधनो के (सीमात) योगदान एव साधनो की कीमतो के आधार पर ही इनकी प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा का निर्धारण करेगी। यदि फर्म अकेली ही किसी साधन को प्रयुक्त करना चाहती है, यानी वह साधन के बाजार मे क्रेताधिकारी है, तो वह साधन की प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा के साथ-साथ इसकी कीमत भी निर्धारित कर सकती है। इसीलिए *कुल आय का कुल उत्पाद* के कार्यानुसार वितरण से हमारा आशय उस विधि से है जिसके द्वारा साधनो की कीमतो एव इनकी उत्पादन मे प्रयुक्त की जाने वाली मात्राओ का निर्धारण किया जाता है। एक प्रतियोगी बाजार मे साधन की कीमत का निर्धारण इसकी कुल माग व कुल पूर्ति के द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत क्रेताधार (monopsony) के अतर्गत फर्म स्वय ही साधन की कीमत का निर्धारण करती है।

कार्यानुसार आय वितरण की चर्चा करते समय अर्थशास्त्रियो का ध्यान उत्पादक सेवाए अर्पित करने वाले व्यक्तियो पर न रह कर, श्रम, भूमि, पूजी एव उत्पादन के अन्य साधनो को दिए जाने वाले पुरस्कार की दरो पर केंद्रित रहता है। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्री इस बात का पता लगा सकता है कि श्रम की माग मे वृद्धि होने के कारण मजदूरी की दर मे 10 प्रतिशत वृद्धि हो गई है। परतु उसे इस बात से कोई प्रयोजन नही है कि मजदूरी मे वृद्धि होने मे किन लोगों को लाभ हुआ। इस प्रकार, कार्यानुसार आय वितरण का सबध मूलत उन सिद्धातो व नियमो से रहता है जिनके आधार पर साधनो की कीमतो का निर्धारण होता है। परतु जैसाकि ऊपर बतलाया गया है, साधनो की कीमतो का निर्धारण साधनो के बाजार मे विद्यमान परिस्थितियो, अर्थात् साधनो की माग व पूर्ति को प्रभावित करने वाली दशाओ पर निर्भर करता है।

किसी भी साधन की कीमत का निर्धारण होते ही हम यह पता लगा सकते हैं कि कुल राष्ट्रीय उत्पाद मे किस साधन को कितना हिस्सा मिला। इसके लिए प्रत्येक साधन की उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त मात्रा को साधन-कीमत से गुणा करके कुल भुगतान की राशि ज्ञात की जा सकती है। सक्षेप मे, साधनो के रोजगार-स्तरो एव साधन-कीमतो के आधार पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद मे कार्यानुसार वितरण की सरचना ज्ञात की जा सकती है।

परतु जिस विश्लेषण मे अर्थशास्त्री की रुचि हो, यह आवश्यक नही है कि राजनीतिज्ञो एव समाज के अन्य व्यक्तियो की रुचि भी उसी मे हो। बहुधा राजनीतिज्ञ

किसी देश मे (वैयक्तिक) आय वितरण की बढती हुई विषमताओ से चिंतित रहते हैं, क्योकि आय की इन्हीं विषमताओ के कारण निर्धन वर्ग मे आक्रोश उत्पन्न होता है, और इसके फलस्वरूप समाज मे अशांति हो सकती है। इसीलिए पूजीवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले देशो मे सरकार द्वारा वैयक्तिक आय वितरण की विषमताओ को कम करने हेतु प्रगतिशील करो, तथा निर्धन व्यक्तियो के कल्याण हेतु अत्योदय जैसी नीतिया अपनाई जाती हैं।

वैयक्तिक आय वितरण के अतर्गत हम राष्ट्रीय उत्पाद मे प्रत्येक व्यक्ति के योगदान की अपेक्षा उसके पास विद्यमान उत्पादक सेवाओ को आधार मानते हैं। पूजीवादी समाज मे (अथवा मिश्रित अर्थव्यवस्था मे भी) उत्पादन के दुर्लभ साधन कुछ ही हाथो मे केंद्रित रहते हैं और इसीलिए इनकी ऊची कीमतो तथा केंद्रीकरण के कारण राष्ट्रीय आय का एक बडा अश भी इन्ही व्यक्तियो को प्राप्त होता है। इसके विपरीत देश की जनता के एक विशाल वर्ग (60 से 70 प्रतिशत जनसख्या) के पास केवल श्रम ही रहता है जिसकी कीमत इसके बाहुल्य के कारण काफी कम रहती है। बेरोजगारी एव नीची मजदूरी दर के कारण इस विशाल बहुसख्यक वर्ग को कुल आय का एक अत्यत छोटा-सा अश मिल पाता है। इस वर्ग को अपनी अकिंचनता के कारण दोनो वक्त की रोटी भी नसीब नही हो पाती और न ही रहने को समुचित मकान व पहनने को पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध हो पाते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि साधनो के वितरण मे विद्यमान भारी विषमता के कारण आय के वितरण मे भी पर्याप्त विषमता उत्पन्न हो जाती है तथा समाज दो वर्गों मे बट जाता है।

परतु जब हम कार्यानुसार आय वितरण की चर्चा करते हैं तो हम न्याय एव नैतिकता के प्रश्नो की पूर्णरूपेण उपेक्षा कर देते हैं। जैसाकि ऊपर कहा गया था, एक विशुद्ध रूप से प्रतियोगी बाजार मे साधन की कीमत का निर्धारण माग व पूर्ति की *शक्तियो द्वारा किया जाता है। साधन की माग इसकी सीमात उत्पादकता पर निर्भर* करती है। इसीलिए आय या उत्पाद का "*स्वाभाविक*" वितरण *तभी होता है जब* प्रत्येक साधन को इसकी सीमात उत्पादकता के अनुरूप पारिश्रमिक प्राप्त होता हो। अर्थशास्त्री कदापि उस वितरण व्यवस्था को स्वीकार नही करेंगे जिसमे साधन की कीमत इसकी सीमात उत्पादकता से कम या अधिक हो। इसके विपरीत यदि साधन की कीमत एव इसकी सीमात उत्पादकता मे पूर्ण समानता हो तो विशुद्ध सैद्धांतिक दृष्टि से कार्यानुसार आय वितरण तथा वैयक्तिक आय वितरण मे कोई अतर नहीं होगा, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति को उसके पास विद्यमान साधनों की सीमात उत्पादकताओ के अनुरूप पारिश्रमिक प्राप्त हो जाएगा।

इसके उपरात भी, जैसाकि ऊपर बतलाया जा चुका है, साधनो के स्वामित्व के वितरण मे अत्यधिक विषमता होने पर वैयक्तिक आय के वितरण मे भी उतनी ही अधिक विषमता उत्पन्न हो जाती है। यही नहीं, कालातर मे वैयक्तिक आय की ये विषमताए बढती जाती हैं, क्योकि जिन लोगो को राष्ट्रीय उत्पाद का बडा अश प्राप्त होता है वे उत्पादन के (दुर्लभ) साधनो की उत्तरोत्तर और अधिक मात्रा का सग्रह

करते जाते हैं। इसीलिए अब अर्थशास्त्रियों का ध्यान भी आय के वैयक्तिक वितरण की बढ़ती हुई विषमताओं की ओर जाने लगा है, हालांकि वे अभी भी यह तर्क देते हैं कि "वैयक्तिक आय के उद्गम की जानकारी करना आर्थिक विश्लेषण के क्षेत्र से बाहर की बात है।"[1]

असमानता एवं अपकिरण का माप (Measures of dispersion and inequality)—किसी भी समाज में वैयक्तिक आय वितरण में विद्यमान असमानताओं एवं अपकिरण को मापने हेतु अर्थशास्त्रियों ने हाल के वर्षों में अनेक विधियां बतलाई हैं।[2] इनमें से एक विधि σ अथवा प्रमाप विचलन (standard deviation) तथा इससे प्राप्त विचलन गुणांक (coefficient of variation) यानी v पर आधारित है। अस्तु—

$$\sigma = \frac{\sum_{i=1}^{n} (\bar{Y} - Y_i)^2}{N}$$

इस सूत्र में $\bar{Y}$ तो सभी व्यक्तियों को प्राप्त आय का औसत या गणितीय माध्य है, Y_i प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त वास्तविक आय की राशि है, तथा N समाज में विद्यमान व्यक्तियों की संख्या है। σ अथवा प्रमाप विचलन का मूल्य जितना अधिक होगा, गणितीय माध्यम में वैयक्तिक आय का विचलन उतना ही अधिक माना जाएगा। यही नहीं, वैयक्तिक आय-वितरण की विषमता को मापने हेतु विचलन गुणांक $\left(v = \frac{\sigma}{\bar{Y}} \right)$ का भी प्रयोग किया जा सकता है।

वैयक्तिक आय वितरण में विद्यमान विषमता को मापने की दूसरी विधि के अंतर्गत हम समाज को चार या दस समान आय वर्गों में बांट देते हैं। प्रत्येक आय वर्ग में जितने लोग विद्यमान हैं उनकी गणना करके संबद्ध आवृत्ति का आय वर्ग के आगे लिख दिया जाता है। फिर सबसे नीचे वाले एक-चौथाई या दसवें वर्ग में मौजूद लोगों की औसत आय की तुलना सबसे ऊपर वाले एक-चौथाई (quartile) या दसवें वर्ग (decile) में मौजूद लोगों की औसत आय से की जाती है।

वैयक्तिक आय वितरण की विषमता को मापने की तीसरी विधि लॉरेन्ज वक्र पर आधारित है। चित्र 18.1 में OAC लारेन्ज वक्र आय की पूर्ण समानता दर्शाने वाली रेखा (OC) से जितना दूर होगा, आय के वितरण में व्याप्त विषमता उतनी ही अधिक होगी। इस चित्र में शीर्ष अक्ष पर आय के संचयी प्रतिशत (cumulative percentage of income) तथा क्षैतिज अक्ष पर जनसंख्या के संचयी प्रतिशत (cumulative percentage of population) को मापा गया है। आय का वितरण पूर्ण रूप से समान होने पर लॉरेन्ज वक्र (जो आय के वास्तविक विवरण को दर्शाता है)

1. F W Paish and A J Culyer, Benham's Economics, 1973
2. George J Stigler, 'Theory of Price' (1952), pp 262-264

तथा OC मे कोई अतर नही होगा । परतु दोनो मे अतर होना इस बात का द्योतक है कि आय का वितरण विषम है । इस विषमता को जिनी अनुपात (Gini Ratio) कहा जाता है । इस अनुपात (g) को निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है—

$$g = \frac{B}{B+D} \quad \ldots(18.1)$$

इस प्रकार (g) या जिनी अनुपात के आधार पर लॉरेन्ज वक्र तथा पूर्ण समानता की रेखा के बीच अतर का माप लिया जा सकता है । यह अनुपात जितना अधिक होगा राष्ट्रीय आय का वितरण उतना ही अधिक विषम होगा, यानी राष्ट्रीय आय का काफी बडा अश कुछ ही लोगो को प्राप्त होता रहेगा ।

चित्र 18 1 सचयी आवृत्ति

अत मे, वैयक्तिक आय की विषमता तथा इसमे विद्यमान विचलन को मापने का एक तरीका भूमिष्ठक (mode) पर आधारित है । इसका सूत्र इस प्रकार है—

$$N = AY^{-\alpha} \quad \ldots(18.2)$$

अथवा $\log N = \log A - \alpha \log Y$ ...(18 3)

उपरोक्त सूत्र मे N उन व्यक्तियो के अनुपात का प्रतीक है जिनकी आय भूमिष्ठक के समान या इससे अधिक है, Y आय का वह स्तर है जो भूमिष्ठक से अधिक है, जबकि A एव α स्थिर प्राचल हैं । समीकरण (18 3) के अनुसार α आय वितरण को दर्शाने वाले वक्र का ढलान होगा तथा आय के वितरण मे विद्यमान विषमताओ को व्यक्त करेगा ।

ऊपर वर्णित चारो विधियो मे से किसी भी एक को वैयक्तिक आय के वितरण मे व्याप्त विषमताओ को मापन हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है । इन विषमताओ को किन तरीको से दूर किया जाए, इसकी चर्चा वर्तमान सदर्भ मे अप्रासगिक होगी । जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, अर्थशास्त्रियो का मुख्य उद्देश्य कार्यानुसार आय-वितरण के उन सिद्धातो की विवेचना करना है जिनके आधार पर कुल उत्पादन मे विभिन्न साधनों को प्राप्य अश का निर्धारण होता है ।

प्रोफेसर फैलनर ने चार विचारणीय तथ्य प्रस्तुत किए हैं जिनके आधार पर वितरण सबधी सिद्धातों की विवेचना की जानी चाहिए—

(अ) उत्पादन के साधनों की माग इनकी अपेक्षित सीमात उत्पादकता द्वारा निर्धारित होती है । प्रतियोगी दशाओ मे किसी साधन का सीमात उत्पादकता वक्र ही फर्म के लिए इसका माग वक्र होता है । अध्याय 7 मे हमने यह स्पष्ट किया था कि यदि फर्म अन्य साधनो की मात्रा यथावत् रखते हुए, एक साधन की अधिक मात्रा का प्रयोग करना चाहती है, तो इस परिवर्तनशील साधन की सीमात उत्पत्ति एक
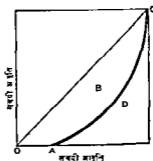
सीमा के पश्चात कम होती जाएगी। यह भी हमने इस संदर्भ में देखा था कि फर्म परिवर्तनशील साधन की अधिक मात्रा का प्रयोग उसी दशा में करती है जबकि साधन की (बाह्य निर्धारित) कीमत में कमी हो जाए। अस्तु अन्य साधनों के स्थिर रहते हुए एक प्रतियोगी फर्म के लिए साधन का सीमांत उत्पादकता वक्र इसका माग वक्र है। विभिन्न फर्मों के सीमांत उत्पादकता वक्रों का क्षैतिज योग लेकर हम साधन का बाजार माग वक्र ज्ञात कर सकते हैं।

(ब) अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों की पूर्ति का निरूपण भूमि, श्रम, पूंजी आदि की उन मात्राओं द्वारा होगा जिन्हें इनके स्वामी वैकल्पिक कीमतों पर व्यावसायिक फर्मों को सौंपने हेतु तैयार होते हैं। प्रत्येक साधन की कुल पूर्ति जहा समान है वहीं इनकी साम्य कीमत का निर्धारण होगा। परन्तु यदि साधन के बाजार में क्रेताधिकार (monopsony) है तो क्रेताधिकार स्वयं ही इसकी कीमत निर्धारित करेगा।

(स) प्रतियोगी दशाओं में एक फर्म साधन की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती और इसीलिए प्रत्येक साधन का पूर्ति वक्र फर्म के लिए (निर्दिष्ट कीमत पर) क्षैतिज (horizontal factor supply curve) होता है। फर्म साधन का इष्टतम प्रयोग उस स्तर पर करेगी जहा इसकी सीमांत उत्पादकता एवं साधन की कीमत में समानता है। प्रतियोगी परिस्थितियों में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त किए जाने वाले सभी साधनों के संदर्भ में फर्म इसी प्रकार साधनों का इष्टतम प्रयोग करेगी।

(द) साधनों की कीमत निर्धारण के सिद्धांत एवं वस्तु की कीमत निर्धारण के सिद्धांत में परस्पर समानता है। किसी भी साधन की सीमांत उत्पादकता साधन की प्रयोज्य मात्रा तथा उद्योग में प्रचलित प्रौद्योगिक दशाओं (technological conditions) पर निर्भर करती है। इसके विपरीत, उत्पादकों के लागत फलनों का निरूपण भी औद्योगिक दशाओं तथा साधनों की कीमतों द्वारा होता है। इससे हमें इस सिद्धांत का पता चलता है कि दी हुई प्रौद्योगिक दशाओं में इन साधनों की उपलब्धि एवं विभिन्न कीमतों पर इनकी माग के आधार पर ही विभिन्न क्षेत्रों में साधनों का प्रयोग किया जाएगा।

आगे हमने इन्हीं चारों तथ्यों की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की है। परन्तु चूंकि प्रतियोगी परिस्थितियों में किसी साधन की माग इसकी सीमांत उत्पादकता पर ही निर्भर करती है, हम सर्वप्रथम सीमांत उत्पादकता सिद्धांत एवं तदनुसार साधन की माग के निरूपण की चर्चा करेंगे।

18 2 सीमांत उत्पादकता सिद्धांत
(Marginal Productivity Theory)

डेविड रिकार्डो ने अपने सुप्रसिद्ध लगान सिद्धांतों की व्याख्या करते समय यह बतलाने का प्रयास किया था कि चूंकि भूमि एक स्थिर साधन है एवं इसे केवल विशिष्ट कार्यों हेतु ही प्रयुक्त किया जा सकता है, लगान की प्राप्ति सीमांत से अधिक

उपज देने वाले खेतो पर ही सभव है। रिकार्डो ने स्पष्ट रूप से "सीमात उत्पत्ति" शब्दो का प्रयोग नही किया, तथापि उन्होंने यह आभास दिया कि एक स्थिर साधन को बहुधा किसी अतिरेक की प्राप्ति होती है जिसका निर्धारण औसत तथा सीमात उत्पत्ति के आधार पर होना है।[4]

परतु न तो रिकार्डो ने, और न ही अन्य किसी भी सम्थापक अर्थशास्त्री ने हमे वितरण का कोई सिद्धात प्रदान किया। सर्वप्रथम 1879 मे हेनरी जॉर्ज ने यह कहा कि मजदूरी का निर्धारण उत्पादन के मार्जिन पर निर्भर करता है, अथवा इसका निर्धारण उस उत्पत्ति पर निर्भर करता है जो लगान की अनुपस्थिति मे श्रम की स्वाभाविक उच्चतम दक्षता स प्राप्त हो सकता है। हेनरी जॉर्ज ने कहा कि मजदूरी का वास्तविक भुगतान उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त श्रमिको की निम्नतम दक्षता के अनुरूप ही होगा तथा जैसे-जैसे निम्नतम दक्षता का स्तर घटता जाएगा, वैसे-वैसे मजदूरी के स्तर में कमी होती जाएगी।

जे० बी० क्लार्क ने हेनरी जॉर्ज के विचारो का अनुमोदन करते हुए तर्क दिया कि कुल उत्पादन मे से श्रम क योगदान को अलग करना सभव है। उन्होंने कहा कि इसी आधार पर श्रम एव अन्य सहयोगी साधनो के योगदान मे अतर बतलाया जा सकता है। क्लार्क ने इस सदर्भ मे एक नियम प्रतिपादित किया जिसके अनुसार प्रतियोगी परिस्थितियो म श्रम ही नही, अपितु उत्पादन के प्रत्येक साधन का पारिश्रमिक कुल उत्पादन मे इसके योगदान के समान ही होना है। तदनुसार, श्रम की मजदूरी, पूजी के ब्याज एव भूमि के लगान की दरें इनकी सीमात उत्पत्ति के समान होगी।

क्लार्क का वितरण सबधी उपरोक्त नियम निम्नलिखित मान्यताओ पर आधारित था—

(अ) स्थैतिक दशाओ में उद्यमी का उत्पादन प्रक्रिया में कोई योगदान नही होना, और इसलिए उस छोडकर अन्य सभी साधनो के मध्य ही समूचे उत्पादन को वितरित कर दिया जाता है।

(ब) वस्तु एव साधन के बाजारों मे पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, और इस कारण साधनों के प्रत्येक स्वामी अथवा प्रत्येक उत्पादक फर्म के लिए साधन की कीमत (factor price) बाह्य निर्धारित (exogenously determined) है। कोई भी एक व्यक्ति या फर्म साधन की इस पूर्व निर्धारित कीमत मे परिवर्तन करने की क्षमता नही रखता। दी हुई साधन-कीमत पर फर्म उस सीमा तक साधन का प्रयोग करती है जहा साधनो के प्रयोग स उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। जैसा कि आगे बतलाया गया है, साधन के प्रयोग का यही वह स्तर है जहा इसकी सीमात उत्पादकता एव साधन की कीमत में पूर्ण समानता होती है।

(स) जब हम एक परिवर्तनशील साधन के सीमात उत्पादन का निरूपण करते हैं तो हम यह मान्यता लेते हैं कि अन्य साधनो की मात्रा तथा उनकी कीमतो

4 M Blaugh, Economic Theory in Retrospect' (1962), Ch 11.

मे कोई परिवर्तन नही होता । वस्तुतः क्लार्क द्वारा प्रस्तुत सीमात उत्पादन सिद्धात के अतर्गत एक बार मे केवल एक ही साधन को परिवर्तनशील माना जाता है जबकि अन्य सभी साधनो को स्थिर रखा जाता है। तथापि इन स्थिर साधनो के सहयोग बिना उत्पादन प्रक्रिया का सपादन नही किया जा सकता। यदि उत्पादन फलन $Q=f(X_1, X_2 \ldots, X_n)$ हो, तो X_1 X_2, X_3, .आदि मे से किसी एक साधन को परिवर्तनशील एव अन्य साधनो को स्थिर माना जा सकता है । परतु यदि X_1, X_2, X_3 ,X_n आदि सभी साधन शून्य हो तो उत्पादन यानी Q भी शून्य होगा ।

इस मान्यता का अभिप्राय यह है कि उत्पादन फलन से प्रथम आशिक अवकलज (first partial derivatives) हमे प्रत्येक साधन के सीमात उत्पादन का माप प्रदान करता है । तथापि X_1 का सीमात उत्पादन ज्ञात करते समय हमे X_2, X_3, ..., आदि साधनो को स्थिर मानना होगा ।

(द) चूकि क्लार्क के विश्लेषण मे प्रत्येक साधन को इसके सीमात उत्पादन के आधार पर पारिश्रमिक दिया जाता है, इसके अनुसार कुल उत्पादन या उत्पादन के साधनो के मध्य पूरा-पूरा भुगतान कर दिया जाता है । इसे सामान्य तौर पर क्लार्क-विक्सटीड या उत्पाद समाप्ति प्रमेय (Clark-Wicksteed Product Exhaustion Theorem) के नाम से जाना जाता है । क्लार्क के विश्लेषण मे विक्स्टीड का योगदान होने के कारण ही उनका नाम आगे चलकर इस प्रमेय के साथ सबद्ध कर दिया गया । जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, साधनों को उनकी सीमात उत्पत्ति के अनुरूप भुगतान करने पर कुल उत्पाद की समाप्ति केवल उस दशा मे सभव है जबकि फर्म पैमाने के समतामान प्रतिफल (constant return to scale) के अतगत कार्य कर रही हो ।

सक्षेप मे, जे० बी० क्लार्क एव विक्सटीड के अनुसार किसी साधन का सीमात उत्पादन ही इसकी कीमत का निर्धारण करता है, तथा प्रतियोगी परिस्थितियो मे साधन की कीमत इसके सीमात उत्पादन के समान ही होती है ।

मार्शल ने इस सिद्धात का जोरदार प्रतिवाद करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि साधन की कीमत का निर्धारण केवल इसके सीमात उत्पादन द्वारा नही, अपितु इसकी माग व पूर्ति के द्वारा होता है । उन्होने सीमात उत्पादकता सिद्धात की चर्चा करते हुए लिखा—

"इस सिद्धात को कभी-कभी मजदूरी के सिद्धात के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है । परतु इस प्रस्तुतीकरण की पृष्ठभूमि मे कोई ठोस कारण नही दिया जाता । इस कथन मे कोई तथ्य नहीं है कि श्रमिक की मजदूरी उसके कार्य के शुद्ध उत्पादन के समान होती है, क्योकि उस शुद्ध उत्पादन का अनुमान करने हेतु हमे उसकी मजदूरी के अतिरिक्त वस्तु के उत्पादन से सबद्ध सभी खर्चों की निश्चित जानकारी होनी चाहिए।[5]

5 Alfred Marshall, 'Principles of Economics' (Eigth Edition), pp 429-30

हाल के वर्षों मे प्रोफेसर जे० आर० हिक्स तथा अन्य अर्थशास्त्रियो ने सीमात उत्पादन के विषय मे मार्शल द्वारा प्रस्तुत विचारो का अनुमोदन किया। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, प्रोफेसर मार्शल के विचार मे साधन का सीमात उत्पादन इसकी कीमत का निर्धारण न करके केवल इसकी माग का निरूपण करता है। मार्शल ने बतलाया कि वस्तु की भाति साधन की कीमत के निर्धारण हेतु इसकी माग व पूर्ति दोनो फलनो की आवश्यकता होती है।

18 3 साधन की माग
(Demand for a Factor)

मार्शल की भाति आज अधिकाश अर्थशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि साधन की माग का निर्धारण इसकी सीमात उत्पत्ति द्वारा ही होता है। परतु यह मान लेना एक भूल होगी कि किसी साधन का सीमात उत्पादन फलन ही उसका माग फलन है। जैसाकि आगे बतलाया गया है, कुछ परिस्थितियो मे सीमात उत्पादन फलन, तथा साधन के माग फलन मे काफी बडा अतर होता है। यही नही, साधन के सीमात उत्पादन के आधार पर उसका माग फलन केवल उन दशाओ मे निरुपित किया जा सकता है जब अन्य साधनो के स्थिर रहते हुए केवल यही साधन, परिवर्तनशील हो, तथा जब साधन का बाजार प्रतियोगितापूर्ण हो।

एक साधन परिवर्तनशील होने पर साधन की माग
(Factor Demand When One Factor is Variable)

अध्याय 7 मे बतलाया गया था कि अन्य साधनो को स्थिर रखते हुए यदि एक साधन की मात्रा बढाई जाए तो अतत इसके सीमात उत्पादन में कमी होने लगती है। वस्तुत हमने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि ह्रासमान सीमात उत्पत्ति वाली रेन्ज मे ही साधन का इष्टतम उपयोग किया जा सकता है। मान लीजिए, श्रम ही फर्म के उत्पादन फलन में एकमात्र परिवर्तनशील साधन है। इस स्थिति मे फर्म श्रम का उपयोग उस सीमा तक करना चाहेगी जहा इसके प्रयोग से उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। तालिका 18 1 मे हमने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि फर्म को अधिकतम लाभ उस दशा मे प्राप्त होता है जहा कुल आगम तथा कुल लागत के मध्य का (धनात्मक) अतर अधिकतम है। तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि इसी स्तर पर श्रम के सीमात उत्पादन का मूल्य (VMP या Value of Marginal Product) मजदूरी की दर के समान है।

तालिका 18 1

सीमांत उत्पत्ति मूल्य एव श्रम की मांग

श्रम की इकाइयाँ	कुल उत्पादन (TP_L)	सीमांत उत्पादन (MP)	वस्तु की कीमत (P_Y)	कुल आगम (TRP)	सीमांत उत्पादन मूल्य (VMP_L)	मजदूरी दर (W)	कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)	लाभ 5 8
1	2	3	4	5	6	7	8	9
0	0	0	2	0	—	6	0	0
1	8	8	2	16	16	6	6	10
2	15	7	2	30	14	6	12	18
3	21	6	2	42	12	6	18	24
4	26	5	2	52	10	6	24	28
5	30	4	2	60	8	6	30	30
6	33	3	2	66	6	6	36	30
7	35	2	2	70	4	6	42	28
8	36	1	2	72	2	6	48	24
9	36	0	2	72	0	6	54	18
10	36	—2	2	68	—4	6	60	8

चूंकि वस्तु व साधन दोनो ही बाजारो मे पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, उपरोक्त उदाहरण मे वस्तु व साधन की कीमतो को फर्म के लिए बाह्य निर्धारित (exogenously determined) माना गया है। तालिका 18 1 मे बतलाया गया है कि फर्म 33 इकाइयों का उत्पादन करने पर अधिकतम लाभ अर्जित करती है क्योकि इस स्तर पर कुल आगम (66 रुपए) व कुल लागत (36 रुपए) का अतर (30 रुपए) अधिकतम है। जैसा कि हम ऊपर देखते हैं, इसी स्तर पर सीमांत उत्पादन मूल्य (VMP या $P_Y\,MP_L$) तथा श्रम की मजदूरी दर मे समानता है। इस स्तर पर फर्म श्रम की 6 इकाइयां प्रयुक्त करती है। इससे अधिक श्रम प्रयुक्त करने पर फर्म को प्राप्त कुल लाभ मे कमी हो जाएगी।

चित्र 18 2 का पैनल (a) बतलाता है कि श्रम की इकाइयां प्रयुक्त करने पर फर्म का लाभ अधिकतम होता है। पैनल (b) मे सीमांत उत्पादन मूल्य वक्र इस बात को बतलाता है कि दी हुई मजदूरी-दर (6 रुपए) पर श्रम के सीमांत उत्पादन एव रोजगार के स्तर मे प्रतिकूल सबध होता है।
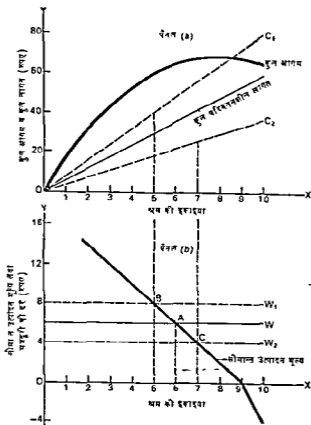
चित्र 18.2 श्रम का रोजगार एवं अधिकतम लाभ की प्राप्ति

अब हम यह सिद्ध करने का प्रयास करेंगे कि इस स्थिति म फर्म का सीमांत उत्पादन वक्र (VMP) वस्तुतः श्रम का माग वक्र है। चूंकि मजदूरी की दर स्थिर है, फर्म को 6 रुपये पर श्रम की असीमित पूर्ति उपलब्ध है। फर्म इस मजदूरी पर प्रयुक्त करना चाहेगी जहा श्रम का पूर्ति वक्र W इसके श्रम की उतनी मात्रा सीमांत उत्पादन वक्र (VMP) द्वारा प्रतिच्छेदित होता है। ऐसी स्थिति मे 6 रुपए पर फर्म श्रम की 6 इकाइयों को प्रयुक्त करके अधिकतम लाभ अर्जित करती है। अब मान लीजिए किसी कारण से बाजार मे मजदूरी की दर बढ कर 8 रुपए हो जाती है। अब श्रम का पूर्ति वक्र W_1 हो जाता है जिस सीमांत उत्पादन वक्र B पर प्रतिच्छेदित करता है। इस स्तर पर फर्म श्रम की 5 इकाइयो का प्रयोग करती है। इसके विपरीत मजदूरी की दर 4 रुपए हो जाने पर फर्म श्रम की 7 इकाइयों का प्रयोग

करेगी। संक्षेप में, मजदूरी की दर बढ़ाने पर फर्म श्रम की कम मात्रा को प्रयुक्त करती है जबकि मजदूरी की दर में (बाह्य रूप से) कमी होने पर श्रम की प्रयोज्य मात्रा बढ़ जाती है। यही कारण है कि प्रतियोगी दशाओं में VMP वक्र को फर्म के लिए साधन का माग वक्र माना जा सकता है। पाठकों को स्मरण होगा कि उपभोग के संदर्भ में जिस प्रकार वस्तु का सीमांत उपयोगिता वक्र इसका माग वक्र माना गया था उसी प्रकार साधन के प्रयोग में VMP वक्र को साधन का माग वक्र माना जा सकता है। दोनों ही दशाओं में हम यह मान्यता लेते हैं कि उपभोक्ता अथवा फर्म को प्रतियोगी परिस्थितियों में निर्णय लेना है।

चित्र 18 2 के पैनल (a) में श्रम के प्रयोग से प्राप्त कुल आगम एवं इसकी कुल लागत से संबद्ध वक्र दिखाए गए हैं। स्पष्ट है फर्म को अधिकतम लाभ श्रम के प्रयोग के उस स्तर पर ही होगा जहां दोनों का (शीर्ष) अंतर अधिकतम हो। चित्र 18 2 (b) में जिस स्तर पर सीमांत उत्पादन वक्र श्रम के पूर्ति वक्र को प्रतिच्छेदित करता है, ठीक उसी स्तर पर फर्म को श्रम के प्रयोग से अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है।

ऊपर प्रस्तुत विवरण को हम गणितीय रूप में भी प्रस्तुत कर सकते हैं। मान लीजिए श्रम ही परिवर्तनशील साधन है तथा उत्पादन की मात्रा (Y) इसी पर निर्भर करती है। अस्तु—

$$Y=f(L) \qquad \ldots(18\ 5)$$

$$\text{एवं } \frac{dY}{dL}=f'(L) \qquad \ldots(18\ 6)$$

समीकरण (18 6) उत्पादन फलन का प्रथम अवकलज (first derivative) अथवा सीमांत उत्पादन है। अब फर्म का लाभ फलन ज्ञात कीजिए—

$$\pi=f(L)\ P_y = P_y\ \ Y - w\,L - F \qquad \ldots(18.7)$$

उपरोक्त समीकरण में P_y वस्तु की कीमत है, जबकि W मजदूरी की दर का प्रतीक है। फर्म का कुल आगम $P_y Y$ है तथा W L एवं F क्रमशः परिवर्तनशील एवं स्थिर लागतें हैं। इस प्रकार कुल लागतों से ऊपर कुल आगम का जो अतिरेक है, वही फर्म का लाभ माना जाएगा। अधिकतम लाभ हेतु समीकरण (18.7) का प्रथम अवकलज शून्य के समान रखना होगा—

$$\frac{d\pi}{dL}P_y = f'(L) - w = 0$$

$$\text{यानी} \quad VMP_L = P_y\ \ MP_y = w \qquad \ldots(18\ 8)$$

इस प्रकार अन्य साधनों के स्थिर रहते फर्म श्रम का प्रयोग उस स्तर पर करके अधिकतम लाभ अर्जित करती है जहां सीमांत उत्पादन मूल्य (VMP) तथा मजदूरी की दर में समानता हो।

दो परिवर्तनशील साधनों के संदर्भ में एक साधन की मांग (Demand for a factor when more than one Variable Input is used)—ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि किसी साधन का सीमांत उत्पादन मूल्य (VMP) वक्र

इसका माग वक्र केवल केवल उस दशा मे स्वीकार्य होता है जब कि केवल एक ही साधन परिवर्तनशील हो। यदि एक स अधिक साधन परिवर्तनशील हो तो VMP वक्र को कदापि साधन का माग वक्र नही माना जा सकता। उदाहरण के लिए, इस विसगति को सिद्ध करने हेतु काब डग्लस उत्पादन फलन को ही लिया जाए—

$$Q=AL^{\alpha}\ K^{1-\alpha} \tag{18 9}$$

इस समीकरण मे Q उत्पादन की मात्रा है जबकि A एक स्थिर प्राचल है। α व $1-\alpha$ क्रमश श्रम (L) व पूजी (K) की उत्पादन-लोच के गुणाक हैं। वस्तु की कीमत को सुविधा के लिए एक रुपया मानकर हम श्रम तथा पूजी के VMP फलन निम्न रूप मे ज्ञात कर सकते है—

$$\left.\begin{aligned} VMP_L &= \frac{\partial Q}{\partial L} = \alpha AL^{\alpha-1}K^{1-\alpha} \text{ या } \alpha A\left(\frac{K}{L}\right)^{1-\alpha} \\ \text{तथा } VMP_K &= \frac{\partial Q}{\partial K} = (1-\alpha)AL^{\alpha}K^{-\alpha} \text{ या } 1-\alpha A\left(\frac{K}{L}\right)^{-\alpha} \end{aligned}\right\} \tag{18 10}$$

अब श्रम के माग फलन को निरूपित करने हेतु हम लाभ फलन को प्रस्तुत करना चाहेंगे—

$$\pi=AL^{\alpha}K^{\overline{1-\alpha}}-(w\,L+r\,K) \tag{18 11}$$

समीकरण (18 11) मे w L कुल मजदूरी तथा r K कुल ब्याज के प्रतीक हैं—जहा w व r क्रमश मजदूरी व ब्याज की दरें हैं। अध्याय 8 के अनुभाग (8 5) के अनुसार अधिकतम लाभ हेतु मजदूरी व ब्याज की दरें क्रमश श्रम व पूजी के सीमात उत्पादन के समान होनी चाहिए। अस्तु—

$$\alpha\ A\ \left(\frac{K}{L}\right)^{1-\alpha}=w \tag{18 12}$$

एव

$$1-\alpha A\left(\frac{K}{L}\right)^{-\alpha}=r \tag{18 13}$$

$$\text{अथवा } \frac{w}{r}=\frac{\alpha}{1-\alpha}\left(\frac{K}{L}\right) \tag{18 13}$$

श्रम व पूजी के माग फलन इस प्रकार होंगे

$$\left.\begin{aligned} L &= \left(\frac{\alpha}{1-\alpha}\right)\frac{r}{w}\ K \\ \text{तथा}\quad K &= \left(\frac{1-\alpha}{\alpha}\right)\frac{w}{r}\ L \end{aligned}\right\} \tag{18 14}$$

श्रम व पूजी के माग फलनो एव इसके सीमात उत्पादन मूल्यो की तुलना करन हेतु हम ऊपर प्रस्तुत समीकरण (18 9) को इस प्रकार लिखेंगे कि इस नए समीकरण में (18 14) मे प्रस्तुत L व K मूल्यो का समावेश हो जाए।

$$\frac{Q}{A}=L^{\alpha}\left[L\left(\frac{1-\alpha}{\alpha}\right)\frac{w}{r}\right]^{1-\alpha}=L\left(\frac{1-\alpha}{\alpha}\cdot\frac{w}{r}\right)^{1-\alpha} \quad (18\ 15)$$

अर्थात् $$L=\frac{Q}{A}\left[\left(\frac{\alpha}{1-\alpha}\right)\frac{r}{w}\right]^{1-\alpha} \quad ..(18\ 16)$$

समीकरण (18.16) श्रम का माग फलन प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार पूजी का माग फलन इस प्रकार होगा—

$$K=\frac{Q}{A}\left[\frac{1-\alpha}{\alpha}\quad\frac{w}{r}\right]^{\alpha} \quad ...(18\ 17)$$

कुल मिलाकर यह तर्क दिया जा सकता है कि श्रम व पूजी दोनो के परिवर्तनशील होने पर इनके माग फलन (समीकरण 18 16 व 18 17) एव सीमात उत्पादन मूल्य-फलन (समीकरण 18 10) मे कोई समानता नही होती।

चूकि दो साधनो मे बहुधा पूरकता विद्यमान होती है, किसी एक साधन के सीमात उत्पादन मूल्य का स्वतत्र रूप स निरूपण नही किया जा सकता। इस दृष्टि से एक साधन—मान लीजिए श्रम—की कीमत मे परिवर्तन होने पर श्रम सहित उत्पादन के सभी साधनो की मात्रा मे परिवर्तन होगा। फर्ग्यूसन के अनुसार सामान्य तौर पर मजदूरी की दर मे परिवर्तन होने पर हमे चार प्रभावो की अनुभूति होती है [6] (1) प्रतिस्थापन प्रभाव, (ii) उत्पत्ति प्रभाव, (iii) अधिकतम स्तर प्रभाव (maximizing effect), तथा (iv) आगम प्रभाव। इनमे से (i) तथा (ii) की विवेचना अध्याय 9 मे प्रस्तुत की जा चुकी है। वहा हमने यह पढा था कि मजदूरी की दर मे कमी होने पर प्रतिस्थापन प्रभाव तथा उत्पत्ति प्रभाव के कारण फर्म श्रम व पूजी दोनो ही का अधिक प्रयोग करने लगती है। शेष दो प्रभावों—अधिकतम स्तर प्रभाव तथा आगम प्रभाव (revenue effect) का विवरण इस अध्याय मे आगे किया जाएगा। फिलहाल हम यह देखना चाहेगे कि साधनो के मध्य पूरकता होने पर साधन की माग तथा इसके सीमात उत्पादन मूल्य के मध्य सबंध कैसे प्रभावित होते हैं।

जैसाकि ऊपर बतलाया गया था, श्रम की कीमत मे कमी होने पर श्रम व पूजी के मध्य पूरकता के कारण फर्म दोनो ही साधनो की अधिक मात्रा का प्रयोग करने लगती है। इसके फलस्वरूप फर्म का उत्पादन फलन विवर्तित हो जाता है। चूकि वस्तु की कीमत यथावत् रहती है, उत्पादन फलन के साथ ही कुल आगम (TRP) व सीमात उत्पादन मूल्य (VMP) के वक्रो मे भी परिवर्तन हो जाता है। नई मजदूरी दर पर अब VMP_L तथा मजदूरी की समानता मूल VMP_L वक्र पर न होकर नए VMP_L वक्र पर होगी। यदि मजदूरी मे पुन कमी की जाए तो फिर अधिक श्रम व अधिक पूजी के प्रयोग के कारण TRP व VMP_L वक्रो मे विवर्तन

6 C E Ferguson, 'Microeconomic Theory' (1969), pp 365 368

होगा तथा अधिकतम लाभ प्रदान करने वाली श्रम की इकाइयों का निर्धारण नवीनतम VMP_L वक्र के द्वारा होगा।
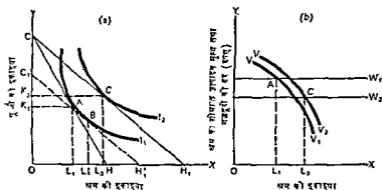
चित्र 18 3 मजदूरी की दर एवं श्रम की माग मे परिवर्तन

चित्र 18 3 के पैनल (a) से ज्ञात होता है कि मजदूरी की दर मे कमी होने पर फर्म की सम लागत रेखा CH आवर्तित होकर CH_1 का स्थान ले लेती है तथा फर्म समोत्पाद वक्र I_1 से हटकर I_2 पर नई साम्य स्थिति मे पहुच जाती है। I_2 पर वह श्रम व पूजी दोनो की (I_1 की तुलना मे) अधिक मात्रा प्रयोग मे लेती है। तदनुसार श्रम की मात्रा OL_1 से बढकर OL_2 व पूजी की मात्रा OK_1 से बढकर OK_2 हो जाती है, हालांकि पूजी पर देय ब्याज की दर स्थिर रहती है। अध्याय 9 के अनुभाग 9.4 मे यह बतलाया गया था कि मजदूरी की दर मे कमी होने पर श्रम की मात्रा पर होने वाले प्रभाव को प्रतिस्थापन प्रभाव (L_1L_1') एव उत्पत्ति प्रभाव ($L_1'L_2$) के रूप मे वर्गीकृत किया जा सकता है।

परतु जब फर्म मजदूरी की दर कम होने पर श्रम तथा पूजी दोनो की अधिक मात्रा का प्रयोग करके अधिक उत्पादन करती है तो उत्पादन फलन और उसके साथ ही श्रम के सीमात उत्पादन मूल्य (पैनल b मे VV_1) वक्र मे विवर्तन होता है। अब फर्म का नया सीमात उत्पादन मूल्य (VMP_L) वक्र VV_2 है जिस पर C बिंदु श्रम के प्रयोग हेतु इष्टतम बिंदु है क्योंकि इसी स्तर पर मजदूरी की दर एव सीमात उत्पादन मूल्य मे समानता है। अस्तु, फर्म की साम्य स्थिति A से हटकर C में आ जाती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यदि पूजी व श्रम दोनों ही परिवर्तनशील हो तो सीमात उत्पादन मूल्य वक्र को श्रम के माग वक्र के रूप मे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रोफेसर जे० आर० हिक्स ने मजदूरी की दर मे परिवर्तन होने पर दो प्रभावों की विवेचना की है—उत्पादन के स्तर पर प्रभाव तथा साधनो के अनुपात पर प्रभाव।[7]

7 J R Hicks, 'The Theory of Wages' (Second Edition, 1968), pp. 321-325.

ये प्रभाव वस्तुत उत्पादन प्रभाव एव प्रतिस्थापन प्रभावो के ही अनुरूप हैं, जिनका हम पूर्व मे विवरण दे चुके हैं। परन्तु इस दृष्टिकोण के आधार पर साधन की कीमत मे परिवर्तन से उत्पन्न तीन प्रभावो की व्याख्या की जा सकती है। प्रथम तो प्रतिस्थापन प्रभाव है जिसके अतर्गत एक साधन (श्रम) की कीमत कम होने पर दूसरे साधन (पूजी) की मात्रा मे कमी करके भी फर्म उत्पादन के स्तर को बनाए रखती है। चित्र 18 3 के पैनल (a) मे A से B तक की स्थिति इसी परिवर्तन को व्यक्त करती है। द्वितीय स्थिति वह हो सकती है जिसमे फर्म पजी की मात्रा वही रखत हुए श्रम की अधिक माला प्रयुक्त करती है क्योकि श्रम अपेक्षाकृत सस्ता हो गया है। तृतीय स्थिति वह हो सकती है जिसमे फर्म श्रम की मजदूरी दर मे कमी होने पर पूजी व श्रम दोनो की अधिक मात्रा का प्रयोग करके अधिक उत्पादन करती है। यह स्थिति A से हटकर C तक आने की है। (चित्र 18 3) । श्रम का उपयोग तृतीय स्थिति मे अधिकतम होगा जबकि इसके प्रयोग मे न्यूनतम वृद्धि उस दशा मे होगी जब हम केवल प्रतिस्थापन प्रभाव (A से B तक) की विवेचना करते हो। परन्तु VMP प्रभाव के अतर्गत फर्म पूजी की मात्रा यथावत रखकर श्रम की अधिक मात्रा प्रयुक्त करती है। श्रम की मात्रा मे यह वृद्धि प्रथम व तृतीय स्थितियों की तुलना में मध्यवर्ती होगी। चित्र 18 4 मे हमने श्रम के तीन माग वक्र स्तुत किए हैं।
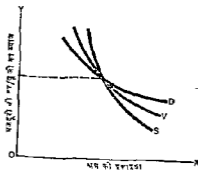
चित्र 18 4 श्रम की माग के तीन वक्र

चित्र 18 4 मे माग वक्र S केवल प्रतिस्थापन प्रभाव के अतर्गत श्रम की माग को व्यक्त करता है जबकि D वक्र यह बतलाता है कि मजदूरी व ब्याज के अनुपात मे परिवतन होने पर श्रम की माग मे कितना परिवर्तन होगा। माग वक्र V यह बतलाता है कि मजदूरी-ब्याज अनुपात मे कमी होने पर पूजी की मात्रा यथावत् रहते हुए श्रम की माग मे मध्यवर्ती वृद्धि ही हो सकेगी। जैसाकि चित्र से स्पष्ट है, श्रम की मात्रा में वृद्धि होने के साथ ही पूजी की भी अधिक मात्रा प्रयुक्त किए जाने पर उत्पादन मे भी वृद्धि होती है जिसे हिक्स ने पैमाना-प्रभाव (scale effect) की सज्ञा दी है।

मजदूरी की दर मे कमी होने पर अधिकतम स्तर प्रभाव (maximizing effect) वह होता है जिसके अनुसार श्रम की मजदूरी दर कम होने पर फर्म का लागत फलन नीचे की ओर विवर्तित हो जाता है। जब सीमान्त लागत वक्र नीचे की ओर विवर्तित होता है तो अधिकतम लाभ प्रदान करने वाला उत्पादन का स्तर बढ जाता है। वस्तु की कीमत वही रहने पर भी अब लागत वक्र मे नीचे की ओर विवर्तन होने पर फर्म पूर्वापेक्षा अधिक उत्पादन करके अधिकतम लाभ अर्जित करती है।

आगम प्रभाव (Revenue effect) मजदूरी की दर मे कमी होने पर जब प्रत्येक फर्म अपेक्षाकृत अधिक श्रम व पूजी का प्रयोग करके वस्तु का अधिक उत्पादन करती है तो इसके फलस्वरूप वस्तु के बाजार मे पूर्ति बढ जाने के कारण वस्तु की कीमत (P_y) मे कमी हो जाती है। ऐसी दशा मे सीमांत उत्पादन मूल्य मे होने वाला *विवर्तन वस्तुत उतना नहीं होगा जितना कि वस्तु की कीमत यथावत् रहने पर* होता।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि एक साधन (श्रम) के ही परिवर्तनशील रहने की दशा मे उस साधन के सीमांत उत्पादन मूल्य वक्र (VMP_L) को साधन के माग वक्र की सज्ञा दी जा सकती है। इसके विपरीत, यदि दो या अधिक साधनो मे पूरकता का सबध हो तथा दोनो ही साधन परिवर्तनशील हो तो साधन की माग का निर्धारण चार घटकों द्वारा होगा (i) सहयोगी साधनो की मात्रा, (ii) वस्तु की कीमत, (iii) साधन के प्रयोग का स्तर (साधन) की कीमत एव प्रयोज्य मात्रा मे विपरीत सबध होता है, तथा (iv) टैक्नोलॉजी। यदि श्रम की बचत करने वाली टैक्नोलॉजी का प्रयोग प्रारभ कर दिया जाए तो मजदूरी की दर वही रहने पर भी इसकी माग कम हो जाएगी।[8]

साधन के बाजार माग वक्र का निरूपण

(Derivation of Market Demand Curve for a Factor)

किसी साधन की बाजार माग का निरूपण ठीक उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार कि हम वस्तु की बाजार माग का निरूपण करते हैं। तथापि दोनो माग वक्रो मे काफी अतर है। स्टिग्लर के अनुसार जब श्रम की मजदूरी-दर कम होने पर प्रत्येक फर्म श्रम तथा पूजी का अधिक मात्रा मे प्रयोग करती है तो बाजार की वस्तु की पूर्ति बढ जाती है, तथा इसके फलस्वरूप वस्तु की बाजार-कीमत मे कमी हो जाती है। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, इसके फलस्वरूप श्रम की माग मे अपेक्षा से

* $VMP_L = P_y \, MP_L$। यदि पूजी व श्रम दोनो की मात्रा में वृद्धि होने पर P_y वही रहे तो VMP_L वक्र में विवर्तन हो जाएगा। परतु यदि P_y में कमी हो जाए ($P_{y_1} < P_y$) तो MP_L में वृद्धि होने पर भी VMP_L में अधिक विवर्तन नहीं होगा।

8 Stigler, op cit., p 189

कम वृद्धि होती है। अन्य शब्दो मे, श्रम की मांग ऐसी दशा में अपेक्षाकृत कम लोचदार होती है।[9]
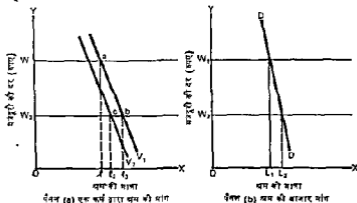
चित्र 18 5 श्रम की बाजार मांग का निरूपण

चित्र 18 5 के पैनल (a) मे बतलाया गया है कि मजदूरी की दर OW_1 से गिरकर OW_2 होने पर प्रत्येक फर्म श्रम के उपयोग की इष्टतम स्थिति a से हटकर b मे आती है क्योंकि मजदूरी का नया स्तर श्रम के सीमांत उत्पादन मूल्य (VMP) के समान इसी स्थिति मे हो सकता है। स्पष्ट है कि फर्म मूल सीमांत उत्पादन मूल्य वक्र V_1 पर ही एक साम्य स्थिति को छोडकर दूसरी साम्य स्थिति मे पहुचती है तथा श्रम का उपयोग Ol_1 से बढा कर Ol_2 करना चाहेगी। परतु श्रम (तथा पूजी) की अधिक मात्रा का प्रयोग करने पर जब इस फर्म द्वारा ही नही, अपितु बाजार मे विद्यमान अन्य फर्मों द्वारा भी अधिक उत्पादन किया जाता है तो बाजार कीमत मे कमी आ जाएगी तथा फर्म का VMP वक्र विवर्तित होकर V_2 की स्थिति मे आ जाएगा। इस VMP वक्र पर नई मजदूरी दर OW_2 पर फर्म Ol_3 मात्रा मे ही श्रम का प्रयोग करना चाहेगी। यदि VMP वक्र विवर्तित नही होता तो फर्म श्रम की Ol_2 इकाइयो का ही प्रयोग करती। परतु फर्म ने श्रम का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत कम बढाया और इसी कारण पैनल (b) मे श्रम की बाजार माग मजदूरी मे पर्याप्त कमी होने के बावजूद OL_1 से बढकर OL_2 तक ही पहुच पाती है।

18 4 व्युत्पन्न माग की अवधारणा
(The Concept of Derived Demand)

इस अध्याय के प्रारभ मे यह बतलाया गया था कि उत्पादन के साधनो की

9 विस्तृत विवरण हेतु देखें—Ferguson, op cit, pp 369 370
10 देखिए Milton Friedman, 'Price Theory Provisional Text (Revised Edition, 1967)' Chapter 7

माग एव वस्तुओ की माग के बीच एक मूलभूत अतर यह है कि वस्तुओ की माग प्रत्यक्षत उपभोक्ताओं की आवश्यकताओ को सतुष्ट करने मे सक्षम होने के कारण अतिम माग कहलाती है जबकि किसी साधन की आवश्यकता अतिम माग न होकर उस वस्तु की माग पर निर्भर करती है जिसके उत्पादन हेतु इसे (साधनो को) प्रयुक्त किया जाता है।

फ्रीडमैन के मतानुसार किसी भी साधन का माग वक्र (मान लीजिए श्रम का माग वक्र) दो फलनों से निरूपित किया जाता है। ये फलन हैं (i) अतिम वस्तु का माग फलन, तथा (ii) अन्य सहयोगी साधन या साधनो का पूर्ति फलन। परतु श्रम की माग का निरूपण (व्युत्पत्ति) करते समय यह मान्यता लेना आवश्यक है कि अतिम वस्तु, *श्रम तथा अन्य साधनो (आदाओ) के मध्य एक निर्दिष्ट अनुपात* विद्यमान रहता है। यदि इन तीनो की मात्राओ को क्षैतिज अक्ष पर, तथा कीमत को शीर्ष अक्ष पर मापा जाए तो अतिम वस्तु के माग फलन तथा अन्य साधनो के पूर्ति फलन के आधार पर श्रम के माग फलन की व्युत्पत्ति करना सभव है।

फ्रीडमैन ने अतिम वस्तु के रूप मे चाकू की माग, तथा सहयोगी साधन के रूप मे ब्लेड को लेते हुए चाकू के हैंडल की माग को निरूपित करने का यत्न किया है। चित्र 18 6 मे हमने चाकू के माग वक्र को DD_K के रूप मे एव ब्लेड के पूर्ति वक्र को
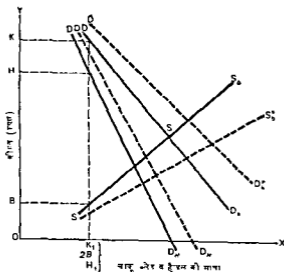
चित्र 18 6 हैंडलों की माग की व्युत्पत्ति

SS_b के रूप मे लेते हुए हैंडल के माग की व्युत्पत्ति की है। जैसा कि चित्र 18 6 के क्षैतिज अक्ष पर अकित है, प्रस्तुत उदाहरण मे चाकू, ब्लेड व हैंडल के बीच 1 2 · 1 का अनुपात लिया गया है।

चाकुओं तथा इनकी मात्रा की अनुरूपी ब्लेड तथा हैंडलों की मात्राओं को देखते हुए हम हैंडलों की माग कीमत (demand price) को ज्ञात कर सकते हैं। इसके लिए चाकू की कीमत मे से ब्लेड की निर्दिष्ट कीमत को घटा देते हैं। उदाहरण के लिए OK_1 चाकुओं की माग कीमत OK_1 रुपए है जबकि इस मात्रा की अनुरूपी ब्लेड के एक जोड़े की कीमत OB_1 रुपए है। इसलिए हैंडलों की OH_1 इकाई (माग) हेतु कीमत OH_1 $(=OK_1-OB_1)$ होगी। कुल मिलाकर चाकू के माग वक्र (DD_K) तथा ब्लेड के पूर्ति वक्र (SS_b) का शीर्ष अतर लेकर हम हैंडल की विभिन्न मात्राओं की अनुरूपी कीमतें ज्ञात कर सकते हैं। S बिंदु पर चाकू की माग कीमत तथा ब्लेड के एक जोड़े की कीमत मे पूर्ण समानता है अत यहां जो भी मात्रा हैंडल की खरीदी जाएगी उसकी कीमत इस स्तर पर शून्य होनी चाहिए। इस प्रकार हम हैंडल का माग वक्र (DD_H) ज्ञात कर सकते हैं।

हैंडल की माग चित्र मे प्रस्तुत वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार या कम लोचदार होगी यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अतिम वस्तु (चाकू) की माग अथवा/तथा ब्लेड की पूर्ति अधिक लोचदार है या नहीं। चित्र 18 6 के अनुसार यदि चाकू की माग अधिक लोचदार (DD'_K के अनुरूप) हो जाए अथवा ब्लेड की पूर्ति अधिक लोचदार (SS_b के अनुरूप) हो जाए तो हैंडल की माग भी अधिक लोचदार (DD_H) हो जाएगी। हमने इस अध्याय मे आगे चलकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि व्युत्पन्न मांग की लोच (elasticity of derived demand) किन घटकों से प्रभावित होती है।

18 5 उत्पादन के साधनों की पूर्ति
(Supply of Factors of Production)

व्यष्टिगत स्तर पर प्रत्येक साधन के स्वामी को यह निर्णय लेना होता है कि इस साधन को किस क्षेत्र मे प्रयुक्त किया जाए। यह निर्णय इस बात पर भी निर्भर करता है कि उस व्यक्ति के अधिकार मे साधन की कितनी मात्रा विद्यमान है। इसके अतिरिक्त साधन के क्रेताओं एव विभिन्न प्रयोगों के प्रति उसके दृष्टिकोण पर भी यह बात निर्भर करती है कि उपलब्ध साधन का आवटन किस प्रकार किया जाएगा। श्रम पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है क्योंकि निर्दिष्ट मजदूरी दर पर श्रम की कितनी मात्रा किस प्रयोग अथवा किस नियोक्ता को अर्पित की जाएगी यह बहुत कुछ उस श्रमिक की व्यक्तिगत प्राथमिकताओं पर निर्भर करता है। सक्षेप मे, साधन के स्वामी के दृष्टिकोण एव साधन की कीमत दोनों ही का साधन की पूर्ति पर प्रभाव पडता है। सुविधा के लिए हम यह मान सकते हैं कि स्वामी का दृष्टिकोण वस्तु पर एव निष्पक्ष है, तथा साधन की पूर्ति पर केवल साधन-कीमत का ही प्रभाव पडता है। यदि हमे इस पूर्ति को प्रभावित करने वाली अन्य बातों का ज्ञान हो तो हम सरलतापूर्वक साधन की बाजार पूर्ति (market supply of a factor) का भी पता लगा सकते हैं, क्योंकि प्रतियोगी परिस्थितियों मे बाजार पूर्ति का निरूपण व्यष्टिगत स्तर पर विद्यमान

पूर्ति वक्रों के क्षैतिज योग द्वारा ही किया जाता है ।

साधन की कीमत में वृद्धि होने पर सामान्य तौर पर यह अपेक्षा की जाती है कि साधन का स्वामी इसकी अधिक मात्रा की पूर्ति करेगा । परन्तु एक सीमा के बाद व्यष्टिगत स्तर पर साधन का पूर्ति वक्र शीर्ष-रूप (vertical shape) धारण कर लेता है क्योंकि उसकी यही अधिकतम मात्रा उस व्यक्ति या परिवार के पास विद्यमान है। जैसा कि चित्र 18.7 के पैनल (a) में बतलाया गया है, इस सीमा के आगे साधन की कीमत बढ़ने पर भी इसकी पूर्ति बढ़ाना सभव नहीं होता ।

पैनल (a) व्यष्टिगत स्तर पर श्रम की पूर्ति पैनल (b) व्यष्टिगत स्तर पर श्रम की पूर्ति
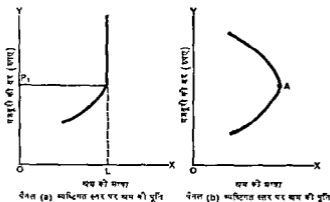
चित्र 18.7 एक परिवार या व्यक्ति द्वारा साधन की पूर्ति

चित्र 18.7 के पैनल (b) में भी श्रम का पूर्ति वक्र प्रस्तुत किया गया है। परन्तु इस पूर्ति वक्र के निरूपण में यह मान्यता ली गई है कि श्रमिक एक सीमा (A) तक तो मजदूरी की दर में वृद्धि के साथ-साथ श्रम की पूर्ति को बढ़ाता है। परन्तु इसके बाद भी यदि मजदूरी में वृद्धि का क्रम जारी रहता है तो उसके लिए यह सभव नहीं होता कि वह श्रम की पूर्ति में वृद्धि कर दे। इसके विपरीत वह उत्तरोत्तर कम घंटों तक कार्य करना चाहेगा । यही कारण है कि A आगे श्रम का पूर्ति वक्र पीछे की ओर मुड़ जाता है। इसे पीछे की ओर मुड़ता हुआ श्रम का पूर्ति वक्र (backward bending supply curve of labour) कहा जाता जाता है। बहुधा एक सीमा के पश्चात् मजदूरी की दर में वृद्धि होने पर भी श्रम की पूर्ति में कमी होती जाती है क्योंकि श्रमिक परिवार आय के एक स्तर पर पहुंचने के पश्चात् सतोष की स्थिति में पहुंच जाता है तथा इस कारण ऊंची मजदूरी पर भी कम समय तक कार्य करने लगता है। यही नहीं, एक सीमा तक कार्य करने के पश्चात् श्रमिक द्वारा अनुभव की जाने वाली थकान में प्रगतिशील दर से वृद्धि होती है, और इसलिए वह मजदूरी के ऊंचे स्तर पर भी कम समय कार्य करना चाहता है।

यद्यपि व्यष्टिगत स्तर पर श्रम का पूर्ति वक्र एक सीमा के पश्चात् सीधा हो सकता है अथवा पीछे की ओर मुड़ सकता है तथापि समष्टि स्तर पर श्रम का बाजार पूर्ति वक्र धनात्मक ढलानयुक्त ही होगा। कुछ ऐसे श्रमिक भी होते हैं जो मजदूरी का स्तर ऊंचा होने पर ही बाजार में प्रवेश करते हैं। इसी कारण मजदूरी की दर में जैसे जैसे वृद्धि होती है नए श्रमिकों के प्रवेश के कारण श्रम की बाजार-पूर्ति बढ़ती जाती है।

अनधिमान वक्रों की सहायता से श्रम का पूर्ति वक्र निकालना (Indifference Curve Analysis of Labour Supply)

चित्र 18.7 के पैनल (b) में प्रस्तुत श्रम के पूर्ति वक्र का प्रस्तुतीकरण अनधिमान वक्रों की सहायता से भी किया जा सकता है। अब हम शीर्ष अक्ष पर एक श्रमिक की दैनिक आय को मापते हैं जबकि श्रम की दैनिक पूर्ति (घंटों में) को क्षैतिज अक्ष पर मापा जाता है।
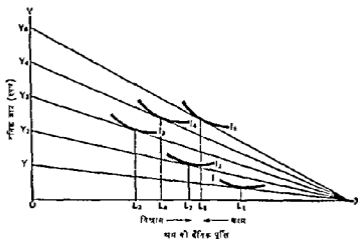
चित्र 18.8 श्रम की पूर्ति का अनधिमान वक्रों द्वारा निरूपण

चित्र 18.8 में प्रस्तुत प्रत्येक अनधिमान वक्र संतुष्टि के निर्दिष्ट स्तर को व्यक्त करता है। तदनुसार जैसे जैसे श्रमिक ऊंचे अनधिमान वक्र पर पहुंचता है, उसे उत्तरोत्तर अधिक संतुष्टि प्राप्त होती जाती है। अनधिमान वक्र का ढलान वस्तुतः आय तथा विश्राम के मध्य सीमांत प्रतिस्थापन की दर को बतलाता है। जैसाकि स्पष्ट है श्रमिक या उसके परिवार को विश्राम की अधिक मात्रा प्राप्त करने हेतु आय के एक अंश का परित्याग करना होता है। अनधिमान वक्रों की उन्नतोदरता (convexity) यह बतलाती है कि विश्राम व आय के मध्य सीमांत प्रतिस्थापन दर म

उत्तरोत्तर कमी होती जाती है, अर्थात् एक अतिरिक्त घंटे का विश्राम प्राप्त करने हेतु श्रमिक अपनी आय में उत्तरोत्तर कम कटौती चाहेगा।

आय रेखाएं—OY_1 से OY_5 तक—उन विभिन्न अधिकतम आय-स्तरों को दर्शाती हैं जिन्हें कोई श्रमिक 24 घंटे काम करके प्राप्त कर सकता है। जैसे जैसे मजदूरी की दर में वृद्धि होती है, आय रेखाओं का ढलान $\left(\frac{OY_1}{OT}, \frac{OY_2}{OT}, \frac{OY_3}{OT}, \frac{OY_4}{OT}\right)$ बढ़ता जाता है।

श्रमिक की साम्य स्थिति वहां मानी जाती है जहां उसके अनधिमान वक्र का ढलान मजदूरी दर या आय रेखा के ढलान के समान हो। प्रारंभ में श्रमिक $\frac{OY_1}{OT}$ मजदूरी दर पर TL_1 घंटे कार्य करता था। जैसे-जैसे मजदूरी दर में वृद्धि होती है वह एक सीमा तक श्रम की पूर्ति को बढ़ाता जाता है $\left(\frac{OY_1}{OT} < \frac{OY_2}{OT}\right.$ अतः $TL_1 < TL_2$, इसी प्रकार $\frac{OY_2}{OT} < \frac{OY_3}{OT}$, अतः $\left.TL_2 < TL_3\right)$। यह सीमा TL_3 घंटे श्रम की है। परंतु इससे आगे भी मजदूरी की दर बढ़ाने पर वह श्रम की पूर्ति में कमी करता जाता है $\left(\frac{OY_3}{OT} < \frac{OY_4}{OT}\right.$, परंतु $TL_3 > TL_4$, इसी प्रकार $\frac{OY_4}{OT} < \frac{OY_5}{OT}$, परंतु $\left.TL_4 > TL_5\right)$। इस प्रकार OL_3 घंटे कार्य करने के पश्चात् मजदूरी की दर में वृद्धि होने पर भी श्रमिक की अधिक कार्य करने की इच्छा जागृत नहीं हो पाती, तथा वह श्रम की पूर्ति में कमी करता जाता है।

श्रम की बाजार-पूर्ति (Market Supply of Labour)

जैसाकि ऊपर बतलाया जा चुका है, व्यष्टिगत स्तर पर श्रम का पूर्ति वक्र मजदूरी में वृद्धि के साथ साथ एक बिंदु के पश्चात शीर्ष रूप ले सकता है अथवा पीछे की ओर भी मुड़ सकता है, तथापि श्रम का बाजार पूर्ति वक्र धनात्मक ही होता है क्योंकि मजदूरी की दर में वृद्धि के साथ साथ नए श्रमिकों के प्रवेश के कारण श्रम की कुल पूर्ति में वृद्धि होती जाती है। अस्तु, केवल ऊंची मजदूरी पर ही कार्य करने के इच्छुक श्रमिकों के कारण मजदूरी की दर एवं श्रम की पूर्ति में धनात्मक सह संबंध होता है।

द्वितीय, श्रम की बाजार पूर्ति पर अंतर-उद्योग तथा अंतर-फर्म (inter-industry and inter-firm) अंतरण का भी प्रभाव पड़ता है। श्रम की इस गतिशीलता के कारण श्रम की पूर्ति में जो अनम्यताएं व्यष्टिगत स्तर पर दिखाई देती हैं, वे बाजार के स्तर पर धीरे धीरे समाप्त हो जाती हैं। इसीलिए दीर्घकाल में तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में श्रम की बाजार पूर्ति में मजदूरी की दर के अनुरूप ही वृद्धि या कमी होती है।

इस प्रकार, श्रम की बाजार पूर्ति का मजदूरी की दर के साथ धनात्मक सह-सबंध होता है। श्रम की साम्य मात्रा एवं साम्य मजदूरी का निर्धारण उस स्तर पर होना है जहा इसकी बाजार माग व बाजार पूर्ति में समानता हो, यानी श्रम का बाजार पूर्ति वक्र उसके बाजार माग वक्र को काटता हो।

तथापि पाठकों को यह स्मरण दिलाना उपयुक्त होगा कि एक फर्म के लिए श्रम का पूर्ति वक्र क्षैतिज होगा क्योंकि प्रतियोगी परिस्थितियों में बाह्य रूप से निर्धारित मजदूरी दर (w) पर फर्म इच्छानुसार श्रम की मात्रा प्राप्त कर सकती है। दूसरी ओर, यदि केवल श्रम ही एकमात्र परिवर्तनशील साधन है तो इसका सीमात उत्पादन मूल्य वक्र (VMP_2) व्यष्टिगत स्तर पर श्रम का माग वक्र माना जाएगा। जैसाकि ऊपर बतलाया जा चुका है, एक फर्म श्रम के उपयोग से अधिकतम लाभ उस स्थिति मे अर्जित करती है जहा मजदूरी की दर श्रम के सीमात उत्पादन मूल्य के समान हो ($VMP_L = w$), अर्थात् जहा व्यष्टिगत स्तर पर क्रमश श्रम की पूर्ति व माग में समानता हो। परतु यह सब केवल प्रतियोगी परिस्थितियों में ही सभव है। जैसाकि हम अगले अध्याय मे पढ़ेंगे, यदि श्रम के बाजार म तथा/अथवा वस्तु के बाजार मे एकाधिकार हो तो श्रम के इष्टतम प्रयोग की शर्तें भी बदल जाएगी।

18 6 उत्पाद-समाप्ति प्रमेय

(Product Exhaustible Theorem)

हम अध्याय के इस अनुभाग मे पुन क्लार्क एव विक्सटीड के उत्पाद-समाप्ति-प्रमेय का विश्लेषण करेंगे। ऊपर यह बतलाया गया था कि 19वी शताब्दी के अतिम चतुर्थांश मे विक्सटीड ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि यदि उत्पादन के प्रत्येक साधन को उसके सीमान उत्पादन के समान पुरस्कृत किया जाए तो कुल उत्पाद समाप्त हो जाता है। परतु विक्सटीड के इस कथन की पुष्टि 1894 म ए० डब्ल्यू० फ्लक्स ने की। फ्लक्स ने यूलर प्रमेय का प्रयोग करके विक्सटीड द्वारा प्रस्तुत धारणा को प्रमाणित किया। फ्लक्स ने स्पष्ट किया कि केवल रैखिक-समरूपी उत्पादन फलन (linearly homogeneous production function), अर्थात् केवल पैमाने के समानुपात प्रतिफल के अतर्गत ही कुल उत्पाद की समाप्ति सभव है। अध्याय 7 के अनुभाग 7 4 मे हमने देखा था कि एक रैखिक समरूपी उत्पादन फलन के अन्तर्गत उत्पादन के (सभी) साधनों को जिस अनुपात मे बढ़ाया या घटाया जाता है ठीक उसी अनुपात मे उत्पादन की मात्रा में भी वृद्धि या कमी होती है। उदाहरण के तौर पर हम एक उत्पादन फलन लेते हैं—

$$Y = f(X_1, X_2) \quad \ldots(18\ 18)$$

इसमे Y उत्पादन की मात्रा है तथा X_1 व X_2 क्रमश. दो साधन हैं। यदि साधनों की मात्रा को समान अनुपात λ से बढ़ा दिया जाए तो इस फलन की प्रकृति के अनुसार Y मे भी उसी अनुपात मे परिवर्तन होना चाहिए।

$$\lambda Y = f(\lambda X_1, \lambda X_2) \quad \ldots(18\ 19)$$

यदि साधनों में होने वाली वृद्धि के अनुपात λ को $\frac{1}{X_1}$ के समान मान लें तो समीकरण (18 19) को एक नए रूप में भी लिखा जा सकता है।

$$\frac{Y}{X_1} = f\left(1, \frac{X_2}{X_1}\right)$$

$$\therefore Y = X_1 f\left(1, \frac{X_2}{X_1}\right) \qquad ..(18.20)$$

यूलर प्रमेय प्राप्त करने हेतु अब समीकरण (18.19) को λ के संदर्भ में अवकलज प्राप्त कीजिए—

$$Y = \frac{\partial f}{\partial(\lambda X_1)} \cdot \frac{d(\lambda X_1)}{d\lambda} + \frac{\partial f}{\partial(\lambda X_2)} \cdot \frac{d(\lambda X_2)}{\partial\lambda} \qquad ...(18.21)$$

परन्तु सीमांत तथा औसत उत्पादन में (रैखिक समरूपी उत्पादन फलन के अंतर्गत) समानता होती है, अतः

$$\frac{\partial f}{\partial(\lambda X_1)} = \frac{\partial(\lambda Y)}{\lambda(\lambda X_1)} = \frac{\partial Y}{\partial X_1}, \ldots$$

अतः

$$Y = \frac{\partial Y}{\partial X_1} \cdot x_1 + \frac{\partial Y}{\partial X_2} \quad x_2 \qquad ...(18\ 22)$$

समीकरण (18.22) ही यूलर प्रमेय है तथा इससे यह स्पष्ट होता है कि *किसी रैखिक-समरूपी उत्पादन फलन के अंतर्गत साधनों के सीमांत उत्पादनों एवं इनकी* मात्राओं के गुणन फल का योग कुल उत्पादन के समान होता है।*

* कॉब डग्लस उत्पादन फलन में श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादन निम्न प्रकार से ज्ञात किए जा सकते हैं।

$$Y = AL^{\alpha}K^{1-\alpha}$$

श्रम का सीमांत उत्पादन $\Big\}\cdot \frac{\partial Y}{\partial L} \alpha AL^{\alpha-1}K^{1-\alpha}$

$$= \alpha A\left(\frac{K}{L}\right)^{1-\alpha} \qquad ...(18\ 23)$$

इसी प्रकार पूंजी का सीमांत उत्पादन $\Big\} : \frac{\partial Y}{\partial K} = (1-\alpha)AL^{\alpha}K^{-\alpha}$

$$= (1-\alpha)A\left(\frac{K}{L}\right)^{-\alpha} \qquad ...(18\ 24)$$

यदि समीकरण (18.22) में यानी यूलर प्रमेय में इन मूल्यों को रख दिया जाए तो निम्न स्थिति प्राप्त होगी—

$$Y = \left[\alpha A\left(\frac{K}{L}\right)^{1-\alpha}\right] L + \left[(1-\alpha)A\left(\frac{K}{L}\right)^{-\alpha}\right] \cdot K$$

परन्तु जैसा कि हम जानते हैं, कॉब डग्लस उत्पादन फलन भी रैखिक समरूपी फलन है, और इसलिए $\alpha + (1-\alpha) = 1$ है। कुल उत्पादन अथवा Y तभी समाप्त होगा जब फर्म पैमाने के समतामान प्रतिफल के अंतर्गत कार्य करती हो।

जे० बी० क्लार्क तथा विकसटीड के मतानुसार यदि प्रत्येक साधन को दिया जाने वाला पुरस्कार या साधन की कीमत उसके सीमांत उत्पादन के समान हो तो फर्म समूचे उत्पादन का वितरण साधनों के स्वामियों के मध्य कर देती है। अन्य शब्दों में ऐसी स्थिति में न तो फर्म के पास कुछ अधिशेष रहता है और न ही साधनों का भुगतान प्राप्त उत्पादन से अधिक हो पाता है।

मान लीजिए, कुल उत्पादन को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है—

$$Y = MP_L \cdot L + MP_K \cdot K$$

परन्तु चूंकि फर्म पैमाने के स्थिर मान प्रतिफलों के अंतर्गत कार्य कर रही है (जहां $MP_L = AP_L$ है तथा $MP_K = AP_K$ है) अत. कुल प्राप्त आगम या उत्पादन को निम्न रूप में भी लिख सकते हैं—

$$Y = AP_L \cdot L + AP_K \cdot K$$

यदि श्रम की मजदूरी (w) व पूंजी के ब्याज (r) की दरें ज्ञात हों तो कुल भुगतान की राशि Y' इस प्रकार होगी—

$$Y' = w.L + r.K$$

इस प्रकार $AP_L = MP_L = w$ तथा $AP_K = MP_K = r$ की फर्म को प्राप्त कुल उत्पादन (Y) तथा साधनों के मध्य किए गए भुगतान (Y') में पूर्ण समानता होगी।

इसके विपरीत यदि फर्म पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के अंतर्गत कार्य कर रहा हो तथा साधन को सीमांत उत्पादन के अनुसार ही भुगतान करती हो तो निम्न स्थिति उत्पन्न होगी।

वर्द्धमान प्रतिफल के अंतर्गत औसत उत्पादन बढ़ता है तथा सीमांत उत्पादन उससे भी अधिक होता है (यानी $AP_L < MP_L$; $AP_K < MP_K$)। अस्तु, कुल प्राप्त उत्पादन

$$Y = AP_L \cdot L + AP_K.K \text{ है;}$$

जबकि कुल भुगतान

$$Y' = w.L + r.K \text{ होगा}$$

(जहां $w = MP_L$; $r = MP_K$ है)

ऐसी स्थिति में फर्म को घाटा होगा क्योंकि साधनों को किया जाने वाला भुगतान प्राप्त उत्पादन से अधिक है ($Y' > Y$)

यदि फर्म को पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (diminishing returns to scale) के अंतर्गत उत्पादन प्राप्त होता हो तो प्राप्त उत्पादन Y की अपेक्षा साधनों को किया जाने वाला भुगतान कम होगा ($Y' < Y$)।

$$Y = AP_L \cdot L + AP_K \cdot K$$

परंतु ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत $MP_L < AP_L$ एवं $MP_K < AP_K$ की स्थिति होती है तथापि $MP_L = w$ एवं $MP_K = r$ है। अस्तु—

$$Y' = w.L + r.K > Y = AP_L.L + AP_L + AP_K.K$$

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कुल उत्पादन एवं कुल भुगतान में समानता तभी होगी जबकि फर्म पैमाने के स्थिरमान प्रतिफल के अंतर्गत साधनों का प्रयोग करती हो। इसी दशा में साधनों को सीमांत उत्पादन के अनुरूप पुरस्कृत करने पर कुल उत्पादन समाप्त होगा। इसके विपरीत पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के अंतर्गत फर्म घाटे में रहती है ($Y' > Y$) जबकि पैमाने के ह्रासमान के अंतर्गत उसे बचत होती है ($Y' < Y$)।

18 7 प्रतिस्थापन लोच

(Elasticity of Substitution)

अब तक हम किसी साधन की कीमत में परिवर्तन होने पर उसकी माग पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कर रहे थे। व्यवहार में यह भी संभव है कि X_1 की कीमत में परिवर्तन से X_2 की माग पर भी प्रभाव पड़े। यह स्थिति उपभोग के अंतर्गत पढ़ी गई प्रतिस्थापन लोच के अनुरूप प्रतीत होती है। पीछे हमने यह पढ़ा था कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा पैमाने के स्थिरमान प्रतिफल के संदर्भ में प्रत्येक साधन को उसके सीमांत उत्पादन मूल्य के अनुरूप पुरस्कृत किया जाता है। परंतु वास्तविकता तो यह है कि साधन का सीमांत उत्पादन स्वयं भी साधनों के संयोग द्वारा प्रभावित होता है।

मान लीजिए कि फर्म के उत्पादन फलन में X_1 एवं X_2, ये दो ही साधन शामिल किए गए हैं। ऐसी स्थिति में यदि क्षैतिज अक्ष पर दोनों के अनुपात (X_2/X_1) तथा शीर्ष अक्ष पर इनकी कीमतों के अनुपातों को लिया जाए तो हमें एक वक्र प्राप्त हो सकता है जो साधनों की सापेक्ष (relative) कीमतों एवं इनकी सापेक्ष (relative) मात्राओं का संबंध व्यक्त करता है। इस वक्र की लोच को ही प्रतिस्थापन लोच (elasticity of substitution) की संज्ञा दी जाती है। वस्तुतः इस वक्र के ढलान से हम यह जान सकते हैं कि साधनों की सापेक्ष कीमत में परिवर्तन का इनके अनुपात पर क्या प्रभाव होता है। प्रतिस्थापन लोच, अथवा σ को निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है—

$$\sigma = \frac{d\left(\frac{X_2}{X_1}\right)}{d\left(\frac{Px_1}{Px_2}\right)} \cdot \frac{\frac{Px_1}{Px_2}}{\frac{X_2}{X_1}} \qquad (18\ 25)$$

समीकरण (18 25) से स्पष्ट होता है, कि साधनों की कीमतों के अनुपात में परिवर्तन होने पर इनके अनुपात में जो परिवर्तन होता है, उसके गुणांक को ही प्रतिस्थापन लोच की संज्ञा दी जाती है। बहुधा प्रतिस्थापन लोच धनात्मक होती है जिसका अभिप्राय यह होता है कि श्रम (X_1) की मजदूरी दर में वृद्धि होने पर,

12 See J R Hicks op cit, pp 286-92 and 382 84 एवं RGD Allen, 'Mathematical Analysis for Economists (1962), pp 341-45

(जबकि ब्याज की दर वही रहती हो) फर्म श्रम के प्रयोग में कमी करके पूंजी (X_2) के प्रयोग में वृद्धि करती है $d\left(\frac{Px_1}{Px_2}\right) > 0$ तथा $d\left(\frac{X_2}{L}\right) > 0$ ।

प्रतिस्थापन लोच (σ) का मूल्य शून्य तथा अनंत के बीच कहीं भी हो सकता है ($0 \leqslant \sigma < \infty$) । यदि $\sigma = 0$ हो तो इसका केवल यही अर्थ होगा कि X_2 व X_1 के के मध्य कोई भी संबंध नहीं है, तथा X_1 की कीमत (P_{X_1}) में कितना ही परिवर्तन क्यों न हो, X_2/X_1 का मूल्य, यानी X_2 व X_1 का अनुपात वही रहेगा । यह वह स्थिति है जिसमें दोनों साधन पूर्णतया पूरक हैं तथा P_{X_1} में वृद्धि होने पर जितनी कमी X_1 की मात्रा में होती है ठीक उतनी ही कमी X_2 की मात्रा में भी हो जाती है ।

कभी-कभी σ का मूल्य ऋणात्मक हो सकता है । इसका अर्थ यह होता है कि Px_2 में कमी होने पर (जबकि Px_2 वही है) फर्म X_1 की तुलना में X_2 का उपयोग अधिक अनुपात में बढ़ा देती है । इसके फलस्वरूप समीकरण (18 25) में प्रस्तुत सूत्र का अंश ऋणात्मक होगा जबकि इसका हर (numerator) धनात्मक होगा और इस प्रकार प्रतिस्थापन लोच ऋणात्मक हो जाएगी । बहुधा यह भी हो सकता है कि X_1 एक हीन साधन हो तथा Px_1 में कमी होने पर X_1 की मात्रा में कमी हो जाए तथा X_2 की मात्रा बढ़ जाए । ऐसी दशा में भी $\sigma < 0$ होगा ।

जब उत्पादन फलन रैखिक एवं समरूपी होता है तो साधनों के अनुपात यथावत् रहने के कारण $\sigma = 1$ ही रहेगा ।[13] मान लीजिए, उत्पादन प्रक्रिया दो साधनों की सहायता से ही संपादित होती है, तथा उत्पादन फलन कॉब डगलस फलन की भांति है । हम पीछे यह पढ़ चुके हैं कि

$$\sigma = \frac{d\left(\frac{K}{L}\right)}{d\left(\frac{w}{r}\right)} \quad \frac{\frac{w}{r}}{\frac{K}{L}}$$

परंतु हम यह भी जानते है कि साम्य स्थिति में $\frac{w}{r} = \frac{MP_L}{MP_K} = MRTS$ की शर्त पूरी होनी जरूरी है । ऊपर वर्णित विवरण में साम्य शर्तें इस प्रकार होती हैं—

$$\frac{w}{r} = \frac{MP_L}{MP_K} = \frac{\alpha A\left(\frac{K}{L}\right)^{1-\alpha}}{(1-\alpha A)\left(\frac{K}{L}\right)^{-\alpha}}$$

$$= \frac{\alpha}{1-\alpha}\left(\frac{K}{L}\right) \qquad (18\ 25)$$

13 C E Ferguson op cit, pp 382 83

यदि पूजी व श्रम का अनुपात k मान लिया जाए तो साम्य की शर्त होगी—

$$\frac{\alpha}{1-\alpha}\ k$$

अब मान लीजिए, सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRTS) यानी $\frac{MP_L}{MP_K} = s$ है।

प्रतिस्थापन लोच के सूत्र को हम अब निम्न रूप में भी लिख सकते हैं—

$$\sigma = \frac{d\left(\frac{K}{L}\right)}{d\left(\frac{w}{r}\right)} \cdot \frac{\frac{w}{r}}{\left(\frac{K}{L}\right)}$$

$$= \frac{dk}{ds} \cdot \frac{s}{k} \qquad .(18\ 26)$$

परतु समीकरण (18 25) के आधार पर हम यह कह सकते हैं—

$$S = \left(\frac{\alpha}{1-\alpha}\right) K \qquad .(18.27)$$

$$\text{तथा}\ \frac{ds}{dK} = \frac{\alpha}{1-\alpha}$$

समीकरण (18 26) को पुन लिखने पर निम्न स्थिति प्राप्त होगी—

$$\sigma = \frac{dk}{ds} \cdot \frac{s}{k}$$

$$= \left(\frac{1-\alpha}{\alpha}\right)\left(\frac{\alpha}{1-\alpha}\right) . k . \frac{1}{k} = 1$$

जैसा कि आगे बतलाया गया है, प्रतिस्थापन लोच या σ के माध्यम से हम कुल उत्पाद मे श्रम व पूजी के सापेक्ष अशो मे होने वाले परिवर्तन को मापते हैं। यदि $\sigma=1$ हो तो श्रम व पूजी का सापेक्ष अश वही रहता है। वस्तुत श्रम व पूजी के अश को निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाता है—

$$Q = w\,L + r\,K \qquad ..(18\ 28)$$

अथवा $\frac{wL}{Q} + \frac{rK}{Q} = 1$ तथा श्रम व पूजी का उत्पादन मे अनुपात इस प्रकार होगा—

$$\frac{w\,L}{r\,k}$$

यदि मजदूरी ब्याज के अनुपात $\left(\frac{w}{r}\right)$ मे वृद्धि होने पर भी पूजी की मात्रा मे आनुपातिक वृद्धि नहीं होती (यानी $\sigma<1$) कुल उत्पादन मे पूजी का अश कम हो जाएगा जबकि श्रम के अश मे वृद्धि होगी। इसके विपरीत, यदि $\sigma>1$ हो तो इसका अर्थ यह होगा कि मजदूरी-ब्याज अनुपात $\left(\frac{w}{r}\right)$ मे होने वाली वृद्धि की अपेक्षा पूजी-

श्रम के अनुपात $\left(\frac{K}{L}\right)$ में अधिक वृद्धि होगी, तथा तदनुसार श्रम का कुल उत्पादन में अंश कम होगा जबकि पूंजी के अंश में वृद्धि हो जाएगी। अंत में यदि $\sigma=1$ हो तो मजदूरी-ब्याज अनुपात एवं पूंजी-श्रम अनुपात में समान वृद्धि या कमी होती है तथा कुल उत्पादन में श्रम व पूंजी का अंश यथावत् रहता है।

समय के प्रभाव को मापना*

समीकरण (18.28) के अनुसार $Q=w.L+r\,K$ लेकर यदि हम इसका राकल अवकलज समय के मान से लें तो निम्न समीकरण प्राप्त होगा—

$$\frac{dQ}{dt}=w.\frac{dL}{dt}+L\,\frac{dw}{dt}+r\,\frac{dK}{dt}+K\,\frac{dr}{dt} \quad \ldots(18.29)$$

सभी को Q से भाग देने तथा दाईं ओर वाली मदों को $\frac{L}{L}$, $\frac{w}{w}$, $\frac{K}{K}$ एवं $\frac{r}{r}$ से गुणा करने पर निम्न स्थिति आएगी—

$$\frac{1}{Q}\cdot\frac{dQ}{dt}=\frac{1}{L}\cdot\frac{w\,L}{Q}\cdot\frac{dL}{dt}+\frac{1}{w}\cdot\frac{w\,L}{Q}\cdot\frac{dw}{dt}+\frac{1}{K}\cdot\frac{r.K}{Q}\cdot\frac{dK}{dt}+\frac{1}{r}\cdot\frac{r.K}{Q}\cdot\frac{dr}{dt} \quad \ldots(18.30)$$

समय-मान पर आधारित अवकलजों को बिंदुओं (dots) के रूप में व्यक्त करके हम समीकरण (18.30) में निम्न रूप में भी लिख सकते हैं—

$$\frac{\dot{Q}}{Q}=\frac{w.L}{Q}\,\frac{\dot{L}}{L}+\frac{w\,L}{Q}\,\frac{\dot{w}}{w}+\frac{r\,K}{Q}\,\frac{\dot{K}}{K}+\frac{r\,K}{Q}\cdot\frac{\dot{r}}{r} \ldots(18.31)$$

यदि w तथा r को क्रमशः श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादन अनुरूपी भुगतान मान लिया जाए तो निम्न स्थिति प्रस्तुत की जा सकती है—

$$\left.\begin{aligned}\frac{w\,L}{Q}&=\frac{L}{Q}\cdot\frac{\partial Q}{\partial L} \quad (1)\\ \frac{r.K}{Q}&=\frac{K}{Q}\cdot\frac{\partial Q}{\partial K} \quad (2)\end{aligned}\right\} \quad \ldots(18.32)$$

समीकरण (18.32) से वस्तुतः हमें क्रमशः श्रम व पूंजी की उत्पादन लोच $\left(\frac{MP_L}{AP_L};\ \frac{MP_K}{AP_K}\right)$ ही प्राप्त होती हैं जो वस्तुतः इन साधनों के कुल उत्पादन में विद्यमान अंश $\left(\frac{w\,L}{Q} \text{ व } \frac{r.K}{Q}\right)$ के समान हैं। एक कॉब डगलस उत्पादन फलन में श्रम की उत्पादन लोच α एवं पूंजी की उत्पादन लोच $1-\alpha$ के रूप में व्यक्त की गई थी। अस्तु, समीकरण (18.32) को कॉब डगलस उत्पादन फलन के संदर्भ में भी लिखा जा सकता है।

* केवल उच्च गणित के विद्यार्थियों के लिए।

$$\left.\begin{aligned} \alpha &= \frac{wL}{Q} = \frac{L}{Q} \cdot \frac{\partial Q}{\partial L} \\ (1-\alpha) &= \frac{rK}{Q} = \frac{K}{Q} \quad \frac{\partial Q}{K} \end{aligned}\right\} \qquad \ldots(18\;33)$$

समीकरण (18 31) को अब पुन लिखा जा सकता है।

$$\frac{Q}{Q} = \alpha\frac{L}{L} = \alpha\frac{w}{w} + (1-\alpha)\;\frac{K}{K}(1-\alpha)\;\frac{\dot{r}}{r} \ldots(18\;34)$$

हम यह जानते हैं कि यूलर प्रमेय के अनुसार

$$Q = \frac{\partial Q}{\partial L}\quad L + \frac{\partial Q}{\partial K}\quad K$$

$$\text{तथा } dQ = \frac{\partial Q}{\partial L}\;\; dL + \frac{\partial Q}{\partial K}\;\; dK$$

अब दोनों ओर dt से भाग देकर तथा दाईं ओर की मदों को $\frac{L}{L}$ व $\frac{K}{K}$ से गुणा कीजिए तथा α व $(1-\alpha)$ के मूल्यों को इस समीकरण में प्रस्थापित कीजिए।

$$\frac{Q}{Q} = \alpha\frac{L}{L} + (1-\alpha)\;\frac{K}{K} \qquad \ldots(18\;35)$$

समीकरण (18 35) से यही निष्कर्ष निकलता है कि उत्पादन की वृद्धि दर वस्तुतः श्रम व पूजी की मात्राओं में होने वाली वृद्धि दरों का भारित औसत है। इनके भार क्रमश α व $(1-\alpha)$ हैं। यदि समीकरण (18.35) को समीकरण (18.31) में से घटाए तो निम्न स्थिति प्राप्त होगी—

$$\alpha\frac{w}{w} + (1-\alpha)\;\frac{r}{r} = 0$$

निष्कर्ष

जैसा कि तालिका (18 1) में बतलाया गया था, प्रतियोगी परिस्थितियों में मजदूरी व ब्याज की दरें क्रमश श्रम व पूजी के सीमान्त उत्पादन मूल्यों के समान होती हैं। अस्तु—

$$w = VMP_L = P_y.\,\frac{\partial Q}{\partial L}\;;\;\; \text{या } \frac{w}{P_y} = \frac{\partial Q}{\partial L}$$

$$\text{तथा } r = VMP_K = P_y.\,\frac{\partial Q}{\partial K}\;;\text{या } \frac{r}{P_y} = \frac{\partial Q}{\partial K}$$

इस आधार पर श्रम व पूजी का कुल उत्पादन में अंश इस प्रकार व्यक्त किया जा सकेगा—

$$\alpha = \;\frac{L}{Q}\cdot\frac{\partial Q}{\partial L} = \frac{wL}{P_y Q} = \frac{\overline{W}}{P_y Q} \qquad \text{(श्रम का अंश)}$$

$$(1-\alpha) = \frac{K}{Q}\;\cdot\;\frac{\partial Q}{\partial K} = \frac{r.K}{P_y Q} = \frac{\overline{R}}{P_y.Q} \qquad \text{(पूजी का अंश)}$$

उपरोक्त समीकरणों में $\overline{W}$ तथा $\overline{R}$ क्रमश कुल मजदूरी एवं कुल ब्याज की राशि के प्रतीक हैं।

चूंकि श्रम व पूंजी को किया जाने वाला भुगतान कुल आगम के समान होता है ($\bar{W}+\bar{R}=P_y\ Q$), इसलिए दोनों साधनों को प्राप्त अंशों में विपरीत संबंध होगा। इसीलिए जब किसी कारण कुल उत्पादन में पूंजी को प्राप्त अंश (अनुपात) बढ़ जाता है तो श्रम को प्राप्त कुल मजदूरी का अनुपात घट जाएगा। इसके विपरीत यदि पूंजी की मात्रा श्रम की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ती हो जबकि मजदूरी की दर व श्रमिकों की संख्या यथावत रहे, तो ब्याज की दर में कमी करनी पड़ेगी।

व्युत्पन्न की माग लोच[14] (Elasticity of Derived Demand)

ऊपर हमने यह स्पष्ट किया था कि प्रत्येक साधन की माग वस्तुत एक निरूपित माग अथवा व्युत्पन्न माग होती है। वस्तु की भांति साधन की माग की लोच का भी इसीलिए अध्ययन किया जाता है। साधन की माग-लोच को हम व्युत्पन्न माग की लोच (elasticity of derived demand) की संज्ञा देते हैं। सामान्य तौर पर व्युत्पन्न माग की लोच के लिए निम्न बातें कही जाती हैं—

(i) वस्तु की माग की लोच (η_{Px}) जितनी अधिक या कम लोचदार होगी साधन की व्युत्पन्न माग लोच भी उतनी ही अधिक या कम लोचदार होगी। चित्र 18.6 में यदि वस्तु की माग का वक्र D_E से हटकर D_E हो जाता है तो साधन का माग वक्र D_H से हटकर D_H हो जाता है।

(ii) सहयोगी साधन या साधनों की पूर्ति की लोच जितनी अधिक या कम होगी, साधन की व्युत्पन्न माग लोच भी उतनी ही अधिक या कम हो जाएगी।

चित्र (18.6) में जब सहयोगी साधन की पूर्ति वक्र Sb से आवर्तित होकर Sb हो जाता है तब भी साधन के माग वक्र का ढलान कम हो जाता है, यानी इसकी माग लोच बढ़ जाती है।

(iii) प्रतिस्थापन लोच जितनी अधिक होगी, साधन की व्युत्पन्न माग लोच भी उतनी ही अधिक हो जाएगी। उदाहरण के लिए, मजदूरी-ब्याज अनुपात में 10 प्रतिशत की वृद्धि हो जाने पर पूंजी श्रम अनुपात 15 प्रतिशत बढ़ जाए ($\sigma=1.5$) तो इसका यह अभिप्राय होगा कि श्रम की माग अत्यधिक लोचदार है यानी इसकी कीमत (मजदूरी दर) में वृद्धि होने की अपेक्षा इसकी माग का संकुचन अधिक होता है।

(iv) साधन पर किए जाने वाले व्यय का कुल व्यय में अनुपात (k) जितना अधिक होगा, साधन की व्युत्पन्न माग लोच उतनी ही अधिक होगी। श्रम के संदर्भ में $k=\frac{\bar{W}}{P_y\ Q}$ है। यदि $k=.5$ हो तो स्पष्ट है मजदूरी की दर में वृद्धि होने का श्रम के रोजगार पर पर्याप्त प्रभाव होगा। इसके विपरीत ऐम्बेसडर कार में दरवाजों

14 इसके सूत्र को निरूपित करने की विधि हेतु देखिए—
J R Hicks, op cit, p 244 तथा pp 373-78

मे लगाने वाले हत्थे पर व्यय की जाने वाली राशि 45 रुपए हो तथा चार की कीमत 45 000 रुपए हो तो $k = \frac{1}{1000}$ होगा, तथा हत्थो की कीमत मे काफी अधिक वृद्धि होने पर भी हत्थो की माग पर अधिक प्रभाव नही होगा।

प्रोफेसर हिक्स ने व्युत्पन्न माग को मापने हेतु एक सूत्र प्रस्तुत किया है।[15] इस सूत्र मे श्रम की व्युत्पन्न माग लोच को λ के द्वारा, वस्तु की माग की लोच को η के द्वारा, सहयोगी साधन (पूजी) की पूर्ति लोच को e के द्वारा, तथा मजदूरी व्यय के कुल व्यय मे अनुपात को k के द्वारा व्यक्त करते हुए निम्न सूत्र प्रस्तुत किया गया है—

$$\lambda = \frac{\sigma\eta + e(k\eta + \overline{1-k\sigma})}{(k\sigma + 1 - k\eta) + e} \qquad \ldots(18.36)$$

यदि सहयोगी साधन की पूर्ति लोच $e = 0$ हो तो

$$\lambda = \frac{\sigma\eta}{k\sigma + 1 - k\eta} \qquad \ldots(18\ 37)$$

हिक्स एक अन्य सूत्र भी प्रस्तुत करते हैं—

$$E = \frac{\sigma(\eta + e) + k\ e\ \overline{\eta - \sigma}}{(\eta + e) - k(\eta - \sigma)} \qquad \ldots(18.38)$$

जिसको σ, η, k व e के सदर्भ मे अवकलित किया जा सकता है। सहयोगी साधन की पूर्ति लोच (e) व व्युत्पन्न माग लोच के मध्य सबध की सत्यता की जाच हेतु यह आवश्यक है कि तृतीय अवकलज ऋणात्मक न हो। यह तभी सभव है जब वस्तु की माग प्रतिस्थापन लोच से अधिक हो ($\eta > \sigma$)।

15 Hicks, Ibid , pp 242-44

19
मज़दूरी का सिद्धांत
(THEORY OF WAGES)

प्रस्तावना

किसी श्रमिक द्वारा नियोक्ता को अर्पित सेवाओं के बदले जो मौद्रिक भुगतान दिया जाता है उसी को अर्थशास्त्र मे मजदूरी की सज्ञा दी जाती है। परतु श्रम की मजदूरी के निर्धारण का सिद्धात केवल प्रतियोगी बाजार से ही सबद्ध नही होता। जैसा कि पिछले अध्याय मे बतलाया गया था, किसी भी साधन की कीमत का निर्धारण पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत इसकी कुल माग तथा कुल पूर्ति के द्वारा ही होता है तथा प्रत्येक फर्म इसी साधन कीमत पर इष्टतम मात्रा का प्रयोग करने का प्रयास करती है।

एडम स्मिथ ने यही बतलाने का प्रयत्न किया था कि श्रम की पूर्ति एव माग ही मजदूरी की दर का निर्धारण करती हैं। तथापि, 18वी शताब्दी मे विद्यमान परिस्थितियो को देखते हुए उन्होने यह कहा कि दीर्घ काल मे मजदूरी का स्तर जीवन-निर्वाह व्यय (cost of subsistence) के समान ही होता है। स्मिथ ने यह स्वीकार किया कि अल्पकाल मे श्रमिको को जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक स्तर से कम या अधिक मजदूरी प्राप्त हो सकती है। एक अन्य सदर्भ मे स्मिथ ने मजदूरी-कोष सिद्धात (Wage Fund Theory) का विवरण देते हुए कहा कि श्रमिको को चुकाया जाने वाला कुल मजदूरी कोष स्थिर है और इसलिए श्रमिको की सख्या मे वृद्धि (कमी) हो जाने पर मजदूरी की दर मे कमी (वृद्धि) हो जाती है। फिर एक तीसरे सदर्भ मे स्मिथ ने बतलाया कि मजदूरी का निर्धारण श्रमिको के सगठन एव सौदाकारी शक्ति पर निर्भर करती है। उन्होने यह भी कहा कि मजदूरी का ऊंचा स्तर समाज की सपन्नता एव प्रगतिशीलता का प्रतीक है जबकि परपरागत एव स्थैतिक अर्थव्यवस्था मे मजदूरी का स्तर नीचा रहता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मजदूरी के निर्धारण के विषय मे स्मिथ के विचार अस्पष्ट एव अपूर्ण थे।

स्मिथ की तुलना मे रिकार्डो के इस विषय पर कुछ अधिक स्पष्ट विचार प्रस्तुत किए। रिकार्डो ने कहा कि यद्यपि मजदूरी का स्तर जीवन निर्वाह व्यय के

समकक्ष रहता है, तथापि "यह लोगो की आदतो एव समाज की परपराओ से भी अवश्य प्रभावित होती है।"[1] रिकार्डो ने इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया, फिर भी उन्होंने मानवता के नाम पर यह अपील की कि मजदूरी का स्तर इतना नहीं गिरने दिया जाए कि इससे श्रमिक का केवल जीवन निर्वाह ही हो सके।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्य अर्थशास्त्रियो, जैस नसाऊ सीनियर, जॉन स्टुअर्ट मिल आदि ने भी श्रमिको की गिरती हुई मजदूरी तथा जीवन स्तर मे हो रहे ह्रास को एक प्रगतिशील समाज के लिए अनुचित बतलाया तथा मजदूरी के स्तर मे स्थिरता हेतु उपयुक्त कदम उठाने की माग की। परतु मजदूरी के विषय मे व्यवस्थित रूप से विश्लेषण का श्रेय केवल मार्शल को दिया जा सकता है। मार्शल ने यह स्वीकार किया कि वितरण की समस्या उतनी सरल नही है जितनी कि सम्थापक अर्थशास्त्रियों ने इसे समझ लिया था।

एल्फ्रेड मार्शल पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने मजदूर से (ऊचे) स्तर एव श्रमिको की दक्षता के मध्य प्रत्यक्ष सबध है, इस तथ्य को स्वीकार किया। द्वितीय, उन्होने सस्थापक अर्थशास्त्रियों के इस तर्क को सर्वथा अनुचित बतलाया कि जनसख्या की वृद्धि का मजदूरी के स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। तृतीय, मजदूरी के विषय मे चर्चा करते हुए मार्शल ने यह मान्यता ली कि श्रम तथा वस्तु दोनो के बाजारो मे पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है। अत मे, मार्शल ने यह भी बतलाया कि श्रम की माग प्रत्यक्षत इसके सीमात उत्पादन पर निर्भर करती है।

आधुनिक अर्थशास्त्री मार्शल के इस तर्क को स्वीकार नही करते कि पूर्ण प्रतियोगिता की परिस्थिति मे मजदूरी की दर श्रम की कुल माग तथा कुल पूर्ति पर निर्भर करती है। मार्शल की आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि व्यावहारिक जीवन म न तो वस्तु के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता है और न ही श्रम के बाजार मे। वस्तु के बाजार मे अपूर्णताए उत्पन्न होने पर वस्तु की कीमत स्थिर नही रह पाती तथा बिक्री की मात्रा में वृद्धि होने पर कीमत मे कमी की जाती है। तदनुसार, सीमात आगम व कीमत मे भी अतर उत्पन्न हो जाता है ($MR<P$)। दूसरी ओर यह भी सभव है कि साधन के बाजार मे एक ही फर्म श्रम की खरीद करने को उपस्थित रह (जिस क्रेताधिकार की सज्ञा दी जाती है), तथा कुल माग व कुल पूर्ति के स्थान पर स्वय ही मजदूरी का निर्धारण करने लगे। आलोचको का यह भी मत है कि श्रम के बाजार मे श्रमिक सगठन भी विकृति उत्पन्न कर सकत हैं क्योकि इनके कारण श्रम की पूर्ति पर एकाधिकार स्थापित हो जाता है। इन सभी अपूर्णताओ के कारण मजदूरी का निर्धारण श्रम की माग व पूर्ति के द्वारा नही हो पाता।

द्वितीय, आलोचको का यह भी तर्क है कि श्रम व वस्तु के बाजारो मे पूर्ण प्रतियोगिता होने पर भी मजदूरी की दरो मे समरूपता होनी आवश्यक नही है। मार्शल ने श्रम की सभी इकाइयो को समरूपी मानते हुए यह तर्क दिया था कि श्रम की

1 Alfred Marshall 'Principles of Economics' (Eigth Edition), p 421

मजदूरी दर समूचे बाजार में वही रहती है। वस्तुतः श्रमिकों की योग्यता, अनुभव, श्रम की पूर्ति की नियमितता आदि का भी मजदूरी के स्तर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इन्हीं कारणों से एक ही समय में हमें मजदूरी के भिन्न-भिन्न स्तर दिखाई देते हैं।

मार्शल के आलोचकों का तीसरा तर्क यह है कि श्रम की साम्य मजदूरी दर निर्धारित हो जाने पर भी इसके प्रयोग का स्तर विविध नवोत्पादों (innovations) से प्रभावित होता है। तकनीकी परिवर्तनों के कारण मजदूरी के स्तर पर प्रत्यक्षतः कोई प्रभाव नहीं होता तथापि व्यष्टिगत स्तर पर इनके *कारण श्रम की माग में* कमी हो सकती है।

मार्शल द्वारा प्रदत्त मजदूरी-सिद्धांत (जो वस्तुतः माग व पूर्ति का सिद्धात है) के विरुद्ध प्रस्तुत इन सभी विचारों की हम इस अध्याय में विवेचना करेंगे। हम सर्वप्रथम यह देखेंगे कि श्रम की माग व पूर्ति पर बाजार में उत्पन्न अपूर्णताओं का क्या प्रभाव होता है। आगे चलकर हम श्रीमती जॉन रॉबिन्सन द्वारा प्रस्तुत शोषण की अवधारणा की समीक्षा करेंगे। अध्याय के अंत में हम यह भी देखेंगे कि श्रमिक संघ मजदूरी दर तथा रोजगार के स्तर (व्यष्टिगत रूप में) को कयोंकर प्रभावित करते हैं।

19.1 वस्तु के बाजार में एकाधिकार होने पर श्रम की मांग
(Demand for Labour Under Conditions of Monopoly in the Product Market)

पिछले अध्याय में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि वस्तु के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होने पर फर्म द्वारा साधन की माग का निर्धारण प्रत्यक्षतः इस साधन के सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP_L) द्वारा होता है। जैसा कि हम इस सदर्भ में देख भी चुके हैं, *यह नियम भी केवल इस दशा में वैध होता है* जब उत्पादन के साधनों में से केवल एक ही साधन परिवर्तनशील हो।

प्रश्न है, यदि वस्तु के बाजार में एकाधिकार या अल्पाधिकार की स्थिति हो तब क्या होगा? जैसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं, केवल पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही फर्म के लिए कीमत यथावत रहती है, और इस कारण कीमत एवं सीमांत आगम में कोई अंतर नहीं होता ($P_y = MR$)। परंतु अल्पाधिकार, अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार के अंतर्गत उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कीमत में कमी होती है और इसकी अपेक्षा दुगुनी गति से सीमांत आगम में भी कमी होती जाती है। अस्तु, एकाधिकारी प्रवृत्ति के उत्पन्न होते ही फर्म की निर्णय प्रक्रिया में कीमत का महत्व समाप्त हो जाता है तथा इसके स्थान पर वस्तु के उत्पादन, एवं साधन के प्रयोग के स्तरों का निर्धारण सीमांत आगम के आधार पर ही किया जाने लगता है।

इसके बावजूद, एकाधिकार के कारण साधन के सीमांत उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। फर्म इस बात को जानती है कि श्रम की अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से जो अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त होगा उसे बेचने हेतु उसे कीमत में कमी करनी ही होगी। इसी कारण एक एकाधिकारी फर्म (या अल्पाधिकारी/अपूर्ण प्रतियोगिता वाली फर्म) के लिए श्रम की मांग का निरूपण VMP_L द्वारा संभव नहीं होता क्योंकि $VMP_L = Py.MPP_L$ में वस्तु की कीमत अपरिवर्तित रहने की मान्यता अब वैध नहीं रह पाती। इसके स्थान पर फर्म के लिए श्रम की मांग का निरूपण सीमांत आगम उत्पादन (Marginal Revenue Product = MRP) के द्वारा किया जाता है।

परिभाषा

सीमांत आगम उत्पादन या MRP कुल आगम में होने वाली वह वृद्धि है जो सीमांत उत्पादन की बिक्री के फलस्वरूप फर्म को प्राप्त होती है। अन्य शब्दों में, परिवर्तनशील साधन (श्रम) की अतिरिक्त इकाई से प्राप्त उत्पादन की बिक्री से प्राप्त अतिरिक्त आगम को ही सीमांत आगम उत्पादन (MRP) कहा जाता है। वस्तुतः—

$$MRP = \frac{\Delta TR}{\Delta L} \qquad \ldots (19.1)$$

परंतु ΔTR सीमांत आगम है जिसे निम्न रूप में व्यक्त किया जाता है—

$$MR = \frac{\Delta TR}{\Delta TP_L} \qquad \ldots (19.2)$$

इसी प्रकार श्रम के सीमांत उत्पादन (ΔTP_L) को हम श्रम की अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन के रूप में परिभाषित करते हैं $\left(MPP_L = \frac{\Delta TP_L}{\Delta L}\right)$

इस प्रकार

$$MPP_L = \frac{\Delta TP_L}{\Delta L}$$

$$\therefore \Delta L = \frac{\Delta TP_L}{MPP_L} \qquad \ldots (19.3)$$

समीकरण (19.1) में समीकरण (19.2) को प्रतिस्थापित करने पर सीमांत आगम उत्पादन (MRP) को एक नए रूप में लिखा जा सकता है—

$$MRP = \frac{MR\ \Delta TP_L}{\Delta TP_L / MPP_L}$$

$$= MR.MPP_L \qquad \ldots (19.4)$$

स्मरण रहे कि सीमांत उत्पादन मूल्य को हमने इस प्रकार परिभाषित किया था: $VMP_L = P_y\, MPP_L$ जबकि सीमांत आगम उत्पादन को $MRP = MR\ MPP_L$ के रूप में व्यक्त किया गया है। चूंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत $Py = MR$ होते हैं, अतः उस दशा में VMP_L एवं MRP में कोई अंतर नहीं होता।

इसके विपरीत अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार के अतर्गत सीमात आगम कीमत से कम होता है ($MR < P_y$), इस कारण सीमात आगम उत्पादन भी सीमात उत्पादन मूल्य से कम होगा ($MRP < VRP_L$)।

यह मानते हुए कि श्रम के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, और इस कारण मजदूरी की दर का निर्धारण फर्म के लिए बाह्य रूप से बाजार की कुल माग व कुल पूर्ति की शक्तियो द्वारा ही होता है, हम यह कह सकते हैं कि फर्म के लिए निर्दिष्ट मजदूरी दर पर ही श्रम की अनत पूर्ति उपलब्ध है। यही कारण है कि फर्म के लिए श्रम का पूर्ति वक्र या मजदूरी दर का वक्र क्षैतिज (horizontal) होता है। चित्र 19 1 मे मजदूरी रेखा $\overline{W}W$ इसी मान्यता के आधार पर खीची गई है कि श्रम के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है।

चित्र 19 1 मे VMP वक्र चित्र 18 2 के अनुरूप इसी मान्यता को लेकर खीचा गया है कि वस्तु के बाजार मे भी पूर्ण प्रतियोगिता है और इसलिए फर्म अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु OL_c इकाई श्रम का प्रयोग करती है क्योकि इसी स्तर पर मजदूरी की दर एव सीमात उत्पादन मूल्य मे समानता है ($O\overline{W} = VMP$)।
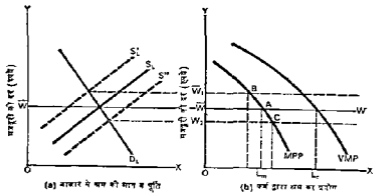
चित्र 19 1 एकाधिकार का श्रम की माग पर प्रभाव

परतु जब वस्तु के बाजार मे एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु फर्म श्रम का प्रयोग उस स्तर तक करेगी जहा MRP एव मजदूरी की दर मे समानता हो ($MRP = O\overline{W}$)। यह स्तर चित्र 19 1 मे OL_M के रूप मे प्रदर्शित किया गया है। सक्षेप मे, वस्तु के बाजार मे अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार के फलस्वरूप व्यष्टिगत स्तर पर श्रम की कम इकाइयो का प्रयोग किया जाता है ($OL_M < OL_c$), भले ही श्रम के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान रहती हो।

अस्तु, वस्तु के बाजार मे एकाधिकार होने पर श्रम का रोजगार कम हो जाता

है। इसके उपरान्त भी, MRP वक्र फर्म के लिए श्रम का माग वक्र ठीक उसी रूप में बना रहता है जिस रूप में कि एक प्रतियोगी फर्म के लिए VMP रहता है। जैसा कि चित्र 19 1 म बतलाया गया है, मजदूरी क स्तर मे कमी होने पर एकाधिकारी फर्म श्रम की अधिक इकाइयो का प्रयोग करती है जबकि मजदूरी की दर बढ जाने पर वह श्रम के प्रयोग म कमी कर देती है। चित्र 19 1 मे मजदूरी के तीन स्तर OW_1, $\overline{OW}$ एव OW_2 पर प्रस्तुत साम्य स्थितिया क्रमश. B, A व C इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं कि मजदूरी की दर म कमी होने पर एकाधिकारी MRP के अनुरूप श्रम की अधिक इकाइयों का प्रयोग करता जाता है।

गणितीय विश्लेषण (Mathematical Analysis)

अब हम यह सिद्ध करने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार एक एकाधिकारी फर्म मजदूरी की दर एव सीमात आगम उत्पादन को समान करके अधिकतम लाभप्रद श्रम का प्रयोग करती है। मान लीजिए, वस्तु का माग फलन इस प्रकार है—

$$P=f(Q), \text{ तथा } f'(Q)<0 \qquad \ldots(19\ 5)$$

यानी कीमत व मात्रा मे प्रतिकूल सबध होने के कारण माग फलन का ढलान ऋणात्मक है। कुल आगम फलन (TR) इस प्रकार होगा—

$$TR=Q\,f(Q) \qquad \ldots(19\ 6)$$

सीमात आगम फलन

$$\frac{d(TR)}{dQ}=f(Q)+Q\,f\,(Q) \qquad .(19\ 7)$$

दूसरी ओर हम यह भी जानत हैं कि उत्पादन के साधनो मे श्रम ही परिवर्तनशील साधन है। अस्तु—

$$Q=\phi(L), \text{ तथा } \phi\,(L)>0 \qquad ..(19\ 8)$$

अर्थात् सीमात उत्पादन (MPP_L) धनात्मक है।

हम ऊपर यह देख चुके हैं कि $MRP=\frac{\triangle TR}{\triangle L}$ है, क्योकि यह श्रम की अतिरिक्त मात्रा स कुल आगम मे हुए परिवर्तन का द्योतक है। समीकरण (19.7) को MRP के साथ समायोजित करने पर MRP का निम्न रूप प्राप्त होगा—

$$MRP=[f(Q)+Q\,f\,(Q)].\ \frac{dQ}{dL} \qquad \ldots(19.9)$$

परन्तु $\frac{dQ}{dL}$ श्रम का सीमात उत्पादन या $\phi'(L)$ है। अस्तु—

$$MRP=[f(Q)+Q\,f\,(Q)].\ MPP_L \qquad .\ (19.10)$$

अत $MRP=MR.MPP_L$

अब फर्म का लाभ फलन लीजिए।

$$\pi=P\,Q-w\,L-F \qquad \ldots(19\ 11)$$

(यहां wL कुल मजदूरी तथा F कुल स्थिर लागतें हैं)

परन्तु कुल आगम PQ में $P=F(Q)$ तथा $Q=\phi(L)$ हैं,

$$\pi=f[\phi(L)]\,\phi(L)-wL-F \qquad (19\ 12)$$

अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु लाभ फलन का प्रथम चलन अवकलज प्राप्त करेंगे—

$$\frac{d\pi}{dL}\ \phi(L)\ \ \frac{dP}{dQ}\ \ \frac{dQ}{dL}+P\ \frac{dQ}{dL}-w-0 \qquad (19\ 13)$$

अथवा

$$\left(Q\frac{dP}{dQ}+P\right)\frac{dQ}{dL}=w \qquad (19\ 14)$$

जबकि $MR=P+Q\frac{dP}{dQ}$ तथा श्रम का सीमांत उत्पादन $\frac{dQ}{dL}$ होता है।

फलस्वरूप,

$$\frac{d\pi}{dL}=MR\ \ MPP_L=w \qquad (19\ 15)$$

अन्य शब्दों मे, श्रम का सीमांत आगम उत्पादन (MRP) मजदूरी के समान होने पर ही श्रम का अधिकतम लाभप्रद प्रयोग होगा।

हम यह भी जानते हैं कि $MR=P\left(1-\frac{1}{\eta}\right)$ है। अत निम्न रूप में भी इसे व्यक्त कर सकते हैं—

$$P\left(1-\frac{1}{\eta}\right)\frac{dQ}{dL}=w \qquad (19\ 16)$$

समीकरण (19 16) के माध्यम से वस्तु की कीमत, साधन की कीमत, वस्तु की माग की लोच तथा उत्पादन फलन के मध्य प्रत्यक्ष संबंध व्यक्त किया जा सकता है।

दो परिवर्तनशील साधनो के संदर्भ में एकाधिकारी फर्म द्वारा श्रम की माग
(Monopoly Demand for Labour when two or more Variable Inputs are used)

यदि श्रम के अतिरिक्त भी कोई अन्य साधन परिवर्तनशील हो तो सीमांत आगम उत्पादन (MRP) के आधार पर एकाधिकारी फर्म के लिए श्रम का माग वक्र निरूपित नही किया जा सकता। पिछले अध्याय मे भी हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि सीमांत उत्पादन मूल्य वक्र (VMP Curve) को प्रतियोगी फर्म के लिए श्रम का माग वक्र केवल उसी दशा मे मानना संभव है जबकि उत्पादन के शेष सभी साधन स्थिर हो।

परतु यदि श्रम के साथ पूंजी भी परिवर्तनशील हो तो इसके फलस्वरूप कुल उत्पादन फलन के साथ-साथ सीमात उत्पादन फलन मे भी विवर्तन हो जाएगा। अस्तु, मजदूरी की दर मे कमी होने पर एकाधिकार फर्म का सीमात आगम उत्पादन वक्र भी विवर्तित होगा, और इसीलिए चित्र 19 1 की भाति यह वक्र फर्म के लिए श्रम के माग वक्र का रूप नहीं ले सकेगा।

पिछले अध्याय म बतलाया गया है था कि मजदूरी की दर मे कमी होने पर फर्म को चार प्रभावो की अनुभूति होती है। ये प्रभाव हैं . प्रतिस्थापन प्रभाव, उत्पत्ति प्रभाव, अधिकतम स्तर प्रभाव (maximizing effect), तथा आगम प्रभाव। प्रथम तीन प्रभावों के कारण जब मजदूरी की दर मे कमी होने पर फर्म श्रम के साथ पूजी की मात्रा भी बढाती है तो MRP वक्र मे समानातर विवर्तन होता है। चित्र 19.2 के पैनल (a) मे यही बतलाया गया है कि मजदूरी की दर OW_1 से कम होकर OW_2 हो जाने पर पूजी व श्रम दोनो की अधिक मात्राओ के प्रयोग से सीमात आगम उत्पादन वक्र MRP_1 से विवर्तित होकर MRP_2 की स्थिति मे आ जाता है, तथा फर्म श्रम का प्रयोग OL_1 से बढाकर OL_3 कर देती है। जैसा कि चित्र के पैनल (a) से स्पष्ट है, यदि पूजी के प्रयोग मे वृद्धि नहीं होती तो मजदूरी की दर कम होने पर श्रम का प्रयोग OL_1 से बढ़कर OL_2 ही हो पाता तथा MRP_1 वक्र ही श्रम का माग वक्र बन सकता था। पैनल (a) मे श्रम का माग DD है जो बतलाता कि दो मजदूरी-दरो पर फर्म कितनी मात्रा मे श्रम का प्रयोग करती है।
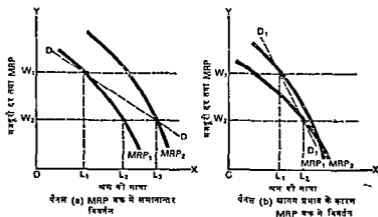
चित्र 19.2 दो या अधिक परिवर्तनशील साधनों के सदर्भ मे एकाधिकारी फर्म के लिए श्रम की माग

अब चित्र 19 2 के पैनल (b) को देखिए। इसमे आगम प्रभाव के अतर्गत MRP वक्र क विवर्तन को बतलाया गया है जैसाकि पिछले अध्याय मे बतलाया गया

था, अधिक श्रम व पूंजी का प्रयोग करने पर जब फर्म अधिक उत्पादन करती है तो उसे कीमत में और अधिक कमी करनी होती है। इसीलिए सीमांत आगम में भी अधिक कमी हो जाती है। इसे आगम प्रभाव कहा जाता है। एक ओर पूंजी व श्रम की अधिक मात्रा प्रयुक्त करने के कारण श्रम का सीमांत उत्पादन वक्र विवर्तित होता है तो दूसरी ओर सीमांत आगम में कमी हो जाती है। कुल मिलाकर जो नया MRP वक्र प्राप्त होता है वह पूर्व के वक्र से दाईं ओर समानांतर न होकर अपेक्षाकृत अधिक ढलानयुक्त होता है। चित्र 19.2 के पैनल (b) में MRP_2 इसी तथ्य की पुष्टि करता है। अस्तु, एकाधिकारी फर्म मजदूरी की दर में कमी होने पर भी श्रम की मात्रा को OL_1 से बढ़ाकर OL_2 तक ही कर पाती है। श्रम की माग भी D_1D_1 पर पूर्व स्थिति (पैनल a के DD) की तुलना में कम लोचदार है। संक्षेप में, मजदूरी की दर में कमी होने पर प्रतिस्थापन प्रभाव, उत्पत्ति प्रभाव तथा अधिकतम स्तर प्रभाव के कारण श्रम के प्रयोग में जो वृद्धि होती है उसका एक बड़ा अंश आगम प्रभाव के कारण नष्ट हो जाता है, और इसीलिए श्रम की माग अपेक्षाकृत बेलोच हो जाती है।

श्रम की बाजार माग (Market Demand for Labour)

यदि श्रम के बाजार में विद्यमान सभी फर्मों का अपने-अपने क्षेत्रों में एकाधिकार हो, तो श्रम की कुल माग को ज्ञात करने हेतु हम विभिन्न मजदूरी दरों पर सभी फर्मों द्वारा प्रयुक्त श्रम की मात्राओं का क्षैतिज योग ले सकते हैं। परन्तु ऐसा करते समय हमारी मान्यता यह रहती है कि मजदूरी की दर में कमी होने का प्रभाव केवल श्रम की माग पर ही होता है।

परन्तु यदि श्रम के क्रेता अल्पाधिकारी अथवा एकाधिकारिक प्रतियोगी फर्मों के रूप में हों तो श्रम की बाजार माग का निरूपण इनकी व्यक्तिगत माग के क्षैतिज योग द्वारा कदापि सम्भव नहीं होगा। वस्तुतः विभिन्न वस्तुओं के मध्य प्रतिस्थापन सम्भव होने पर जब सभी फर्में एकसाथ अपनी-अपनी वस्तु का उत्पादन बढ़ाती हैं तो प्रत्येक फर्म के सीमांत आगम स्तर पर इसके कारण प्रतिकूल प्रभाव होने लगता है। यही कारण है कि अल्पाधिकार या एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अंतर्गत श्रम की बाजार माग मजदूरी के विभिन्न स्तरों पर कितनी होगी इसका सहज रूप में पता नहीं लगाया जा सकता। परन्तु दी हुई मजदूरी दर पर सभी फर्में कितना श्रम प्रयुक्त करेंगी यह ज्ञात करना सम्भव है। यह स्थिति एकाधिकारी फर्म के पूर्ति वक्र के अनुरूप है। परिवर्तनशील माग व सीमांत आगम के संदर्भ में श्रम का बाजार माग वक्र ज्ञात नहीं किया जा सकता है।

एकाधिकारी द्वारा श्रम का शोषण
(Monopolistic Exploitation of Labour)

श्रीमती जोन रॉबिन्सन का तर्क है कि वस्तु व श्रम के बाजारों में पूर्ण प्रति-

योगिता विद्यमान होने पर श्रमिक की मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादन मूल्य के समान होती है (VMP = W) और इस कारण उसका शोषण नहीं हो पाता। परन्तु यदि श्रमिक को सीमान्त उत्पादन मूल्य से कम मजदूरी प्राप्त होती है तो दोनों का यह अंतर श्रमिक के शोषण का प्रतीक बन जाता है।[3]

जैसा कि ऊपर इस अध्याय में बतलाया गया है, वस्तु के बाजार में एकाधिकार होने पर फर्म श्रम का प्रयोग उस स्तर पर करती है जहां मजदूरी की दर तथा सीमांत आगम उत्पादन समान होते हैं (W = MRP)। परन्तु हम यह भी पढ़ चुके हैं कि एकाधिकार की स्थिति में सीमांत आगम कीमत से कम होता है ($MR < P_y$), और इसीलिए सीमान्त आगम उत्पादन भी सीमान्त उत्पादन मूल्य से कम होता है (MRP < VMP)। अस्तु, वस्तु के बाजार में एकाधिकार होने पर श्रमिक का शोषण होता है।

चित्र 19.3 में इसी बात की पुष्टि की गई है। मजदूरी की दर $O\overline{W}$ होने पर एकाधिकारी फर्म OL_m इकाई श्रम का प्रयोग करता है क्योंकि इसी स्तर पर
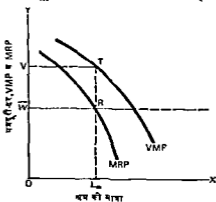
चित्र 19.3 श्रम का एकाधिकारिक शोषण

मजदूरी की दर एवं MRP में समानता है। परन्तु यदि फर्म पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उत्पादन करती होती तो वह रोजगार के स्तर (OL_m) पर श्रमिकों की VMP के समान मजदूरी देती। चित्र 19.3 में OL_m मात्रा में श्रमिकों को प्रयुक्त करने पर प्रतियोगी फर्म OV मजदूरी दे सकती थी क्योंकि इसी स्तर पर VMP एवं मजदूरी में समानता होती। इस प्रकार प्रतियोगी परिस्थितियों में OL_m श्रमिकों को जो मजदूरी प्राप्त होती ($OV = TL_m$) तथा एकाधिकार के अंतर्गत जो उन्हें प्राप्त हो रही है ($O\overline{W} = RL_m$) इनके बीच का अंतर एकाधिकारी द्वारा हड़प लिया जाता है।

3 Joan Robinson, Economics of Imperfect Competition, (MacMillan & Co LtD., London, 1933), p 281

यही राशि (कुल राशि $\overline{W}RTV$) श्रमिकों के शोषण का मौद्रिक माप है। जैसा कि आगे बतलाया गया है, यदि वस्तु के बाजार मे जो फर्म एकाधिकारी है, वही फर्म श्रम के बाजार मे भी क्रेताधिकारी (monopsonist) हो जाए तो श्रम का शोषण एक गभीर रूप धारण कर लेता है।

श्रमिकों का एकाधिकारी फर्म द्वारा किया जाने वाला शोषण केवल उसी दशा मे कम या पूर्णत समाप्त किया जा सकता है जबकि वस्तु के बाजार मे प्रतियोगिता को तीव्रतर बना दिया जाए। परन्तु फर्ग्यूसन का यह कथन सही प्रतीत होता है कि उपभोक्ता जब तक वस्तु विभेद चाहते हैं, तब तक प्रत्येक फर्म का माग वक्र ऋणात्मक ढलानयुक्त होगा तथा तभी तक कीमत व सीमात आगम मे अतर होने के कारण किसी न किसी रूप मे श्रमिकों का शोषण होता रहेगा। यहा तक कि सरकार द्वारा कठोर कीमत-नियत्रण लागू कर देने पर भी समस्या का पूर्णत अत नही हो पाता क्योंकि इससे उपभोक्ताओं की कठिनाई कम होने की अपेक्षा बढ जाती है। फर्ग्यूसन यही निष्कर्ष देते हैं कि एकाधिकारिक शोषण को समाप्त करने स हमेशा सुखद परिणाम प्राप्त नही होते, तथा जब तक कीमत एव सीमात आगम म अतर रहता है तब तक किसी न किसी रूप म (एकाधिकारी) फर्म द्वारा श्रमिक का शोषण भी जारी रहता है।

19 2 श्रम के बाजार में क्रेताधिकार

(Monopsony in The Labaur Market)

क्रेताधिकार किसी (वस्तु या साधन) बाजार की स्थिति है जिसमे अनेक विक्रेताओं के विरुद्ध केवल एक ही क्रेता विद्यमान हो। ऐसी स्थिति मे साधन की बाजार-पूर्ति ही क्रेता के लिए साधन की पूर्ति बन जाती है। अन्य शब्दो मे, क्रेताधिकारी यदि साधन की अधिक मात्रा चाहता है तो उसे इसकी अधिक कीमत देनी होगी। स्पष्ट है, क्रेताधिकार के अतर्गत साधन की कीमत (जैसे मजदूरी दर) का निर्धारण क्रेताधिकारी को ही करना होता है। वह अधिकतम लाभ के लिए श्रमिकों की उतनी सख्या प्रयुक्त करता है जहा श्रम का सीमात उत्पादन मूल्य (*VMP*) *श्रम पर किए गए अतिरिक्त व्यय* (Marginal Expense of Input या MEI) के समान हो। चूकि मजदूरी की सख्या मे वृद्धि के साथ क्रेताधिकारी को मजदूरी की दर मे वृद्धि करनी होती है, इसलिए सीमांत मजदूरी या अतिरिक्त व्यय मे होने वाली वृद्धि मजदूरी की वृद्धि से भी कम होगी। अस्तु, श्रम पर किया जाने वाला कुल व्यय (*Total Experse of Input* या *TEI*) एव सीमात व्यय की व्याख्या इस प्रकार है।

$$TEI = w.L \quad \ldots(19.17)$$

$$\frac{d\,(TEI)}{dL} \text{ या } MEI = w + L.\frac{dw}{dL} \quad \ldots(19\ 18)$$

$$= w\left(1 + \frac{L}{w}\cdot\frac{dw}{dL}\right) \quad \ldots(19\ 19)$$

समीकरण (19 18) से स्पष्ट है कि मजदूरी या श्रम के पूर्ति वक्र का ढलान धनात्मक होता है परन्तु सीमान्त मजदूरी अथवा प्रतिरिक्त व्यय के वक्र का ढलान उससे भी अधिक होता है।

हम यह भी जानते हैं कि श्रम की पूर्ति लोच (θ) को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

$$\theta=\frac{dL}{dw}\quad\frac{w}{L} \qquad .(19.20)$$

समीकरण (19 19) मे MEI को $w\left(1+\frac{L}{w}\frac{dw}{dL}\right)$ के रूप मे व्यक्त किया गया था। समीकरण (19 20) के आधार पर इसे पुन लिखा जा सकता है।

$$MEI=w\left(1+\frac{1}{\theta}\right) \qquad .(19\ 21)$$

सक्षेप म मजदूरी तथा सीमान्त व्यय का ज्ञान होने पर हम क्रेताधिकारी के *श्रम-पूर्ति वक्र के निर्दिष्ट बिंदु पर श्रम की पूर्ति लोच ज्ञात कर सकते हैं।*

क्रेताधिकारी द्वारा श्रम का इष्टतम प्रयोग

(Optimum use of Labour by a Monopsonist)

चाहे फर्म एकाधिकारी हो अथवा क्रेताधिकारी, प्रत्येक स्थिति मे उसका उद्देश्य अधिकतम लाभ की प्राप्ति ही होता है। फर्म का लाभ फलन इस प्रकार होगा—

$$\pi=TR-TC \qquad (19\ 22)$$

इसमे TR कुल आगम तथा TC कुल लागत को व्यक्त करते हैं। [जबकि $Q=f(L)$ है] कुल आगम या $TR=P\,Q$ है जबकि कुल लागत श्रमिको को चुकाई गई कुल मजदूरी ($TC=w\,L$) है।

हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि क्रेताधिकारी को श्रमिकों की सख्या बढाने के साथ ही मजदूरी की दर भी बढानी होती है। यानी $w=\phi(L)$, तथा $\frac{dw}{dL}>0$ अर्थात क्रेताधिकारी के लिए मजदूरी वक्र का ढलान धनात्मक होता है। अस्तु—

$$\frac{d(TC)}{dL}=w+L\,\phi(L) \qquad (19\ 23)$$

$$=w+L\frac{dw}{dL}$$

जैसाकि ऊपर बतलाया जा चुका है, मजदूरी की दर मे वृद्धि होन पर उससे कहीं अधिक दर पर सीमात मजदूरी मे वृद्धि होगी। हम उपरोक्त विवरण के आधार पर फर्म के लाभ फलन को श्रम के सदर्भ मे व्यक्त कर सकते हैं—

$$\pi=P\,f(L)-w\,L \qquad (19\ 24)$$

$$\frac{d\pi}{dL}-P\,f'(L)-w-L\frac{dw}{dL}=0 \qquad (19\ 25)$$

अस्तु, $$P.f'(L) = w + L\ \frac{dw}{dL} \quad \ldots(19.26)$$

समीकरण (19.18) के अनुसार $MEI = w + L\ \frac{dw}{dL}$ है जबकि सीमांत उत्पादन मूल्य $(VMP) = P\ \frac{dQ}{dL}$ होता है। इस प्रकार क्रेताधिकारी श्रम का उपयोग अधिकतम लाभ हेतु उस स्तर तक करेगा जहां VMP=MEI हो। ...(19.27)

क्रेताधिकारी द्वारा मजदूरी-दर, सीमांत व्यय, तथा रोजगार का निर्धारण

(Wage Rate MEI and Employment Level Determination by a Monopsonist)

ऊपर प्रस्तुत विवरण के आधार पर हम क्रेताधिकारी द्वारा मजदूरी एवं रोजगार के निर्धारण का रेखाचित्रीय विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं। इससे पूर्व तालिका 19.1 में हमने मजदूरी, सीमांत व्यय एवं रोजगार के संबंध को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

तालिका 19.1

क्रेताधिकारी द्वारा मजदूरी, सीमांत व्यय एवं श्रम के इष्टतम प्रवेश का निर्धारण

श्रम की इकाइयां	मजदूरी की दर	कुल मजदूरी	स्थिर लागत	कुल लागत	सीमांत व्यय (MEI)	कुल उत्पादन	वस्तु की कीमत	कुल आगम	सीमांत उत्पादन मूल्य (VMP)	लाभ
	रुपए	रुपए	रुपए	रुपए	रुपए		रुपए	रुपए	रुपए	रुपए
0	—	—	20	20	—	0	—	0	—	—
1	4	4	20	24	4	7	4	28	28	4
2	5	10	20	30	6	13	4	52	24	22
3	6	18	20	38	8	18	4	72	20	34
4	7	28	20	48	10	22	4	88	16	40
5	8	40	20	60	12	25	4	100	12	40
6	9	54	20	74	14	27	4	108	8	34
7	10	70	20	90	16	28	4	112	4	22
8	11	88	20	108	18	28	4	112	0	4
9	12	108	20	128	20	27	4	108	—4	—20
10	13	130	20	150	22	25	4	100	—8	—50

तालिका 19.1 से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे-जैसे क्रेताधिकारी फर्म श्रमिकों की अधिक मात्रा प्रयुक्त करती है, एक ओर तो उसे उत्तरोत्तर मजदूरी की

दर में वृद्धि करनी होती है जबकि दूसरी ओर श्रम से प्राप्त उत्पादन की वृद्धि दर में कमी होती है। इसके उपरान्त भी वस्तु के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होने के कारण वस्तु की कीमत 4 रुपए पर स्थिर बनी रहती है। चूंकि फर्म का उद्देश्य श्रम की उस मात्रा का प्रयोग करना है जिस पर उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो, फर्म 5 श्रमिकों को प्रयुक्त करती है। पाठक देख सकते हैं कि इसी स्तर पर सीमान्त व्यय (MEI) एवं सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) समान हैं। इसी बात को चित्र 19.4 के माध्यम से भी समझाया गया है।
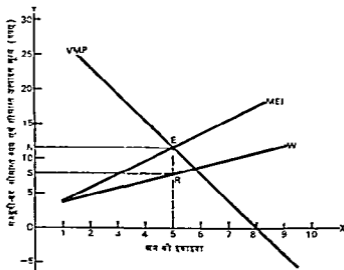
चित्र 19.4 क्रेताधिकार के अन्तर्गत मजदूरी दर एवं श्रम का इष्टतम प्रयोग

चित्र 19.4 में VMP वक्र को फर्म के लिए माग वक्र भी माना जा सकता है जिसे सीमान्त व्यय वक्र E बिंदु पर काटता है। इस साम्य स्थिति में क्रेताधिकारी अपने श्रमिकों को 8 रुपए की मजदूरी दर से भुगतान करता है। जैसाकि स्पष्ट है, इस रोजगार स्तर पर श्रमिकों को सीमान्त उत्पादन मूल्य 12 रुपए है जबकि मजदूरी की दर 8 रुपए ही है। यह अंतर श्रम के बाजार में क्रेताधिकारी से उत्पन्न शोषण (monopsonistic exploitation of labour) का परिणाम है। चित्र 19.4 में कुल शोषण का माप ERSN के रूप में व्यक्त किया गया है।

परन्तु यदि फर्म का वस्तु व साधन दोनों ही के बाजारों में एकाधिकार स्थापित हो जाए तो वह श्रमिकों का दोहरा शोषण करने की स्थिति में आ जाती है। इसी बात को हमने अगले अनुभाग में बतलाने का प्रयास किया है।

19 3 एकाधिकार एवं क्रेताधिकार श्रम का दोहरा शोषण
(Monopoly and Monopsony Combined Two pronged Exploitation of Labour)

पिछले अनुभाग मे हमने एकाधिकार तथा क्रेताधिकार के कारण श्रम का शोषण क्योकर होता है इसकी अलग अलग विवेचना की थी। यदि किसी फर्म का वस्तु के बाजार मे एकाधिकार होने के साथ ही श्रम के बाजार मे भी क्रेताधिकार (monopsony) हो तो क्या स्थिति होगी ? जैसाकि चित्र 19 5 मे बतलाया गया है, यह एक अतिवादी स्थिति है तथा इसमे फर्म द्वारा श्रम का अधिकतम शोषण किया जाता है।
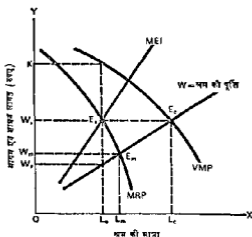
चित्र 19 5 श्रम का दोहरा शोषण

यदि दोनो ही बाजारो मे पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति होती तो श्रम की माग व पूर्ति E_c पर समान होती तथा श्रमिको को VPM के समान (OW_c) मजदूरी प्राप्त होती तथा रोजगार का स्तर भी OL_c हो सकता था। जैसाकि हम पूर्व मे देख चुके है, वस्तु तथा श्रम दोनो के बाजारो मे पूर्ण प्रतियोगिता होने पर श्रमिक को VMP के समान मजदूरी प्राप्त होने पर उसका कोई शोषण नही हो पाता।

अब मान लीजिए श्रम के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता रहने पर भी वस्तु के बाजार मे एकाधिकार स्थापित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति मे एकाधिकारी फर्म MRP तथा Q को मजदूरी के समान करते हुए श्रम का प्रयोग करेगी। इस दशा मे E_m पर साम्य स्थिति होती है तथा मजदूरी व रोजगार के स्तर क्रमश OW_m एव OL_m होगे। अस्तु, वस्तु के बाजार मे एकाधिकार स्थापित होते ही मजदूरी के स्तर मे L_cL_m की तथा रोजगार के स्तर मे W_cW_m की कमी हो जाती है। इस

स्थिति म मजदूरी की दर VMP से कम होने के कारण श्रम का शोषण होता है।

तीसरी स्थिति म फर्म को वस्तु के बाजार म एकाधिकार प्राप्त होने के साथ-साथ श्रम के बाजार म भी क्रेताधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति मे श्रम के इष्टतम प्रयोग का स्तर वहा होगा जहा MRP वक्र MEI वक्र को काटता है। चित्र 19 5 म इस स्तर पर मजदूरी की दर Ow_e होगी तथा रोजगार का स्तर OL_e होगा। रोजगार के स्तर पर श्रम का सीमात उत्पादन मूल्य (VMP) OK है, और इस प्रकार कुल शोषण का माप KW_e होगा। इसम स W_eW_e क्रेताधिकार के कारण उत्पन्न शोषण है जबकि KW_e वस्तु के बाजार म उत्पन्न एकाधिकार का परिणाम है। सक्षेप म, किसी भी रोजगार-स्तर पर पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत प्राप्य मजदूरी एव दोनो बाजार मे विद्यमान एकाधिकार के कारण प्रदत्त वास्तविक मजदूरी का अतर ही शोषण है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, एकाधिकार तथा क्रेताधिकार के कारण श्रमिको का दोहरा शोषण होता है। अध्याय के अत म प्रस्तुत परिशिष्ट मे मजदूरी के निर्धारण, रोजगार एव शोषण की सभावना पर प्रकाश डाला गया है।

जैसाकि पूर्व मे बतलाया गया था सरकार द्वारा एकाधिकारी पर कीमत नियत्रण लागू करके श्रम के एकाधिकारिक शोषण को समाप्त किया जा सकता है, हालाकि इसम उपभोक्ताओ क हितो पर प्रतिकूल प्रभाव पड सकता है। वस्तुत उपभोक्ता स्वय वस्तु विशेष चाहते हैं, और इसलिए किसी सीमा तक एकाधिकारिक प्रवृति एव ऋणात्मक ढलानयुक्त माग वक्र को वाछनीय मान सकते हैं। इसके विपरीत क्रेताधिकारिक (monopsonistic) शोषण की समाप्ति हेतु श्रम के बाजार म श्रमिक सगठन कायम किए जा सकते हैं। श्रमिक सघो के प्रभावों की व्याख्या आग अनुभाग 19 5 मे की गई है।

19 4 क्रेताधिकार के अतर्गत दो या अधिक परिवर्तनशील साधनों के सदर्भ मे मजदूरी की दर एवं रोजगार का निर्धारण

(Wage Rate and Employment under Monopsony when Several Variable Inputs are Used)

पिछले अध्याय म हमने बतलाया था कि यदि फर्म दो या अधिक परिवर्तनशील साधनो का प्रयोग करती हो तो सीमात उत्पादन मूल्य (VMP) वक्र को कदापि फर्म के लिए साधन का माग वक्र नही माना जा सकता। यदि श्रम व पूजी दोनो ही परिवर्तनशील हो तो फर्म उनक उस सयोग का प्रयोग करेगी जिस पर दोनों के सीमात उत्पादन का अनुपात दोनो की कीमतो के अनुपात के समान हो। अस्तु, दो साधनो (*श्रम व पूजी*) के परिवर्तनशील होने पर दोनों के इष्टतम प्रयोग की शर्त इस प्रकार होगी—

$$\frac{\partial Q}{\partial L} \Big/ \frac{\partial Q}{\partial K} = \frac{w}{r} \qquad (19\ 28)$$

अथवा $\frac{\partial Q/\partial L}{w} = \frac{\partial Q/\partial K}{r}$ या $\frac{MP_L}{w} = \frac{MP_K}{r}$ ...(19 29)

समीकरण (19 29) का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक साधन पर व्यय किए गए प्रत्येक रुपए का सीमांत उत्पादन समान होना चाहिए। परंतु यह नियम तभी वैध होगा जब साधनों की कीमतें यानी—मजदूरी व ब्याज की दरें—यथावत् रहें। जैसाकि हम जानते हैं, यह स्थिति केवल प्रतियोगी साधन-बाजारों मे ही हो सकती है। यदि ऐसी स्थिति मे $\frac{MP_L}{w} \neq \frac{MP_K}{r}$ हो तो फर्म श्रम के बदले पूंजी का, या पूंजी के बदले श्रम का तब तक प्रतिस्थापन करती जाएगी जब तक कि दोनों मे समानता स्थापित नहीं हो जाती। इस सब पर वस्तु के बाजार की प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं होता—चाहे वह प्रतियोगी हो अथवा एकाधिकारिक।

अब मान लीजिए, साधनों के बाजार मे क्रेताधिकार स्थापित कर दिया जाता है। ऊपर अनुभाग 19 2 में बतलाया जा चुका है कि ऐसी स्थिति म क्रेताधिकारी को प्रत्येक साधन की अधिक मात्रा प्रयुक्त करने हेतु साधन की कीमत मे वृद्धि करनी होती है। ऐसी स्थिति मे प्रत्यय साधन की सीमांत लागत साधन की कीमत से अधिक होगी तथा साधनों का इष्टतम सयोग वहा स्थित होगा जहा

$$\frac{MRP_L}{MEI_L} = \frac{MRP_K}{MEI_K} \qquad (19\ 30)$$

यदि फर्म के उत्पादन फलन मे n साधन हो तो उनमे से प्रत्येक साधन के सीमांत उत्पादन मूल्य एव सीमांत व्यय के अनुपात मे समानता होनी चाहिए। यदि किसी समय निम्न स्थिति विद्यमान हो—

$$\frac{MRP_L}{MEI_L} > \frac{MRP_K}{MEI_L}$$

तो इसका अर्थ यह होगा कि फर्म के लिए श्रम का सीमांत उत्पादन मूल्य अपेक्षाकृत अधिक है तथा पूंजी के प्रयोग मे कमी करके श्रम का प्रयोग बढाने से उसका कुल *आगम बढ सकता है।* इसके विपरीत यदि $\frac{MPR_L}{MEI_L} > \frac{MRP_K}{MEI_K}$ की स्थिति हो तो पूंजी के प्रयोग मे वृद्धि करके तथा श्रम के प्रयोग मे कमी करके क्रेताधिकारी फर्म अपने कुल आगम मे वृद्धि कर सकती है।

19 5 श्रमिक सघो के आर्थिक प्रभाव
(Economic Effects of Trade Unions)

साधारणतया श्रमिक सघो का गठन श्रमिकों के हितों की रक्षा हेतु ही किया जाता है। हम ऊपर अनुभाग 19 2 तथा 19 3 मे यह पढ चुके हैं कि वस्तु के बाजार, श्रम के बाजार, या दोनों ही बाजारों मे अपूर्णताए उत्पन्न होने पर मजदूरी की दर तथा रोजगार के स्तर मे परिवर्तन आ जाता है। बहुधा इन्ही अपूर्णताओं के कारण

श्रमिकों का शोषण होता है, यानी उन्हें उनके सीमान्त उत्पादन मूल्य की तुलना में कम मजदूरी प्राप्त होती है। यदि सरकार शोषण की इस समस्या के प्रति जागरूक हो तो श्रमिक संघों की उपस्थिति सरकारी नीतियों की क्रियान्विति में सहायक हो सकती है। इसके विपरीत यदि सरकार श्रमिकों के शोषण के प्रति उदासीन हो तथा मजदूरी एवं रोजगार के नियमन हेतु कोई कदम न उठाना चाहे तो श्रमिकों को स्वयं अपने अधिकारों की रक्षा हेतु संगठित होना पड़ता है।

साधारण तौर पर श्रमिक संघ उत्पादक फर्मों पर मजदूरी में पर्याप्त वृद्धि हेतु दबाव डालते हैं। यही नहीं वे संगठित सौदाकारी के अस्त्र का प्रयोग करके मजदूरों की कार्य करने की दशाओं में सुधार हेतु भी कार्य कर सकते हैं। कभी कभी श्रमिक संघ रोजगार में वृद्धि हेतु भी नियोक्ताओं पर दबाव डालते हैं, हालांकि इसके उदाहरण बहुत कम देखने को मिल पाते हैं।

वस्तुत श्रमिक संघ किस सीमा तक श्रमिकों के लिए उचित या न्यायपूर्ण मजदूरी तथा रोजगार के उच्चतर स्तर जुटा पाते हैं यह दो बातों पर निर्भर करता है। प्रथम तो यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे श्रम की पूर्ति लोच में कितना परिवर्तन कर पाते हैं। द्वितीय यह इस बात पर निर्भर करता है कि श्रमिकों की उत्पादकता का स्तर कितना है क्योंकि इसी से श्रम की माग यानी MRP वक्र का ढलान निर्धारित होता है।
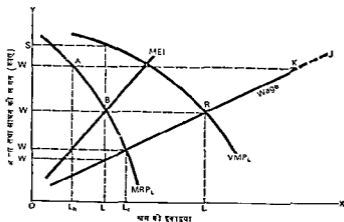
चित्र 19 6 श्रमिक संघों के आर्थिक प्रभाव

चित्र 19 6 में हम ऐसी फर्म का विश्लेषण प्रारभ करते हैं जो वस्तु के बाजार में एकाधिकारी होने के साथ ही साधन (श्रम) के बाजार में भी क्रेताधिकारी है। श्रम के प्रयोग की इष्टतम स्थिति B पर निर्धारित होगी जहा MRP वक्र MEI वक्र को काटता है। ऐसी स्थिति में फर्म OL_r मात्रा में श्रम का प्रयोग करके W_p रुपए

को मजदूरी चुकाती है। ऐसी दशा में श्रमिकों का कुल शोषण SW_p होगा जो वस्तुतः OL_r रोजगार स्तर पर VMP_L एवं मजदूरी की दर का अंतर है।

अब मान लीजिए इस शोषण से श्रमिकों को बचाने हेतु एक श्रमिक संघ गठित किया जाता है। इस श्रमिक संघ के समक्ष तीन विकल्प हैं। प्रथम विकल्प तो यह है कि यह फर्म पर उच्चतर मजदूरी चुकाने हेतु दबाव डाले। मान लीजिए, श्रमिक संघ फर्म पर दबाव डाल कर OW_h मजदूरी निर्धारित करवा लेता है। ऐसी दशा में श्रम का पूर्ति वक्र W_h KJ बन जाता है। नियोक्ता या फर्म OW_h मजदूरी देने को बाध्य है परंतु अब श्रम की सीमांत व्यय रेखा W_h KJ को फर्म का MRP_L वक्र A बिंदु पर काटता है और इसलिए फर्म केवल OL_h मात्रा में ही श्रम का प्रयोग करना चाहेगी। अन्य शब्दों में, यदि श्रमिक संघ बहुत ऊंची मजदूरी के लिए फर्म पर दबाव डालता है तो इसके फलस्वरूप रोजगार का स्तर गिर जाता है।

द्वितीय विकल्प के अनुसार श्रमिक संघ नियोक्ता फर्म को वह मजदूरी चुकाने हेतु बाध्य कर सकते हैं जो श्रम के प्रतियोगी बाजार में देय होती। स्पष्ट है, चित्र 19.6 में *एकाधिकारी फर्म का मांग वक्र* MRP_L वक्र है जबकि *श्रम का पूर्ति वक्र* W वक्र है। इन दोनों के प्रतिच्छेदन पर फर्म WO_c मजदूरी चुकाती है तथा OL_c मात्रा में श्रम का प्रयोग करती है। ऐसी स्थिति में श्रमिक संघ मजदूरी तथा रोजगार दोनों ही के स्तर में कुल सुधार करवाने में सफल हो जाता है ($OW_c > OW_p$ तथा $OL_c > OL_r$)।

तीसरी स्थिति में श्रमिक संघ का प्रयोजन रोजगार के मूल स्तर (OL_r) को बनाए रखते हुए सदस्य-श्रमिकों के लिए उच्चतम मजदूरी दिलाना है। ऐसी स्थिति में उच्चतम मजदूरी OW_r ही सकती है तथा यह मजदूरी निर्धारित हो जाने पर श्रम का पूर्ति वक्र W_r BRJ हो जाता है जिसे एकाधिकारी फर्म के लिए *श्रम का मांग वक्र* (MRP_L) B बिंदु पर काटता है। अस्तु, श्रमिक संघ दिए हुए रोजगार स्तर (OL_r) पर OW_r मजदूरी प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। जैसा कि स्पष्ट है इससे ऊंची मजदूरी मांगने पर रोजगार का स्तर गिर जाता है। श्रमिक संघ बहुधा इसी रणनीति का आश्रय लेते हैं जिसके अनुसार वे रोजगार के निर्दिष्ट स्तर पर अधिकतम संभव मजदूरी दिए जाने हेतु संघर्ष करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि श्रमिक संघ बहुधा श्रम की पूर्ति को प्रभावित करके ही मजदूरी की दर (तथा रोजगार) को प्रभावित करते हैं। हमने पिछले अध्याय में बतलाया था कि एक सीमा के पश्चात *व्यष्टिगत श्रम का पूर्ति वक्र* पीछे की ओर मुड़ जाता है, तथापि बाजार का श्रम पूर्ति वक्र किसी सीमा तक धनात्मक ढलानयुक्त ही होता है। चूंकि MEI वक्र का निरूपण इसी श्रम पूर्ति वक्र के आधार पर होता है, रोजगार का स्तर एवं मजदूरी दर का निर्धारण भी उस स्तर पर होगा जहां MEI को श्रम का मांग वक्र (MRP_L) काटता है। MEI वक्र जितना अधिक ढलानयुक्त (steep) होगा, रोजगार व मजदूरी के स्तर उतने नीचे होंगे तथा श्रमिक संघों की स्थापना से उतना ही अधिक लाभ हो सकेगा।

चित्र 19.6 में यह स्पष्ट है कि श्रमिक संघ श्रम की पूर्ति को प्रभावित करके श्रम के क्रेताधिकारिक शोषण (monopsonistic exploitation) को तो समाप्त कर लेते हैं, फिर भी वस्तु के बाजार में विद्यमान एकाधिकार के कारण श्रमिकों का जो शोषण होता है (जो वस्तुतः VMP व MRP का शीर्ष अंतर है) उसे समाप्त करना श्रमिक संघों के वश की बात कदापि नहीं है। द्वितीय, यदि क्रेताधिकारी श्रम के बाजार में क्रेताधिकारिक भेदमूलक नीति (monopsonistic discrimination) अपनाता हो तो उसे समाप्त करना भी श्रमिक संघों के लिए कदापि संभव नहीं हो पाता।

क्रेताधिकारिक भेदमूलक नीति (Monopsonistic Discrimination)

श्रम के बाजार में क्रेताधिकारी द्वारा भेदमूलक नीति ठीक उसी प्रकार की नीति है जैसा कि वस्तु के बाजार में एकाधिकारी द्वारा अपनाई जाती है। जैसा कि एकाधिकार के अंतर्गत (अध्याय 14) हमने पढ़ा था, एक एकाधिकारी फर्म भेदमूलक नीति के अंतर्गत वस्तु के अलग अलग बाजारों में अलग अलग कीमत वसूल करती है। ठीक इसी प्रकार एक क्रेताधिकारी श्रम के अलग-अलग बाजारों में अलग अलग दरों पर मजदूरी चुकाने में सक्षम होता है। परंतु मजदूरी की दरों में कितना अंतर होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि विभिन्न बाजारों में श्रम की पूर्ति लोच में कितना अंतर है।

मान लीजिए, एक क्रेताधिकारी फर्म दो बाजारों—L_1 व L_2—से श्रम प्राप्त करती है। दोनों बाजार इस प्रकार से गठित किए गए हैं कि L_1 में श्रम की पूर्ति L_2 की तुलना में अधिक लोचदार है। वस्तु के बाजार में भेदमूलक नीति होने पर फर्म उस बाजार में वस्तु की कीमत वसूल करती है जहां माग की लोच कम है, जबकि जहां माग की लोच अपेक्षाकृत अधिक है, उस बाजार में वस्तु की कीमत कम होगी। परंतु एकाधिकारी फर्म दोनों बाजारों से प्राप्त सीमांत आगम को समान करते हुए ही यह तय करती है कि किस बाजार में वस्तु की कितनी मात्रा बेची जाए।

श्रम के बाजार में भेदमूलक नीति के अंतर्गत क्रेताधिकारी श्रम के सीमांत आगम उत्पादन (MRP) को दोनों बाजारों में श्रम सीमांत व्यय (MEI_1 एवं MEI_2) के समान करते हुए भी मात्राएं प्रयुक्त करेगा। अस्तु—

$$MRP = MEI_1 = MEI_2 \qquad (19\ 32)$$

परंतु समीकरण (19 21) के अनुसार—

$$MEI = W\left(1+\frac{1}{\theta}\right)$$

अतः

$$MRP = W_1\left(1+\frac{1}{\theta}\right) = W_2\left(1+\frac{1}{\theta}\right) \qquad (19\ 33)$$

चूंकि ऊपर यह मान्यता ली गई कि $\theta_1 > \theta_2$ है, अतः प्रथम बाजार में द्वितीय बाजार की अपेक्षा मजदूरी की दर एवं रोजगार का स्तर दोनों ही कम होंगे। मान लीजिए,

$MRP = MEI_1 = MEI_2 = 15$ है तथा θ_1 एवं θ_2 क्रमश 3 व 2 हैं। अस्तु—

$$15 = W_1\left(1+\frac{1}{3}\right)$$
$$15 = W_2\left(1+\frac{1}{2}\right)$$

प्रथम बाजार में

$$15 = W_1 + \frac{W_1}{3}$$
$$45 = 3W_1 + W_1$$
$$11\ 25 = W_1$$

द्वितीय बाजार में

$$15 = W_2 + \frac{W_2}{2}$$
$$30 = 2\ W_2 — W_2$$
$$10 = W_3$$

इस प्रकार जहा श्रम की पूर्ति लोच कम है वहा मजदूरी की दर भी कम है, चूकि श्रम का पूर्ति वक्र धनात्मक ढलानयुक्त होता है। अत जहा मजदूरी की दर अधिक है उस श्रम के बाजार मे रोजगार का स्तर भी अधिक होगा। चित्र 19 7 मे इसी तथ्य की पुष्टि की गई है।

(a) बाजार I
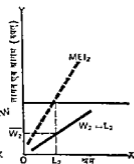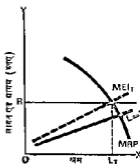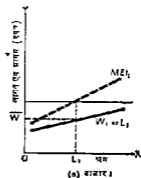
चित्र 19 7 श्रम के बाजार मे क्रेताधिकारिक भेदमूलक नीति

चित्र 19 7 के पैनल (a) व पैनल (b) मे प्रथम व द्वितीय श्रम के बाजारो मे विद्यमान पूर्ति फलन (L_1 व L_2) एव उनके अनुरूपी सीमांत व्यय वक्र (MEI_1 व MEI_2) प्रस्तुत किए गए हैं। दोनो बाजारो की कुल श्रम पूर्ति एव सीमांत व्यय वक्र पैनल (c) म प्रदर्शित किए गए हैं। MEI_1 को फर्म का MRP वक्र OR स्तर

पर काटता है तथा यही स्तर MEI_1 व MEI_2 को किये जाने हेतु फर्म श्रम के प्रथम बाजार म OL_1 मात्रा तथा द्वितीय बाजार म OL_2 मात्रा का प्रयोग करती है। जैसा कि चित्र म स्पष्ट है, श्रम नी पूर्ति बाजार I मे बाजार II की अपेक्षा अधिक लोचदार है। इसीलिए बाजार I मे मजदूरी व रोजगार के स्तर बाजार II की तुलना मे अधिक ऊचे हैं ($O\bar{W}_1 > O\bar{W}_2$, $OL_1 > DL_2$)। अस्तु, क्रेताधिकारी श्रम की पूर्ति लाच के अनुसार विभिन्न बाजारो म मजदूरी की भिन्न-भिन्न दरें निर्धारित करता है। परतु मजदूरी की दरो मे अतर हेतु अन्य घटक भी उत्तरदायी हो सकते हैं। इसीलिए आगामी अनुभाग मे हम मजदूरी की दरो मे अतर का विश्लेषण करते हैं।

19 6 मजदूरी की दरो म अंतर[4]
(Wage Differentials)

मजदूरी की दरो मे अतर के लिए श्रम की पूर्ति लोच के अतिरिक्त अन्य कारण भी उत्तरदायी हो सकते हैं। बहुधा उपभोक्ता किसी प्रामाणीकृत वस्तु के लिए एक ही कीमत चुकाते हैं, चाहे इस वस्तु की बिक्री किसी के द्वारा भी की जाती हो। परतु श्रम मे मानवीय गुण निहित होते हैं, जो सार्वभौमिक रूप से एक जैसे नही होते। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न श्रमिको की मजदूरी भी भिन्न ही मिलती है। मानवीय गुणों का प्रामाणीकरण नही हो सकता, और इसीलिए समूचे बाजार मे मजदूरी की दर भी समान नही हो पाती। यदि यह मान भी लिया जाए कि श्रम का प्रामाणीकरण सभव है, तो फिर यह प्रश्न उठता है कि क्या श्रम की व्युत्पन्न माग भी एक जैसी है? जैसा कि हम जानते है, श्रम की माग व्युत्पन्न माग है तथा अतिम वस्तुओं की माग व सहयोगी साधनो की पूर्ति म परिवर्तन होने पर श्रम की माग पर भी प्रभाव होगा जो अतत इसकी मजदूरी की दर को भी प्रभावित कर देगा। चूकि विभिन्न वस्तुओ की माग मे होन वाले परिवर्तन समरूपी नही होते, चूकि वस्तुओ की माग पर उपभोक्ताओ की रुचि व आय-भिन्नता का अलग-अलग प्रभाव पडता है, श्रम की माग भी विभिन्न वस्तुओ के सदर्भ मे भिन्न भिन्न रूप से प्रभावित होगी। यही कारण है कि मजदूरी की दर मे भी अतर उत्पन्न हो जाता है।

द्वितीय, मजदूरी की दर मे परिवर्तन होने पर सभी मजदूरो पर इसकी प्रतिक्रिया एक जैसी नही होती। अन्य शब्दो मे, व्यष्टिगत स्तर पर श्रम की पूर्ति-लोच मे पर्याप्त अतर होता है। कुछ श्रमिक निर्दिष्ट स्तर से कम मजदूरी पर कार्य करने को तैयार नही होते जबकि कुछ श्रमिको के श्रम का (व्यष्टिगत) पूर्ति वक्र एक सीमा के बाद पीछे की ओर मुड जाता है। कुछ ऐसे भी श्रमिक होते हैं जो मजदूरी की दर मे थोडी सी वृद्धि होने पर श्रम की पूर्ति मे पर्याप्त वृद्धि करने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार श्रमिकों के श्रम की पूर्ति लोच मे अतर होने के कारण भी मजदूरी की दरो

4 James E Hibdon, 'Price and Welfare Theory' (Mc Graw Hill, 1969), pp 372-385

मे अतर उत्पन्न हो जाते हैं। महिलाओ व पुरुषो की मजदूरी मे अतर का प्रमुख कारण इसी मे निहित है।

तृतीय, श्रम मे पूजी-निवेश द्वारा इसकी दक्षता में वृद्धि की जा सकती है। कभी कभी पूजी निवेश का यह अतर (जो बहुधा श्रमिको के शिक्षण व प्रशिक्षण के भिन्न स्तरो मे प्रतिबिंबित होता है) श्रमिको की दक्षता मे अतर उत्पन्न करता है। इसीलिए अधिक प्रशिक्षित एव अनुभवी श्रमिक को अधिक मजदूरी प्रदान की जाती है। एक डॉक्टर अथवा इजीनियर एव कला या वाणिज्य के स्नातको के पारिश्रमिक मे अतर इसी बात की पुष्टि करते हैं कि जिस क्षेत्र मे प्रशिक्षण हेतु अधिक पूजी व समय/श्रम की आवश्यकता होती है, वहा मजदूरी का स्तर भी ऊचा होता है।

मजदूरी की दरो मे अतर का चौथा कारण श्रम की गतिशीलता से सबद्ध है। भारत मे अनेक ऐसी जातिया है जिनमे श्रमिक सरलता से एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे बहिर्गमन कर जाते हैं तथा जिनकी गतिशीलता पर जाति, भाषा व धर्म का कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नही पडता। दूसरी ओर, अनेक ऐसी जातिया हैं जो परपराओ व रूढियो म बधे रहने के कारण ऊची मजदूरी मिलने पर भी अपने इलाके से बाहर जाना पसद नही करते।

पाचवें, श्रमिको मे कितना सगठन है इसका भी उनकी मजदूरी दर पर पर्याप्त प्रभाव पडता है। बहुधा अन्य बातें समान होने पर भी सगठित श्रमिक असगठित श्रमिको की तुलना मे ऊची मजदूरी प्राप्त करने मे सफल हो जाते हैं।

अतिम बात यह है कि किसी प्रकार के श्रम की पूर्ति को कितनी सहजता के साथ बढाया जा सकता है इसका भी उसकी मजदूरी दर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है।

लेफ्टविच का कथन है कि विभिन्न प्रकार के श्रम की शीर्ष तथा क्षैतिज अतर होने के कारण मजदूरी की दरें भिन्न होती हैं।[5] क्षैतिज अतर से उनका अभिप्राय श्रम की विभिन्न किस्मो की माग व पूर्ति के अतरो से है। यदि किसी प्रकार के श्रम की माग में भारी वृद्धि हो जाए तो उसकी मजदूरी दर मे भी वृद्धि हो जाएगी। इसके विपरीत शीर्ष अतर से उनका अभिप्राय श्रम के विविध प्रयोगो मे प्रवेश की सहजता से है। कोई श्रमिक कितनी सहजता से एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे प्रविष्ट होता है इसके फलस्वरूप भी उसकी मजदूरी मे अतर आ जाता है। एक शिशु-चिकित्सक की सेवाओ की माग कम हो जाए तो उसे कम मजदूरी पर ही सतोष करना होगा क्योकि उसके श्रम मे इतनी अधिक विशिष्टता है कि वह सरलता से अन्य दूसरे कार्य मे प्रविष्ट नही हो सकता। अस्तु माग की तुलना मे श्रमिक की अन्य किसी व्यवसाय मे प्रविष्ट होने की सहजता का भी उसकी मजदूरी पर पर्याप्त प्रभाव पडता है।

मजदूरी मे अतर के कुछ उदाहरण (A few examples of wage differentials) बहुधा प्रश्न उठता है कि एक अभिनेत्री की मजदूरी किसी प्राथमिक पाठशाला के शिक्षक की तुलना मे अधिक क्यो होती है, अथवा एक नाई की तुलना मे

5 Leftwich, op cit, pp 343-345

संगीतकार को अधिक पारिश्रमिक क्यों मिलता है ? ऊपर वर्णित कारणों को ध्यान से पढ़ने के पश्चात् हम इसके पीछे निहित कारणों को समझ सकते हैं।

बहुधा अभिनेत्री को प्राथमिक शाला के शिक्षक से अधिक पारिश्रमिक मिलने के पीछे एक प्रमुख कारण यह है कि अभिनेत्री को प्राप्त अभिनय कौशल में जो विलक्षणता है उसके कारण उसके श्रम की पूर्ति लगभग एकाधिकृत होती है जबकि प्राथमिक शाला के शिक्षकों के श्रम में विलक्षणता के अभाव के साथ ही उनकी पूर्ति काफी अधिक होती है। यही नहीं, अभिनेत्री के श्रम से उत्पन्न वस्तु (फिल्म) की माग व कीमत बहुत अधिक होने के कारण उसके श्रम का सीमांत उत्पादन मूल्य शिक्षक के श्रम के सीमांत उत्पादन मूल्य की तुलना में बहुत अधिक होता है। सीमांत उत्पादन मूल्य (VMP) के इस ऊंचे स्तर के कारण फिल्म निर्माता अभिनेत्री को काफी अधिक पारिश्रमिक देने को तैयार हो जाते हैं। तृतीय बात यह है कि पारिश्रमिक की दर में पर्याप्त वृद्धि हो जाने के बावजूद अभिनेत्री के श्रम की पूर्ति में वृद्धि करना संभव नहीं हो पाता जबकि शिक्षक की पगार में तनिक सी वृद्धि करने पर उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। अभिनेत्री की स्थिति एकाधिकारी फर्म की भांति है जबकि शिक्षक की स्थिति एक प्रतियोगी फर्म से बेहतर नहीं है। इन्हीं कारणों से एक शिक्षक की तुलना में अभिनेत्री को कई गुणा पारिश्रमिक मिलता है।

दूसरा उदाहरण एक संगीतकार व नाई का है। यहां भी संगीतकार के कौशल की *विलक्षणता के कारण उसे लगभग एकाधिकारी फर्म जैसी शक्तियां प्राप्त हो जाती* हैं, जबकि नाई का कार्य साधारणतया इतना अधिक कौशलपूर्ण नहीं होता। साथ ही, मांग की तुलना में संगीतकारों की संख्या नाइयों की तुलना में अत्यल्प होती है। तीसरी बात यह है कि संगीतकार को वाद्य यंत्रों व अपने प्रशिक्षण हेतु भारी मुद्रा का निवेश करना होता है जबकि नाई के व्यवसाय में इतना अधिक रियाज करने या उप*करणों की खरीद में काफी अधिक पूंजी निवेश करने की आवश्यकता नहीं होती।* इसी संदर्भ में एक चौथी बात यह भी कही जा सकती है कि प्रत्येक व्यक्ति में कुशल संगीतकार बनने की प्रतिभा विद्यमान नहीं होती, परंतु नाई का व्यवसाय कोई भी व्यक्ति अपना सकता है।

वास्तविक मजदूरी एवं मौद्रिक मजदूरी में अंतर[6]
(Nominal and Real Wages)

मजदूरी की दरों में विद्यमान अंतर मौद्रिक भी हो सकते हैं तथा वास्तविक भी। वास्तविक मजदूरी से हमारा आशय श्रमिक को प्राप्त होने वाली मजदूरी की क्रय शक्ति से है। शहरों में गांवों की अपेक्षा थोड़ी सी अधिक मजदूरी मिलने पर भी अनेक *श्रमिक शहर की ओर आना पसंद नहीं करते क्योंकि यहां का जीवन अधिक खर्चीला* है तथा मकानों के अभाव, गंदगी आदि के कारण श्रमिकों को काफी कठिनाई होती

6 Alfred Marshall, op cit, Book VI, Chapter III

है। श्रमिकों के दो समूहों की मजदूरी के स्तरों की तुलना करते समय हमें इनके अतिरिक्त निम्न अन्य बातों का भी ध्यान रखना चाहिए, (i) श्रमिकों के कार्य करने की दशाओं का अन्तर, (ii) श्रमिकों के भविष्य की उज्ज्वलता, (iii) कार्य की प्रकृति अस्थायी है अथवा स्थायी, (iv) मजदूरी के अतिरिक्त आय के अन्य स्रोत व सुविधाएं उपलब्ध हैं या नहीं, (v) परिवार के अन्य सदस्यों को कार्य मिल सकता है या नहीं, (vi) कार्य की प्रकृति किस प्रकार की है, तथा (vii) श्रमिक के जीवन की सुरक्षा। मार्शल ने स्पष्ट किया कि हमें मौद्रिक मजदूरी की अपेक्षा श्रमिक की वास्तविक मजदूरी पर ध्यान देना चाहिए। उन्होंने एडम स्मिथ के इस कथन का पूर्ण समर्थन किया कि "श्रमिक धनी है या निर्धन, उसे पर्याप्त पारिश्रमिक मिलता है अथवा अपर्याप्त, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि उसके श्रम की उन वस्तुओं की वास्तविक कीमत मिल रही है।"[7] यही कारण है कि मौद्रिक मजदूरी काफी अधिक होने, या इसमें पर्याप्त वृद्धि हो जाने पर भी श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी यथावत् रह सकती है। मुद्रा-स्फीति के समय मजदूरी में अविरल रूप से वृद्धि होने पर भी श्रमिक असन्तोष बना रहता है क्योंकि उन्हें प्राप्त (मौद्रिक) मजदूरी की क्रय शक्ति में स्फीति के कारण ह्रास होता जाता है।

परिशिष्ट

मजदूरी की दर, रोजगार का स्तर एवं शोषण की संभावना

	वस्तु के बाजार की प्रकृति	साधन के बाजार की प्रकृति	मजदूरी (W) का निर्धारण कौन करता है	इष्टतम रोजगार-स्तर की शर्तें	शोषण होता है या नहीं	शोषण का माप
1.	पूर्ण प्रतियोगिता	पूर्ण प्रतियोगिता	माग व पूर्ति	VMP=W	नहीं	—
2.	पूर्ण प्रतियोगिता	क्रेताधिकार	क्रेताधिकारी	VMP=MEI	हां	VMP—W
3.	एकाधिकार	पूर्ण प्रतियोगिता	माग व पूर्ति	MRP=W	हां	VMP—MR
4	एकाधिकार	क्रेताधिकार	क्रेताधिकारी	MRP=MEI	हां	VMP—W

7 Ibid., p 453.

20

आर्थिक लगान
(ECONOMIC RENT)

प्रस्तावना

अठारहवीं शताब्दी के मध्य मे प्रकृतिवादियो ने वितरण की एक स्कीम प्रस्तुत की थी। *प्रकृतिवाद के प्रणेता डॉ० केने ने बतलाया था कि भूमि ही उत्पादन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन है क्योंकि केवल भूमि से ही "शुद्ध उत्पत्ति" (net product) की प्राप्ति होती है।* डा० केने के विचार मे कृषि मे शुद्ध अतिरेक प्रदान करने की एक विलक्षण एवं चमत्कारिक शक्ति है। प्रकृतिवादियो ने प्रकृति को उदार-मना बतलाते हुए कहा कि मनुष्य पदार्थ का सृजन नही कर सकता, वह केवल उसका रूप परिवर्तन कर सकता है।

प्रकृतिवादियो ने यह भी कहा कि भूमि प्राप्त करने की स्पर्द्धा के कारण भू-स्वामियो को लगान के रूप मे समूची शुद्ध उत्पत्ति काश्तकारो से वसूल करने का अवसर मिल जाता है। परन्तु प्रकृतिवादियो ने लगान का कोई सिद्धात प्रतिपादित नही किया। एडम स्मिथ ने भी लगान के विषय मे इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यह भू-स्वामियो द्वारा वसूल की गई 'एकाधिकारिक कीमत" है, क्योंकि "जो कुछ काश्तकार दे सकते हैं यह भुगतान उसी के अनुरूप है।" परन्तु वस्तु की कीमत की चर्चा करते समय स्मिथ ने लगान को लागत का एक अश मानते हुए कहा कि इसका कीमत पर प्रभाव पड़ता है।[1] स्मिथ ने कहा कि भूमि की उर्वरा शक्ति एव स्मिथ के अनुसार इस पर देय लगान मे भी परिवर्तन हो जाता है। परन्तु साथ ही उनका यह भी तर्क था कि परिवहन के साधनो मे सुधार होने के साथ साथ स्थिति-जन्य अतर तथा लगान की दरो मे अतर कम होते जाते हैं। एडम स्मिथ ने यह भी कहा कि विशिष्टीकरण एव श्रम-विभाजन के साथ-साथ राष्ट्रीय आय मे लगान का अश बढता जाता है क्योंकि भूमि पर दबाव बढने के साथ-साथ कृषि एव उद्योग के मध्य व्यापार शर्तें (terms of trade) अनुकूल होती जाती हैं।

1 Henry W Sp egel, 'The Growth of Economic Thought' (Prentice Hall New York, 1971), p 253

परंतु इसके बावजूद स्मिथ ने लगान के निर्धारण हेतु कोई सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया। संभवतः डेविड रिकार्डो प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सर्वप्रथम लगान का सिद्धांत प्रस्तुत किया। हम लगान के सिद्धांतों के अंतर्गत इसीलिए सर्वप्रथम रिकार्डो के सिद्धांत की समीक्षा करेंगे, एवं तत्पश्चात् मार्शल एवं अन्य विद्वानों के विचारों का विश्लेषण किया जाएगा।

20 1 रिकार्डो का लगान-सिद्धांत
(Ricardian Theory of Rent)

डेविड रिकार्डो ने प्रकृतिवादियों के इस विचार की भर्त्सना की कि प्रकृति की उदारता के कारण लगान की उत्पत्ति होती है। उन्होंने स्मिथ के इस कथन से भी असहमति व्यक्त की कि ईश्वर ने भूमि में कुछ ऐसी शक्तियां प्रदान की हैं जिनके कारण इसे जोतने वालों की तुलना में अधिक व्यक्ति का भरण पोषण संभव है, और इन्हीं शक्तियों के कारण लगान की उत्पत्ति होती है।

रिकार्डो ने कहा कि प्रकृति ने भूमि के अलग-अलग खंडों में भिन्न उर्वरा-शक्ति का सृजन करके मानव के साथ सौतेला व्यवहार किया है क्योंकि उर्वरा शक्ति की भिन्नता के कारण समान मात्रा में पूंजी व श्रम का प्रयोग करने पर भी लाभ का स्तर भिन्न होता है। रिकार्डो ने कहा कि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान होती है तथा इसे बनाए रखने हेतु अधिक उर्वरा भूमि पर अधिक लगान जरूरी हो जाता है। इस प्रकार रिकार्डो के मतानुसार भूमि की उर्वरा शक्ति में भिन्नता तथा सभी काश्तकारों को समान स्तर पर लाने की नीति के कारण लगान की उत्पत्ति होती है।

रिकार्डो के लगान सिद्धांत का विश्लेषण करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना उपयुक्त होगा। प्रथम, रिकार्डो ने न केवल भूमि के विभिन्न खंडों में भिन्न उर्वरा शक्ति की मान्यता ली थी, अपितु उन्होंने यह भी माना था कि इन भू खंडों पर इनकी प्रति एकड़ उपज के क्रम में खेती की जाएगी। उदाहरण के लिए, सर्वाधिक उपजाऊ भू खंड पर सबसे पहले खेती होगी तथा सबसे कम उर्वरा भू खंड पर सबसे बाद में। द्वितीय, रिकार्डो ने यह भी मान्यता ली थी कि भूमि की उर्वरा शक्तियां मौलिक एवं अनाशवान होती हैं। अन्य शब्दों में, रिकार्डो के मतानुसार भूमि की उत्पादकता यथावत् रहती है हालांकि उसी भूमि खंड पर अधिक श्रम व पूंजी का अधिक प्रयोग करने पर इससे ह्रासमान प्रतिफल के अनुरूप उत्पादन प्राप्त होता है। इसी प्रकार रिकार्डो ने यह भी कहा कि भूमि की उर्वरा शक्ति मौलिक होती है तथा मनुष्य किसी भी प्रकार इसमें वृद्धि नहीं कर सकता। तृतीय चूंकि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, और इसलिए वस्तु की कीमत दी हुई है, रिकार्डो के कथनानुसार आर्थिक लगान वह अतिरेक है जो लागत के ऊपर कृषक को प्राप्त होता है। चौथे, रिकार्डो ने एडम स्मिथ के विपरीत यह मान्यता ली कि लागत के स्तर का लगान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और इसलिए उत्तरोत्तर कम उत्पादक भूमि पर खेती करने

पर लगान में तो वृद्धि होती है, तथापि इसके कारण कीमत में वृद्धि नहीं होती। इसके विपरीत रिकार्डो ने स्पष्ट किया कि जनसंख्या में वृद्धि के कारण जैसे-जैसे कीमत में वृद्धि होती है तथा कम उपजाऊ भूमि पर खेती होती है, वैसे वैसे अधिक उपजाऊ भू-खंडों पर प्राप्त अतिरेक में वृद्धि होती है, तथा इनके जोतने वाले काश्तकारों को अधिक लगान देना होता है। संक्षेप में, रिकार्डो के मतानुसार "कीमतें ऊंची इसलिए नहीं हैं क्योंकि लगान ऊंचा है, अपितु लगान इसीलिए ऊंचा है क्योंकि कीमतें ऊंची हैं," क्योंकि कीमतें ऊंची होने के कारण ही काश्तकारों को कम उपजाऊ भूमि का प्रयोग करने की प्रेरणा मिलती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि रिकार्डो का लगान सिद्धांत इन्हीं प्रमुख मान्यताओं पर आधारित है।

कीमत, उत्पादन लागत तथा लगान के बीच संबंध—रिकार्डो ने बतलाया कि खाद्यान्न की कीमत सबसे अंतिम, यानी न्यूनतम उपजाऊ भू-खंड पर चुकाई गई लागत के समान होती है। इस भू-खंड पर खेती करना इसलिए अनिवार्य हो जाता है क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण खाद्यान्नों की मांग बढ़ती जा रही है। अन्य शब्दों में, सीमांत भूमि पर कृषि करने वाले व्यक्ति को उत्पादन लागत के समान ही कीमत प्राप्त होती है। चूंकि सीमांत भूमि के अतिरिक्त जो भी उत्पादन अन्य भू-खंडों पर प्राप्त होता है वही लगान के रूप में भू-स्वामियों को चुका दिया जाता है, रिकार्डो के मतानुसार जैसे जैसे कम उपजाऊ भूमि पर खेती की जाती है, कम उपजाऊ भूमि पर लागत में वृद्धि होती जाती है तथा अधिक उपजाऊ भू-खंडों पर लगान में वृद्धि होती जाती है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सीमांत भू-खंड पर कीमत व लागत में समानता होने के कारण कोई भी लगान प्राप्त नहीं होता।

मान लीजिए, किसी नए प्रदेश में पर्याप्त मात्रा में उपजाऊ भूमि उपलब्ध है। ऐसी स्थिति में प्रारंभ में काश्तकारों से भू-स्वामियों को कोई लगान प्राप्त नहीं होता। परन्तु जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे कम उपजाऊ भूमि पर भी खेती प्रारंभ हो जाती है, और इसके साथ ही अधिक उपजाऊ भू-खंडों पर अतिरेक उत्पन्न हो जाता है जो भू-स्वामी लगान के रूप में लेना प्रारंभ कर देते हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ यदि तृतीय श्रेणी के भू-खंडों पर कृषि होने लगे तो प्रथम व द्वितीय श्रेणी के भू-खंडों पर लगान लिया जाएगा। स्पष्ट है तृतीय श्रेणी के भू-खंडों पर सीमांत भूमि होने के कारण कोई लगान नहीं होगा। इसी क्रम में चौथी श्रेणी की भूमि पर खेती होने पर सीमांत भूमि लगानरहित होगी जबकि इसकी अपेक्षा प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणी के भू-खंडों पर अतिरेक में वृद्धि होने के कारण लगान में वृद्धि होती जाएगी।

रिकार्डो ने कहा, "लगान की उत्पत्ति मूल्य के कारण होती है न कि सर्पात के कारण। जैसे-जैसे नई परंतु कम उपजाऊ भूमि पर कृषि की जाती है, वैसे-वैसे लागत प्राप्त करने वाले नए वर्ग की उत्पत्ति होती चली है, साथ पूर्व से प्रयुक्त भू-खंडों पर लगान की राशि बढ़ती जाती है।"

अब हम उत्पादन की लागत तथा कीमत के मध्य संबंधों की चर्चा पुनः करेंगे। रिकार्डो ने यह माना था कि वस्तुओं की सापेक्ष कीमत का निर्धारण दो बातों से

होता है (अ) किसी वस्तु के उत्पादन हेतु आवश्यक श्रम की मात्रा, तथा (ब) वस्तु को बाजार तक लाने में व्यय किया गया समय। अब मान लीजिए कि श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है तथा श्रम की प्रति इकाई लागत एक रुपया है। यह भी मान लीजिए कि तीन प्रकार के भू-खंडो—A, B तथा C—से जो गेहूं प्राप्त होता है उसमें प्रति क्विटल उत्पादन हेतु क्रमश 40, 50 व 60 घंटे श्रम प्रयुक्त करना होता है। अन्य शब्दों में, प्रति क्विंटल उत्पादन लागत तीनों भू खंडो पर क्रमश 40, 50 व 60 रुपये है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि गेहूं कि कीमत सीमांत भू-खंड पर व्यय की गई उत्पादन लागत यानी 60 रुपये प्रति क्विंटल के समान होती है। यदि गेहूं की कीमत 60 रुपए से कम होगी तो भू खंड C पर खेती नहीं की जाएगी। अस्तु, गेहूं की कीमत 60 रुपए प्रति क्विंटल होने पर भू-खंड A व B पर क्रमशः 20 व 10 रुपए का अतिरेक प्राप्त होता है जो वस्तुतः भू-स्वामियों द्वारा लगान के रूप में ले लिया जाएगा। यदि इसके विपरीत जनसंख्या की आशातीत वृद्धि तथा खाद्यान्नों की बढ़ती हुई मांग के कारण गेहूं की कीमत 70 रुपए प्रति क्विंटल हो जाए तो काश्तकारों को चौथी श्रेणी के भू-खंड पर खेती की प्रेरणा प्राप्त हो जाएगी। मान लीजिए चतुर्थ श्रेणी के भू-खंड पर उत्पादन लागत 70 रुपए हो तो उस पर कोई अतिरेक प्राप्त नहीं होगा जबकि A, B व C भूखंडो पर अतिरेक (लगान) का परिमाण बढ़कर क्रमश 30, 20 व 10 रुपए हो जाएगा।

डी० एच० बुकेनन[2] ने रिकार्डो के समूचे लगान सिद्धांत को चार भागो में व्यक्त कर दिया है। प्रथम, रिकार्डो एवं उनके 19वीं शताब्दी में विद्यमान सहयोगियों ने मूल्य एवं वितरण की चर्चा की, परंतु उनका अधिक जोर वितरण संबंधी समस्या पर रहा। रिकार्डो एवं उनके सहयोगियों का मुख्य ध्यान इस बात पर केंद्रित रहा कि भूमि से प्राप्त उपज का वितरण समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य किस प्रकार किया जाता है। द्वितीय, इन विचारकों ने केवल कृषिगत लगान की चर्चा की तथा नगरों में चुकाए जाने वाले किराए तथा उसकी प्रवृत्तियों की पूर्णतया उपेक्षा कर दी। रिकार्डो ने कहा कि उद्योगों में कुल उत्पादन को लाभ व मजदूरी के रूप में वितरित कर दिया जाता है, तथा भूमि के मालिकों को कुछ भी प्राप्त नहीं होता क्योंकि उनका उत्पादन प्रक्रिया में कोई योगदान नहीं होता। तृतीय, इन विचारकों ने विशिष्ट क्षेत्रों में प्राप्त विशिष्ट उत्पादों से उत्पन्न लगान की अपेक्षा कुल कृषि उपज से प्राप्त लगान की चर्चा की। उन्होंने मुख्यत कृषि उपज की चर्चा करते हुए इसकी उद्योगों में प्राप्त उत्पादन से तुलना की। वस्तुतः रिकार्डो यह मानने को कतई तैयार नहीं थे कि भूमि के प्रयोगों में परिवर्तन संभव भी हैं। उनके मतानुसार केवल कृषि में ही भूमि का सक्रिय योगदान हो सकता है, और इसलिए लगान पर रोपित कर से केवल भू-स्वामी ही प्रभावित होते हैं। अंतिम, चूंकि भूमि का कृषि के अतिरिक्त अन्यत्र कोई

2 D H Buchanan, "The Historical Approach of Rent and Price Theory", Reprinted in 'American Economic Asso'. (Ed) Readings in the Theory of Income Distribution (1950), pp 617 624.

प्रयोग नहीं होता, अत या तो प्राप्त उत्पादन पर जो कुछ लगान भू स्वामी को उपलब्ध होता है, उसे उसी स्वीकार कर लेना चाहिए अथवा भूमि को पूर्णत निष्क्रिय रखकर कुछ न मिले तब भी सतोष करना चाहिए।

20 2 रिकार्डो के सिद्धान्त का व्यावहारिक प्रयोग
(Extension of Ricardian Theory of Rent)

रिकार्डो के लगान सिद्धात को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। भौतिक उत्पादन की दृष्टि से देखने पर यह कहा जा सकता है कि परिवर्तनशील साधन की कीमत तथा इस साधन की औसत उत्पत्ति का अन्तर ही लगान है। इस सदर्भ में यह मान्यता ली जाती है कि स्थिर साधन होने के कारण भूमि की अवसर लागत शून्य है तथा केवल श्रम ही एकमात्र परिवर्तनशील साधन है जिसकी कीमत (मजदूरी) बाह्य रूप से निर्धारित की जाती है। चित्र 20 1 में हमने भूमि की तीन श्रेणियों के औसत व सीमात उत्पादन वक्र प्रस्तुत किए हैं जिनमें A भू खड सर्वाधिक उपजाऊ तथा C सबसे कम उपजाऊ है। श्रम के प्रयोग का विस्तृत मार्जिन E_c है जहा निर्दिष्ट मजदूरी दर औसत व सीमात उत्पादन के समान है। जैसा कि चित्र 20 1 के पैनल (a) से स्पष्ट है, श्रम का इष्टतम प्रयोग A व B भू खडो पर न होकर केवल C भू खड पर होता है।

चूंकि C भू-खडो पर मजदूरी का भुगतान करने के बाद काश्तकार के पास कोई भी अतिरेक शेष नहीं रहता, इस भू-खड को "लगान रहित भूमि" की सज्ञा दी जाती है। इसके विपरीत A व B भू-खडो पर अतिरेक यानी लगान प्राप्त होता है।
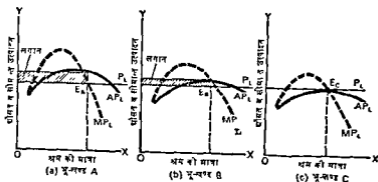
चित्र 20 1 आर्थिक लगान : भौतिक उत्पादन के आधार पर

ऊपर दिए गए विश्लेषण को ही हम आगम एवं लागत की दृष्टि से भी प्रस्तुत कर सकते हैं। परन्तु अब हम यह मान्यता लेते हैं कि कृषक प्रतियोगी बाजार में अपनी उपज बेचता है और इस कारण उपज की कीमत बाह्य रूप से निर्धारित है। कृषक

अधिकतम लाभ प्राप्ति हेतु उस सीमा तक उत्पादन करता है जहा कीमत (AR=MR) तथा सीमांत लागत समान हैं। जैसा कि चित्र 20.2 के पैनल (c) से ज्ञात होता है, सीमांत काश्तकार के लिए उत्पादन की औसत व सीमांत लागतें कीमत के समान हैं और इसलिए उसे कोई भी अतिरेक (लगान) प्राप्त नहीं हो पाता। इसके लिए अपेक्षाकृत अधिक उर्वरा भू-खंडों (A व B) पर उत्पादन लागतें कम हैं और इसीलिए उन पर बचत या अतिरेक प्राप्त होता है जिसे भू-स्वामी काश्तकार से वसूल कर लेता है। चित्र 20.2 में यह भी स्पष्ट है कि भू-खंड A पर भू-खंड B की अपेक्षा अधिक बचत (लगान) की प्राप्ति होती है।
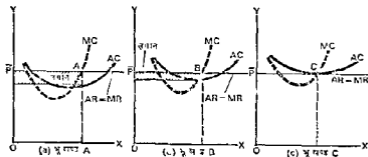
चित्र 20.2 आर्थिक लगान : आगम लागत के आधार पर

यदि जनसंख्या की वृद्धि व खाद्यान्न की बढ़ती हुई मांग के कारण कीमत में वृद्धि हो जाए तो काश्तकार और भी कम उपजाऊ, यानी C की तुलना में भी ऊंची लागत वाले भू-खंड D को प्रयोग में लेंगे, एवं इसके परिणामस्वरूप A व B भूखंडों पर देय लगान में वृद्धि हो जाएगी तथा भूखंड C पर, जहां पूर्व में लगान नहीं था, अब लगान प्रारंभ हो जाएगा।

उपरोक्त दोनों उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भूमि की उर्वरा शक्ति के अंतर के कारण ही लगान की उत्पत्ति होती है। परंतु हम एक तीसरा उदाहरण ऐसा भी ले सकते हैं जिसमें उर्वरा शक्ति समान होने पर भी लागतों में अंतर उत्पन्न हो जाता है, और इसके फलस्वरूप *कम लागत वाली इकाइयों* को *लगान* की प्राप्ति हो जाती है। बाजार से दूरी इसका एक प्रमुख कारण हो सकता है। चूंकि सभी भू-खंड समान रूप से उपजाऊ हैं, अतः उत्पादन लागतें सर्वत्र समान हैं। परंतु बाजार से दूरी में भिन्नता होने से औसत परिवहन लागतों में अंतर आ जाता है। स्पष्ट है, जो इकाई बाजार के जितनी समीप स्थित है उसे सीमांत इकाई की तुलना में उतना ही अधिक अतिरेक प्राप्त होगा।

चित्र 20.3 में परिवहन लागतों के कारण उत्पन्न "लगान-त्रिभुज" (Land Rent Triangle) प्रस्तुत किया गया है। इस त्रिभुज को देखकर यह अनुमान सहज

ही लगाया जा सकता है कि सीमांत भूमि पर प्राप्त उपज की उत्पादन लागत एवं परिवहन लागत ठीक कीमत के समान होती है, और इस कारण उस भूमि पर कोई बचत या अतिरेक की प्राप्ति नहीं होती। इसके विपरीत बाजार के समीप स्थित खेतों में परिवहन लागत कम होती है और इस कारण उन्हें बचत या लगान की होती प्राप्ति है।[3]
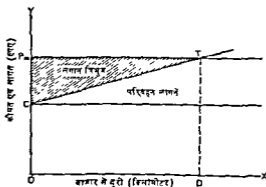
चित्र 20.3 दूरी तथा आर्थिक लगान

चित्र 20.3 में OC तो वस्तु की औसत उत्पादन लागत है जो सर्वत्र एक जैसी है जबकि OP_m वस्तु की बाजार कीमत है, जो स्वयं भी सर्वत्र समान है। परन्तु जैसे-जैसे बाजार से दूरी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे परिवहन लागतें बढ़ती जाती हैं। प्रारंभ में कुल औसत लागत (उत्पादन लागत+परिवहन लागत) व कीमत में काफी अंतर (अतिरेक या लगान) रहता है, परंतु दूरी में वृद्धि के साथ-साथ यह अंतर कम होता जाता है। अततः $\overline{OD}$ किलोमीटर पर बाजार कीमत एवं कुल औसत लागत में समानता स्थापित होने के कारण यह अतिरेक पूर्णतया समाप्त हो जाता है। वस्तु 'T' बिंदु पर स्थित उत्पादक को कोई भी अतिरेक या लगान प्राप्त नहीं होता।

ऊपर प्रस्तुत विवरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम तो यह कि लगान की उत्पत्ति भूमि की उर्वरा शक्ति की भिन्नता के कारण होती है। द्वितीय, लगान इसलिए भी उत्पन्न होता है क्योंकि श्रेष्ठ भूमि की मात्रा सीमित है। यद्यपि अल्पकाल में एक प्रयोग में भूमि का परिमाण बढ़ाया जा सकता है जबकि किसी अन्य प्रयोग हेतु कम भूमि उपलब्ध होगी, तथापि दीर्घकाल में कुल मिला कर भूमि की पूर्ति सीमित रहती है।

रिकार्डो, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने लगान की अवधारणा को केवल भूमि के संदर्भ में प्रयुक्त किया था। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मार्शल

3. मार्शल ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ इकॉनोमिक्स' में लिखा—
"यह स्मरण रखना आवश्यक है कि श्रेष्ठ बाजारों की तुलना में स्थिति के अंतर उत्पादक को प्राप्य बचत हेतु उतने ही सशक्त कारण हैं जितनी कि निरपेक्ष उर्वरा शक्ति की असमानताएं हैं।"

ने कहा कि लगान की उत्पत्ति न केवल किसी साधन की दुर्लभता के कारण होती है अपितु इसकी उत्पत्ति भी उर्वरा शक्ति के अन्तर के कारण भी होती है। यदि किसी साधन की माग मे वृद्धि होती जाए जबकि इसकी पूर्ति यथावत रहे तो लगान का भुगतान साधन की दुर्लभता का परिणाम माना जाएगा क्योंकि मांग मे वृद्धि होने के साथ पूर्ति सीमित होने के कारण साधन के स्वामी अपनी एकाधिकारिक शक्ति का प्रयोग करते हुए साधन कीमत मे वृद्धि करते जाएगे। इसके विपरीत यदि किसी साधन की विभिन्न श्रेणियों से प्राप्त प्रतिफल मे अंतर हो तो साधनों के स्वामी समूचे अतिरेक को लगान के रूप मे लेकर साधनों का प्रयोग करने वाले सभी व्यक्तियों को समान स्तर पर ले आएगे। रिकार्डो का अनुसरण करते हुए मार्शल ने कहा कि भेदमूलक लगान (differential rent) का आकलन सदैव साधन के सीमान्त प्रयोग के संदर्भ मे किया जाता है जबकि दुर्लभता लगान का आकलन मांग व पूर्ति के बीच विद्यमान अंतर के आधार पर किया जाता है। दुर्लभता लगान (scarcity rent) उस स्थिति मे भी वसूल किया जाता है जब कि साधन की सभी इकाइयां समरूपी हों। इसके विपरीत भेदमूलक लगान साधन की विभिन्न इकाइयों की दक्षता मे विद्यमान अंतर की देन है। प्रत्येक स्थिति मे बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ साथ लगान मे भी वृद्धि होती है क्योंकि इसके फलस्वरूप उत्पादक साधन की कम दक्ष इकाइयों को भी प्रयुक्त करने हेतु बाध्य होंगे जिसके फलस्वरूप उत्पादन की लागत मे वृद्धि होगी एवं साधन की अधिक दक्ष इकाइयों को प्राप्त अतिरेक मे वृद्धि हो जाएगी।

परन्तु मार्शल ने रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत लगान के सिद्धांत से असहमति व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया कि उत्पादकता (दक्षता) के अंतर तथा दुर्लभता के लक्षण केवल भूमि मे ही नहीं विद्यमान होते। विशेष प्रकार के मानवीय श्रम, विशेष प्रकार की मशीनें तथा मानव निर्मित पूंजीगत साधनों मे भी ये लक्षण विद्यमान हो सकते हैं। आज अधिकांश अर्थशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि भूमि की मौलिक तथा अनाशमान शक्तियों के प्रयोग के बदले ही लगान नहीं दिया जाता अपितु किसी भी ऐसे साधन पर लगान की प्राप्ति हो सकती है जिसकी मांग की तुलना मे पूर्ति सीमित है। बहुधा अल्पकाल मे उत्पादन के अनेक साधनों की पूर्ति को माग के अनुरूप बढ़ाना संभव नहीं होता और इसलिए अल्पकाल मे मांग बढ़ने पर इन साधनों के लिए अवसर लागत या प्रतियोगी कीमत से अधिक कीमत चुकानी पड़ती है। यह अतिरेक ही लगान है। परन्तु दीर्घकाल मे इन साधनों की पूर्ति को मांग के अनुरूप बढ़ाना संभव हो जाता है और इसीलिए दीर्घकाल मे साधन के लिए केवल सामान्य कीमत दी जाती है। प्रोफेसर मार्शल ने किसी भी साधन द्वारा अल्पकाल मे प्राप्त अतिरेक को आभास लगान" (Quasi Rent) की संज्ञा दी। हम अगले अनुभाग मे इसी की चर्चा करेंगे।

20.3 आभास लगान
(The Quasi Rent)

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था मार्शल के मतानुसार आभास लगान की

प्राप्ति केवल अल्पकाल मे ही होती है, किसी साधन की अस्थायी स्थिर पूर्ति के कारण उसकी माग बढने पर साधन की कीमत म जो वृद्धि होती है वही आभास लगान कहलाता है। यह अधि भुगतान भूमि, भवनो, मशीनो या अन्य किसी भी मद के लिए किया जा सकता है। यहा तक कि अल्पकाल म किसी उपभोग की वस्तु की माग बढ जाने पर उसकी सामान्य कीमत स ऊपर जो भी अतिरिक्त राशि उपभोक्ता स वसूल की जाती है वह भी आभास लगान की श्रेणी म ही आता है, यद्यपि दीर्घकाल म तो किसी प्रतियोगी विक्रेता को केवल सामान्य लाभ (Pric =AC) ही प्राप्त होता है। इस प्रकार, आभास लगान की अवधारणा के अनुसार प्रतियोगी फर्म को अल्पकाल मे प्राप्त होने वाला लाभ भी आभास लगान ही है।

अध्याय 18 मे यह बतलाया गया था कि प्रतियोगी बाजार म प्रत्येक साधन का पारिश्रमिक उसके सीमान्त उत्पादन मूल्य (VMP) के समान होता है। परन्तु यह नियम केवल उत्पादन के परिवर्तनशील साधनो पर ही लागू होता है, क्योंकि स्थिर साधनो की अवसर लागत (Opportunity cost) बहुधा शून्य होती है। यदि कोई फर्म सभी परिवर्तनशील साधनो को उनके सीमान्त उत्पादन मूल्य के समान पारिश्रमिक चुकाने के पश्चात् भी कुछ राशि बचा लेती है तो वस्तुत यह अतिरिक्त उत्पादन के स्थिर साधनों के लिए प्राप्त प्रतिफल ही है तथा इस ही आभास लगान कहा जाएगा।

चित्र 20 4 मे आभास लगान की निर्धारण प्रक्रिया स्पष्ट की गई है। यह मान्यता ली गई है कि हम पूर्ण प्रतियोगिता वाली एक फर्म के व्यवहार का विश्लेषण कर रहे हैं जिसके लिए वस्तु की कीमत बाह्य निर्धारित है, तथा जो अधिकतम लाभ की प्राप्ति हेतु सीमान्त लागत एव कीमत के समान होने (MC=AR=MR) तक उत्पादन करती है। मान लीजिए, फर्म के लिए प्रारंभिक बाजार कीमत OP_1 है। चूंकि इस कीमत पर सीमान्त लागत एव कीमत जिस स्तर पर समान हैं वहा औसत परिवर्तनशील लागत कीमत स अधिक है (AVC>AR=MC) अत फर्म उत्पादन बिलकुल नहीं करेगी। सीमान्त लागत वक्र वाली फर्म के पूर्ति वक्र की उपयुक्त रेंज A बिंदु से प्रारम्भ होती है जहा वस्तु की कीमत औसत परिवर्तनशील लागत व सीमान्त लागत के समान है (AVC=AR=MC)। इस स्थिति म कीमत OP_2 है तथा उत्पादन का स्तर OQ_2 है। चूंकि इस स्थिति मे फर्म को प्राप्त कुल आगम पूर्णतया परिवर्तनशील साधनो पर व्यय कर दिया जाता है, कीमत के इस स्तर पर स्थिर साधनों के लिए कोई भी आभास लगान की प्राप्ति नही होती।

अब मान लीजिए, कीमत बढकर OP_3 हो जाती है। इस कीमत पर फर्म OQ_3 मात्रा का उत्पादन करती है तथा परिवर्तनशील साधनो को भुगतान करने के पश्चात BB' रुपए प्रति इकाई बचाती है जो वस्तुत स्थिर साधन को प्राप्त 'आभास लगान' है। अस्तु, OP_3 कीमत पर कुल आभास लगान P_3HB B $(=OP_3BQ_3-OHBQ_3)$ होगा। सक्षेप मे कुल आगम एव कुल परिवर्तनशील लागतो का अतर ही आभास लगान है। यद्यपि इस स्थिति मे भी फर्म की कुल उत्पादन लागतें कुल आगम से अधिक हैं, तथापि कुल आगम कुल परिवर्तनशील लागतो स अधिक होने के कारण

फर्म को स्थिर साधनों के लिए कुछ प्रतिफल (आभास लगान) अवश्य प्राप्त हो जाता है। इसके बाद यदि कीमत OP_4 हो जाए तो फर्म OQ_4 मात्रा का उत्पादन करती है,
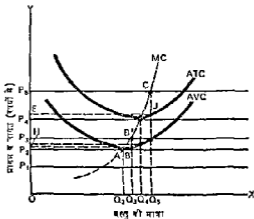
चित्र 20 4 आभास लगान

तथा प्राप्त कुल आगम कुल लागतों से अधिक हो जाता है। इस स्थिति में परिवर्तनशील लागत व स्थिर लागत (आभास लगान) के समान कीमत मिल जाने के कारण उसे सामान्य लाभ मिल जाता है। अत में, कीमत OP_5 या इससे अधिक हो जाए तो फर्म OQ_5 मात्रा का उत्पादन करती है तथा इसे परिवर्तनशील व स्थिर लागतों के अतिरिक्त थोडा सा शुद्ध लाभ (P_5CJE) भी मिल जाता है। साधारणतया शुद्ध लाभ भी आभास लगान का ही एक अश है, परतु अपेक्षाकृत नीची कीमतों पर आभास लगान प्राप्त करने पर भी फर्म को हानि हो सकती है।

यदि श्रमिक सघों के सदस्य अपने नियोक्ताओं को न्यूनतम स्तर से अधिक मजदूरी देने हेतु बाध्य कर दें तो उन्हें प्राप्त होने वाला यह अतिरेक भी आभास लगान माना जाएगा क्योंकि दीर्घकाल में जनसंख्या में पर्याप्त वृद्धि के कारण श्रमिकों को उनके सीमात उत्पादन मूल्य से अधिक पारिश्रमिक प्राप्त नहीं हो सकेगा। वैसे भी दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, तथा प्रत्येक फर्म प्रत्येक साधन को सीमात उत्पादन मूल्य के अनुरूप पारिश्रमिक चुकाती है और स्वय भी सामान्य लाभ ही अर्जित करती है। यही कारण है कि दीर्घकाल में फर्म को कोई आभास लगान नहीं मिल पाता।

20 4 दुर्लभता लगान
(Scarcity Rent)

ऊपर यह बतलाया जा चुका है यदि माग की तुलना में किसी साधन की पूर्ति

सीमित है तो इस साधन के स्वामी को इसकी अवसर लागत की तुलना में अधिक कीमत वसूल करने की प्रेरणा प्राप्त होगी। अवसर लागत या प्रतियोगी कीमत के ऊपर वसूल की गई यह राशि "दुर्लभता लगान" (Scarcity Rent) कहलाती है।

परन्तु इन्हीं परिस्थितियों में यह दुर्लभता लगान ऋणात्मक भी हो सकता है। कभी-कभी भूमि का स्वामी काश्तकार को अपनी ओर से कुछ राशि चुकाता है ताकि भूमि की कार्य क्षमता बनी रहे। ऐसा केवल उस स्थिति में होता है, जबकि भूमि की माग की तुलना में पूर्ति बहुत अधिक हो तथा साम्य स्थिति केवल ऋणात्मक कीमत होने पर ही प्राप्त होती हो। इसके विपरीत एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जब माग व पूर्ति में समानता उस स्तर पर होती है जहा काश्तकार भूमि के मालिक को कोई भुगतान नहीं करता। चित्र 20 5 के पैनल (a) व पैनल (b) में ऋणात्मक लगान तथा शून्य लगान की स्थितिया प्रदर्शित की गई हैं। यहा तक तो माग का आधिक्य नहीं है। परन्तु यदि जनसंख्या में वृद्धि के कारण माग वक्र में विवर्तन होता जाए तो काश्तकारों से उत्तरोत्तर अधिक कीमत (लगान) लेकर ही उन्हें उपलब्ध भूमि का प्रयोग करने की अनुमति दी जाएगी। इस स्थिति को पैनल (c) में दर्शाया गया है।

(a) ऋणात्मक लगान (b) शून्य लगान (c) धनात्मक लगान
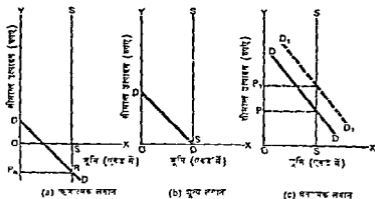
चित्र 20 5 दुर्लभता लगान

चित्र 20 5 में भूमि की पूर्ति को SS पर स्थिर माना गया है। यह मानते हुए कि सीमान्त उत्पादन के आधार पर भूमि की माग का निरूपण होता है, पैनल (a) में माग व पूर्ति का साम्य R बिंदु पर स्थित होगा जहा भू-स्वामी काश्तकारों को अपनी ओर से OP_aRS रुपए का (ऋणात्मक) लगान चुकाएगे। पैनल (b) में भूमि की कुल मांग कुल पूर्ति के ठीक समान S बिंदु पर होती है जहा भू-स्वामियों को न तो लगान की प्राप्ति होती है न ही उन्हें काश्तकारों को कुछ अपनी ओर से चुकाने की जरूरत है। परन्तु जैसे-जैसे भूमि की माग में वृद्धि होती जाती है, अतः काश्तकारों

में लगान की वसूली प्रारंभ हो जाती है। पैनल (c) में साम्य स्थिति में काश्तकार भूमि के प्रत्येक एकड़ पर OP रुपया लगान के रूप में चुकाता है। यदि माँग में वृद्धि होने से माँग वक्र D_1D_1 हो जाए जबकि पूर्ति SS पर ही स्थिर रहे तो लगान की दर बढ़कर OP_1 हो जाएगी।

इस विश्लेषण में *हमने यही मान्यता ली थी कि भूमि की समूची उपलब्ध मात्रा* (SS) का प्रयोग करना आवश्यक है, तथा लगान की दर भूमि के सीमांत उत्पादन द्वारा निरूपित माँग पर निर्भर करती है। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता। जैसे-जैसे लगान में वृद्धि होती है, काश्तकार भूमि का गहन उपयोग करने लगते हैं। इसके विपरीत निम्न तीन दशाओं में लगान में वृद्धि होती है—

(i) *यदि वस्तु की कीमत तथा प्रत्येक खेत की सीमांत उत्पादकता यथावत्* रहती है परन्तु काश्तकारों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

(ii) यदि काश्तकारों की संख्या तथा प्रत्येक खेत की सीमांत उत्पादकता यथावत् रहती हैं, परन्तु वस्तु की कीमत में वृद्धि हो जाती है।

(iii) यदि काश्तकारों की संख्या तथा वस्तु की कीमत वही रहती है, परन्तु *खेत की उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है।*

ऊपर वर्णित लगान को शुद्ध रूप से दुर्लभता लगान की संज्ञा दी जाती है, तथा इसकी उत्पत्ति समस्त भूमि की दुर्लभता से होती है। परन्तु यदि माँग का स्तर बहुत ही नीचा हो तो काश्तकार भू-स्वामी को लगान चुकाने की अपेक्षा अपने श्रम की *उपयुक्त क्षतिपूर्ति की माँग करते हैं, यानी लगान ऋणात्मक* हो सकता है। संक्षेप में, *दुर्लभता लगान की अवधारणा* केवल उस दशा में सार्थक होती है जब भूमि (या अन्य किसी साधन) की माँग उसकी पूर्ति की तुलना में बहुत अधिक हो जाए।

20.5 योग्यता का लगान
(Rent of Ability)

रिकार्डो के लगान सिद्धांत का आधार भूमि की उर्वरा शक्ति में विद्यमान अन्तरों में निहित था। जॉन स्टुअर्ट मिल तथा सीनियर ने कहा कि ये अंतर मनुष्यों में भी विद्यमान होते हैं। एक व्यक्ति उतने ही समय में उतना ही श्रम करके दूसरे *व्यक्ति की अपेक्षा अधिक कार्य कर सकता है, और इसीलिए* उस व्यक्ति की आय दूसरे व्यक्ति से अधिक होती है। उच्च स्तर की दक्षता के कारण प्राप्त यही अतिरिक्त आय योग्यता का लगान कहलाती है। किसी भी व्यवसाय अथवा पेशे में समान परिस्थितियाँ, समान अवसर तथा शिक्षा व प्रशिक्षण के समान स्तर होने पर भी भिन्न-*भिन्न व्यक्तियों का प्राप्त आय के* स्तर भिन्न होते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि कुछ व्यक्तियों को प्रकृति ने अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा बुद्धि की अधिक प्रखरता तथा बेहतर स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता प्रदान की है, और इसीलिए उन्हें अधिक आय प्राप्त होती है। अस्तु, दो व्यक्तियों में A की आय B की तुलना में इसलिए अधिक हो सकती है क्योंकि A को प्रकृति ने कुछ विशेष गुण प्रदान किए हैं जिनके कारण

उसे योग्यता का लगान मिलता है।

वॉकर ने मिल तथा सीनियर द्वारा प्रस्तुत विचारों को एक सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि उद्यमी को विलक्षण योग्यता के कारण ही उसे लाभ प्राप्त होता है। *वस्तुत वॉकर समाजवादियों की भर्त्सना करते हुए यह कहना चाहते थे कि लाभ की उत्पत्ति शोषण के कारण नहीं होती।*[4] वॉकर के मतानुसार उद्यमी की योग्यता का लगान ही उसे प्राप्त लाभ है। इसी प्रकार विभिन्न व्यक्तियों की मजदूरी में व्याप्त अन्तर भी काफी सीमा तक इसलिए उत्पन्न होते हैं कि उनकी बुद्धि, चातुर्य एवं समस्याओं का निदान प्राप्त करने की योग्यता में पर्याप्त अंतर विद्यमान हैं। इस प्रकार व्यावसायिक आय के स्तरों में विद्यमान अन्तर भी कृषि के अन्तर्गत विभिन्न भू-खंडों से प्राप्त आय के अन्तरों की भांति हैं, क्योंकि दोनों ही स्थितियों में योग्यता अथवा उत्पादकता के अन्तर प्राकृतिक हैं। विभिन्न भू-खंडों की भांति ही विभिन्न व्यक्तियों में भी प्रकृति ने दक्षता या योग्यता के भिन्न स्तर प्रदान किए हैं, और इसीलिए लगान की उत्पत्ति होती है। मार्शल ने भी कहा था कि एक सफल व्यवसायी की आय का एक बड़ा अंश उस व्यक्ति को प्रकृति द्वारा दी गई विलक्षण *योग्यता का ही परिणाम है।*[5]

20.6 अंतरण आय पर प्राप्त लगान
(Rent on Transfer Earnings)

अब तक लगान की अवधारणा का विश्लेषण उत्पादन के साधनों में विद्यमान प्राकृतिक गुणों, तथा इन साधनों की स्थिर पूर्ति के संदर्भ में ही किया गया था। हमने इस मान्यता के आधार पर अपना यह विश्लेषण प्रस्तुत किया कि उत्पादन के निर्दिष्ट साधन का प्रयोग केवल एक ही क्षेत्र में संभव है। अन्य शब्दों में इस साधन के लिए *अन्य कहीं से प्राप्त होने वाली आय, अथवा अंतरण आय, शून्य है।* परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं होता। अधिकांश रूप में किसी साधन को अनेकों प्रयोगों में लिया जा सकता है, और इसलिए इसकी अंतरण आय धनात्मक होती है।

अर्थशास्त्री अंतरण आय की परिभाषा देते हुए बतलाते हैं कि वर्तमान प्रयोग की अपेक्षा किसी भी साधन को जो भी आय अन्य किसी प्रयोग में प्राप्त हो सकती है, वही इस साधन की अंतरण आय या अवसर लागत है। संक्षेप में, साधन की वर्तमान आय तो वह राशि है जो उसे वस्तुतः प्राप्त हो रही है, *जबकि अंतरण आय वह है* जो प्रतियोगी परिस्थितियों में उस साधन के लिए मिल सकती है। यदि गेहूं की खेती में भू-स्वामी को 100 रुपए प्रति हैक्टर का अतिरेक मिल रहा हो तथा अलसी की खेती करने पर 150 रुपए प्रति हैक्टर मिलने की संभावना हो, तो भूमि की अंतरण आय 150 रुपये होगी।

4 C. Gide and C Rist, 'A History of Economic Doctrines' (Second English Edition), pp. 575-576

5 Marshall, op cit, p 482 तथा pp. 517-518,

किसी भी साधन की अतरण आय उसकी वास्तविक आय से अधिक हो सकती है और कम भी। वस्तुत वास्तविक आय के निर्धारण मे साधन के बाजार मे उत्पन्न विकृतियो का पर्याप्त योगदान रहता है जबकि अतरण आय शुद्ध रूप से साधन के प्रतियोगी बाजार मे प्राप्त आय होती है। यदि एक सिविल इजीनियर को रेलवे म एक हजार रुपए प्रति माह प्राप्त होते हैं जबकि सार्वजनिक निर्माण विभाग मे उसे सात सौ रुपए मिल सकते हैं तो उस इजीनियर की अतरण आय सात सौ रुपए होगी तथा उससे जितनी अधिक राशि (तीन सौ रुपए) उसे प्राप्त हो रही है वह लगान मानी जाएगी। अतरण आय पर लगान की उत्पत्ति तभी होती है जब यह मान लिया जाता है कि साधन की दक्षता द्वितीय प्रयोग मे भी यथावत रहती है। कभी कभी किसी व्यक्ति (A) को अन्यत्र जितनी आय मिलनी चाहिए उसकी तुलना मे व्यक्तिगत पह चान, जातिगत कारणो या राजनीतिक सबधो के कारण उसे किसी प्रतिष्ठान मे बहुत अधिक आय पर अनुबधित कर लिया जाता है। स्पष्ट है A को गैर आर्थिक कारणो स एक अतिरेक या लगान की प्राप्ति होती रहती है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति को व सब विशेष अधिकार या सुविधाए नही प्राप्त हो सकती जो A को हो रही है। इसके विपरीत यदि A को प्रतियोगी वातावरण मे छोड दिया जाए तो उसे प्राप्त होने वाला लगान समाप्त हो जाएगा।

20 7 पूर्ति की लोच एव लगान
(Elasticity of Supply and Rent)

ऊपर यह बतलाया गया था कि माग का तुलना म यदि किसी साधन की पूर्ति अत्यत सीमित हो तो भी उसे अनिश्चित भुगतान या लगान प्राप्त होने लगता है। यदि माग म वृद्धि हो जाए तो लगान भी बढ जाएगा। यह सिद्धात भूमि श्रम पूजी आदि सभी साधनो पर समान रूप से लागू होता है। परतु जैसा कि स्पष्ट है लगान मे वृद्धि केवल उसी दशा मे होगी जबकि साधन की पूर्ति बेलोच हो। यदि साधन की पूर्ति पूर्णत लोचदार हो तो माग मे वृद्धि के साथ साथ उतनी ही वृद्धि पूर्ति मे भी की जा सकेगी तथा साधन के लिए कोई भी लगान या अतिरेक उपलब्ध नही होगा। सक्षेप मे यदि साधनो के स्वामी साधन की निर्दिष्ट कीमत पर इसकी अनत मात्रा उपलब्ध कराने को तैयार हो तो माग के साथ साथ वे साधन की पूर्ति मे भी वृद्धि करते जाएगे और इसके फलस्वरूप साधन की कीमत मे कोई परिवर्तन नही होगा। ऐसी दशा मे साधन मे दुलभता का कोई गुण विद्यमान नही है और इसलिए इस पर कोई लगान प्राप्त नही हो पाता।

इसी प्रकार यदि वस्तु की पूर्ति को इसकी माग के अनुरूप बढाना सभव हो तो माग मे वृद्धि हो जाने पर भी इसकी कीमत यथावत रहती है। अनुभाग 20 2 मे हमने यह देखा था कि (अल्पकाल मे) कीमत तथा औसत परिवर्तनशील लागत का अतर आभास लगान कहलाता है। परतु यदि औसत परिवर्तनशील लागत यथावत रहे तो इसका यह अर्थ होगा कि उत्पादन की मात्रा मे कितनी ही वृद्धि करने पर भी लागत

मे वृद्धि नही होगी, और इस कारण माग मे वृद्धि होने के साथ ही पूर्ति मे भी समानुपाती वृद्धि हो जाती है। ऐसी दशा मे उद्योग के अल्प तथा दीर्घकालीन पूर्ति वक्र पूर्णत क्षैतिज होंगे, तथा किसी भी फर्म को कीमत मे कोई लगान या अतिरेक प्राप्त नही होगा।

20 8 लगान पर नियंत्रण एव करारोपण
(Control and Taxation of Rent)

ऊपर अब तक हमने जो भी विवरण प्रस्तुत किया है उसका यही अभिप्राय है कि लगान एक अतिरेक है जो फर्म अथवा साधन के स्वामी को प्राप्त होता है। यह अतिरेक साधन मे विद्यमान विलक्षण गुणो या इसकी दुर्लभ पूर्ति का परिणाम हो सकता है। लगान का आधार कुछ भी हो, इसकी उत्पत्ति बाजार मे उत्पन्न विकृतियो एव अपूर्णता के कारण ही होती है। लगान की दरें बढने का यह अर्थ कदापि नही लेना चाहिए कि साधन के स्वामियों ने कोई विशेष प्रयास किए हैं।

रिकार्डो तथा अन्य विद्वानो द्वारा प्रतिपादित लगान सिद्धातो से यह स्पष्ट हो जाता है कि भूमि या किसी भी सीमित पूर्ति वाले साधन (या वस्तु) के स्वामी को किसी न किसी रूप मे ऐसे अतिरेक की प्राप्ति होती है जिसके लिए उसने स्वय कोई परिश्रम नही किया है। जनसख्या की वृद्धि के साथ साधन की माग तथा लगान मे भी वृद्धि होती जाती है। इसी के साथ दुर्लभ साधनो के स्वामी और अधिक धनी होते जाते हैं क्योकि उन्हे साधनो की माग बढने के साथ-साथ इसकी अधिक कीमत वसूल करने का अवसर मिल जाता है। इसे "अतिशय किराए की स्थिति" (rack renting) कहा जाता है। चूकि इस स्थिति का आधार साधन के स्वामित्व का केंद्रीकरण है, और इसके फलस्वरूप भू स्वामियो द्वारा कृषको आदि का शोषण होता है, इसे समाप्त करने हेतु समाजवादी लोग भूमि व अन्य दुर्लभ साधनो के राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण की वकालत करते हैं।

पूजीवादी देशो मे भी प्रगतिशील करो के माध्यम से "अतिशय लगान" पर नियत्रण लगाया जाता है। बहुधा भूमि सुधारो के माध्यम से अतिशय लगान एव शोषण की स्थिति को नियत्रित करने का प्रयास किया जाता है। लगान पर करारोपण इसलिए किया जाता है क्योकि लगान को 'अनर्जित आय" (unearned income) की सज्ञा दी जाती है। ऐसा समझा जाता है कि दुर्लभ साधनो के स्वामी अपनी श्रेष्ठतर स्थिति का लाभ उठाते हुए शोषण करते हैं और इसलिए न्याय तथा समानता के नाम पर लगान पर भारी करारोपण किया जाना उचित है।

भूमि के राष्ट्रीयकरण तथा लगान से प्राप्त आय पर भारी करारोपण के अतिरिक्त "अतिशय लगान" पर अकुश लगाने हेतु भूमि पर भी करारोपण किया जा सकता है। भारत मे भू स्वामियो से लिए जाने वाला भू राजस्व इसी का एक उदाहरण है। परतु केवल भू-राजस्व ही लगान की बढती हुई दरो को रोकने मे समर्थ नही हो पाता, इसके लिए अन्य उपाय भी किए जाते हैं।

21

ब्याज की दरों का निर्धारण
(DETERMINATION OF INTEREST RATES)

प्रस्तावना

16वीं शताब्दी के अंत तक अधिकांश विद्वान ब्याज लेना अथवा देने को एक अनैतिक कार्य मानते थे। प्राचीन यूनानी तथा रोमन विद्वानों ने बाइबिल से प्रेरणा लेकर ब्याज को अनुचित भुगतान की संज्ञा दी। इस महान ग्रंथ में इजराइल-वासियों से कहा गया था कि वे ब्याज के भुगतान को कानूनी तौर पर बंद कर दें (ड्यूट 23 20)। ईसाई पादरियों ने समूचे मध्ययुग में यही संदेश विश्व को देने का प्रयास किया। उन्होंने ब्याज लेने वालों की तीन कारणों से भर्त्सना की। प्रथम, उन्होंने इस बात की जोरदार सिफारिश की थी कि आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों को संरक्षण मिलना चाहिए। ये लोग अपनी अकिंचन स्थिति के कारण न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी बहुधा मुद्रा की माग करते हैं। ईसाई पादरियों ने स्पष्ट कहा कि ऐसे अकिंचन लोगों की सहायता करके उधार दी गई मुद्रा के बदले ब्याज मांगना नैतिक दृष्टि से एक बड़ा अपराध है। द्वितीय, मध्ययुगीन दार्शनिकों की दृष्टि में मुद्रा अपने आप में बंजर है तथा उत्पादक कार्यों में केवल श्रम का ही योगदान हो सकता है। मध्ययुग के एक विद्वान संत टॉमस एक्वीनॉस एवं उनके अनुगामियों ने कहा कि बचत का प्रयोग उत्पादक कार्यों के लिए कदापि नहीं हो सकता, और इसलिए इसके उपयोग के बदले ब्याज की मांग करना अनुचित है। तृतीय, यदि कोई व्यक्ति अपनी बचत किसी निर्धन व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति हेतु करने देता है तो वस्तुतः वह मानवता की एक सेवा कर रहा है, और कोई भी व्यक्ति सेवा के बदले पुरस्कार की अपेक्षा करे, यह अनुचित है।

मध्ययुग के लगभग सभी दार्शनिकों ने सूदखोरी या ब्याज लेने की प्रवृत्ति को समाज के प्रति एक जघन्य अपराध की संज्ञा दी। बाइबिल का उद्धरण देते हुए उन्होंने यहां तक कह दिया कि एक ऊंट भले ही सुई के छेद में प्रवेश कर जाए, एक सूदखोर का स्वर्ग में प्रवेश कदापि नहीं हो सकता। उन्होंने मुद्रा उधार देने वालों को यह भी कहा कि वे उधार मांगने वालों से ऋण के बदले जमानत कदापि न मांगें,

क्योंकि "इन निर्धन व्यक्तियों के पास सिवाय अपने तन के कपड़ों के और कुछ भी जमानत नहीं है।" (ड्यूट 24 · 17)।

परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रकृतिवादियों ने यह स्वीकार किया कि कोई व्यक्ति उत्पादक कार्यों—विशेष रूप से कृषि के लिए भी ऋण ले सकता है। डा० केने तथा मिराबोन ने कहा कि यदि पूंजी के प्रयोग से नए धन का सृजन होना हो तो प्राप्त ऋणों पर ब्याज देना न्यायसंगत होगा। परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि औद्योगिक अथवा व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में बहुत सी पूंजी धन का सृजन नहीं कर पाती, और उन पर ब्याज लेना ऋणी के लिए घातक ही होगा। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक ब्याज को अनैतिक एवं अवैधानिक बतलाने वालों का लगभग लोप हो चुका था।

सम्प्रदायक विचारधारा के प्रणेता एडम स्मिथ ने कहा कि ब्याज लेना इसलिए उचित है क्योंकि ऋणी व्यक्ति उधार ली गई राशि से लाभ अर्जित करता है, और इसलिए ब्याज ऋणदाता को दिया गया एक क्षतिपूरक भुगतान मात्र है। परन्तु किसी भी सम्प्रदायक अर्थशास्त्री ने ब्याज के निर्धारण हेतु कोई भी सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया। सर्वप्रथम 1884 में बॉम बावर्क ने ब्याज के निर्धारण हेतु एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इसके बाद मार्शल, पीगू तथा बीसवीं शताब्दी में रॉबर्टसन व कीन्स आदि ने भी ब्याज के सिद्धान्त प्रस्तुत किए। इस प्रकार आधुनिक ब्याज के सिद्धान्त का उद्गम बॉम बावर्क तथा मार्शल के विचारों में निहित है। प्रस्तुत अध्याय में हम ब्याज के सिद्धान्तों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करने की अपेक्षा केवल उन घटकों पर प्रकाश डालेंगे जो ब्याज की दर के निर्धारण में सहायक होते हैं। इसी संदर्भ में हम पूंजी के ब्याज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं का भी विवरण देंगे।

21.1 बॉम बावर्क का ब्याज का सिद्धान्त
(Bohm Bawerk and His Interest Theory)

बॉम बावर्क के द्वारा पूंजी एवं ब्याज के संबंध में प्रस्तुत किए विचारों को उनकी 1889 में प्रकाशित पुस्तक 'दी पोज़ीटिव थ्योरी ऑफ कैपीटल' में लिपिबद्ध किया गया। पहले यह पुस्तक जर्मन भाषा में लिखी गई थी, परन्तु 1891 में इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया। बॉम बावर्क ने इस पुस्तक में उन कारणों पर प्रकाश डाला जिनसे प्रेरित होकर कोई भी ऋणदाता ब्याज की माग करता है। प्रथम, उन्होंने कहा कि लोग बहुधा भविष्य के साधनों (आय) के विषय में अधिक अनुमान करते हैं। द्वितीय, लोग भविष्य की आवश्यकताओं को कम महत्त्व देते हैं। अन्तिम, बॉम बावर्क के मतानुसार, आज उपलब्ध वस्तुओं से भविष्य में अधिक मूल्य की वस्तुएं प्राप्त होती हैं। इन्हीं "तीनों कारणों" से—जिनमें से प्रथम दो मनोवैज्ञानिक हैं तथा तीसरा तकनीकी—लोग समान किस्म व मात्रा की भावी वस्तुओं की अपेक्षा वर्तमान वस्तुओं को अधिक प्राथमिकता देते हैं। इसीलिए यदि उन्हें वर्तमान वस्तुओं के बदले भावी वस्तुएं लेने को कहा जाए तो उन्हें एक ऐसा प्रीमियम देना अनिवार्य

होगा जो भावी वस्तुओं व वर्तमान वस्तुओं के मूल्य को समान कर सके। बॉम बावर्क के मतानुसार यही प्रीमियम ब्याज कहलाता है।

उपर वर्णित तीनों कारणों पर विस्तृत रूप में प्रकाश डालना उचित होगा। प्रथम हम मनुष्य की उस मनोदशा को समझें जिसके कारण वह भविष्य के साधनों का अधिक अनुमान (over estimate) करता है। वस्तुतः अनेक वस्तुओं की वर्तमान दुर्लभता को देखते हुए लोगों को ऐसा अनुभव होने लगता है कि यह दुर्लभता अल्प कालिक है तथा भविष्य में यह अभाव विद्यमान नहीं रहेगा तथा इसके फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। द्वितीय बॉम बावर्क ने यह भी तर्क दिया कि लोगों में उपयुक्त कल्पनाशक्ति तथा इच्छाशक्ति का अभाव है क्योंकि मानव जीवन को अनिश्चित एवं अस्थायी माना जाता है। कोई भी व्यक्ति निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि भविष्य में उसका उपभोग स्तर कितना होगा और इसलिए वह भविष्य की अपेक्षा वर्तमान आवश्यकताओं को अधिक महत्व देता है। अन्त में यदि कोई व्यक्ति अपनी पूंजी को किसी स्थायी रूप से आय देने वाले स्रोत या उद्यम में निवेश करता है तो उसे कुछ समय बाद उससे अधिक पूंजी ही वापस मिल सकती है।

बाम बावर्क द्वारा प्रस्तुत प्रथम दो यानी मनोवैज्ञानिक कारणों से ब्याज के समय-अधिमान सिद्धांत (Time Preference Theory of Interest) की पुष्टि होती है। तृतीय कारण के आधार पर पूंजी के उत्पादकता सिद्धांत की विवेचना की जाती है। वस्तुतः बाम बावर्क स्वयं इन अवधारणाओं को प्रतिपादित नहीं कर पाए थे बाद के अर्थशास्त्रियों ने ही बॉम बावर्क द्वारा प्रस्तुत विचारों के आधार पर ब्याज के निर्धारण की प्रक्रिया स्पष्ट की।

समय अधिमान (Time Preference)

उपभोग फलन की अवधारणा का प्रतिपादन करते समय जॉन मेनार्ड कीन्स ने कहा था कि उपभोक्ता की उपभोग तथा बचत संबंधी योजनाओं पर अनेक व्यक्तिपरक (subjective) तथा वस्तुपरक (objective) घटकों का प्रभाव पड़ता है। परंतु कीन्स ने यह अवश्य स्वीकार किया कि उपभोग व्यय आय वालों के अतिरिक्त बचत करने की (मनोवैज्ञानिक) इच्छा पर भी निर्भर करता है। कीन्स ने कहा कि कोई भी व्यक्ति अपनी संपत्ति के मूल्य में वृद्धि तथा ब्याज की आय का सुख भोगने के अतिरिक्त भविष्य की अनिश्चितता व आकस्मिक दुर्घटनाओं के लिए भी बचत करता है। कीन्स ने यह भी तर्क दिया कि उपभोक्ता समान मात्रा में प्राप्य भावी उपभोग की तुलना में वर्तमान उपभोग को अधिक प्राथमिकता देते हैं।

समय अधिमान दर (rate of time preference) द्वारा उपभोक्ता की आय का वर्तमान तथा भावी उपभोग के मध्य वितरण किया जाता है। इस दर के आधार पर हम यह ज्ञात करते हैं कि उपभोक्ता अपनी समूची आय को आज खर्च करने को (इसके एक भाग को भविष्य के लिए बचत करने की अपेक्षा) कितना अधिक महत्व देते हैं। अन्य शब्दों में समय अधिमान दर बतलाती है कि उपभोक्ता

भविष्य में प्राप्य सतुष्टि की अपेक्षा वर्तमान सतुष्टि को कितना अधिक महत्त्व देता है। स्पष्ट है कि उपभोक्ता आज यानी वर्तमान में प्राप्य सतुष्टि के एक भाग का परित्याग करने को तभी तत्पर होगा जब उसे भविष्य में अधिक सतुष्टि प्राप्त होने का विश्वास हो। इसके विपरीत, यदि उपभोक्ता आज एक सौ रुपए व्यय करने पर प्राप्य सतुष्टि तथा भविष्य में इतनी ही राशि व्यय करने पर प्राप्त होने वाली संतुष्टि के मध्य तटस्थ हो तो उसकी समय अधिमान दर शून्य होगी। ऐसी स्थिति में वह अपनी बचत पर किसी भी ब्याज की अपेक्षा नहीं करेगा। परंतु यदि उसकी समय अधिमान दर धनात्मक हो तो ब्याज की दर धनात्मक होने पर ही उपभोक्ता को वर्तमान सतुष्टि के एक अश का परित्याग करने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। सक्षेप में, उपभोक्ता वर्तमान तथा भविष्य दोनों की कुल सतुष्टि को अधिकतम करना चाहता है, तथा इसी उद्देश्य के साथ वह कुल व्यय को वर्तमान तथा भविष्य के उपभोग हेतु आवटित करता है।

मान लीजिए उपभोक्ता की क्रमवाचक उपयोगिता (ordinal utility) का सूचकांक T समय-अवधियों में से प्रत्येक अवधि में n वस्तुओं के नियोजित उपभोग पर निर्भर करता है।

$$U = F(Q_{11}, \ldots, Q_{n1}, Q_{12} \ldots, Q_{1t}, \ldots Q_{nt} \qquad \ldots(21.1)$$

समीकरण (21.1) में Q_{jt} किसी वस्तु Q_j की वह मात्रा है जिसका उपभोक्ता T समय अवधि की t तिथि को उपभोग करता है। उपयोगिता सूचकांक U केवल उपभोक्ता की वर्तमान प्रत्याशाओं को व्यक्त करता है।

अब यह भी मान लीजिए कि उपभोक्ता विवेकशील व्यक्ति है, और इस कारण किसी निर्दिष्ट तिथि t पर वह सभी वस्तुओं की कीमतों तथा सीमांत उपयोगिताओं के अनुपातों को समान करके अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना चाहेगा। अस्तु—

$$\left.\begin{array}{ll} \dfrac{-\partial Q_{jt}}{\partial Q_{kt}} = \dfrac{P_{kt}}{P_{jt}} & (j\ k=1,2,\ldots n) \\ & (t=1,2,\ldots,T) \end{array}\right\} \qquad \ldots(21.2)$$

t तिथि को उपभोक्ता का कुल व्यय निम्नांकित होगा—

$$C_t = \sum_{j=1}^{n} P_{jt}\, Q_{jt} \qquad (t=1,2, \quad T) \qquad .\ (21\ 3)$$

समीकरण (21.1) में प्रस्तुत उपयोगिता फलन, समीकरण (21 3) में प्रस्तुत बजट सीमा तथा समीकरण (21 2) में प्रस्तुत (n−1) T समीकरणों के आधार पर हमें (nT+T+1) चरों की व्यवस्था में (nT+1) समीकरण प्राप्त होते हैं: U, Q_{jt} ($j=1,2, \ .n;\ t=1,2,\ldots,T$) तथा $C_t (t=1,2, \ . \ ,T)$। इनमें से nT समीकरणों का प्रयोग करते हुए हम Q_{jt} से मुक्ति पा सकते हैं, तथा उपभोक्ता के उपयोगिता फलन को केवल उसके उपभोग व्यय से सबद्ध कर सकते हैं। अस्तु—

$$U = \phi(C_1, C_2, \cdots \ C_T \qquad (21.4)$$

समीकरण (21.4) इस मान्यता पर आधारित है कि समीकरण (21 2) में प्रस्तुत अधिकतम उपयोगिता प्राप्ति की प्रथम क्रम की शर्तें (first order condi-

tion) पूरी हो रही हैं। समीकरण (21 4) से हमें उपभोग व्यय के प्रत्येक पैटर्न से सबद्ध उपयोगिता सूचकांक का अधिकतम मूल्य (अधिकतम कुल उपयोगिता) प्राप्त होना है। उपभोक्ता की समय प्रतिस्थापन दर इस प्रकार होगी—

$$-\frac{\partial C_r}{\partial C_t} = \frac{\phi_t}{\phi_r} \quad (t, r = 1, 2, \quad , T) \qquad (21\ 5)$$

यह दर स्पष्ट करती है कि उपभोक्ता के कुल सतुष्टि-स्तर को यथावत् रखते हुए r तिथि पर उपभोग व्यय मे वृद्धि करने हेतु t तिथि के उपभोग व्यय में कितनी कमी की जानी चाहिए। यदि उपभोक्ता की समय प्रतिस्थापन दर 1 05 हो तो इसका यह अभिप्राय होगा कि यदि t तिथि पर उपभोग व्यय मे एक रुपए की कटौती की जाए तो r तिथि पर 1 05 रुपए का अधिक व्यय करने पर ही कुल सतुष्टि स्तर वही रह पाएगा। अन्य शब्दों मे, यदि उपभोक्ता को t तिथि पर उपभोग व्यय कम करने को कहा जाए तो r तिथि पर उसे 5% का प्रीमियम मिलना चाहिए तभी प्राप्य कुल सतुष्टि का स्तर वही रहेगा। इस प्रकार t तिथि पर उपभोक्ता की समय अधिमान दर 5 प्रतिशत होगी। यदि उसे उसकी बचत पर इससे कम प्रतिफल (ब्याज) दिया जाए तो वह कदापि अपने वर्तमान उपभोग व्यय मे कटौती नही करना चाहेगा।

समय अधिमान का रेखाचित्रों द्वारा निरूपण
(Graphical Analysis of Time Preference)

अनधिमान वक्रों (indifference curves) के माध्यम से भी किसी व्यक्ति के समय अधिमान का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की रुचि केवल इस बात म नही होती कि उसे उसके पूरे जीवन म कुल कितनी आय प्राप्त होती है, अपितु इस बात मे भी होती है कि इस आय का समयानुसार वितरण किस प्रकार होना है, क्योंकि आय के इसी वितरण के आधार पर विभिन्न अवधियों में उसका उपभोग व्यय निर्धारित होता है, f और इसी पर उसका कुल आर्थिक कल्याण निर्भर करता है।

मान लीजिए कि हमे केवल दो अवधियों का ही विश्लेषण करना है, और वे अवधियां हैं वर्तमान तथा भविष्य (भविष्य मे आज स पाच वर्ष बाद की अवधि को लिया जा सकता है)। यह भी मान लीजिए कि उपभोक्ता के समस्त अनधिमान वक्रों का एक समूह है, जिसमे से प्रत्येक वक्र समान सतुष्टि प्रदान करने वाली वर्तमान एव भावी आय के विविध सयोगों का दर्शाता है। प्रत्येक अनधिमान वक्र मूल बिंदु से नतोदर है जिसका अभिप्राय यह है कि वर्तमान व भावी आय के मध्य ह्रासमान प्रतिस्थापन दर होनी है। हम यह भी मा यता लेते हैं कि नीचे अनधिमान वक्र की तुलना मे ऊंचे वक्र पर उपभोक्ता को अधिक आय एव अधिक सतुष्टि प्राप्त होती है। अत में, हम अनधिमान वक्रों के विषय मे हमारी एक मान्यता यह भी है कि दो वक्र परस्पर नहीं काट

सकते । परन्तु इसी संदर्भ में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अनधिमान वक्रों की नतोदरता तथा इनकी आकृति उस व्यक्ति के अधिमानों पर ही निर्भर करेगी।

चित्र 21.1 में अनधिमान वक्रों के एक ऐसे ही समूह को प्रस्तुत किया गया है। फिलहाल हम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता के पास जो भी आय उपलब्ध है उसे प्रयुक्त करने हेतु तीन विकल्प हैं : (अ) वह इस समूची आय को वर्तमान उपभोग पर व्यय कर दे, (ब) वह समूची आय को किसी अन्य व्यक्ति को उधार दे दे; अथवा (स) वह आय के एक भाग को वर्तमान उपभोग हेतु प्रयुक्त करे, तथा शेष को बचा कर रखे या किसी अन्य व्यक्ति को उधार दे दे। चित्र 21.1 में वर्तमान आय को क्षैतिज अक्ष पर तथा भावी आय को शीर्ष अक्ष पर मापा गया है। सरल रेखा FP
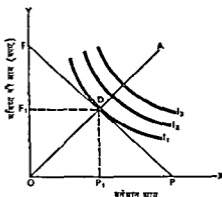
चित्र 21.1 ब्याज रहित स्थिति में वर्तमान तथा भावी आय

ऊपर वर्णित तीनों विकल्पों को प्रस्तुत करती है और इसलिए हम इसे अवसर रेखा (opportunity line) की संज्ञा दे सकते हैं। F बिंदु पर उपभोक्ता अपनी समस्त आय को भविष्य के लिए बचाना चाहता है, जबकि वह P पर समूची आय को वर्तमान उपभोग हेतु प्रयुक्त करना चाहता है, इन दोनों बिंदुओं के बीच वह अपनी आय को वर्तमान उपभोग तथा भावी आय के मध्य आवंटित कर सकता है। इस संदर्भ में यह बता देना आवश्यक होगा कि जब व्यक्ति अपनी आय का एक भाग ऋण देता है तो उसकी वर्तमान आय में कमी होती है परन्तु भविष्य में उसे अधिक आय प्राप्त होती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति वर्तमान में ऋण लेता है उसकी वर्तमान आय अधिक होती है, परन्तु भविष्य की आय कम हो जाती है। यदि वर्तमान में लिए गए या दिए गए ऋण की राशि के समान ही कमी या वृद्धि भावी आय में हो तो इसका अभिप्राय यह होगा कि ऋणों पर कोई ब्याज नहीं है तथा समय अधिमान दर समीकरण (21.5) के अनुसार -1 होगी $\left(\frac{\partial Cr}{\partial Ct} = -1\right)$।

चित्र 21.1 में सरल रेखा OA मूल बिंदु से प्रारंभ होती है तथा उन सभी

वर्तमान उपभोग में कटौती करने के बदले उतनी ही राशि भविष्य में न मिलकर उनसे अधिक राशि प्राप्त होगी। अब व्यक्ति यदि वर्तमान उपभोग में 20 रुपए की कटौती करके इस राशि को A को उधार देता है तो भविष्य में वह 25 या 30 रुपए वापस लेना चाहेगा। यह अतिरेक ही ऋणदाता द्वारा मांगा गया ब्याज होगा।

इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति वर्तमान में अधिक उपभोग या निवेश करने हेतु ऋण लेता है तो ऋण की राशि से अधिक रकम उसे लौटानी होगी। फलस्वरूप, भविष्य में उसकी आय अपेक्षाकृत कम हो जाएगी।

चित्र 21.3 के पैनल (b) में किसी व्यक्ति की वर्तमान व भावी आय प्रदर्शित की गई है जो वर्तमान में अपेक्षाकृत अधिक उपभोग करना चाहता है और इसके लिए वह P_1P_2 रुपए का ऋण लेकर भविष्य में F_1F_2 रुपए $(P_1P_2<F_1F_2)$ का भुगतान करना चाहता है जिसमें ब्याज की राशि भी शामिल होगी। वस्तुतः ब्याज के भुगतान को हमारे मॉडल में शामिल करते ही उपभोक्ता की समय-अधिमान दर एक न होकर एक से कम हो जाती है $\left(\frac{\partial C_f}{\partial C_t}<-1\right)$। इसको स्पष्टतः समझने हेतु पैनल (b) में नई आय रेखा $F_1{}^*P_1{}^*$ को देखिए। यदि उपभोक्ता ब्याज के संदर्भ में अपनी समूची भावी आय को मुलाकर वर्तमान में उसका उपयोग करना चाहता है तो उसकी कुल आय $OP_1{}^*$ होगी। (ब्याज न होने पर उसकी कुल आय $OF+OP$ होती)। चूंकि हम इस मॉडल में ब्याज की दर को 100 प्रतिशत मान रहे हैं, FP की तुलना में $F_1{}^*P_1{}^*$ का ढलान आधा है। इसका यह भी अर्थ हुआ कि उपभोक्ता जितनी राशि वर्तमान में उधार लेता है उसे उससे दुगुनी राशि ऋणदाता को लौटानी होती है। फलस्वरूप ऋणी व्यक्ति भविष्य में वर्तमान की अपेक्षा नीचे वाले अनधिमान वक्र I_3 पर आ जाता है।

इसके विपरीत यदि व्यक्ति को वर्तमान में बचत करके भविष्य में अधिक आय प्राप्त करने की लालसा हो तो वह उधार दी गई राशि पर ब्याज वसूल करना चाहेगा। उसकी समय अधिमान दर अब इकाई से अधिक हो जाती है $\left(\frac{\partial C_f}{\partial C_t}>-1\right)$, अर्थात् जितनी राशि की कटौती वह वर्तमान में करता है उससे कहीं अधिक राशि भविष्य में चाहेगा। चित्र 21.3 के पैनल (a) में यह माना गया है कि उपभोक्ता की समय अधिमान दर —2 है और इसीलिए FP की अपेक्षा पैनल (a) की रेखा F^*P^* का ढलान दुगुना है। इस पैनल से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति वर्तमान की अपेक्षा भविष्य में बहुत अधिक आय प्राप्त करता है और इस कारण वह भविष्य में ऊंचे अनधिमान वक्र I_2 (ऊंचे संतुष्टि-स्तर) पर पहुंच जाता है। इस संदर्भ में भी ब्याज की दर 100 प्रतिशत मानी गई है जिसका अर्थ यह है कि व्यक्ति यदि वर्तमान में P_1P_2 रुपए उधार देता है तो उसे भविष्य में F_1F रुपए प्राप्त हो जाएंगे।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि समय अधिमान दर इकाई से अधिक होने पर ऋणदाता अपनी वर्तमान आय के एक भाग को उपभोग में प्रयुक्त न करके

भविष्य में अपेक्षाकृत अधिक आय एवं संतुष्टि प्राप्त करने के उद्देश्य से ब्याज वसूल करना चाहता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति वर्तमान में अधिक आय चाहता है वह ऋण लेकर वर्तमान जरूरतों की पूर्ति करता है (चाहे वे जरूरतें उपभोग से संबद्ध हों अथवा निवेश से), तो उसे भविष्य में ऋणदाता को ब्याज सहित ऋण की
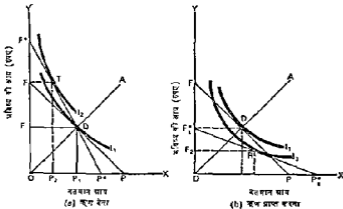
चित्र 21.3 धनात्मक ब्याज दर पर ऋण देना व प्राप्त करना

अदायगी करनी होगी, और इस कारण उसकी भविष्य की आय तथा संतुष्टि स्तर में कमी हो जाएगी।

ब्याज की दर में परिवर्तन एवं बचत-अनुसूची
(Changes in the Rate of Interest and the Saving Schedule)

ऊपर प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी व्यक्ति की समय अधिमान दर पर ही ब्याज की दर का निर्धारण होगा क्योंकि इसी दर के अनुरूप व्यक्ति को अपनी आय के एक भाग का प्रयोग वर्तमान में उपभोग हेतु प्रयुक्त करने की अपेक्षा किसी अन्य व्यक्ति को ऋण देने की प्रेरणा प्राप्त होती है। जैसाकि चित्र 21.3 के पैनल (a) में हमने देखा था, शत प्रतिशत ब्याज की दर पर व्यक्ति P_1P_2 रुपए *बचाता है तथा इसे उधार देकर भविष्य में FF_1 रुपए वापस ले लेता है* ($FF_1=2P_1P_2$) मान लीजिए अब ब्याज की दर 50 प्रतिशत कर दी जाती है। चित्र 21.3 में इसका प्रभाव F*P* के ढलान में कमी के रूप में दिखलाई देगा। इसके फलस्वरूप ऋणदाता पूर्वापेक्षा कम बचत करके कम परिमाण में ऋण देना चाहेगा। अन्य शब्दों में, *ब्याज की दर कम होने पर वह वर्तमान आय का अधिक* भाग स्वयं उपभोग करके पूर्वापेक्षा कम भाग ऋण हेतु प्रयुक्त करना चाहेगा। यदि ब्याज की दर में इसी प्रकार कमी होती जाएगी तो F*P* का धीरे-धीरे आवर्तन होता जाएगा एवं अंततः यह रेखा FP में विलीन हो जाएगी, अर्थात् ब्याज की दर

मे कमी के साथ बचत का परिमाण भी कम होता जाएगा तथा उपभोग का परिमाण बढता जाएगा।

इसके विपरीत ब्याज की दर मे वृद्धि होने के साथ-साथ बचत का अनुपात बढता जाएगा जबकि वर्तमान उपभोग का अनुपात कम होता जाएगा। सक्षेप में, व्यक्ति की बचत प्रवृत्ति एव ब्याज की दर मे धनात्मक सह-सबध होता है, हालाकि बचत की ब्याज-लोच सभी व्यक्तियो के लिए भिन्न हो सकती है। जैसाकि एल्फ्रेड मार्शल ने कहा था, "ब्याज की दर के अतिरिक्त किसी व्यक्ति द्वारा की जाने वाली बचत का परिमाण जिन अन्य घटको पर निर्भर करता है वे इस प्रकार हो सकते हैं: व्यक्ति की प्रकृति, भविष्य के लिए उसका दृष्टिकोण, उसकी पारिवारिक परिस्थितिया, उधार दी गई राशि की सुरक्षा तथा जो बात सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, उसकी वर्तमान आय की प्रकृति (नियमितता आदि) एव राशि।"[1]
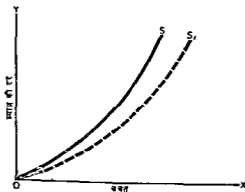
चित्र 21 4 बचत सारणी

चित्र 21 4 से स्पष्ट है कि ब्याज की दर मे जब-जब वृद्धि होती है तब-तब बचत मे भी वृद्धि होती जाती है। आय मे वृद्धि होने पर भी बचत मे वृद्धि हो सकती है। अब हम इस बात को थोडा और स्पष्ट करेंगे। जब किसी व्यक्ति की आय मे अकस्मात् वृद्धि हो जाती है तो उसकी बचत का पूर्ति वक्र दाईं ओर विवर्तित हो जाता है। यही नही, उसके सतुष्टि स्तर मे वृद्धि होने के कारण वह ऊचे अनधिमान वक्र पर चला जाता है। अन्य शब्दो मे, आय मे वृद्धि होने पर व्यक्ति उपभोग पर अधिक राशि व्यय करने के अतिरिक्त बचत मे भी अधिक राशि प्रयुक्त कर सकता है। उसकी इस नई स्थिति को ही चित्र 21 4 मे OS_1 वक्र के रूप मे प्रदर्शित किया गया है।

आय, बचत तथा ब्याज की दर के मध्य विद्यमान सबधो का विश्लेषण करने के पश्चात् अब हम पूजी या निवेश योग्य कोषो (यानी बचत) की माग का विश्लेषण

1 Alfred Marshall, 'Principles of Economics' (English Edition), pp 186-192.

करेंगे। जैसाकि ऊपर बतलाया गया था, इन कोषों की मांग उन उद्यमियों द्वारा की जाती है, जो इनका प्रयोग करके लाभ अजित करते हैं। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पूंजी उत्पादन का एक साधन है जिसकी मांग इसकी सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज दोनों ही पर निर्भर करती है।

21.2 निवेश योग्य कोषों की मांग
(Demand for Investible Funds)

जैसाकि पूर्व में बतलाया गया था, ब्याज की साम्य दर का निर्धारण पूंजी की मांग व पूर्ति दोनों के द्वारा होता है। पूंजी के अंतर्गत हम उन सभी (मानव निर्मित) वस्तुओं को शामिल करते हैं जिन्हें अन्य वस्तुओं के उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जाता है। मार्शल ने इन्हें व्यावसायिक पूंजी (trade capital) की संज्ञा दी थी। उन्होंने यह भी कहा कि व्यावसायिक पूंजी की मात्रा को ऋणों के द्वारा बढ़ाया जा सकता है। अर्थशास्त्र में ऐसे ऋणों को निवेश योग्य कोष कहा जाता है। अन्य शब्दों में, पूंजी में उन सभी पार्टियों (assets) को शामिल करते हैं, जैसे ट्रक, मशीनें कारखाने की इमारतें, ट्रैक्टर, टूल्स, टाइप राइटर आदि, जिनमें अथवा उत्पादक शक्ति निहित है। इनके विपरीत, निवेश (investment) एक प्रवाह है, तथा निर्दिष्ट अवधि में पूंजी के स्टॉक में हुई वृद्धि को व्यक्त करता है।

यदि व्यष्टिगत स्तर पर पूंजी-निवेश किया जाए तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिए कि समूची अर्थव्यवस्था में भी निवेश किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति सौ रुपए व्यय करके एक प्रतिभूति खरीदता है तो वह अपने वर्तमान उपभोग में कटौती करके इस बचत को निवेश हेतु प्रयुक्त कर रहा है। यदि यह प्रतिभूति नई पूंजी का एक अंश है तो इसके फलस्वरूप पूंजी के स्टॉक में वृद्धि ही होगी। इसके विपरीत यदि वह किसी दलाल से इसी प्रतिभूति या शेयर को खरीदे तो इसके फलस्वरूप विद्यमान पूंजी स्टॉक के एक अंश का स्वामित्व ही बदलेगा। इसी प्रकार यदि कोई कंपनी या व्यक्ति किसी चालू कारखाने को खरीदता है तो यह व्यष्टिगत दृष्टि से भले ही निवेश हो, समाज की दृष्टि में निवेश कदापि नहीं है क्योंकि इसके होने पर भी समाज के पास विद्यमान उत्पादन क्षमता वही रहती है।

परन्तु व्यावसायिक फर्में नया पूंजी-स्टॉक खरीदने, अथवा निवेश करने में तभी रुचि लेंगी जबकि इस निवेश के द्वारा उन्हें लाभ हो। पूंजी-स्टॉक में जब भी वृद्धि होती है, फर्म का दायित्व बढ़ जाता है क्योंकि इस अतिरिक्त पूंजी पर उसे बहुधा ब्याज देना होता है। प्रत्येक उद्यमी जब भी बाहरी स्रोतों से पूंजी का अतिरिक्त स्टॉक प्राप्त करता है, उसे ब्याज का भुगतान करना ही होता है। इस ब्याज, यानी पूंजी की लागत, की तुलना निवेश से प्राप्त अपेक्षित लाभ से करने के बाद ही उद्यमी को यह निर्णय लेना होता है कि उसे निवेश करना भी चाहिए या नहीं। यदि पूंजी की प्राप्ति उधार द्वारा न हो तब भी उद्यमी स्वयं अपनी (निवेशित) पूंजी की अवसर लागत

एव अपेक्षित लाभ की तुलना करके यह निर्णय लेता है कि उसे अतिरिक्त पूजी का निवेश अपने व्यवसाय मे करना चाहिए, अथवा अपनी बचत को ब्याज लेकर ऋण के रूप मे दे देना चाहिए। यदि अपेक्षित लाभ बाजार मे प्रचलित ब्याज की दर से कम हो तो बेहतर यही होगा कि वह इस राशि का निवेश स्वय के उद्यम मे न करके इसे उधार दे दे।

पूजी की सीमात क्षमता (Marginal Efficiency of Capital)

प्रोफेसर मार्शल ने कहा था कि कोई कृषक अपनी नवनिर्मित तथा मौसमों से अप्रभावित कुटीर मे रहते हुए अपने कम मेहनती पड़ोसियो की अपेक्षा जो अतिरिक्त सुख प्राप्त करता है, वह वस्तुत उसके धैर्य एव अध्यवसाय के कारण अर्जित कीमत ही है। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि यह अतिरिक्त सुख उन प्रयासो की अतिरिक्त उत्पत्ति है जो दूरगामी दोषो के बदले विवेकपूर्ण व्यय से सबद्ध हैं, तथा इसकी तुलना एक सेवा-निवृत्त डॉक्टर की रुचि से की जा सकती है जो वह किसी कारखाने या खान के सचालन मे प्रदर्शित करता है।[2] मार्शल ने स्वीकार किया कि कोई भी ऋणी पूजी का निवेश करने से पूर्व प्राप्त होने वाले अतिरिक्त फायदो पर अवश्य विचार करना चाहेगा। परतु इतना सब कहने पर भी मार्शल ने ब्याज के किसी सिद्धात का प्रतिपादन नही किया। सर्वप्रथम आर्थिक मदी के पश्चात् जॉन मेनार्ड कीन्स की रचना 'दी जनरल थ्योरी' प्रकाशित होने के साथ ही पूजी की सीमात दक्षता की भूमिका को ब्याज के निर्धारण मे महत्त्वपूर्ण माना गया।

वस्तुत पूजी की सीमात दक्षता के आधार पर ही नई निवेश वस्तुओं की माग का निर्धारण किया जाता है। प्रत्येक उद्यमी नया कारखाना लगाने, या विद्यमान कारखाने के लिए नई मशीन खरीदने, से पूर्व इस निवेश से प्राप्त होने वाली आय का पूर्वानुमान अवश्य करता है। बहुधा प्रत्येक पाऊने (asset) मे दीर्घकाल तक आय प्राप्त होती रहती है। परतु इससे 1978 म प्राप्त की गई आय को 1979 या 1980 मे प्राप्त उतनी ही आय के समान मान लेना उचित बात नही होगी। कीन्स ने सुझाव दिया कि प्रस्तावित निवेश से प्राप्त होने वाले आय प्रवाह का योग करके हमे इसके 'सभावित प्रतिफल" को ज्ञात करना चाहिए। इसी सदर्भ मे उन्होंने पूजी की सीमात दक्षता (Marginal Efficiency of Capital) को एक ऐसी बट्टा दर (rate of discount) के रूप मे परिभाषित किया जो "किसी पाऊने की पूर्ति कीमत (supply price) तथा इससे आगामी वर्षों मे प्राप्त की जाने वाली आय के वर्तमान मूल्य (present value) को समान बना देती है।"[3] अन्य शब्दों मे, किसी भी पूजीगत पाऊने की सीमात दक्षता वह दर है जिस पर इस निवेश से अगले वर्षों मे प्राप्त होने वाली समूची आय को इस प्रकार बट्टाकृत किया जाता है कि इसकी कुल बट्टाकृत आय

2 Ibid., p 194
3 J M Keynes 'The General Theory of Employment, Interest and Money', (Mac Millan & Co., London 1961), p. 135

राशि (discounted series of returns) ठीक इस पाऊने की खरीद-कीमत के समान हो जाए। इसीलिए पूंजी की सीमांत दक्षता को आंतरिक प्रतिफल दर (IRR) की संज्ञा भी दी जाती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी मशीन का वर्तमान खरीद मूल्य 20,000 रुपए हो तथा उसके प्रयोग से 30 वर्षों तक 1500 रुपए प्रतिवर्ष की निवल आय प्राप्त होने की संभावना हो तो जिस दर पर प्राप्त आय का बट्टाकृत मूल्य 20,000 रुपए के समान होगा वही इसकी सीमांत दक्षता दर अथवा आंतरिक प्रतिफल दर होगी।

इर्विंग फिशर ने सर्वप्रथम "लागत-ऊपर प्रतिफल की दर" का विवरण प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा कि यह ऐसी दर है जो सभी लागतों की वर्तमान कीमत तथा सभी प्रतिफलों की वर्तमान कीमत को समान बनाती है। उन्होंने आगे कहा कि किसी भी दिशा में कितनी पूंजी का निवेश किया जाए इसके लिए ब्याज की प्रचलित दर एवं लागत-ऊपर प्रतिफल की दर (rate of return over cost) की तुलना की जानी चाहिए।[4] फिशर के मतानुसार नई पूंजी का निवेश केवल उसी दशा में किया जाना चाहिए जबकि लागत-ऊपर प्रतिफल की दर बाजार में प्रचलित ब्याज की दर से अधिक हो। कीन्स ने दावा किया कि उनके द्वारा प्रस्तुत "पूंजी की सीमांत दक्षता" तथा फिशर द्वारा प्रतिपादित "लागत-ऊपर प्रतिफल की दर" में कोई अंतर नहीं है।

अपेक्षित प्रतिफलों का बट्टाकरण
(Discounting the Expected Returns)

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि किसी भी पाऊने से प्राप्त होने वाली आय का बट्टाकृत मूल्य तथा इसकी वर्तमान खरीद-कीमत में जिस दर पर समानता होती है उसे पूंजी की सीमांत दक्षता अथवा आंतरिक प्रतिफल कहा जाता है। बहुधा अपेक्षित आय का बट्टाकरण करके आय या वर्तमान मूल्य (present value) ज्ञात किया जाता है। चूंकि पूंजी की सीमांत दक्षता एवं ब्याज की दर में समानता होती है, हम अपेक्षित आय के प्रवाह को आंतरिक प्रतिफल के द्वारा निम्न प्रकार से बट्टाकृत कर सकते हैं —

$$C_o = \frac{R_1}{(1+r)} + \frac{R_2}{(1+r)^2} + \ldots\ldots\ldots\ldots + \frac{R_n}{(1+r)^n} \qquad \ldots(21.1)$$

$$(r = i)$$

समीकरण (21.1) में $R_1, R_2, \ldots\ldots R_n$ द्वारा प्रथम वर्ष से लेकर n^{th} वर्ष तक प्राप्त होने वाली आय है जबकि r बाजार में प्रचलित ब्याज की दर है। इस उदाहरण में यह मान्यता ली गई है कि पाऊने का n^{th} वर्ष के बाद कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। प्रस्तावित निवेश को उसी दशा में लाभप्रद माना जाएगा जब बट्टाकृत कुल आय पाऊने की खरीद-कीमत (C_o) से अधिक हो।

4 Ibid, pp. 140-141.

इस सदर्भ में हमें एक रोचक तथ्य देखने को मिलता है। यदि पाउने की खरीद-कीमत में वृद्धि होती जाए तो इस खरीद-कीमत तथा शुद्ध प्रतिफल का बट्टाकृत मूल्य समान तभी होगा जब ब्याज की दर (1) कम होती जाए। अन्य शब्दों में, जैसे-जैसे निवेश की राशि बढ़ती है, वैसे-वैसे पूंजी की सीमान्त दक्षता में कमी होने पर ही पाउने की खरीद-कीमत तथा प्रतिफलों के बट्टाकृत (वर्तमान) मूल्य में समानता बनी रहेगी। सक्षेप में, निवेश के स्तर एव पूजी की सीमात दक्षता में प्रतिकूल सबध होता है।
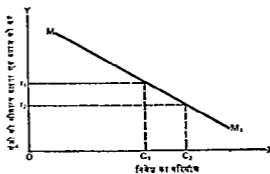
चित्र 21.5 निवश का स्तर एव पूजी की सीमान दक्षता

चित्र 21 5 में MM_1 वक्र का ऋणात्मक ढलान केवल यह बतलाता है कि निवेश का स्तर बढ़ाने पर पूजी की सीमात दक्षता में कमी आती है। जब पूजी का स्टॉक C_1 से बढ़ा कर C_2 किया जाता है तो पूजी की सीमात दक्षता r_1 से गिरकर r_2 हो जाती है। वस्तुत. C_1C_2 को पूजी के स्टॉक में हुई वृद्धि या (नए) निवेश के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जो केवल उस दशा में प्रयुक्त किया जाएगा जबकि ब्याज की दर i_1 से घटाकर i_2 हो जाए ($i_1=r_1$, $i_2=r_2$)। यदि ब्याज की दर में कमी का यह क्रम जारी रहता है तो ब्याज तथा पूजी की सीमात दक्षता में समानता बनाए रखने का अर्थ यह होगा कि फर्म को पूजी के स्टॉक में वृद्धि का क्रम भी जारी रखना होगा। चित्र 21 5 में MM_1 वक्र को इसी कारण हम निवेश का माग वक्र भी कह सकते हैं। यह वक्र उपरोक्त चित्र में रैखिक है जिसका अर्थ यही है कि ब्याज की दर में परिवर्तन होने पर समान दर से निवेश में वृद्धि होगी। यह भी सभव है कि MM_1 का स्वरूप वक्रीय हो; उस दशा में ब्याज की दर में निर्दिष्ट परिवर्तन होने पर बढ़ती या घटती हुई दर पर पूजी के स्टॉक में परिवर्तन होंगे।

पूजी की सीमात दक्षता की सारणी के माध्यम से हम पूजी के स्टॉक या निवेश को लागत-ऊपर प्रतिफल की दर के साथ सबद्ध करते हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, पूजी के स्टॉक में वृद्धि के साथ-साथ पूजी की सीमात दक्षता ($r=1$) में

कमी होनी चाहिए। पाठकों को यह बतला देना जरूरी है कि पूंजी सीमांत दक्षता (MEC या r) तथा निवेश की सीमांत दक्षता (MEI) में अंतर है। निवेश की सीमांत दक्षता हमें अतिरिक्त निवेश से प्राप्त प्रतिफल का बोध कराती है तथा इस दृष्टि से यह सीमांत उत्पत्ति (marginal productivity) के समान है। जैसा कि हम जानते हैं, सीमांत उत्पत्ति वस्तुतः किसी साधन की अतिरिक्त मात्रा से कुल आगम में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करती है। संक्षेप में, पूंजी की सीमांत दक्षता का संबंध पूंजी के अतिरिक्त स्टॉक यानी निवेश से है, जबकि निवेश की सीमांत दक्षता का संबंध अतिरिक्त निवेश से होता है।

ब्याज की चक्रवृद्धि पद्धति (Interest Compounding)

ब्याज की चक्रवृद्धि पद्धति के आधार पर कोई भी निवेशकर्ता यह जानने का प्रयास करता है कि निर्दिष्ट ब्याज दर पर उसकी कोई वर्तमान राशि भविष्य में ब्याज-सहित कितनी राशि में परिवर्तित हो जाएगी। मान लीजिए, कोई व्यक्ति A रुपए आज उधार देता है तो m अवधियों के बाद कुल कितने रुपए उसे प्राप्त हो सकेंगे, इसका पता निम्न सूत्र के द्वारा लगाया जा सकता है—

$$V_m = A\left(1+\frac{1}{m}\right)^{mt} \qquad (21\ 2)$$

समीकरण (21 2) में प्रस्तुत सूत्र में V_m तो m अवधियों के अंत में प्राप्त कुल राशि को व्यक्त करता है, A इस व्यक्ति द्वारा उधार दी गई या निवेशित प्रारंभिक राशि है, m अवधियों की संख्या को व्यक्त करता है जबकि t वे वर्ष हैं जिनके लिए ब्याज की दर (r) का चक्रवृद्धि रूप ज्ञात किया जाएगा। $\frac{r}{m}$ से यह ज्ञात हो सकता है कि एक वर्ष की m अवधियों में ब्याज की दर r का केवल $\frac{1}{m}$ अंश ही आकलन हेतु प्रयुक्त किया जाएगा। यदि वर्ष में केवल एक ही बार ब्याज का आकलन किया जाए (यानी m=1 हो) तो समीकरण (21 2) का रूप इस प्रकार का होगा—

$$V = A\,(1+r)^t \qquad (21\ 3)$$

समीकरण (21 2) को निम्न रूप में भी लिखा जा सकता है—

$$Vm = A\left[\left(1+\frac{r}{m}\right)^{m/r}\right]^{rt}$$

$$= A\left[\left(1+\frac{1}{w}\right)^{w}\right]^{rt}$$

$$\left(\text{यहां } w = \frac{m}{r} \text{ है}\right) \qquad (21\ 4)$$

यदि समीकरण (21.3) के विपरीत (जहां m=1 है), ब्याज का आकलन अविरल रूप से किया जाए यानी $m\rightarrow\infty$, तो $w\rightarrow\infty$ होगा, तो कोष्ठक में दी गई संख्याओं को e के रूप में व्यक्त करना संभव है। यदि $m=\infty=w$ की स्थिति

को चरम स्थिति मान लें तो e का मूल्य 2.718 प्राप्त हो सकता है। कुल मिलाकर अनवरत रूप मे ब्याज के भावलन की स्थिति में चक्रवृद्धि ब्याज का सूत्र निम्नांकित होगा—

$$A = Ae^{rt} \quad \ldots(21\ 5)$$

चक्रवृद्धि ब्याज का यही बहु-प्रचलित सूत्र है। बहुधा उद्यमी अपने पाऊने के चक्रवृद्धि मूल्य की तुलना अपनी समय अधिमान दर के आधार पर समायोजित भावी आय से करते हुए निवेश योग्य कोषों के विषय मे उपयुक्त निर्णय लेता है।

सक्षेप में, निवेश सबधी व्यष्टिगत सिद्धात म यह पता चलता है कि यदि व्यक्ति के समक्ष निवेश के हेतु अनेक अवसर विद्यमान हो तो उसका निर्णय केवल उस स्थिति में विवेकशील माना जाएगा जबकि निर्दिष्ट निवेश योग्य राशि मे उस अधिकतम बट्टाकृत आगम की प्राप्ति होनी हो, अथवा निवेशित राशि से अधिकतम चक्रवृद्धि ब्याज प्राप्त होना हो। निवेश योग्य कोषों की माग वे ही लोग करते हैं जिन्हें उत्पादक कार्यों में पूजी का प्रयोग करना है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, इस माग में ब्याज की दर से विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है, क्योंकि जैस-जैस पूजी के स्टॉक मे वृद्धि होती है, पूजी की सीमात दक्षता (MEC) में कमी हाती जाती है। अन्य शब्दो में जैस-जैस अधिक मात्रा में निवेश होता है, पूजी की सीमात दक्षता (r) में कमी होती है, और इसलिए नया निवेश तभी सभव होगा जब ब्याज की दर (i) में भी कमी हो। यह ठीक वस्तु की माग के नियम की भाति है जिसमें सीमात उपयोगिता व कीमत में समानता बनाए रखन हेतु अधिक मात्रा में वस्तु तभी खरीदी जाती है जब कीमत में कमी हो ($MU_x = P_x$), क्योंकि अधिक मात्रा खरीदने पर सीमात उपयोगिता में भी कमी होती है।

निवेश-योग्य कोषो की बाजार माग प्राप्त करन हेतु हम व्यष्टिगत माग वक्रो का क्षैतिज योग लेते हैं। अनुभाग 21 1 मे प्रस्तुत बचत सारणी (Supply of Savings Schedule) को निवेश योग्य कोषो के बाजार माग वक्र के साथ प्रस्तुत करने पर हमें बाजार की साम्य ब्याज दर (equilibrium rate of interest) का बोध होता है, जिस पर समाज के लोग पूजी उधार देंगे तथा पूजी उधार प्राप्त करेंगे। परतु हमे यह याद रखना होगा कि निवेश की माग सारणी काफी लम्बी रेंज तक ब्याज की दर से प्रभावित नही होती, और इसीलिए सस्थापक अर्थशास्त्रियो ने यह कहा था कि ब्याज का निर्धारण मूलत बचत की पूर्ति द्वारा होता है।

21 3 ब्याज के मौद्रिक सिद्धात
(Monetary Theories of Interest)

कीन्स, रॉबर्ट्सन एव अन्य कुछ अर्थशास्त्रियों न ब्याज के निर्धारण हेतु जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं उनमे निवेश की माग व पूर्ति के मौद्रिक पक्ष पर बल दिया गया है। इन विद्वानो के मतानुसार निवेश हेतु आवश्यक मुद्रा की माग व पूर्ति काफी सीमा तक ब्याज की दर अथवा इसमे होने वाले परिवर्तनो से प्रभावित होती

है। इस अनुभाग में हमने उधार योग्य कोष सिद्धात (Lonable Fund Theory) तथा कीन्स द्वारा प्रतिपादित तरलता अधिमान सिद्धात (Liquidity Preference Theory) की विवेचना प्रस्तुत की है। अत म इन दोनो सिद्धातो को समन्वित रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

तरलता अधिमान सिद्धात (Liquidity Preference Theory)

जॉन मेनार्ड कीन्स ने सर्वप्रथम व्यक्ति के समय अधिमान के अर्थ एव आधार (उपभोग प्रवृत्ति) को स्पष्ट किया और फिर किसी भी व्यक्ति द्वारा भविष्य के उपभोग हेतु सचित राशि के स्वरूप को प्रदर्शित करने का प्रयास किया।[5] उन्होने कहा कि कोई व्यक्ति मुद्रा के रूप मे तत्काल तरल पाऊना अपने पास रख सकता है, अथवा वह इस राशि का किसी भी अन्य व्यक्ति को कुछ समय के लिए उधार दे सकता है, और इस प्रकार तत्काल तरल राशि को स्थगित तरल राशि के रूप मे परिवर्तित कर सकता है। इस प्रकार कीन्स ने व्यक्ति के तरलता अधिमान की सीमा का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया जिसके द्वारा वह भिन्न-भिन्न परिस्थितियो म अपने साधनो को मुद्रा (तरलता) के रूप मे रखना चाहता है। इसके आगे कीन्स ने कहा कि तरलता अधिमान की सीमा (डिग्री) उस व्यक्ति के स्वभाव एव उद्देश्यो पर निर्भर करती है। वह अपनी उपभोग अथवा व्यवसाय सबधी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नकदी कोष या मुद्रा की माग कर सकता है। इस कीन्स न तरलता माग का व्यावसायिक उद्देश्य (transaction motive) बतलाया। द्वितीय उद्देश्य को सतर्कता उद्देश्य (precautionary motive) की सज्ञा दी गई जिसके अनुसार व्यक्ति अपने साधनो का एक अश मुद्रा के रूप मे इसलिए रखना चाहता है ताकि भविष्य की अज्ञात विपदाओ मे यह राशि काम आ सके। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह उपभोक्ता हो अथवा व्यवसायी, "आड़े वक्त के लिए" कुछ धनराशि अवश्य बचाकर रखना चाहता है। अत मे, कीन्स ने सट्टा उद्देश्य (speculative motive) के लिए चाहे गए तरल कोषो (मुद्रा) का विवरण दिया। उनके मतानुसार इन कोषो के माध्यम से व्यक्ति बाजार में होने वाली घटनाओ से लाभ उठाने की इच्छा रखता है। बहुधा सट्टा हेतु रखे गए इन कोषो के द्वारा व्यक्ति भारी लाभ कमाने का प्रयास करता है, और सतत रूप से बाजार की कीमतों मे होने वाले परिवर्तनो को देखते हुए इन कोषो का प्रयोग करता है।

कीन्स ने यह सब स्पष्ट करने के बाद तीनो उद्देश्यो से रखे गए मौद्रिक कोषो एव ब्याज की दर के बीच सबधो की चर्चा की। यह मानते हुए कि ब्याज की दर निर्दिष्ट अवधि मे तरलता के परित्याग का पुरस्कार मात्र है, कीन्स ने कहा कि इस दर के द्वारा नकद राशि के रूप म अपनी सपत्ति रखने की इच्छा तथा नकद राशि की उपलब्ध पूर्ति मे समानता स्थापित की जाती है। कीन्स ने कहा कि व्यावसायिक

5 Ibid, p 166

ब्याज का उधार-योग्य कोष सिद्धात[8]
(Loanable Fund Theory of Interest)

उधार योग्य निधि या कोष सिद्धांत का प्रतिपादन एक ही समय मे एक ही व्यक्ति ने नही किया। अपितु, स्वीडन मे विक्सेल ने, इग्लैंड म डैनिस रॉबर्टसन ने तथा अमरीका मे एच० डेवनपोर्ट न अलग-अलग रूप म उधार योग्य कोष के सिद्धात पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए। परतु कुल मिलाकर सभी के विचार एक जैसे थे। सस्थापक विचारधारा के अतर्गत निवेश हेतु कोषो की माग एव बचत सारणी के प्रतिच्छेदन द्वारा ब्याज का निर्धारण होता है। उधार योग्य कोष सिद्धात के अनुसार भी ब्याज की साम्य दर का निर्धारण उधार योग्य कोषो की माग एव इनकी पूर्ति के द्वारा होता है।

उधार योग्य कोषो की पूर्ति यानी बचत सारणी का निरूपण समाज के लोगो द्वारा की गई बचतों, मुद्रा की पूर्ति मे की गई वृद्धि (नई मुद्रा के सृजन), तथा भूतकाल मे की गई बचत के अपसचय (dishoarding) के द्वारा होता है। साथ ही, इन कोषो की पूर्ति पर आय के स्तर का भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, क्योकि बचत की मात्रा का निर्धारण आय व ब्याज की दर दोनों ही के द्वारा होता है।

सस्थापक सिद्धात इस मान्यता पर आधारित था कि राष्ट्रीय आय के निर्दिष्ट स्तर पर बचत की मात्रा तथा निवेश की मात्रा मे समानता होती है, और इसी स्तर पर ब्याज की साम्य दर का निर्धारण होता है। वस्तुत, राष्ट्रीय आय मे इस प्रकार परिवर्तन होते है कि अतत. ब्याज की किसी एक दर पर बचत की कुल मात्रा तथा निवेश मे समानता स्थापित हो जाती है। परतु उधार-योग्य कोष सिद्धात के प्रतिपादकों की ऐसी मान्यता है कि बचतो की पूर्ति आय के वर्तमान स्तर से होती है। इसलिए, बचत राष्ट्रीय आय का वह भाग है जिसका उपभोग नहीं किया जाता।

उधार योग्य कोषो की पूर्ति (*Supply of Loanable Funds*)

पीगू का ऐसा मत है कि वस्तुत बचतो मे ही उधार योग्य कोषो की पूर्ति निहित है (हालांकि सारी बचतें निवेश हेतु उपलब्ध नही हो पाती)। इसके विपरीत रॉबर्टसन की मान्यता है कि उधार योग्य कोषो मे निम्न मदो को शामिल किया जाना चाहिए (अ) वर्तमान प्रयोज्य (disposable) आय से प्राप्त बचतें, (ब) बैंकों द्वारा सृजित साख, तथा (स) अपसचय (dishoarding)। उन्होने कहा कि उधार योग्य कोषो की पूर्ति प्रत्यक्षत ब्याज की दर से प्रभावित होती है—यानी ब्याज की दर मे वृद्धि होने पर लोग अपने उपभोग-व्यय मे कटौती करके अधिक बचत करते हैं तथा बैंक भी यथासभव अधिक साख का सृजन करने लगते हैं। इसी प्रकार ब्याज की दर म वृद्धि होने पर लोगो के पास भूतकाल से चली आ रही सचित निधि को बाहर निकाल कर इसे भी निवेश हेतु प्रस्तुत किया जा सकता है।

8 A L Hansen, 'A Guide To Keynes', Chapter 7

उधार योग्य कोषों की माँग (Demand for Loanable Funds)

उधार योग्य कोषों की माँग में उपभोक्ताओं तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा विभिन्न प्रयोजनों से माँग गए कोष सम्मिलित किए जाते हैं। उपभोक्ता अपनी उपभोग सबंधी तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठान निवेश से सबद्ध जरूरतों की पूर्ति हेतु इन कोषों की माँग करते हैं। जब भी कोई व्यक्ति या प्रतिष्ठान स्वयं उधार लेता है तो ऐसे ऋणों पर उसे ब्याज देना होता है क्योंकि वह भविष्य तक प्रतीक्षा करने की अपेक्षा अपनी कुछ जरूरतों की पूर्ति तत्काल (आज ही) करना चाहता है। अन्य शब्दों में व्यक्ति वर्तमान में ऊँचा जीवन स्तर या अधिक बड़ा व्यवसाय चाहता है तो उसे प्राप्त ऋणों पर ब्याज देना ही होगा। अस्तु यदि उपभोक्ता ऊँचे जीवन स्तर के लिए तथा व्यावसायिक फर्में अधिक लाभ के लिए ऋण लेना चाहें तो इसके लिए उन्हें ब्याज का भुगतान करना ही होता है। अस्तु उधार योग्य कोषों की माँग के दो घटक अंग उपभोग तथा निवेश हेतु माँगी गई राशि हैं। इनके अतिरिक्त उधार योग्य कोष की माँग का तीसरा अंग सरकार द्वारा माँगी गई मुद्रा है। सरकार को उधार योग्य कोषों की आवश्यकता तब होती है जब इसकी कुल आय कुल सरकारी व्यय से कम हो। अतः में उधार योग्य कोषों की माँग सचय हेतु भी की जाती है। परन्तु उधार योग्य कोषों की माँग का सामान्यतः ब्याज की दर से विपरीत सबंध होता है क्योंकि ब्याज की दर में वृद्धि होने पर उपभोग व निवेश की माँग के साथ-साथ सचय हेतु भी मुद्रा की माँग में कमी होती है। इसके विपरीत ब्याज की दर में कमी होने पर उधार योग्य कोषों की माँग में वृद्धि होती है।

ऊपर प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट होता है कि उधार योग्य कोष सिद्धान्त के प्रतिपादक अर्थशास्त्री विशेष तौर पर रॉबर्टसन मूलतः ब्याज की साम्य दर के निर्धारण में माँग व पूर्ति की भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानते थे। पीगू ने बचतों की माँग व पूर्ति के आधार पर साम्य ब्याज दर के निर्धारण का विवरण दिया जबकि रॉबर्टसन ने उधार योग्य कोषों की माँग व पूर्ति को आधार बनाया। इन विद्वानों ने बतलाया कि ब्याज की साम्य दर उस स्तर पर निर्धारित होगी जहाँ पूर्ति वक्र का माँग वक्र काटता है। चित्र 21 7 में इसी बात की पुष्टि की गई है। उधार योग्य कोषों का पूर्ति वक्र तीन मदों—वर्तमान बचतों, बैंक साख तथा निष्क्रिय भूतकालीन कोषों से निकाली गई असंचित राशि—के क्षैतिज योग को व्यक्त करता है। जैसा कि चित्र 21 7 से पता चलता है ब्याज की दर में वृद्धि के साथ साथ कोषों की पूर्ति में वृद्धि होती है यानी उधार योग्य कोषों की पूर्ति एवं ब्याज की दर में धनात्मक सह-सबंध होता है। इसके विपरीत ब्याज की दर में कमी होने पर इन कोषों की पूर्ति में कमी हो जाती है।

चित्र 21 7 में प्रारंभ में उधार योग्य कोषों का माँग वक्र D_LD_L पूर्ति वक्र को i_1 ब्याज-स्तर पर काटता था। परन्तु जैसे जैसे पूर्ति वक्र का विस्तार होता है वैसे वैसे ब्याज की दर में कमी आती जाती है। इसी के साथ-साथ यह भी पता चलता

है कि प्रत्येक नया पूर्ति वक्र आय के उच्चतर स्तर को व्यक्त करता है। राष्ट्रीय आय का स्तर Y_1 होने पर ब्याज की दर i_1 थी। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय क्रमशः Y_2, Y_3 व Y_4 होने पर (उधार योग्य कोषों के पूर्ति वक्र विवर्तित होने के कारण) ब्याज की
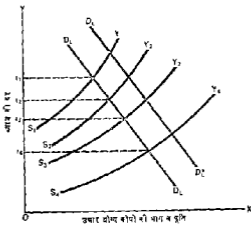
चित्र 21.7 उधार योग्य कोषों की सारणी : माग व पूर्ति तथा ब्याज की दर का निर्धारण

दर भी क्रमश i_2, i_3 व i_4 हो जाती है। राष्ट्रीय आय में आगे भी वृद्धि होने पर इसी प्रकार पूर्ति वक्र में विवर्तन होगा तथा ब्याज की दर में कमी होती जाएगी।

परतु यदि उधार योग्य कोषों का माग वक्र विवर्तित होता हो (चित्र 21.7 में D_LD_L से विवर्तित हो कर $D'_LD'_L$) तो इसका प्रभाव ब्याज की दर में वृद्धि कारक होगा। यदि पूर्ति वक्र में जितना ही विवर्तन माग वक्र में भी हो जाए तो ब्याज की दर यथावत् रहेगी।

21.4 क्या ब्याज की दर शून्य या ऋणात्मक हो सकती है ?

(Can the interest rate become zero)

एल्फ्रेड मार्शल ने एक ऐसी स्थिति का विवरण दिया था जिसमें अधिकाश लोग धन सग्रह करने तथा वृद्धावस्था के लिए इसे बचाकर रखने हेतु अत्यधिक व्यग्र हो जाते हैं। उन्होंने कहा कि ऐसी स्थिति में बहुधा लोग इस मुद्रा को सुरक्षित रखने वालों (कस्टोडियन) को पुरस्कार देने को भी तत्पर रहते हैं। अन्य शब्दों में, ये व्यक्ति अपनी बचत दूसरे व्यक्तियों को देने के बाद ब्याज लेने की अपेक्षा उन्हें अपनी ओर से भुगतान करते हैं ताकि इनकी बचतें सुरक्षित रहें। मार्शल ने कहा कि "ऐसी

स्थितियों में सदैव ही ब्याज की दर ऋणात्मक रहती है।[9] यदि कुछ बैंक अन्य लोगों द्वारा जमा की गई मुद्रा के लिए उन्हें ब्याज देने की अपेक्षा उक्त मुद्रा की सुरक्षा हेतु ब्याज वसूल करते हैं तो यह ऋणात्मक ब्याज दर का ही एक उदाहरण होगा। परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऋणात्मक ब्याज की यह स्थिति कम ही दिखाई देती है।

बहुधा ब्याज की दरें धनात्मक होती हैं, न केवल इसलिए कि बचत करने वाले व्यक्ति अपने वर्तमान उपभोग में कटौती करके त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, अपितु इसलिए भी कि जिन व्यक्तियों को ये बचतें ऋण के रूप में दी जाती हैं वे इन्हें प्रयुक्त करके लाभ अर्जित करते हैं। निम्न कारणों से ब्याज की दर का धनात्मक होना जरूरी है।

(i) तरलता जाल (Liquidity trap) जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है मुद्रा की पूर्ति में कितनी ही वृद्धि क्यों न हो जाए, एक सीमा के बाद लोग प्रतिभूतियों में अपनी नकद राशि को प्रयुक्त करने की अपेक्षा इस अतिरिक्त मुद्रा को अपने पास ही रखना चाहेंगे। परिणामस्वरूप, जैसा कि चित्र 21 6 में बतलाया गया था, तरल कोषों का माग वक्र M^d एक रेंज में क्षैतिज हो जाता है तथा ब्याज की दर में मुद्रा की पूर्ति बढ जाने के बावजूद कोई कमी नहीं होती। वस्तुत लोग इस जाल में फसने के बाद यह अटकल लगाते रहते हैं कि प्रतिभूतियों की कीमतें शीघ्र ही कम होंगी तथा वे इनमें अपने तरल कोषों को प्रयुक्त करके अधिक लाभ कमाएंगे। अस्तु, एक सीमा के बाद (यानी तरलता जाल में) ब्याज की दर में कमी नहीं हो पाती तथा वह स्थिर हो जाती है।

(ii) प्रबंध की लागत (Cost of management) ऋणदाता को इस विषय में पूर्ण हिसाब-किताब रखना होता है कि उसने किन लोगों को कितनी अवधि के लिए कितना ऋण दिया। इन सब में जो समय एवं बुद्धि व्यय होती है यानी ऋण-प्रबंध हेतु ऋणदाता को जो कष्ट उठाना पडता है उसके लिए उसे पारिश्रमिक मिलना चाहिए, और इसीलिए उसे ब्याज दिया जाना चाहिए।

(iii) व्यावसायिक जोखिम (Commercial risk) सामान्य तौर पर भविष्य अनिश्चिततापूर्ण होता है, और इसलिए ऋणदाता को यह आशंका हो सकती है कि जब भी उसका ऋण वापस किया जाएगा, मुद्रा की क्रयशक्ति गिर चुकी होगी। यही नहीं, जितने व्यक्तियों को ऋण दिए जाते हैं, उनमें से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो ऋण की राशि वापस करने से इनकार कर दें अथवा उनका दिवाला निकल जाए। इस बट्टा खाता राशि का कुल ऋणों में अनुपात जितना अधिक होने की आशंका होती है, तथा मुद्रा की क्रयशक्ति में ह्रास की जितनी अधिक संभावना है, ऋणी को उतनी ही अधिक क्षतिपूर्ति (ब्याज) प्राप्त करने का अधिकार होता है। चूंकि मुद्रा की क्रयशक्ति स्थिर नहीं रहती और चूंकि शत-प्रतिशत ऋण वापस नहीं हो पाते, अत. ब्याज की वसूली भी आवश्यक हो जाती है।

9 Marshall, op cit, p 483 (footnote)

यदि कोई भी व्यावसायिक जोखिम न हो तब भी ऋणकर्ताओं के समय अधिमान की दर इकाई से अधिक रहती है तथा ऋणी स्वयं के वर्तमान उपभोग में कटौती करके त्याग करता है, उस ब्याज मांगने का अधिकार है।[10]

मार्टिन ब्रोनफेनब्रेनर के मतानुसार ऋणात्मक या शून्य ब्याज की दर में एक विरोधाभास भी विद्यमान है।[11] यदि किसी मशीन की कीमत P हो तथा इससे y के समान प्रतिवर्ष आय प्राप्त होने की आशा हो एवं r ब्याज की दर हो तो साम्य स्थिति इस प्रकार होगी—

$$P = \frac{y}{r}$$

यदि ब्याज की दर $r = 0$ हो तो मशीन की कीमत अनंत ($P = \infty$) हो जाएगी। यदि इसके विपरीत $r < 0$ हो (ब्याज की दर ऋणात्मक हो) तो मशीन की कीमत भी ऋणात्मक होगी। दोनों ही स्थितियां तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती और इसीलिए ब्याज की दर न तो ऋणात्मक हो सकती है और न ही शून्य।

21.5 बाण्ड्स की कीमतें तथा ब्याज की दर
(Bond Prices and the Interest Rates)

सर्वप्रथम कीन्स ने ही ब्याज की दर के निर्धारण में मुद्रा की सट्टा मांग की भूमिका पर प्रकाश डाला था। उन्होंने यह बतलाया कि अपेक्षाकृत काफी ऊंची ब्याज दरों पर लोग अपनी मुद्रा या तरल कोषों को प्रतिभूतियों या बाण्ड्स के रूप में परिवर्तित करना चाहेंगे। चूंकि थोड़ी सी मुद्रा का निवेश करने पर वे ब्याज से पर्याप्त आय प्राप्त कर सकते हैं, यह तर्क भी दिया जा सकता है कि जब ब्याज की दरें ऊंची होती हैं तो प्रतिभूतियों या बाण्ड्स की कीमत कम होती है। उदाहरण के लिए, यदि एक वर्ष वाली 100 रुपए की एक प्रतिभूति पर 10 रुपए ब्याज मिलता है तथा 200 रुपयों की दो प्रतिभूतियों पर भी 10 रुपए ब्याज मिलता हो जो प्रथम श्रेणी की प्रतिभूति की कीमत कम तथा ब्याज की दर अधिक है जबकि द्वितीय श्रेणी की प्रतिभूतियों पर ब्याज की दर कम तथा प्रतिभूति की कीमत अधिक है। संक्षेप में, अधिक निवेश करने पर ब्याज की उतनी ही आय प्राप्त होने पर यही कहा जाएगा कि ब्याज की दर कम होने पर बाण्ड की कीमत अधिक है। इसके विपरीत जब उतनी ही राशि का निवेश करने पर ब्याज की अधिक आय प्राप्त होती हो तो यह कहा जाएगा कि ब्याज की दर अधिक होने पर प्रतिभूति (बाण्ड) की कीमत कम है। चित्र 21.6 में ब्याज की दर काफी ऊंची (r'_1) होने पर बाण्ड की कीमत कम ही मानी जाएगी।

10 ब्याज की दर r_1 इस प्रकार होगी—
$r_1 = r + r' + r''$ जहां r ब्याज की शुद्ध दर, है r' प्रबंध का पुरस्कार है तथा r'' व्यावसायिक जोखिम का पुरस्कार है। तीनों का योग लेने पर कुल ब्याज की दर r_1 प्राप्त होती है।

11 Martin J. Bronfenbrenner, 'Theory of Income Distribution', pp. 314-315

ब्याज के सिद्धांत पर पिछले कुछ वर्षों मे व्यक्त विचार : पिछले कुछ वर्षों मे जो जे० आर० हिक्स, डॉन पैटिन्किन, रुबेन केसल आदि ने ब्याज की दर के निर्धारण हेतु कुछ नई दिशाएं प्रदान की हैं। परन्तु इन्हे समझने के लिए मुद्रा व स्टॉक-बाजार की व्यूह रचना एव कार्य प्रणाली को भली भांति समझना जरूरी है। इसीलिए इस पुस्तक मे इनका विवरण प्रस्तुत करना सभव नही है।[12]

अत मे, ब्याज के विषय म एक बात और कही जा सकती है। विभिन्न व्यावसायिक प्रतिष्ठान तथा सरकारें अपनी परियोजनाओ का मूल्याकन करने एव इनकी आर्थिक व वित्तीय क्षमता को परखने हेतु ब्याज की दरो का आश्रय लेते हैं, तथा परियोजना की आतरिक प्रतिफल दर (IRR) की तुलना प्रचलित ब्याज दर म करके ही प्राथमिकता के आधार पर निर्दिष्ट परियोजना मे पूजी लगाते हैं। बहुत से अर्थशास्त्री एव परियोजना विशेषज्ञ किसी परियोजना से प्राप्त अपेक्षित लाभो का वर्तमान निवल मूल्य (Net Present Value NPV) ज्ञात करके इसकी तुलना परियोजना की वर्तमान लागत से करते हैं तथा वर्तमान निवल मूल्य जब तक लागत म अधिक न हो तब तक परियोजना को स्वीकार नही करते। बहुधा समान लागत वाली परियोजनाओं को वर्तमान निवल मूल्य के क्रम मे सजोया जाता है तथा फिर इन्हे प्राथमिकता के क्रम मे स्वीकार किया जाता है। जैसा कि हम पूर्व मे बतला चुके हैं, वर्तमान निवल मूल्य ज्ञात करने हेतु हम परियोजना से प्राप्त होने वाले (अपेक्षित) लाभो का बाजार मे प्रचलित बाजार दर के आधार पर बट्टाकरण करते हैं। यह ब्याज की दर का एक आधुनिक प्रयोग है।

12 जो पाठक इस समष्टिगत विषय मे रुचि रखते हैं वे निम्न लेख या पुस्तकें पढ़ सकते हैं:
(i) J R Hicks, "Mr Keynes and the Classics, A Suggested Interpretation" in AEA—Readings in the Theory of Income Distribution, (ii) Don Patinkin 'Money, Interest and Prices' (2nd Edition), New York, Harper & Row), Chapter 11 and (iii) Reuben Kessel 'The Cyclical Behaviour of the Term Structure of Interest Rates' (New York National Bureau of Economic Research—Occasional Paper No 91, 1965)

22
लाभ का सिद्धांत
(THEORY OF PROFIT)

प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक अर्थशास्त्रियों की ऐसी मान्यता थी कि मजदूरी, लगान व कच्चे माल की लागत का भुगतान करने के पश्चात् जो कुछ शेष रहता है वही पूंजीपति का लाभ है। तेहरवीं शताब्दी में संत टॉमस एक्विनास एवं अन्य लोगों ने व्यवसायी की उस आय को न्यायोचित बतलाया था जो उसे श्रम तथा उत्पादन व्यय के प्रतिफल के रूप में प्राप्त होती है। परन्तु उन्होंने व्यवसायी की उस आय को सर्वथा अनुचित बतलाया जिसे वह लालच एवं कुटिलता के कारण प्राप्त करता है। अस्तु, मध्ययुगीन विचारक लाभ के केवल उस अंश को उचित मानते थे जिसे हम आज सामान्य लाभ की संज्ञा देते हैं।

एडम स्मिथ ने भी व्यापारियों तथा उद्योगपतियों के द्वारा अर्जित लाभ के ऊंचे स्तरों को अनुचित बतलाया क्योंकि उनकी दृष्टि में ऐसे लाभ का समाज पर अपकारक प्रभाव पड़ता है।[1] स्मिथ के मतानुसार किसी वस्तु की स्वाभाविक कीमत (natural price) से बाजार कीमत (market price) का जो आधिक्य होता है वही लाभ है। स्वाभाविक कीमत से उनका अभिप्राय उस कीमत से है जिसमें मजदूरी की स्वाभाविक दर (जब मजदूरी जीवन निर्वाह व्यय के समान हो) लगान तथा पूंजीपति के श्रम का पुरस्कार निहित होता है। परन्तु स्मिथ ने यह स्वीकार किया कि लाभ की दर में उत्तरोत्तर कमी होती जाती है। उन्होंने कहा कि जैसे-जैसे पूंजी की मात्रा बढ़ती है, वैसे-वैसे पूंजी के स्वामियों में स्पर्धा बढ़ता है तथा इसका प्रयोग ऐसे व्यवसायों या उपक्रमों में होने लगता है जहां लाभ की दरें बहुत कम हैं। यही नहीं, पूंजी का प्रयोग बढ़ने के साथ-साथ मजदूरी की दर में वृद्धि हो जाती है, तथा इसके फलस्वरूप भी लाभ में कमी होना संभव है।

रिकार्डो ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए। परन्तु उन्होंने यह तर्क दिया कि दीर्घकाल में जैसे-जैसे लगान में वृद्धि होती है, तथा मजदूरी का स्तर जीवन-

1 Adam Smith, 'Wealth of Nations', Book I, Chapter IX

निर्वाह व्यय पर स्थिर हो जाता है, वैसे-वैसे उद्यमियो को प्राप्त होन वाले लाभ मे कमी होती जाती है। परन्तु रिकार्डो ने यह स्वीकार किया कि वृहत् स्तर के उद्योगो मे मौद्रिक मजदूरी मे वृद्धि होती है, और इसलिए लाभ की दर म ह्रास की गति और अधिक तीव्र होती है। रिकार्डो ने यह भी कहा कि जब लाभ का स्तर शून्य होता है तो पूजी का सचय रुक जाता है, तथा अनत मजदूरी का भुगतान करन के बाद देश की समूची आय केवल भूमि के स्वामियो को प्राप्त होने लगती है। वस्तुत रिकार्डो के ये विचार ह्रासमान प्रतिफल के सिद्धात पर आधारित थे। उन्होन लाभ तथा उत्पादन लागतो के बीच सबध की चर्चा करते हुए कहा कि ह्रासमान प्रतिफल के कारण जैसे-जैस लागतो मे वृद्धि होती है, लाभ की दर म अवश्य कमी होती है।

सक्षेप मे, सस्थापक अर्थशास्त्रियो ने वितरण को समाज के तीन वर्गों के मध्य आय वितरण की एक समस्या के रूप म प्रस्तुत किया। ये तीन वर्ग हैं भू-स्वामी श्रमिक तथा पूजीपति। सस्थापक विचारको ने कहा कि भू स्वामियो तथा श्रमिको को भुगतान करने के पश्चात् ही पूजीपति को उसका पारिश्रमिक मिलता है और इसी को लाभ की सज्ञा दी जाती है।

नव सस्थापक विद्वानो, विशेष तौर पर एल्फ्रेड मार्शल ने लाभ की प्रकृति एव उत्पत्ति के विषय म अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की। पिछले कुछ दशको मे लाभ के सिद्धात मे अनेक सशोधन किए गए हैं। इस अध्याय मे हम लाभ की अवधारणा पर सर्वप्रथम मार्शल द्वारा प्रस्तुत विचारो की व्याख्या करेंगे। इसके बाद हम जे० बी० क्लार्क, फ्रैंक नाइट जे० ए० शुम्पीटर, ए० जी० हार्ट तथा अन्य विद्वानो के द्वारा लाभ के विषय में प्रस्तुत सिद्धान्तों तथा विचारो का वर्णन करेंगे। परतु इन सबकी चर्चा करन से पूर्व हम लाभ का अर्थ स्पष्ट करना चाहेंगे।

22.1 लाभ का अर्थ
(Meaning of Profit)

विभिन्न अर्थशास्त्रियो ने लाभ की परिभाषा विभिन्न प्रकार स दी है। 1826 मे वा थ्यूनन ने कहा कि ब्याज जोखिम के बीमे, तथा प्रबध के पुरस्कार का भुगतान करने के बाद उद्यमी के पास जो कुछ शेष रहता है वही लाभ है। उनस पूर्व सस्थापक अर्थशास्त्रियो ने भी यह कहा था कि पूजीपति को प्राप्त होने वाले पुरस्कार मे तीन तत्त्व शामिल होते हैं (i) पूजी का उपयोग करने से सबद्ध भुगतान, जो ब्याज के अनुरूप है (ii) उसकी प्रबध क्षमता का पुरस्कार, तथा (iii) उद्यम के समक्ष आने वाली कठिनाइयो या व्यावसायिक जोखिम उठाने का पुरस्कार। जे० एस० मिल ने कहा कि लाभ के अतर्गत पूजीपति उद्यमी को प्राप्त सपूर्ण पारिश्रमिक को शामिल किया जाना चाहिए। 1852 मे एक फ्रेंच लेखक, कूर्सेल सेन्यूल ने कहा कि किसी उद्यमी द्वारा जोखिम वहन करने से ही लाभ की उत्पत्ति होती है। आगे चलकर फ्रैंक नाइट तथा हार्ट ने इन्ही मान्यताओ के आधार पर लाभ के सिद्धातों का प्रतिपादन किया क्योंकि उनकी यही मान्यता थी कि जोखिम वहन करने का ही पुरस्कार लाभ है। इनमे

विपरीत कार्ल मार्क्स तथा बाद के समाजवादी लेखकों ने यह मान्यता लेते हुए कि श्रम ही सम्पत्ति का सृजन कर सकता है, यह तर्क दिया कि श्रमिकों को प्राप्त होने वाली समस्त आय को लाभ मानना चाहिए क्योंकि ऐसी आय की उत्पत्ति शोषण से होती है।

वर्तमान शताब्दी में अर्थशास्त्रियों ने लाभ के अर्थ को तीन अलग अलग रूपों में प्रस्तुत किया है। प्रथम, एक ऐसी विचारधारा है जिसके अंतर्गत निवेशित पूंजी के ब्याज ऊपर जो भी अतिरिक्त आय प्राप्त होती है वह लाभ है क्योंकि सामान्यत यह ब्याज ही पूंजी पर प्राप्य दीर्घकालीन प्रतिफल होता है। द्वितीय विचारधारा के अनुसार हमें शुद्ध लाभ (pure profit) पर अधिक ध्यान देना चाहिए। प्रबंध के पुरस्कार, पूंजी के ब्याज आदि का भुगतान करने के बाद उद्यमी को जो कुछ अतिरिक्त आय प्राप्त होती है वही शुद्ध लाभ है। इन विद्वानों का कथन है कि एक गत्यात्मक विश्व में परिवर्तनों, अनिश्चितताओं एवं प्रतिरोध के कारण शुद्ध लाभ की उत्पत्ति होती है तथा अनंत प्रतियोगी शक्तियों के कारण उसका लोप हो जाता है। अंत मे, लाभ के विषय मे आज एक तीसरी विचारधारा है जिसके अनुसार लाभ एक अनर्जित आय (unearned income) है क्योंकि उद्यमी इसे प्राप्त करने हेतु कोई भी प्रयास नहीं करता।

उत्पादन के साधनों के रूप में उद्यमी की भूमिका बहुधा अर्थशास्त्री शुद्ध लाभ को न तो एक अवसर लागत के रूप मे मानते हैं और न ही एक वास्तविक लागत के रूप में। अनुबंधित भुगतानों (ब्याज, मजदूरी, किराया कर आदि) का भुगतान करने के बाद प्रबंध व्यय व बीमा योग्य जोखिम की अवसर लागत घटाई जाती है तथा फिर अंशधारियों को लाभांश दिया जाता है। इन सबके पश्चात् जो शेष रहता है वह शुद्ध लाभ है तथा इसकी राशि इतनी रहनी आवश्यक है ताकि उद्यमी को निवेश का वर्तमान स्तर बनाए रखने वाली व्यवसाय में बने रहने की प्रेरणा मिल सके। संक्षेप में, शुद्ध लाभ वह न्यूनतम राशि है जिससे कम पुरस्कार मिलने पर उद्यमी व्यवसाय बंद कर देता है।

यद्यपि लाभ को उद्यमी को प्राप्त होने वाला पारिश्रमिक माना जाता है, तथापि इसका भुगतान उद्यम के सीमांत उत्पादन के आधार पर नहीं किया जाता, जैसा कि भूमि, श्रम व पूंजी के संदर्भ मे किया जाता है। वस्तुत जब तक कोई साधन पूर्णत विभाजनशील न हो, तथा जब तक इसकी सभी इकाइयां समरूपी न हों, तब तक इसके सीमांत उत्पादन का पता नहीं लगाया जा सकता। परंतु जहां भूमि, श्रम व पूंजी को उत्पादन का विभाजनशील साधन माना जाता है, उद्यम (enterprise) में यह गुण विद्यमान नहीं है, और न ही उद्यम की विभिन्न इकाइयों में कोई समरूपता पाई जाती है।

यदि कोई फर्म अधिकतम लाभ अर्जित कर रही हो तो इसे उपलब्ध उद्यम संबंधी प्रयासों की पूर्ति पर फर्म को प्राप्त निवल आगम (net revenue) या लाभ का कोई प्रभाव नहीं होगा। चित्र 22.1 में घंटी के आकार का (bell shaped) वक्र फर्म के शुद्ध लाभ को प्रदर्शित करता है तथा यह स्पष्ट करता है यह लाभ उद्यमी के प्रयासों

(घटो मे) का एक फलन है। फर्म अधिकतम लाभ उत्पादन के उस स्तर पर अर्जित करती है जहा सीमान्त लागत व सीमान्त आगम, समान हैं (MC=MR)। यदि अनधिमान वक्र (चित्र मे नहीं हैं) की आकृति मूल बिंदु से उन्नतोदर होती तो इसका यह अर्थ होता कि फर्म के लाभ एवं प्रयासो के घटो मे स्थानापन्नता विद्यमान है, तथा फर्म कम कार्य करके भी अधिक लाभ अर्जित कर सकती है। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं होता तथा अधिकांशतः लाभ एवं उद्यमी के प्रयासो का अनधिमान वक्र मूल बिंदु से नतोदर ही होता है, जिसका यह अर्थ होता है कि यदि अधिक प्रयास के कारण ही अधिक लाभ की प्राप्ति हो तो (एक सीमा के बाद) उद्यमी अधिक लाभ की चिंता नहीं करेगा। लाभ तथा उद्यमी के प्रयासो के संबंध दर्शाने वाले अनधिमान वक्रो की नतोदरता (concavity) का यही अर्थ है कि लाभ तथा उद्यमी के प्रयासो के मध्य वर्द्धमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर (*increasing marginal rate of substitution*) विद्यमान है। चित्र 22.1 मे इसी वर्द्धमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के कारण A बिंदु पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त होगा न कि B बिंदु पर, जैसा कि वक्र की आकृति से हमे भ्रम हो सकता है।
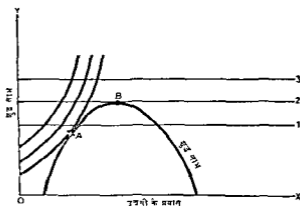
चित्र 22.1 उद्यमी के प्रयास एवं शुद्ध लाभ

चित्र 22.1 मे लाभ को प्रदर्शित करने वाला वक्र यह स्पष्ट करता है कि यदि उद्यमी के प्रयास एवं शुद्ध लाभ के मध्य प्रतिस्थापन की दर शून्य हो, यानी यदि 1, 2 व 3 सरल रेखाओ की भांति अनधिमान वक्र क्षैतिज (*horizontal*) हो तो फर्म को B पर अधिकतम लाभ होगा क्योंकि यही लाभ के वक्र का शिखर है। यह वह स्थिति होगी जहा उद्यमी के लिए विश्राम से प्राप्त सीमांत उपयोगिता, अथवा प्रयासों की पूर्ति की आय लोच शून्य है। परन्तु ऐसा व्यावहारिक जीवन में सभव नहीं होता, और बहुधा प्रयासो तथा शुद्ध लाभ के मध्य वर्द्धमान सीमांत प्रतिस्थापन दर के कारण अनधिमान वक्र नतोदर ही होते हैं। इसी कारण फर्म A बिंदु पर ही इष्टतम स्थिति

मे पहुच जाती है। यह सब हमने इस उद्देश्य से बतलाया है कि यदि हम किसी प्रकार उद्यमी के प्रयासो की पूर्ति की परिभाषा भी दे दें, तब भी परपरागत सिद्धात (जिसके अनुसार अधिकतम लाभ की प्राप्ति वहा होती है जहा MC=MR हो) के आधार पर इस पुइन्ट (उद्यम) की पूर्ति तथा लाभ के बीच सबध की पुष्टि नहीं की जा सकती।

22 2 लाभ पर मार्शल का दृष्टिकोण[2]

(Marshallian Views on Profit)

मार्शल ने लाभ की प्रकृति, उद्गम एव इसके गठन के विषय मे विस्तृत चर्चा की थी। उन्होंने बतलाया कि एक उद्यमी तीन महत्त्वपूर्ण कार्यो का सपादन करता है। ये कार्य इस प्रकार हैं. (i) पूजी की व्यवस्था करना, (ii) पूजी तथा प्रबध को *उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त करना।* मार्शल ने कहा कि प्रथम व तृतीय कार्यों के लिए उद्यमी को प्रबध-सबधी "कुल आय" प्राप्त होती है जबकि द्वितीय कार्य हेतु उसे प्रबध सबधी "निवल आय" (net earnings) प्राप्त होती है।

इसके आगे मार्शल ने यह भी बतलाया कि व्यवसाय मे प्राप्त लाभ का एक अश उद्यमियो द्वारा प्रस्तुत की गई नई विधियो का परिणाम भी होता है। उन्होंने नियोक्ताओं व अन्य व्यवसायियो को दो श्रेणियो में विभाजित किया · वे व्यक्ति जो व्यवसाय की नई विधियो का श्रीगणेश करते हैं, तथा द्वितीय वे व्यक्ति जो नवप्रवर्तकों का अनुसरण करते हैं। मार्शल ने कहा कि नवप्रवर्तकों को तब तक काफी अधिक लाभ होते हैं जब तक कि उनकी नकल प्रारभ नहीं हो जाती, क्योंकि प्रतियोगिता मे वृद्धि होने के साथ-साथ वस्तुओ की कीमतो मे कमी होती जाती है। इसके अलावा कुछ उद्यमी अन्य लोगों की तुलना मे अपने उपक्रमो का सचालन अधिक दक्षतापूर्वक करते हैं, और साथ ही कच्चा माल, मशीनें, श्रम, पूजी एव अन्य साधन अपेक्षाकृत कम कीमत पर खरीद लेते हैं। यही कारण है कि ऐसे उद्यमियों को भी काफी समय तक अन्य व्यक्तियो की तुलना मे अधिक लाभ होता है। मार्शल ने यह भी कहा कि व्यवसाय का पैमाना बढने के साथ-साथ इस सगठन क्षमता मे ही वृद्धि होती जाती है।[3] परतु इन विचारो की अभिव्यक्ति के साथ ही मार्शल ने व्यावसायिक दक्षता की पूर्ति मे प्रतियोगिता के औचित्य को स्वीकार करते हुए कहा कि "आय मे वृद्धि होने के साथ-साथ आय अर्जित करने वालो की सख्या मे भी वृद्धि होने लगती है।"[4]

प्रोफेसर मार्शल ने यह भी बतलाया कि उन व्यवसायों मे लाभ की दरें *सामान्यतया ऊची होती हैं जहा प्रबध करना एक कठिन तथा जोखिमपूर्ण कार्य है।* उन्होने स्वीकार किया कि विभिन्न व्यवसायो मे, तथा एक ही व्यवसाय मे विभिन्न उत्पादक इकाइयो के लिए, लाभ की दरें भिन्न होती हैं, हालांकि प्रत्येक व्यवसाय के

2. Alfred Marshall, '*Principles of Economics*', *Book VI, Chapters VII & VIII*
3. Ibid , pp 496-499.
4. Ibid , pp 504-505

लिए एक परपरागत, अथवा पण्यावत (turnover) पर उपयुक्त लाभ की दर प्रचलित होती है। मार्शल ने यह भी कहा कि सामान्य तौर पर लाभ सामान्य कीमत के ही एक अंश के रूप में होता है। अल्पकाल में कोई व्यवसायी या फर्म भारी अधिक लाभ अर्जित कर सकता है, परन्तु दीर्घकाल में विभिन्न व्यवसायी उपक्रमो के मध्य प्रतियोगिता के कारण लाभ की दर एक "उचित" (fair) स्तर तक गिर जाती है। हमने बाजारों का विश्लेषण करते समय यह स्पष्ट किया था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत दीर्घकाल मे प्रत्येक फर्म को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है, तथा विभिन्न फर्मों के मध्य विद्यमान प्रतियोगिता के फलस्वरूप उन सभी के अल्पकालीन लाभ या हानि का दीर्घकाल में लोप हो जाता है।

इस प्रकार मार्शल ने लाभ को एक व्यापक अर्थ मे परिभाषित किया। उन्होने उद्यमी द्वारा निवेशित पूजी के ब्याज, प्रबंध के पारिश्रमिक, प्रबंध की दक्षताए व जोखिम हेतु देय पारिश्रमिक, उत्पादन की नई विधियो के प्रतिपादन देय पारिश्रमिक तथा व्यवसाय मे विद्यमान एकाधिकारिक शक्तियो के कारण प्राप्त आय, इन सभी को लाभ की परिभाषा मे शामिल किया। परन्तु साथ ही उन्होने यह भी स्पष्ट किया कि दीर्घकाल में फर्म को केवल उचित या सामान्य लाभ ही प्राप्त हो पाता है। जे० बी० क्लार्क, हॉले, शुपीटर, हॉब्सन तथा अन्य विद्वानो ने लाभ के विशिष्ट पहलुओं पर बल दिया। हम अगले अनुभागो मे इन्ही विद्वानो के विचारो की सक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत करेंगे।

22.3 क्लार्क द्वारा प्रस्तुत लाभ का सिद्धात[5]
(J B Clark's Theory of Profit)

जे० बी० क्लार्क मार्शल के समकालीन अर्थशास्त्री थे। उन्होने उद्यमी को उस व्यक्ति के रूप मे परिभाषित किया जो पूजी व श्रम के बीच समन्वय स्थापित करता है। क्लार्क के सिद्धात को लाभ का गत्यात्मक सिद्धात (Dynamic Theory of Profit) भी कहा जाता है। क्लार्क विशुद्ध उद्यम की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि उद्यमी द्वारा अर्पित सेवाओ के पुरस्कार को ही लाभ कहा जा सकता है। ये सेवाए हैं, श्रम व पूजी को समन्वित रूप मे उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त करना। उन्होने कहा कि उद्यमी स्वय पूजीपति, प्रबंधक तथा उपक्रम के स्वामी के कार्य संपादित करता है तथा पूजी के ब्याज से अधिक जो भी लाभांश उसे प्राप्त होता है वह उद्यमी का शुद्ध लाभ है।

एक अन्य स्थान पर क्लार्क ने कहा कि उद्यमी दो प्रकार की क्रियाए करता है: प्रथम यांत्रिक (mechanical) अथवा उत्पादन प्रक्रिया से संबद्ध क्रियाए हैं जबकि द्वितीय कच्चे माल, साधनों आदि की खरीद तथा तैयार वस्तुओं की बिक्री (इस क्लार्क ने

5 विस्तृत विवरण हेतु देखें P C Ghosh, 'The Theory of Profits', Calcutta University Press (1933), chapter 3

व्यावसायिक क्रियाओं की संज्ञा दी)। क्लार्क ने कहा कि उत्पादन प्रक्रिया के संचालन हेतु उद्यमी को उसकी सेवा के लिए मजदूरी प्राप्त होती है जबकि एक व्यवसायी के नाते उसे चुकाई गई लागत एवं प्राप्त आगम के अन्तर के रूप में लाभ प्राप्त होता है। परन्तु यह लाभ उसे केवल अल्पकाल में ही मिल पाता है। क्लार्क के मतानुसार उद्यमी यह निर्णय लेता है कि श्रम व पूंजी की कितनी मात्राएं कहां से प्राप्त की जाएं तथा वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जाए।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था क्लार्क के सिद्धान्त को लाभ का गत्यात्मक सिद्धान्त कहा जाता है। उन्होंने कहा कि लाभ की उत्पत्ति केवल प्रगतिशील या गत्यात्मक अर्थव्यवस्था में ही होती है। एक स्थैतिक अर्थव्यवस्था में भविष्य अनिश्चित नहीं होता तथा प्रतियोगिता के कारण उद्यमी को लागत से अधिक कीमत प्राप्त नहीं होती। बहुधा ऐसी अर्थव्यवस्था में लागतें तथा कीमतें यथावत रहती हैं तथा भावी घटनाओं के विषय में आम तौर पर सही अनुमान किया जा सकता है।

परन्तु एक गत्यात्मक या प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में सतत रूप से परिवर्तन होते रहते हैं। बहुधा ऐसी अर्थव्यवस्था में निम्न आधारभूत परिवर्तन अविरत रूप से होते हैं—

(अ) जनसंख्या में परिवर्तन, (ब) पूंजी के स्टॉक में परिवर्तन, (स) उपभोक्ताओं की रुचियों, प्राथमिकताओं एवं आवश्यकताओं में परिवर्तन (द) उत्पादन की विधियों में परिवर्तन, तथा (क) औद्योगिक संगठन में परिवर्तन जिसके अनुसार शनैः-शनैः कम दक्ष उद्यमी बाजार से बाहर चले जाते हैं, तथा केवल अपेक्षाकृत अधिक दक्ष उद्यमी ही अस्तित्व में रहते हैं।

क्लार्क ने कहा कि इन आधारभूत परिवर्तनों के कारण कीमतें लागत से अधिक हो जाती हैं, तथा उद्यमी को लाभ मिलने लगता है। इस प्रकार क्लार्क के मतानुसार लाभ की उत्पत्ति केवल गत्यात्मक या प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में ही होती है। इसके विपरीत स्थैतिक समाज में उद्यमी प्रबन्ध हेतु मजदूरी तो प्राप्त करता है, परन्तु उसे लाभ की प्राप्ति नहीं होती।

क्लार्क ने समाज की कुल आय को मजदूरी, ब्याज व लाभ के रूप में विभाजित किया। उन्होंने भूमि के लगान को पूंजी के ब्याज के साथ मिला दिया। परन्तु उन्होंने इस बात से सर्वथा इनकार किया कि उद्यमी कोई जोखिम भी उठाता है। इसीलिए वे यह नहीं मानते कि लाभ जोखिम उठाने का ही पुरस्कार है क्योंकि उनके मतानुसार उद्यमी के पास न स्वयं की पूंजी है और न स्वयं (वह केवल इनका समन्वय करता है) और इसलिए उसे "कुछ खोने का" कोई डर नहीं है।

क्लार्क ने उद्यमी को वस्तु का एक अस्थायी स्वामी माना और कहा कि वह उत्पादन प्रक्रिया में जिसी हद तक अपनी पूंजी व अपना श्रम प्रयुक्त करता है वहीं तक कि पूंजी व श्रम के समन्वय को भी क्लार्क ने एक प्रकार का श्रम ही माना। चाहे यह श्रम शारीरिक हो या मानसिक, इसके लिए प्राप्त पुरस्कार मजदूरी है न कि लाभ।

परन्तु क्लार्क ने प्रत्येक व्यवसाय मे विद्यमान जोखिम की उपेक्षा करके भारी भूल की। प्रत्येक उद्यमी मे एक विलक्षण प्रतिभा होती है तथा वह केवल पूजी व श्रम का समन्वय ही नही करता, अपितु वह व्यवसाय मे निहित जोखिम लेने का एक ऐसा कार्य करता है जो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सपादित नहीं किया जा सकता। प्रोफेसर गॉलब्रेथ ने अपनी हाल ही मे प्रकाशित पुस्तक 'दी न्यू इडस्ट्रियल स्टेट' मे बतलाया है कि आधुनिक युग मे निर्णय लने तथा पूजी श्रम आदि के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य उच्च पगार प्राप्त करने वाले प्रबधकों व विशेषज्ञो को सौंपा जाता है जबकि उद्यमी यानी कपनी के अशधारी जोखिम वहन करते हैं। अस्तु, जोखिम वहन करने का कार्य उद्यमी के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है और इसी के लिए उसे लाभ मिलना चाहिए। परतु जे० बी० क्लार्क ने इस तथ्य की उपेक्षा कर दी है।

22.4 हॉले के विचार[6]
(*Hawley on Profit*)

हॉले ने लाभ का जोखिम सिद्धात प्रस्तुत किया है। उनका कथन कि साधनो के स्वामित्व से जोखिम को पृथक करना सभव नही है, और इसलिए जोखिम ही उद्यमी की सबसे महत्त्वपूर्ण उत्पादक सेवा है। वतमान शताब्दी के प्रारभ मे हॉले ने अनेक लेखो तथा टिप्पणियो का प्रकाशन करके यही सिद्ध करने का प्रयास किया कि अतिम उपभोक्ता जो कीमत चुकाता है उसमे उस जोखिम की क्षतिपूर्ति का अश भी शामिल होता है जिसे समान्यतया उद्यमी तथा उसके बीमाकर्ता वहन करते हैं। उद्यमी यह जानता है कि उसका प्रयास किसी सीमा तक जोखिमपूर्ण है और इसीलिए वह जोखिम वहन करने हेतु पुरस्कार की अपेक्षा करता है।

अन्य शब्दो मे, लागत से कीमत के आधिक्य मे दो तत्त्व शामिल होते हैं: प्रथम, एक ऐसी राशि जो बीमा-योग्य जोखिम वहन करने हेतु प्राप्त की जाती है; तथा द्वितीय, इस आधिक्य का वह अवशिष्ट भाग जिसे उद्यमी बीमे के अयोग्य जोखिम को वहन करने हेतु वसूल करता है, परतु जो उसे व्यवसाय मे बनाए रखने के लिए जरूरी है। हॉले ने कहा कि कीमत तथा कुल लाभ के ऊचे स्तर के पीछे अनिश्चितता ही उत्तरदायी है। क्लार्क के विपरीत हॉले की ऐसी मान्यता है कि लाभ की उत्पत्ति केवल जोखिम वहन करने की क्षमता से होती है। वे ऐसा अनुभव करते हैं कि वस्तु के स्वामित्व मे भी जोखिम निहित है।

वस्तुत हॉले ने उद्यमी के जोखिम वहन करने सबधी कार्य को अनावश्यक महत्त्व दिया है। इसमे कोई सदेह नही कि पूजी की जोखिम काफी होती तथा उद्यमी को प्राप्य आय भी अनिश्चित होती है। इसके बावजूद हॉले ने उद्यमी की अन्य भूमिकाओ की उपेक्षा की जिनके बिना व्यवसाय का प्रारभ तथा सचालन सभव नही होता। 1901 मे प्रकाशित एक लेख में विलेट ने यह तर्क दिया था कि किसी व्यवसाय

6 J B Hawley, 'The Risk Theory of Profit', Quarterly Journal of Economics, Vol II and Vol XV

की जोखिम वस्तुत: उद्यमी नहीं अपितु पूंजीपति वहन करता है। उन्होंने यह भी कहा कि जहां जोखिम उत्पादन की लागत में निहित है, वहीं लाभ उत्पादन की लागतों से ऊपर प्राप्त होने वाली राशि है। विलिट ने निम्न तर्कों के आधार पर यह बतलाया कि जोखिम वहन करने के पुरस्कार को लाभ की संज्ञा नहीं दी जा सकती : (1) लाभ एक अस्थायी आय है तथा प्रतियोगिता के कारण अततः यह समाप्त हो जाता है। (2) लाभ की उत्पत्ति असामान्य गत्यात्मक परिस्थितियों के कारण ही होती है, परन्तु विलिट के मतानुसार जोखिम एक सामान्य स्थैतिक परिस्थिति में भी ली जाती है। (3) लाभ तथा जोखिम वहन करने में संबंध है इसका कोई भी प्रमाण नहीं मिलता।

हॉब्सन तथा डेवनपोर्ट द्वारा प्रस्तुत विचार

डेवनपोर्ट की ऐसी धारणा है कि उद्यमी तथा श्रमिक को उनके कार्यों के सपादन हेतु प्राप्त पुरस्कारों की प्रकृति में काफी अंतर है। उनके मतानुसार जो व्यक्ति श्रमिकों का प्रयोग करते हुए वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया का संचालन करते हैं, वे उद्यमी हैं, चाहे उनके द्वारा उत्पादित वस्तुएं बिक्री हेतु प्रस्तुत की जाती हो या न हो। डेवनपोर्ट ने लाभ को तीन अर्थों में प्रस्तुत किया (i) संयोजन संबंधी लाभ (conjuncture profits), अथवा अपवादस्वरूप प्राप्त, अवर्गीकृत एवं अनियमित लाभ (ii) उत्पादन प्रक्रिया में स्वतंत्र रूप से कार्यरत मानवीय साधन के लिए पारिश्रमिक, तथा (iii) स्वतंत्र रूप से लाभ हेतु कार्यरत मानवीय साधन को दिया गया पारिश्रमिक। लाभ की इन तीन श्रेणियों में अंतर इस आधार पर बतलाया जाता है कि निजी संपत्ति एवं उद्देश्यों पर आधारित आधुनिक आर्थिक युग में कुछ लोगों की आय बढ़ने पर भी इससे समाज को कोई लाभ नहीं होता, भले ही उन्होंने इसके लिए कोई विशेष प्रयास न किए हों। इस प्रकार डेवनपोर्ट ने लाभ की परिभाषा में प्रतियोगितात्मक एवं संयोजनात्मक दोनों ही प्रकार की आय को शामिल किया। उद्यमी के कार्य का उत्थान एक स्वतंत्र नियोक्ता (employer) के कार्य के रूप में परिभाषित करते हुए लाभ को "एक प्रकार की मजदूरी" ही माना।

जे० ए० हॉब्सन ने इससे भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। लगान, मजदूरी तथा ब्याज में से प्रत्येक को उन्होंने तीन भागों में विभाजित किया तथा बतलाया कि प्रत्येक भाग औद्योगिक व्यवस्था में प्राप्त आय का एक अंश है। प्रथम अंश में वह राशि सम्मिलित की गई है जो प्रचलित औद्योगिक व्यवस्था को बनाए रखने हेतु आवश्यक है; द्वितीय अंश में वह अतिरेक है जो उत्पादन के साधनों की पूर्ति बढ़ाने में सहायक होता है; अंतिम अंश या शेष भाग ऐसा है जो उत्पादन की दक्षता में वृद्धि करने में किसी भी प्रकार सहायक नहीं होता। हॉब्सन का कथन है कि लाभ का निर्धारण उद्यमी की योग्यता से होता है। वे यह मानते हैं कि उद्यमी की सेवा सामाजिक दृष्टि से आवश्यक भी है और सृजनात्मक भी। कुशल संगठन के द्वारा उद्यमी औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करता है और यह तभी होगा जब उसे प्रेरणा के

रूप मे लाभ की प्राप्ति हो। उसकी सगठन क्षमता द्वारा प्राप्त कुल उत्पादन मे प्रथम अश जितना कम होगा, उद्यमी को उतना ही अधिक लाभ होगा। वस्तुत उद्यमी को कितना लाभ प्राप्त होता है यह इस पर निर्भर करेगा कि वह अपने प्रतियोगिया को दबाने मे कहा तक सफल होता है, अथवा उसकी सौदाकारी शक्ति (bargaining power) अन्य साधनो की अपेक्षा कितनी प्रबल है।

इस प्रकार डेवनपोर्ट तथा हॉब्सन ने उद्यमी के कार्य पूजीपति-नियोक्ता वर्ग के सदस्य के रूप मे सपादित कार्य से पृथक् किया और लाभ की परिभाषा भी इसी सदर्भ मे प्रस्तुत की।

शुम्पीटर द्वारा प्रस्तुत लाभ का नवोत्पाद सिद्धात
(Schumpeter's Innovation Theory of Profit)

जोसफ शुम्पीटर ने सस्थापक अर्थशास्त्रियो की कडी आलोचना इसलिए की कि उन्होंने उद्यमी की नवोत्पाद सृजन की योग्यता (innovation ability) को पर्याप्त महत्व प्रदान नही किया, तथा उसे मूलत पूजीपति के रूप म ही प्रस्तुत किया। शुम्पीटर ने कहा कि उद्यमी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य नवोत्पाद-सृजन करना है।

पाठकों को स्मरण होगा कि प्रोफेसर मार्शल ने भी पूजीपति-उद्यमी की नवोत्पाद सृजन की योग्यता के विषय मे इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत किए थे। शुम्पीटर द्वारा रचित 'थ्योरी ऑफ इकॉनोमिक डेवलेपमेंट' (1912) मे यह स्पष्ट किया गया है कि परिवर्तन तथा विकास हेतु, व्यापार चक्रो के लिए तथा पूजीवाद के अस्तित्व को बनाए रखने हेतु उद्यमी की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। शुम्पीटर ने कहा कि सामान्य तौर पर नवोत्पाद के फलस्वरूप किसी स्थैतिक अर्थव्यवस्था का चक्राकार प्रवाह रुक जाता है, तथा आर्थिक विकास के माध्यम स अर्थव्यवस्था आय के नए, परतु उच्च स्तर पर साम्य स्थिति को प्राप्त कर लेती है। नवोत्पादक या उद्यमी को इसके फलस्वरूप अप्रत्याशित लाभ प्राप्त होते हैं, जो वस्तुत उसकी नवोत्पाद-सृजन योग्यताओ का ही पुरस्कार है।

शुम्पीटर ने एकाधिकारिक शक्ति को नवोत्पादक उद्यमी के लिए एक उपयुक्त प्रेरणा बतलाया। अन्य शब्दों मे, उन्होने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति एकाधिकारिक शक्ति प्राप्त करने हेतु ही नवोत्पादन करता है। परतु फिर उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि व्यावहारिक जीवन मे पूजीवाद के अतर्गत प्रतियोगिता की दशा विद्यमान होती है जिसमे नवोत्पादन के तुरत बाद नकलची (imitators) तथा सट्टेबाज अपना कार्य प्रारभ कर देते हैं, तथा "सक्रिय विनाशकारी प्रयासो" (a chain of creative destruction) के द्वारा नवोत्पादक की एकाधिकारिक शक्ति को क्षीण बना देते हैं। अत मे इन नकलचियो व सट्टेबाजो की गतिविधियो के कारण नवोत्पादक के अप्रत्याशित लाभ भी लुप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार शुम्पीटर के मतानुसार नवोत्पादन ही लाभ का एकमात्र स्रोत है।

उनके दृष्टिकोण में नवोत्पादक उद्यमी प्रगति का पोषक, नई रुचियों व वस्तुओं का जन्मदाता, तथा उत्पादन प्रक्रिया हेतु नए विचार एवं नई विधियाँ प्रदान करने वाला व्यक्ति होता है। यहाँ तक कि नए बाजार की खोज भी शुम्पीटर के मतानुसार नवोत्पाद है। उन्होंने आगे यह तर्क दिया कि ये नवोत्पादन केवल गत्यात्मक अथवा प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में ही संभव हैं। उद्यमी नई उत्पादन विधियाँ प्रदान करके मितव्ययी प्रक्रियाओं का प्रयोग करते हैं।

वास्तव में आर्थिक विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक विवेकशीलता है जिसके कारण पूंजीवाद का विकास तो होता है, परन्तु इसमें निहित सामाजिक संबंधों पर इससे विपरीत प्रभाव होता है। जैसे-जैसे किसी उपक्रम के आकार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, नवोत्पाद (जो अब तक पूंजीवादी या उद्यमी का ही विशेषाधिकार था) उद्यमी के हाथ न निकलकर पगार प्राप्त करने वाले शोधकर्ताओं द्वारा होने लगते हैं। अन्य शब्दों में, आधुनिक युग में अनुसंधान, आविष्कार या नवोत्पाद की उत्पत्ति प्रयोगशालाओं या शोध संस्थानों में फर्म के कर्मचारियों के प्रयासों से होती है, न कि जोखिम वहन करने वाले उद्यमियों के प्रयासों से। इस दृष्टि में आधुनिक व्यावसायिक संगठन की दृष्टि से शुम्पीटर द्वारा प्रस्तुत लाभ के सिद्धांत का कोई औचित्य नहीं है।

22.5 लाभ का अनिश्चितता सिद्धांत[7]

(Uncertainty Theory of Profit)

लाभ एवं उद्यमी की कार्य प्रणाली के विषय में फ्रेंक एच० नाइट का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। नाइट संस्थापक अर्थशास्त्रियों के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि उद्यमी को प्राप्त होने वाले पुरस्कार में पूंजी पर देय ब्याज को भी शामिल करना चाहिए। उन्होंने क्लार्क द्वारा प्रस्तुत लाभ के गत्यात्मक सिद्धांत की भी आलोचना की तथा यह तर्क दिया कि प्रत्याशित परिवर्तनों के लिए भविष्य-वाणी की जा सकती है, तथा इनके फलस्वरूप प्रतियोगिता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। नाइट ने हॉले के इस विचार का भी विरोध किया कि जोखिम एक ज्ञात मात्रा है। उन्होंने कहा कि जोखिम के विषय में पूर्व ज्ञान है तो वह जोखिम कदापि नहीं हो सकती, अपितु लागत का एक अंश बन जाती है।

नाइट ने कहा कि वस्तुतः लाभ का प्रत्यक्ष संबंध आर्थिक परिवर्तन से है, परन्तु परिवर्तन स्वयं अनिश्चितता की स्थिति है। इसके साथ ही वह स्वीकार करते हैं कि लाभ एक विशेष प्रकार की जोखिम का परिणाम है जिसे मापना संभव नहीं होता। इस प्रकार, फ्रेंक नाइट द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत को लाभ के अमापनीय अनिश्चितता सिद्धांत (*Unmeasurable Uncertainty Theory of Profit*) की संज्ञा दी जा सकती है।

7. F. H. Knight, "Risk, Uncertainty and Profit" (New York, Houghton Mifflin Company), 1921.

के आधार पर ही व्यक्ति निर्णय लेते है। यही कारण है कि जोखिम की गंभीरता तथा वास्तविक लाभ के मध्य हम कोई संबंध स्थापित नहीं कर सकते। वास्तव में नाइट के सिद्धांत में लाभ "अनुमान की भूल से संबद्ध आय" (an error of estimate income) है। परन्तु के कलार्क तथा हॉले के इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं कि लाभ एक अतिरेक तथा अवशेष (residual) आय है। वे कलार्क के इस तर्क को स्वीकार करते हैं कि लाभ की प्राप्ति तभी तक होती है जब तक कि प्रतियोगी शक्तियां सक्रिय नहीं हो जाती, परन्तु फिर यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि लाभ की उत्पत्ति न तो गत्यात्मक दशाओं के कारण होती है और न ही जोखिम की अनुपयोगिता के कारण। नाइट लाभ की उत्पत्ति का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत अमापनीय अनिश्चितता को मानते हैं जो अप्रत्याशित तथा अदृश्य परिवर्तनों की देन है, और जिसके कारण लोग केवल अनुमानों तथा प्रत्याशाओं के आधार पर ही कार्य करते हैं।

नाइट ने अर्थव्यवस्था में उद्यमियों की एक विशिष्ट भूमिका पर प्रकाश डाला है। उनके मतानुसार उद्यमी ही आर्थिक क्रिया का संचालन करते हैं, और इसलिए वे ही *उत्पादक हैं जबकि देश की जनसंख्या के अधिकांश व्यक्ति केवल उद्यमियों को* उत्पादक सेवाएं, अथवा श्रम एवं संपत्ति इनके प्रयोग हेतु अर्पित करते है। उद्यमियों के पुरस्कार, यानी उन्हें प्राप्त लाभ में पर्याप्त उच्चावचन होते हैं, परन्तु जो व्यक्ति इन्हें उत्पादन प्रक्रिया में सहायता देते हैं। उन्हें वे निर्दिष्ट पारिश्रमिक देने के लिए गारंटी प्रदान करते हैं। अन्य शब्दों में, एक उद्यमी उत्पादन के विभिन्न साधन जुटाता है तथा अनुबंधित दरों पर उनकी कीमत चुकाने का वचन देता है।

तथापि, उद्यमी को प्राप्त आय में भी अनुबंधित अंश विद्यमान रहता है। आय का यह अनुबंधित अंश उसके द्वारा व्यवसाय हेतु अर्पित सामान्य सेवाओं के लिए (मजदूरी के रूप में), अथवा उसकी संपत्ति के प्रयोग हेतु (किराया या पूंजी पर प्रतिफल) उसे प्राप्त हो सकता है। उद्यमी को कितनी आय अनुबंधित अंश के रूप में प्राप्त होगी इसका निर्धारण प्रतियोगितापूर्ण दशाओं द्वारा होता है।

परन्तु जैसा कि हम पूर्व में पढ़ चुके हैं, उद्यमियों की मांग एक व्युत्पन्न मांग (derived demand) है, तथा प्रत्यक्षतः अन्य उत्पादक सेवाओं की पूर्ति पर निर्भर करती है *उद्यम या साहस की पूर्ति योग्यता,* तत्परता तथा संतोषप्रद गारंटी प्रदान करने की शक्ति पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त उद्यमी के पास स्वयं की पूंजी भी होनी है। "संपत्ति से प्राप्त आय अत्यधिक सामान्य एवं प्रत्यक्ष है। शेष आय आवश्यक रूप से उस व्यक्ति को मिलती है जिसके पास व्यवसाय का नियंत्रण है, इसलिए अधिकांश दशाओं में यह आय भी संपत्ति के स्वामी को ही मिलती है।"

वस्तुओं तथा उत्पादन के साधनों के बाजार प्रतियोगी होने पर उद्यमी को केवल सामान्य लाभ ही मिल पाता है। परन्तु जैसा कि हम पूर्व में देख चुके हैं, बाजार में एकाधिकारिक तत्त्व उभरने लगते हैं। इसीलिए *एकाधिकारी अथवा क्रेताधिकारी* को भारी लाभ प्राप्त होते हैं। बाद में नाइट ने अपने अन्य लेखों में यह बतलाने का प्रयास किया कि किसी उपक्रम द्वारा साधनों पर व्यय की गई राशि तथा उत्पादन से

प्राप्त की गई राशि का अतर ही लाभ है। साधनों पर व्यय की गई राशि (value-input) को उन्होंने ऐसी कीमत के रूप मे परिभाषित किया जो किसी साधन के अगले सर्वश्रेष्ठ अथवा श्रेष्ठतर प्रयोग में दी जा सकती है।[10] नाइट ने यह भी कहा कि उद्यमी का प्रमुख दायित्व अपने ज्ञान में वृद्धि करना, विशेष तौर पर दूरदर्शिता को बढ़ाना है, तथा इसमे विद्यमान कमियों के परिणाम भी वही भुगतता है। कुछ ही समय पूर्व फिर नाइट ने पुनः कहा : "बीमा योग्य जोखिम से भिन्न इस अनिश्चितता के कारण ही कोई उद्यम सगठन या प्रभावशाली स्वरूप धारण कर सकता है, तथा आय के अत्यधिक बदनाम रूप "लाभ" का जन्म होता है।[11] कीन्स ने कहा कि अनेक बार उद्यमी को ऋणात्मक लाभ भी प्राप्त हो सकता है।

नाइट के विचारो की आलोचना[12]

नाइट के द्वारा प्रस्तुत लाभ के अनिश्चितता सिद्धात की अनेक विद्वानो ने आलोचना की है। उनके द्वारा जोखिम तथा अनिश्चितता के मध्य किया गया अतर अस्पष्ट है। वेस्टन का तर्क है कि नाइट के विचारो को पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि लाभ किसी कार्य के बदले प्राप्त प्रतिफल न होकर पूर्वानुमानों में की गई भूल का एक माप है। वेस्टन के मतानुसार जोखिम स्वय अनिश्चितता का एक भाग है। नाइट ने अनिश्चितता को मापने की कोई विधि नही बतलाई। वेस्टन कहते हैं की प्रत्याशित (ex-ante) तथा वास्तविक (ex-post) आय का अतर ही लाभ होता है।

नाइट द्वारा प्रस्तुत अनुबधित एव गैर-अनुबधित आय (लाभ) के अतर से भी वेस्टन सहमत नही हैं। व्यवहार मे कुछ गैर-अनुबधित साधन ऐसे भी होते हैं जिनके पुरस्कार का निर्धारण उत्पादन क्रिया के परिणामो से पूर्व नही हो पाता, फिर फिर भी उन्हे पूर्व-निर्धारित सूत्रो के आधार पर भुगतान किया जाता है। कभी-कभी उत्पादन के साधनो के लिए कुल बिक्री या सकल लाभ के किसी अनुपात के आधार पर पारिश्रमिक निर्धारित किया जाता है। अस्तु, गैर-अनुबधित साधनो (जिनमे उद्यम शामिल नही है) के पारिश्रमिक भी अनिश्चित होते हैं।

निकोलस केल्डोर एव अन्य कुछ विद्वान नाइट के इस विचार से असहमत हैं कि लाभ कभी-कभी ऋणात्मक भी हो जाते हैं।[13] वस्तुत यदि हम लाभ का सीधा सबध बाजार की स्थिति से मान लें तो जैसी बाजार की स्थिति होगी, फर्म को उतना

10 See "Discussion", American Economic Review, Vol XLIV, May 1954.
11 Frank Knight, "Social Economic Policy", *Canadian Journal of Economics and Political Science*, February 1960, p 31
12. D M Lamberton, "The Theory of Profit", Oxford, Basil Bakewell (1965) pp 57 62
13 Nicholas Kaldor, "Alternative Theories of Distribution", Review of *Economic Studies*, XXIII (1955-56)

ही एव उसी प्रकार का लाभ प्राप्त होगा। केल्डोर की दृष्टि मे एकाधिकार की सीमा से सबद्ध परिकल्पना का परीक्षण केवल उस दृष्टि से हो सकता है कि बाजार की इन स्थितियो का कीमत-लागत अनुपात पर क्या प्रभाव होता है।

इसकी अपेक्षा, केल्डोर के मतानुसार कुल आय मे लाभ का अश केवल इस बात पर निर्भर करता है कि निवेश तथा उत्पादन का अनुपात कितना है। केल्डोर की दृष्टि म सीमात बचत प्रवृत्तिया बचत की मात्रा को निर्धारित करती हैं तथा ये बचतें मजदूरी तथा लाभ दोनो से प्राप्त हो सकती हैं। यदि मजदूरी से प्राप्त सीमात बचत प्रवृत्ति को S_w व लाभ से प्राप्त बचत प्रवृत्ति को S_p मान लें तो केल्डोर के मतानुसार $S_p > S_w$ होने पर जब भी कीमतो मे कमी होगी, माग मे कमी होगी और इसके फलस्वरूप कीमतो मे और अधिक कमी हो जाएगी। इसी प्रकार कीमतो मे वृद्धि होने पर कीमतो मे सचयी प्रभाव होगा। इन सीमात बचत प्रवृत्तियो का अतर $\left(\text{यानी } \frac{1}{S_p - S_w}\right)$ इस बात का निर्धारण करेगा कि अर्थव्यवस्था मे कितनी स्थिरता रहती है। इस अतर को हम आय वितरण की सवेदनशीलता का गुणाक (coefficient of sensitivity of income distribution) के नाम से जान सकते हैं, क्योकि इसके आधार पर उत्पादन मे निवेश के अश मे होने वाले परिवर्तन का बोध होता है।

मान लीजिए $S_w = 0$ हो तो समूचा लाभ ही निवेश हेतु प्रयुक्त किया जाएगा।

$$P = \frac{1}{S_p} \; I$$

यहा $P =$ लाभ, $I =$ निवेश तथा S_p लाभ की सीमात बचत प्रवृत्ति है।

केल्डोर का यह भी कथन है यदि लाभ की दर जोखिम की प्रीमियम दर (risk premium rate) से कम है तो किसी भी उद्यमी को पूजी निवेश करने मे कोई रुचि नही रहेगी।[14] इसके विपरीत कुल पण्यावर्त (turnover) पर लाभ की कोई न्यूनतम दर भी हो सकती है जिसे m माना जा सकता है। ये लाभ बाजार की अपूर्णताओ, विक्रेताओ के गठबधन आदि से उत्पन्न होते हैं तथा इन्हे 'एकाधिकारिक लाभ दर" की सज्ञा दी जाती है $\left(\text{यहा हमारी सीमा होगी } \frac{P}{Y} \geqslant m\right)$। मजदूरी कीमत के निर्दिष्ट अनुपात पर उद्यमी उस तकनीक का प्रयोग करना चाहेंगे जिसके द्वारा पूजी पर लाभ की दर P/VY अधिकतम हो।

14. जोखिम की प्रीमियम दर को r मानते हुए इस बात को निम्न रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{P}{VY} \geqslant r$$

अर्थात् उद्यमी तभी निवेश करेगा जब लाभ की दर जोखिम की प्रीमियम दर के समान या इससे अधिक हो।

22.6 शैकल का निर्णय-प्रक्रिया सिद्धांत[15]

(Shackle's Theory of Decision-making)

जी० एल० एस० शैकल प्रोफेसर नाइट के इस विचार से सहमत हैं कि प्रायिकता (probability) से संबद्ध परंपरागत विचारों का आर्थिक क्रियाओं से कोई संबंध नहीं है। शैकल ने उद्यमी के निवेश-संबंधी निर्णय पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। वे यह स्वीकार करते हैं कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में अनिश्चितता की आवश्यक भूमिका रहती है। परंतु इसके बावजूद उनके मतानुसार यह अनिश्चितता सीमाबद्ध होती है, तथा हम प्रत्येक क्रिया के संभावित परिणामों की सीमाएं निर्धारित कर सकते हैं।

शैकल ने किसी भी क्रिया से संबद्ध विभिन्न परिकल्पनाओं (जो परस्पर विरोधी होने पर भी समान रूप से संभव हैं) में निश्चित विश्वास (positive confidence) के विचार के स्थान पर "अविश्वास" (disbelief) के विचार का प्रतिपादन किया। किसी भी कार्य को प्रारंभ करने हेतु इसके परिणाम से संबद्ध उन्हीं परिकल्पनाओं को चुना जाएगा जिनका सीमांत अविश्वास पूर्णतया इसके अंकित मूल्य (face value) की सीमांत वांछनीयता अथवा सीमांत अवांछनीयता के समान हो जाता हो। शैकल के मतानुसार निर्णय लेने वाला व्यक्ति अधिकांश आर्थिक निर्णयों को अनुपम अथवा लगभग अनुपम (virtually unique) मानता है। प्रत्येक निर्णय से नई प्रकार की परिस्थितियों का जन्म होता है और इसके फलस्वरूप प्रयोग को दोहराना असंभव हो जाता है।

यदि समान परिस्थितियों में किए गए काफी अधिक परीक्षणों पर उद्यमी की अपेक्षाएं आधारित हों तो केवल इसी स्थिति में हम आवृत्ति अनुपात विधि (frequency ratio approach) का प्रयोग कर सकते हैं। शैकल का कथन है कि काल्पनिक स्थितियों का निर्माण ही अपेक्षाओं का रूप है। ये काल्पनिक परिस्थितियां भविष्य की तिथियों से संबद्ध होती हैं, तथा ऐसी परिकल्पना को एक क्रम में इस प्रकार संजोया जाता है कि इससे हमारे इस विश्वास की पुष्टि होती है कि हमारी क्रिया की निर्दिष्ट विधि ही इस परिकल्पना को सार्थक कर सकती है। संक्षेप में, भविष्य की निर्दिष्ट तिथि से संबद्ध आर्थिक मूल्यों (मात्राओं) के संभावित परिमाणों के विषय में आज हम क्या सोचते हैं, वे ही हमारी अपेक्षाएं कहलाती हैं।

शैकल के मतानुसार अनिश्चितता से संबद्ध परिस्थितियों की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि वे अनुपम होती हैं। अनुपमता (uniqueness) में उन्होंने दो बातें शामिल की हैं : (अ) उद्यमी के पास ऐसी ही घटनाओं के कोई अनुभव-सिद्ध आंकड़े नहीं हैं, तथा (ब) उसकी दृष्टि में वर्तमान घटना महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भविष्य में घटने वाली ऐसी ही घटनाओं में उसकी कोई रुचि नहीं है। परंतु इस अनुपमता के कारण किसी कार्य के परिणामों का प्रायिकता विश्लेषण (probability analysis)

15 Lamberton, op cit, pp 64-82.

संभव नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त, ऐसी वास्तविक अनिश्चितता के कारण संयोगों के विवेकशील आकलन (rational calculation of chances) के आधार पर कोई भी उद्यमी निर्णय नहीं ले सकता। परंतु इसके उपरांत भी उद्यमी कुछ परिणामों के पक्ष में, तथा अन्य परिणामों के विपक्ष में निश्चित तौर पर अपना मत व्यक्त कर सकता है।

इस संदर्भ में शैकल ने संभावित आश्चर्य (potential surprise) की अवधारणा का प्रतिपादन किया। इस "संभावित आश्चर्य" की डिग्री शून्य से लेकर उस सीमा के मध्य कहीं भी स्थित हो सकती है जहां किसी प्रश्न के संभावित उत्तर पर अविश्वास विद्यमान हो। यदि किसी परिकल्पना का संभावित आश्चर्य शून्य हो तो इसका यह अर्थ होगा कि उद्यमी की दृष्टि में यह "पूर्णतया संभव" (perfectly possible) है। इसका यह भी अर्थ होगा कि सभी प्रतियोगी परिकल्पनाओं का पूर्णतः बहिष्कार किया गया है। इन प्रतियोगी परिकल्पनाओं के संभावित आश्चर्य का मूल्य जितना अधिक रखा जाएगा, उतनी ही असत्य परिकल्पनाएं इन्हें माना जाएगा। संक्षेप में, संभावित आश्चर्य के द्वारा हम अविश्वास को व्यक्त करते हैं।

कोई भी उद्यमी जब किसी कार्य की रूपरेखा बनाता है तो वह काफी अधिक हानि से लेकर पर्याप्त लाभ तक दर्शाने वाली परिकल्पनाओं को एक रेंज के रूप में रखता है। उस रेंज के बाहर जो भी परिकल्पनाएं या परिणाम (out comes) हैं, वे असंभव होने के नाते अस्वीकृत कर दी जाती हैं।

इसके बाद शैकल ने प्रेरणा फलन (stimulation function) की अवधारणा प्रस्तुत की। चूंकि निर्णय लेने वाले की रुचि उन बातों में है जो घटित हो सकती हैं, वह उन परिकल्पनाओं तक ही अपना ध्यान केंद्रित करना चाहेगा जिनके संभावित आश्चर्य की डिग्री अधिकतम मूल्य से कम हो। शून्य संभावित आश्चर्य की रेंज से बाहर वे संभावनाएं होंगी जिनके विषय में उत्तरोत्तर अधिक संशय होता है तथा जो पूर्ण अविश्वास की स्थिति में समाप्त हो जाती हैं। संभावित आश्चर्य की डिग्री एक अनवरत फलन $Y = Y(X)$ है, जिसमें X कार्य की रूपरेखा का परिणाम है। प्रेरणा-फलन में अंकित मूल्य (face-value) तथा संभावित आश्चर्य के युग्मों को उद्यमी की सामर्थ्य के एक माप का संबंध व्यक्त किया जाता है।

इस प्रेरणा फलन के आधार पर शैकल ने "तटस्थ परिणाम" (neutral outcome) की अवधारणा का प्रतिपादन किया। उन्होंने बतलाया कि कुछ ऐसे परिणाम भी होते हैं जिनका उद्यमी की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, न ये उसकी स्थिति को बेहतर बनाते हैं और न ही बदतर। जब सभी परिणामों के विषय में पूर्णतया संभव अथवा पूर्णतया असंभव का निर्णय हो जाता है तो उद्यमी शून्य संभावित आश्चर्य वाले सर्वश्रेष्ठ अथवा सबसे खराब परिणामों (यानी संभावित आश्चर्य की भीतरी रेंज की उच्चतम व निम्नतम सीमाओं) को चुन लेता है। हम इन संभव परिणामों को अत्यधिक असंतोषप्रद परिणामों से लेकर साधारण परिणामों (जो न अधिक संतोष प्रदान करते हों और न ही अत्यधिक असंतोष) तथा अत्यधिक संतोष

प्रदान करने वाले परिणामों के रूप में व्यक्त कर सकते हैं। अर्थशास्त्र की भाषा में, इस रेंज में हम गंभीर क्षति से लेकर भारी लाभ को शामिल कर सकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि सर्वाधिक संतोषप्रद लाभों तथा गंभीरतम हानि के संभावित आश्चर्य अत्यधिक ऊंचे हों।

अस्तु, हमारी परिकल्पनाओं की रेंज रिक्त शून्य संभावित आश्चर्य के केंद्रीय बिंदु से प्रारंभ होती है। इस बिंदु से बाहर दाईं ओर चलने पर हमें वर्द्धमान लाभ की, तथा एक सीमा के बाद वर्द्धमान संभावित आश्चर्य की परिकल्पनाएं प्राप्त नहीं होतीं। इसी प्रकार, इस केंद्रीय बिंदु से बाहर बाईं ओर चलने पर हम वर्द्धमान हानि की, तथा एक सीमा के बाद वर्द्धमान संभावित आश्चर्य की परिकल्पनाएं दिखलाई देती हैं। परिकल्पनाओं की प्रत्येक श्रेणी दूसरी श्रेणी की विलोम अथवा प्रतिद्वंद्वी श्रेणी है। परंतु इस "ध्रुवीकरण" के बावजूद उद्यमी को निर्णय लेना होता है। शैकल का कथन है कि उद्यमी किसी भी प्रयास के शुद्ध आकर्षण के आधार पर निर्णय लेगा। शैकल ने कहा कि केंद्रीय लाभ (focus gain) की बट्टाकृत वांछनीयता (discounted desirableness) तथा केंद्रीय क्षति (focus loss) की बट्टाकृत वांछनीयता के अंतर को शुद्ध आकर्षण (net attractiveness) कहा जाता है। यदि दोनों का अंतर धनात्मक है तो निर्णय अनुकूल है, जबकि यह अंतर ऋणात्मक होने पर निर्णय प्रतिकूल होगा।

शैकल का लाभ सिद्धांत वस्तुतः अनिश्चितताओं के संदर्भ में उद्यमी की अपेक्षाओं पर आधारित है। उनका तर्क है कि अनिश्चितता की दशा में प्रायिकता विश्लेषण का प्रयोग करना उचित नहीं है। परंतु इन स्थितियों में भी उद्यमी स्थिति विशेष के प्रति एक "भावना" से प्रेरित होकर कार्य करता है, जिसे हम कर्स्टेड की भाषा में व्यक्तिपरक निश्चितता (subjective certainty) की संज्ञा दे सकते हैं। यदि उद्यमी को इस संदर्भ में व्यक्तिपरक निश्चितता नहीं दिखलाई देती तो वह कोई भी निर्णय नहीं लेगा। इसी व्यक्तिपरक निश्चितता के आधार पर उद्यमी संभावित परिणामों के विषय में परिकल्पनाएं तैयार करता है।

शैकल ने उद्यमी की अपेक्षाओं को सामान्य तथा विशिष्ट अपेक्षाओं के रूप में वर्गीकृत किया।[26] सामान्य अपेक्षाएं समूची अर्थव्यवस्था के लिए सामान्य होती हैं। उदाहरण के लिए, आय, निवेश, बचत, रोजगार, उपभोग व्यय, निर्यात तथा आयात आदि की भावी मात्राओं के विषय में लगभग सभी उद्यमियों के विचार एक से होते हैं। इसीलिए, सामान्य अपेक्षाओं को सामान्य तौर पर एकल-मूल्य वाले पूर्वानुमान के रूप में जाना जाता है, क्योंकि इन अपेक्षाओं की उत्पत्ति उद्यमी वर्ग की एक जैसे सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रकृति से होती है, और इस कारण सभी की धारणा इन विषयों पर एक जैसी होती है।

परंतु सामान्य अपेक्षाओं के फलस्वरूप किसी एक फर्म को अप्रत्याशित लाभ

26. B S Kerstead, 'An Essay in the Theory of Profit and Income Distribution' (Oxford Basil Blackwell, 1957), Chapter IV, pp 21-28

प्राप्त हो सकते हैं। यह स्मरण करते हुए कि कृषि उपज का कीमत के साथ अंतरालयुक्त सबंध होता है, यदि किन्हीं फसलों की कीमतों की प्रवृत्ति ऊर्ध्वमुखी हो तो यह संभव है कि एक कृषक उन फसलों के क्षेत्र में कमी कर दे। यह एक उद्यमी की विशिष्ट अपेक्षाओं को जन्म देता है जो उसके प्रतिद्वंद्वियों के दृष्टिकोण एवं व्यवहार से सर्वथा भिन्न होती हैं, और जिनके कारण वह कृषक अप्रत्याशित लाभ की प्राप्ति की अपेक्षा कर सकता है।

विशिष्ट अपेक्षाओं का संबंध नवोत्पादकों तथा एकाधिकारियों को प्राप्त होने वाले लाभों से है। ये अपेक्षाएं उस उद्यमी के पिछले अनुभव तथा वर्तमान एवं भावी प्रतियोगियों के विषय में उसकी जानकारी पर निर्भर करती हैं। जब उसके पास बाजार का पर्याप्त नियंत्रण निहित होता है तो उसके लिए अपने उत्पाद की भावी माग का अनुमान करना संभव हो जाता है। वह अपनी वस्तु की ही नहीं, अपितु अपने प्रतिद्वंद्वियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की भी उत्पादन लागत का पूर्वानुमान कर सकता है।

यद्यपि यह सही है कि शैकल द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत अत्यंत कठिन है, तथापि उनके निर्णय-प्रक्रिया एवं उद्यमी के लाभों की सिद्धांत ने महत्त्वपूर्ण चर्चाओं को जन्म दिया है। के० जे० एरो, कर्स्टेड, रॉड्स वाइल्ड, ब्रोनफैनब्रेनर आदि ने हाल के वर्षों में निर्णय प्रक्रिया के सिद्धांत पर महत्त्वपूर्ण चर्चाएं प्रस्तुत की हैं। आज अनेक अर्थशास्त्रियों की ऐसी धारणा है कि उद्यमी केवल लाभ के उद्देश्य से प्रेरित होकर कार्य नहीं करता। जैसा कि हम 15वें अध्याय में स्पष्ट कर चुके हैं, बिक्री या उत्पादन को अधिकतम करने का उद्देश्य भी निर्णय-प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण रूप में प्रभावित कर सकता है।

22.7 प्राकृतिक लाभ का सिद्धांत[17]
(The Naive Profit Theory)

वर्तमान शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में विकसित लाभ के सभी सिद्धांतों को मार्टिन ब्रोनफैनब्रेनर ने नए रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने इन सभी विचारों को प्राकृतिक लाभ के सिद्धांत की संज्ञा दी है। ब्रोनफैनब्रेनर के मतानुसार इस सिद्धांत को पांच प्रस्तावों (propositions) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

(i) किसी प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में वितरण योग्य अंशों में से एक सामान्य लाभ है, यानी, पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक को सामान्य लाभ मिलता है।

(ii) दीर्घकाल में ये अंश (उद्यमियों के अपने साधनों की अंतरिम लागतों को घटाने के बाद भी) धनात्मक होते हैं।

17 M. J. Bronfenbrenner, 'Income Distribution Theory', Aldine Treatise in Economics (1971), Chapter 15, and Bronfenbrenner, "Reformulation of Naive Profit Theory", reprinted in W. Breit and H. M. Hochman (ed.) Readings in Microeconomics, pp. 359-370

तथा उत्पादन की प्रविधियाँ वही रहती हैं परंतु पूंजी का स्टॉक बढ़ जाता है। वे ये मान्यताएं भी लेते हैं कि साधन एवं उत्पादन पूर्णतया विभाजनशील है, यह कि साधनों व वस्तुओं के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, तथा यह कि उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों को बाजार की कीमतों, मात्राओं आदि का पूर्ण ज्ञान है। तथापि नवोत्पादों के विषय में अनिश्चितता है। यह अनिश्चितता दो बातों से संबद्ध होती है (अ) पूंजी-निर्माण की मात्रा, प्रकृति एवं इसके परिणाम, (हालांकि उत्पादन की प्रविधि यथावत् रहती है) तथा (ब) लागत तथा उत्पादन फलन के स्वरूप तथा उनके गुणांक (coefficients)। परंतु ब्रॉनफैनब्रेनर हमें यह भी याद दिलाते हैं कि लाभ की चर्चा करते समय हमारा प्रयोजन केवल उन जोखिमों से होता है जो बीमा योग्य नहीं हैं, अथवा जिन्हें अंतरित नहीं किया जा सकता। वे सर्वव्यापक अर्थशास्त्रियों द्वारा ब्याज तथा लाभ को एक ही मान लेने या मार्क्स द्वारा लाभ व अतिरिक्त मूल्य को एक ही मान लेने पर कोई टिप्पणी करने की अपेक्षा इन मान्यताओं की उपेक्षा करना अधिक उचित समझते हैं।

संशोधित प्राकृतिक सिद्धांत में वस्तुतः लाभ के विषय में क्लार्क-विक्सटीड प्रमेय तथा वर्तमान कंपनी प्रणाली पर आधारित संस्थागत विचारों को समन्वित करने का प्रयास किया गया है। ब्रॉनफैनब्रेनर ने अनिश्चितताओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया। प्रथम वे अनिश्चितताएं जो लाभ को प्रभावित करती हैं तथा द्वितीय वे जो अन्य प्रकार की आय को प्रभावित करती हैं। वे लाभ को केवल उस प्रकार की अनिश्चितताओं का पुरस्कार मानते हैं जो प्रति घंटे श्रम, उत्पादन की प्रति इकाई या भूमि के प्रति एकड़ अथवा पूंजी की प्रति इकाई पुरस्कार हेतु पूर्व निर्धारित दावों के अभाव में उत्पन्न होती हैं।

ब्रॉनफैनब्रेनर साधनों को "अनुबंधित" (contractual) तथा 'उद्यमी के" (entrepreneurial) साधनों—इन दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं। यह श्रेणी-करण इस आधार पर किया गया है कि साधनों की आय का निर्धारण अनुबंध के आधार पर किया जाता है अथवा नहीं। इस दृष्टि से व्यावसायिक आय में निम्न व्यक्तियों का स्वत्व (दावा) "अनुबंधित दावा" माना जाएगा (अ) अधिमान अंश-धारी (preference shareholders), (ब) पगार प्राप्त करने वाला साझेदार, (स) बोनस प्राप्त करने वाला अधीक्षक (द) सक्रिय अधिमान-अंशधारी, तथा (य) परिवर्तनीय बांड धारी। वस्तुतः कोई साधन अनुबंध के आधार पर प्राप्त किया गया है अथवा नहीं, इसका निर्धारण कानून द्वारा किया जाता है। ब्रॉनफैनब्रेनर ने कहा कि अनुबंधित साधनों की कीमत बाजार में माँग व पूर्ति के आधार पर निर्धारित होती है जबकि उद्यमी के साधनों की कीमत आंतरिक रूप में (implicitly) निर्धारित होती है।

उद्यमी के साधनों के बाजारों में बहुधा अपूर्णताएं होती हैं, तथा इनकी एक-साथ अनेक कल्पित कीमतें (shadow prices) विद्यमान हो सकती हैं। ऐसे साधनों की पूर्ति करने वाले के समक्ष एक सुस्पष्ट अपेक्षा अथवा कल्पित कीमत रहती है,

हालांकि कुल माग व कुल पूर्ति लगभग एक जैसी होती हैं। यही नहीं, उद्यमी की अपेक्षाएं अनिश्चित होती हैं, यहा तक कि जब क्रेता तथा विक्रेताओं में सबध पर्याप्त निकट के होने पर भी उनकी अपेक्षाएं भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। ऐसी दशा में साम्य स्थिति एक बिंदु पर न होकर एक बडी रेंज के रूप में होगी। जैसे-जैसे उद्यमी का अपना पूजी व श्रम का निवेश बढता जाता है, वह यह अपेक्षा करता है कि अनुबधित प्रयोगों म इन साधनों के लिए उसे उत्तरोत्तर अधिक प्रतिफल प्राप्त होंगे। अनुबधित प्रतिफल (कल्पित कीमत) स उसकी कुल आय जितनी अधिक होगी, वही उद्यम या साहस के बदले उसे प्राप्त होने वाला शुद्ध लाभ होगा। इसके अतिरिक्त माग व पूर्ति की साम्य कीमत निर्धारित होती है, शुद्ध लाभ इसके ऊपर प्राप्त अतिरेक असामान्य लाभ (abnormal profit) कहलाता है।

परन्तु धनात्मक सामान्य लाभ प्राप्त होने का अर्थ यह हो सकता है कि उद्यमी द्वारा की गई साधनों की पूर्ति का साम्राज्य विस्तार, करो की चोरी, अथवा स्वेच्छाचारी हो जाने से सबध होना अनिवार्य नहीं है। इन आकर्षणों का साहस या उद्यम की पूर्ति पर प्रभाव अवश्य पडता है। इसके विपरीत इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि जुआरियों की भांति उद्यमी भी अनिश्चितता वहन करने मे आनद का अनुभव करते हैं। अथवा, इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि फर्मों या उद्योगों के समक्ष स्कीनि आदि की ऐसी स्थितियां विद्यमान हो सकती हैं जिनमें लाभ के अवसर पर्याप्त है, और इसके फलस्वरूप उद्यमी के साधनों (entrepreneurial inputs) की पूर्ति बढ जाती है।

अनधिमान वक्रो के माध्यम स ग्रोनफेनब्रेनर बतलाने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार कोई फर्म अनुबधित साधनों तथा उद्यमी के साधनों के मध्य अपने बजट का आवटन करती है। चित्र 22 2 मे बतलाया गया कि फर्म किसी साधन को या तो अनुबध पर (किसी अन्य व्यक्ति से) प्राप्त कर सकती है, अथवा उद्यमी स्वय ही इस साधन को जुटा सकता है। चित्र में क्षैतिज अक्ष पर अनुबधित साधनों की बाह्य कीमतो पर पूर्ति इस मान्यता के आधार पर प्रस्तुत की गई है कि इन कीमतो का निर्धारण प्रतियोगी बाजार मे किया गया है। इसके विपरीत यह मानते हुए कि उद्यमी के साधनों की कीमतें आतरिक रूप से निर्धारित होती है, इनकी पूर्ति का माप क्षैतिज अक्ष पर लिया गया है। अनधिमान वक्रो का ढलान दोनो प्रकार के साधनों की सीमात प्रतिस्थापन दर को व्यक्त करता
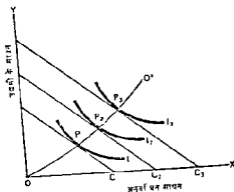
चित्र 22 2 उद्यमी के तथा अनुबधित साधन

कुल आय के रूप में होती है तथा कभी निवल आय के रूप में । उद्यमी को उपलब्ध विभिन्न विकल्पों से अपेक्षित विकल्पों को तीन वक्रों OX, OY तथा OZ पर अंकित किया गया है । इनमें OX अपेक्षित कुल लाभ है जिसका अधिकतम मूल्य OR है । इस स्तर पर उद्यमी OA साधनों की पूर्ति करता है ।

चित्र 22 3 में सरल रेखा OY उस आय को व्यक्त करती है जो उद्यमी के साधनों के लिए प्रतियोगी परिस्थितियों में अनुबंध के अंतर्गत प्राप्त हो सकती है । वक्र OZ अपेक्षित सामान्य (शुद्ध) लाभ को व्यक्त करता है । वस्तुतः OX एवं OY का ऊर्ध्व अंतर ही OZ के रूप में व्यक्त किया गया है । Q बिंदु पर सामान्य (शुद्ध) लाभ अधिकतम हो जाता है जहां उद्यमी साधनों की OB इकाइयां उपलब्ध की जाती है (OB<OA) ।

प्राकृतिक लाभ सिद्धांत के अनुसार उद्यमी OB साधनों की पूर्ति करके OS रुपए का शुद्ध लाभ प्राप्त करना चाहेगा । शुद्ध लाभ का यह अधिकतम स्तर है ।
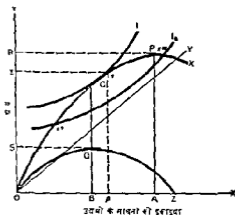
चित्र 22 3 उद्यमी द्वारा इष्टतम स्थिति को प्राप्त करना

यदि फ्रैंक नाइट के सिद्धांत के अनुरूप देखा जाए तो उद्यमी कुल लाभ को अधिकतम करना चाहेगा (OR रुपए पर) तथा इसके लिए OA इकाइयों की पूर्ति करने को तत्पर रहेगा ।

अब हम दो अनधिमान वक्रों I_o तथा I_1 को अपने मॉडल में प्रविष्ट करते हैं । ये अनधिमान वक्र उद्यमी द्वारा एक सीमा के बाद साधनों की पूर्ति करने के प्रति अनिच्छा को व्यक्त करते हैं क्योंकि वह अपने साधनों से कम नहीं अपितु अधिक आय प्राप्त करना चाहता है । इन वक्रों का ढलान ऊपर की ओर है तथा ये नतोदर हैं जिसका अर्थ यह है कि उद्यमी की न केवल अनिश्चितता वहन करने के प्रति अरुचि

है, अपितु वह शान्त जीवन, छोटे पैमाने पर उत्पादन करने आदि को पसद करने लगा है। यह स्थिति पीछे की ओर मुडते हुए श्रम के पूर्ति वक्र की भांति ही है।

किसी भी स्थिति में वह – बिंदु पर इष्टतम स्थिति में पहुच जाता है जहां साधन की Oβ इकाइयों की पूर्ति द्वारा वह OΣ रुपए का कुल लाभ अर्जित करता है। P बिंदु की अपेक्षा वह – पर साधनों की कम मात्रा प्रदान करना चाहेगा।

परन्तु मान लीजिए, उद्यमी पर्याप्त सुविधा तथा सुरक्षा के साथ अपनी फर्म को अस्तित्व में रखना चाहता है तथा I_0 अनधिमान वक्र पर या इसके ऊपर किसी भी आय-स्तर पर सन्तुष्ट हो सकता है। यह भी मान लीजिए कि I_0 कुल आय वक्र को दो बिंदुओं –′ तथा –″ पर काटता है जो – से क्रमश बाए व दाए स्थित हैं। ऐसी स्थिति में, OX पर कोई भी बिंदु उद्यमी को स्वीकार्य होगा, बशर्ते यह –′ व –″ के मध्य स्थित हो। बॉमोल द्वारा अधिकतम आगम प्राप्ति वाली परिकल्पना के आधार पर –″ को उद्यमी –′ की अपेक्षा अधिक पसद करेगा। वस्तुत फर्म की इष्टतम स्थिति कहां होगी इसका निर्णय केवल आकडो व तथ्यों के आधार पर ही किया जा सकता है।

23

सामान्य आर्थिक साम्य का सिद्धांत
(THE THEORY OF GENERAL ECONOMIC EQUILIBRIUM)

प्रस्तावना

अब तक इस पुस्तक मे हमने आर्थिक इकाइयो के व्यष्टिगत व्यवहार का ही विश्लेषण किया था। प्रस्तुत अध्याय तथा इसमें आगे वाले अध्याय मे हम सामान्य आर्थिक साम्य तथा आर्थिक कल्याण से सबद्ध सिद्धान्तों की विवेचना करेंगे।

प्रोफेसर फर्ग्यूसन ने पैरिस मे 19वी शताब्दी के मध्य मे विद्यमान स्थिति का उद्धरण देते हैं जबकि लोग ऐसी लाखो वस्तुओ का उपभोग कर रहे थे जो नगर में निर्मित न होकर बाहर से प्राप्त होती थीं। नगर के लोग पूर्णतया इन बाहर स मगाई गई वस्तुओ पर आश्रित थे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि कोई भी सस्था यह तय नही करती थी कि किस परिमाण मे कौन सी वस्तु मगाई जाए, फिर भी प्रतिदिन माग के अनुरूप वस्तुए नगर मे पहुच जाती थी। वास्तव म, नगर का अस्तित्व अनक व्यक्तियो के अनियोजित सहयोग पर निर्भर करता था, जिनमे स प्रत्येक अपने लाभ के लिए काय कर रहा था।[1] अधिकाश दशाओं म विभिन्न व्यक्तियो के मध्य स्वैच्छिक सहयोग के कारण उपभोक्ताओ को इच्छानुसार साधनो की पूर्ति हो जाती थी।

जैसाकि अध्याय 2 मे बतलाया गया था, उपभोक्ताओ एव साधनो के पूर्तिकर्ताओं दोनों ही के कार्य परिवारो द्वारा सपादित किए जाते हैं। इसके विपरीत, व्यावसायिक फर्मों द्वारा ये साधन उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त किए जाते हैं तथा फिर इन वस्तुओं को परिवारो की आवश्यकता-पूर्ति हेतु बेच दिया जाता है। इस प्रकार, एक सरल अर्थव्यवस्था मे, उत्पादक सेवाओ का प्रवाह परिवारो से उत्पादक फर्मों की ओर तथा वस्तुओ का प्रवाह फर्मों से परिवारो की ओर होता है। हमने उसी अध्याय में यह भी पढा था कि मूल्य सयन्त्र साधनो व वस्तुओ के इस प्रवाह को सुविधाजनक बनाता है।

हमारी मान्यता अब तक यह रही है कि प्रत्येक उपभोक्ता, साधनो का प्रत्येक स्वामी तथा प्रत्येक फर्म का उद्देश्य इष्टतम स्थिति को प्राप्त करना है। इस उद्देश्य

1 C E Ferguson 'Micro economic Theory (Revised Ed., 1969) p 41

की पूर्ति इस प्रकार की जाती है कि संपूर्ण समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम हो जाता है। जिस प्रकार समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम होता है इसकी विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में की जाएगी। प्रस्तुत अध्याय में हम उन स्थितियों का विवरण प्रस्तुत करेंगे जिनसे सामान्य आर्थिक साम्य (general economic equilibrium) स्थापित होता है। अन्य शब्दों में, हम इस अध्याय में यह पढ़ेंगे कि फर्में, उपभोक्ता तथा साधनों की पूर्ति करने वाले स्वतंत्र रूप से तथा सामूहिक रूप से साम्य स्थिति को किस प्रकार प्राप्त करते हैं।

23.1 सामान्य साम्य का अर्थ
(Meaning of General Equilibrium)

राष्ट्रीय संदर्भ में हमारी अर्थव्यवस्था इतनी गुथी हुई है कि अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र में कुछ भी घटित होने पर अनेक दूसरे क्षेत्रों पर इसके व्यापक प्रभाव होते हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि अर्थव्यवस्था का प्रत्येक क्षेत्र अन्य सभी क्षेत्रों से इतना अधिक घनिष्ठ संबंध है कि एक क्षेत्र में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन लगभग सभी दूसरे क्षेत्रों को प्रभावित करता है।

संभवतः वालरस सबसे पहले अर्थशास्त्री थे जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर निर्भरता को प्रकाश में लाए। उन्होंने कहा, "वस्तुतः आर्थिक प्रणाली एक संपूर्ण भाग है जिसके सभी अंग परस्पर सबद्ध हैं, तथा वे परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। किसी वस्तु A के उत्पादकों की आय में वृद्धि होने पर B, C, D, E आदि वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी जिससे इनके उत्पादकों की आय बढ़ेगी, तथा इसकी प्रतिक्रियास्वरूप वस्तु A की मांग में परिवर्तन होगा।" वालरस ने विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर निर्भरता को स्पष्टतः स्वीकार किया तथा इसके आधार पर यह कहा कि किसी अर्थव्यवस्था के किन्हीं क्षेत्रों में विद्यमान समस्याओं के पूर्ण समाधान हेतु यह आवश्यक होगा कि हम समूची अर्थव्यवस्था पर विचार करें।

वालरस ने यह भी मान्यता ली कि वस्तुओं तथा साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, तथा इनकी कीमतों में नम्यता है। इन मान्यताओं के आधार पर वालरस ने कहा कि जिस प्रकार व्यावसायिक फर्मों की उत्पादन लागत तथा उपभोक्ताओं (परिवारों) की आय पूर्णतः समान होती हैं, इसी प्रकार फर्मों के आगम एवं लागतों में भी पूर्ण समानता होती है। उन्होंने अपने मॉडल में बचत, धनसंचय, शुद्ध पूंजी निर्माण, आयात तथा निर्यात को शामिल नहीं किया। वस्तुतः वालरस ने एक ऐसी सरल अर्थव्यवस्था का चित्रण किया था जिसमें प्रत्येक परिवार अपनी समूची आय को उपभोग हेतु व्यय कर देता है। यह व्यय व्यावसायिक फर्मों के आगम का रूप लेती है जिसे वे समूचे रूप में परिवारों से प्राप्त किए गए उत्पादन के साधनों एवं सेवाओं के पारिश्रमिक के रूप में पुनः परिवारों को भुगतान कर देती है। इस प्रकार साम्य स्थिति में एक ओर तो प्रत्येक वस्तु की कीमत इसकी उत्पादन लागत के समान होती है ($P_{x1}=AC_1=MC_1$), जबकि प्रत्येक उपभोक्ता के लिए प्रत्येक वस्तु की

कीमत तथा इसकी सीमांत उपयोगिता में समानता होती है। इसी प्रकार, जैसाकि हमने अध्याय 18 में देखा था, परिवारों को प्रत्येक साधन के लिए प्राप्त साधन-कीमत तथा इस साधन का फर्म के लिए उत्पादन मूल्य समान होने हैं (Factor Price= VMP)। इसके अतिरिक्त सामान्य आर्थिक साम्य को बनाए रखने हेतु प्रत्येक साधन तथा प्रत्येक वस्तु की कुल पूर्ति में भी समानता होनी चाहिए। अन्य शब्दों में, अर्थव्यवस्था में कहीं भी साधनों की बेरोजगारी अथवा वस्तुओं का माग में आधिक्य (अथवा अभाव) नहीं होना चाहिए।

सामान्य साम्य तथा विशिष्ट साम्य में अन्तर
(General and Particular Equilibria Distinguished)

किसी अर्थव्यवस्था के अथवा इसके किसी क्षेत्र के या किसी एक उपभोक्ता या फर्म के व्यवहार का विश्लेषण करने से पूर्व हम सामान्य तौर पर यह मान्यता लेते हैं कि एक आर्थिक इकाई का आकार इतना छोटा होता है कि इसकी स्थिति में परिवर्तन होने पर अर्थव्यवस्था पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। यही कारण है कि आर्थिक इकाइयों के व्यष्टिगत व्यवहार का विश्लेषण करते समय "अन्य बातें यथावत् रहती हैं" (ceteris paribus) की मान्यता ली जाती है। हम यह मान लेते हैं कि अन्य सभी इकाइयां साम्य स्थिति में हैं तथा एक इकाई (या क्षेत्र) की स्थिति में परिवर्तन होने का उनकी साम्य स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यही कारण है कि सभी व्यष्टिगत अध्ययनों को हम विशिष्ट अथवा आंशिक साम्य के अध्ययनों की संज्ञा देते हैं।

परिभाषा

आंशिक अथवा विशिष्ट साम्य का विश्लेषण अर्थव्यवस्था के किसी एक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन इस मान्यता के आधार पर करता है कि अन्य सभी क्षेत्रों में साम्य स्थितियां यथावत् रहती हैं। उदाहरण के लिए, साइकिल या वनस्पति घी अथवा किसी वस्तु X का बाजार लीजिए। यह मान्यता लेते हुए कि देश की अर्थव्यवस्था की तुलना में X का बाजार अत्यंत सूक्ष्म आकार का है, हम यह तर्क दे सकते हैं कि इसकी कीमत में 20 या 30 प्रतिशत परिवर्तन होने पर भी शेष अर्थव्यवस्था पर इसका कोई प्रभाव नहीं होगा। इसी प्रकार X की कीमत में परिवर्तन होने पर किसी अन्य क्षेत्र A पर इसका कोई प्रभाव नहीं होगा। अस्तु, X की कीमत में 20 या 30 प्रतिशत वृद्धि होने पर केवल इसके उपभोक्ता प्रत्यक्षतः प्रभावित होंगे, तथा वे अपने उपभोग स्तर को माग की लोच के अनुरूप समायोजित कर लेंगे। इसके फलस्वरूप X में पुनः एक नया साम्य स्थापित हो जाएगा, जहां (ऊंची कीमत पर) माग व पूर्ति में पुनः समानता कायम हो जाएगी। इसी प्रकार कीमत में कमी होने पर या उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ता अपनी माग को समायोजित कर लेता है जिसके फलस्वरूप एक नई साम्य स्थिति प्राप्त हो जाती है।

आर्थिक इकाइयों, क्षेत्रों या उद्योगों के समक्ष विद्यमान आंकड़ों में परिवर्तन

सामान्य साम्य विश्लेषण का अर्थ यह है कि सभी आर्थिक इकाइयां साम्य स्थिति मे हैं। यदि कुछ इकाइयां साम्य स्थिति में हों तथा अन्य इकाइयां न हों, तो जो इकाइयां असंतुलन (disequilibrium) की स्थिति में हैं वे भी शनै-शनै साम्य स्थिति की ओर प्रवृत्त हो जाएंगी। मुख्य बात तो यह है कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था अपनी साम्य स्थिति में तभी होगी जबकि सभी आर्थिक इकाइयां आंशिक साम्य स्थिति में पहुंच जाती हैं (अथवा इसके लिए समायोजन करती हैं), क्योंकि सभी आर्थिक *इकाइयों के मध्य परस्पर निर्भरता की मान्यता ली जाती है।*[2]

किसी क्षेत्र अथवा उद्योग को साम्य स्थिति में तब माना जाएगा जबकि इसमें उत्पादित वस्तु की मांग तथा पूर्ति में पूर्ण समानता हो। इसी समानता के फलस्वरूप हमें साम्य कीमत (equilibrium price) प्राप्त होती है। परंतु वस्तु की मांग तथा इसकी कीमत स्थानापन्न एवं पूरक वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करती है। इसी प्रकार उत्पादन के किसी साधन की मांग एवं इसकी कीमत सहयोगी या स्थानापन्न साधनों की कीमतों पर निर्भर करती है। वस्तुओं व साधनों की कीमतें एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं, क्योंकि साधनों की कीमतें ही उत्पादन लागत का निरूपण करती हैं, *जबकि इनकी (साधनों की) कीमतें स्वयं आंशिक रूप से कीमत उत्पादन मूल्य पर* तथा आंशिक रूप से साधन पूर्ति पर निर्भर करती हैं। इसके अतिरिक्त, साधनों की कीमतों से परिवारों की आय निर्धारित होती है जिसे उपभोग वस्तुओं पर व्यय किया जाता है। इसके विपरीत, वस्तुओं की कीमतों से उत्पादक फर्मों के आगम का निर्धारण होता है तथा यही आगम परिवारों से उत्पादन के साधन एवं अन्य उत्पादक सेवाएं जुटाने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। इन कीमतों से वस्तुओं की मांग तथा पूर्ति का स्तर निर्धारित होता है परंतु ये स्वयं भी मांग व पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती हैं।

उपरोक्त विवरण का यही अर्थ है कि एक वस्तु या साधन की कीमत साम्य स्थिति में तभी हो सकती है जबकि अन्य सभी कीमतें भी उसी समय साम्य स्थिति में हों। उदाहरण के लिए सेब की कीमत साम्य स्थिति में तभी रह सकेगी जबकि संतरों की कीमत साम्य स्थिति में हो। यदि संतरों की कीमत असंतुलन की स्थिति में है तो साम्य स्थिति में आने तक इसमें परिवर्तन होगा और इसके फलस्वरूप सेबों की मांग एवं कीमत में परिवर्तन होगा। इसी प्रकार, यदि किसी प्रकार के श्रम की मजदूरी दर असंतुलन की स्थिति में है तो इसमें परिवर्तन होंगे, जिसके फलस्वरूप अन्य प्रतियोगी साधनों की मांग एवं उनकी कीमतों में परिवर्तन होंगे। साधनों की मांग व कीमतों में परिवर्तन होने पर साधनों के स्वामियों (परिवारों) की आय में परिवर्तन होंगे, और *साथ ही उत्पादन लागत तथा उत्पादन व उपभोग के स्तरों में परिवर्तन होने के कारण* वस्तुओं की कीमतें भी प्रभावित होंगी।

संक्षेप में, जहां आंशिक साम्य विश्लेषण अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र में होने वाले

2 Richard H Leftwich 'The Price System and Resource Allocation' (Fourth Edition) pp 359-360

परिवर्तन से तथा नई साम्य स्थिति की प्राप्ति में संबद्ध होता है, वही सामान्य साम्य विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि किसी एक क्षेत्र में प्रारंभिक व्यवधान (disturbance) के बाद सभी क्षेत्र (तथा इस कारण समूची अर्थव्यवस्था) एक नई साम्य स्थिति में पहुंच जाते हैं। इसका यह भी अर्थ है कि नई साम्य स्थिति में भी विभिन्न क्षेत्रों के मध्य परस्पर निर्भरता बनी रहती है।

23 2 सामान्य साम्य पर वालरस के विचार

(Walrasian Explanation of the General Equilibrium)

वालरस ने समीकरणों की एक व्यवस्था निर्मित करके सामान्य साम्य की स्थिति पर प्रकाश डाला। सबसे पहले उन्होंने वस्तुओं व साधनों के बाजार का अंतर बतलाया। उन्होंने कहा कि वस्तुओं के बाजारों में उपभोक्ता उन वस्तुओं की मांग करते हैं जिनकी पूर्ति व्यावसायिक फर्मों द्वारा की जाती है। साधनों के बाजारों में परिवारों (जो वस्तु के बाजार में उपभोक्ता की भूमिका का निर्वाह करते हैं) द्वारा व्यावसायिक फर्मों को भूमि, श्रम पूंजी, प्रबंध आदि की पूर्ति की जाती है। इसके प्रतिपादनस्वरूप ये परिवार पारिश्रमिक या आय प्राप्त करते हैं जिसे फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की खरीद पर व्यय कर दिया जाता है। इस प्रकार उपभोक्ता या परिवार एक ओर तो वस्तुओं के बाजारों में क्रेताओं के रूप में प्रवेश करते हैं, तथा दूसरी ओर साधनों के बाजार में विक्रेताओं की भूमिका अदा करते हैं। ठीक इसी प्रकार व्यावसायिक फर्में वस्तुओं के बाजारों में विक्रेताओं के रूप में प्रविष्ट होती हैं जबकि साधनों के बाजारों में इनकी भूमिका क्रेताओं की रहती है।

वालरस के मॉडल में वस्तुओं तथा साधनों की कीमतों तथा मात्राओं को अज्ञात चर माना गया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने प्रत्येक वस्तु की उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त साधनों की मात्रा (जिस पर प्रत्येक फर्म को अधिकतम लाभ होता है) को भी अज्ञात चरों के रूप में लिया है। इन्हें वालरस ने तकनीकी गुणांकों (technical coefficients) की संज्ञा दी। उन्होंने कहा कि यदि समाज को m वस्तुओं का उत्पादन n साधनों की सहायता से करना हो तो वस्तुओं की m कीमतें तथा साधनों की n कीमतों का हमें निर्धारण करना होगा। यही नहीं, m वस्तुओं तथा n सेवाओं के लिए m+n तकनीकी गुणांकों की आवश्यकता होगी। अस्तु, वालरस के मॉडल में 2m+2n+mn समीकरण होंगे। इसके अलावा, समीकरणों की संख्या इस बात पर भी निर्भर करेगी कि परिवारों तथा व्यावसायिक फर्मों की संख्या कितनी है। कुल मिलाकर वालरस के मॉडल में प्रस्तुत समीकरणों को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

$X_1, X_2, X_3 \cdots\cdots\cdots, X_m$ = m वस्तुओं की संख्या

$P_1, P_2, P_3, \cdots\cdots\cdots, P_m$ = m वस्तुओं की कीमतें

$A_1, A_2, A_3, \cdots\cdots\cdots, A_n$ = n साधनों की मात्राएं

$W_1, W_2, W_3, \cdots\cdots\cdots, W_n$ = n साधनों की कीमतें

$\bar{A}_1, \bar{A}_2, \bar{A}_3, \cdots\cdots\cdots, \bar{A}_n$ = n साधनों का प्रारंभिक स्टॉक

$b_1, b_2, b_3, \cdots, b_r$ = r फर्मों की संख्या
$h_1, h_2, h_3, \cdots, h_k$ = k परिवारों की संख्या
a_{ij} = ith साधन का jth वस्तु के उत्पादन में गुणांक $(i=1, 2, 3, \cdots, n)$
$(j=1, 2, 3, \cdots, m)$

जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक साधन की स्थानापन्न व पूरक वस्तुएं तथा स्थानापन्न व पूरक साधन उपलब्ध हैं, अलबत्ता इनकी स्थानापन्नता या पूरकता की सीमाओं में काफी अंतर हो सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु X_j के माँग (या पूर्ति) फलन में केवल X_j की कीमत का ही समावेश करना पर्याप्त नहीं है। सामान्य साम्य-स्थिति से संबद्ध माँग फलन में हम साधारण तौर पर सभी वस्तुओं की कीमतों को शामिल करते हैं यदि अर्थव्यवस्था में 1000 वस्तुओं (साधन सहित) का उत्पादन किया जाता हो (यानी $j=1, 2, 3, \ldots 1000$), तथा यदि मुद्रा को एक अतिरिक्त वस्तु मान लें तो 21वीं मद का माँग फलन निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा—

$$D_{21}=f_{21}\ (P_1\ P_2, P_3\ \ \ , P_{1001}, T, M, \overline{W}) \quad \ldots (23.1)$$

उपरोक्त समीकरण में P_j $(j=1\ 2, 3, \ \ 1001)$ वस्तुओं की कीमतों के प्रतीक हैं, M उपभोक्ताओं के पास मौजूद कुल मुद्रा है, $\overline{W}$ कुल संपत्ति है, तथा T उपभोक्ताओं की इस वस्तु के प्रति कुल रुचि का प्रतीक है। यह एक रोचक तथ्य है कि उपरोक्त माँग फलन पिछले अध्यायों में प्रस्तुत माँग फलनों से भिन्न है, क्योंकि इसमें प्रत्यक्षतः आय चर को शामिल नहीं किया गया है। वस्तुतः उपभोक्ताओं की आय इस माडल में परोक्ष रूप से शामिल की गई है। उपभोक्ताओं की आय इनके द्वारा बेची गई सेवाओं की कीमतों के रूप में व्यक्त की गई है जिन्हें उपरोक्त माँग फलन में शामिल कर लिया गया है।

इसी प्रकार मद संख्या 21 के पूर्ति फलन को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

$$S_{21}=\phi_{21}\ (P_1, P_2\ P_3, \ldots\ , P_{1001}\ T, M, \overline{W}) \quad \ldots (23.2)$$

इस मद का उत्पादन करने वाला उद्योग उसी दशा में साम्य स्थिति में माना जाएगा जब वस्तु की माँग इसकी पूर्ति के ठीक समान हो। यदि प्रत्येक वस्तु (व साधन) की माँग इसकी पूर्ति के समान हो तो संपूर्ण अर्थव्यवस्था साम्य स्थिति में होगी। अन्य शब्दों में, अर्थव्यवस्था की 1001 वस्तुओं (व साधनों) के लिए निम्न 1001 समीकरण पूरे होने चाहिए—

$$f_1 (P_1, P_2, P_3, \ \ \cdot\ , P_{1001}, T, M\ \overline{W}) = \phi_1 (P_1, P_2\ P_3, \quad P_{1001}, T, M, \overline{W})$$

$$f_2 (P_1, P_2, P_3, \cdots\ , P_{1001}, T, M, \overline{W}) = \phi_2 (P_1, P_2\ P_3, \ldots, P_{1001}, T, M, \overline{W})$$

$$\cdots \qquad \cdots$$

$$f_{1001}(P_1, P_2, P_3, \ldots P_{1001}, T, M, \bar{W}) = \phi_{1001}(P_1, P_2, P_3, \ldots P_{1001}, T, M, \bar{W})$$

यदि उपभोक्ताओं की रुचि मापनीय न हो, तो उपरोक्त समीकरणों से T को निकाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यदि हमें M तथा $\bar{W}$ के मूल्य उपलब्ध हों तो हमारे पास विद्यमान समीकरणों की संख्या अज्ञात चरों की संख्या के समान हो जाएगी तथा हम $P_1, P_2, P_3, \ldots P_{1001}$ के लिए उपरोक्त समीकरणों को हल कर सकते हैं। फिर इन कीमतों को माग (पूर्ति) फलनों में प्रतिस्थापित करके हम अर्थव्यवस्था में विनिमय की गई वस्तुओं (तथा उत्पादक सेवाओं) की मात्राएं ज्ञात कर सकते हैं।

परंतु हमारी मुद्रा की इकाई रुपया है तथा इसकी प्रति इकाई कीमत एक है। इसलिए हम 1001 चरों में से एक को छोड़ सकते हैं, फिर भी हमारे पास 1001 समीकरण शेष रहते हैं। अर्थशास्त्रियों ने वालरस का नियम प्रतिपादित करते हुए कहा है कि इन समीकरणों में से एक निरर्थक है, और एक हज़ार अज्ञात चरों के समाधान हेतु वस्तुतः एक हज़ार समीकरण ही विद्यमान हैं। जो भी व्यक्ति वस्तु की माग करता है, वह इसके बदले उतने ही मूल्य की मुद्रा या अन्य वस्तुएं देने को तत्पर रहता है। इसी प्रकार, जो व्यक्ति वस्तु की पूर्ति करता है, वह बदले में उतने मूल्य की वस्तुओं या मुद्रा की माग करता है।[3]

इस प्रकार प्रत्येक मद की माग ठीक इसकी पूर्ति (रुपयों में) के समान हो जाती है। कुल माग व कुल पूर्ति के रूप में पूर्ति की गई वस्तुओं का कुल मूल्य मागी गई वस्तुओं के कुल मूल्य के समान होगा। बीजगणितीय रूप में इसे निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

$$\sum_{j=1}^{1001} P_j S_j = \sum_{j=1}^{1001} P_j D_j \qquad \ldots(23.4)$$

कुल पूर्ति-मूल्य तथा कुल माग मूल्य की यह समानता प्रत्येक दशा में विद्यमान होनी चाहिए, चाहे अर्थव्यवस्था साम्य स्थिति में हो अथवा नहीं। यही नहीं, इस समीकरण में P_j से कोई प्रयोजन नहीं है। इस प्रकार, वालरस का नियम बतलाता है कि पूर्ति व माग की मात्राओं का मौद्रिक मूल्य सभी स्थितियों में समान होना चाहिए। चूंकि समीकरण (23.4) में दोनों ओर P_j समान हैं, उपरोक्त स्थिति को हम यह जताने हेतु भी व्यक्त कर सकते हैं कि प्रत्येक मद की माग व पूर्ति में पूर्ण समानता होनी चाहिए ($D_1=S_1, D_2=S_2, D_3=S_3, \ldots D_{1001}=S_{1001}$), तथा इसलिए अर्थव्यवस्था में माग का कुल भौतिक परिमाण सभी वस्तुओं की कुल पूर्ति के परिमाण के समान होना चाहिए। वालरस के नियम से यह भी ज्ञात होता है कि सामान्य साम्य के समीकरणों में से एक निरर्थक है। मान लीजिए, हमें वे कीमतें ज्ञात हो जाती हैं जो एक को छोड़ कर अन्य सभी माग व पूर्ति के समीकरणों को पूरा करती हैं। समीकरण

3. William J. Baumol, 'Economic Theory and Operations Analysis' (Third Edition, Prentice Hall, India), p 365

(23.4) के आधार पर हम यह जानते हैं कि पूर्ति की गई सभी वस्तुओ (मान लीजिए, X_1 को छोड कर) का मौद्रिक मूल्य माग की गई सभी वस्तुओ के मौद्रिक मूल्य के समान है। अस्तु, जैसा कि वालरस का नियम बतलाता है, X_1 की माग तथा पूर्ति की मात्राओ के मौद्रिक मूल्य भी आवश्यक रूप से समान होंगे।[4]

वालरस द्वारा प्रस्तुत माग व पूर्ति के समीकरणो की व्याख्या करने के बाद हम अब विनिमय व्यवस्था मे साम्य किस प्रकार स्थापित होता है इसकी चर्चा करेंगे। इसके पश्चात् हम उत्पादन की साम्य स्थिति का विवरण देंगे, तथा अंत में यह देखेंगे कि सामान्य साम्य स्थिति के समीकरणो का निरूपण किस प्रकार होता है।[5]

23.3 विनिमय मे साम्य स्थिति
(Equilibrium of Exchange)

हम एक ऐसी काल्पनिक स्थिति से प्रारंभ करेंगे जिसमे किसी समाज मे k व्यक्ति रहते हैं तथा वे m प्रकार की वस्तुओ का उत्पादन करते हैं। सुविधा के लिए हम प्रत्येक व्यक्ति के लिए पादचिह्न i का प्रयोग करेंगे। उदाहरण के लिए, समाज के k व्यक्तियो के लिए 1, 2, 3, .., k पादचिह्न प्रयुक्त किए जाएंगे। इसी प्रकार वस्तुओ के लिए j पादचिह्न प्रयुक्त किया जाएगा ($j=1, 2, 3, \ldots, m$)। ith व्यक्ति के पास jth वस्तु की कितनी मात्रा है उसे X_{ji} के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है। अस्तु $X_{1i}, X_{2i} \ldots X_{mi}$ को ith व्यक्ति के पास विद्यमान m वस्तुओ के स्टाक की सपूर्ण सूची माना जा सकता है। यह भी मान लीजिए कि इन k व्यक्तियो के पास A_i साधन हैं ($i=1, 2, 3, 4, \ldots, n$)।

अब मान लीजिए ith व्यक्ति X_{ji} के विद्यमान स्टॉक के स्थान पर X^*_{ji} मात्रा है ($X^*_{ji} \neq X_{ji}$)। यदि जो स्टॉक वह चाहता है वह विद्यमान स्टॉक से अधिक है ($X^*_{ji} > X_{ji}$), तो उसे अपनी उपभोग योजना की पूर्ति हेतु jth वस्तु की अतिरिक्त मात्रा प्राप्त करनी होगी। इसके विपरीत, यदि $X^*_{ji} < X_{ji}$ हो तो jth वस्तु की कुछ मात्रा को छोड़ना चाहेगा। प्रत्येक स्थिति मे वह व्यक्ति बाजार के माध्यम से कार्य करेगा तथा jth वस्तु की अतिरिक्त मात्रा को खरीद कर

4 प्रमाण. यदि $\sum_{j=1}^{m} P_j S_j \equiv \sum_{j=1}^{m} P_j D_j$ हो तथा साथ ही $\sum_{j=1}^{m} P_j S_j \equiv \sum_{j=1}^{m} P_j S_j$ हों, तो यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि $P_1S_1 = P_1D_1$, तथा $P_2S_2 = P_2D_2$ आदि। चूंकि P_1 दोनों में एक ही है, हम यह भी कह सकते हैं कि $S_1 = D_1$, $S_2 = D_2$, $S_3 = D_3$ आदि। अन्य शब्दों मे, साम्य कीमतो पर प्रत्येक वस्तु की माग तथा पूर्ति की मात्राए भी समान होगी।

5. विस्तृत विवरण हेतु देखिए, Ferguson, op cit, Chapter 15

(यदि $X^*_{ji} > X_{ji}$ हो) या $_j$th वस्तु की मात्रा को बेचकर (यदि $X_{ji} < X_{ji}$ हो) $X_{ji} < X_{ji}$ की स्थिति मे पहुच जाएगा।

यदि हम उसके पास विद्यमान सभी m वस्तु के मौद्रिक मूल्यो को लें तो उसकी कुल मौद्रिक आय (M) को विनिमय पूर्व की स्थिति मे निम्न रूप मे व्यक्त कर सकते है—

$$M = \sum_{i=1}^{m} P_j X_{ji}$$

(उपरोक्त समीकरण में P_j वस्तु की कीमत का प्रतीक है।)

जब $_i$th वस्तु की वांछित मात्रा बाजार मे खरीद लेता है या फालतू मात्रा को बाजार मे बेच देता है (जिससे $X^*_{ji} = X_{ji}$ की स्थिति आ जाती है, यानी वांछित मात्रा वास्तविक स्टाक के समान हो जाती है) तो उसकी वास्तविक आय इस प्रकार होगी—

$$M = \sum_{i=1}^{m} P_j X^*_{ji}$$

चूंकि उपभोक्ता की आय के दोनो स्तर (M) समान हैं यानी उसकी मौद्रिक आय, जितनी वस्तुए वह चाहता है तथा जितनी वह अपने पास रखने मे सक्षम है उनके मौद्रिक मूल्य के समान है, $_i$th व्यक्ति की बजट सीमा को निम्न रूप में रखा जा सकता है—

$$\sum_{j=1}^{m} P_j (X_{ji} - X^*_{ji}) = 0 \qquad (23\ 5)$$

यह स्मरण रखते हुए कि $_i$th व्यक्ति का सतुष्टि अथवा उपयोगिता का स्तर उसके उपभोग क्रम मे सम्मिलित वस्तुओ (व सेवाओ) की मात्रा पर निर्भर करता है, हम उसके उद्देश्य फलन अथवा सीमित आय (समीकरण 23 5) के भीतर अधिकतम की जाने वाली उपयोगिता को निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते है—

$$U_i = \phi_i(X_{1i}, X_{2i}, X_{3i}, \ldots, X_{mi}) \qquad (23\ 6)$$

अध्याय 3 व 4 में प्रस्तुत उपभोक्ता व्यवहार के सिद्धात के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि उपभोक्ता को अधिकतम सतुष्टि तभी प्राप्त हो सकती है जब सभी m वस्तुओ के सदर्भ में सीमात उपयोगिता तथा कीमत के अनुपात समान हो। अस्तु—

$$\frac{U_{1i}}{P_1} = \frac{U_{2i}}{P_2} = \frac{U_{3i}}{P_3} = \ldots = \frac{U_{mi}}{P_m} \qquad (23\ 7)$$

(यहा U सीमात उपयोगिता को व्यक्त करता है।)

इसके अतिरिक्त, हम यह भी मानते हैं कि $_i$th व्यक्ति की भांति समाज का प्रत्येक व्यक्ति निर्दिष्ट आय में अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। चूंकि हमारे समक्ष वस्तुओं तथा कीमतों के m सबध विद्यमान हैं, विनिमय

व्यवस्था में साम्य स्थिति के लिए निम्न सूत्र प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$\frac{U_{ji}}{P_j} = U_{mi} \qquad \text{चूंकि } P_m = 1 \text{ है, हम } \frac{U_{mi}}{P_m} \text{ का } U_{mi} \text{ के रूप में भी लिख सकते हैं।} \qquad ..(23\,8)$$

जहां बजट सीमा है—

$$\sum_{j=1}^{m} P_j (X_{ji} - X^*_{ji}) = 0 \quad (j=1, 2, 3, \ldots, m-1) \; (i=1, 2, 3, \ldots k)$$

समीकरण (23 8) से यह स्पष्ट होता है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी को अन्य व्यक्तियों के साथ तब तक विनिमय करता रहेगा जब तक कि सभी उपभोक्ता अधिकतम उपयोगिता प्रदान करने वाली साम्य स्थिति में नहीं पहुंच जाते। उपरोक्त समीकरणों से दो अन्य बातों का भी बोध होता है (अ) प्रत्येक व्यक्ति m वस्तुओं को ऐसे अनुपात में अपने पास रखता है जिससे एक वस्तु की मौद्रिक कीमत की सीमांत उपयोगिता अन्य सभी वस्तुओं में से प्रत्येक की मौद्रिक कीमत की सीमांत उपयोगिता (marginal utility of a rupee's worth of a product) के समान हो तथा (ब) यह कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी बजट सीमा के भीतर अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना चाहता है।

उत्पादन में साम्य स्थिति (Equilibrium in Production)

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार उपभोक्ता अपनी बजट सीमाओं में रहते हुए अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करते हैं। अब हम यह देखेंगे कि सामान्य आर्थिक साम्य के अंतर्गत उत्पादक फर्में किस प्रकार साम्य स्थिति को प्राप्त करती हैं। अब मान लीजिए, अर्थव्यवस्था में r फर्में हैं जिनमें से प्रत्येक के लिए पादचिह्न s का प्रयोग किया जाता है (S=1, 2, 3, , r)। प्रत्येक फर्म एक या अधिक वस्तुओं के उत्पादन हेतु विभिन्न साधनों व वस्तुओं का प्रयोग करती है। यह भी संभव है कि ऊपर वर्णित k व्यक्ति (या परिवार) फर्मों के रूप में भी उत्पादन करते हों। हम वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों एवं वस्तुओं के लिए x का प्रयोग करेंगे। साधनों की उपलब्ध मात्राओं तथा आदा प्रदा गुणांकों (input output coefficients) के आधार पर हम प्रत्येक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु के उत्पादन फलन का निरूपण कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, फर्म संख्या 3 तृतीय वस्तु का उत्पादन करती है तथा a_{ij} साधनों व वस्तुओं का प्रयोग करती है जिनकी संख्या क्रमशः एक, दो, चार, पांच, छह व आठ है। ऐसी स्थिति में फर्म के लिए उपयुक्त उत्पादन फलन का स्वरूप इस प्रकार होगा—

$$X_{33} = f_3 (a_{13}, a_{23}, a_{43}, a_{53}, a_{63}, a_{83})$$

यहां a_{ij} का प्रयोग यह स्पष्ट करने हेतु किया गया है कि j^{th} वस्तु (यहां j=3) के उत्पादन हेतु फर्म i^{th} साधन का प्रयोग करती है। यह भी स्पष्ट कर देना

उपयुक्त होगा कि i का मूल्य 1 से n तक हो सकता है (i=1, 2, 3, , n), जबकि वस्तुओं की संख्या 1 से m तक जा सकती है (j=1, 2, 3, , m)। उत्पादन फलन का सर्वाधिक सामान्य स्वरूप इस प्रकार होगा—

$$X_{js}=f_s\ (a_{1j},\ a_{2j},\ a_{3j},\ \ a_{nj}) \qquad (23\ 9)$$

समीकरण (23 9) मे X_j वस्तु के तकनीकी गुणाक प्रस्तुत किए गए हैं जिन्हे फर्म S प्रयुक्त करती है।

फर्म द्वारा अर्जित लाभ इसकी लागत के ऊपर कुल आगम का आधिक्य है। उपरोक्त उदाहरण मे जब फर्म वस्तु संख्या 3 का उत्पादन करती है तो इसका कुल आगम P_3X_3, होगा जबकि उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त साधनो व वस्तुओ के लिए चुकाई गई कुल लागतें $a_{13}\,w_1+a_{23}\,w_2+a_{43}\,w_4+a_{53}\,w_5+a_{63}\,w_6+a_{83}\,w_8$ होगी (जहा w_i प्रत्येक साधन की कीमत का प्रतीक है)। कुल आगम तथा कुल लागतो का अतर फर्म S द्वारा वस्तु संख्या X_3 का उत्पादन करने पर प्राप्त लाभ कहलाएगा। यदि फर्म S एक से अधिक वस्तुए बनाती है तो सभी से प्राप्त कुल आगम $\sum_{j=1}^{m} P_jX_{js}$ तथा उत्पादन की कुल लागतो का अतर उसके लाभ को व्यक्त करेगा। यह उल्लेखनीय है कि उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयुक्त सभी साधनो की मात्राओ तथा साधन की कीमतो के गुणनफल का योग ही कुल लागत है।

साधनो के प्रयोग द्वारा कुल उत्पादन लागत को उनके उस स्तर पर न्यूनतम किया जा सकता है जहा सभी साधनो की सीमात उत्पत्ति तथा साधन-कीमतो के अनुपात समान हो।

उत्पादन प्रक्रिया का दीर्घकालीन साम्य
(Long Run Equilibrium of Production)

दीर्घकालीन साम्य स्थिति मे प्रत्येक फर्म X_j वस्तु का उतनी मात्रा मे उत्पादन करेगा जहा P_j यानी X_j की कीमत उसकी औसत उत्पादन लागत के समान हो। अन्य शब्दो मे, दीर्घकाल मे प्रत्येक वस्तु के उत्पादन मे फर्म केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। यही स्थिति उद्योग तथा सपूर्ण अर्थव्यवस्था विद्यमान सभी फर्मों की होगी। इस बात को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

$$\left.\begin{aligned} P_1&=a_{11}w_1+a_{21}w_2+\ \ a_{n1}w_n \\ P_2&=a_{12}w_1+a_{22}w_2+\ \ a_{n2}w_n \\ &\quad + \qquad\qquad + \\ P_m&=a_{1m}w_1+a_{2m}w_2+\ \ +a_{nm}w_n \end{aligned}\right\} \qquad (23\ 10)$$

अस्तु, दीर्घकाल मे प्रत्येक वस्तु की उत्पादन लागत इसकी कीमत के समान होती है। समीकरण (23 10) मे दाईं ओर प्रत्येक वस्तु की औसत उत्पादन लागत व्यक्त की गई है जबकि बाईं ओर वस्तु की कीमत रखी गई है। इस समीकरण मे पूर्व की भाति a_{ij} उत्पादन सबधी तकनीकी गुणाक या i^{th} साधन की वह मात्रा रखी गई

है जो j^{th} वस्तु के उत्पादन मे $(j=1, 2, \ldots, m)$ प्रयुक्त की जाती है। (यहां $i=1, 2, 3, \ldots n$ है) । पूर्व की भांति w_i प्रत्येक साधन की कीमत का प्रतीक है, जिस वस्तु X_j के उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

ऊपर प्रस्तुत विवरण का सार यह है कि दीर्घकाल में वस्तु की औसत लागत, यानी प्रत्येक वस्तु के उत्पादन मे प्रयुक्त साधनो का कुल मूल्य ($a_{ij}\, w_i$) वस्तु की कीमत (P_j) के समान होना चाहिए। सामान्य साम्य के लिए इसका यह अर्थ है कि सभी वस्तुओ की कीमतें उनकी औसत लागतो के समान होनी चाहिए। यदि ऐसा नही है तो अपेक्षाकृत जिन वस्तुओ की कीमतें अधिक हैं, उनम जहा कीमतें कम हैं उन क्षेत्रो से साधनों का अतरण करके कुल कल्याण म वृद्धि की जा सकती है।

इस बात को हम थोड़ा और स्पष्ट करना चाहेंगे। दीर्घकाल मे एक प्रतियोगी फर्म उस पैमाने पर कार्य करती है जहा दीर्घकालीन लागत न्यूनतम है (LAC is minimum)। जैसा कि हम पूर्व में पढ चुके हैं, इस इष्टतम स्तर पर LAC=LMC =SMC=SAC होती हैं। फर्म S का इष्टतम पैमाना उसके प्लाट का वह आकार है जहा *न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागत (जहा LAC=LMC=* SMC=SAC है) वस्तु की कीमत के समान हो। जब फर्म m वस्तुओ का उत्पादन करना चाहती है तो उस स्तर पर दीर्घकालीन सीमात लागत भी कीमत के समान होनी चाहिए। अन्य शब्दों म, प्रत्येक फर्म इष्टतम पैमाने पर कार्य करती है जहा $P_j=MR_j=LAC_j=LMC_j=SMC_j=SAC_j$ की स्थिति है। दो वस्तुओ के युग्म के सदर्भ मे इसका अर्थ यह होगा कि दोनो वस्तुओ की सीमात रूपातरण दर (marginal rate of product transformation) यानी सीमात लागतो का अनुपात इनकी कीमतो के अनुपात के समान होना चाहिए। अस्तु—

$$\frac{-dX_{js}}{dX_{ms}} = \frac{\dfrac{\partial C}{\partial X_{ms}}}{\dfrac{\partial C}{\partial X_{ij}}} = \frac{P_{xn}}{P_{xj}} \qquad (23\ 11)$$

उपरोक्त उदाहरण मे X_{js} व X_{ms} क्रमश S फर्म द्वारा उत्पादित दो वस्तुए हैं जिनकी कीमतें क्रमश P_{xm} एव P_{xj} हैं। $\frac{\partial C}{\partial X_{ms}} \Big/ \frac{\partial C}{\partial X_{js}}$ इन दोनो वस्तुओ की सीमात लागतो का अनुपात है। यह उत्पादन सभावना वक्र की वह स्थिति है जहा वक्र का ढलान सीमात लागतो का अनुपात वस्तुओ की कीमतो के अनुपात के समान होता है। यदि कीमतो का अनुपात कम हो $\left(\text{यानी } \frac{\partial C}{\partial X_{ms}} \Big/ \frac{\partial C}{\partial X_{js}} > \frac{P_{xm}}{P_{xj}} \text{ हो}\right)$ तो फर्म X_m का उत्पादन कम करके अधिक साधन X_j म प्रयुक्त करेगी तथा इससे उसका कुल आगम बढ जाएगा। यदि इसस विपरीत स्थिति हो तो साधनो का पुनरावटन X_m के पक्ष मे तथा X_j के विपरीत होगा। साधनो का पुनरावटन तब तक होता जाएगा जब तक कि समीकरण (23 11) मे प्रस्तुत शर्तें पूरी नही हो जाती।

23 4 साधन की मांग व पूर्ति मे साम्य
(Equilibrium between Input Demand and Supply)

ऊपर अनुभाग 23 3 मे यह बतलाया गया था कि अर्थव्यवस्था मे k व्यक्ति या परिवार हैं जिनके पास A_i साधन है ($i=1,2,3, \ldots, n$)। प्रत्येक परिवार उपलब्ध साधन या साधनो की पूर्ति केवल उसी दशा मे करना चाहेगा जबकि इससे प्राप्त आय इसकी अवसर लागत (opportunity cost) के समान या इससे अधिक हो। अवसर लागत किसी साधन की वह कीमत है जो इसके लिए वैकल्पिक प्रयोगो मे प्रयुक्त किए जाने पर प्राप्त हो सकती है। परतु, विभिन्न परिवारो या व्यक्तियो के पास विद्यमान साधनो की मात्रा स्थिर है। सामान्य आर्थिक साम्य हेतु यह आवश्यक है कि प्रत्येक साधन की कुल माग इसकी कुल पूर्ति समान हो। जब तक यह समानता स्थापित नही हो जाती तब तक साधन A_i की कीमत मे परिवर्तन होते रहेंगे।

किसी साधन की कुल माग इसकी वह कुल मात्रा है जिसे अर्थव्यवस्था मे m वस्तुओ के उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जाता है। हम यह जानते है किसी साधन की किसी भी वस्तु X_j के उत्पादन हेतु कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी। यह दो बातो पर निर्भर करेगा प्रथम, a_{ij} या आदा प्रदा गुणाक पर तथा द्वितीय, X_j की उत्पादित मात्रा पर। सामान्य साम्य हेतु यह जरूरी है कि प्रत्येक साधन की कुल माग (फर्मों के द्वारा) इसकी कुल पूर्ति (परिवारो के पास) के समान हो। इस बात को निम्न रूप मे व्यक्त किया जा सकता है—

$$\left.\begin{array}{l} A_1=a_{11}X_1+a_{12}X_2+ \cdots +a_{1m}X_m \\ A_2=a_{21}X_1+a_{22}X_2+ \cdots +a_{2m}X_m \\ \cdot \quad \cdot \quad \cdot \quad + \quad \cdots + \\ A_n=a_{n1}X_1+a_{n2}X_2+ \cdots +a_{nm}X_m \end{array}\right\} \quad \ldots(23.12)$$

यहा a_{ij} किसी वस्तु X_j के उत्पादन हेतु साधन a_i की प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा है। ($i=1, 2, 3, \ldots, n$; तथा $j=1, 2, 3, \ldots\ldots, m$) ऊपर समीकरण (23 12) मे बाईं ओर साधन की माग है तथा A_i परिवारो के पास विद्यमान साधन की पूर्ति है।

उत्पादन के साधनो, A_i की पूर्ति उनकी कीमतो (W_i) के अतिरिक्त उन उपभोग वस्तुओ की कीमतो (P_i) पर भी निर्भर करती है जिनका प्रयोग करने के उपभोक्ता आदी हैं। वास्तव मे उपभोग वस्तुओ की कीमतो द्वारा साधनो की अवसर लागतें या समय अधिमान दरें निर्धारित की जाती है, क्योकि वस्तुओ की कीमतो पर ही परिवारो की वास्तविक आय का स्तर निर्भर करता है। इन सबधो को व्यक्त करने वाले समीकरण निम्न रूप मे प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

$$\left.\begin{array}{l} A_1=h(P_1, P_2, P_3, \ldots; P_m, w_1, w_2, \ldots, w_n) \\ A_2=h(P_1, P_2, P_3, \ldots, P_m, w_1, w_2, \ldots, w_n) \\ \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad ; \ldots \quad \ldots \quad \ldots \\ A_n=h(P_1, P_2, P_3, \ldots, P_m, w_1, w_2, \ldots w_n) \end{array}\right\} \quad \ldots(23.13)$$

इस प्रकार के हमारे समक्ष n समीकरण होते हैं जिनमें से n−r प्रत्येक साधन से सबद्ध होता है। परन्तु, जैसा कि ऊपर बतलाया गया था, उत्पादन के साधनों के बाजार केवल उसी समय साम्य स्थिति में होते हैं जबकि प्रत्येक साधन की मांग उसकी पूर्ति के समान हो।

23.5 आंशिक साम्य स्थिति से सामान्य साम्य स्थिति में जाना (From Particular to General Equilibrium)

पिछले तीन अनुभागों में हमने यह देखा था कि सामान्य आर्थिक साम्य स्थिति के लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई साम्य स्थिति में हो। i^{th} उपभोक्ता या परिवार साम्य स्थिति में तब होगा जब उसके उपभोग क्रम में शामिल सभी वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता तथा कीमत के अनुपात में समानता हो। यह हम देख चुके हैं कि उपभोक्ता को प्राप्त कुल उपयोगिता केवल उसी समय अधिकतम होती है जब सीमांत उपयोगिताओं का अनुपात कीमतों के अनुपात के समान होना चाहिए (समीकरण 23.8 के अनुसार $\frac{U_{ij}}{P_j} = U'_{mi}$)। इस नियम के आधार पर m वस्तुओं के लिए i^{th} उपभोक्ता की मांग के साम्य स्तर ज्ञात किए जा सकते हैं। अर्थव्यवस्था में ऐसे k उपभोक्ताओं द्वारा m वस्तुओं ($j=1, 2, 3, \ldots, m$) की कुल मांग कितनी होगी, इसका बोध $\sum_{j=1}^{m} P_jD_j$, यानी सभी उपभोक्ताओं की मांग के योग द्वारा होगा। यहां D_j किसी वस्तु X_j की कुल मांग का प्रतीक है तथा P_jD_j के द्वारा उस वस्तु पर उपभोक्ताओं द्वारा j^{th} वस्तु पर किया गया व्यय है। इस प्रकार, सभी उपभोक्ताओं के उपयोगिता फलन, तथा वास्तविक आय या बजट ज्ञात होने पर उनके कुल मांग फलन ज्ञात किए जा सकते हैं।

परन्तु साम्य कीमत P_j ($j=1, 2, 3, \ldots, m$) ज्ञात करने हेतु वस्तु की कुल मांग D_j इसकी कुल पूर्ति S_j के समान होनी चाहिए। वस्तु की कुल पूर्ति ज्ञात करने हेतु हमें सभी r फर्मों के सीमांत लागत वक्रों का क्षैतिज योग लेना होगा। X_j के उत्पादन फलन के माध्यम से हम इसका सीमांत लागत फलन ज्ञात कर सकते हैं। यही नहीं, उत्पादन फलन के माध्यम से ही हम X_j के तकनीकी गुणांकों (a_{ij}) का भी ज्ञान होता है। अस्तु एक प्रतियोगी फर्म के दीर्घकालीन साम्य हेतु X_j की सीमांत लागत एवं कीमत में समानता होनी चाहिए। चूंकि दीर्घकाल में प्रतियोगी फर्में अपने इष्टतम पैमाने पर कार्य करती हैं और साथ ही इसे सामान्य लाभ भी होता है, फर्म की दीर्घकालीन साम्य स्थिति में सीमांत लागत व कीमत के साथ ही औसत लागत में भी समानता होनी चाहिए। इस प्रकार, प्रत्येक i^{th} उपभोक्ता के लिए वस्तु X_j के संदर्भ में विनिमय की साम्य स्थिति हेतु कीमत (P_j) तथा सीमांत उपयोगिता (U_{ij}) में समानता होनी जरूरी है। इसके विपरीत, प्रत्येक फर्म S के लिए वस्तु की कीमत (P_j) तथा इसकी दीर्घकालीन सीमांत एवं औसत लागतें समान होनी

चाहिए। वस्तुतः दीर्घकालीन साम्य ज्ञात करने के लिए X_j के सभी उपभोक्ताओं तथा सभी उत्पादक फर्मों की (सामान्य) साम्य स्थिति की शर्त इस प्रकार होगी—

$$U'_{ij} = P_j = LMC_j = LAC_j \quad (23\ 14)$$

इसी उत्पादन स्तर पर (जहाँ उपरोक्त शर्तें पूरी होती है) X_j के उत्पादन मे प्रयुक्त सभी साधनो की माग के स्तर भी इष्टतम होंगे। हमे यह स्मरण रखना होगा कि माग के ये स्तर X_j के उत्पादन फलन से प्राप्त तकनीकी गुणाको द्वारा निर्धारित होते हैं। साधनो के बाजार मे साम्य स्थिति के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक उत्पादक साधन A_{ij} की कुल माग तथा दी हुई कुल पूर्ति मे समानता हो। साधन के बाजार म यदि असतुलन विद्यमान हो तो साधन की कीमत (w_i) मे परिवर्तन होगा जिससे सभी r फर्मों के लागत फलनो मे परिवर्तन होगा, तथा इसके परिणामस्वरूप X_j वस्तु के पूर्ति फलन मे परिवर्तन होगा। वस्तु के पूर्ति फलन मे परिवर्तन होने पर वस्तु की साम्य कीमत (P_j) मे भी परिवर्तन हो जाएगा।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि सामान्य आर्थिक साम्य स्थिति तभी स्थिर रह सकती है जबकि प्रत्येक वस्तु की निर्दिष्ट कीमत (P_j) तथा साधन की निर्दिष्ट कीमत (w_i) पर वस्तु तथा साधन के बाजार साम्य स्थिति मे हो—यानी सभी वस्तुओं एव साधनो की माग व पूर्ति मे समानता हो। परतु इन बाजारों मे साम्य स्थिति तभी होगी जबकि प्रत्येक i^{th} उपभोक्ता (जो साधन की पूर्ति भी करता है) तथा प्रत्येक S^{th} फर्म भी साम्य स्थिति मे हैं।

किसी एक बाजार अथवा अर्थव्यवस्था के किसी एक क्षेत्र मे हलचल या व्यवधान उत्पन्न होने पर प्रारंभिक या विशिष्ट साम्य स्थिति मे परिवर्तन होंगे तथा इसका अतत सपूर्ण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव होगा। एक क्षेत्र मे परिवर्तन क फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे भी तब तक परिवर्तन होंगे जब तक कि उनमे से प्रत्येक (यानी प्रत्यक उपभोक्ता व फर्म की स्थिति मे, तथा प्रत्येक वस्तु तथा साधन के बाजार मे) नई साम्य स्थिति म नही पहुच जाता। यह स्वाभाविक है कि सभी क्षेत्रों की साम्य स्थिति मे परिवर्तन होने पर हमे कुल माग, कुल पूर्ति तथा वस्तुओ व साधनों की कीमतो के नए स्तर प्राप्त होंगे तथा समूची अर्थव्यवस्था भी नई साम्य स्थिति मे पहुच जाएगी।

24

कल्याणमूलक अर्थशास्त्र
(WELFARE ECONOMICS)

प्रस्तावना

पिछले अध्याय मे हमने उन दशाओं की व्याख्या की थी जिनके द्वारा आंशिक (या विशिष्ट) तथा सामान्य साम्य स्थितिया प्राप्त होती हैं। उपभोग मे व्यक्तिगत साम्य के लिए किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता इसकी कीमत के समान होनी चाहिए। यदि उपभोक्ता अनेक वस्तुओं का उपभोग करता हो तो उस उस स्थिति मे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त होगी जब सीमान्त उपयोगिता तथा कीमत का अनुपात सभी वस्तुओं के सदर्भ मे समान हो। इसी प्रकार एक फर्म विभिन्न साधनों के प्रयोग मे इष्टतम स्थिति उस समय प्राप्त करती है जब साधनों की सीमान्त उत्पादकता एव कीमतों के अनुपात समान हों। इस प्रकार किसी व्यक्ति को अधिकतम कल्याण की प्राप्ति उस दशा मे होगी जब उपयोगिता तथा/अथवा लाभ को अधिकतम करने वाली सीमान्त शर्तें (marginal conditions) पूरी होती हों।

एडम स्मिथ से लेकर मार्शल तक सभी सस्थापक तथा नवसस्थापक अर्थशास्त्रियों ने यह आशा व्यक्त की थी कि यदि व्यक्ति को अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हो जाए तो इससे समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम हो जाएगा। इस धारणा के पीछे उनकी यह मान्यता निहित थी कि सभी व्यक्ति विवेकपूर्ण व्यवहार करते हैं, तथा किसी एक उपभोक्ता या उत्पादक के व्यवहार मे सपूर्ण समाज का आर्थिक व्यवहार प्रतिबिंबित होता है। इस सदर्भ में उनकी अन्य मान्यताए इस प्रकार थी (i) उपभोक्ता को प्राप्त उपयोगिता को सख्यासूचक रूप मे (cardinally) मापा जा सकता है, (ii) सभी व्यक्तियो की रुचि एक जैसी है; (iii) एक व्यक्ति को प्राप्त लाभ या उपयोगिता का अन्य दूसरे व्यक्तियो को प्राप्त लाभ या उपयोगिता से कोई सबध नही है, (iv) मौद्रिक माप के कारण व्यक्ति को प्राप्त उपयोगिता/लाभ का माप सभव है, तथा (v) वस्तुओं तथा साधनो के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान है, अर्थात् वस्तुओं व साधनो की कीमत का निर्धारण कुल माग व कुल पूर्ति के द्वारा होता है तथा एक इकाई (उपभोक्ता या फर्म) इसे प्रभावित करने मे सक्षम नहीं है। जैसा कि हम पूर्व म पढ चुके हैं, पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक

व्यक्ति (फर्म या उपभोक्ता) अपने आर्थिक कल्याण का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक होता है, और चूंकि सभी व्यक्ति एक जैसा व्यवहार करते हैं, एक व्यक्ति का आर्थिक कल्याण अधिकतम होने के साथ ही यह माना जा सकता है कि संपूर्ण समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम हो जाएगा।

प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम हम एडम स्मिथ द्वारा प्रस्तुत आर्थिक कल्याण संबंधी विचारों का अध्ययन करेंगे। इसके बाद नवसस्थापक विद्वानों—विशेष रूप से मार्शल तथा पीगू द्वारा प्रस्तुत कल्याणमूलक अर्थशास्त्र की व्याख्या की जाएगी। आगे चलकर परेटो तथा अन्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित अधिकतम आर्थिक कल्याण की शर्तों की विवेचना की जाएगी।

एडम स्मिथ का कल्याणमूलक अर्थशास्त्र
(Adam Smith's Welfare Economics)

एडम स्मिथ ने आर्थिक कल्याण के एक सूचक (index) का विवरण देते हुए तर्क दिया है कि किसी व्यक्ति के नियंत्रण में विद्यमान किसी वस्तु की वास्तविक कीमत इसकी श्रम-कीमत (labour price) में निहित है। उन्होंने यह भी परोक्ष रूप से बतलाया कि श्रम रूपी यह मानक (standard) ही आर्थिक कल्याण का एक स्पष्ट सूचक प्रदान करता है मजदूरी की इकाइयों के रूप में किसी वस्तु की 'वास्तविक कीमत" (real price) जितनी अधिक होगी, इसकी प्राप्ति के साथ ही हमारी स्थिति उतनी ही बेहतर होगी, देश के कुल उत्पादन में जितना अधिक श्रम निहित होगा उतना ही देश 'अधिक धनी" होगा। इस प्रकार स्मिथ के मतानुसार, देश की जनसंख्या (श्रम शक्ति) का कुल आर्थिक कल्याण से प्रत्यक्ष संबंध है। उन्होंने कहा, "संपन्नता की स्पष्ट एवं निर्णायक पहचान यह है कि देश की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है।" एडम स्मिथ की ऐसी मान्यता थी कि श्रम एवं कष्ट का मूल्य सदा अपरिवर्तित रहता है, और इसलिए देश के पास विद्यमान संपदा के कुल मूल्य में जनसंख्या की वृद्धि के साथ साथ वृद्धि होती जाएगी।

मार्शल का कल्याणमूलक अर्थशास्त्र
(Marshallian Welfare Economics)

इस पुस्तक में प्रारंभिक अध्यायों में यह चर्चा की जा चुकी है कि एल्फ्रेड मार्शल ने उपयोगिता को द्रव्य के रूप में मापनीय माना था। स्पष्ट है कि समष्टिगत स्तर पर समाज के सभी व्यक्तियों को प्राप्त शुद्ध उपयोगिता या उपभोक्ता की बचत का योग ही कुल आर्थिक कल्याण का बोध करा सकता है।

मार्शल ने कहा कि जिन उद्योगों में ह्रासमान प्रतिफल लागू है वहां करारोपण करने पर प्राप्त कुल आय बहुधा करों के द्वारा उपभोक्ता की बचत में होने वाली क्षति से अधिक होती है। उन्होंने आगे कहा कि यदि इस आय (tax proceeds) को वर्द्धमान प्रतिफल वाले उद्योगों में अनुदान के रूप में वितरित किया जाए तो

अनुदान की राशि की अपेक्षा उपभोक्ता की बचत में होने वाली वृद्धि अधिक होगी। इस प्रकार मार्शल ने यह संकेत दिया कि ह्रासमान प्रतिफल वाले उद्योगों पर करारोपण करके यदि इस राशि को वर्द्धमान प्रतिफल वाले उद्योगों को अनुदान के रूप में वितरित किया जाए तो समाज के कुल आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी क्योंकि ऐसी नीति से उपभोक्ता की बचत में होने वाली वृद्धि करारोपण से होने वाली क्षति की अपेक्षा अधिक है।

ह्रासमान प्रतिफल वाले उद्योगों पर कर लगाने से उनकी आपूर्ति-कीमतों (supply prices) में वृद्धि होगी तथा ये उद्योग उत्पादन की मात्रा में कटौती कर देंगे, जिसके फलस्वरूप वे कम लागत पर (कम मात्रा) उत्पादन कर सकेंगे। परन्तु वस्तु की कीमत में हुई वृद्धि कर की प्रति इकाई राशि से कम है। इसके विपरीत, जब करों से प्राप्त आय को वर्द्धमान प्रतिफल वाले उद्योगों के मध्य अनुदान के रूप में वितरित किया जाता है तो उनकी आपूर्ति कीमतों (supply prices) में कमी होगी तथा उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होगी क्योंकि उत्पादक कम कीमत पर अधिक मात्रा बेचने में सक्षम हो जाते हैं। इस प्रकार कुल कल्याण (प्राप्त सतुष्टि) में वृद्धि होती है, क्योंकि जहां उत्पादन लागतें व कीमतें अधिक हैं उन उद्योगों से साधन अंतरित करके वहां प्रयुक्त किए जाते हैं जहां उत्पादन लागतें व कीमतें कम हैं।

वस्तुतः मार्शल द्वारा प्रस्तुत कल्याणमूलक अर्थशास्त्र का आधार उपयोगिता की मापनीयता में निहित है, तथा उपभोक्ता की बचत में वृद्धि को ही वे आर्थिक कल्याण में वृद्धि का सूचक मानते हैं। परन्तु मार्शल ने *आर्थिक कल्याण के माप एवं* इसमें वृद्धि हेतु कोई विस्तृत योजना प्रस्तुत नहीं की। नवसस्थापक अर्थशास्त्रियों में केवल पीगू ने ही कल्याणमूलक अर्थशास्त्र को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया।

पीगू का कल्याणमूलक अर्थशास्त्र—
(Pigovian Welfare Economics)

समाज का आर्थिक कल्याण किस प्रकार अधिकतम हो सकता है इसकी विवेचना करने से पूर्व ए० सी० पीगू ने निम्न मान्यताएं प्रस्तुत कीं—

(अ) प्रत्येक उपभोक्ता विवेकपूर्ण व्यवहार करता है, अर्थात् वह आर्थिक वस्तुओं व सेवाओं पर व्यय की जाने वाली मौद्रिक आय के द्वारा अधिकतम उपयोगिता या सतुष्टि प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

(ब) समाज के सभी व्यक्तियों की उपभोग से सतुष्टि प्राप्त करने की क्षमता समान है। अन्य शब्दों में, समान (वास्तविक) आय वाले व्यक्तियों को उपभोग से समान उपयोगिता प्राप्त होती है।

(स) मुद्रा पर भी ह्रासमान उपयोगिता का नियम लागू होता है। अन्य शब्दों में, मौद्रिक आय में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, व्यक्ति को प्राप्त होने वाली अतिरिक्त उपयोगिता कम होती जाएगी। इसका यह भी अर्थ हुआ कि धनी व्यक्तियों के लिए मुद्रा की सीमांत उपयोगिता निर्धन व्यक्तियों के लिए मुद्रा की सीमान्त उप-

योगिता की अपेक्षा कम होगी।

(द) राष्ट्रीय आय का आकार आर्थिक कल्याण का माप होता है : राष्ट्रीय आय उस स्थिति मे अधिकतम होगी जब सीमान्त सामाजिक उत्पाद (marginal social product) या वैकल्पिक प्रयोगो में सभी साधनो की सीमान्त सामाजिक लागत या सीमात सामाजिक लाभ समान हो ($MSC_1=MSC_2=MSC_3=..MSC_n$)। यह मान्यता मार्शल द्वारा प्रस्तुत सम-सीमात उपयोगिता के अनुरूप है जिसके आधार पर व्यक्ति अपनी सीमित आय को विभिन्न वस्तुओ के मध्य इस प्रकार आवटित करता है कि सभी वस्तुओ से प्राप्त सीमात उपयोगिता व कीमतो का अनुपात समान हो। उसी दशा में मार्शल के मतानुसार उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता प्राप्त होती है।

(य) उपयोगिताओ की अतर्वैयक्तिक तुलना (inter personal comparisons) सभव है और इसलिए कुल आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि या कमी को मापा जा सकता है।

वस्तुत पीगू यह बतलाना चाहते थे कि वास्तविक जगत में अपूर्ण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था विद्यमान है जिसके समक्ष अनेक प्रत्यक्ष बाजार-स्तर प्रतिक्रियाए उपस्थित हो जाती हैं, जिन्हे हम उसी दशा में समाप्त कर सकते हैं जब हम उपयोगिता के सदर्भ में व्यापक रूप से प्रभावशाली एव विवेकसगत अतर्वैयक्तिक तुलना करने हेतु तत्पर रहे।

आर्थिक कल्याण में वृद्धि हेतु पीगू ने सरकार के हस्तक्षेप का प्रबल समर्थन किया। उनके मतानुसार, आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मुद्रा के रूप मे मापा जा सकता है। इस दृष्टि से सीमात सामाजिक लाभ (या लागत) का सख्यासूचक माप लिया जा सकता है। आर्थिक कल्याण में वृद्धि हेतु पीगू ने दो शर्तें अथवा दुहरी कसौटी प्रस्तुत की—

(1) चूकि राष्ट्रीय आय ही अर्थव्यवस्था के कुल कल्याण का सूचक है, यदि उपलब्ध साधनो के द्वारा अधिकतम राष्ट्रीय आय प्राप्त हो सकती हो तो कुल कल्याण भी अधिकतम हो जाएगा। अन्य शब्दो मे, वस्तुओ तथा सेवाओ की मात्रा में होने वाली प्रत्येक वृद्धि से आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी तथा वस्तुओ का परिमाण अधिकतम होने पर आर्थिक कल्याण भी अधिकतम हो जाएगा।

(2) चूकि मुद्रा की सीमात उपयोगिता धनी व्यक्तियों की तुलना में निर्धन व्यक्तियो के लिए अधिक है—जबकि दोनो वर्गों में उपभोग द्वारा सतुष्टि प्राप्त करने की क्षमता समान है—अत वास्तविक आय के एक अश को यदि धनी व्यक्तियो से लेकर निर्धन व्यक्तियो को दे दिया जाए तो कुल आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो जाएगी। अन्य शब्दो में, पीगू ने प्रगतिशील करो की नीति का मार्ग सुझाया, ताकि धनी व्यक्तियो से कर लेकर इस राशि का प्रयोग निर्धन लोगो के कल्याण हेतु किया जा सके।

तथापि, पीगू का कल्याणमूलक अर्थशास्त्र दोषमुक्त नही कहा जा सकता। वस्तुत पीगू ने कुल शर्तों की अपेक्षा सीमात शर्तों (marginal conditions) पर अपना ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने स्वय आधुनिक समाज द्वारा अनुभव की जा रही

बाह्य अ-बचतों की सूची प्रस्तुत की। इन अ-बचतों (diseconomies) में पीगू ने औद्योगिक दुर्घटनाओं, व्यवसाय से सम्बद्ध बीमारियों, महिलाओं व बच्चों को काम पर प्रयुक्त करने, जल तथा वायु के प्रदूषण (जिसकी उत्पत्ति अशुद्ध एवं बेकार की वस्तुओं को फेंकते रहने के कारण होती है) तथा तकनीकी परिवर्तन से उत्पन्न बेरोजगारी की समस्या को शामिल किया है। इन सब से समाज को हानि होती है, परंतु यदि इन्हें समाप्त कर दिया जाए तो निश्चित तौर पर यह सीमांत शर्तों की अवहेलना होगी। इन कमियों के बावजूद पीगू ने अपने कल्याणमूलक सिद्धांत के माध्यम से सरकार की कर नीति में आमूल परिवर्तन करने का सुझाव दिया।

जैसाकि हम आगे देखेंगे, परेटो का कल्याणमूलक अर्थशास्त्र पीगू के द्वारा प्रस्तुत विश्लेषण से श्रेष्ठतर है। परेटो का कल्याणमूलक अर्थशास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि आय का प्रारंभिक वितरण हमें ज्ञात है, और इसलिए दिए हुए साधनों के द्वारा समाज की इष्टतम स्थिति कहां होगी, यही हमें ज्ञात करना है।

वस्तुतः संस्थापक तथा नवसंस्थापक अर्थशास्त्री इस मूलभूत मान्यता में आस्था रखते थे कि व्यक्ति तथा समाज के कल्याण दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। जब तक व्यक्ति का हित (उसका संतुष्टि स्तर अथवा लाभ) बढ़ता है तब तक संपूर्ण समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। परंतु उनकी यह भी मान्यता थी कि भौतिक संसाधनों या संपत्ति के द्वारा ही आर्थिक कल्याण के स्तर का निर्धारण होता है।

तथापि, परेटो व पीगू के अतिरिक्त किसी भी संस्थापक या नवसंस्थापक अर्थशास्त्री ने कल्याणमूलक अर्थशास्त्र के किसी सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया। यहां तक कि परेटो व पीगू द्वारा कल्याणमूलक अर्थशास्त्र भी संस्थापक अर्थशास्त्रियों की इन मान्यताओं पर आधारित है कि वस्तुओं व साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रति-योगिता विद्यमान है, तथा व्यक्ति का आर्थिक कल्याण समाज के आर्थिक कल्याण का प्रतीक है। विगत कुछ दशकों में अर्थशास्त्रियों ने कल्याणमूलक अर्थशास्त्र को इन संस्थापक मान्यताओं से मुक्त कराने का प्रयास किया है। इन आधुनिक अर्थशास्त्रियों की ऐसी धारणा है कि कल्याणमूलक अर्थशास्त्र के विषय में स्मिथ, पीगू, मार्शल व परेटो की मान्यताएं अवास्तविक एवं खोखली हैं। कैल्डोर, सिटोवस्की, हिक्स, लिटिल, लिप्स, लैंकास्टर आदि अनेक अर्थशास्त्रियों ने आधुनिक संदर्भ में आर्थिक कल्याण की अभिवृद्धि हेतु एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जिसे नव कल्याणमूलक अर्थशास्त्र की संज्ञा दी जाती है।

संस्थापक तथा नव संस्थापक कल्याणमूलक अर्थशास्त्र का विवरण प्रस्तुत करने के बाद अब हम परेटो के कल्याणमूलक अर्थशास्त्र की चर्चा करेंगे। इसके बाद कल्याणमूलक आर्थिक अवधारणाओं की चर्चा प्रस्तुत की जाएगी।

24.2 परेटो का कल्याणमूलक अर्थशास्त्र
(The Paretian Welfare Economics)

विल्फ्रेडो परेटो के द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत को हम 'स्वयंसिद्ध कल्याणमूलक

सिद्धांत' (A Priori Welfare Theory) की संज्ञा देते हैं। यह सिद्धांत मुख्य रूप से उपभोक्ताओं, उत्पादकों तथा विनिमय कार्यों में संलग्न अन्य व्यक्तियों द्वारा साधनों के आवंटन से संबद्ध है। परेटो ने यह मान्यता ली थी कि किसी समाज में अधिकतम आर्थिक कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि उपभोग, उत्पादन एवं विनिमय के क्षेत्रों में एकमात्र साधनों का दक्षतापूर्ण आवंटन हो। परंतु परेटो का सिद्धांत निम्न व्यक्तिपरक मान्यताओं पर आधारित है—

(i) "समाज" या "राज्य" की काल्पनिक इकाई या व्यक्तियों के किसी समूह की अपेक्षा हमारा संबंध समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों के कल्याण से है।

(ii) किसी व्यक्ति के कल्याण को प्रभावित करने वाले गैर-आर्थिक तत्वों की हम उपेक्षा कर देते हैं। इन तत्वों में हम बाह्यताओं को भी शामिल करते हैं।[1]

(iii) एक व्यक्ति ही अपने आर्थिक कल्याण का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है। इस संदर्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि परेटो की उपभोक्ता तथा उत्पादक की सार्वभौमता में पूर्ण आस्था है।

(iv) यदि साधनों या वस्तुओं के आवंटन में किसी भी परिवर्तन के फलस्वरूप किसी व्यक्ति के संतुष्टि-स्तर में वृद्धि होती हो, अथवा किसी वस्तु के उत्पादन का स्तर बढ़ने की संभावना हो, जबकि इस परिवर्तन के कारण किसी अन्य व्यक्ति के संतुष्टि-स्तर, अथवा किसी अन्य वस्तु के उत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता हो, तो ऐसे परिवर्तन से निश्चित तौर पर कुल आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी।

(v) उपभोग, उत्पादन या साधन के प्रयोग करने वाली आर्थिक इकाई का आकार इतना सूक्ष्म है कि वह स्वयं वस्तुओं व साधनों की कीमतों का निर्धारण करने में सक्षम नहीं है, तथा ये कीमतें इस इकाई के लिए मांग व पूर्ति के द्वारा (बाह्य रूप से) निर्धारित होती हैं। अन्य शब्दों में, हम सभी वस्तुओं व साधनों के बाजारों को पूर्ण प्रतियोगी बाजार मानते हैं। इसमें यह मान्यता भी निहित है कि प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादक या साधन के स्वामी को बाजार की परिस्थितियों (जैसे मांग, पूर्ति तथा प्रचलित कीमतों) का पूर्ण ज्ञान है। इस पूर्ण ज्ञान के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण निश्चितता के साथ निर्णय लेता है, तथा वह जितनी उपयोगिता (लाभ या आय) प्राप्त करने की अपेक्षा करता है, उतनी ही उपयोगिता (लाभ या आय) उसे वस्तुतः प्राप्त होती है। संक्षेप में, बाजार की पूर्ण प्रतियोगी परिस्थितियों के कारण व्यक्ति के प्रत्याशित तथा वास्तविक (*ex-ante and export*) कल्याण में कोई अंतर नहीं होता। चूंकि सभी व्यक्तियों का व्यवहार एक जैसा होता है, समूचे समाज के प्रत्या-

1. बाह्यताएं वे तत्त्व हैं जो किसी व्यक्ति के प्रयासों के बिना किसी बाहरी शक्ति के कारण उसके आर्थिक कल्याण में कमी कर सकते हैं या इसमें वृद्धि कर सकते हैं। इन बाह्यताओं के कारण एक व्यक्ति के आर्थिक कल्याण एवं किसी अन्य व्यक्ति, या किन्हीं अन्य व्यक्तियों के कल्याण में परस्पर निर्भरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। आगे बाह्यताओं की विस्तृत व्याख्या की गई है। वर्तमान संदर्भ में इतना बतला देना पर्याप्त होगा कि दो या अधिक व्यक्तियों के कल्याण में बाजार से बाहर की कोई अंतर्निर्भरता निहित नहीं है।

णित एव वास्तविक कल्याण म भी कोई अन्तर नही होता।

(vi) समाज के समस्त या सामाजिक कल्याण फलन $W=f(U_A, U_B, \ldots, U_N)$ है जिसम U_A, U_B आदि समाज के सदस्यों को प्राप्त उपयोगिता के स्तर हैं। स्पष्ट है, समाज का आर्थिक कल्याण उस दशा में अधिकतम होगा जब $U_A, U_B, \ldots, U_N$ के स्तर अधिकतम हो।

सुविधा के लिए परेटो ने समाज मे केवल दो ही उपभोक्ताओं—A व B को लिया। इसी प्रकार उन्होंने यह माना कि अर्थव्यवस्था मे केवल दो साधन (श्रम व पूँजी) हैं जिनके प्रयोग द्वारा दो वस्तुओं, X व Y का उत्पादन किया जाता है।

परेटो की इष्टतम शर्तें (Pareto-Optimality Conditions)

यह मानते हुए कि परेटो द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त मान्यताएं सही हैं, साधनों का वह आवटन परेटो-उत्तमावस्था (Pareto-optimul) कहलाती है जहा पर उत्पादन, उपभोग या वितरण की प्रचलित व्यवस्था को बदलने पर भी किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को प्राप्त उपयोगिता मे कमी लाए बिना किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी समूह को प्राप्त उपयोगिता मे वृद्धि करना सभव नही होता। इसके विपरीत, साधनो का वह आवटन परेटो उत्तमावस्था स भिन्न स्थिति (Pareto-nonoptimal) कहलाता है जहा एक या अधिक व्यक्तियों को प्राप्त लाभ या उप-योगिता मे वृद्धि हेतु साधनों का पुनरावटन किया जा सकता है, परतु इसम अन्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियो को प्राप्त उपयोगिता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही होता। अन्य शब्दो मे, किसी व्यवस्था को परेटो-उत्तमावस्था (इष्टतम व्यवस्था) केवल उसी दशा मे कहा जा सकता है जब व्यवस्था के प्रत्येक परिवर्तन के कारण समाज के कुल आर्थिक कल्याण मे कमी होने की सभावना हो, यानी व्यवस्था के परिवर्तन से कुछ लोगो को होने वाला लाभ अन्य व्यक्तियो को होने वाली हानि से कम हो।

परेटो ने उपभोग, उत्पादन तथा साधन के प्रयोगो से सबद्ध उत्तम या इष्टतम स्थितियों की प्राप्ति हेतु तीन सीमात शर्तें (marginal conditions) प्रस्तुत की। परतु आगे चलकर इनमे कुछ महत्वपूर्ण शर्तों का और समावेश किया गया। हम परेटो द्वारा प्रस्तुत कल्याणमूलक विश्लेषण से सबद्ध सीमात शर्तों की व्याख्या करने से पूर्व सभी सीमात शर्तों की सक्षिप्त सूची निम्न रूप मे प्रस्तुत कर सकते हैं—

(1) **विनिमय की इष्टतम शर्त**—उपभोग वस्तुओं के प्रत्येक युग्म की सीमात उपयोगिताओं का अनुपात अथवा सीमात प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy}) इन दोनो के सभी उपभोक्ताओ के लिए समान होनी चाहिए।

(2) **उत्पादन की इष्टतम शर्त**—तकनीकी सीमाओं के अतर्गत उत्पादन के साधनो के सीमात उत्पादन का अनुपात अथवा सीमात तकनीकी प्रतिस्थापन दर [illegible]े उद्योग की उन सभी फर्मों के लिए समान होनी चाहिए जो इन साधनो का [illegible]ोग करके समरूपी वस्तुओ का उत्पादन करती हैं। इसका यह भी अभिप्राय है कि [illegible]स्तुओ के मध्य सीमात उत्पाद रूपातरण दर समान होनी चाहिए।

परन्तु अब मान लीजिए समाज में ये दो ही व्यक्ति A व B हैं तथा इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं—X तथा Y की मात्राएं सीमित हैं। ऐसी स्थिति में हमारा मुख्य उद्देश्य यह निर्धारित करना होगा कि दी हुई X व Y की मात्राओं को A व B के मध्य किस प्रकार श्रेष्ठतम रूप में आवंटित करें। इसके पूर्व कि एजवर्थ आयताकार चित्र के माध्यम से हम इसकी प्रक्रिया को समझें, यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि चूंकि दोनों वस्तुओं की मात्रा दी हुई है, यदि A को इनकी मात्रा अधिक दी जाती है तो B को उपलब्ध मात्रा में कमी हो जाएगी। इसी प्रकार यदि B दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा प्राप्त करता है तो A को कम मात्रा प्राप्त होगी। अन्य शब्दों में, वस्तुओं की मात्रा यथावत् रहने पर एक व्यक्ति को अधिक सन्तुष्टि केवल उसी दशा में प्राप्त हो सकती है जबकि दूसरे व्यक्ति को प्राप्त सन्तुष्टि-स्तर में कमी हो।

चित्र 24 2 में हमने वस्तुतः चित्र 24 1 के पैनल (a) व पैनल (b) को मिला दिया है। दोनों में केवल यह अंतर है कि जहां A के लिए X तथा Y की
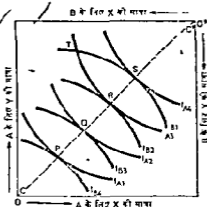
चित्र 24 2 एजवर्थ आयताकार चित्र तथा दो व्यक्तियों के मध्य विनिमय-साम्य

मात्राएं सामान्य अक्षों पर व्यक्त की गई हैं, B के लिए प्राप्य मात्राओं को विपरीत दिशा में देखना होगा (तीरों के निशान देखिए)।

चित्र में मूल बिंदु O पर A को X तथा Y की कोई मात्रा उपलब्ध नहीं होती परन्तु B को इनकी समस्त उपलब्ध मात्रा प्राप्त होने से उसका सन्तुष्टि-स्तर अधिकतम है। इसके विपरीत O' पर A को दोनों वस्तुओं की समूची मात्रा प्राप्त हो जाती है जबकि B को कुछ भी प्राप्त न होने के कारण उसका सन्तुष्टि-स्तर शून्य है।

दो वस्तुओं व दो व्यक्तियों के सन्दर्भ में विनिमय साम्य की स्थिति वहां होगी जहां दोनों व्यक्तियों के अनधिमान वक्र परस्पर स्पर्श करते हैं। चित्र 24 2 में ये बिंदु

P, Q, R, S हैं। इनमें से प्रत्येक बिंदु दोनों वस्तुओं के संदर्भ में दोनों व्यक्तियों की साम्य स्थिति को व्यक्त करता है, परंतु जैसे जैसे हम P से Q व फिर R व S की दिशा में बढ़ते हैं, A को प्राप्त सतुष्टि के स्तर में वृद्धि होगी, जबकि B का सतुष्टि-स्तर घटता जाएगा। इससे विपरीत दिशा में आने पर B का सतुष्टि-स्तर बढ़ेगा तथा A का सतुष्टि-स्तर घटता जाएगा।

एजवर्थ आयताकार चित्र में यदि हम O से लेकर O तक विभिन्न साम्य बिंदुओं को मिला दें तो हमें एक ऐसा वक्र CC प्राप्त होगा जिसके प्रत्येक बिंदु पर X तथा Y की निर्दिष्ट मात्रा का A व B के मध्य इष्टतम आवंटन होता है। इस संविदा वक्र (contract curve) कहा जाता है। संविदा वक्र का प्रत्येक बिंदु परेटो-उत्तमावस्था को प्रदर्शित करता है। अन्य शब्दों में, यदि A व B के मध्य X तथा Y निर्दिष्ट मात्राओं का पुनर्वितरण करें—यानी यदि हम संविदा वक्र से A व B को विचलित करके X व Y का विनिमय होने दें—तो कम से कम एक व्यक्ति को प्राप्त सतुष्टि-स्तर कम हो जाएगा जबकि दूसरे के सतुष्टि-स्तर पर कोई प्रभाव नहीं होगा अथवा इसमें होने वाला सुधार पहले व्यक्ति को हुई क्षति से कम होगा।

विनिमय की सीमांत शर्त (Marginal Condition for Exchange)

परेटो का कल्याणमूलक अर्थशास्त्र इस मूल मान्यता पर आधारित है कि वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा दी हुई है तथा इस मात्रा को समाज के लोगों के बीच (इष्टतम रूप में) वितरित किया जाना है। यह भी मान्यता ली जाती है कि समाज के सदस्यों को विभिन्न वस्तुओं का परस्पर विनिमय इस रूप में करने की पूर्ण स्वतंत्रता है कि उनमें से प्रत्येक को उसके उपभोग क्रम से अधिकतम उपयोगिता मिलती हो, तथा इसमें भिन्न उपभोग क्रम की प्राप्ति केवल किसी अन्य व्यक्ति को हानि पहुंचा कर ही संभव हो। इसीलिए, परेटो द्वारा प्रस्तुत विनिमय की सीमांत शर्त उस स्तर पर पूरी होगी जहां दो वस्तुओं के सभी उपभोक्ताओं के लिए इनकी सीमांत प्रतिस्थापन दरें समान हों। अब हम इस शर्त की व्याख्या करेंगे।

यह मानते हुए कि X तथा Y वस्तुओं की मात्रा दी हुई है तथा यह भी कि प्रत्येक (g^{th}) व्यक्ति का उपयोगिता फलन X तथा Y की मात्राओं के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के सतुष्टि स्तरों से भी प्रभावित होता है, हम इस (g^{th}) व्यक्ति के उपयोगिता फलन को निम्न रूप में कर सकते हैं—

$$U^g = f^g\left(X_i^g,\ Y_j^g,\ L_j^g\right) \qquad \begin{bmatrix} i=1,2,3, & ,n \\ j=1,2,3, & ,m \\ g=1,2,3, & ,s \end{bmatrix} \qquad \ldots(24.1)$$

उपरोक्त फलन में L_j उस g^{th} उपभोक्ता (उपभोक्ताओं की संख्या S है) के नियंत्रण में विद्यमान उत्पादन के साधन हैं, जबकि X_i एवं Y_j वस्तुओं की मात्रा के प्रतीक हैं। चूंकि g^{th} उपभोक्ताओं को L_j, X_i, Y_j तथा अन्य सभी उपभोक्ताओं के

उपयोगिता फलनों के सदर्भ में स्वयं के उपयोगिता फलन का अधिकतम मूल्य प्राप्त करना है, हम उसके सीमाबद्ध उद्देश्य फलन को निम्न रूप म प्रस्तुत कर सकते हैं—

$$X_i^1 + X_i^2 + ... + X_i^s = X_i^0 \quad ...(24\ 2)$$

$$Y_i^1 + Y_i^2 + \cdots + Y_i^s = Y_i^0 \quad ...(24\ 3)$$

$$L_j^1 + L_j^2 + \cdots + L_j^s = L_j^0 \quad ...(24\ 4)$$

तथा $$f^r\left(X_i^r,\ Y_i^r;\ L_j^r\right) = f^{r^\circ} \quad ...(24\ 5)$$

उपरोक्त समीकरण (24 5) मे f^{r° हमारे सदर्भ उपभोक्ता (g^{th}) के अतिरिक्त शेष सभी उपभोक्ताओ के उपयोगिता फलन हैं जो निर्दिष्ट उपयोगिता स्तर को प्रदर्शित करते हैं। समीकरण (24 2) म (24 4) तक X, Y तथा साधन के निर्दिष्ट स्तर को प्रस्तुत करत हैं। अब हम लैग्रान्जी फलन के आधार पर विनिमय की इष्टतम शर्तें (g^{th} तथा अन्य उपभोक्ताओ के सदर्भ मे) का निरूपण करेंगे।

$$\left.\begin{aligned} H = {} & f^g\left(X_i^g,\ Y_i^g,\ L_j^g\right) \\ & -\lambda\left[f^r\left(X_i^r,\ Y_i^r,\ L_j^r\right) - f^{r^\circ}\right] \\ & -\mu\left[\left(X_i^1 + X_i^2 + \cdots + X_i^s\right) - X_i^0\right] \\ & -\phi\left[Y_i^1 + Y_i^2 + \cdots + Y_i^s\right) - Y_i^0\right] \\ & -\Omega_j\left[L_j^1 + L_j^2 + \quad + L_j^s\right) - L_j^0\right] \end{aligned}\right\} ..(24\ 6)$$

उपरोक्त समीकरण में λ, μ, ϕ तथा Ω_j लैग्रान्जी गुणक हैं। X_i, Y_i तथा L_j के सदर्भ मे उपर्युक्त आंशिक अवकलज प्राप्त करके उन्हे शून्य के समान रखने पर अधिकतम उपयोगिता हेतु निम्न आवश्यक शर्तें प्राप्त हो जाती हैं—

$$\frac{\partial f^g / \partial X_i^g}{\partial f^g / \partial Y_i^g} = \frac{\partial f^r / \partial X_i^r}{\partial f^r / \partial Y_i^r} \quad ...(24\ 7)$$

तथा

$$\frac{\cdot\ \partial L_j^g}{\partial f^g / \partial L_k^g} = \frac{\partial f^r / \partial L_j^r}{\partial f^r / \partial L_k^r} \quad ...(24\ 8)$$

(j तथा $k = 1, 2, \ldots m,\ j \neq k$)

समीकरण (24 7) को दो उपभोक्ताओ A तथा B (जिनके लिए कमश g तथा r के सकेत दिए गए हैं) के लिए दो वस्तुओं X तथा Y की सीमात प्रतिस्थापन दरें समान होनी चाहिए। जैसा कि हम जानते हैं, किसी भी व्यक्ति के लिए सीमात प्रतिस्थापन दर का बोध उसके अनधिमान मानचित्र मे प्रस्तुत अनधिमान वक्र के ढलान से होता है। हम यह भी जानते हैं कि अनधिमान वक्र का ढलान या सीमात प्रतिस्थापन दर वस्तुत उस व्यक्ति के लिए X तथा Y की सीमात उपयोगिताओं का अनुपात ही है। इस दृष्टि से समीकरण (24 7) को सरल रूप मे इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$\left.\begin{array}{l}\frac{MU_x}{MU_y}(A) = \frac{MU_x}{MU_y}(B) \\ \text{या } MRS_{xy}(A) = MRS_{xy}(B)\end{array}\right\} \quad \cdots(24\ 9)$$

इसी प्रकार समीकरण (24 8) से यह ज्ञात होता है कि किसी व्यक्ति के लिए दो साधनो (L_j तथा L_k) के मध्य सीमात प्रतिस्थापन दर मे समानता होनी चाहिए। चूकि समीकरण (24 5) मे प्रस्तुत साधन सीमा के अनत स्तर हो सकते हैं, इष्टतम उपयोगिता सयोगो की सख्या भी अनत हो सकती है। यही कारण है कि चित्र (24.2) मे प्रस्तुत सविदा वक्र CC' पर अनत इष्टतम बिंदु हो सकते हैं, जिनमे से प्रत्येक को परेटो इष्टतम कहा जाएगा क्योकि उस पर समीकरण 24 9 मे प्रस्तुत विनिमय की साम्य शर्त पूरी होती है।

सविदा वक्र पर ही प्रत्येक बिंदु परेटो उत्तमावस्था या परेटो इष्टतम क्यो है, यह जानने हेतु चित्र 24 2 में बिंदु T को देखिए। इस बिंदु पर A तथा B के अनधिमान वक्र परस्पर काटते हैं परतु स्पर्श नही करते, और इसलिए T पर परेटो उत्तमावस्था नही हो सकती। ऐसी स्थिति मे दोनो उपभोक्ताओ को सविदा वक्र पर ले आने से कुल कल्याण (कुल उपयोगिता) मे वृद्धि हो जाएगी। मान लीजिए, A व B सविदा वक्र के बिंदु S पर आने के लिए सहमत हो जाते हैं। ऐसी दशा मे B तो उसके अनधिमान वक्र I_{B_1} पर बना रहता है, परतु A को प्राप्त उपयोगिता (उसके अनधिमान वक्र I_{A_3} से I_{A_4} पर जाने के कारण) मे वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार उत्तमावस्था से भिन्न स्थिति से हटकर परेटो उत्तमावस्था मे आने पर B का आर्थिक कल्याण यथावत् रहते हुए भी A के आर्थिक कल्याण मे वृद्धि की जा सकती है।

इसी प्रकार यदि A तथा B बिंदु T से हटकर R पर आने को सहमत हो तो A का सतुष्टि-स्तर (I_{A_3} पर) यथावत् रहेगा, परतु I_{B_1} से हटकर J_{B_2} पर आने के कारण B का सतुष्टि-स्तर बढ जाएगा। यदि इसके विपरीत सविदा वक्र के बिंदुओ R व S के बीच कही दोनो को लाया जाए तो A व B दोनो ही के सतुष्टि स्तर मे सुधार हो जायेगा। सक्षेप मे, सविदा वक्र पर स्थित प्रत्येक बिंदु पर कुल कल्याण या उपयोगिता का स्तर अन्य किसी भी बिंदु पर प्राप्त होने वाली उपयोगिता के स्तर की अपेक्षा अधिक होता है। इसीलिए सविदा वक्र से बाहर के किसी भी बिंदु से उपभोक्ताओ की स्थिति को बदल कर उन्हें सविदा वक्र पर लाने से दोनो उपभोक्ताओ

को या कम से कम एक उपभोक्ता के कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, संविदा वक्र के प्रत्येक बिंदु पर विनिमय-साम्य की शर्त पूरी होती है क्योंकि समीकरण (24 9) के अनुसार इसके प्रत्येक बिंदु पर A व B के लिए X तथा Y की सीमांत प्रतिस्थापन दरें समान हैं। अस्तु, उपभोग के क्षेत्र में अधिकतम कल्याण के लिए दो लक्षण विद्यमान होने चाहिए—

(i) निर्दिष्ट वितरण व्यवस्था के अंतर्गत परेटो उत्तमावस्था वह है जिसमें परिवर्तन करने पर किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को क्षति पहुंचाए बिना किसी भी व्यक्ति के कल्याण (उपयोगिता) में वृद्धि नहीं की जा सकती।

(ii) ऐसा प्रत्येक परिवर्तन श्रेष्ठतर माना जाता है जिसके द्वारा बिना किसी व्यक्ति को क्षति पहुंचाए एक या अधिक व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि की जा सकती हो।

इनमें से प्रथम लक्षण हमारे उपरोक्त तर्क की पुष्टि करता है कि संविदा-वक्र के प्रत्येक बिंदु पर परेटो उत्तमावस्था होती है। परन्तु द्वितीय लक्षण का अर्थ यह है कि आर्थिक कल्याण के संदर्भ में केवल उसी परिवर्तन को वांछनीय माना जा सकता है जिसके द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को क्षति पहुंचाए बिना कम से कम एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि होती हो।

संविदा वक्र से उपयोगिता संभावना सीमा का निरूपण[2]
(From the Contract Curve to the Utility Possibility Frontier)

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि संविदा वक्र विभिन्न परेटो उत्तमावस्थाओं या इष्टतम स्थितियों का एक बिंदु-पथ है, तथा यह दो वस्तुओं की दो व्यक्तियों को मिलान वाली इष्टतम मात्राओं को प्रदर्शित करता है। इस विनिमय साम्य स्थिति को हम सुविधापूर्वक उपयोगिता के संदर्भ में परिवर्तित कर सकते हैं जिसे "उपयोगिता-संभावना सीमा" की संज्ञा दी जाती है।

हमें यह नहीं भुला देना चाहिए कि उपभोक्ता के अनधिमान मानचित्र में प्रदर्शित प्रत्येक अनधिमान वक्र उपयोगिता का एक क्रमसूचक माप प्रदान करता है तथा ऊंचे अनधिमान वक्र पर अधिक संतुष्टि प्राप्त होती है। हम चित्र 24 2 को पुनः प्रस्तुत करके इस तथ्य की पुष्टि करेंगे। चित्र 24 3 के पैनल (a) में अनधिमान वक्रों I_{a1}, I_{a}, I_{a3} तथा I_{a4} को चार काल्पनिक अंक, क्रमशः 100, 125, तथा 300 दिए गए हैं जो A द्वारा प्राप्त संतुष्टि या विभिन्न उपयोगिता-स्तरों को व्यक्त करते

2 विस्तृत विवेचना हेतु देखिए (i) C E Ferguson, 'Microeconomic Theory (Revised Edition, 1969), pp 435-436 (ii) W J Baumol 'Economic Theory and Operations Analysis (Third Edition 1973), pp 400 402 तथा (iii) S K Nath, 'A Reappraisal of Welfare Economics' (Routledge Kegan Paul, London, 1969), pp 20 23

है। इसी प्रकार B के अनधिमान वक्रों को क्रमशः 80 100, 150 तथा 200 के काल्पनिक अंक प्रदान किए गए है।[3]
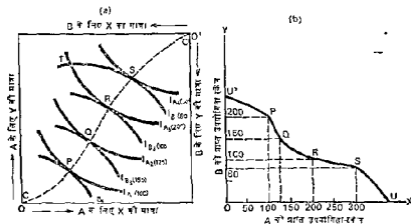
चित्र 24 3 उपयोगिता-सम्भावना सीमा का निरूपण

चित्र 24 3 के पैनल (b) म उपयोगिता सम्भावना सीमा प्रदर्शित की गई है। पैनल (a) में संविदा वक्र पर स्थित दोनों उपभोक्ताओं की विनिमय-साम्य स्थितियों P, Q, R व S के आधार पर ही इस उपयोगिता-सम्भावना सीमा का निरूपण पैनल (b) में किया गया है। इसमें यह स्पष्ट होता है कि उपयोगिता-सम्भावना सीमा के बिंदु U पर B को X व Y की सभी मात्राएं प्राप्त होती हैं जबकि A को प्राप्त उपयोगिता इस स्तर पर शून्य है। जैसे-जैसे A को X तथा Y की मात्राएं प्रदान की जाती है, B को प्राप्त वस्तुओं की मात्रा कम होती जाती है तथा वह P U U वक्र पर नीचे की ओर आता जाता है। अंत में U' पर पहुचने पर B को प्राप्त उपयोगिता शून्य हो जाती है तथा X व Y की समूची मात्रा A को प्राप्त हो जाती है।

जैसा कि पूर्व में बतलाया जा चुका है, संविदा वक्र (CC) के माध्यम से भी हम इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। जैसे-जैसे हम पैनल (a) में साम्य बिंदु P से Q, Q से R व फिर S तथा अत में O' की ओर बढते हैं, A को प्राप्त उपयोगिता का स्तर

3 पाठकों को यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि ये अंक पूर्णतया काल्पनिक हैं तथा इनके आधार पर अन्तर्वैयक्तिक उपयोगिता का सही व सुस्पष्ट विश्लेषण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए यह कहना सही नहीं है कि B को प्राप्त 200 की उपयोगिता A को प्राप्त उपयोगिता से अधिक है। फिर भी B के लिए 85 का अंक 80 की अपेक्षा अधिक उपयोगिता देता है अथवा A के लिए 101 का अंक 100 की अपेक्षा अधिक उपयोगिता प्रदान करता है।

बढ़ता जाता है जबकि B अपने निम्नतम अनधिमान वक्र पर आता जाता है, और लिए उसे प्राप्त उपयोगिता का स्तर कम होता जाता है।

इस माडल मे अब तक यह मान्यता ली गई थी कि अर्थव्यवस्था में सा की मात्रा दी हुई है और इसलिए X तथा Y की अधिकतम सभावित मात्राएं एज आयताकार चित्र के अनुरूप ही होती हैं। अब कल्पना कीजिए, अर्थव्यवस्था को उप साधनों की मात्रा म वृद्धि हो जाती है। स्पष्ट है इसके फलस्वरूप A व B को उप होने वाली X तथा Y की अधिकतम प्राप्य मात्राएं भी बढ़ जाती हैं, तथा इसके स्वरूप उपयोगिता सभावना वक्र का विवर्तन हो जाता है। इस स्थिति में समा दोनो व्यक्तियो के आर्थिक कल्याण (प्राप्त उपयोगिता) म वृद्धि हो जाती है स्थैतिक सदर्भ म (साधनो के यथावत रहते हुए) एक को अधिक उपयोगिता केवल दशा मे प्राप्त हो सकती है जबकि दूसरे व्यक्ति को प्राप्त उपयोगिता म कमी को ज

साधन-प्रतिस्थापन की सीमात शर्त
(Marginal Condition for Factor Substitution)

अध्याय 8 मे हम यह पढ चुके हैं कि पूजी व श्रम की मात्राओं, आदा गुणांकों (input-output coefficients) तथा साधनों की कीमतों के दिए होने हम किसी वस्तु की निर्दिष्ट मात्रा के उत्पादन म न्यूनतम लागत वाला साधन-स (least-cost combination of inputs) सरलतापूर्वक ज्ञात कर सकते हैं। फर्म को हम दक्ष फर्म की सज्ञा देते हैं जो न्यूनतम लागत पर वस्तु का उत्पादन मे सक्षम हो। यह भी हम पढ चुके हैं कि पूजी व श्रम का न्यूनतम लागत स सयोग प्राप्त होने तक फर्म किसी एक साधन का प्रतिस्थापन करती रहेगी। अपेक्षाकृत सस्ते साधन का प्रयोग करने हेतु ही (अपेक्षाकृत) महगे साधन का स्थापन किया जाता है। अतत व्यष्टिगत इष्टतम साधन सयोग वहा प्राप्त हो जहा श्रम व पूजी के सीमात उत्पादनों का अनुपात मजदूरी (w) तथा ब्याज (r) दरो के अनुपात के समान हो। अस्तु—

$$\left.\begin{aligned}\frac{\partial X}{\partial L}\Big/\frac{\partial X}{\partial K} &= \frac{w}{r}\\ \text{या}\quad \frac{MP_L}{MP_K} &= \frac{w}{r}\end{aligned}\right\} \text{X के उत्पादन मे}$$

$$\text{इसी प्रकार}\ \frac{MPL}{MPK} = \frac{w}{r} \qquad \text{Y के उत्पादन मे} \qquad \ldots (24$$

अध्याय 8 मे हमने यह भी पढा था कि किसी समोत्पाद वक्र (isoqua का ढलान वस्तुत (X या Y) के उत्पादन मे दोनो साधनों के सीमात उत्पादन

अनुपात को ही प्रदर्शित करता है। X या Y का उत्पादन न्यूनतम लागत पर तभी होगा जब समीकरण (24 10) में प्रस्तुत समानता या आवश्यक शर्त पूरी होती हो।

यदि अर्थव्यवस्था में एकसाथ दो या अधिक वस्तुओं के उत्पादन में श्रम तथा पूंजी का प्रयोग किया जाता हो तो साधनों का इष्टतम संयोग कहां स्थित होगा? परेटो ने इस प्रश्न का उत्तर निम्न प्रकार दिया—

"(परेटो) उत्तमावस्था की प्राप्ति हेतु दो साधनों की सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर (marginal rate of technical substitution) उन सभी उत्पादकों के संदर्भ में समान होनी चाहिए जो इन साधनों का प्रयोग करते हैं।"*

यह हम जानते हैं कि समोत्पाद वक्र के ढलान को ही सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर या श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादनों का अनुपात माना जाता है। वस्तु की निर्दिष्ट मात्रा के उत्पादन हेतु साधनों के संयोग में उस समय तक परिवर्तन करना पड़ेगा जब तक सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर तथा मजदूरी व ब्याज की दरों के अनुपात में समानता नहीं हो जाती। इसी स्तर पर समीकरण (24 10) के अनुसार X की निर्दिष्ट मात्रा को न्यूनतम लागत पर तैयार किया जा सकता है।

अब मान लीजिए फर्म (या समाज) के पास उपलब्ध श्रम व पूंजी की मात्रा दी हुई है। यदि फर्म X की उतनी ही मात्रा का उत्पादन करना चाहती है तो उसका उद्देश्य श्रम व पूंजी के न्यूनतम लागत वाले संयोग द्वारा इस मात्रा का उत्पादन करना होगा। परंतु यदि यह X की अधिक मात्रा का उत्पादन करना चाहे तो उसे श्रम या पूंजी अथवा दोनों की अधिक मात्रा जुटानी होगी। चूंकि साधनों की मात्रा सीमित है, अतः X में एक या दोनों साधनों का अधिक प्रयोग तभी किया जा सकता है जब Y के उत्पादन में इनका प्रयोग कम हो। अस्तु, X का उत्पादन बढ़ाने हेतु उसे Y का उत्पादन कम करना होगा।

यह मानते हुए कि अर्थव्यवस्था में केवल दो वस्तुओं का ही श्रम व पूंजी के माध्यम से उत्पादन किया जा सकता है, तथा यह कि श्रम व पूंजी की मात्राएं दी हुई हैं, हमने एजवर्थ-आयताकार चित्र के माध्यम से चित्र 24.4 में उत्पादन-क्षेत्र में परेटो उत्तमावस्था को प्रस्तुत किया है।

चित्र 24.4 में दो बातें एक ही साथ स्पष्ट की गई हैं। प्रथम यह कि दोनों साधनों का X तथा Y के उत्पादन में इष्टतम प्रयोग तभी होगा जब इनके उत्पादन में श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादन समान हों। अन्य शब्दों में, साधनों के जिस प्रयोग-स्तर पर X के समोत्पाद वक्र एवं Y के समोत्पाद वक्र का ढलान समान हो, अथवा ये समोत्पाद वक्र परस्पर स्पर्श करें। उसी स्तर पर उत्पादन के क्षेत्र में परेटो उत्तमावस्था (Pareto optimality) होगी। यदि समोत्पाद वक्रों का ढलान समान

$$* \ MRTS_{KL}(X) = MRTS_{KL}(Y) = \ldots\ldots = MRTS_{KL}(N) = \frac{w}{r}$$

नहीं है (यानी MRTS$_{KL}$ for X ≠ MRTS$_{KL}$ for Y) तो एक वस्तु के उत्पादन में तब तक साधन की मात्रा को कम करके दूसरी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त किया जाएगा जब तक कि सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दरें समान नहीं हो जाती। उदाहरण के लिए, चित्र 24.4 में N बिंदु पर समोत्पाद वक्र I_{X_3}
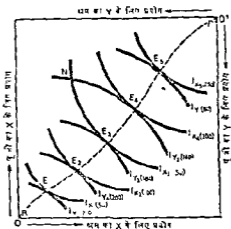
चित्र 24.4 साधनों का प्रतिस्थापन तथा उत्पादन में परेटो उत्तमावस्था

(जहां X की 150 इकाइयों का उत्पादन किया जाता है) समोत्पाद वक्र I_{Y_2} (जिस पर Y की 140 इकाइयों का उत्पादन होता है) को काटता है, परन्तु स्पर्श नहीं करता। N को परेटो उत्तमावस्था नहीं माना जा सकता क्योंकि यदि अर्थव्यवस्था N से हट कर E_4 पर आती है तो Y का उत्पादन 140 रहने पर भी X का उत्पादन 200 इकाई हो जाता है। इसके विपरीत यदि अर्थव्यवस्था को E_3 पर लाया जाता है तो X का उत्पादन 150 इकाई रहने पर भी Y का उत्पादन 140 से बढ़कर 180 इकाई हो जाता है। संक्षेप में, परेटो उत्तमावस्था सदैव अन्य किसी भी अवस्था (Pareto-non optimal) से बेहतर होती है क्योंकि उसमें कम से कम एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। अन्य किसी भी अवस्था से परेटो उत्तमावस्था में लाने हेतु हमें साधनों का पुनराबंटन करना होता है।

चित्र 24.4 से दूसरी जो बात हमें ज्ञात होती है वह यह है कि यदि श्रम व पूंजी की मात्राएं दी हुई हों तो एक वस्तु (मान लीजिए X) का उत्पादन बढ़ाने हेतु हमें दूसरी वस्तु (Y) से साधनों को हटाकर प्रथम वस्तु में प्रयुक्त करने होंगे। यही बात हम उत्पादन संभावना सीमा (Production Possibility Frontier या PPF) के रूप में पढ़ चुके हैं। वस्तुतः उत्पादन संभावना सीमा या वक्र का निरूपण आगे हमने चित्र 24.4 के आधार पर ही किया है (देखिए चित्र 24.5)।

अस्तु, X तथा Y के समोत्पाद वक्रों के स्पर्श बिंदुओं से हम साधनों के प्रयोग की इष्टतम स्थितियों या परेटो उत्तमावस्थाओं का बोध होता है। यदि हम चाहें तो दो से अधिक वस्तुओं के संदर्भ में भी यह तर्क दे सकते हैं कि श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादनों का अनुपात सभी वस्तुओं के संदर्भ में समान होने पर ही उत्पादन के क्षेत्र में साधनों के दक्षतम या इष्टतम प्रयोग की स्थिति मानी जाएगी। चित्र 24.4 में दो वस्तुओं (X तथा Y) के संदर्भ में पांच परेटो उत्तमावस्थाओं का प्रदर्शित किया गया है (E_1, E_2, E_3, E_4 व E_5)। इन सभी के बिंदु पथ (locus) यानी pp को दक्षता वक्र (Efficiency curve) साधन प्रतिस्थापन का संविदा वक्र कहा जा सकता है। दक्षता वक्र के प्रत्येक बिंदु को परेटो उत्तमावस्था माना जाता है क्योंकि इसके प्रत्येक बिंदु पर श्रम व पूंजी के सीमांत उत्पादनों का अनुपात समान है।

यदि अर्थव्यवस्था में m साधनों के प्रयोग द्वारा n वस्तुओं का उत्पादन किया जाता हो तो साधनों के दक्षतम प्रयोग हेतु समोत्पाद वक्र विश्लेषण अनुपयुक्त रहेगा। मान लीजिए, प्रत्येक वस्तु के उत्पादन फलन का स्वरूप इस प्रकार है—

$$X_i = \phi \quad (L_{ji}) \begin{bmatrix} j=1, 2 & m \\ i=1, 2 & n \end{bmatrix} \qquad (24.11)$$

समीकरण (24.11) में साधन के लिए L_j का प्रयोग किया गया है जिसका प्रयोग i^{th} वस्तु के उत्पादन हेतु किया जा रहा है। हम ऊपर यह पढ़ चुके हैं कि साधनों की मात्रा सीमित (L_{jo}) है। अस्तु —

$$L_{j_1} + L_{j_2} + \quad + L_{jn} = L_{jo} \qquad (24.12)$$

यही नहीं, X_i का उत्पादन अधिकतम करने हेतु हम यह मान्यता लेते हैं कि अन्य सभी वस्तुओं (X_h) का उत्पादन अपरिवर्तित रहता है अर्थात

$$\phi_h \; (L_{jh}) = X^o_h (h=1, 2 \quad n, \; h \neq i) \qquad (24.13)$$

हम समीकरण (24.12) व (24.13) के अंतर्गत X_i के अधिकतम उत्पादन हेतु लैग्रान्जी फलन का प्रयोग करते हैं।

$$Q = \phi_i (L_{ji}) - \propto [\phi_h (L_{jh}) - X^o_h] r [(L_{j_1} + L_{j_2} + \; . \; . \; .. + L_{jn}) - L_{jo}] \qquad (24.14)$$

$(i \text{ तथा } h = 1, 2, \; , n, \; i \neq h) \; (j = 1, 2, \; , m)$

पूर्व की भांति इस फलन के उपयुक्त आंशिक अवकलज प्राप्त करके तथा उन्हें शून्य के समान रखकर हम अधिकतम उत्पादन की समस्या का निम्न समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं—

$$\frac{\partial X_i / \partial L_{ji}}{\partial X / \partial L_{ki}} = \frac{\partial X_h / \partial L_{jh}}{\partial X_h / \partial L_{kh}} \qquad (24.15)$$

$$\left. \begin{array}{l} i \text{ तथा } h = 1, 2, \; , n \; , \; i \neq h \\ j \text{ तथा } k = 1, 2, \; , m \; , \; j \neq k \end{array} \right\}$$

समीकरण 24.15 में यदि हम L_j को श्रम व L_k को पूंजी मान लें तथा

X_1 को X व X_h को Y मान लें तो ऊपर प्रस्तुत दो-साधन व दो-वस्तुओं वाला उदाहरण ही हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। जैसे—

$$\frac{MP_L}{MP_K}(X) = \frac{MP_L}{MP_K}(Y)$$

परन्तु दो से अधिक वस्तुओं तथा दो से अधिक साधनों के संदर्भ में हम समीकरण (24 15) में प्रस्तुत प्रत्येक वस्तु X_i (i=1, 2,3, ,n) के उत्पादन में प्रत्येक साधन L_j (j=1, 2, 3, .. ,m) के सीमांत उत्पादन को प्रविष्ट करेंगे।

यदि समीकरण (24 15) में प्रस्तुत सीमांत शर्तें पूरी न हो तो X_i या X_h का उत्पादन बढ़ाने हेतु दूसरी वस्तु का उत्पादन कम करना आवश्यक नहीं होगा।

संक्षेप में, दक्षता वक्र (efficiency curve) के प्रत्येक बिंदु पर साधनों का इष्टतम उपयोग होता है, यानी वस्तुओं का उत्पादन न्यूनतम लागत पर किया जाता है। यही कारण है कि दक्षता वक्र पर समाज का कुल कल्याण (उत्पादन में) अधिकतम होता है तथा इससे विचलित होने पर आर्थिक कल्याण में कमी आ जाती है। इस वक्र के R बिंदु पर अर्थव्यवस्था को उपलब्ध सभी साधन Y के उत्पादन हेतु प्रयुक्त किए जाते हैं। यदि अर्थव्यवस्था X का उत्पादन करना चाहती है तो साधनों को Y के उत्पादन से हटाकर X में प्रयुक्त करना होगा। इसके बाद जैसे-जैसे X का उत्पादन बढ़ाया जाता है, Y के उत्पादन में कमी होती जाती है और अंत में R पर केवल X का ही उत्पादन किया जाता है। सबसे प्रमुख बात इस विश्लेषण में यह है कि दक्षता वक्र के भिन्न-भिन्न बिंदुओं पर श्रम व पूंजी के अनुपात समान नहीं होते।

अब हम चित्र 24.4 के आधार पर उत्पादन संभावना सीमा (production possibility frontier) का निरूपण करेंगे। हम चित्र 24.4 के साम्य बिंदु E_1 से प्रारंभ करेंगे जिस पर अर्थव्यवस्था में X की 50 तथा Y की 210 इकाइयों का उत्पादन होता है। चरम स्थिति में Y की 220 व X की शून्य इकाइयों का उत्पादन होता है। E_1 से E_2 पर जाने पर X का उत्पादन 50 से बढ़कर 100 तथा Y का उत्पादन 210 से घटकर 200 रह जाता है। फिर E_3 पर Y का उत्पादन 200 से घटाकर 180 करने पर ही X का उत्पादन 100 से बढ़ाकर 150 इकाई किया जा सकता है। अस्तु, जैसे-जैसे दक्षता वक्र पर R′ की दिशा में जाते हैं, Y का उत्पादन घटता जाता है तथा X का उत्पादन बढ़ता जाता है। चित्र 24.5 में हमने इन्हीं आंकड़ों के आधार पर उत्पादन संभावना वक्र या सीमा को निरूपित किया है जिसमें Y^* बिंदु पर अर्थव्यवस्था समस्त उपलब्ध साधनों को Y के उत्पादन हेतु प्रयुक्त कर देती है जबकि X^* पर समस्त साधनों का प्रयोग X के उत्पादन हेतु किया जाता है। वक्र के अन्य बिंदुओं पर (जैसे E_1, E_2, E_3, E_4, E_5) X तथा Y दोनों की मात्राओं का इसी मान्यता के आधार पर उत्पादन किया जाता है कि एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाने हेतु दूसरी वस्तु के उत्पादन में कमी करनी होगी। चूंकि उत्पादन संभावना वक्र का निरूपण दक्षता वक्र के आधार पर किया गया है, इस पर स्थित प्रत्येक बिंदु साधनों के इष्टतम प्रयोग या परेटो उत्तमावस्था को व्यक्त करता है।

जैसा कि पीछे बतलाया गया था, चित्र 24.5 में प्रस्तुत उत्पादन संभावना वक्र $X^* Y^*$ का निरूपण चित्र 24.4 के दक्षता वक्र RR के आधार पर ही किया गया है। परंतु हमने यह भी देखा है कि उत्पादन संभावना वक्र के सभी बिंदु परेटो उत्तमावस्था को प्रदर्शित करते हैं। वस्तुत इस वक्र के किस बिंदु पर साधनों का
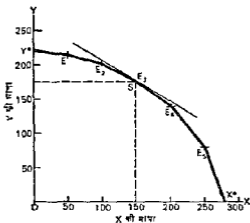
चित्र 24.5 उत्पादन संभावना सीमा का निरूपण

आबंटन किया जाएगा, यह उपरोक्त विवरण से स्पष्ट नहीं होता। इसके लिए निम्न विवरण उपयोगी रहेगा।

वस्तुओं के प्रतिस्थापन हेतु सीमांत शर्तें
(Marginal Conditions for Product Substitution)

यह जानते हुए कि साधनों की कुल मात्रा तथा आदा प्रदा गुणांक दिए हुए हैं हम उत्पादन संभावना वक्र के माध्यम से यह बतला सकते हैं कि अर्थव्यवस्था में किस प्रकार X, Y अथवा दोनों वस्तुओं का उत्पादन दक्ष रूप में किया जा सकता है। परंतु हम यह स्पष्टत देख चुके हैं कि X का उत्पादन बढ़ाने हेतु हमें Y के उत्पादन में कमी करनी होती है। इसीलिए X के रूप में Y की सीमांत रूपांतरण दर (marginal rate of product transformation) यानी उत्पादन संभावना वक्र का ढलान ऋणात्मक होता है $\left(\frac{dY}{dX} < 0\right)$। अध्याय 11 में हम यह पढ़ चुके हैं कि सीमांत रूपांतरण दर को X तथा Y की सीमांत (उत्पादन) लागतों का अनुपात भी माना जाता है। अस्तु उत्पादन संभावना वक्र के ढलान या सीमांत रूपांतरण दर को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

$$-\frac{dY}{dX} = \frac{\partial C/\partial X}{\partial C/\partial Y} \qquad (24.16)$$

हम अध्याय 11 में यह भी पढ़ चुके हैं कि सामान्य तौर पर (द्वितीय अवस्था में) वस्तु का सीमांत लागत वक्र धनात्मक ढलानयुक्त (positively sloped) होता है, जिसका अर्थ यह है कि जैसे-जैसे X के उत्पादन में वृद्धि तथा Y के उत्पादन में कमी की जाती है, वैसे-वैसे X की सीमांत लागत में वृद्धि तथा Y की सीमांत लागत में कमी होने के कारण सीमांत लागतों के अनुपात यानी उत्पादन संभावना वक्र के ढलान में वृद्धि होती जाती है। चित्र 24 5 में प्रस्तुत वक्र X* Y* का ढलान इसीलिए बढ़ रहा है, तथा इसी कारण उत्पादन संभावना वक्र सामान्य तौर पर मूल बिंदु से नतोदर (concave) होते हैं।

प्रश्न है, Y का X में रूपांतरण किस सीमा तक होगा? अर्थात् वस्तुतः अर्थव्यवस्था X तथा Y के कौन से संयोग का उत्पादन करेगी? जैसाकि हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं, परेटो के कल्याणमूलक अर्थशास्त्र में वस्तु तथा साधन के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता होती है। हम यह भी जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत प्रत्येक वस्तु की कीमत उसकी सीमांत लागत के समान होनी चाहिए ($P_x = MC_x$ तथा $P_y = MC_y$), क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत तथा सीमांत आगम में व्यष्टिगत स्तर पर कोई अंतर नहीं होता। अस्तु, बाह्य रूप से निर्धारित कीमतों के संदर्भ में इष्टतम स्थिति वहां होगी जहां निम्न शर्त पूरी होती है—

$$-\frac{dY}{dX} = \frac{\partial C/\partial X}{\partial C/\partial Y} = \frac{P_x}{P_y} \quad .. (24\ 17)$$

समीकरण (24 17) अर्थव्यवस्था के लिए दो वस्तुओं के इष्टतम संयोग (optimum product mix) की शर्त प्रस्तुत करता है। चित्र 24 5 में यह शर्त S बिंदु पर पूरी होती है जहां उत्पादन संभावना वक्र का ढलान (सीमांत लागतों का अनुपात) सम-आगम रेखा के ढलान (कीमतों के अनुपात) के समान है। इस विवरण के आधार पर हम परेटो की निम्न सीमांत शर्त प्रस्तुत कर सकते हैं —

"वस्तुओं के इष्टतम संयोग के संदर्भ में परेटो उत्तमावस्था के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन के क्षेत्र में सीमांत उत्पाद रूपांतरण दर वस्तुओं की कीमतों के अनुपात तथा साथ ही उपभोग के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति के लिए दोनों वस्तुओं की सीमांत प्रतिस्थापन दर के समान हो।" इस शर्त की व्याख्या अगले अनुभाग में की गई है।

यदि अर्थव्यवस्था के पास उपलब्ध साधनों (श्रम व पूंजी) में वृद्धि हो जाए तो उत्पादन संभावना वक्र में ऊपर की ओर विवर्तन होगा और इसके फलस्वरूप वस्तुओं की कीमतें यथावत् रहते हुए, उपभोक्ताओं व उत्पादकों को उपलब्ध दोनों वस्तुओं के इष्टतम संयोग का स्तर भी बढ़ जाएगा।

24 3 सामान्य परेटो उत्तमावस्था
(Pareto Optimality in General)

पिछले अध्याय में प्रतिपादित सामान्य आर्थिक साम्य की अवधारणा इस

मान्यता पर आधारित थी कि उपभोग, उत्पादन तथा विनिमय में एकसाथ साम्य की प्राप्ति होनी चाहिए। परेटो ने भी यही मत व्यक्त किया। फर्ग्यूसन ने परेटो के दृष्टिकोण को इस प्रकार स्पष्ट किया है[4]—

"यदि किसी समाज का राजनीतिक सगठन इस प्रकार का है कि वहा व्यक्ति को सर्वोपरि माना जाता हो, तो ऐसी स्थिति में सामाजिक कल्याण, अथवा समाज का आर्थिक हित तभी अधिकतम होगा जबकि प्रत्येक उपभोक्ता, प्रत्येक फर्म, प्रत्येक उद्योग तथा प्रत्येक साधन का बाजार पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत कार्य करता हो।

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि वस्तुओं के इष्टतम सयोग के लिए परेटो उत्तमावस्था (वस्तु-प्रतिस्थापन की सीमान्त शर्त) वह है जिसमे उपभोग मे X की Y के लिए सीमात प्रतिस्थापन दर (MRS_{xy}) तथा उत्पादन मे X को Y के रूप मे सीमात रूपातरण दर (MRT_{xy}) म समानता हो तथा ये दोनो पृथक् रूप मे वस्तु की कीमतों के अनुपात के समान हो।

हम अपने दो उपभोक्ता दो वस्तुओं वाले मॉडल से ही प्रारभ करेंगे। विनिमय की सीमात शर्त के अनुसार दोनो उपभोक्ताओं की दोनो वस्तुओं के सदर्भ मे परेटो उत्तमावस्था की शर्त इस प्रकार बतलाई गई थी—

$$\frac{\partial U}{\partial X} \Big/ \frac{\partial U}{\partial Y}(A) = \frac{\partial U}{\partial X} \Big/ \frac{\partial U}{\partial Y}(B) = \frac{-dY}{dX} = \frac{Px}{Py} \quad (24\ 18)$$

इसी प्रकार दोनो वस्तुओं के इष्टतम सयोग की शर्त वहा पूरी होती है जहा सीमात रूपातरण दर तथा कीमतों के अनुपात मे समानता हो। अस्तु—

$$\frac{-dY}{dX} = \frac{MCx}{MCy} = \frac{Px}{Py} \quad \dots(24\ 19)$$

यदि उपभोग, उत्पादन व विनिमय की साम्य-स्थिति को एकसाथ देखा जाए तो परेटो उत्तमावस्था इस प्रकार होगी—

$$\frac{\partial U}{\partial X} \Big/ \frac{\partial U}{\partial Y}(A) = \frac{\partial U}{\partial X} \Big/ \frac{\partial U}{\partial Y}(B) = \frac{-dY}{dX} = \frac{MCx}{MCy} = \frac{Px}{Py} \quad \dots(24\ 20)$$

सक्षेप मे, समीकरण (24 20) के अनुसार (a) प्रत्येक वस्तु की सीमात उपयोगिता उसकी कीमत के समान है तथा प्रत्येक उपभोक्ता के लिए वस्तुओं की सीमात उपयोगिता का अनुपात कीमतो के अनुपात के समान होना चाहिए। (b) विनिमय के क्षेत्र मे परेटो उत्तमावस्था के लिए दोनो उपभोक्ताओ के लिए दोनो वस्तुओ की सीमात उपयोगिता का अनुपात कीमतो के अनुपात के समान होना चाहिए। (c) परतु यह भी आवश्यक है कि X तथा Y का जो इष्टतम सयोग उपभोक्ता चाहते हैं, उसी मात्रा म इनका उत्पादन किया जाए। यही कारण है कि उपभोग के साथ-साथ उत्पादन के क्षेत्र मे भी साम्य होना आवश्यक है। इसीलिए समीकरण (24 20)

4 C E Ferguson, op cit, p 446

मे समीकरण (24 18) व (24 19) को एकसाथ प्रस्तुत किया गया है।

यदि साधनों की मात्रा तथा आदा-प्रदा गुणांक दिए हों तो हम उत्पादन दक्षता वक्र का निरूपण कर सकते हैं, जिसके आधार पर हम उत्पादन सभावना वक्र (चित्र 24 4 व 24 5 के अनुरूप) का निर्माण कर सकते हैं। फिर यदि वस्तुओं की कीमतों के आधार पर सम-आगम रेखा खीची जाए तो जिस स्तर पर सम-आगम रेखा उत्पादन सभावना वक्र को स्पर्श करती है, उस स्तर पर X तथा Y का इष्टतम सयोग प्राप्त होता है (चित्र 24 5 का बिंदु S)।

अब X तथा Y की इन (इष्टतम) मात्राओ का A व B के बीच समीकरण (24 20) म प्रस्तुत शर्त के अनुसार किस प्रकार आवटन होगा ? इसके लिए चित्र 24 6 को देखिए। चित्र 24 6 तथा चित्र 24 5 म वस्तुओं के इष्टतम सयोग के निर्धारण तक कोई अतर नहीं है। परेटो उत्तमावस्था की शर्त के अनुसार अर्थव्यवस्था में $O\bar{X}$ मात्रा X की तथा $O\bar{Y}$ मात्रा Y की बनाई जानी हैं।

चित्र 24 6 उत्पादन सभावना वक्र तथा विनिमय के सदर्भ में परेटो उत्तमावस्था
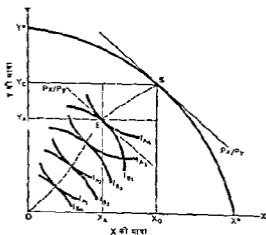
चित्र 24 6 मे साम्य स्थिति S बिंदु पर प्राप्त होती है जहा अर्थव्यवस्था में OX_0 मात्रा X की तथा OY_0 मात्रा Y की तैयार की जाती है। इस बिंदु के आधार पर हमने एक परेटो-आयत OY_0SX_0 का निर्माण किया है। इसमे A व B दोनों के चार-चार अनधिमान वक्र (I_{A1}, I_{A2} I_{A3}, व I_{A4}, I_{B1} I_{B2}, I_{B3} व I_{B4}) प्रस्तुत किए गए हैं जिनकी साम्य स्थितियों को मिलाकर OS सविदा वक्र का निरूपण किया गया है। वैसे तो सविदा वक्र का प्रत्येक बिंदु परेटो उत्तमावस्था को प्रदर्शित करता है, परन्तु वास्तव म A तथा B के मध्य X तथा Y का इष्टतम विनिमय उसी स्तर पर होगा जहा विनिमय-साम्य की शर्त (समीकरण 24 18) पूरी होती हो।

चित्र 24 6 में E पर यह शर्त पूरी होती है और इसलिए दोनों उपभोक्ताओं के लिए X व Y की सीमांत उपयोगिता के अनुपात वस्तुओं की कीमतों के समान तभी होंगे जब A को OX_A मात्रा X की तथा OY_A मात्रा Y की प्राप्त हो। उत्पादन संभावना वक्र के द्वारा निर्धारित इष्टतम मात्राओं (OX_0 तथा OY_0) का शेष भाग B को प्राप्त होगा। चित्र में B को विनिमय में प्राप्त X तथा Y की इष्टतम मात्राएं क्रमशः X_AX_0 तथा Y_AY_0 हैं।

इस प्रकार, उत्पादन संभावना वक्र के माध्यम से हम परेटो उत्तमावस्था के विषय में निम्न निष्कर्ष प्रदान कर सकते हैं—

(i) जिस स्तर पर उत्पादन संभावना वक्र का ढलान वस्तुओं की कीमतों के अनुपात के समान है, उस स्तर पर प्रतियोगी दशाओं के अंतर्गत वस्तुओं के इष्टतम संयोग का उत्पादन किया जाता है। यह वह स्थिति है जहां प्रत्येक फर्म सीमांत लागत तथा कीमत में समानता के आधार पर उत्पादन करती ($MC_X = P_X$ तथा $MC_Y = P_Y$ एवं $\frac{MC_X}{MC_Y} = \frac{P_X}{P_Y}$)।

(ii) वस्तुओं के इष्टतम संयोग का उत्पादन करने के बाद इनका उपभोक्ताओं के मध्य इष्टतम आवंटन उस स्तर पर होगा जहां उपभोक्ताओं के सीमांत उपयोगिताओं के अनुपात वस्तुओं की कीमत के अनुपात के समान हों, यानी प्रत्येक उपभोक्ता भी इष्टतम स्थिति में रहता हो।

(iii) इस प्रकार वस्तुओं के इष्टतम संयोग के उत्पादन ही नहीं, अपितु उस संयोग को उपभोक्ताओं के मध्य इष्टतम रूप में आवंटित करने हेतु भी वस्तुओं की कीमतों का अनुपात क्रमशः सीमांत लागतों के अनुपात तथा सीमांत उपयोगिताओं के अनुपात के समान होना चाहिए।

(iv) जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, उत्पादन संभावना वक्र का निरूपण दक्षता वक्र के आधार पर किया जाता है। यह भी हम पढ़ चुके हैं कि दक्षता वक्र का प्रत्येक बिंदु साधनों के इष्टतम यानी दक्षतम प्रयोग को प्रदर्शित करता है। अन्य शब्दों में, उत्पादन संभावना वक्र पर स्थित X व Y का इष्टतम संयोग यह भी स्पष्ट करता है कि दोनों वस्तुओं की इन मात्राओं का उत्पादन न्यूनतम लागत पर किया गया है। (दक्षता वक्र का प्रत्येक बिंदु परेटो उत्तमावस्था का प्रतीक है।)

(v) X व Y के इष्टतम संयोग का निर्धारण (उत्पादन संभावना वक्र पर) होने के बाद हमारे लिए यह भी संभव है कि इन (इष्टतम) मात्राओं के लिए श्रम व पूंजी की उपलब्ध मात्रा के इष्टतम आवंटन की व्याख्या कर सकें। चित्र 24 7 में उत्पादन संभावना वक्र की इष्टतम स्थिति तथा साधनों के इष्टतम आवंटन के मध्य संबंध बतलाया गया है।

चित्र 24 7 के पैनल (a) में वस्तुओं का इष्टतम संयोग X की 195 इकाइयों व Y की 170 इकाइयों पर स्थित है। पैनल (b) में बतलाया गया है कि ठीक इन्हीं उत्पादन स्तरों को व्यक्त करने वाले समोत्पाद वक्रों के ढलान (जो वस्तुतः श्रम व

पूंजी के सीमान्त उत्पादन के अनुपात हैं) साधन की कीमतों के अनुपात के समान हैं। अस्तु—

$$\frac{MP_L}{MP_K}(X) = \frac{MP_L}{MP_K}(Y) = \frac{w}{r} \qquad \ldots(24\ 21)$$

वैसे तो चित्र 24 7 के पैनल (b) में प्रस्तुत दक्षता वक्र का प्रत्येक बिंदु परेटो उत्तमावस्था को दर्शाता है, परंतु वास्तव में पूंजी व श्रम की उपलब्ध मात्रा का इष्टतम
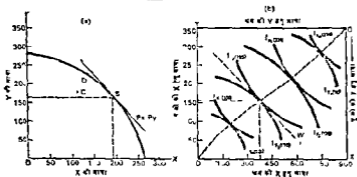
चित्र 24 7 उत्पादन संभावना वक्र से साधनों का इष्टतम आवंटन ज्ञात करना

आवंटन उस स्तर पर होगा जहां दोनों वस्तुओं के उत्पादन में साधनों के सीमान्त उत्पादन का अनुपात, यानी समोत्पाद वक्रों का ढलान, साधनों की कीमतों के अनुपात के समान हो। चित्र 24 7 के पैनल (b) में साधनों का यह इष्टतम आवंटन स्तर श्रम के संदर्भ में 400 इकाइयां X के लिए व शेष 500 इकाइयां Y के लिए हैं, जब कि पूंजी की 350 इकाइयों में से 150 का प्रयोग X के लिए तथा 200 इकाइयों का प्रयोग Y के लिए किया जाता है।

अस्तु सामान्य परेटो उत्तमावस्था वही है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन व उपभोग के क्षेत्र में इष्टतम आवंटन होने के साथ ही साधनों का भी इष्टतम उपभोग हो।

24 4 बृहत् उपयोगिता संभावना वक्र का निरूपण
(Derivation of the Grand Utility Possibility Frontier)

इससे पूर्व के अनुभाग में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उत्पादन संभावना वक्र को जिस बिंदु पर सम आगम रेखा स्पर्श करती है उस बिंदु पर अर्थव्यवस्था को X तथा Y का इष्टतम संयोग प्राप्त होता है। मान लीजिए X तथा Y की कीमतों में परिवर्तन हो जाता है। ऐसी स्थिति में सम-आगम के रेखा ढलान में परिवर्तन हो जाता

है, जिससे उत्पादन सभावना वक्र के किसी अन्य बिंदु पर साम्य की प्राप्ति होगी। X तथा Y की कीमतों के जितने होंगे, उत्पादन सभावना वक्र पर उतने ही साम्य बिंदु हमें प्राप्त होंगे तथा X व Y की इष्टतम मात्राओ मे भी अतर आ जाएगा। चित्र 24 8 के पैनल (a) मे X व Y की कीमतो के तीन सयोगो के अनुरूप तीन साम्य स्थितिया प्रदर्शित की गई है जो इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि जैसे-जैसे X की सापेक्ष कीमत (P_x/P_y) म वृद्धि होती है, उत्पादक फर्मे Y के उत्पादन मे कमी करके X का उत्पादन बढाती जाएगी।
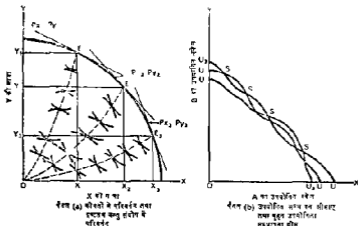
चित्र 24 8 उत्पादन समावना वक्र के विभिन्न बिंदुओ से वृहत उपयोगिता सभावना सीमा निरूपित करना

चित्र 24 8 के पैनल (a) मे उत्पादन सभावना वक्र पर तीन साम्य बिंदु, क्रमश, E_1, E_2 व E_3 प्रदर्शित किए गए हैं जिनमे से प्रत्येक एक पृथक कीमत सयोग से सबद्ध है। वस्तुओ के तीनो इष्टतम सयोगो के अनुरूप इस पैनल मे तीन एजवर्थ आयत प्राप्त होते हैं जिनके सविदा वक्र OE_1, OE_2, तथा OE_3 है।

चित्र 24 3 की भाति हमने चित्र 24 8 के पैनल (b) मे प्रत्येक सविदा वक्र से सबद्ध (A तथा B के लिए) एक उपयोगिता सभावना सीमा का निरूपण किया है। फिर तीनो उपयोगिता सभावना सीमाओ की बाहरी सीमा पर स्थित बिंदुओ (U_3, S_1, S, S_3 S_4 तथा U_1) को मिलाकर वृहत उपयोगिता सभावना सीमा (Grand Utility Possibility Frontier) प्राप्त की है। यह कुल उपयोगिता की वह वृहत सीमा है जिसके बाहर जाना साधनो की निर्दिष्ट मात्रा, निर्दिष्ट आदा प्रदा गुणाक तथा निर्दिष्ट साधन कीमतो के अनुरूप, समाज के विद्यमान उपभोक्ताओ के लिए सभव नही है। वृहत उपयोगिता सभावना वक्र के प्रत्येक बिंदु से चार बातो का बोध होता है—

(अ) A तथा B के लिए उपयोगिता फलन का एक इष्टतम (Unique) बिन्दु है जो (ब) इन दोनों उपभोक्ताओं में वस्तु X तथा Y के एक ऐसे वितरण अनुबन्ध से सम्बद्ध है जिससे उत्पादन फलन पर (स) फर्मों को उत्पादन-सम्भावना वक्र पर अधिकतम लाभ होता है, तथा जिसे प्राप्त करने में (द) श्रम तथा पूंजी का प्रयोग न्यूनतम लागत वाले संयोग के आधार पर किया जा सकता है।

सामाजिक कल्याण फलन तथा सामाबद्ध परम आनन्द
(The Social Welfare Function and the Constrained Bliss)

जैसा कि हमने परेटो के कल्याणमूलक अर्थशास्त्र की मान्यताओं के सन्दर्भ देखा था, हमारे समस्त समाज के विभिन्न व्यक्तियों के कल्याण के प्रतीक उपयोगिता सूचक (utility indices) विद्यमान हैं तथा अर्थव्यवस्था की विभिन्न (प्रतियोगी) इकाइयां इस प्रकार कार्य करती हैं ताकि समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम हो सके। वस्तुत परेटो द्वारा प्रस्तुत आर्थिक कल्याण के लक्षणों की व्याख्या करते हुए बर्गसन ने सामाजिक कल्याण फलन की अवधारणा का विकास किया। बर्गसन का सामाजिक कल्याण फलन अधिमान मानचित्रों पर आधारित उपयोगिता फलन पर आधारित है। यह मानते हुए कि हमें समाज के सभी सदस्यों के (क्रमसूचक) उपयोगिता फलन ज्ञात हैं सामाजिक कल्याण फलन को निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है—

$$W = w(U_1, U_2, \ldots U_s) \qquad \ldots(24\cdot22)$$

यहां W समाज के कुल आर्थिक कल्याण का प्रतीक है, तथा U_1, $U_2 \ldots U_s$ समाज के सदस्य उपभोक्ताओं में से प्रत्येक को प्राप्त उपयोगिता के स्तर को व्यक्त करते हैं। स्पष्ट है W एक उच्च फलन है तथा U_1, U_2 आदि में वृद्धि के साथ इसमें भी वृद्धि होती है। परन्तु जैसा कि हम ऊपर पढ़ चुके हैं U_1, U_2 आदि में वृद्धि केवल उसी दशा में सम्भव है जब समाज के एक या अधिक सदस्यों के पास विद्यमान साधनों में वृद्धि हो जाए तथा साथ ही अन्य व्यक्तियों के पास विद्यमान साधन यथावत् रहें।

चूंकि सामाजिक कल्याण को समाज के सदस्यों के आर्थिक कल्याण अथवा उपयोगिता फलनों के रूप में व्यक्त किया जाता है, हमारे लिए यह आवश्यक है कि हमें प्रत्येक व्यक्ति के उपयोगिता फलन का पूर्ण ज्ञान हो। फिर व्यक्ति के अनधिमान वक्रों की भांति ही हम सामाजिक कल्याण के विभिन्न स्तरों को व्यक्त करने वाले वक्रों का निरूपण कर सकते हैं—ऊंचा वक्र स्वाभाविक रूप से समाज के उच्चतर आर्थिक कल्याण को व्यक्त करेगा।

सामाजिक कल्याण के मानचित्र (social welfare map) को ज्ञात करने के बाद अब हमारा उद्देश्य यह जानना रह जाता है कि वृहत उपयोगिता सम्भावना सीमा के भीतर किस स्तर पर समाज का आर्थिक कल्याण अधिकतम होगा। यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि साधनों की निर्दिष्ट मात्रा एवं निर्दिष्ट आदा-प्रदा गुणांकों के अनुरूप हम एक वृहत् उपयोगिता सीमा का निरूपण करते हैं तथा साधनों की

मात्रा एवं तकनीकी गुणाकों के यथावत रहते हुए समाज के कल्याण की सीमा बृहत् उपयोगिता सभावना वक्र द्वारा निर्धारित होती है। चित्र 24 9 में हमने चार सामाजिक कल्याण फलन (वक्र) W_1, W_2, W_3 तथा W_4 प्रस्तुत किए हैं। सैद्धान्तिक रूप में सामाजिक कल्याण फलनों की सख्या अनत हो सकती है, परतु सुविधा के लिए हमने यहा चार ही फलन लिए हैं। हमे अब यह देखना है कि बृहत् उपयोगिता सभावना सीमा के भीतर अधिक सामाजिक कल्याण कहा होगा।
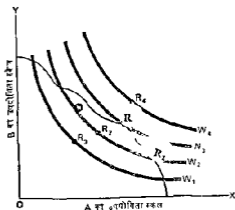
चित्र 24 9 अधिकतम सामाजिक कल्याण तथा सीमाबद्ध परम आनद

चित्र 24 9 मे W_4 से सामाजिक कल्याण के उस स्तर का बोध होता है जहा अर्थव्यवस्था नही पहुच सकती क्योंकि आदा प्रदा गुणाकों तथा साधनों की मात्रा को देखते हुए W_4 तक पहुचना सभव नही है। चूकि अर्थव्यवस्था का प्रयोजन उपलब्ध साधनो व सीमाओं के अतर्गत अधिकतम आर्थिक कल्याण प्राप्त करना है, ऐसा केवल R पर ही सभव है जहा अर्थव्यवस्था जो प्राप्त करना चाहती है तथा जिसे प्राप्त करने में वह सक्षम है, दोनों मे सतुलन हो जाता है। W_3 ही इस प्रकार इस अर्थ-व्यवस्था का इष्टतम सामाजिक कल्याण फलन होगा। इससे नीचे वाले फलनों पर R_2 या R_3 बिंदु पर आर्थिक कल्याण का स्तर नीचा होगा जबकि इससे ऊपर वाले फलन की प्राप्ति हेतु अर्थव्यवस्था सक्षम नही है। W_3 पर भी केवल R बिंदु पर ही सामाजिक कल्याण फलन बृहत् उपयोगिता सभावना फलन को स्पर्श करता है जबकि R_1 पर कल्याण का स्तर नीचा रह जाता है। यह इष्टतम स्थिति जहा सामाजिक कल्याण का स्तर (निर्दिष्ट सीमाओं में) अधिकतम है, सीमाबद्ध परम आनन्द (Constrained Bliss) की स्थिति कहलाती है। इससे ज्ञात होता है कि उत्पादन, उपभोग, साधनों के प्रयोग आदि को देखते हुए एक ऐसी (इष्टतम) स्थिति होती है जहा अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति सभव है।

इसी सन्दर्भ में यह बता देना आवश्यक होगा कि उपरोक्त उदाहरण में हमने समाज के दो ही सदस्यों के दो वस्तुओं से सबद्ध उपयोगिता-फलन शामिल किए हैं हालांकि एक जटिल उदाहरण में समाज के सभी S सदस्यों के वस्तुओं से सबद्ध उपयोगिता फलन लिए जा सकते हैं। दूसरी बात यह है कि व्यापक सन्दर्भ में समाज का आर्थिक कल्याण इन बातों पर भी निर्भर करेगा रोजगार का स्तर, समाज में आय का वितरण, राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर, भुगतान शेष राजनीतिक वातावरण आदि- व्यापक सन्दर्भ में इसीलिए सामाजिक कल्याण फलन का स्वरूप निम्न प्रकार का हो सकता है।

$$W = w\ (N, D_{g_1}, D_{h_2}, R, T, G) \qquad \ldots(24\ 22)$$

उपरोक्त समीकरण के स्वतंत्र चरों में N रोजगार के स्तर को, D_{g_1}, व D_{h_2}, दोनों उपभोक्ताओं के मध्य आय वितरण के गुणांकों को, R राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर को T भुगतान शेष को तथा G अन्य घटकों का व्यक्त करते हैं।

यह हम उपरोक्त विवरण के आधार पर स्पष्टतः समझ सकते हैं कि सीमाबद्ध परम आनन्द' (Constrained Bliss) वह स्थिति है जिसमें उपलब्ध साधनों का इष्टतम उपयोग होता है, तथा दोनों वस्तुओं—X तथा Y के इष्टतम आवंटन के द्वारा दोनों उपभोक्ता—A एवं B—अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करते हैं। अन्य शब्दों में, सीमाबद्ध परम आनंद की स्थिति सामान्य परेटो उत्तमावस्था (general Pareto optimality) की द्योतक है। जैसा कि हम चित्र 24 9 में देखते हैं, R के अतिरिक्त अन्य कोई भी स्थिति अर्थव्यवस्था के लिए इष्टतम स्थिति नहीं हो सकती। यद्यपि बृहत् उपयोगिता सभावना सीमा के सभी बिंदु उत्पादन, उपभोग तथा साधनों के प्रयोग हेतु इष्टतम स्थिति के प्रतीक हैं, तथापि समाज का आर्थिक कल्याण केवल उस बिंदु पर अधिकतम होगा जहां सामाजिक कल्याण फलन को वृहत् उपयोगिता सभावना सीमा स्पर्श करती है। स्पष्ट है, R_1, R_2 या R_3 को इष्टतम स्थिति नहीं माना जा सकता क्योंकि इन पर सामाजिक कल्याण का स्तर R की तुलना में नीचा है, जबकि W_4 पर विद्यमान बिंदु R_4 पर पहुंचना अर्थव्यवस्था के लिए संभव नहीं है। हा साधनों की मात्रा में वृद्धि होने या तकनीकी सुधार होने की स्थिति में वृहत् उपयोगिता-सभावना सीमा का विवर्तन होगा तथा अर्थव्यवस्था आर्थिक कल्याण के ऊंचे स्तर को प्राप्त कर सकेगी।

24 5 परेटो उत्तमावस्था तथा पूर्ण प्रतियोगिता
(Pareto Optimality and Perfect Competition)

इस अध्याय के अनुभाग 24 2 से 24 4 तक प्रस्तुत विवरण में हमने परेटो द्वारा प्रस्तुत तीन प्रमुख सीमांत इष्टतम शर्तों का अवलोकन किया था। इन सीमांत या इष्टतम शर्तों की पृष्ठभूमि में ये मान्यताएं निहित थी कि सभी उपभोक्ता, उत्पादक एवं साधनों के स्वामी विवेकशील व्यवहार करते हैं, यह कि वस्तुओं तथा साधनों की कीमतें यथावत् रहती है, यह कि साधनों की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता तथा

यह कि प्रत्येक आर्थिक इकाई को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान है। ये मान्यताएं वस्तुत पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत ही वैध हो सकती है। हम प्रस्तुत अनुभाग में यह बतलाएंगे कि परेटो उत्तमावस्था के सदर्भ मे पूर्ण प्रतियोगिता का क्या औचित्य है।

सर्वप्रथम विनिमय के क्षेत्र मे परेटो उत्तमावस्था का उदाहरण लीजिए। इसके लिए आवश्यक शर्त यह है कि दो वस्तुओं के प्रत्येक युग्म (pair) की सीमात प्रतिस्थापन दरें वस्तुओ की कीमतो के अनुपात के समान होनी चाहिए। यह हमे स्मरण रखना चाहिए कि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत सभी फर्में किसी वस्तु की वही कीमत प्राप्त करती है तथा सभी उपभोक्ता भी वही कीमत चुकाते हैं। प्रत्येक उपभोक्ता इसीलिए X तथा Y के उस अनुपात को खरीदेगा जिस पर सीमात प्रतिस्थापन दर सभी उपभोक्ताओ द्वारा चुकाई जाने वाली कीमतो के अनुपात के समान हो। सक्षेप मे सभी उपभोक्ताओ के लिए साम्य स्थिति मे एक ही सीमात प्रतिस्थापन दर होनी चाहिए।

अब साधनो के प्रयोग से सबद्ध परेटो उत्तमावस्था का उदाहरण लीजिए। इसके लिए सीमात शर्त यह है कि प्रत्येक फर्म के लिए सीमात तकनीकी प्रतिस्थापन दर तथा साधन की कीमतो का अनुपात समान होना चाहिए। चूकि साधनो के बाजार भी पूर्ण रूप से प्रतियोगी हैं परेटो उत्तमावस्था की शर्त के अनुसार प्रत्येक फर्म श्रम व पूजी का प्रयोग उस अनुपात मे करना चाहेगी जहा साधनो के सीमात उत्पादनो का अनुपात सभी फर्मों द्वारा साधनो के लिए चुकाई जाने वाली कीमतों के अनुपात के समान हो। सक्षेप मे, सभी उत्पादको के लिए साम्य स्थिति मे एक ही सीमात तकनीकी प्रतिस्थापन दर होनी चाहिए।

अत मे, वस्तुओ के प्रतिस्थापन मे सबद्ध परेटो उत्तमावस्था की शर्त का उदाहरण लीजिए। इस शर्त के अनुसार अर्थव्यवस्था मे दो वस्तुओ के इष्टतम सयोग की स्थिति वह होती है जहा वस्तुओ की सीमात रूपातरण दर $\left(\frac{MC_x}{MC_y}\right)$ तथा कीमतो का अनुपात $\left(\frac{P_x}{P_y}\right)$ समान हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति मे वस्तु की कीमत सभी फर्मों के लिए समान रहती है। यही नहीं प्रत्येक साधन के लिए भी सभी फर्में वही कीमत चुकाती हैं। इसके परिणामस्वरूप दो बातें दिखलाई देंगी। प्रथम तो यह कि सभी फर्मों के लागत फलन (विशेष रूप से सीमात लागत) एक जैसे होगे और साथ ही इनके आगम या माग फलन भी समरूपी होगे। दूसरे, चूकि फर्म स्वय कीमत का निर्धारण करने मे सक्षम नहीं है, फर्म के लिए कीमत व सीमात आगम मे कोई अतर नहीं होगा (AR=MR) और इसलिए प्रत्येक फर्म अधिकतम लाभ प्राप्ति हेतु उस स्तर पर उत्पादन करेगी जहा कीमत तथा सीमात लागत मे समानता है (AR=MR=MC)। पाठको को स्मरण होगा कि यह स्थिति केवल पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत प्राप्त हो सकती है।

परन्तु हम यह भी जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के अतर्गत सभी उपभोक्ताओ

भी वस्तुओं के लिए समान कीमतें चुकाते हैं तथा प्रत्येक उपभोक्ता अधिकतम उपयोगिता प्राप्ति हेतु वस्तु की उतनी मात्रा खरीदता है जहा सीमात उपयोगिता तथा कीमत में समानता है। अस्तु, दो वस्तुओं के सदर्भ में हम निम्न सीमात शर्तों को पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं—

(a) उपभोक्ता के लिए वस्तुओं की दी हुई कीमतों के सदर्भ में :

$$\frac{MU_x}{MU_y} = MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y} \quad \ldots (24\ 23)$$

(b) फर्म के लिए दी हुई कीमतों के सदर्भ में .

$$P_X = MC_X \text{ तथा } P_y = MC_y$$

$$\text{तथा} \quad \frac{P_x}{P_y} = \frac{MC_x}{MC_y} = MRPT_{xy} \quad . \ (24\ 24)$$

यह मानते हुए कि वस्तुओं के उत्पादन में एक ही साधन L का प्रयोग होता है तथा साधन के बाजार में इसकी कीमत r निर्धारित हो चुकी है, हम यह कह सकते हैं कि L का इष्टतम आवटन दोनों वस्तुओं के लिए उस स्तर पर होगा जहा MP_{Lx} तथा MP_{Ly} समान हों। चूकि साधन व वस्तु की कीमतें प्रतियोगी बाजारों में बाह्य रूप से (exogenously) निर्धारित होती हैं तथा वस्तु के लिए निर्धारित कीमत प्रत्येक फर्म व प्रत्येक उपभोक्ता के लिए वही है, हम उपभोग व साधन के प्रयोग की इष्टतम स्थिति को निम्न रूप में भी व्यक्त कर सकते हैं—

$$MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y} = \frac{r}{r} \bigg/ \frac{MP_{Lx}}{MP_{Ly}} \quad \ldots (24.25)$$

$$\text{परतु } MC_x = r \cdot \frac{1}{MP_{Lx}}$$

$$\text{तथा } MC_y = r \cdot \frac{1}{MP_{Ly}}$$

$$\text{अत } MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y} = \frac{MC_x}{MC_y} \quad . . (24\ 26)$$

जैसा कि हम जानते हैं, समीकरण (24 26) परेटो की सामान्य उत्तमावस्था (समीकरण 24 20) की इष्टतम शर्त को प्रस्तुत करता है। ये सभी शर्तें तभी पूरी हो सकती हैं जब वस्तुओं एव साधनों के बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान हो।

24 6 बाह्यताए तथा आर्थिक कल्याण[5]
(Externalities and Economic Welfare)

बाह्यताएं, बाह्य बचतें व अबचतें तथा बाह्य प्रभाव—ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं। मार्शल संभवत. पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने यह कहा था कि जैसे-जैसे एक

5 F M Bator, "The Anatomy of Market Failure", Reprinted in W. Breit and H.M Hochman (ed), Readings in Microeconomics, pp 457-76

फर्म का आकार बढ़ता है, इस कुछ ऐसी वचतें या मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं जो केवल इसके बड़े आकार का ही परिणाम हो सकती हैं। पीगू ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए। परन्तु मार्शल तथा पीगू दोनों ने यह मान्यता ली थी कि वृहत् स्तरीय उत्पादन के ये बाहरी प्रभाव पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत दीर्घकाल में भी विद्यमान रह सकते हैं। परन्तु नाइट एवं अन्य अर्थशास्त्रियों ने यह तर्क दिया कि लंबे समय तक इन 'मितव्ययिताओं" के चलने पर एकाधिकार का जन्म होना संभव है।

बाह्यता का अस्तित्व तब माना जाता है जब किसी फर्म द्वारा किया जाने वाला उत्पादन या किसी भी व्यक्ति द्वारा किए जाने वाला उपभोग किसी अन्य फर्म अथवा व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले उत्पादन या उपभोग से प्रभावित होता है। यह एक ऐसा संबंध है जिसका बाजार से तत्काल कोई संबंध नहीं होता हालांकि कालांतर में तकनीकी ज्ञान, कानूनों या सामाजिक संस्थाओं के स्वरूप, में परिवर्तन करने पर इन 'माध्यमों" की कीमत भी निर्धारित की जा सकती है। इन बाह्यताओं का यह अभिप्राय हो सकता है कि वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण में किसी उपभोक्ता या उत्पादक पर अनावश्यक रूप से लागत थोप दी जाती है, अथवा उसे बिना श्रम किए ही कोई लाभ प्रदान कर दिया जाता है। इसीलिए बाह्यताओं को फर्मों या व्यक्तियों के मध्य ऐसी अंतर-निर्भरताओं की संज्ञा दी जाती है जिनका कोई विनिमय नहीं होता, तथा जो पारस्परिक (reciprocal) हो सकती है और इकतरफा भी। बेटर ने ऐसी चार स्थितियों का वर्णन किया है जिनमें पूर्ण प्रतियोगिता की दिशाओं में भी अधिकतम आर्थिक कल्याण की प्राप्ति नहीं हो पाती तथा बाजार में विद्यमान इकाइयों का व्यवहार परेटो उत्तमावस्था के लिए प्रस्तुत शर्तों के अनुरूप नहीं होता। (ब) परेटो उत्तमावस्था की प्राप्ति तब होती है जब प्रत्येक उपभोक्ता अथवा प्रत्येक उत्पादक अपनी संतुष्टि या लाभ के स्तर को इस मान्यता के साथ अधिकतम करना चाहता है कि उत्पादन की मात्राएं, वस्तुओं तथा साधनों की कीमतें तथा अन्य सभी फर्मों या उपभोक्ताओं के लाभ तथा उपयोगिता फलन यथावत रहते हैं। बेटर के अनुसार यदि सभी क्षेत्रों—विनिमय, उत्पादन तथा साधनों के प्रयोग—में एक ही साथ परेटो की इष्टतम शर्तें पूरी न हों तो बाजार में असफलता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। बेटर ने इसे "अस्तित्व के कारण बाजार की असफलता" (market failure by existences) की संज्ञा दी।

(ब) पूर्ण प्रतियोगिता का यह भी अर्थ है कि परेटो उत्तमावस्था की प्राप्ति हेतु प्रत्येक फर्म का प्रयोजन अधिकतम लाभ की प्राप्ति होना जरूरी है। इसका परोक्ष रूप में यह भी अर्थ हुआ कि अंततः प्रत्येक फर्म को पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत सामान्य लाभ प्राप्त होता है। परन्तु बहुधा ऐसा नहीं हो पाता और कुछ उत्पादक दीर्घकाल में भी लाभ अर्जित कर सकते हैं या हानि उठा सकते हैं। इसे बेटर ने "संकेत द्वारा असफलता" (failure by signal) की संज्ञा दी।

(स) बाजार की मांग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा कीमत निर्धारण होने पर भी परेटो उत्तमावस्था इसलिए प्राप्त नहीं हो पाती कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति सभी

बाजारों में विद्यमान नहीं होती तथा स्वचालन के द्वारा साम्य स्थिति की एकसाथ प्राप्ति नहीं हो पाती। इसे बेटर ने "सरचना संबंधी असफलता" (failure by structure) का नाम दिया।

(द) यदि बाजार की असफलता उपरोक्त घटकों में से किसी एक के कारण न हो तब भी संगठनात्मक या वैधानिक कठिनाइयों के कारण बाजार की असफलता प्रारंभ हो जाती है। कुछ ऐसी वस्तुएं या सेवाएं होती हैं जिन्हें विनिमय हेतु बाजार में लाना व्यावहारिक नहीं होता। प्रदूषण आदि इसके उदाहरण हैं। बेटर के अनुसार यह विवशता के कारण उत्पन्न असफलता" (failure by enforcement) की स्थिति है।

एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार सीमांत सामाजिक लागत तथा सीमांत सामाजिक लाभ में विद्यमान अंतर के कारण भी बाह्यताएं उत्पन्न होती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत सीमांत निजी लागत तथा सीमांत सामाजिक लागत में भी कोई अंतर नहीं होता क्योंकि कीमत तथा सीमांत लागत समान होती हैं। परंतु यदि एक व्यक्ति द्वारा किए गए व्यय से दूसरे व्यक्ति को भी लाभ होता है तो सीमांत निजी लाभ तथा सीमांत सामाजिक लाभ में अंतर उत्पन्न हो जाता है। इसके विपरीत ऐसा भी संभव है कि A को किसी कार्य से जो लाभ हो रहा है उसकी प्रासंगिक रूप से लागत B को भी वहन करनी पड़ती हो। इस प्रकार सीमांत निजी लागत व सीमांत सामाजिक लागत, तथा सीमांत निजी लाभ व सीमांत सामाजिक लाभ में अंतर होने के कारण बाह्यताएं उत्पन्न हो जाती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में इन सभी में कोई अंतर नहीं होता। अब हम कुछ सामान्य बाह्यताओं का विवरण पढ़ेंगे।

स्वामित्व संबंधी बाह्यताएं (Ownership Externalities)

बेटर ने एक मधु मक्खी पालक तथा सेब के बगीचे के किसी स्वामी का अपूर्व उदाहरण देकर इस बाह्यता को समझाने का प्रयत्न किया है। मान लीजिए, सेब का बगीचा तथा मधु मक्खी पालने का स्थान पास पास स्थित हैं। सेब के उत्पादन में केवल श्रम की आवश्यकता है परंतु मधु-मक्खी पालन में श्रम के साथ साथ मक्खियों के लिए मधु की भी आवश्यकता है जो उन्हें सेब के फूलों से प्राप्त हो सकता है। मधु-मक्खी पालक को मधु के लिए कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता जबकि इसके लिए सेब के बगीचे का स्वामी श्रम करता है। इस प्रकार, जितना अधिक श्रम बगीचे का स्वामी करता है, मधु-मक्खी पालक को उतना ही अधिक लाभ मिलता है।

अब एक कठिनाई उत्पन्न होती है। सेब के फूलों का रस (blossom) निस्संदेह मधु या शहद के उत्पादन में प्रयुक्त होता है, और इसलिए मधु के उत्पादन में इसका सीमांत उत्पादन धनात्मक होता है। प्रतियोगी दशाओं में धनात्मक सीमांत उत्पादन के कारण फूलों के रस की कीमत भी धनात्मक होनी चाहिए। परंतु क्या बगीचे का स्वामी मधु मक्खी पालक से इन फूलों के रस की कीमत ले सकता है? यदि मधु-मक्खी पालक वह कीमत न दे तो क्या उसकी मक्खियों को बाग में प्रवेश

करने से रोका जा सकता है ? वस्तुत सेब के फूलो के रस का मधु-उत्पादन में सीमांत उत्पादन धनात्मक होने पर भी इसकी बाजार कीमत शून्य है, क्योंकि मांग व पूर्ति फलनो के अभाव में बाजार फूलो के रस की कीमत का आकलन सही रूप में नहीं कर सकता। फिर यह भी सही है कि सेब के फूलों का रस मक्खियो द्वारा लिए जाने पर भी बगीचे के स्वामी को इससे कोई क्षति नहीं होती।

इस स्थिति को जिसमे A को B की उपस्थिति के कारण लाभ होता है परंतु B को इससे कोई क्षति नहीं होती स्वामित्व संबंधी बाह्यता कहा जाता है। जे० ई० मीड ने इसे "मुफ्त मे प्राप्त साधन" (unpaid factor) की संज्ञा दी है। उपरोक्त उदाहरण से उल्टा उदाहरण उस कारखाने का दिया जाता है जो धुए या वायु-प्रदूषण के कारण समीप मे स्थित लाड्री द्वारा सुखाए गए कपडो को गदा करता रहता है, अथवा जिस कारखाने मे से निकले हुए मलवे या गंदे रसायन से समीप की बस्तियो मे लोगो के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। यह ऐसी स्थिति है जिसमे A के कार्य से B को हानि होती है।

तकनीकी बाह्यताए (Technical Externalities)

सभी वस्तुओ व सवालो का राशनिंग सभव हो, वे सीमित मात्रा में हो तथा विभिन्न व्यक्तियो के (क्रमसूचक) उपयोगिता मानचित्र परस्पर असंबद्ध हो (अर्थात् स्वामित्व संबंधी बाह्यताए मौजूद न हो) तब भी टैक्नोलॉजी की अविभाज्यता अथवा पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफलो के कारण बाजार मे असफलता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इन बाह्य प्रभावो को तकनीकी बाह्यताओ के नाम से जाना जाता है। अविभाज्यता अथवा पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफलो के कारण उत्पादन संभावना वक्र मूल बिंदु से उन्नतोदर (convex) हो जाता है, क्योंकि वर्द्धमान औसत व सीमांत उत्पादन के कारण औसत व सीमांत लागतें ह्रासमान हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न फर्मो के मध्य कीमत-युद्ध प्रारंभ हो जाता है, जिसके कारण अतत एकाधिकार का जन्म होता है क्योंकि कीमत युद्ध में केवल सबसे अधिक दक्ष फर्म ही अत मे बाजार मे बच पाती है। कुछ भी हो, इन बाह्यताओ के कारण बाजार मे असफलता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वस्तुत इनके कारण कीमत तथा सीमांत लागत मे समानता बनाए रखना सभव नहीं हो पाता ($P \neq MC$)।

सार्वजनिक वस्तु संबंधी बाह्यताएं (Public Good Externalities)

सार्वजनिक व्यय से संबद्ध अपने हाल के लेखो मे पॉल ए० सैम्युअलसन ने सामूहिक अथवा सार्वजनिक वस्तुओ की अवधारणा का प्रतिपादन किया है। वे शुद्ध रूप से सार्वजनिक वस्तु उसे मानते है जिसके "उपभोग के फलस्वरूप किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसी वस्तु के उपभोग में कोई कटौती नहीं होती।"[6] उदाहरण के लिए, किसी

6 P A Samuelson, "The Pure Theory of Public Expenditure", Review of Economics and Statistics, Vol XXXVI (November 1954), p 387

संगीत समारोह में यदि कोई व्यक्ति पड़ोस पर गुप्त संगीत का आनंद लेता है तो इससे कलाकार को भुगतान करने वाले श्रोताओं को प्राप्त आनंद में कोई कमी नहीं हो जाती (जबकि बाहरी व्यक्ति समारोह में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं कर देते)। हमारे दो व्यक्ति दो वस्तु वाले मॉडल में अब हम मान लेते हैं कि X की कुल उपलब्ध मात्रा $\bar{X}$ है। ऐसी स्थिति में X को हम सार्वजनिक वस्तु उस स्थिति में मानेंगे जब A तथा B दोनों ही उपलब्ध मात्रा $\bar{X}$ का उपभोग कर रहे हैं। अर्थात् $X_A + X_B = X$, परन्तु साथ ही $X_A = \bar{X}$ है और $X_B = \bar{X}$ भी है।[7] अन्य शब्दों में, X का उपभोग B या A के द्वारा किए जाने पर भी दूसरे व्यक्ति को प्राप्त इसकी मात्रा में कोई कमी नहीं होती।

इस प्रकार, किसी 'सार्वजनिक' वस्तु का उपभोग परेटो उत्तमावस्था की शर्त का उल्लंघन है क्योंकि परेटो उत्तमावस्था की शर्त के अनुसार यदि A को (या B को) वस्तु की अधिक मात्रा प्राप्त होती है तो B का (या A को) इसकी कम मात्रा प्राप्त होगी। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दोनों वस्तुओं की सीमान्त प्रतिस्थापन दर तथा सीमान्त रूपान्तरण दर में समानता की पृष्ठभूमि में भी लगभग यही बात निहित है। परन्तु चूँकि सार्वजनिक वस्तु के संदर्भ में A या B में से किसी एक को X की अधिक मात्रा प्राप्त होने पर भी दूसरे की प्राप्त मात्रा में कमी नहीं होती, X की Y के बदले सीमान्त रूपान्तरण दर ($MRPT_{xy}$) वस्तुतः दोनों सीमान्त प्रतिस्थापन दरों के योग के समान होगी ($MRPT_{xy} = \Sigma MRS_{xy}$)।

यह बाह्यता पूर्व में चर्चित बाह्यताओं से भिन्न है। वस्तुतः सीमान्त लागतों के वर्द्धमान होने, यानी उत्पादन संभावना वक्र के मूल बिंदु से नतोदर (concave) होने पर भी सार्वजनिक वस्तु से सम्बद्ध बाह्यता उत्पन्न हो सकती है। गणितीय दृष्टि से अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक वस्तु के विद्यमान होने पर परेटो उत्तमावस्था की शर्त केवल निम्न स्थिति में पूरी हो सकती है—

$$\frac{\partial T/\partial X_h}{\partial T/\partial X_j} = \sum_{g=1}^{s} \frac{\partial U^g/\partial X_h^g}{\partial U^g/\partial X_j^g} \qquad \ldots(24.27)$$

समीकरण (24.27) यह बतलाता है कि g^{th} व्यक्ति के लिए X_h की X_j के बदले सीमान्त रूपान्तरण दर तथा दोनों वस्तुओं की सीमान्त प्रतिस्थापन दर के योग के समान होने पर ही परेटो इष्टतम या उत्तमावस्था प्राप्त होगी।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बाह्यताओं के कारण बाजार यंत्र अथवा पूर्ण प्रतियोगिता की क्रियाशीलता में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। विशेष तौर पर जब कोई व्यक्ति बिना कीमत चुकाए किसी वस्तु या सेवा का उपभोग करता है,

7 P A Samuelson "Diagrammatic Exposition of a Pure Theory of Public Expenditure", Review of Economics and Statistics, Vol XXXVII (November 1955) p 350

अथवा अन्य व्यक्ति को लाभ प्राप्त होने क बदो आशिर लागत स्वयं वहन करता है (कारखाने के समीप स्थित लाड्री का उदाहरण) तो बाजार सयत्र का कोई महत्व नहीं रह जाता क्योंकि ये "सौदे" बाजार के कार्यक्षेत्र से बाहर के है। कभी-कभी हमे उपभोक्ताओ या उत्पादको की एक विशेष प्रकार की बाह्यता देखने को मिलती है जिसकी उत्पत्ति कुल आय, सपत्ति या लाभ के सापेक्ष स्तरो के कारण होती है। कभी-कभी किसी व्यक्ति को ईर्ष्या या होड के कारण किसी वस्तु या उपभोग या उत्पादन करने की इच्छा हो जाती है। ड्यूजनबरी का मत है कि यदि ईर्ष्या की यह प्रवृत्ति बडे स्तर पर विद्यमान हो तो किसी भी बाजार में इसका सौदा नहीं हो पाता। जो लोग सतुष्टि के निचले स्तर पर हैं, उन्हें इस बात की अनुभूति से भी अनुपयोगिता (disutility) प्राप्त होती है कि अन्य व्यक्तियो को उनकी अपेक्षा अधिक सतुष्टि प्राप्त हो रही है (ईर्ष्या !)। कभी कभी समाज के सभी लोगो की सपत्ति या आय मे समान वृद्धि होने पर भी एक व्यक्ति की ईर्ष्या भी उसी अनुपात मे बढ जाती है। इस प्रकार विभिन्न व्यक्तियो के उपयोगिता फलनो मे विद्यमान परस्पर निर्भरता के कारण भी बाह्यताए उत्पन्न हो जाती है।[8]

ऊपर वर्णित बाह्यताओ तथा बाजार-सयत्र की असफलताओ के कारण सरकार का हस्तक्षेप अनिवार्य हो जाता है। सार्वजनिक नीति का बढता हुआ महत्त्व, तथा आर्थिक एव सामाजिक गतिविधियों में सरकार का बढता हुआ हस्तक्षेप, इसी बात की पुष्टि करते है कि परेटो इष्टतम शर्तों के द्वारा अधिकतम आर्थिक कल्याण की प्राप्ति सभव नहीं है। आज राज्य द्वारा न केवल विद्यालयों तथा चिकित्सालयो का सचालन किया जाता है, अपितु इसके द्वारा महत्त्वपूर्ण उद्योगो तथा व्यापार का भी सचालन किया जा रहा है। अन्य क्षेत्रो मे निजी उद्योगो, व्यापार तथा कृषि के विषय में सरकार का उत्तरोत्तर बढता हुआ हस्तक्षेप इस बात की पुष्टि करता है कि पूर्ण प्रतियोगिता अथवा बाजार सयत्र के माध्यम से आर्थिक कल्याण अधिकतम नहीं हो सकता, और इसीलिए परेटो के कल्याणमूलक अर्थशास्त्र का भी आज कोई औचित्य नहीं है।

24 7 क्षतिपूरक सिद्धात
(Compensation Criteria)

स्वयसिद्ध कल्याणमूलक कसौटियाँ तथा परेटो की इष्टतम शर्तें इस मान्यता पर आधारित हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के उपयोगिता फलन का हमें ज्ञान है। पीगू ने 1932 में कहा था कि धनी व्यक्तियो के लिए मुद्रा सीमान्त उपयोगिता निर्धन व्यक्ति की अपेक्षा कम है, और इसलिए धनी व्यक्तियो पर कर लगाकर उस राशि को निर्धन व्यक्तियो मे वितरित करने पर कुल आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होती है। राबिन्स तथा

8 J S Duesanberry, 'Income, Saving and the Theory of Conusmer Behaviour' Cambridge, Mass, 1949

अन्य विद्वानों ने कहा कि पीगू के कल्याणमूलक अर्थशास्त्र में अन्तर्वैयक्तिक उपयोगिता विश्लेषण निहित है, इसलिए यह वैज्ञानिक कसौटी पर खरा नहीं उतरता। कैल्डोर ने आगे चलकर रॉबिन्स के इस विचार से असहमति व्यक्त की कि आर्थिक विश्लेषण में नैतिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। हिक्स ने कैल्डोर के विचारों का अनुमोदन करते हुए प्रतियोगी बाजारों में उत्पन्न अपूर्णताओं को दूर करने हेतु कतिपय नीतियां अपनाने का सुझाव दिया। इन सुझावों को कैल्डोर हिक्स क्षतिपूरक सिद्धांत (Kaldor Hicks Compensation Criterion) के नाम से जाना जाता है। हाल ही के दशकों में लिटिल आदि ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है। इस अध्याय के शेष भाग में हम इन सभी की संक्षिप्त व्याख्या करेंगे। यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि कैल्डोर हिक्स, लकास्टर, लिटिल आदि के द्वारा प्रस्तुत विचारों को नव-कल्याणमूलक अर्थशास्त्र (New Welfare Economics) के रूप में जाना जाता है।

कैल्डोर-हिक्स क्षतिपूरक सिद्धांत[9]

(Kaldor-Hicks Compensation Criteria)

निकोलस कैल्डोर ने अपने एक लेख में यह बतलाया कि यदि किसी कार्यक्रम या नीति की कार्यान्विति के कारण एक व्यक्ति को लाभ होता हो तथा अन्य व्यक्तियों की स्थिति पूर्वापेक्षा खराब हो जाए, तब भी अर्थशास्त्री एक निष्पक्ष नीति का सुझाव दे सकता है, बशर्ते लाभ उठाने वाले व्यक्ति को यह कहा जा जाए कि वह हानि उठाने वाले व्यक्तियों को क्षतिपूरक भुगतान करे। परन्तु कैल्डोर के इस क्षतिपूरक सिद्धांत में क्षतिपूरक भुगतान करने के बाद भी लाभ उठाने वाले पक्ष की आर्थिक स्थिति उसकी मूल स्थिति से बेहतर होनी चाहिए। परन्तु वास्तव में क्षतिपूरक भुगतान किया जाता है या नहीं, तथा किस रूप में यह भुगतान किया जाना है, ये सब राजनीतिक अथवा नैतिक प्रश्न हैं। जहां तक अर्थशास्त्री का प्रश्न है, कैल्डोर के मतानुसार, उसे केवल क्षतिग्रस्त व्यक्तियों के लिए क्षतिपूर्ति की आवश्यकता एवं संभावना बतलाकर ही छोड़ देना चाहिए। कैल्डोर ने कहा कि क्षतिपूर्ति की ये नीतियां इसलिए श्रेष्ठ हैं क्योंकि इनके कारण समाज (क्षतिपूर्ति के बाद भी) अतत बेहतर स्थिति में होता है।

कैल्डोर-हिक्स सिद्धांत को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है दो स्थितियों A व B में से B की अपेक्षा A को सामाजिक दृष्टि से तभी श्रेष्ठ माना जा सकता है जब स्थिति A से लाभ उठाने वाले व्यक्ति हानि उठाने वाले व्यक्तियों को

9. (i) N Kaldor, 'Welfare Comparisons of Economics and Interpersonal Comparisons of Utility", Economic Journal, 1939;
   (ii) J. R. Hicks, "The Valuation of Social Income", Economics, 1940;
   (iii) Hicks, "The Measurement of Real Income', Oxford Economic Papers, 1958, तथा (iv) J R Hicks, 'The Foundations of Welfare Econonmics', Economic Journal, 1939.

(A को स्वीकार करने हेतु) क्षतिपूर्ति दें, और फिर भी स्थिति B की तुलना में बेहतर रहे।

उदाहरण के लिए, यदि किसी रसायन निर्माता इकाई द्वारा किए गए जल प्रदूषण से पीड़ित समीपवर्ती बस्ती के लोगों को कारखाने के प्रबंधकों की ओर से क्षतिपूर्ति प्रदान करने के बाद भी समाज को प्राप्त कुल उत्पादन उस स्तर से अधिक हो, जो कारखाने को बंद करने पर होता, तो यह कैल्डोर द्वारा सुझायी गई वह विधि है जिसके अंतर्गत बाह्यताओं से क्षतिग्रस्त लोगों को क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिए। वस्तुत, कैल्डोर ने लाभ प्राप्तकर्ता द्वारा क्षतिग्रस्त व्यक्ति को भुगतान किए जाने हेतु बाजार कीमत का प्रयोग किया। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कैल्डोर इस विधि को प्रस्तुत करने के बाद भी परेटो के निम्न नैतिक निर्णयों (value judgments) से मुक्त नही हो पाए हैं (i) हमारा संबंध व्यक्ति के आर्थिक कल्याण से ही है, (ii) प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण या हित का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक है, तथा (iii) अगर किसी अन्य व्यक्ति को हानि पहुंचाए बिना एक व्यक्ति की स्थिति में सुधार होता है तो सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है।

हिक्स ने भी क्षतिपूर्ति हेतु एक विधि बतलाई है। परन्तु हिक्स के मतानुसार क्षतिपूर्ति भुगतान उन व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए जिन्हें साधनों की प्रचलित आवंटन व्यवस्था में परिवर्तन होने पर हानि होने की आशंका है। उदाहरण के लिए, स्थिति B की अपेक्षा स्थिति A को उस दशा में बेहतर माना जाता है जब A से जिन्हें हानि होने का डर है वे भावी लाभ प्राप्तकर्ताओं को यथास्थिति बनाए रखने हेतु रिश्वत देकर भी फायदे में रहें। जल प्रदूषण वाले हमारे उपरोक्त उदाहरण में यदि कारखाने की समीपवर्ती बस्ती के लोग संभावित क्षति से बचने के लिए कारखाने के प्रबंधकों को रिश्वत दें तथा जल प्रदूषण से बच जाएं तो यह हिक्स द्वारा सुझायी गई क्षतिपूर्ति विधि होगी।

वस्तुत परेटो द्वारा आर्थिक कल्याण के लिए प्रस्तुत परिभाषा में दक्षता को न्याय से सर्वथा पृथक् रखा गया है। परेटो से पूर्व लगभग प्रत्येक अर्थशास्त्री ने विशिष्ट आर्थिक नीतियों का विश्लेषण इस दृष्टि से किया कि प्रथम तो इनका आवंटन संबंधी दक्षता पर प्रभाव इस मान्यता के आधार पर देखा जाए कि आय का वितरण यथावत् रहता है, और फिर आय वितरण पर होने वाले प्रभावों के संदर्भ में इन नीतियों को परखा जाए। परन्तु तर्क के इन दोनों पक्षों के अंतर को सुस्पष्ट कभी नहीं किया गया।

सीटोवस्की ने आर्थिक कल्याण में वृद्धि का एक संशोधित, परन्तु दोहरी शर्त (double criterion) को प्रस्तुत किया। किसी भी नई नीति के निर्धारण, अथवा वर्तमान नीति में परिवर्तन करते समय हमें न केवल इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि इस नीति के फलस्वरूप आय का पुनर्वितरण इस प्रकार संभव है कि प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति पूर्वापेक्षा बेहतर होगी, अपितु हमें यह भी पता होनी चाहिए कि केवल आय के पुनर्वितरण द्वारा नीति की क्रियान्विति से पूर्व आर्थिक कल्याण में वृद्धि संभव

नहीं होगी। यह ठीक है कि नई नीति की कार्यान्विति अथवा प्रचलित नीति में परिवर्तन से सामान्यत आर्थिक कल्याण में तभी वृद्धि होगी जब इसके फलस्वरूप हानि उठाने वालों को इस प्रकार क्षतिपूर्ति दे दी जाए कि वे स्वेच्छा से नीति या नीति में परिवर्तन को स्वीकार कर लें। इसके साथ ही हानि की आशंका रखने वाले संभावित लाभ उठाने वालों को इसलिए रिश्वत दें कि वे इस नीति की कार्यान्विति हेतु दबाव न डालें, इस रिश्वत के बावजूद संभावित हानि उठाने वालों की स्थिति बेहतर होगी क्योंकि अपेक्षित हानि की तुलना में देय रिश्वत की राशि कम है। यदि संरक्षण की नीति के स्थान पर स्वतन्त्र व्यापार की नीति लागू की जाए तो सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत तर्क के अनुसार यह विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है कि आय के प्रारंभिक वितरण की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यापार श्रेष्ठ (efficient) है, परन्तु अंतिम वितरण की दृष्टि से यह एक अकुशल नीति है। यह विरोधाभास उस दशा में उत्पन्न नहीं होगा जब स्वतन्त्र व्यापार से केवल काल्पनिक दक्षता में वृद्धि होनी हो, जिसके अंतर्गत समाज के प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र व्यापार से लाभ होता है। हम यह जानते हैं कि प्रत्येक परिवर्तन से कुछ व्यक्तियों को हानि अवश्य होती है। ऐसी दशा में, हमारे यह कहने से पूर्व कि कल्याण में वृद्धि हो गई है, दोहरी शर्त (यानी न्याय तथा दक्षता में वृद्धि) अवश्य पूरी होनी चाहिए।

सीटोवस्की ने न्याय तथा दक्षता में अंतर बतलाते हुए आर्थिक कल्याण में वृद्धि उस दशा को माना जब परिवर्तन से पूर्व की स्थिति की तुलना में क्षतिपूरक भुगतान की वास्तविक अदायगी के बावजूद परिवर्तन के बाद प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति में सुधार हो।

वस्तुत सीटोवस्की ऐसा समझते हैं कि क्षतिपूरक भुगतान करना जरूरी नहीं है। कैल्डोर-हिक्स क्षतिपूरक विधि में संशोधन करते हुए वे ऐसी विधि का सुझाव देते हैं जिसमें किसी आर्थिक नीति से जिन्हें क्षति होने वाली है वे परिवर्तन का विरोध करने हेतु संभावित लाभ उठाने वालों को पर्याप्त रिश्वत नहीं दे पाते। उदाहरण के लिए स्थिति B की अपेक्षा स्थिति A उस दशा में श्रेष्ठ होगी। जब संभावित लाभ उठाने वाले संभावित हानि उठाने वालों को इसलिए रिश्वत (क्षतिपूर्ति) देते हैं ताकि वे परिवर्तन को स्वीकार कर सकें, तथा इसके साथ ही हानि उठाने वाले लाभ उठाने वालों को नीति की कार्यान्विति के विरोध में पर्याप्त रिश्वत नहीं दे पाते।

सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत दोहरी शर्त के अनुसार, नई स्थिति न केवल कैल्डोर-हिक्स की शर्त के अनुरूप होनी चाहिए, अपितु यह भी आवश्यक है कि नई से पुरानी स्थिति में लौटने पर कैल्डोर हिक्स की शर्त पूरी न हो। उदाहरण के लिए, समान के अनधिमान वक्रों में N से M बिंदु पर जाने पर कैल्डोर-हिक्स विधि की शर्त पूरी हो सकती है, परन्तु यदि M से N पर आने हेतु कार्यवाही की जाए तो यह शर्त पूरी नहीं होगी। इसी कारण सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत शर्त को दोहरी शर्त (double criterion) की संज्ञा दी जाती है।

लिटिल द्वारा प्रस्तुत शर्त[10] (*Little's Criterion*)—लिटिल ने कैल्डोर-हिक्स तथा सीटोवस्की दोनो ही के द्वारा प्रस्तुत शर्तों को अपर्याप्त माना है। उनके अपने विश्लेषण मे उन्होंने सर्वप्रथम दो मान्यताओं (value judgments) को प्रस्तुत किया। प्रथम यह कि यदि किसी व्यक्ति को उसकी प्राथमिकताओं के क्रम मे ऊची स्थिति में जाने योग्य बना दिया जाए तो उसकी स्थिति बेहतर हो जाती है। द्वितीय, समाज की स्थिति उस समय बेहतर मानी जाती है जब एक व्यक्ति की स्थिति बेहतर होने के साथ ही अन्य किसी व्यक्ति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न हो। वे नैतिक आधार पर आय के पुनर्वितरण की वकालत करते हैं। लिटिल द्वारा प्रस्तुत शर्त के साथ तीन प्रश्न जुडे हुए हैं (अ) क्या कैल्डोर हिक्स द्वारा प्रस्तुत शर्त पूरी होती है ? (ब) क्या सीटोवस्की की शर्त पूरी होती है ? तथा (स) आय का पुनर्वितरण अच्छा है या बुरा ? इन तीन प्रश्नो के 'हा" या "नही" मे आठ सभावित उत्तर प्राप्त किए जा सकते हैं ? लिटिल ने आय के अतरणों (क्षतिपूरक भुगतानो आदि) को सदैव एकमुश्त भुगतान के रूप मे प्रस्तुत किया तथा कहा कि उपयोगिता मानचित्र के बाहर स्थित सभी बिंदु काल्पनिक है। यदि इसके विपरीत उपयोगिता मानचित्र के *अतर्गत किए जाने वाले आय के पुनर्वितरण सभाव्य (feasible) माने जाते हैं, तथा इसलिए अनिवार्य रूप से उन्हे एकमुश्त नही माना जाता, तो* उपयोगिता मानचित्र का प्रत्येक बिंदु प्राप्त किया जा सकता है।

ऊपर प्रस्तुत तीनो प्रश्नो का उत्तर 'हा" मे होने पर लिटिल की दृष्टि मे प्रचलित व्यवस्था में परिवर्तन वाछनीय होगा। (यह लिटिल का उदाहरण सख्या 1 है)। यदि कैल्डोर हिक्स की शर्त पूरी होती हो तब भी पुनर्वितरण वाछनीय है भले ही सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत दोहरी शर्त पूरी न हो (यह लिटिल का उदाहरण सख्या 3 है)। इसी प्रकार यदि सीटोवस्की द्वारा प्रस्तुत शर्त पूरी होती है तब भी पुनर्वितरण को वाछनीय माना जाता है, भले ही कैल्डोर-हिक्स की शर्त पूरी न हो (यह लिटिल का उदाहरण सख्या 2 है)।

24 8 द्वितीय श्रेष्ठ प्रमेय
(The Second Best Theorem)

यदि परेटो उत्तमावस्था से सबद्ध सभी मान्यताए सही हों तो सामाजिक कल्याण अधिकतम हो सकता है। परतु जैसा कि पूर्व मे बतलाया जा चुका है, व्यवहार में वस्तुओ तथा साधनों के बाजार मे पूर्ण प्रतियोगिता कही भी दिखाई नहीं देती, एव इसलिए परेटो-उत्तमावस्था से सबद्ध आवश्यक शर्तें पूरी नही हो पाती। वस्तु-विभेद, असमान अवसर, सपत्ति व आय के वितरण में विद्यमान विषमताए आदि ऐसे व्यवधान हैं जिनके कारण समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए परेटो उत्तमावस्था मे पहुच

10 I M D Little, 'A Critique of Welfare Economics' (2nd Edition), Oxford 1957

पाना संभव नहीं होता। परिणामस्वरूप समूचे समाज के लिए भी परेटो उत्तमावस्था की प्राप्ति एक मरीचिका बनकर रह जाती है।

लिप्से तथा लंकास्टर[31] ने यह प्रमेय प्रस्तुत किया कि यदि "परेटो उत्तमावस्था की शर्तों में से एक पूरी न हो, तो अन्य सभी शर्तों का परित्याग करके हम किसी इष्टतम स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।" उन्होंने कहा कि वास्तविक परिस्थितियों के संदर्भ में अंतत जो स्थिति हमें प्राप्त होती है उसे हम द्वितीय श्रेष्ठ इष्टतम स्थिति के नाम से पुकारते हैं। लिप्से व लंकास्टर ऐसा मानते हैं कि वस्तु या साधन के बाजारों में किसी अपूर्णता के कारण हम एक नहीं अपितु अनेक कीमतें बाजार में दिखलाई देती हैं। यही नहीं, उत्पादन कर या बिक्री कर के कारण उपभोक्ता जो कीमत चुकाता है उत्पादक को वस्तु की वही कीमत प्राप्त नहीं हो पाती। ऐसी दशा में न तो विनिमय की इष्टतम शर्तें पूरी होती है, न ही साधन प्रतिस्थापन की इष्टतम शर्तें पूरी होती है और न ही वस्तुओं के इष्टतम रूपान्तरण की शर्तें पूरी हो पाती हैं। इनके परिणामस्वरूप समाज साधनों का प्रयोग वस्तुओं के उत्पादन के उस स्तर पर करता है जो परेटो उत्तमावस्था न होकर उससे थोड़ा भिन्न है। इसीलिए, इसे द्वितीय श्रेष्ठ अथवा उप-इष्टतम (sub-optimum) स्थिति कहा जाता है।

चित्र 24 7 के पैनल (a) में C तथा D बिंदुओं को देखिए। बिंदु D उत्पादन संभावना वक्र पर स्थित है जबकि बिंदु C इस क्षेत्र के भीतर है। स्पष्ट है कि C की तुलना में D पर समाज को अधिक आर्थिक कल्याण की प्राप्ति होती है। लिप्से एवं लंकास्टर ने कहा कि यदि C व D दोनों उप इष्टतम स्थितियों के मध्य चुनाव किया जाना हो तो समाज निस्सन्देह D को चुनेगा। यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि D उत्पादन संभावना वक्र पर स्थित होने पर भी परेटो इष्टतम स्थिति नहीं है। परेटो इष्टतम स्थिति S पर है इसीलिए C को नहीं, अपितु D को द्वितीय श्रेष्ठ स्थिति माना जाता है।

24 9 चुनाव का विरोधाभास
(The Paradox of Voting)

केनेथ जे० एरो ने कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित अपनी पुस्तक में यह तर्क दिया कि समाज के आर्थिक कल्याण को सामान्य तौर पर सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया द्वारा अधिकतम नहीं किया जा सकता। कोई व्यक्ति अपनी प्राथमिकताओं को सक्रमणता (transitivity) के आधार पर सजो सकता है (यदि $A>B$ तथा $B>C$ तो $A>C$) परन्तु समूचे समाज इस आधार पर प्राथमिकताओं को सजो नहीं सकता। इसी कारण "चुनाव का विरोधाभास" उत्पन्न होता है, क्योंकि एक समूह को B की अपेक्षा A अधिक पसद है, तथा C की अपेक्षा B को अधिक पसद किया जाता है।

31 R G Lipsey and K Lancaster, The General Theory of Second Best', Review of Economic Studies, 1956

परन्तु व्यक्तियों का एक अन्य समूह B को C की तुलना में तथा C को A की तुलना में अधिक पसंद कर सकता है। यदि समाज में अनेक ऐसे समूह हों तो इन विरोधाभासों की संख्या काफी अधिक हो जाएगी। बहुधा बहुमत के द्वारा भी यह स्पष्ट करना संभव नहीं होता कि पूरे समाज की प्राथमिकताओं का क्रम क्या है।

एरो की पुस्तक ने चुनाव या मतदान तथा बाजार की सापेक्ष संरचना के बारे में सभी का ध्यान आकर्षित किया। इसमें कल्याणमूलक अर्थशास्त्र के विषय में की जाने वाली शोध का विस्तार भी हुआ तथा समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र के सिद्धांतों का भी इस विश्लेषण में समावेश किया जाने लगा।

उपसंहार (Concluding Remarks)

अब हम इस स्थिति में पहुंच गए हैं कि ऊपर अनुभाग 24 4 में प्रस्तुत उपयोगिता संभावना वक्र के आधार पर परेटो, कल्डार, सीटोवस्की व अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत कल्याणमूलक अर्थशास्त्र की तुलनात्मक समीक्षा कर सकें। पूर्व की भांति हम अब भी यही मान्यता लेंगे कि समाज में A व B—ये दो ही व्यक्ति हैं जिनके आर्थिक कल्याण का अधिकतम किया जाना है। चित्र 24 10 में A तथा B के संदर्भ में दो उपयोगिता-संभावना वक्र प्रस्तुत किए गए हैं जो केवल ऐसे विभिन्न उपयोगिता स्तरों को प्रदर्शित करते हैं जिन्हें आय के पुनर्वितरण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।
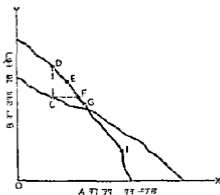
चि 24 10 क्षतिपूरक विधियां तथा आर्थिक कल्याण

चित्र 24 10 में यदि हम वस्तुओं के उस संयोग से प्रारंभ करें जो उपयोगिता संभावना वक्र के बिंदु C से संबद्ध है तो परेटो द्वारा प्रस्तुत इष्टतम शर्तों के अनुसार किसी भी नीति द्वारा आर्थिक कल्याण में वृद्धि उस समय मानी जाएगी जब C से हटकर C E या F पर समाज को लाया जाए। इसका कारण यह है कि D E F पर A अथवा B अथवा दोनों को प्राप्त कुल उपयोगिता अधिक है। परन्तु यदि हम

साम्य स्थिति को C से बदलकर G पर लाना चाहें तो इससे A को पूर्वापेक्षा अधिक उपयोगिता प्राप्त होगी परन्तु B की प्राप्त उपयोगिता में कमी हो जाएगी।

कैल्डोर का दृष्टिकोण C से हटकर G पर साम्य स्थिति स्थापित करने पर क्या प्रभाव होंगे, इसका मूल्यांकन इस प्रकार किया जाए—

(1) B से यह पूछा जाए कि वह नई स्थिति को रोकने हेतु कितनी क्षतिपूर्ति देने को तत्पर है, तथा (2) A से यह पूछा जाए कि वह अपनी बेहतर स्थिति के लिए B को कितनी क्षतिपूर्ति देना चाहता है। यदि (1) की तुलना में (2) की राशि अधिक है तो परिवर्तन (पुनर्वितरण) से कुल आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी क्योंकि B को उसकी क्षति का मुआवज़ा चुकाने के बाद भी A की अंतिम स्थिति पूर्वापेक्षा (C की तुलना में) बेहतर होगी। कैल्डोर द्वारा प्रस्तुत शर्त के अनुसार आर्थिक कल्याण में वृद्धि की एक पर्याप्त कसौटी (sufficient condition) यह है कि वस्तुओं के मूल संयोग की तुलना में अंतिम संयोग से प्राप्त उपयोगिता स्केल दोनों उपभोक्ताओं के उपयोगिता संभावना वक्र पर नीचे की ओर स्थित हो। चित्र 24.10 में C से I पर जाने पर कैल्डोर की शर्त पूरी होती है।

इसके विपरीत, I पर पहुंचने के बाद यदि हम C पर पुनः आना चाहें तो प्रस्तावित परिवर्तन के लिए I हमारा प्रारंभिक स्तर हो जाएगा। परन्तु I से C वाला परिवर्तन भी कैल्डोर की शर्त के अनुरूप है क्योंकि C की तुलना में I उपयोगिता संभावना वक्र के नीचे की ओर स्थित है। इस प्रकार पुनर्वितरण या स्थिति परिवर्तन के फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है, इसके साथ ही I से पुनः C पर जाने में भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। सीटोवस्की की दोहरी शर्त के अनुसार (i) यदि प्रारंभिक स्थिति (C) से नई साम्य स्थिति (I) के आने पर यदि आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो तो यह कैल्डोर की शर्त के अनुरूप है, परन्तु (ii) I से C पर लौटने पर ऐसा नहीं होता। परन्तु व्यावहारिक जीवन में यदा कदा ही यह दोहरी शर्त पूरी हो पाती है।

सैम्युअलसन, चैनरी, मिशान एवं अनेक दूसरे अर्थशास्त्रियों ने भी नवकल्याणमूलक अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। परन्तु इन आधुनिक लेखकों का मुख्य प्रयोजन "स्वयंसिद्ध कल्याणमूलक सिद्धांत" मिथ्यात्व को प्रकाश में लाना है, तथा यह सिद्ध करना है कि बाजार संयंत्र (पूर्ण प्रतियोगिता) की विफलता के कारण आर्थिक कल्याण में वृद्धि हेतु सक्रिय सार्वजनिक नीति आवश्यक है। अन्य शब्दों में, आधुनिक कल्याणमूलक अर्थशास्त्र में राज्य को एक निष्क्रिय इकाई के रूप में नहीं लिया जाता अपितु यह माना जाता है कि सरकार के हस्तक्षेप बिना आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती। मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों का बढ़ता हुआ प्रभाव तथा विश्व के विभिन्न देशों में नियोजन (planning) के प्रति बढ़ती हुई रुचि से यही सिद्ध होता है कि संस्थापक, नवसंस्थापक या परेटो के कल्याणमूलक अर्थशास्त्र का आज के संदर्भ में कोई औचित्य नहीं रह गया है।

[6302280]

●●●